साहित्य अकादमी द्वारा पुरस्कृत बांग्ला उपन्यास

गाथा तिस्ता पार की

देवेश राय

साहित्य अकादेमी पुरस्कार प्राप्त बाङ्ला उपन्यास

गाथा तिस्ता पार की

मूल
देवेश राय

हिन्दी अनुवाद
साधना शाह



साहित्य अकादेमी

1

हाट के रास्ते

एक ही हाट में दो साइनबोर्ड जा रहे हैं—साधारणतया ऐसा देखा नहीं जाता। एक काफ़ी लंबा-चोड़ा, बड़ा और नया-सा। पीले रंग पर काले से, जैसा कि सरकारी साइनबोर्ड होता है, सील-मोहर लगा हुआ, 'कृत्रिम गो-प्रजनन केंद्र' और भी बहुत कुछ। उसे लेकर चलने में आदमी को बहुत कष्ट हो रहा है। वह उसे झुलाकर ले जाता—पर इससे साइनबोर्ड के सड़क पर घिसने का डर था। बगल में भी दो-एक बार उठा लेना तो तिरछे होकर कहीं से निकलने में परेशानी होती। आख़िरकार उसने सिर पर रख लिया। यही सबसे सुविधाजनक लगा। एक हाथ से सिर पर रखे साइनबोर्ड को थामे और दूसरे हाथ में प्लास्टिक का एक जोड़ा जूता—जिसे पीछे छोड़ आये झरने को पार करते समय खोलना पड़ा था। सामने पैदल और फिर फेरी से पार होने वाली और भी नदियाँ थीं--तीन-चार। नाइलॉन की पेंट घुटने तक तह कर मोड़ी हुई। वह भी नदी के पानी के स्तर का थोड़ा-बहुत अंदाजा लगाकर।

एक और साइनबोर्ड था, छोटा सा। काले रंग पर सफ़ेद रंग से लिखा हुआ—वैसे बहुत पुराना-सा लगता था। उसमें भी सील-मोहर लगा हुआ था। बड़े-बड़े हरफ़ों में लिखा था –'हालका कैंप'। इसे एक दूसरा आदमी थैली के साथ बाँध कर पीठ पर लटकाये हुए बीड़ी पीते-पीते जा रहा था। बीड़ी न पीये तो दूसरे हाथ का क्या करे! धोती घुटने से भी ऊपर—ताकि नदी-नाला या कीचड़-बालू पार किया जा सके। पैरों में नये पीले रंग के बैंड वाले हवाई चप्पल के सोल का संपर्क अंगुलियों से थोड़ा-सा ही था। इतना घिस जाने देने के लिए कई बार नये बैंड लगाने पड़े होंगे। पैर के साथ चप्पलें इस तरह एकाकार हो गयी थीं कि अगर उन्हें खोलकर हाथ में टाँग ली जाये तो वे टुकड़ों में बिखर जायेंगी। पैर से निकाला जाये तो पैर का तलवा भी चप्पल के साथ निकल आयेगा। इसे खोलने से चलने की आहट थम जायेगी, फिर तो चला ही नहीं जायेगा।

अब अपना जूता भी पहला आदमी 'कृत्रिम गो-प्रजनन केंद्र' साइनबोर्ड के

ऊपर रखकर दोनो हाथो से साइनबोर्ड को पकड़े, तेजी से चला जा रहा था–जैसे इतने समय के बाद उसे चलने की सही गति मिल गयी हो। उसके तेजी से चलने से साइनबोर्ड के टीन से डडग-डग, दडग-डग की आवाज आ रही थी। ऊपर दोनो जूते भी उछल रहे थे। टीन की आवाज से उसके चलने का छंद चारो ओर गूंज रहा था। चारो तरफ इतनी निर्जनता थी ! आवाज तेज हो तो कैसे फैलकर परिवेश मे मिल जाती है !

आसपास निर्जन था। सिर्फ इसी रास्ते मे लोग कतारो मे चल रहे थे। आज क्रांति हाट मे हाट लगा था। हाइवे मे बस से उतर कर कोई कोई रिक्शा भी ले लेता था। और फिर रिक्शे वाले के साथ ही ठेलकर छोटा छोटा नाला पार करता था। फेरी मे रिक्शे वाला ही सामान चढ़ा लेता था। आजकल उस पार भी रिक्शे वाले मिल जाते है। जिनका सामान ज्यादा और भारी हो उन्हे तो रिक्शा लेना ही पड़ता है। कटपीस, बनियान लुंगी शर्ट पैंट के दुकानदार अपना सामान साइकिल पर लटकाकर और पीछे बांधकर काम चला लेते है। पर आलू या एल्युमीनियम बर्तन के बड़े दुकानदारो के लिए रिक्शा न हो तो एक रिक्शे का सामान दो एक जन के सिर पर लदवा कर ले जाने मे खर्चा ज्यादा पड़ जाता है।

पर ज्यादातर लोग पैदल ही चले जा रहे थे। सिर पर बोझा उठाकर या फिर तख्ते पर लादकर। बस से हाइवे पर उतर कर बस की छत से सामान उतार कर रिक्शे की बजाय एकैक मील पैदल चलना सुविधाजनक था। पर जो लोग पैदल ही चकमोलानी से या उत्तर के हायहायपाथा से टोकरी-बोरा बगल मे दबाए हुए नदी नाले पार कर सिर पर या तख्ते पर सामान लादकर, या गाय बकरियां को हांकते या रास्ते की दूरी कम करते हुए आ रहे थे उन्हे इस पक्की सड़क पर रिक्शे की जरूरत क्या। पतली सी सड़क पर जैसे नदी बह चली हो ! नीचे की ओर पहाड़ी नदी का बहाव तेज होता है जैसे घंटे भर के लिए बाढ़ आ गयी हो। रिक्शा यहां नदी मे चलता है, हॉर्न भी बजाता है। पैरो के नीचे पक्की सड़क पाकर या तख्ते पर या फिर कंधे पर बोझा होने के बावजूद लोगो के पांवो मे गति आ गयी थी। कोई किसी की ओर नही देख रहा था। बात भी नही कर रहा था। जल्दी जल्दी चलने या बोझा होने के कारण लोगो के हांफने की आवाज सुनाई पड़ रही थी। चारो तरफ ऐसा सन्नाटा था कि आदमी के सांस लेने और छोड़ने की भी निःशब्द आवाज भी हवा मे मिल नही पा रही थी, बल्कि अलग होकर अपने अस्तित्व का आभास दे रही थी।

पर हाट जाने का यह आखिरी समय हो या फिर इस रास्ते के पक्के होने के कारण ही हो भीड़ के चलने से सड़क भरी भरी सी लगती थी। इतने सारे लोग एक साथ एक ही तरफ जा रहे थे–यही उन सबके भीतर की समरसता का सबसे बड़ा उदाहरण था और उस पर एक के सिर पर बड़े बड़े अक्षरो मे लिखा साइनबोर्ड और दूसरे की पीठ पर बहुत पुराना एक साइनबोर्ड। मानो ये दोनो भीड़ को एक कर देना

चाहते हो–ठीक उसी तरह जैसे झडा और फंसट्न मिलकर जुलूम बनाते ह।

अब इस रास्ते की भीड माइनबोर्ड से जुड गयी थी और उसके नीचे से हॉर्न और घण्टी बजाते हुए रिक्शे और साइकिल वाले बचते-बचाते निकलते जा रहे थे पर उनके निकलते ही भीड फिर से एक हो जाती थी। एक आदमी एक छोटा-सा खस्सी रस्सी से बाँधकर खीचते हुए चला जा रहा था। खस्सी को जैसे पहले से ही आशका हो गयी थी या कोई डर उसके भीतर समाया हुआ था। एक कदम भी वह आगे नही बढता। और वह आदमी भी बडी निश्चितता स उसे खीचते हुए चला जा रहा था। मानो इसी तरह वह यथासमय हाट मे पहुँच जायेगा। खस्सी कभी-कभी बीच सडक पर बठ जाता, आदमी खडा हो जाता। खस्सी को खींचता भी नही। डाट-डपट भी नही करता। खस्सी के पीछे ही वही चायवाला लडका था जो यहाँ के हर छोटे-बडे हाट मे दिखता था। उसके सिर पर लकडी का बक्सा था। उसी के भीतर चूल्हा-कोयला और चाय बनाने का सारा साज-सरजाम था। खस्सी के बठ जाने पर वह उसके पीछे हल्के से लात मारता था और खस्सी फिर स दो-एक कदम दौड पडता था। उस लडके ने जाने कहा से हाथ बढाकर एक टहनी तोड ली थी। अब उसे लात नही मारनी पडती। लबी सी टहनी से ठीक जगह मे हल्के से कोचने पर खस्सी थोडा सा दौड पडता। लुगी पहना हुआ एक आदमी तीन छोटी-छोटी मुर्गियाँ उल्टा लटकाये लिये जा रहा था। बीच सडक पर एक बच्चा बडा सा कुम्हडा सिर पर रखे जा रहा था। बहुत छोटा-सा हाफ पैंट, महीन-सी जालीदार गजी तथा मोजा कट्स जूता पहने एक आदमी खाली हाथ चला जा रहा था। जितनी बार वह नदी नाला पार कर रहा है -उतनी बार जूता-मोजा खोल रहा था और पार होने के बाद पहन रहा था। इस तरफ नवडा नदी के पूरब की तरफ वा के बागान मजदूर क्रांति हाट मे बहुत ज्यादा नही जाते। क्राति हाट के पश्चिम मे तो सिर्फ चाय की बागाने ही ह। हाट मे उनकी भी थोडी भीड होती है। हो सकता है वह आज कही गया हो और वही से लौट रहा हो। या हाट मे किसी से भेट करनी होगी। उसके काले, घुँघराले बालो मे तेल था। महीन नाइलान की गजी की जाली से उसके बदन का रग साफ झलक रहा है। उसकी चाल मे कप्तान का-सा मिजाज था। पिजडे म हसो का झुण्ड। बांस की पतली-सी लबी छडी के एक तरफ एक लौकी और दूसरी तरफ एक बडा सा बोरा छोटा करके बधा हुआ था एक के सिर पर लगभग दस सेर पाट, प्रिटेड हाफ शर्ट, चेक वाली लुगी, रबड का पपशू, कधे पर गमछा, गर्दन, पीठ तथा कमर मे झूलता हुआ मास। देखने से लगता था जोतदार है। हो सकता ह व्यापारी भी हो। शायद अपने आदमी के साथ बल गाडी मे वेचने का सामान पहले से ही भेज दिया हो। यह भी सभव है कि उसे कुछ वेचना न हो। खरीदने जा रहा हो। या फिर ऐसा भी हो सकता है कि हाट वैसे ही जा रहा हो, दाम-भाव जानने के लिए कोइ खास काम न हो। फतही पहने एक बच्ची सिर पर केले के

थब स बनी टोकरी मे मछली लिये जा रही थी सारा दिन पोखर मे मछली पकड़ने के बाद अब बेचने जा रही थी। एक मँझोले आकार क सांड का बच्चा बड़ी देर से धीरे धीरे आ रहा था। उसके गले मे एक नयी रस्सी भी थी। इसका मतलब यह भी हाट ही जा रहा था। पर गाय का हाट तो सुबह से ही लगता था। जा बेचते हे ओर जो खरीदते है वे सारा दिन घूम-घूमकर देखते हे, मोल-भाव करते है ओर इसका भी ध्यान रखते हैं कि कोई उनकी पसन्द खरीद न ले। आखिर मे चोरी की गायें आती है, कीमत भी सस्ती। अधिकतर को तो पूरे हाट तक भी नहीं जाना पड़ता। रास्ते में ही उनकी ख़रीद-बिक्री हो जाती है। इस लिहाज से क्रांति हाट चुराकर लायी गयी गायों को बेचने की बहुत अच्छी जगह हो सकती थी। पूरब म हाईवे से दस मील भीतर, बीच में एक नदी का घाट, चार गंदे पानी क बड़े से नाले, पश्चिम में विशाल आपलचाद फॉरेस्ट ओर चाय-बागान तथा पहाड़ी चढ़ाइ क बाद वह बागराकोर्ट कोयला की खान और शेवक ब्रिज तक—किसी भी तरफ स बाहर पार कर मोयना मिट्टी से होकर सडक पर आ जाना ही काफी होता। पर इसके बाद चार-चार बड़े-बड़े नाले—एक नदी का घाट, इन्हे केसे पार किया जाये "चाव गये छब्बे बनने, होकर आये दूबे।" इसीलिए मीमा स चोरी का माल नहीं आता। इधर-उधर स एक-दो चुराई गाये फॉरेस्ट में बाँध कर चले जाते हे और मौका सुविधा देखकर हाट जाने वाले रास्ते मे ही बेच देते है।

अभी इस रास्ते मे हाट उठने के आखिरी समय मे एसे ही यात्री चल रहे थे -

सुबह का हाट दुकानदारो का
दूसरा खेप हाट दिवालियो का
आखिर मे घरवइयो का

हाट लगते ही व्यापारिया की बड़ी-बड़ी खरीदारी ओर बिक्री हो जाती है और उसी समय हाट में उस दिन के लिए चीजो की कीमत तय हो जाती है। पाट, तम्बाकू कितने में बेचना है। आजकल धान-चावल की खरीद-बिक्री बहुत ज्यादा नहीं होती—ओर उनकी कीमत भी हाट मे चढ़ती-उतरती नहीं है। बड़ी खरीद-बिक्री हो जाने पर बैलगाडी में सामान धीरे-धीरे सारा दिन जाता रहता है, ओर फिर आजकल तो उस समय ट्रक भी मिल जाते है।

आधा दिन निकल जाने के बाद जोतदार और साहूकार आते हे। वे गृहस्थी के लिए भी चीजे खरीदते है ओर खेती के लिए भी सामान लेते हैं और फिर घर-गृहस्थी और कृषि के वे सामान बेच भी देते हैं। एक बार फिर हाट उठने के समय आते है ओर घर-गृहस्थी के काम आने वाली चीजे बेचते हैं—जेसे एक कुम्हड़ा, चार अंडे, एक खस्सी—यही सब।

इस समय इस रास्ते में हाट का अंतिम दौर चल रहा था। यहाँ चलते-चलते क़तार बन गयी थी। क़तार के बन जाने से ही आकाश की ओर मुंह किये 'कृत्रिम

गो-प्रजनन केन्द्र' और पीठ पर झूलता हुआ 'बंदोबस्ती कैंप' एक लाइन का द्योतक बन गया था। जैसे पूरी की पूरी कतार गो-प्रजनन की कृत्रिम व्यवस्था के भीतर से गुजरेगी या फिर सेटलमेंट के बंदोबस्ती रूप में।

2
नैवड़ा नदी का घाट

झाड़-झंखाड़, वन-जंगल से होते हुए यह पक्की सड़क नदी के किनारे खत्म होती है। नदी का नाम है—नेवड़ा। नाव छूट रही थी। नाव में चढ़ने के लिए घुटने तक पानी को पार करना पड़ता था। सब साइनबोर्ड के पीछे लोग लाइन तोड़कर ढालुई (ढलानवाल) रास्ते में हो-हो करते हुए नाव की तरफ दौड़ पड़े। उस आदमी ने कुछ क्षण के लिए खस्सी को अपने कंधे पर उठा लिया। कंधे पर चढ़ते ही खस्सी ने अपनी पूंछ उठाकर मल त्यागना शुरू किया। जैसे वह इसी इन्तजार में था और वह आदमी भी यह जानता था। कंधे पर खस्सी का चारों पैर इस तरह समेटा हुआ था कि उसका सारा मल बाहर ही गिरे, आदमी के बदन पर नहीं गिरे। अपना मल उस आदमी के बदन पर न गिरता देख खस्सी ने जोरदार आवाज में मिमियाते हुए अपना पूरा शरीर इस कदर झटका ताकि कंधे से छिटक कर उतर जाये। पर वह आदमी अपने कंधे पर खस्सी के चारों पाँव अच्छी तरह पकड़े लपककर नाव में चढ़ गया। साइनबोर्ड लेकर वे दोनों आदमी भी ऐसे दौड़े मानो वे दोनों साइनबोर्ड बेचने जा रहे हों—और जैसे साइनबोर्ड बेचने का यही 'सीजन' था।

बड़ा साइनबोर्ड नाव पर खड़ा करके आ गया और छोटा पीठ पर झुलाकर वह आदमी ऐसे खड़ा था--जैसे पूरी नाव ही 'कृत्रिम गो-प्रजनन केन्द्र' और 'बंदोबस्ती कैंप' है।

नाव तो घाट पहले ही छोड़ चुकी थी। पर लोगों के आवाज देने पर माँझी ने पतवार चलाना रोक दिया। किनारे के कीचड़-पानी को फाँदकर ये लोग किसी तरह नाव पर चढ़ गये। नाव पर बैठे लोगों को लगा कि बैठने का तख्ता तो पहले से भीगा था ही, इन लोगों ने उसे और भी भिगो दिया। सब लोग चढ़ भी नहीं सके थे। पर नाव में बहुत भीड़ देखकर माँझी ने नाव खेकर दूर हटा लिया था। दो-एक बार पतवार चलाने भर में नाव उस पार पहुँच जायेगी--नदी की चौड़ाई इतनी कम है। हो सकता है कहीं-कहीं से पैदल ही नदी पार की जा सके। पर हर जगह पानी का स्तर एक तरह का तो होता नहीं है। और फिर उस तरफ से पानी का तोड़ ज्यादा भी हो सकता है, इसी वजह से लोग नाव से नदी पार करते हैं।

नाव में सभी खड़े थे। उनमें से इस इलाके का सबसे बड़ा जोतदार नौसार आलम भी था। वक़्फ़ एस्टेट का मालिक। हजारों बीघे जमीन का मालिक। जब पहली बार डुआर्स का बंदोबस्त हुआ था तभी से नौसार आलम यहाँ की सब ज़मीन का

मालिक है। 'ख़ास ज़मीन कानून' पास हो जाने के बाद से पिछले पचीस-तीस वर्षों से नोसार आलम और सरकार के बीच केस चल रहा है। सुप्रीम कोर्ट तक बहुत सारे केस गये और उनमें से ज़्यादातर में आलम की जीत हुई और सरकार हार गयी। इसके अलावा बहुत-सी ज़मीन पर दस-बारह-पंद्रह-बीस सालों का इंजंक्शन लिया हुआ है। इंजक्शन का फ़ैसला न होने तक उस सारी ज़मीन की फसल आलम के खलिहान में ही जाती है। सरकार आलम की ज़मीन के घास तक को हाथ नहीं लगा सकी—ऐसी ही सबकी धारणा है। आलम की ज़मीन के कुछ अंश मे अधबटैया पर हल चलाने वाले (अधियाइ) कभी-कभार हिस्सा नही देते हैं या फिर सरकार से ज़मीन पट्टे पर मॉगते हैं। कभी-कभी मिल भी जाती है। पर साधारणतया ऐसा वहुत कम ही होता है। नौसार आलम आदमी नाटा-सा है। सफ़ेद हाफ़-शर्ट और छोटे पांयचे का पायजामा पहनता है। हाथ में छाता। हर कोई सलाम ठोंकता है। नौसार भी उनके सलाम का जवाब देता है। नाम लेकर उन सबका हालचाल पूछता है। इस इलाके के सभी छोटे-बडे हाटों में जाकर नौसार थोड़ी देर के लिए बैठना है। सवसे मुलाकात भी हो जाती हे और ख़ैर-ख़ैरियत का भी पता चल जाता है।

नौसार के पास ही थोड़ी दूरी पर योगानद मंत्री खड़े थे। प्रफुल्ल घोष जब तीन महीने के लिए मुख्यमंत्री बने थे, पहली सयुक्त फ्रट सरकार के बाद, तब योगानद मत्री बने थे; संभवतः महीने-दो-महीने के लिए। तभी से उनका नाम हो गया था—योगानद मंत्री। धोती और खद्दर का कुरता पहने योगानंद हाथ में छाता लिये खड़े थे। नौसार आलम ने योगानंद से पूछा, "जनाव मंत्री जी, साइनबोर्ड में क्या लिखा हे ?" योगानद ने पहले ही देख लिया था। बोले, "ये हरियाणा के बैलों के··"

"ओ !" नौसार समझ गया। इस इलाके में उसी ने पहले-पहल 'कृत्रिम गो-प्रजनन केंद्र' शुरू किया था। फिर जैसे अपने मन ही मन कहा, "हालका कैप जमीन दोहे और जनावर हस्पताल बैल दोहे, तब तो हमारे यहां सोने की फसल होगी।" उसकी बातें किसी-किसी के कान तक पहुँचीं। कोई-कोई मुस्कराया भी। नौसार के दिमाग में दोनों साइनबोर्ड का मजमून खेल गया है नभी उसने ऐसी वात कही। उसकी वातो मे किमी तरह की कड़वाहट नहीं थी। दूर से एक आदमी नोसार को दिखा, फिर उसने दूर से ही सलाम किया। नौमार आलम ने पूछा, "क्या भई, बीवी हस्पताल से लोटी कि नहीं ?" उस आदमी ने सिर हिलाकर जवाब दिया। "बहुत खूब, वहुत खूब !" कहकर नौसार अपने बाजू में खड़े आदमी से कुछ कहने के लिए मुँह घुमा लिया।

नाव के पार भीड़ थी। नौसार के पास किनारे की ओर जो लोग खड़े थे, आहिस्ता से उतरते चले गये, नाव को हिलाये बिना। पीछे जो लोग थे वे भी हडबडाकर नहीं उतर रहे। नौसार आलम धीरे-से नाव से उतर गया। उतरकर नाव की तरफ़ देख कर धन्यवाद देने के भाव से बोला, "बूढ़ा हो गया हूं, अव कूद-फाँद नही होता। आते-जाते, उतरते-चढ़ते देह थक जाती है।" अब तक लोगों ने अपना-अपना सामान

उठा लिया था। सब एक-एक कर उतरने लगे।

योगानद पीछे था, वह धीरे-धीरे उतरता है। हाट में उसे खरीदने या बेचने का काम नही है। कभी-कभार हाट मे आने स लोगो से मुलाकात हो जाती है, बातचीत होती है और गाँव-देश के बारे में पता चलता है। और यह सव तो घाट और नाव मे भी हो सकता है, उतरकर भी सभव है।

इस समय योगानंद को एक-दूसरा डर भी था—वह यह कि नौसार आलम अगर उसके साथ चलने लगे तो वह कुछ कर भी नही पायेगा। हाट के सब लोग देखेंगे कि योगानद अव नौसार आलम के साथ हाट मे आता है—यह वह नहीं चाहता। इसीलिए उसने नोसार आलम को आगे वढ जाने का समय दिया।

पर किनारे पर उतरकर उसने देखा कि नोसार आलम रिक्शे पर बैठकर उसी की ओर देख रहा है। नजर फेर लेने का भी कोई उपाय नही। पास जाते ही नौसार ने कहा, "जनाव मंत्री जी, और दूसरा रिक्शा तो नहीं है यहाँ, आप क्या मेरे पास तशरीफ रखेंगे या फिर इधर कोई काम है ?"

तो क्या नोसा आलम भी उसके साथ नहीं जाना चाहता ? "नहीं, आप जाइए। हमको यहाँ थोड़ी देरी होगी। खालपाडा से एक आदमी आने वाला है।"

"वहुत अच्छा।" नासर के इतना कहत ही रिक्शे वाला रिक्शा चलाने लगा। वहाँ और दूसरा रिक्शा होता तो जैसे वह रुकता नही। लेकिन क्या इसी वजह से योगानद की खुशामद कर अपने रिक्शे मे नही बिठायेगा। उसके साथ रिक्शे में जाने से मत्री साहब को जो परेशानी होती—यह भी नोसार समझता है। पर वह अगर बुलाये तो योगानद ना नही कर सकता, इसीलिए उसने जान-बूझकर अपना प्रस्ताव हल्के से छोड दिया—मन हो तो योगानद नही भी आ सकता है। पर एकमात्र रिक्शा देखकर भी नौसार आलम जा नही सकता। रुकना तो पड़ता ही है तीन महीने की सरकार मे एक-दो महीने के मत्री के लिए। इस घाट से हाट की दूरी पैदल जाने लायक है। पर इस पार के लोगो की गतिशील भीड़ कहीं ठहरती नहीं। इस तरफ़ के विभिन्न कस्बे और गाँव के लोग हाट की ओर जा रहे हैं। मैदान और घाट से भी लोगों को जाते देखा है। कितने ही रास्ते. कितने ही घाट—मैदान से हर तरफ़ से सब लोगों को जल्दी-जल्दी पहुँचने की धुन है—अपने-अपने तरह से। 'गो-प्रजनन' और 'हालका कैंप' भी जाने कब सड़क की भीड में से होते हुए हाट की ओर चल पड़े हैं।

3

सत्यमेव जयते

पीठ पर 'बंदोबस्ती कैंप' का साइनबोर्ड झुलाकर प्रियनाथ ने थोड़ा-सा आगे बढ़कर देखा कि उन लोगो की जीप आ रही है या नहीं ? नहीं आ रही है। शाम से पहले आ

भी नहीं सकती। इसलिए साइनबोर्ड सहित अपना झोला पास ही उतारकर चाय-मिठाई की दुकान के पास लगे बेच पर बेठ गया। उसके पास ही चीना साइज़ के चूल्हे पर आदमी को भी तल देने लायक दो कडाहियो में निमकी तल कर पास ही रखी टोकरी में रखा जा रहा था। टोकरी का आकार इतना बडा था कि उसे उलटकर हाथ-पेर समेटकर भीतर घुसकर रहा भी जा सकता था। टोकरी एक साइज माफिक गमले पर रखी हुई थी—जिससे टोकरी से तेल छन कर उसम इकट्ठा होता जाये, निमकी तलने की सोंधी गध उसकी नाक में लग रही थी। उसके पीछे इस चूल्हे के सामने एक लंबे टेबिल पर एक चौदह साल का लड़का खुले बदन चाय बना रहा था। प्रियनाथ ने उससे कहा, "भाई, दो निमकी और एक चाय।"

कल से प्रियनाथ चाय-निमकी अपने पेसे से नही खायेगा। कल से क्यो, आज ही से। प्रचार करने के बाद ही मे उसे अपनी अंटी से पेसा खर्च कर चाय-मिठाई-निमकी नहीं खाना पड़ेगा। हो सकता है यही दुकानदार उसे बुला-बुलाकर खिलाये। आजकल घोष लोग ही ज़मीन ज़्यादा खरीदते है। अभी अगर वह साइनबोर्ड ही दुकानदार को दिखा दे तो यह निमकी-चाय भी मुफ्त में मिल सकती है। पर वह ऐसा क्यो करे वह एक सरकारी आदमी है। सेटलमेंट का पियोन है। दो-तीन दुकानदार उसकी खुशामद करें, दो-तीन आदमी उसके आगे-पीछे घूमे तब कही वह किसी एक के पास चाय भी पी सकता है।

कल से यहाँ 'बंदोबस्ती कैंप' लगेगा। यह खबर यहाँ सब जानते हैं। फार्म 'ए' का इश्तिहार पहले ही बाँटा जा चुका है। 56 धारा की नोटिस भी जारी की जा चुकी है—"अपने-अपने ज़मीन का कर बाक़ी-बकाया है तो सभी दस्तावेज सहित निर्दिष्ट ताल्लुके के दफ़्तर में हाजिर होकर " खानापुरी बुझारत (जमीदार के वार्षिक आय-व्यय का लेखा) को नोटिस भी दे दी गयी है। आज हाट में प्रचार कर देना है इसीलिए प्रियनाथ पहले ही चला आया है। साहेब ने उससे कहा था कि हम लोगों के साथ जीप में ही चले चलिए, हमलोग भी थोडा पहले निकल जायेंगे। पर साहेब की जीप में आने से प्रियनाथ को बस में आने का टी.ए. नही मिलता। साइनबोर्ड वह साथ ले आया है इसके लिए उसे एक रुपया रिक्शे का किराया भी मिलेगा। वह भी नही मिलना। और हाट में प्रचार करने की बावत तीन रुपया—सब मिलाकर पाँच रुपये का नुक़सान हो जाता। इसीलिए वह जिस रास्ते से बस से उतरकर पैदल ही चला आया, साहेब लोग उसी रास्ते मे सीधे जाकर बायें मुड़कर माल-बोदलाबाड़ी होकर फिर मे बायें मुड़कर लगभग बीस मील का चक्कर लगाकर यहां आयेंगे।

निमकी के तेल से उसकी अंगुलियाँ चिपचिपा गयीं। प्रियनाथ ने अंगुली सिर पर रगड़ ली। फिर दोनों हाथ घिसने लगा। वह बिल्कुल रास्ते के पास बैठा था—जो लोग सिर्फ़ चाय पीकर खिसक जाते हैं या फिर बहुत हुआ तो निमकी खा लेते हैं, वही यहाँ बैठते हैं या खड़े होते हैं। इसके बाद बीच वाले बेंच पर जो लोग बेठते हैं वे चाय पीते

हं, निमकी खाते हैं, जलेबी भी खाते हैं। उन लोगों के सामने ही खुली चौकी पर जलेबी का ढ़ेर है और उसी के पास बड़े-बड़े कनस्तर में चनाचूर। और जो लोग बड़ी बड़ी मिठाई खा रहे हैं या खिला रहे हैं- वे सब लोग दुकान के एकदम भीतर, कतारों में लगे चेयर-टेबिल में बैठे हैं, जो जितना भीतर जा सकता है वहाँ से। भीतर के उन्हीं सब टेबिलों में हाट की असली खरीद-बिक्री तय होनी है। सिर्फ़ हाट की खरीद-बिक्री ही नहीं, अगले साल कौन-सी जमीन कौन बेचेगा, कौन खरीदेगा—इन सबके बारे में भी बातचीत यहीं से शुरू होती है। कल से कैंप लग रहा है। कल ही से तो लोग प्रियनाथ को लेकर इस दुकान के भीतर जाना चाहेंगे। उनका बस चले तो उधर की दीवार तोड़कर और भी भीतर ले जाना चाहेंगे। कल से ? अपना झोला और साइनबोर्ड उठाकर दुकान की तरफ और एकबार देखकर उसने सोचा—प्रचार कर देने ही तो शुरू हो जायेगा, "दादा, दादा।" नहीं, आज नहीं, आज प्रचार करने के बाद यहाँ आकर, यहीं बैठकर सबके सामने वह फिर से दो निमकी और एक कप चाय पीकर उठेगा। हाट के लोग देखें सेटलमेंट का पियोन अपने पैसे से चाय-निमकी खाता है। खा सकता है।

इस बार प्रियनाथ ने झोला कंधे पर और साइनबोर्ड हाथ में लटका ली। फिर रास्ते के एक कोने से दूसरे कोने तक जाते हुए उसने सड़क से एक का डंडा उठा लिया।

इस तरफ शेडवाली दुकानें थीं। किसी-किसी का शेड भामनी (यानी बाँस पीट-पीटकर चपटा बनाकर उसे छत या शेड के लिए व्यवहार में लाया जाता है) का था। एक का शेड टीन का था और ज्यादातर प्लास्टिक की चादर का। इसी में दुकान का सामान भी बाँधकर ले आते थे और इसी को छत पर डाल देते थे। इनकी ज्यादातर दुकानें कपड़े और गंजी की थीं—प्लास्टिक के पैकेट में और कागज़ के बक्से में भी। इसके ठीक पीछे खुला बाजार था। उसी खुले बाज़ार के बीच में खड़े होकर प्रियनाथ ने डंडे से साइनबोर्ड पीटना शुरू कर दिया। एक अजीब तरह की आवाज निकल रही थीं। प्रियनाथ ने फिर पीटा। फटे टीन की-सी आवाज आ रही थी। पर इस बार सामने और पीछे के दुकानदारों ने आँख उठाकर देखा। कल से क्रांति हाट के हाटखोला में सेटलमेंट का हालका कैंप लगेगा। दस्तावेज़ों के साथ सब अपने-अपने ताल्लुके दफ़्तर में ठीक समय पर "हाऽजिऽरऽहो" "हाऽजिऽरऽहो" को प्रियनाथ ने लंबा खींचा। फिर आगे बढ़ गया। दो क़दम बढ़ने के बाद उसे याद आया 'ऑपरेशन वर्गा' के बारे में तो उसने कुछ कहा ही नहीं। ठीक है बाद में कहेगा। पर याद ही नहीं आता उसे। हालका यानी जोतदार का मामला। कौन उसकी जमीन पर बटाई करेगा इसकी लिस्ट सेटलमेंट में क्यों। प्रियनाथ ने जलपाईगुड़ी से सात मील दक्षिण मे पाँच बीघा ज़मीन बारह साल के लिए अधबटैया पर दे छोड़ा है। घर के लिए छह महीने का धान वहीं से आता है। अब उसकी जमीन पर हल चलाने वाला भी क्या रिकार्ड में अपना नाम दाख़िल करायेगा !

कटपीस की दुकानो की कतार से होकर प्रियनाथ सीधे पश्चिम की ओर बढ़ने लगा था। बीच मे थोडी जगह छोडकर दाहिने-बाये मसाले की दुकाने थी। उधर से एक ठिगना-सा आदमी घोडे पर सवार होकर चला आ रहा था। घोडे पर बैठकर भी उसका सिर हाट के दुकान की छत को छूता नही था। लगता था फॉरिस्ट के भीतर या फिर बहुत दूर कही रहता होगा। घोडे की सवारी के सिवाय यातायात का कोई चारा नही। प्रियनाथ ने वहाँ से हटकर घोडे को जाने का रास्ता दे दिया। पर रास्ता छोडने के बाद ही बगल से घोडे को निकलते देख प्रियनाथ के आत्मसम्मान को धक्का लगा। उसे लगा, घोडे को उसके लिए रास्ता छोडना उचित था। वरना इसके बाद तो प्रियनाथ को गाय-बैल के लिए भी रास्ता छोडना पडेगा। इसलिए घोडे को अपनी पहुच के बाहर जाने से पहले ही प्रियनाथ ने आगे बढकर अपने 'बदोबस्ती केप' से घोडे के पीछे मारा। उसके मारने से घोडा कमर के पीछे तक थोडा टलमलाया ओर घुटने से मुडकर हडबडाकर ऐसे गिरा, जैसे बैशाख महीने के तूफान मे हाट की छत गिर पडी हो। उसे डर लगा कही घोडा उसी पर आकर न गिर जाये इसलिए प्रियनाथ कूदकर एक ओर हो गया। पर घोडा उसके पास से छिटककर बायी ओर की दुकान के सामने जाकर रुक गया। 'धत्' कहकर प्रियनाथ ने फिर से रास्ते मे आते-जाते देखा घोडे का सवार डडे की एक छोर पर बँधी थेली को बढा रहा था। "घोडे से उतरे बिना हाट हो रहा है।"

मसाले की दुकानो के पास ही खडा होकर प्रियनाथ डडे से साइनबोर्ड फिर से पीटने लगा। आवाज इतनी भद्दी निकल रही थी कि प्रियनाथ को साईनबोर्ड के टीन की जॉच-पडताल करनी पडी। उसने ऐसे देखा जैसे अपने कीर्ति स्तभ को देख रहा हो। हाट मे हल्के साइनबोर्ड को पीट-पीटकर उसके प्रचार करने से टीन फट गया था। कही टीन और भी न फट जाये इस डर से प्रियनाथ डडे को उस पर और जोर से नही मार रहा था। एक बार दाहिने-बाये देखा, और टीन पर हल्के से डडा मारा। फिर मुँह के पास हाथ रखकर जोर-जोर से बोलने लगा, "कल से क्राति हाट मे मेटलमेट का हालका केप लगेगा। आप लोग वहाँ बडी सख्या मे पहुँचे।"

प्रियनाथ की आवाज सुनकर पान वाले और तम्बाकू वाले दुकानदार अचानक मुँह उठाकर उसकी ओर देखने लगे। हाट मे तरह तरह के लोग आते है। पुरानी हाट मे भिखारी और पागल की भी पहचान हो जाती है। दुकानदार उसे भी कही पागल या भिखारी न समझ लें, इसीलिए प्रियनाथ ने साइनबोर्ड पर लिखे मजमून को आगे कर दिया। कधे पर झोला और सामने साइनबोर्ड—लोगो को इससे और भी शक होने की गुजाइश हो सकती है। इसलिए प्रियनाथ को निश्चिंत होने के लिए साइनबोर्ड फिर से देखना पडा। नहीं, सरकारी निशान बना है, 'सत्यमेव जयते', मिट भी जाये तो कुछ-कुछ दिखना ही रहेगा। 'सत्यमेव जयते' लेकर कोई पागलपन नहीं करता।

4
ढोल के बदले माइक

प्रियनाथ अब ढोल पीट-पीटकर प्रचार करना बंद करके, दफ़्तर साफ़-सुथरा है या नहीं बिना देखे साइनबोर्ड लटका देना चाहता है। अपने नये अफसर से वह पूरी तरह परिचित भी नहीं हुआ है। बिल्कुल नया-नया आया है और सरकार ने उसे विशेष रूप से 'ऑपरेशन वर्गा' के लिए भेजा है, पर सी. पी. एम. नहीं, नक्सल है। सुनते हैं पहले नक्सल था। फिर अफसर हुआ। जोतदार को देखते ही गरम हो जाता है। जोतदार अपने खेत ज़मीन का रिकॉर्ड कराना चाहे तो कहता है, हाथ देखूं। और हाथ का गोखरू गिनता है। खुद यहां के कैंप में ही रहेगा। कितने ही लोगों ने अपने घर पर ठहरने का आमंत्रण दिया है, चाय बगान के मालिकों ने बागान के बंगलों में रहने का अनुरोध किया है। यहां की यही रीत है। पर साहेब किसी की नहीं सुनता। यहां आते ही अगर सुन ले कि प्रचार नहीं हुआ है तो वह पकड़ा जायेगा—किसी भी हाट में प्रचार करने के लिए प्रियनाथ ने आदमी नहीं रखा। अब कोई इंतज़ाम तो करना ही पड़ेगा।

और देर करना ठीक नहीं होगा। प्रियनाथ ने अंदाज़ा लगाने की कोशिश की कि मोदी और लोहे की चीज़ों की दुकानें किस ओर हो सकती हैं। मिठाई की दुकान के पास ही एक बड़ी-सी दुकान के बाहर शायद उसने टीन का बंडल देखा था। वहीं से टीन का एक टुकड़ा मांगकर हाट भर में टीन पीटकर प्रचार करके जल्दी से लौट सकता है। प्रियनाथ बाहर उस दुकान में जाने के लिए पीछे मुड़ा।

पर हाट से निकलते ही उसने बायीं ओर एक ऊंचे टीले पर मदेशिया जाति के लोगों का एक दल देखा—एक आदमी ढोल बजा रहा है और लड़कियों का एक दल एक-दूसरे की कमर में हाथ डालकर नाच रही है। वहीं खड़े-खड़े प्रियनाथ ने सोचा कि यह साइनबोर्ड दिखाकर उस आदमी से ढोल मांगा जा सकता है या नहीं। फिर तो उसे ढोल पीटकर प्रचार करने के लिए भी कहना पड़ेगा। इसका मतलब पैसा भी देना पड़ेगा। पर अगर कहे कि वह सेटलमेंट का पियोन है—तुम अपना ढोल दो, प्रचार खत्म होने पर लौटा दूंगा। ये लोग ज़रूर चाय-बागान में काम करते हैं। इसलिए सेटलमेंट के पियोन को बहुत ज्यादा अहमियत नहीं भी दे सकते हैं। पर इससे भी बड़ी बात यह है, उसे समझाना पड़ेगा--"तुम अपना ढोल दो, हम प्रचार करेंगे।" ढोल बजाने वाला नहीं चाहिए, सिर्फ ढोल चाहिए—ऐसी मुश्किल बात समझाने के लिए उसे बहुत हिंदी बोलनी पड़ेगी। और ये मदेशिया लड़कियां बात-बात में एक साथ हीं-हीं करके हंस पड़ती हैं। इसलिए प्रियनाथ अब मोदी की दुकान की खोज में ही निकल पड़ा।

इस समय तक रास्ते में हाट पूरी तरह लग चुका था। फिर उसने झांककर इधर-उधर देख लिया कि उनकी जीप पहुंची है या नहीं। फिर वह मारवाड़ी की दुकान

की तरफ बढ़ गया। वहाँ जाकर उसने पाया, उसका अंदाज़ा गलत था। बाहर वहाँ किरासन तेल का बैरल था। दुकान किरासन तेल के डीलर शर्मा की थी।

"अच्छा, इधर मोदी की दुकान किस तरफ़ है ?"

"इस रास्ते से मुड़कर दाहिनी तरफ़ में।"

प्रियनाथ थोड़ी दूर चलकर दाहिनी ओर मुड़ा। मोदी की दुकान उसे दिख गयी। वहाँ टीन का ढेर था। प्रियनाथ अब आश्वस्त हुआ।

"दादा, एक टीन मिलेगा ?"

"कैसा टीन, डालडा या बिस्कुट का ?"

"कोई भी।"

"फुल साइज सात रुपया, हाफ साइज चार रुपया।"

"ऐं ! नहीं, मैं काम करके उसे लौटा दूगा।"

"लौटा देंगे ? पर करेंगे क्या ?"

"कल से यहाँ हालका कैंप लगेगा..."

"कैसा कैंप ?"

"सेटलमेंट का..."

बात ख़त्म होने से पहले ही दुकानदार ने कह दिया, "वह सब हम लोगों को ज़रूरत नहीं, नहीं मिलेगा।" प्रियनाथ चौंक गया। वहाँ से हट गया। ऐसी दुकान यहाँ चल रही है। इस आदमी ने हाट में ज़मीन भी नहीं ख़रीदी ? या फिर यह दुकान का मालिक नहीं, कर्मचारी है। प्रियनाथ का एकबार मन हुआ कि वह पूछे, दुकान का मालिक कौन है। उसने पीछे मुड़कर देखा। पर साहस नहीं हुआ पूछने का। थोड़ी देर वहीं खड़े होकर उसने मन ही मन तय किया कि वह साहेब से कह देगा कि प्रचार हो चुका है। साहेब को इसके बाद भी अगर शक हुआ तो देखा जायेगा। अब चलकर साइनबोर्ड लटकाकर दफ़्तर ठीक-ठाक कर लेना उचित है।

इस हाट कमेटी में किसी को-आपरेटिव के तीन कमरे थे--जिसमें से दो कमरे कैंप के लिए मिले थे। प्रियनाथ वही ढूंढ़ने चला। जाते-जाते उसे लगा कि वह बिला वजह डर रहा था। साहेब को और क्या कोई काम नही कि आते ही लोगों से पूछताछ करेंगे कि यहाँ प्रचार हुआ है या नहीं। और फिर वह दो-एक जगह साइनबोर्ड पीट कर प्रचार कर ही चुका है। मिठाई की दुकान में ही पूछना ठीक होगा कि हाट कमेटी का घर कहाँ है। सोचकर दुकान में घुसा था कि तभी उसे माइक में धीमी और गंभीर आवाज़ में सुनाई पड़ा, "भाग्य का पहिया हमेशा ही घूमता रहता है। आज जो राजा है, कल वह फ़कीर भी हो सकता है। हम सब भाग्य के हाथों की कठपुतलियाँ हैं। पर भाग्य हमेशा ख़राब नहीं होता। अच्छा भी होता है। पुरुष का भाग्य देवता भी नहीं जानते। नारी भाग्य तो देवताओं के लिए भी दुर्बोध है—पर अगर कर्म न करें तो फल कैसे मिलेगा। कर्म तो आपको करना ही पड़ेगा। पाँच नहीं, दस नहीं, मात्र

एक रुपये में—लाटरी का टिकट ख़रीदिए। हर हफ्ते एक ड्रा। कौन जानता है, हो सकता है इस बार आप ही के टिकट में फर्स्ट प्राइज एक लाख निकल जाये। एक रुपया देकर एक लाख। पर एक रुपया देकर एक टिकट तो आपको लेना ही पड़ेगा। दूसरे के टिकट पर आपको तो प्राइज़ नहीं मिलेगा न ! आइए, एक रुपये में एक टिकट ख़रीदिए।''

दुकानदार ने बता दिया, हाट के एकदम पीछे हाट कमेटी का शेड है। उधर जाने से पहले प्रियनाथ लॉटरी का टिकट बेचने वाले रिक्शे की तरफ गया। उसे देखकर लॉटरी वाले लड़के ने माइक में ही कहा, ''आइए, दादा, कितना ?''

''नहीं ! आप जरा सुनिए, दादा। टिकट नहीं चाहिए। एक दूसरी बात है।''

''क्या बात है, दादा कहिए ! बात भी कहिए और एक टिकट भी लीजिए। मात्र एक रुपया…''

वह लड़का सारा कुछ माइक मे ही कहे जा रहा था। पर प्रियनाथ की आवाज़ माइक तक नहीं पहुँच पा रही थी। इसलिए प्रियनाथ थोड़ा झिझक रहा था। उसने जल्दी से कहा, ''सुनिए, कल यहाँ 'बंदोबस्ती हालका कैंप' लगने वाला है।''

''कैसा कैंप ?''

''बंदोबस्ती कैंप, सेटलमैट का। यहाँ के जमीन की मपाई होगी। कौन-सी ज़मीन किसकी है—यही सब। और फिर किम ज़मीन पर कौन खेती कर रहा है—यही सब रिकार्ड में दर्ज किया जायेगा। यही बात अगर आप माइक में कह दें तो सब लोगों को ख़बर हो जायेगी।''

''यानी, कोई कल्चरल फंक्शन होगा ?''

''क्या ? फक्शन ?''

''हाँ ! यानी कोई आर्टिस्ट आयेगा ?''

''अरे नहीं नहीं। यह तो सरकारी मामला है। क़ानूनी बात है। फंक्शन-वंक्शन नहीं।''

''फिर सबको बताने की बात क्यों कह रहे हो ?''

''बताया न, ज़मीन की मपाई होगी। रिकार्ड में दर्ज होगा। ऑपरेशन बर्गा।''

''यह सब तो पार्टी-वार्टी का मामला है सर। हम लोग किसी पार्टी के नहीं हैं।'' दादा, एक टिकट का दाम मात्र एक रुपया है। पर इसके बदले आपको एक लाख रुपया मिलेगा।'' लड़का अपने उसी सुर में घोषणा करता गया। फिर थोड़ी देर रुककर प्रियनाथ की ओर देखकर बोला, ''फंक्शन : सही, लोग तो आयेंगे न ?''

''सो तो आयेंगे। सबको मालूम हो जाये इसीलिये तो आपसे एनाउंस कर देने को कह रहा हूँ।''

''वह तो कर दूँगा। पर मुझे भी चांस मिलना चाहिये। टिकट बेचूँगा।''

''ज़रूर-ज़रूर, आप लोग कल सुबह से ही आ जाइएगा।''

"फिर बताइए, कैसा कैंप ?"

"बंदोबस्ती कैंप।"

"बंदोबस्ती ? यह भी क्या नाम है ! कोई इंग्लिश नाम देते।"

"किसका ?"

"इस फंक्शन का।"

"अरे बाबा, हम लोग कैसे दे सकते हैं। यह तो गवरमेंट का नाम है। हमेशा ही से हालका कैंप ही कहलाता है।"

"ओ अच्छा, मैं समझा यह नया-नया है। गवरमेंट का तो आये दिन कितना कुछ नया-नया होता है। अच्छा तो बताइए क्या कहना होगा। भाइयों और बहनों, तकदीर एक चीज है और तकदीर का खेल एक और चीज।" लड़का अब फिर से लॉटरी का टिकट बेचने में जुट गया। प्रियनाथ थोड़ा इंतजार करने लगा है। जब वह रुका तो प्रियनाथ बोला "कहना पड़ेगा कल से यहाँ क्रांति हाट में सेटलमेंट का बंदोबस्ती कैंप लगेगा। अधबटैया का रिकॉर्ड भी बनेगा, आप सब लोग अपने-अपने दस्तावेज सहित हाजिर हों।"

"धत् तेरे की ! यह सब तो पुलिस का मामला-सा लगता है। सब लोग समझेंगे कि हम लोग सरकारी नौकर हैं। कोई टिकट लेने इधर फटकेगा भी नहीं।"

"नहीं बाबा, ऐसा नहीं है कि इसी तरह कहना पडेगा। इसी बात को थोडा घुमा-फिरा कर कहने पर भी चलेगा। लीजिए, यह देखिए।" उसके हाथ में नोटिस या इश्तिहार जैसा कुछ था—उसने वही बढ़ा दिया। लडका उसे पढने के बाद कागज़ पलटकर खाली पेज देखने लगा। फिर छपी हुई नोटिस/इश्तिहार देखने लगा। इसके बाद कागज़ फिर पलटा। "यह क्या दादा, यह तो मैं क्या मेरा बाप भी नहीं समझ सकता।" प्रियनाथ हडबड़ा कर बोला, "यही सब मिला-जुलाकर बोल दीजिए दादा, आपका बड़ा उपकार होगा…" लड़का कुछ सोचने लगा। फिर बोला, "अच्छा, सुनिए, मैं कहता हूँ। देखिए इससे काम चलेगा या नहीं।" फिर वह अपने उसी सुर-ताल के साथ कहना शुरू किया, "जीवन में कितना कुछ घटता रहता है। वह सब हमारे लिये नया ही होता है। अभी-अभी हमारे एक भाई साहब ने एक नया चीज़ सिखाया, बंदोबस्ती, बंदोबस्ती कैंप। कल सुबह से शायद इस क्रांति हाट में यह हालका कैंप लगेगा। आप लोग इस कैंप में ज़रूर पधारें। घूमें, देखें। इससे पहले हम लोगों ने यह 'बंदोबस्ती' शब्द नहीं सुना। उसी तरह कल ड्रा खेला जायेगा और आपके घर जब टेलीग्राफ़ का पियोन कहेगा कि आपको पश्चिम बंगाल लॉटरी का फर्स्ट प्राइज मिला है—तब आप भी कहेंगे कि लॉटरी किसकी निकली है यह तो पहली बार सुना। इसीलिए मैंने कहा, जीवन में हरदम नया कुछ-न-कुछ घटता रहता है। कल लगने वाला बंदोबस्ती कैंप भी नया है। इसी तरह आपका फर्स्ट प्राइज भी नया हैं। सिर्फ एक, एक टिकट तो आपको लेना ही पड़ेगा, क्यों दादा, चलेगा इस तरह ?"

"हॉं, हॉं, आपने तो बहुत अच्छा कहा। पर मुश्किल यह है कि हालका नया नहीं है, यह तो "

"ठीक है, ठीक है। वह मै मेनेज कर दूँगा।"

"और यह 'शायद' मत कहिएगा।"

"शायद ? मतलब ? शायद नही कहूँगा।" अब लगने लगा माइक में कोई नाटक चल रहा है या फिर झगड़ा सा भी लग सकता है। दो-एक आदमी मुड़कर देखने लगे। एक आदमी तो आगे बढ भी आया। "आइए दादा, मात्र एक रुपये में एक लाख।" पर वह आदमी टिकट न लेकर चुपचाप वहाँ खड़ा हो गया। प्रियनाथ ने देखा, लड़का अब उसकी तरफ देख ही नहीं रहा था। "आइए, पश्चिम बगाल लॉटरी" बीच में ही प्रियनाथ टपककर बोला। "अभी आपने कहा, शायद हालका कैंप लगेगा, कहना पडेगा हालका कैप लगेगा ही।" लडके ने कोई जवाब नहीं दिया। प्रियनाथ को आशंका हुई कि लडका अब कह देगा कि वह माइक में कुछ भी नहीं कह सकता। इसीलिए वह "ठीक है।" कहकर जल्दी से वहाँ से जाने लगा। तभी पीछे से लडके ने कहा, "मैं माइक में बोल दे रहा हूं पर कल जब हमारा रिक्शा आप लोगों के कैंप में जाये तो पुलिस कोई झमेला नही करे।"

"अरे, नही-नही। आप लोग मेरे पास आइएगा। मै तो वहाँ रहूँगा।" प्रियनाथ इतना कहकर हाट कमेटी के दफ्तर की ओर जाने लगा। अपने पीछे माइक से उसे सुनाई पडा, "जिन्दगी कमल के पत्ते पर पानी के बूंद-सी है। पर जो होनी है वह तो"

"कैप यानी कल यहाँ तो कुछ भी नहीं होगा।"

थोडी दूर जाकर प्रियनाथ खड़ा हो गया। यह देखने के लिए कि लड़का माइक मे सचमुच बोलता है या नही। न भी बोले तो वह कुछ कर नहीं सकता। बोले भी तो कुछ करने को नहीं। कैप में लोगो की भीड होने पर लॉटरी का रिक्शा भला क्यों न आयेगा। अपने आप आयेगा। इसमे प्रियनाथ भला क्या कर सकता है। पर लडका एक बार भी माइक मे बोलता है या नही—यह देखने के बाद ही वह हाट कमेटी का घर ढूंढेगा।

"कितना दे, दादा ?"

"तू ही बोल न कितना ?"

"तू ही बोल।" माइक मे मदेशिया लड़की की मिमियाती आवाज सुनाई पड रही थी।

"ले-ले, और सुन। तू आँख मूँद ले। अउर फिन इ टिकस पर हाथ लगा दे। जोन पकड़ाइ उ हम ले लवो। ले अब तू अँखिया मूँद ले।" खिलखिलाती हँसी माइक में खनकती है। चाय-बागान के किसी शराबी मज़दूर-मज़दूरिन का यह काम है। "यह देखिये, लॉटरी का टिकट लेने में भी लॉटरी। आँख बन्द कर जितना टिकट हाथ में

आयेगा ये लोग सब खरीदेंगे।" कहकर लड़का थोड़ी देर चुप रहा, फिर बोलने लगा, "आइए, आइए, अब ऑख बन्द कीजिये··· ।" माइक में फिर से हँसी खनकी।

5

प्रियनाथ के साहेब और हाट कमेटी

दूर से प्रियनाथ ने देखा कि हाट कमेटी के मकान के सामने जीप खड़ी है। साहेब लोग आ गये हैं। उसने चलने की गति बढ़ा दी। पर जल्दी-जल्दी क़दम बढाने में उसका चप्पल आड़े आने लगा। इस हवाई चप्पल मे घिसकर बने उसके पैरों के निशान में उसका पैर ऐसे फिट बैठ गया था कि इस तरह चलने से उसकी एड़ी से बाहर निकले चप्पल के सोल का आख़िरी छोर उसके पैरों में फट-फट करने लगता। अब इससे भी तेज़ कदमों से चलने में चप्पल बाधा डालती थी और तब अगुलियों के नीचे के सोल का हिस्सा खिसक कर निकलने लगता, जैसे चप्पल पूरा उलटकर अंगुलियों के सामने चला आयेगा या फिर फीता नीचे से खुल जायेगा। फीता खुल न जाये इसके लिए उसने फीते में सेफ्टीपिन लगा ली थी पर सोल का वह हिस्सा फट कर सेफ्टीपिन खुल भी तो सकती है। इसलिए अगर जल्दी है तो चप्पल खोलकर हाथ में ले लेना ही बेहतर होगा। पर उसके गंतव्य की दूरी इतनी नही कि इतना कुछ करना पड़े। उसने सब कुछ नियमानुसार ही किया। जल्दी काहे की ? पर चप्पल के कारण प्रियनाथ तेज़ क़दम से नहीं चल सकता, फिर भी उसके क़दम तेज़ रफ़्तार से बढ़ रहे थे—इस तरह दुविधा में चलने से उसके कमर तक का हिस्सा सामने की ओर झुक जाता और पैर पीछे ही रह जाता। चप्पल के साथ पैर की रस्साकशी से घुटने पर बार-बार ज़ोर पड़ रहा था। ऐसे में हरेक क़दम के साथ दोनों घुटनों के जोड़ में लचक साफ नजर आ रही थी।

प्रियनाथ के साहेब मैदान में एक चेयर पर बैठे थे। उनके सामने थोड़ी-सी दूरी पर उनकी जीप खड़ी थी। प्रियनाथ पीछे से ही बोला, "सर, आप आ गये ?"

साहेब ने मुड़कर प्रियनाथ को देखकर कहा, "अरे प्रियनाथ बाबू, आपने एकदम से माइक-टाइक का जुगाड़ कहाँ से कर लिया ?"

प्रियनाथ ने गर्वित मुस्कान से कहा—"इसका मतलब सर, आप लोगों को आये ज्यादा देर नहीं हुआ। सर, दफ़्तर के कमरे सब···" कहकर बरामदे की ओर देखा। बरामदे में उसके दफ्तर के लोगों के अलावा और भी दो-एक लोग थे। बरामदे तक जाते-जाते प्रियनाथ ने देखा कि दफ़्तर का कमरा साफ़-सुथरा, धोया-पोछा और सजा-सजाया है। सारा सामान फर्श पर एक तरफ रखा हुआ है।

"अरे प्रियनाथ दा, तुमको भेजा गया पहले कि तुम सब इंतज़ाम करके रखोगे और हम लोग यहाँ आकर देख रहे हैं तुम्हारा कोई पता ही नहीं। आख़िर में सब कुछ

खुद ही करना पड़ा।" अनाथ ने कहा।

"पाँच मिनट पहले ही देख गया था, सर, आप लोग नहीं आये थे। इसी बीच आपलोग आ गये।" अनाथ के कहे का जवाब न देकर प्रियनाथ ने सीधे साहेब से कहा। तीनों कमरे देखकर प्रियनाथ लौट आया, "इधर का तो देख रहा हूँ, पूरा इंतज़ाम हो गया है।"

"तो क्या यह सब तुमने नहीं किया ? हम लोगों ने सोचा तुम्हीं ने सब ठीक-ठाक किया है।" विनोद बाबू ने कहा।

"फिर तो मुझे यहाँ के लिए कल ही चल देना चाहिये था। आज मैं वहाँ से खाना खाकर आप लोगों के आगे वाली बस से चला था मात्र कुछेक घंटा पहले पहुँचा।"

"और ऊपर से आपका यह चप्पल", इस बार ज्योत्स्ना ने पीछे से कहा, "हमलोगों ने सोचा आप न भी आयें आपका चप्पल तो ज़रूर आयेगा।"

"ठहरिए, इस साइनबोर्ड को पहले लगा दूँ।" कहकर प्रियनाथ फिर बरामदे में गया और वहाँ से मैदान में।

"ठीक है उसे रखो। साइनबोर्ड बाद मे भी लगाने से चलेगा। अभी देखो, रात के खाने का क्या इंतज़ाम हो सकता है और कल के लिए भी बाज़ार से सामान सब ले लेना, लौट कर सब ठीक-ठाक किया जायेगा।" विनोद बाबू ने कहा।

"हाँ चलिये, मैं और प्रियनाथ बाबू ज़रा हाट का चक्कर लगा आते हैं।" कहकर साहेब चेयर छोड़कर उठ गये। जो तीन सज्जन अब तक खड़े थे, आगे बढ़कर बोले, "हम लोगों की गुजारिश नहीं मानेंगे ? ई तो सर, हमारे यहां का ही मामला है और हमीं लोग हमेशा से करते आये हैं।"

"नहीं-नहीं, आप लोगों ने जितना किया है वह हमारे लिए काफ़ी है। हम लोग इतने आदमी हैं सब ठीक हो जायेगा। अगर कोइ परेशानी हुई तो आप लोगों से ज़रूर कहूँगा। आज हाट का दिन है। आप लोगों को भी तो काम होगा।"

"नहीं, ऊ सब तो हो गया है। पर बात इ है कि हम लोगों का इ किरान्ती हाट में कोई बाहर की पार्टी, वह सरकारी भी हो सकती है अऊर समझिए कि प्राइवेट पार्टी भी हो सकती है—तो ऐसा का कभी हुआ है कि ऊ लोग खुद ही खाना बनायें। ई तो हम लोगन के बदनामी के बात है।"

सज्जन प्रौढ़ और राजवंशी थे। जब वे कह रहे थे तो सुहास बड़े ध्यान से सुन रहा था, या फिर देख भी रहा था। वे सज्जन 'डल' एक मरियल सा बिस्कुट रंग का कपड़ा पहने हुए थे। सुहास ने ऐसा कपड़ा यहाँ कई लोगों को पहने देखा है। क्या यह यहीं बनता है या फिर सस्ता होता है ? सुहास ने उस सज्जन को बात पूरी कह लेने का मौक़ा दिया ताकि वह उनके कहने का लहजा और भाषा को सुन सके। सुहास देख रहा था कि वे अपनी भाषा, यहाँ की आंचलिक भाषा में खड़ी बोली मिलाकर, कैसे बोल रहे हैं। एक बार सुहास मन ही मन सोचने लगा कि आज रात इनका

आतिथ्य ग्रहण कर कल से अपना कोई इंतजाम कर लेना ठीक रहेगा या नहीं। उससे बिना वजह टेंशन नही होता। ये लोग भी खुश हो जाते और ऑफिस के लोग भी खुश होते--पैसे भी बच जाते। और यह उसकी ओर से कुछ ज़्यादती ही हो रही है। सुहास किसी क़ानूनी कारण से इनका आमंत्रण निमत्रण टाल नहीं रहा है। उसे तो सरकार की ओर से खाने का ख़र्चा मिलता है। वह ख़र्च न लेकर इनके यहां खाया जाये, पर इतना हंगामा वह आख़िर क्यों करे ?

दरअसल डरता है—इनका आतिथ्य स्वीकार कर लेने से किसी तरह का दबाव न दिया जाने लगे। वह अपने खाने का इतजाम करवा कर बाकी लोगो की मर्जी के अनुरूप इंतज़ाम करने के लिए कह सकता है। लेकिन ऐसा भी होने पर ये लोग जिनके-जिनके घर या जिनकी सहायता से खाना खायेगे उनके लिये सुहास से सिफारिश भी कर सकते हैं।

पर उसे उन लोगों से कहना पड़ा, "देखिये, हम लोगो की भी तो सुख्याति–कुख्याति का सवाल है। हमलोगो का काम-धाम चलने दीजिये। हम लोग अभी कुछ दिनों तक यहां हैं ही। सारा काम-धाम निपट जाने पर एक दिन आप लोग हमे अच्छी तरह खिला पिला दीजिएगा। पर जहां तक मेरी बात है। मैं कैंप मे ही खाऊंगा। आप लोग इन लोगों से बात कीजिए। ये लोग जैसा कहें, इनके लिये वैसा इतजाम हो जायेगा। चलिए प्रियनाथ बाबू, हाट देख लिया जाये।" सुहास इतना कहकर पीछे हाट की ओर रवाना हो गया।

पीछे से विनोदबाबू ने कहा, "सर, अनाथ को भी साथ ले जाइए न। अकेले प्रियनाथ..." उसकी बात का जवाब दिये बिना सुहास आगे बढ़ गया।

6

प्रियनाथ के साहेब और हटिया नाच

"यह बहुत बड़ा हाट है, ना ?" सुहास ने पूछा।

"हाँ, सर। इस इलाके का सबसे बड़ा हाट।"

"क्या-क्या बिक्री होता है, मतलब थोक में ?"

"यह तो ठीक-ठीक नहीं कह सकता। पर ऐसा पहाड़-सा सूखी मिर्च और पाट का ढेर है। इसे थोक व्यापारी के सिवाय कौन खरीदेगा ?"

"सूखी मिर्च ? सूखी मिर्च यहां कहाँ तैयार होती है। मतलब, यहा इतनी सूखी मिर्च—कभी सुना तो नहीं ?"

प्रियनाथ को हाट के बारे मे काफी आईडिया हो गया था। उन सब दुकानों का सदर रास्ता और इस हाट कमेटी के मकानों की कतार- यह दोनों शायद पूरब-पश्चिम मे हैं। अब वे लोग उत्तर के मैदान से होकर सड़क पर पहुंचेंगे, वहीं से

हाट मे जायेंगे। मैदान से होकर गुजरते हुए उन लोगों ने समझ लिया कि घास अब दिखाइ नहीं पड़ रही है। अंधेरा हो गया है। और थोड़ा आगे बढ़ने पर मैदान में दो-तीन ढिबरियाँ जलती दिखाई पड़ीं। वहां हंडिया बिक्री होती थी। इसलिए साहेब को लेकर प्रियनाथ और भी उत्तर की ओर बढ़ता चला जा रहा था। उधर से ढोल बजने की आवाज सुनाई पड़ रही थी। नाच अभी हो रहा था। कितनी देर तक वे लोग नाचेंगे ?

"नाच रहे हैं, सर।"

"कौन लोग हैं ?"

"यहीं चाय-बागान के कुली-मजदूर हैं। हाट के दिन पेट भर हंड़िया पीकर ढोल बजाकर नाचते है।"

"हाँ यहाँ चाय-बागाने तो बहुत हैं। ट्राइबल पोपुलेशन भी"—सुहास ने अपनी बात पूरी नहीं की, चुप हो गया। साहेब और कुछ कहते हैं या नहीं इंतज़ार करने के बाद प्रियनाथ बोला, "हाँ, सर।"

"ठहरिए, देखता हूं।" उन लोगों के सामने ही नाच हो रहा था। वे लोग नाचने वालों के पीछे थे। मुँह हाट की ओर था। नाच भी हाट की ओर मुँह करके हो रहा है। जैसा कि तस्वीरों में, चित्रों मे, सिनेमा में दिखाई पड़ता है उसी तरह। वे लोग एक-दूसरे की कमर मे हाथ डालकर घेरे मे ताल पर दो कदम आगे बढ़ते थे और एक कदम पीछे करते थे और इसी आगा-पीछा में पूरा घेरा थोड़ा-थोड़ा घूमता जा रहा था। इसी तरह ये लोग पूरा चक्कर लगाते हैं और लगाते रहेंगे। और जो ढोल बज रहा है वह इस घेरे के दोनों छोरों के बीच की खाली जगह में है—तस्वीर, चित्र और सिनेमा में जैसा होता है। सुहास और प्रियनाथ के सामने थोड़ी ही दूरी पर हाट की दुकानें और झोपड़ियाँ थीं, उनमें रोशनी थी। झोपड़पट्टी की परछाई पड़ रही थी या वहाँ कुछ पेड़-वेड़ भी थे। यहाँ सिर पर आसमान था। उस संपूर्ण घेरे के आगे बढ़ने, पीछे हटने के साथ आसमान से रोशनी आती थी। कभी सामने हाट की परछाई में वह घेरा खो जाता था। उनका नाचते हुए चक्कर लगाना ऐसा लग रहा था जैसे यह कोई प्राकृतिक घटना है। ढोल इतने क़रीब बज रहा था पर उसकी गूँज से लग रहा था कि इसकी आवाज़ दूर किसी पहाड़-टीला-जंगल से आ रही है।

"सर, चलिए न सामने, नाच देखेंगे। चेयर ले आता हूँ।"

सुहास ने लगभग चौंककर कहा, "नहीं, नहीं, चलिए हाट चला जाये।"

सुहास आगे बढ़ गया। प्रियनाथ पीछे-पीछे।

7

प्रियनाथ के साहेब और हाट का माइक

उस मिठाई की दुकान मे तीन-चार हेजक जल रहे हैं। प्रियनाथ ने देखा कि लॉटरी

वाले रिक्शे में भी मोमबत्ती है, "आइए साहब, एक रुपये के बदले एक लाख" सुहास को आगे बढ़ते देख प्रियनाथ दौड़कर लॉटरी वाले के सामने जाकर बोला, "अब जरा कहिए तो, दादा। हमारे साहेब आये है।" इतना कहकर वह दौड़कर फिर से सुहास के पीछे पहुँच गया। "आप लोगों के इस हाट में रोज कितना कुछ घटता है। हाँ, कितना ? दो। यह लीजिए, दादा। अब देखिए न, कल यहाँ बदोबस्ती कैंप लगेगा।"

प्रियनाथ सुहास को पुकारता है, "सर !"

"कहिए।"

"हमारे कैंप के बारे में एनाउंस हो रहा है।"

"उस कैंप में आप सब लोग आयें। आप लोगों की जमीन का फैसला होगा। पर इस हाकिम से भी बड़ा एक और हाकिम है। वहाँ हमारे तकदीर, हमारे भाग्य का फैसला होता है। कौन जानता है, आपके लिए वहाँ क्या फैसला हो चुका है ? मात्र एक रुपये के बदले वह फैसला आप लोग जान सकते हैं। कौन जाने, हो सकता है आप ही को एक लाख रुपये का प्राइज मिल जाये। पर टिकट नही लेंगे तो कैसे भला मिलेगा ?"

सुहास खड़ा-खड़ा सुन रहा था। फिर हँसकर कहता है, "यह आपने कहाँ से जुगाड़ किया ?"

"सर, देखा यहाँ कोई ढोल बजाने वाला नही है। यहाँ तक कि टीनवाला भी नहीं मिला। इसलिए बाध्य होकर सर वे लोग मान गये। पर रेट थोड़ा ज्यादा लिया।"

"वह तो लेगा ही। आखिर माइक है।"

"उन लोगों ने दस रुपया कहा था। बहुत कहने-सुनने पर सात में राजी हुआ।"

"तो यह ऐसा क्या ज्यादा है ?"

"सर, मेरे पास इतना रुपया तो था नही, मैंने कहा आप लोग आयेंगे तो दे दूँगा।"

"विनोद बाबू से लाये है न ? तो दे आइए–"

"वह तो भूल गया, सर।"

सुहास ने अपने पर्स से दस का एक नोट निकाल कर कहा, "अभी दे आइए। बाद में विनोद बाबू से लेकर मुझे दे दीजिएगा।"

"फिर थोड़ी देर आप रुकिए, सर ! मैं देकर आता हूँ।"

सुहास खड़ा रहा। उसके सामने ही प्रियनाथ लॉटरी वाले रिक्शे के पास जाकर खड़ा हुआ। "दादा, हमारे साहब बहुत खुश हुए। यह दो रुपया रखिए चाय-समोसा खाने के लिए।"

लड़के ने गुस्से से माइक में ही कहा, "अरे धत् साहब, चाय-समोसा ही खिलाना है तो आप लाकर खिलाइए। हम लोगों के हाथ में रुपया क्यों थमा रहे हैं ?" दो रुपया देकर, बीस पैसा वापस लेकर इसी बीच प्रियनाथ ने सात रुपये अपनी जेब मे

रख लिया। "दादा, ज़रा जल्दी भेज दीजिए," कहकर दौड़कर सुहास के पास पहुँचने में चप्पल के सामने का सोल मुड़ जाने से वह ठोकर खा गया। फिर सँभलकर चलते-चलते वहाँ पहुँचकर बोला, "सर, चाय समोसा खिलाना पड़ा" कहकर एक रुपया बीस पैसा उसने सुहास को लौटा दिये। सुहास बोला, "इसका बिल मत बनाइएगा। पर वह सात रुपया लेकर मुझे दे दीजिएगा।"

"आप जरा कह दीजिएगा, सर ! वे मेरी बात का विश्वास नहीं करेंगे।"

"नहीं-नहीं, करेंगे। हम सबने आते समय सुना था।"

"सर, इस तरफ़।" प्रियनाथ ने सुहास को हाट का रास्ता दिखाया।

8
कैसे-कैसे हाट

हाट लगने, जमने और हाट उठाने का अपना एक निश्चित नियम होता है।

पर सब हाट एक जैसे नहीं होते। इस इलाके का चैंगमारी हाट या बड़ीदीघी का हाट सप्ताह में एक दिन लगता है—और ये हाट गृहस्थी के सामान खरीदने-बेचने के लिए लगते हैं। गॉव के ही कुछ लोग वहाँ अपनी दुकान लगाते हैं। चाय-बागान के मजदूर भी बड़ीदीघी हाट के बड़े ग्राहक हैं। उनके खरीदने लायक चीज़ें आती हैं। पर ये सारे हाट दोपहर को लगते हैं। और फिर शाम को थोड़ी देर मे हाट उठने लगता है।

उदलाबाड़ी-लाटागुड़ी हाट अभी काफ़ी बड़ा है। बस सड़क पर होने के कारण हाट जल्दी लगता है और देर से उठता है। नदी पर बॉध का काम होने की वजह से दोनों ही ओर लगभग पूरे साल मिट्टी काटने और पत्थर तोड़ने के लिए लोग रहते हैं। इसके अलावा फॉरेस्ट के आदमियों की भी तादाद कम नहीं है। सन् 65 में बाढ़ से जंगलों के पेड़-झाड़ हट या बह गये थे—यहाँ की सरकार उन जंगलों का पूरी तरह सफाया कर रही है। हो सकता है वहाँ नये सिरे से वन तैयार किये जायें। या फिर अभी ऐसे ही पड़ा रहेगा। इसलिए लगभग पूरे साल जंगल में पेड़ काटने का काम चलता रहता है। गॉव में बिजली के लिए कुछेक सालों से शाल पेड़ का खुट्टा भी बेचा जा रहा है। इसके लिये भी तो करीब सालभर फॉरेस्ट का काम है। इसीलिए उदलाबाड़ी और लाटागुड़ी में बड़ा हाट लगता है। पर वह भी तो ख़रीद-बिक्री का हाट है, कारोबार का हाट नहीं है। दोपहर को लगता है और इसके बाद चलता रहता है। पिछले साल लाटागुड़ी के हाट में टीन का शेड लगाकर छड़िया ने साइकिल की दुकान लगायी थी। वहॉ हाट बुध और शनिवार को लगता है। उदलाबाड़ी में भी तो साइकेल-रेड़ियो की दुकान पहले से ही है। पर कितना ही बड़ा हाट हो, ये सारे हाट ग्राहकों पर निर्भर करते हैं। ग्राहक की जेब में पैसा है तो हाट जाता है, उनकी जेब

हल्की हो तो हाट में भी सन्नाटा छा जाता है। ये सब हाट बाजार की तरह, दुकान की तरह हैं। पर हाट कहने का मतलब यही सब हाट-क्रांति हाट, धूपगुडी हाट और लालसार हाट हैं। इन हाट में ग्राहक नहीं होते, दुकानदार भी नहीं, सिर्फ हाट ही है। हाट चलेगा हाट की तरह और ग्राहक-दुकानदार हाट के साथ अपना सिर्फ़ तालमेल बिठा लेगे। हाट के भूगोल से जो परिचित हैं वे अली-गली से जा सकते हैं। निकल सकते हैं। पर जो नहीं जानते उनके लिए भीतर जाना तो कोई बड़ी बात नही–पर निकलते समय रास्ता ढूँढ़ना, मिलना मुश्किल हो जाता है। लगता ऐसा है जैसे हाट उसे निगल कर आख़िर में उगल देगा।

ये हाट कब लगते हैं, किसी को खबर नहीं होती। हाट में ही एक स्थायी बाजार भी है, जिसमें लोग रोज़मर्रा का बाज़ार करते हैं और फिर यहाँ पक्के घर, पक्की दुकान, पक्के गोदाम, राशन, मिठाई की दुकान, दवा की दुकान, कपड़े की दुकान, सूखे मसाले की दुकान, एफ.सी.आई. का गोदाम, खाद का गोदाम और दुकान, तीन-चार को-ऑपरेटिव, साथ में दो-एक किशोर या युवा संघ–यह सब तो है ही।

धूपगुड़ी हाट के दक्षिण में पंजाबी ड्राइवरों का एक ढाबा है। ओवरसिंह राय के मकान के पश्चिम में पुराने समय के एक आढ़त के स्थान पर एक लम्बा, खुला कमरा है, वहाँ क़तारों में खटिया लगी हुई हैं। एक विशालकाय चूल्हा है। इसी शेड के एक कोने में मुर्गियाँ और एक पाठा बँधा है। धूपगुड़ी से दाहिनी तरफ मुड़कर दूरगामी ट्रक आसाम की ओर जाते हैं। ओवरसिंह राय ने बाँस का बाड़ा लगाकर अपना घर अलग करके उस जगह को किराये पर उठा दिया है और फिर अपने मकान के उत्तर में एक आढती घर बनाकर मकान का मुँह उसी तरफ़ घुमा दिया है। क्रांति, चालवा और मेटली मे ढाबा तो नहीं है पर ढाबा के साइज की मिठाई की दुकान है। साथ मे वहाँ ट्रक भी लगते हैं और पूरे हाट में हाट वाले दिन के अलावा भी हर दिन भीड़-भाड़ होती है।

इसीलिए हाट वाले दिन समझ में ही नहीं आता कि कब हाट लगता है। एक दिन पहले दोपहर से ही बाँस की गाड़ियाँ आनी शुरू हो जाती हैं। पर ट्रक हाट वाले दिन नहीं आते। लेकिन हाट लगने वाले दिन से पहले गोदाम तो भरना ही पड़ता है। इसलिए हाट लगने से एक दिन पहले किसी एक समय से सिर्फ बैलगाड़ियों की कच-कच की आवाज़ सुनाई पड़ने लगती है। क़रीब चौबीसों घंटे यह आवाज़ हाट लगने वाले दिन तक आती रहती है। और इसी समय से लोगों की आवाज़ से हवा में थोड़ा-थोड़ा-सा भारीपन आने लगता है। जिस तरह जंगल में बारिश होने से बोझिल सी हवा बदन में लगती है उसी तरह हाट शुरू होने से पहले लोगों के गले की भारी हवा कान में लगने लगती है। और यह आवाज़ हवाई जहाज़ के शोर की तरह बढ़ती रहती है। शुरू-शुरू में गुंजन-सा सुनाई पड़ता है और धीरे-धीरे यही आवाज़ बढ़ती ही जाती है और आख़िर में फिर गुंजन में बदल जाती है। पर जहाज की तरह यह

कुछेक मिनट में नहीं घटता है बल्कि लगभग चौबीस घंटे लग जाते हैं। इसलिए गुंजन शुरू होने से पता लग जाता है पर अगर सुनने लायक हो तो, इसके बाद यह गुंजन लगातार चलती रहती है, बढ़ती रहती है। कब से यह शुरू हुई इसका कोई निशान ढूँढे नहीं मिलता, लेकिन एक समय में ऐसा लगता है जैसे हाट की यह आवाज़ दुनिया भर में फैल गयी है, उसी तरह जैसे सिर पर से जहाज गुज़र जाता है, जंगल के भीतर झींगुरों का शोर सुनाई पड़ता है। और फिर धीरे-धीरे यह गुंजन कम भी होने लगता है। पर कम होने का निश्चित समय भी तय कर पाना मुश्किल हो जाता है। एक लम्बे समय तक धीरे-धीरे यह कम होता जाता है। अचानक जब ध्यान उधर जाता है तो पता चलता है कि उसके पहले से ही हाट खाली हो गया है और अपनी स्वाभाविक स्थिति में आ गया है। समझ में ही नहीं आता कि इतने बड़े हाट में कब सन्नाटा छा गया।

करीब-करीब हर हाट का गणित ऐसा ही होता है। मुख्य सड़क के दोनों ओर किनारों में मकान और दुकानें हैं। हाट इन सब मकानों के पीछे लगता है। हाट जाने के लिए दो दुकानों के बीच से होकर जाना पड़ता है। फासला ऐसा कि दो आदमी एक साथ वहां से गुज़र नहीं सकते। पर हजारों लोग उसी फासले से होकर हाट में बैठते हैं। बैलगाड़ी भीतर जाने के लिए एक अलग रास्ता है और वह हाट के पीछे से होकर जाता है। हाट के कारण ही, जो दुकानें हाट से अलग और मुख्य सड़क पर होती हैं वे सब दुकानें हाट पर अपना वर्चस्व स्थापित करती हैं। मिठाई की दुकानों के बाहर चौकी पर सफेद चादर डालकर जलेबी का ढेर रखा हुआ है। कपड़े-अगोछे की दुकानों में कपड़े और अगोछे लटक रहे हैं। यहां तक कि साइकिल की दुकान में रखी साइकिल दुकान से बाहर सड़क तक फैली है। और इन सब चीजों के हुजूम के बीच लोगों का समवेत स्वर प्रबल हो उठता है। और उन मिश्रित स्वरों की भाषा का कोई अर्थ निकालना नामुमकिन है। किसी भी एक ध्वनि को अलग नहीं किया जा सकता। बस वह मिली-जुली आवाज एक ध्वनि प्रवाह मात्र बन कर रह जाती है। बहुत कुछ नदी के प्रबल स्रोत की तरह। नदी के स्रोत की ही तरह नेपथ्य की वह प्रबल ध्वनि अपने कोलाहल के कारण शोर का अस्तित्व प्राप्त करने लगती है और लगातार आघातों से हाट के बाहर इन दुकानों को हाट के ही अंतर्गत लेती है और दुकान का ही एक अंग बन जाते हैं।

9
कैसा है यह हाट

शाम के बाद हाट की एक पहचान बनने लगती है। दिनभर हाट में दुकानों की भरमार हो जाती है। शाम होने के बाद पूरा हाट छोटे-छोटे टुकड़ों में बँटने लगता है। पर

एक चमकीली रोशनी को केन्द्र बनाकर ही इनके टुकड़े होते हैं।

इस समय इस हाट का थोक बाज़ार सुनसान है। गाय-हाट की तरह लगभग अंधेरा ही है। हाट के पश्चिमी छोर पर मिट्टी के बरतनों की बिक्री होती है। वहाँ ग्राहक तो हैं ही नहीं कुछ दुकानदारों ने भी अपनी दुकानें बढ़ा दी हैं। सब्जी-बाज़ार में भीड़ है—आख़िरी छोर में घर-गृहस्थी के सामान वाले हाट में भीड़ है। यहाँ सस्ते दाम में बहुत सारी चीजें मिलती हैं। कपड़े की दुकानों में अभी भी खरीददार हैं, खासकर नाइलॉन बनियान की दुकानों में।

कहीं अधिक रोशनी है तो कहीं कम। रोशनी के आधार पर हाट को कई हिस्सों में बाँटा जा सकता है। एकदम उत्तर की तरफ़ एक कोने में एक झोपड़ीनुमा चाय की दुकान है जिसका मुँह हाट की ओर है। सामने हैजाक जल रहा है। इस चाय की दुकान से ही हाट शुरू हो जाता है। बाहर से यह जितना साफ-सुथरा लगता है, भीतर से उतना नहीं है। आदमी सामने भी खडा हो तो लगता है भीतर के अँधेरे से वह बाहर की रोशनी को देख रहा है। सिर्फ़ चेहरे और कपड़े पर हल्की-सी रोशनी पड़ रही है। बाकी सारा कुछ अँधेरे में एकाकार हो गया है। सामने कुछ बेंचें हैं, जिन पर कुछ लोग बैठे हैं। उन लोगों की परछाई झोंपड़ीनुमा दुकान में पड़ने के कारण भीतर और भी अंधेरा है।

इसके सामने थोड़ी दूर तक अंधेरे ने अपना विस्तार कर रखा है। ऐसा लगता है जैसे यह झोपड़ी पानी के ऊपर है। इस अंधकार से थोड़ी दूरी पर दो लम्बी गलियां हैं। जिसमें लाइन से रोशनी जल रही है। अब दो गलियां है या तीन समझ में नहीं आता। लेकिन लगभग सभी दुकानों में हैजाक जलने से लगता है वहां अच्छी खरीद-बिक्री चल रही है। ये कपड़े की दुकानें हैं। हैजाक की लाल रोशनी की किरणों में कार्बाइड की नीली रोशनी की लौ और उस लौ में से जो ज्योति निकल रही है। वह एक ठंडा वृत्त बना रही है, जिससे रंगों की एक छटा बन गयी है, यानी नीले और फिरोज़ी रंग की छटा।

इस रोशनी के विभिन्न रंगों की छटा के साथ आगे अँधकार के थोड़ी दूर तक विस्तार के बाद इस कपड़े के हाट के समकोण में हँड़िया का लम्बा हाट है। ढेर सारे उलटकर रखे हँड़िया पर ढिबरी रखी हैं—एक लाइन से। जिस तरह पानी में भँवर का निशान बना दिया जाता है—थोड़ी-थोड़ी दूरी पर। ढिबरी की रोशनी का वृत्त पकी हुई मिट्टी के रंग की-सी लाली लिये हुए है। पकी हुई मिट्टी का लाल वृत्त एक के बाद एक, बहुत दूर तक है। काफ़ी दूर तक निर्जनता फैली होने के कारण ढिबरी की लौ काँप उठती है। मिट्टी की हाँड़ी पर लाल वृत्त भी झूमता है और गोल-सी परछाईं साँप की तरह फन उठाये साँप की परछाईं की तरह गोल-गोल छाया हाँडी पर वर्तुलाकार झूमती जाती है—जैसे अँधेरा पानी-सा तरल है। इसलिए ऐसा प्रतीत होता है मानो यह दृश्य तैयार किया गया है या फिर यह दृश्य हाट के भीतर का नहीं है।

हाँड़ी हाट के बाद गाय-हाट है। एकदम अंधेरा। रह-रह कर टॉर्च की रोशनी चमक उठती है। कभी-कभी किसी गाय के रँभाने की आवाज़ अंधेरे से उठती है और अंधेरे में ही खो जाती है। पर अचानक गाय के रँभाने की आवाज़ से ऐसा लगता है जैसे वहाँ अँधेरे के कीचड़ में पेर डुबाकर दूसरे पशु-पक्षी, भैंस, मुर्गी, हंस, कबूतर और पाठे अंधे हो गये हैं। अँधेरा बढ़ने के साथ-साथ ये अन्धे और नीरव हो जायेंगे।

गाय-हाट को दाहिनी तरफ छोडकर बायी ओर मुड़ने पर फिर एक समकोण पर टीलेनुमा जगह में क्रमशः दक्षिण से दक्षिण की ओर इस हाट का सबसे बड़ा बाज़ार है—थोक-हाट। अब उस विस्तार का पता चलता है। संभवतः यह हाट पूरी तरह टीले पर ही लगता है। क्रमशः उत्तर से दक्षिण तक टीले पर ही है। अब वह टीला नज़र आता है। शायद यह जगह बिल्कुल सुनसान होने के कारण उसके आगे दक्षिण तक जितनी दूर नज़र जाती है उतना ही सन्नाटा व्याप्त है। इस टीले में या इसके आख़िरी छोर तक कहीं भी रोशनी वाली कोई दुकान या बाज़ार नहीं है। इसलिए इस टीले पर ढिबरी, मोमबत्ती और लालटेन की रोशनी में लगता है जैसे नदी में जलती हुई रोशनी के नाव की नदी है और ऐसी चमकीली रोशनी पूरे टीले में टुकड़ों में फैली हुई है। बार-बार बुहारने से मिट्टी का रास्ता साफ़-सुथरा हो गया है। पर बारिश का मौसम होने की वजह से मिट्टी का रंग काला है। और उस पर छोटे-छोटे स्तूप, ज्यादातर सूखी मिर्च के, बहुत से आलू के भी हैं। इन्हें देखकर कोई भी अनुमान लगा सकता है कि इस इलाके की प्रमुख पैदावार आलू और लाल मिर्च है। थोक हाट में सिर्फ़ आलू और सूखी मिर्च और कभी-कभी प्याज के ढेर थोड़ी-थोड़ी दूरी पर फैले होते हैं। एक-एक ढेर के लिए काफ़ी जगह छोड़ दी गयी है। ख़रीदने-बेचने के लिए भी तो बड़ी जगह की ज़रूरत होती है। बीच-बीच में मोटे बाँस के चार खूटों में लकड़ी के बड़े-बड़े तराजू झूल रहे हैं। उन बड़े-बड़े तराजुओ के एक पल्ले में बटखरा रखा हुआ है और दूसरा पल्ला खाली हवा में झूल रहा है। मोमबत्ती और ढिबरी की रोशनी में यह लकड़ी का विराट पल्ला और उसमें लगी नाइलॉन की लम्बी रस्सी की विशाल परछाई डोल रही है। थोक हाट के पूर्वी किनारे पर पाट-हाट है। एक लाइन में इसी तरफ मुँह करके। इसके पीछे का हिस्सा मैदान में फैला है। वहाँ बैलगाड़ियाँ क़तार में लगी हैं। उन पर पाट लदा हुआ है। गाड़ियों पर ही इनकी बिक्री होती है, अभी भी गाड़ियाँ हैं और बैलगाड़ी के आजू-बाजू, सामने-पीछे लोगों का आना-जाना लगा रहता है। बैलगाड़ी के चक्के के सुराखों से दूसरी तरफ कुछ लोग बैठे या चलते-फिरते नज़र आते हैं। पाट-हाट की बैलगाड़ियों में ज्यादातर लालटेनें ही जल रही हैं। फिर सड़क से चलना पड़ता है। कभी-कभी टॉर्च की रोशनी चमक उठती है।

थोक हाट की ओर मुँह करके लगे पाट-हाट के पहली क़तार की आख़िर में दक्षिण की तरफ़ ज़मीन पर चप्पू और चप्पू के पतवार हैं। चप्पू ही ज्यादा हैं—इन्हें जंगल से चुराई गई लकड़ियों से बनाया गया है—बहुत बड़े और मज़बूत। छोटी सड़क

पर चाय बागान से चुरायी गयी क़लम काटने का छुरी कटारी कुदाल, फावड़ा और उसके पास ही इस्पात स बनी कटारी कुदाल हथौड़ा बडी साइज की। पर गिनती म ज्यादा नही। आजकल टाटा कम्पनी क कुदाल और फावड़े लोहे की दुकानो म मिल जाते है। उनका वजन भी ज्यादा होता है। धार भी अधिक और कीमत भी ज्यादा। उसी क पास अँधेरे म कुछ चेयर, टेबिल और जालीदार छोटी सी आलमारी है। यहा तक कि एक आइना लगा हुआ ड्रेसिंग टेबिल भी है- पालिस इतनी चकाचक है कि मोमबत्ती की रोशनी उसम ठहरती ही नही। यहा तक पहुचने पर लगा हाट यही खत्म हो गया है। पर इसके भी आगे अँधेरे मैदान से दुर्गन्ध आ रही है। कभी कभार लोग भी आते जाते दिखाइ पड रहे है। यहा एफ सी आई की यूरिया और मिश्रित खाद का चोर बाजार है। यह शाम क बाद ही लगता है। थोडे से समय म सब बिक जाता है।

खाद हाट क करीब तो पहुचा ही नही जा सकता। गध से ही खाद हाट का आभास मिल जाता है। ऐसा लगता है बस हाट अधेरे स मिल कर एक हो गया है। पर उस अँधेरे की ओर से आने वाली गन्ध को सूघने हुए लगता है दूर बहुत दूर तक अँधेरे मे, मैदान मे और उससे भी दूर तक हाट फैलता जा रहा है। अधेरे म उस मैदान के भीतर से दबी हुई प्रतिध्वनि आती है—लगातार। ठीक उसी तरह जैसे बास के ढेर पर गाडियो से बॉस डाला जा रहा है। यह दबी हुई आवाज अगर एक बार सुनाई पड गयी तो वह आवाज कान स बराबर टकराती रहती है, रुकती है। हो सकता है ट्रको मे बास लोड किया जा रहा हो—टीटागढ के कागज कारखाना के लिए। शायद जगल की ही सप्लाई हो। पर ज्यादातर कट्राक्टरो का है। ये लोग जगल म भी खरीदते है और किसानो से भी। वना गाव की नदी के किनारे लगे इस हाट मे कभी बास का बाजार नही लगता या फिर हो सकता है यह बास की आवाज ही न हो। अधेरे से इस तरह की लगातार आवाज दूसरे कइ कारणो से भी तो आ सकती है। शायद दिन मे भी आती हो। पर अधेरे म कुछ ज्यादा ही सुनाई पड रही है। तिस्ता नदी किस ओर है ? कितनी दूरी पर ? तिस्ता की बाढ म जगल के सागौन शाल टूटकर गिर रहे है। इस समय रात के अँधेरे मे वही सब टुकडे-टुकडे होकर निकल रहे है। हो सकता है कटारी से काटने की आवाज हो। या अभी शाम के समय उस नेशनल हाईवे से ट्रक बस के गुजरने की आवाज मे मिट्टी कॉप रही हो या पहाड पर से कोई वनैला जीव नेवडा नदी मे बहता जा रहा है—दोनो किनारो मे धक्का खाकर और भी तेज गति मे बहता जा रहा है। कही से चट्टान तो नही खिसक रही है ? या फिर चाय-बागान के जनरेटर की आवाज जगल की नदी से प्रतिध्वनित होकर वही चक्कर काट रही है ? ढिबरी और मोमबत्ती, कारबाइड और हेजाक की रोशनी मे हाट के लोगो का आकार बहुत बडा हो गया है और अन्धकार की प्रधानता हो गयी है। कभी-कभी रोशनी का कतरा दिखता है, पर कभी कभी भीड के बीच से एक-दो बार

दूर या कभी अन्यमनस्कता में आसमान की ओर नज़र पड़ जाये तो विस्तृत अँधेरा ही नज़र आता है। रोशनी के विभिन्न वृत्तों में भी अब चमक नहीं है। किसी मदेशिया औरत की पीठ पर कपड़े से बँधे बच्चे का सिर हिलता है तो औरत के सिर पर लगे लाल और कुछ अस्पष्ट रंग के जंगली फूल और उसके काले बाल दिख जाते हैं। काला चेहरा किस अनिर्दिष्ट नियम के तहत अँधेरे से मिल जाता है। नाइलॉन की चमक किसी हट्टे-कट्टे आदिवासी की छाती से फिसल जाती है।

अँधेरे में काली आदिवासी युवती के सफ़ेद दाँत चमक उठते हैं। बरगद के तने जैसा सुदर्शी मंगोल चेहरा चमड़े की असंख्य झुर्रियो में नदी के भँवर-सा खिल उठता है। कहीं-कहीं ज़मीन पर हल चलाया जा चुका है। चर्बी रहित पहाड़ी ठुड्डी के छोर में धार की-सी चमक है। टीले पर से समतल मैदान दिखाई ˘ड़ता है। इस हाट की ख़रीद-बिक्री के आख़िर में भी भीड के चेहरे पर सर्दियों से आदिवासी घराने के मुखौटे से सजे चेहरों में सिर्फ विस्मय है या विस्मय का अवसान है। रेखा, रंग और अंग-सज्जा में कोइ नयापन नहीं है। एक मुखोटे को दूसरे मुखौटे से अलग नहीं किया जा सकता। जबकि हरेक मुखौटा अपने आप में अलग ही है। इस बड़ी-बडी परछाइयों मे मुखौटे क्षणभगुर है पर फिर भी उसकी निश्चितता बिजली की चमक में अरण्य का आभास दे जाती है या कभी-कभी नृत्य के गीतों मे पहाड़ों की प्रतिध्वनि मुखरित होती है और ढोल के बोल फूट पड़ते हैं। कानों में भूला हुआ गीत बज उठता है और यह भीड़ और खरीद-बिक्री, सौदा और भीड एक-दूसरे में मिलकर भी नहीं मिलते। भीड़ मिलकर एक हो जाए तो भी भीड ही रहती है। एक बार और मेले में आकर भी खो जाने और लौटने की उदासी, आत्मविस्मृति, उदास चेहरा, चेहरा और चेहरों की क़तारें।

10

हाट की आड़ में हाट

हाट के पूरब से उत्तर तक जो रास्ता मुडता है उसी समकोण में यह हाट लगता है। हाट के पास लाइन से दुकानें हाट के रास्ते को अपनी आड में लिये हुए हैं। ज्यादातर दुकानों का मुँह सडक की ओर है। एक-दो दुकानों के बीच में थोडा-सा फासला है—हाट से निकलने का। ऐसे फ़ासले बहुत हैं।

ऐसे ही एक फ़ासले के पास दो क़तार में लगी दुकानों के बीच पाट-हाट के भी उत्तर में—एक बड़ी-सी ज़मीन पर हाट की आड़ में एक और हाट है। बहुत पास-पास, लाइन से ढिबरियाँ जल रही हैं। एक तरफ़ उसी ढिबरी की रोशनी बाहर नही निकल पा रही है। सिर्फ़, थके-हारे लोगों के चेहरों को ही आलोकित करती है। और दूसरी तरफ लौ में कोई आड़ नहीं है, एक तेज़ हवा के झोंके से ढिबरी बुझ जायेगी। सट्टा, जुआ चल रहा है। जगह लम्बी है। जुआ का टेबिल ज़मीन पर या स्टूल

पर लाइन से लगा है—जैसे यह सब किसी योजना के ही तहत हुआ है। कोई बात या आवाज़ सुनाई नहीं पड़ती। कोई-कोई कभी इस टेबिल में तो कभी उस टेबिल में ताक-झाँक कर रहा है। ज्यादातर नीचे होकर खेल रहे हैं। वह जगह ही जैसे अन्धी हो। किसी को कुछ नहीं दिखता। शाम होते-होते ग़ैर-क़ानूनी हाट लगने लगते हैं। असली हाट उठ जायेंगे और यह हाट जब तक मर्जी चलता रहेगा। पर ग़ैरक़ानूनी होने की वजह से ही इस हाट में सब कुछ जल्दी-जल्दी होता है। हर कोई जल्दी में अपनी चाल खेल लेना चाहता है।

और एक ओर लाइन से एल्यूमिनियम की देगची और गिलास लिये लड़कियाँ खड़ी हैं। सब देगचियाँ अंगोछे से ढँकी हैं और हरेक देगची के आगे भीड़ लगी है। उनमें हँड़िया या पचाई है। कहीं किसी शराबी का बहका शोर नहीं है। बहुत दबी लगभग फुसफुसाहट की तरह, स्वरों में जड़ता होने के कारण बातें साफ़ समझ में नहीं आतीं। लेकिन उनके स्वर में अतृप्त आकांक्षा स्पष्ट है।

ज़मीन से कोई उठ रहा है, कोई अब तक ज़मीन पर लुढ़का हुआ है। घुटने के बल फिर दोनों हाथ और दोनों पैरों पर ज़ोर देकर खड़े होने की कोशिश में बैठ जाता है। लेकिन फिर सीधा खड़ा होने लगता है, सिर उसका झूमता है फिर सीधे खड़े होकर अँधेरे की तरफ़ देखकर कहता है, "देख लो देख, दे···ख, देख, भाई लोग और बहिन लोग, देखो, हम खाश हो गइले—खा···श" इस खड़े होने और खड़े रहने में उसे थोड़ी मेहनत भी करनी पड़ती है। उसके पैर लड़खडाते नहीं, सिर झूमे नहीं और उन्हें सँभालने में उसे सिर्फ़ कमर डुलाना पड़ता है। कमर से गले तक का हिस्सा झूमता है जिससे उसे अँधेरे में एकांत एकाकी कोशिश करते रहना पडता है—वह मज़बूत और सीधे पैरों को फैलाकर खड़ा है, सिर सख़्ती से सीधा, सामने की ओर निकला पेट, कलेजा जैसे बीच-बीच में फट पड़ना चाहता है पर कमर हिलाकर इन्हें सँभालना पड़ता है। इन्हें सँभालते समय किसी पैर का घुटना लचक कर गिर पडना चाहता है तब पेट का डोलना जाँघ तक लाकर जाँघ को डुलाकर गिरने से बचाता है, और इसके साथ ही स्थिर सिर के साथ लड़खड़ाती ज़ुबान में वह चुनौती देते हुए बोलता है, "कउन कहते माय होश में नाहीं ? हाम कोनो सलाबी नहीं हो सकते। ई देख, ठीक-सा देख। हाम अपने पहर पर खाड़ा रहिले। ई देख, ठीक-सा देख। हामारा ई माधवा भी खाड़ा है तब ? तबौ हाम सलाबी ? कभी नहीं ? ई देख हाम पारेड करेगा। रे-डी, वान-टू-थिरी,···लेफ्ट-राइट" वह अपने पैर बहुत ज़्यादा उठा नहीं पा रहा है। इससे उसका पूरा शरीर लड़खड़ा जाता है और वह ज़मीन पर गिर जाता है।

इसके थोड़ी देर बाद वह फिर से घुटने के बल उठता है पर बैठ नहीं पाता। घुटने के बल चलकर हँड़िया की ओर बढ़ता है। फिर एक जगह रुक जाता है। और उकडूँ होकर बैठ जाता है। फिर खड़े होने के लिए दोनों घुटनों पर अपने दोनों हाथ रखता है पर खड़ा नहीं हो सकता या फिर खड़े होने की कोशिश भी नहीं करता।

वहीं से अँधेरे की ओर देखते हुए कहता है, "देख, हाम पारेडौ करली। तब हमको अउर एक गिलास दे। हाम तो सलाबी नहीं होय। अई डायना, हाम अउर एक गिलास पीगा। अई डायना हामको..."

जो लड़की गिलास में सबको हंड़िया दे रही थी वह उसके पास जाकर खड़ा हो गया। जो लोग वहाँ पी रहे थे उनमें से किसी ने उसकी तरफ देखा वह लड़की के पास जाकर बैठने की कोशिश करने लगा। पर क़दम उठाने के लिए घुटने को जैसे ही मोडा लड़खड़ा गया। फिर सँभल नहीं पाने के कारण धम्म् मे गिर गया। ज़मीन पर सीधा होकर बैठ गया और फिर उसी लड़की की ओर हाथ बढ़ाकर बोला, "अई डायना, हामको दे। हम पीगा, जरूर से पीगा, पइसा ले अउर दारू दे।" लड़की ने उसकी तरफ़ देखे बिना दाहिने हाथ से एक धक्का दिया और वह गिर पड़ा। फिर नहीं उठा।

अचानक हवा की तरह फुसफुसाहट फैल गयी। "जापानी टेरीलीन साठ रुपया पीस, सीकों घड़ी।" बायी हाथ की हथेली पर अंधेरे मे घडी के रेडियम की विदेशी चमक आदिवासी ठुड्डी-सी दीखती है। "जापानी, हागकाग, मेड इन यूएसए" हवा में लहरा रहा है। सट्टा और जुआ खेलने के लिए भीड उमड़ पडी है। चक्का रुकने, डुगडुगी बजने, लूडो की चाल चलने और गेटी पर एक बार समवेत स्वर की फुसफुसाहट सुनायी पडती है और फिर यही फुसफुसाहट दबाकर हिंसक सन्नाटे में बदल जाती है।

जुए के बोर्ड में कुछ दिखायी नही पड़ता। ढिबरी की लौ लोगों के चेहरे पर चमक रही है, झिलमिला रही है, किसी चेहरे पर टिकती नहीं। यह हाट के दूर का दृश्य नहीं—बहुत करीब का दृश्य है। इतने करीब का कि हाथ-पेर भी नही दीखता, चेहरा या भौंहों का आकार या साया या फिर काली नाक का एक हिस्सा, सट्टे क बोर्ड की ढिबरी की रोशनी में पहचानना मुश्किल है कि बोर्ड का मालिक कौन है—नेपाली, राजवंशी, कोच (धावर कूचबिहार के आदिम आदिवासी) मेच, रावा—कोई भी हो सकता है। पीछे से देखने पर सिर का ढाँचा संथालों की तरह लम्बा दिखता है।

11

हाट की सामाजिक रीति-नीति

मुख्य सड़क के दोनों ओर दुकानों में हैजाक जल रहे थे। दाहिनी तरफ़ थोड़ी ही दूरी पर इंटर-प्रोवेंसियल ट्रक खड़ी थी। बायीं तरफ चाय की दुकान में लोगों की ज़बरदस्त भीड़ थी। दाहिने-बायें देख कर सुहास ने हाट के विस्तार का एक बार और अनुमान लगाया।

सुहास मिठाई और चाय की दुकानों की तरफ बढ गया।

बाहर की ओर लगी हुई बैंच पर बैठने की सुहास की इच्छा थी। पर वहाँ तब काफी भीड थी। अखबार के टुकडे पर जलेबी और निमकी मिल रही थी। यहाँ ज्यादातर चाय-बागान के मजदूर और मजदूरिनें, यहाँ की भाषा में इन्हें 'मदेशिया' कहा जाता है, कुछ खुद खा रहे थे और गोद के बच्चे को भी तोड-तोडकर खिला रहे थे।

सुहास को भीतर जाकर बैठना पडा। और जब भीतर ही बैठना है तब एकदम से आखिर में बैठना ही ठीक होगा। माइका टॉप हाई बेंच। सामने बेंच भी हैं, कहीं-कहीं मुडी हुई चेयर भी है। सुहास एक मुडी चेयर को खींच कर बैठ गया। उसके सामने सभी टेबिलो पर लोग बैठे थे। सुहास सिर्फ एक चाय ही पीना चाहता था पर वह जानता था कि यहाँ चाय किसी भी क़ीमत पर अच्छी नहीं होगी। लेकिन इतने भीतर बैठकर सिर्फ चाय पीना ठीक होगा या नहीं, समझ नहीं पा रहा था। लडके के आने पर उसने कहा, "पहले सिर्फ एक चाय दीजिये। बाद में कुछ लेना होगा तो कहूँगा।"

पर लडका लगभग उल्टे पाँव आया। उसके साथ चाय की प्लेट में बहुत सारी मिठाइयाँ थी। सुहास यह समझ ही नहीं पाया कि वे मिठाइयाँ उसी के लिए है, अगर वह लडका उसके सामने थोडी देर और खडा नहीं रहता। सुहास के कुछ कहने से पहले धोती गंजी पहने हुए एक आदमी आकर खडा हो गया था। सुहास समझ गया कि यही दुकान का मालिक है। काफी लम्बे समय से बैठे रहने के कारण धोती की गाँठ खिसककर तोद के नीचे आ गयी है और गंजी भी पेट का पूरी तरह ढँक नहीं पा रही है। खूब महीन धोती और महीन गंजी के बीच बदन पर बाल की एक नवी रेखा है।

लडके के हाथ से प्लेट लेकर बोला, "पानी ले आ" फिर दोनो हाथ से सुहास के सामने रखकर बोला, "सर, लीजिए सर। मेरी दुकान की मिठाइयाँ सर, कलकत्ता जाती हैं सर। चाय बागान के साहेब लोग बागडोगरा से प्लेन पकडते समय यहाँ से मिठाई का पेकेट ले जाते है, सर। बीकानेर सुइट्स है, सर।"

सुहास का मन हो रहा था यहाँ से उठकर एकदम से भाग जाये। पर उस आदमी की बातों मे, उसके दुकान की मिठाई की तारीफ़ से थोड़ा आराम मिल रहा था—कम-से-कम थोडी देर के लिए ही सही। पर उसके सामने उस आदमी के दोनो हाथों में एक छोटी-सी प्लेट में मिठाइयो का ढेर देखते ही उसे मितली आने लगी। उसने अपने आस-पास नजर दोडायी। देखा कि उसके सामने वाले बेंच पर बैठकर जो लोग खा रहे थे उनकी नजर इधर ही थी। पर दुकान पर खड़े मदेशिया और राजवंशी मजदूर-किसान इस तरफ नहीं देख रहे थे।

सुहास ने जल्दी से मामला निपटाने के लिए कहा, "मै मीठा पसन्द नहीं करता। आप खुद लाये हैं इसलिए एक ले लूँगा।"

"ठीक है, सर। मैं जबरदस्ती नहीं करूँगा। पर आपको टेस्ट तो करना ही पडेगा।

रोज एक मिठाई टेस्ट करने पर मेरी सारी मिठाइयां टेस्ट हो जायेंगी, "ऐई ! प्लेट लाओ।" आदमी के गले का उतार-चढ़ाव अच्छा था।

सुहास ने जल्दी से हाथ बढ़ाकर उसे चौंका कर कहा, "हाथ में ही एक दे दीजिये।"

"सर, यह आप क्या कहते हैं, सर ? आपको हाथ में दे दूँ ?"

"मुझे हाथ ही में खाना अच्छा लगेगा।" सुहास ने मन ही मन कहा। उसका मन होने लगा, वह उठे और दुकान से बाहर निकल जाये।

शायद दुकानदार ने उसके मन की बात को भाँप लिया। उसने मिठाई के ढेर से एकदम से नीचे से एक लम्बी, गोलाकार सबसे बड़ी मिठाइ निकाली। सुहास बोला, "यह दीजिये" ऊपर एक संदेश दिखाया।

"यह क्या, सर। इतने से क्या होगा, सर। यह तो मुँह में रखने ही गल जायेगा।"

"ठीक है, आप यही दीजिये।"

इसी बीच लड़का एक प्लेट लाकर बेंच पर रख गया। उस प्लेट में संदेश रख कर दुकान के मालिक के एक और मिठाई में चम्मच लगाते ही सुहास ने प्लेट खींचकर कहा, "ऊँहूँ, बस !"

दुकानदार खीं-खीं कर हँसते हुए बोला, "सर, चाय भेज देता हूँ।" कहकर वह चला गया।

सामने बेंच पर जो लोग बैठे थे उसमें से एक उठकर सुहास को नमस्कार कर निकल गया। सुहास को उसके नमस्कार का जवाब देने का भी समय नहीं मिला और इसी के बाद हाट कमेटी का वह अधेड़ आदमी उसके सामने बेंच पर बैठते हुए बोला, "हाट देखा आपने ?"

"अभी तो शाम हो गयी है। शायद दोपहर को हाट ज्यादा जमती है।"

"नहीं, इस समय भी हाट जमी है। वह तो इआम क्षेत्र का लगभग बड़का हाट ही कहलायेगा। धूपगुड़ी का हाट बहुत छोटा है और फिर वहा थाक में माल बिकता है।"

सुहास को याद आयी। उसने पूछा, "अच्छा, यहां क्या सूखी मिर्च तैयार की जाती है ? हाट में सूखी मिर्च का टाल देखा।"

तभी लड़का चाय रख गया।

"नहीं-नहीं, यहां सूखा मिरिचा कितना होता है ? इधर सूखा मिरिचा नहीं होता, समझिए, ऐसा है कि ई किरांती हाट में पहले भी एसो सूखा मिरिचा नहीं होता था। तब नारायण परसाद का गोडाउन सिलिगुड़ी में था।"

"कौन नारायण प्रसाद ?"

"लीजिये, नहीं जानते ! ई तमाम ईलाका, आसाम का सूखा मिरिचा का डीलर। उनका सूखा मिरिचा का माल गाड़ी तो माल स्टेशन में आता है।"

"वे यहाँ क्या करते हैं ?"

"नारायण परसाद तीन बरस पहिले यहाँ एकठो बगान खरीदे थे। तो ऊ बगान दो महीना हुए बद हो गयी। तो नारायण परसाद ऊ बगान के गोडाउन को बानाए सूखा मिरिचा का गोडाउन। बस, तबसे आसाम अऊर तमाम-तमाम जगह का थोक खरीद-बिकरी ई किराती हाट से ही होता है। सहर में है किराती हाट का बडा नाम है।"

'और वो चाय-बागान ?"

"ऊ तो एक दो सल पहले खुली है। ऊ फैक्टरी तो और चलती नही। गिगिनटी बेचा हो जाइत है। गोडाउन तो सूखा मिरिचा का ही है।"

सुहास की चाय खत्म हो चुकी थी। उसने कहा, "और आलू ?"

"ऊ तो इसी साल एक ठा उदलाबाडी के ठण्डा घर मे धर दिया है।"

सुहास तब तक खडा हो चुका था। अब वह धीरे-धीरे निकल कर जाने लगा। तभी वह आदमी पीछे-पीछे आकर बोला, "हामारी बात पर थोड़ा विचार-धियान करिएगा। ई तो कोई खराब बात नही है। हमलोग के घर-मकान में लोग-गिरस्ती है।"

उस सज्जन के स्वर मे ऐसी आतरिकता थी कि सुहास को मुड़कर उनकी तरफ देखना पडा। दुकान के बीच रास्ते मे वडी भीड थी। इस तरफ की बेंच से एक बड़ा सा झुंड खा चुकने के बाद उठकर पैसे दे रहा था—लोगो की लाइन लग गयी थी। यह साफ़ समझ आ रहा था। सब लोग एक ही साथ है और पैसा देकर उधर से ही निकल जायेंगे। इसलिए सुहास को जल्दी-जल्दी वहाँ से निकल कर दुकान के सामने जाकर खड़े हो जाना पडा।

वो सज्जन भी पीछे-पीछे आकर खडे हो गये। सुहास उनसे बोला, "आपलोग इस तरह कहकर मुझे शर्मिन्दा न करें। क्या है, हो जायेगा, किसी दिन। अभी तो हम लोग यहाँ हैं न !"

सज्जन ने दोनों हाथ जोडकर विनयपूर्वक सिर हिलाया।

प्रियनाथ थोडी-सी दूरी पर खडा था। जब सुहास से और भी दो-चार लोग बातें करने लगे तो प्रियनाथ आगे बढकर उनके पीछे खडा हुआ और बोला, "सर, यह सब मै केप में रख आऊँ ?"

सब मुड़कर एक बार प्रियनाथ को देखने लगे। उन्हें दिखाने के लिए प्रियनाथ ने अपना चेहरा रोशनी की तरफ़ कर दिया। इसके बाद तो सबको उसी से बात करनी होगी।

"आप जाइए, मैं आ रहा हूँ।" सुहास ने प्रियनाथ से कहा। फिर अचानक भीड शुरू हो गयी। सुहास सोचने लगा कि अब वह जा सकता है। पर जैसे ही उसने जाने को क़दम बढ़ाया कि एक छोटा, मोटा-सा आदमी नमस्कार कर सामने खडा हो गया। बडी ही मीठी आवाज़ में बोला, "मेरा नाम तोमार आलम है।"

"ओं !" चौंककर सुहास ने भी नमस्ते किया। नौसार आलम—यह नाम तो गज़ट में भी शामिल हो गया है। सरकार ज्यादातर केस में हार गयी है—सुप्रीम कोर्ट तक। बाकी जमीन इंजंक्शन में है। नौसार आलम—यह नाम सुनकर डाकू-से व्यक्तित्व की कल्पना जेहन में उतरती थी—पर यह ऐसा छोटा-मोटा व्यक्ति है ! पर इतनी-सी देर में हरेक की ओर घूमकर 'नमस्कार' और बड़े ही सहज ढग से 'अब चलता हूं', कहकर वह सज्जन भीड से बाहर निकल गये।

12

आख़िरी हाट से हाट का उठ जाना

जब एक निर्दिष्ट केन्द्र है तो कुछ भी हाट से बाहर नहीं। तब जो हाट तक पहुँचने के लिए रास्ते में हैं और हाट तक पहुंचे नहीं है—वे भी दूर से हाट तक पहुँच जाते है। यही वह समय है जब हाट अपने चारों ओर के विस्तृत और विनिर्दिष्ट सीमा से पार निकल जाता है। बहुत दूर तक हाट के लगने और उसके जम उठने से उस अस्पष्टता म जैसे हाट नहीं समा पाता हो। तभी गोधूलि उतर आती है। लोगों के पैरों की धूल से धुंधली हो जाती है। कहीं-कहीं लम्बी-सी ढिबरी के साथ बडी-बडी परछाइयां में हाट की भीड भी जल उठती है, जलने लगती है और उसके साथ हाट की भीड़ की बडी-बडी परछाइयां कई गुना बढ जाती है और ऐसी ही स्थिति मे चलते-चलते दिखाई पड़ता है—दूर सीमाओ की ओर जाते हुए लोगों का मुँह अब इस ओर नही है, उस ओर मुड़ चुका है। दूर-दूर तक मेदानो और सडकों पर लोगों का [illegible] केन्द्र से विपरीत, सीमा की ओर है। हाट अब आखिरी चरण में, उठने की स्थिति मे है—जाने कब हाट चरम में पहुँच कर ख़त्म होने लगा। लोगो के पैरों के निशान बदल गये।

हाट की ओर जाते समय लोग जितनी बाते करते है, हाट से लौटते समय उससे कहीं अधिक। कहीं ऐसा तो नही कि हाट से लौटते समय अंधेरा उतर आता है तब लोग परस्पर एक-दूसरे को देख नही पाते, इसीलिए बाते करके एक-दूसरे की उपस्थिति का अंदाजा लगाते हैं और बाते करते हुए रास्ता तय करते है या फिर हाट उठने का मतलब ही उस समवेत शोर के केन्द्र का बिखरना और उसके टुकडो का चारो ओर फैल जाना। रात के अंधेरे में वह शोर विभिन्न रास्तो से लुढकते हुए कण-कण में बदलकर हाट के आख़िरी चरण में धूल और आकाश मे फैल जाता है।

हाट की शुरुआत दूर-दराज के लोगो से होती है और हाट के आख़िरी चरण की भी शुरुआत दूर-दराज़ के लोगों से ही होती है। जिन लोगो को बस पकड़नी होती है वही लोग हाट से सबसे पहले छुट्टी लेते है। इसके बाद जिनकी बस हाट से ही खुलती है वे रवाना होते है। रिक्शा जिनके लिये खड़ा होता है फिर वे निकलते हैं और इनके बाद साइकिल के सवार। और इस दौरान पैदल यात्री तो जाते ही रहते है—पर इनकी

तादाद क्रमशः बढ़ती रहती है और दूर-दूर के रास्तों की लम्बी दूरी से लोगों की आवाज़ समय बीतने के साथ-साथ क्रमशः हल्की होती हुई आख़िर में हाट के आस-पड़ोस के गाँवों में गुम हो जाती है। सबसे आख़िर में आते हैं और आख़िर में जाते हैं।

लोग जिस तरह हाट में आते हैं, उसी तरह लौटते हैं। सामानों का बोझा लादे, पशु-पक्षी लटकाकर या खींचकर। हाट चलने के दौरान ही एक हाथ की चीज दूसरे हाथों में चली जाती है। आहिस्ते-आहिस्ते शाम के अँधेरे में पशु-पक्षी के आँखों के सामने की रोशनी जिसके कि वे अभ्यस्त होते हैं, अन्धकार में बदल जाती है। पशु-पक्षी हर तरह के अनभ्यास से कतराते हैं। पर उस निरुपाय अँधेरे को स्वीकार कर लेने का अभ्यस्त एकमात्र मनुष्य की आवाज़ और मनुष्य का स्पर्श है। हाट से आने-जाने का रास्ता इन्हीं पशु-पक्षियों की अनिश्चयतापूर्ण स्वर से मुखर हो उठती है। या फिर कबूतर-हंस-मुर्गा के अनिश्चित नीरवता से 'रंभाने' की आवाज़ सुनकर। क्या कहा जा सकता है कि कौन-सा बछड़ा बिना किसी अभ्यस्त हाथों से खींचते हुए लौट रहा है और किस बछड़े के गले की नयी रस्सी नये हाथ में पड़ी है ?

वह घोड़े का सवार और उसका घोड़ा शून्य हाट में चक्कर लगा रहे थे। घोड़े की पूँछ तेज़ हवा में झोपड़ी के छप्पर की तरह डोल रही थी। ऐसा लगता था कि किसी भी समय पूरी तरह टूटकर गिर सकती थी। घोड़े का सिर्फ़ पीछे का भाग ही दिखायी पड़ रहा था—उसके पैरों की सिकुड़न या फिर पीछे की ओर की दो ऊँची हड्डियाँ। पूंछ दोनों पैरों के बीच झूल रही थी तो झूल रही थी। मक्खी भगाने के लिए भी नहीं हिलती, ऐसे झूल रही थी। घोड़े के सामने का भाग भी घोड़े का नहीं था। सवार अपने दोनों हाथ घोड़े के कंधे पर रखकर सिर झुकाये बैठा था। उसके वजन से घोड़े का गर्दन लम्बी होकर झूल गयी थी। गर्दन क्रमशः लम्बी होती जा रही थी। घोड़े की गर्दन बहुत नीचे तक झुक जाने के बावजूद वह घास में मुंह नहीं डाल पा रहा था। उसकी पीठ पर, अपनी ही गर्दन में सिर घुसाकर बैठा सवार और उसकी लम्बी गर्दन की तुलना में घोड़े का पिछला हिस्सा हल्का-सा लग रहा था, जैसे सिर और गर्दन समेत घोड़े ने कोई फंदा अपने गले में डाल लिया हो और अब सिर्फ़ पिछला हिस्सा ही उसका अपना हो।

वह घोड़ा और उसका सवार अब इसी सुनसान हाट की अली-गली में ऐसे घूम रहे थे जैसे अभी भी हाट बरकरार है, जैसे अभी भी उन्हें लोगों की भीड़ पार कर के आगे बढ़ना पड़ रहा है। पर अब सवार अपने डंडे की छोर में भिक्षा की झोली लटका कर आगे नहीं बढ़ रहा था। अब घोड़े को भी पीछे से धक्का खाकर चौंकना नहीं पड़ रहा था और अस्पष्ट चाँदनी में वह घोड़ा और उसका सवार घूमते-घूमते निर्जन हाट की अली-गली का चक्कर लगाते हुए मैदानों को पार करते हुए बस्ती की ओर बढ़ गये थे। हो सकता है सवार अन्धा हो या फिर घोड़ा ही अन्धा हो। हो सकता है यह घोड़ा और उसका सवार दोनों ही सो गये हों। किसी भी समय उन्हें रास्ता मिल

जाये–फिर आसमान की पृष्ठभूमि में नदी के भंवर और जंगल की दूरी को यह घोड़ा और उसका सवार दूर, बहुत दूर के क्षितिज का फासला कम करता जायेगा। भादों के आसमान की धुँधली, नीली और क्षितिज की हरियाली, जंगल के गहरे रंग में यह घोड़ा और उसका सवार कभी मिल जायेंगे, कभी घोड़े की लम्बी गर्दन झूलती रहेगी, कभी घोड़े में फंसाया हुआ सवार का सिर परछाई बनकर उभरेगा, कभी घोड़े का पिछला हिस्सा किसी जर्जर मशीन की तरह उछलने लगेगा–जिसे कोई खींचता हुआ लिये जा रहा हो, कभी नदी के दोनों किनारों की परछाई–दोनों किनारों के बीच की उनकी परछाई होगी, कभी सूखी नदी के गड्ढे भी घोडे के चारों पैरों के कटी खुर ढँक गये होंगे–कभी नदी के बाँध पर लाइट एण्ड शेड नदी पर बने टीले के बालू के ढेर को बिखरा कर या जंगल के किसी पेड़ के नीचे खो जायेंगे।

दोपहर और शाम का हरेक दृश्य रात की गहराई में परछाइयों में तब्दील होता जा रहा था। जैसे नदी, पहाड़, पर्वत या वन-जंगल की तरह हाट भी कोई प्राकृतिक चीज हो। जब तक इस हाट में लोग थे, रोशनी थी, चंचल परछाइयाँ थीं। पशुओं और इंसानों का आह्वान था–तब तक उसके विस्तार का पता नही था, जैसे पूरा दृश्य ही एकाकी और एकांत हो। अभी, आधी रात के बाद भीड़ यह जनशून्यता, यह निःशब्द सन्नाटा, इस हाट के क्षितिज अपने प्राकृतिक विस्तार में फिर से लौट रहे हैं– आहिस्ते-आहिस्ते, लगभग किसी सजीव अस्तित्व की अनिवार्यता में। अब इस रात और अंधेरे में मैं दिनभर की इस वास्तविकता को ही झुठला सकती है।

पर हाट अब पूरी तरह जनशून्य भी नहीं है। स्तूपाकार रखे गये इतने सारे सामान, क्या सभी लौट चुके हैं। हो सकता है कुछ हों और कल सुबह आयें। इतनी सारी मिट्टी की हँड़ियाँ। और अँधेरे से गाय-हाट से गायों के रँभाने की आवाज़, सारा हाट, उस हाट के पीछे एक गुप्त हाट भी। इधर-उधर दो-एक शराबी गिर-पड़ रहे हैं–अँधेरे में उनके बदन की लबाई या काला रंग मिल गया है। नाक के मंगोलियन सुराख में एस्ट्रिक चमक अब नहीं है, उसके संकुचित या कम बालों से ढँकी खोपड़ी का आकार अँधेरे से अलग नहीं किया जा सकता। आज सारी रात उन पर ओस गिरेगी। भीतर ही भीतर उत्तप्त शरीर ओस की बूंदों से ठंडा हो जायेगा। कल सुबह या रात में कभी भी ये लोग अपने होश और हवाश भरे क़दमों से फिर से पहाड़ों, नदी के टीलों और जंगलों में चले जायेंगे।

और अब यह पूरी प्रकृति अँधेरे से आच्छादित हो उठी थी। जब निकलने से पहले चाँद आसमान के क्षितिज में थोड़ा नीचे होता है या चांद को आड़ में लेते हुए कोई पहाड़ या टीला ऊँचा उठने लगता है या फिर जंगल में मीलों भीतर चाँद होता है–उसी तरह प्रकृति अँधेरे में घिर गयी थी।

13
साहेब का आत्मविलाप

सुहास ने कह दिया था, जो भी हो कैंप मे ही खाना बनेगा। इसीलिए तो आख़िरकार ज्योत्स्ना बाबू और विनोद बाबू ने यह बात मान ली थी। यह मंत्रियों की तरह दो हाथ फावडा चलाकर प्रेरणा देने के नाम पर मेहनतकश इंसानों का अपमान करने जैसा है। ज्योत्स्ना बाबू स्टाफ नहीं हैं, प्राइवेट अमीन हैं। विनोद बाबू के परिचित आदमी हैं। उनके साथ होने से काम जल्दी होता है। पार्टियाँ उनसे दस्तावेज वग़ैरह तैयार करवाती हैं। पर कर्मचारियों के सामने उसे एक ऐसा 'उदाहरण' बन जाना पड़ा इससे सुहास ख़ुद अपने ऊपर ही झुँझला उठा। और मामला एक 'नैतिक कर्मसूची' या फिर 'एंटी करप्सन ड्राइव' सा हो गया। ऐसा लगा मानो सुहास ने किसी नैनिकता या बदलाव की जरूरत महसूस करके इस व्यवस्था का निर्णय लिया था।

पर सुहास की झुँझलाहट इस वज़ह से बढ गयी थी कि उसे फिर कोई विकल्प भी नहीं सूझ रहा था। या अब वह हाट कमेटी के जोतदार और चाय-बागान के मैनेजरों के घर या बंगले में गेस्ट बनकर यहाँ की ज़मीनो पर ग़ैर-क़ानूनी दखल या क़ानूनी दखल या फिर क़ानूनी तौर पर जमीन की मपाई का काम करेगा ? या फिर यहाँ भी सुहास किसी पचड़े में पड़ जाये—क्या वह सेटलमेट अधिकारी होकर यहां आकर भू-क्रांति का आगाज़ कर रहा है ? उसका काम तो रिकॉर्ड बनाना है। रिकॉर्ड तैयार करते समय दो-एक जगह सिद्धांत के निरूपण के लिए उसे अपनी बुद्धिशक्ति या विवेकशक्ति और इनसे भी अधिक इच्छाशक्ति की ज़रूरत पड़ सकती है। इस बार भू-स्वामियो को ज़मीन का रिकॉर्ड बनाना है। पर कोई दूसरा रिकॉर्ड बनाना चाहे तो बना सकता है। सुहास अच्छी तरह जानता है कि ज़मीन पर जहाँ बँटैया किसान का दखल जोतदार पर ही निर्भर करता है—अपने या अपने ही जैसे दूसरे लोगों के दखलबोध पर नहीं—वहाँ ज़मीन का रिकॉर्ड बनवाने के लिए भू-स्वामी भी नहीं आते है और जोतदार भी नहीं। 'ऑपरेशन वर्गा' तो सरकारी क़ानून है—दूसरे क़ानूनों की तरह इसमें भी सुराख होता है।

इतना जानने-सुनने-समझने के बाद भी सुहास इस साल इलाके का माप-जोख देखता है, नक्शा तैयार करता है, सेंसश रिपोर्ट वगैरह पढ़ता है। इतनी तैयारियाँ क्यों ?

इस आधी रात को सुहास का भ्रष्टाचार उसके अपने ही आगे खुल गया, इसी वजह से वह झुंझला उठा। उसके हाथ में कुछ भी नहीं है यह जानकर भी, इस रिकॉर्ड से कुछ भी समाधन नहीं होना है समझकर भी उसने ख़ुद को तैयार किया था कि उसके लिए ही कुछ दिया जाये।

अगर सुहास अपने खाने का इंतज़ाम खुद कर लेना और दफ़्तर के कर्मचारी जैसा हमेशा से ही होता आया है वैसा ही इंतज़ाम मान लेते तो क्या सुहास बच जाता ?

पर जोतदार और चाय बागान बिना किसी खर्च के लोगों को खिलाते नहीं। फिर तो यही सारे कर्मचारी उसके हाथ से चाय बागान और जोतदारों का काम करा लेते। सारी चीजों पर–सरकार-संगठन-कानून और अपनी व्यक्तिगत भूमिका पर, जितना भी सुहास विश्वास करे–उसके हाथ से जोतदार और चाय बागान अपना काम निकाले यह वह कैसे स्वीकार कर ले ?

पर उसकी ईमानदारी के कारण बाध्य होकर कम वेतन पाने वाले कर्मचारी अपने डेली एलाउंस में कुछ रुपये नहीं बचा पायेंगे, जबकि एकमुश्त इतने रुपये मिलेंगे यह सोचकर उन रुपयों को परिवार में खर्च करने की योजना भी उन लोगों ने बना ली होगी। आत्मत्याग करते जाने के आदर्श का जो 'डोज' हमेशा देते रहने की जरूरत है–वह सुहास को कहाँ से मिलेगा ? और दे भी क्यों ? तो क्या उनका नुकसान करना उचित है ? सुहास को तो उनसे कहीं बहुत ज्यादा वेतन मिलता है–उसका डेली एलाउंस बहुत ज्यादा है। उसका वेतन अधिक है, उसे सुख-सुविधाएँ अधिक मिलती हैं। पारिवारिक खर्च कम होने के कारण ही कुछ अतिरिक्त रुपये उसके पास होते हैं, क्या इसीलिए सुहास अपने अधीन काम करने वाले कर्मचारियों के सामने नैतिकता का आदर्श बनने का दंभ करता है ?

इसके साथ ही साथ सुहास को एक और संदेह के घेरे में फँस जाना पड़ा। दफ्तर के कर्मचारी 'एंटी करप्शन ड्राइव' को अपना समर्थन देने को बाध्य हैं उसी तरह इसी वजह से जो आर्थिक क्षति होगी उसकी पूर्ति का कोई इंतजाम नहीं करेगा ? तो फिर सुहास को किधर-किधर नजर रखना पड़ेगा ? सिर्फ खाना ही तो नहीं, घर के 'सर्वोच्च' आदमी का कर्तव्य भी निभाना पड़ता है। अब क्या रिश्वत और भी बढ़ नहीं जायेगी ? यानी सुहास के हाथों और भी सुविधा वर्जित करने की कोशिश नहीं करेंगे ? तो फिर सुहास को किधर-किधर नजर रखनी पड़ेगी ? किस ओर ? एक तरफ फर्ज निभाने के लिए सुहास ने खुद को दूसरे किन-किन चक्करों में फँसा लिया ? और इतना ही नहीं सुहास का जिसमें जी मिचला जाता है उस व्यक्तिगत नैतिकता में उसे दफ्तर समेत अपने को शामिल कर लिया ? पर यह तो फिर अधिकारी के रूप में उसका कर्तव्य–बंगाल सर्विस रूल या फाइनांस डिपार्टमेंट हैंडबुक द्वारा निर्धारित है। अंततः सुहास क्या आधी रात को कड़वाहट भरे मन से अपने व्यक्तिगत नैतिकता जनित आत्मद्वंद्व से निपटने के लिए ब्यूरोक्रेसी के नीतिवाद का गैर वैयक्तिक हल ढूँढता है ? जैसे अधिकारी है तो इसीलिए उसके आचार-आचरण द्वारा ही झूठ सच, अच्छाई-बुराई निर्धारित होगी ? वह रसोई बनाकर खायेगा इसीलिए ये लोग भी रसोई बनायेंगे ? नौकरशाही के सुरागविहीन व्यवस्था में सुहास इस कदर 'फिट' कैसे बैठता जा रहा है ? या फिर साहेबों द्वारा तैयार की गयी व्यवस्था मे इसी तरह 'फिट' हो जाना पड़ता है ? सुहास की नौकरी के इस पहले कैंप मे ही उसका एहसास होने लगा।

14
फ़ॉरेस्टर चन्द्र की आत्मघोषणा

अब यह मैदान कुछ-कुछ साफ़ हुआ। हाट की दुकानों की छत और कमरों की परछाई मिलकर एक नक़्शा-सा दिख रहा है। यह नक़्शा धीरे-धीरे आकाश की पृष्ठभूमि पर तैयार हो रहा है। आहिस्ते-आहिस्ते इस नक़्शे की साज-सजावट बढ़ रही है, उसका विस्तार भी बढ़ रहा है। झाड़-झंखाड़ और छोटे-बड़े छेद, सुराख—सब कुछ इस नक़्शे में शामिल होते जा रहे हैं। धीरे-धीरे दूर-दूरस्थ के पेड़-पौधे भी इस नक्शे में जुड़ते चले जा रहे हैं। और इसके बाद भी बड़े-बड़े पेड़ों का शिखर भी अब, इस पूरे परिवेश का अंदाज़ा विभिन्न तरह के और विभिन्न दूरी की परछाइयों से लगाया जा सकता है। परछाइयाँ इतनी धीमी गति से बढ़ती और फैलती हैं, आहिस्ते से इतनी दूरी तक परछाइयों में स्पष्ट हो उठती हैं कि लगता है किसी भी क्षण यह स्थिर परछाई चंचल हो उठेगी या फिर इन स्थिर परछाइयों के भीतर से गतिमान परछाई गुज़र कर परछाइयों के इस पूरे परिवेश को जीवित कर देगी।

विभिन्न ऊँचाइयों के विस्तार की परछाइयाँ जितनी स्पष्ट हो उठती है—नीचे का उतना ही अस्पष्ट और अन्धकारपूर्ण दिखता है। उस नाच वाले मैदान, सड़क और हाट में प्रवेश करने की गली-कूचों में अँधेरा कुछ ज्यादा ही घिरता है। ऊँचाई और दूरी पर इतनी सारी नयी परछाइयाँ हैं कि नीचे का अँधेरा और भी अधिक गहरा हो जाता है।

मैदान के भीतर अँधेरे का वह साम्राज्य और भी अधिक फैल चुका था। पर आकाश और क्षितिज पर नीरव था पर इन घनी परछाइयों के कारण नीचे का अँधेरा और भी ज्यादा गहराता जा रहा था। रात और अँधेरा सब चीज़ों पर व्याप्त था। इसीलिए शायद एक प्रांत का आलोड़न दूसरे प्रांत को आच्छादित कर रहा था पर बहुत धीमे।

पानी के भीतर की कोई हलचल जिस तरह सिर्फ़ उसी क्षेत्र के पानी को विचलित करती है—अंधकार के मामले में भी ठीक ऐसा ही हो रहा था। एक कराहने की-सी भी आवाज़ सुनाई पड़ रही थी—पर रात के समय तो जाने कितनी ही तरह की आवाज़ें सुनायी पड़ती हैं।

यह आलोड़न अँधेरे का नहीं था और वह आवाज़ भी सिर्फ़ रात की नहीं थी—यह समझने के लिए ही यह अँधेरा आहिस्ते-आहिस्ते एक ज़बर्दस्त आलोड़न का आकार लेता था, ठीक उसी तरह जैसे किसी झाड़ की गहरी निर्जनता में शेरनी के अकेले ही अकेले खेलने की हलचल होती है और फिर उस अँधेरे को चीर कर किसी आदमी का बाहर निकलने की कोशिश में बार-बार गिर पड़ना—जिस तरह नदी के बहाव में डूबता हुआ आदमी बार-बार डूबता-उतराता है। खड़े हो पाना उसके लिए वैसा ही मुश्किल काम हो जाता है जैसा सर्कस दिखाने वाले किसी चौपाया जानवर के लिए खड़ा होना कठिन होता है। किसी अकथनीय कष्ट से उसे दो पैरों पर खड़े होने की

कोशिश में उसका सुप्त अस्तित्व टूटने के कगार पर खड़ा हो जाता है।

पर बहुत कोशिश के बाद आख़िरकार वह आदमी खड़ा हो ही गया और अपने शरीर के एक ओर अँधेरे का हल्का-सा पलस्तर चढ़ाकर खड़ा ही रहा। खड़े रहकर लड़खड़ाता रहा पर उसके लड़खड़ाने से अँधेरा टलता नहीं किंतु अँधेरे के गहरेपन में कुछ फ़र्क़ ज़रूर आ रहा था। उस आदमी के हाव-भाव में यह हल्का-सा फ़र्क़ स्वाभाविक था–इसके अलावा पूरे अस्तित्व पर अँधेरा छाया ही रहा था। पृष्ठभूमि की परछाई के घेरे के सुराग से कभी-कभी आकाश का एक कतरा और उसके सिर पर उठे दोनों हाथों की दस उँगलियाँ और सिर के बालों की परछाइयों की रेखा प्रखर हो रही थी। वहाँ भी वह डूबते हुए आदमी की तरह सिर्फ़ हाथ ही हिलाता रहा।

उस आदमी के खड़े हो जाने पर कराहने की कोई आवाज़ सुनाई नहीं पड़ रही थी। जैसे दम घुटने की सी आवाज़ उसके खड़े हो पाने की कोशिश के ही कारण हो रही थी, खड़े हो जाने के बाद खड़े रहने की कोशिश में वह कोई आवाज़ नहीं कर रहा था।

ज़मीन की ओर देखकर बात करने पर भीतर की आवाज़ गले से जैसे निकलती है उसी तरह वह आदमी बहुत देर बाद बोला, "हू''जू''र"। इस तरह की आवाज़ में पुकारने से पहले ही उसके गले से एक घड़घड़ाहट निकली थी। पुकार चुकने के बाद भी वह आवाज़ बरकरार थी। ज़ोर से थूक निगल कर वह चुप हो गया। ज़ोर से थूक निगलने में उसको अतिरिक्त शक्ति खर्च करनी पड़ी थी, और इससे उसकी गर्दन उसकी छाती पर झूल जाती थी। उसी तरह उसका सिर भी झूला हुआ ही था जैसे सिर नहीं, गले का लॉकेट हो।

किसी तरह सिर को सख़्ती से उठा पाया। ज्यादा हिल नहीं पा रहा था क्योंकि उसे डर था कि उसका सिर कहीं फिर से झूल न जाये। सख़्ती से ही वह सामने की ओर ज़ोर से हाँक लगा–"हा''कि''म" दूसरी बार हाँक नहीं लगा पाया। वरना सिर धड़ से अलग हो जाता, इसीलिए सिर को सख़्ती से खड़ा रहने देना ज़रूरी है। पर आख़िर कितनी देर तक सिर को सख़्त रखा जा सकता है। और जब वह अपने ही वज़न के भार से छाती पर झूल पड़ना चाहता था तो उस आदमी ने सिर को ज़ोर से पीछे की ओर ऊपर उठया और आकाश की ओर देखकर पुकारा, "सा''हे''ब"।

और वह हुज़ूर, हाकिम, साहेब के आकाश से उतर आने को जैसे देखता रहा। आकाश से उतरने में काफ़ी समय भी तो लगना है। पर उसके हाकिम के ज़मीन पर पैर रखने के साथ ही साथ वह गर्दन सीधी कर उन्हें देख नहीं सकता। गर्दन उठाने में उसे समय लगेगा। उठाकर, वह अँधेरे में हुज़ूर को इधर-उधर, इस-उस कोने में ढूँढ़ने लगा, फिर कुछेक कदम सीधे चलकर खड़ा हो गया। बोला, "हुज़ूर, मई आ गेछू, मई फ़ॉरेस्टर चंद्र बाघारू बर्मन।"

फ़ॉरेस्टर अपने दोनों हाथ जोड़ना चाहता था, पर ऐसा करने में वह किसी भी

तरह सफल नहीं हो सका। दोनों हाथों की गति और वज़न दो तरह का है। बायाँ हाथ उठता था तो दाहिना नहीं उठता। बायें हाथ को नमस्कार के लिए बहुत ऊपर उठाने के बाद फॉरेस्टर आँखे सकुचित करके देखने लगा उसका दाहिना हाथ नहीं उठ पाया। नज़र घुमा-घुमाकर यह देख लेना चाहता था कि उसका दाहिना हाथ किधर है। फिर इधर-उधर देखने के बाद बड़े ही आकस्मिक तरीके से अपने दाहिनी ओर उस हाथ को देखने लगा। तब उस हाथ को अपने बायें हाथ के पास लाने के लिए उठाया। बड़ी सावधानी से थोड़ा-थोड़ा पर इधर बायाँ हाथ फिर से झूलकर नीचे उतरने लगा था। थोडा-सा झूल जाने के बाद फॉरेस्टर की नजर उस पर पड़ी, तब वह दोनों ही हाथों को थोड़ा स्थिर करके एक बार बायीं ओर फिर दाहिने हाथ की तरफ देखा। इस तरफ दो-एक बार देखने के बाद ओर अधिक देर न कर वह अचानक दोनों हाथों को नमस्कार की भंगिमा में ले आया। कुछ-कुछ लुंज-पुंज तरीके से दोनों हाथों के सटने पर फॉरेस्टर उस जुडे हाथ को देखकर ज़ोर से हँसा—जैसे दोनों हाथो की गड़बड़ी को सँभालकर दोनो हाथों को अपने वश में करने में सफल हो गया हो। अपने मन ही मन हँसते-हँसते दोनो सटे हुए हाथों को देखकर फॉरेस्टर बोला, "इहाँ ?" इतना कहकर फिर हँसा।

अब अपने जुडे हुए हाथ को सिर पर लगाने की बजाय उसने सिर को ही हाथ पर झुका लिया। झुकाने मे उसे समय नहीं लगता, पर सिर सीधे नही झुकना चाहता—लुंज-पुंज तरीके से झूल जाना चाहता था। पर फॉरेस्टर उसे झूलने नहीं देता। वह धीरे-धीरे सिर को सटे हुए हाथ के पास झुकाना चाहता था। दोनों हाथ बडे ही शिथिल तरीके से सटे हुए थे, हाथों की उँगलियाँ लगभग अलग होकर कलाई पर झूल रही थीं। फॉरेस्टर ने कलाई पर सिर झुका लिया। फिर हाथ को सटाये हुए ही सिर उठाया। आहिस्ता-आहिस्ता सीधा करते हुए अचानक सीधा हो गया हो—और इससे 'कट्' की आवाज़ भी हुई। जैसे फिर अपनी जगह पर फिट बैठ गया हो। फिर फ़ॉरेस्टर बोलना शुरू किया, "ह···जू···र," मई फॉरेस्टर चंद्र आ गई छू" कहते ही सटे हुए हाथों पर उसकी नजर पड़ी। तब उसके चेहरे पर एक ऐसा भाव दिखायी पड़ा जैसे उसे हाथो को जबरन अलग करना पड़ रहा है। फिर वह हाथों को परस्पर अलग करके सीधा खड़ा हो गया। फिर हँसकर बोला, "हजूर मई आ गइछू, मई फ़ॉरेस्टर चन्द्र, फ़ॉरेस्टर चन्द्र बाघारू बर्मन, देख लोइ, हमरा चेहरा, देह देख लोई। टारच सेई वा माचिस जलाई, देख लोई, वन-टू-थीरी।"

तभी सचमुच जैस टॉर्च जल उठा, फॉरेस्टर सीधा खड़ा हो गया। हँसने से उसकी दोनों आँखें लगभग मींच गयी थीं और उसके बड़े-बड़े चौड़े दाँत बाहर निकल आये हैं। वह मुड़कर अपना हँसता हुआ चेहरा दिखाता है, जैसे उसकी तस्वीर उतारी जा रही हो। एक बार बायीं ओर फिर एक बार दाहिनी ओर मुड़कर सीधा खड़ा होकर फ़ॉरेस्टर ने पूछा, "हजूर, मोई देख लइने त ? बढ़िया सेई देख लइने त ? मोइर नाम माई रखिइन हजूर। फ़ॉरेस्टर चन्द्र बाघारू बर्मन। बप्पाई नाम···त बप्पाइ नाम छोड़ देई।

बप्पाइ केई ढेर बात हई। मोइर आपन बात पहलई सुनाइये तुमाइके।"

अपनी बात शुरू करते-करते फ़ॉरेस्टर रुक गया। अचानक दोनों हथेलियों से अपनी आँखें ढँक लीं, "आपई का टारच का रोशनइ मोइर ऑखिन के चकचौंधई देई, हजूर। आँखिन के पलक ऊपर रोशनइ चमकाइछू-चमकाइछू—उसइ जैइसा तिसता का किनार का बालू चमकाइ। हजूर, इय चमक आप थोरा कमा देई।"

दोनों हाथों से आँखे ढँककर फ़ॉरेस्टर और भी अँधेरा कर रहा था। सन्नाटा तैयार हो रहा था। उस सन्नाटे मे अब तक की कही गयी बातें भी खोली जा रही थीं। अंत में उसी सन्नाटे के भीतर से ही फॉरेस्टर ने अपनी बात फिर शुरू की, "सुनइ हजूर, मोरइ इको बात छे। नाई इको नाई दूई बात। मोइर दूईठो बात छे कि ई उई दूईठो बात ? ईको बात होइलो जे तोमराइ जामीनइ हाकिम। त मोइर नाम तुमइ काटाइ दाउ। मोइर जामीनइय तोरइ नाम तुमइ कटाइ दाउ। मोरइ इको जामीन आइछू। आपलचाँद फ़ॉरेस्टर मेई लगाइ। मोइक ईहें गयानाथ जोतधार पाठाइय। हल बइल बीज सबइ कुछू उरें। मोइर हल कुछो बरस रहिले। अवइ नाई। मोइर नाम काटाइ दाउ। इहे ज़ामीन लिखाइ दाउ गयानाथ जोतधारे नाम। बइल जइसका, बीज जइसका, हल जइसका, धान जइसका—जामीनइ त उसइ का होवइ। न इह जमीन मइ फ़ॉरेस्टर चन्द्र बाघारू बर्मन छोड़ी दिछू। लिखइ दाउ। सीगी फोरेस्टर चन्द्र बाघारू बर्मन इहे जामीन हने उच्छेध कुश दे-इ-न्न।"

हाँक लगा चुकने के बाद फॉरेस्टर हँसने लगा। हँसते-हँसते उसके शरीर की सख़्ती शिथिल होने पर हंसते-हँसते ही उसने अपने को संभाल लिया। हँसी पूरी हो जाने पर फॉरेस्टर ने बड़े ही संतोष के साथ बोला, "बस हजूर, मिनती रख लेईहें अपालचानदार फ़ॉरेस्टर चन्द्र बाघारू बर्मन का देउनिया-जोतदार गयानाथ वमन उच्छेध कर देइल। गयानाथ सब सीखनाइ चाहिछे। कहै, ऐ फोरेस्टर, मोइरे हल चलाइया सिखाइ देइ। बापपितामहै काम मई भूलाइ गइछू। मोइक सीखीया दे। न भई जरूरै सिखाई देइ। हजूर, मई गयानाथै सबै सीखाइया देइ। कैसइन हल पकड़ने, हल चलाइने, खाद दइने, छाई देइने, काढ़ा बनाने, चारा लगाने—सब सीखाइया देई मई—कालहै भोरै बस, कालै भोरे से गयानाथै जोतधार, गयानाथ हल चलाइया मई इधरै से जाइछे, गयानाथै धौर उनैको हल चलाइनै सिखायै खातिर।

फ़ॉरेस्टर ने जाने के लिए पैर बढ़ाया। फिर मुड़कर बोला, "मोइर त दूई बात छू, इको बात मई फॉरेस्टर चन्द्र इहै के गयानाथ जोतधार खलास देइछू। मिनती रख लईहें हजूर, फोरेस्टर चन्द्र बाघारू बर्मन के। इहाँ त बहुतै फॉरेस्टर छू। बहुतै बर्मन कउनै साचा, कउनै जूठा ? हजूर देखे लेई। जैइस फॉरेस्टर चन्द्र बाम पाछे, आऊर दाहिन पीठै बाघ के दुईठो पांजा चिन्हान हई उहै फॉरेस्टर चन्द्र असलहई। त देख लेईं। पाछा कापड़ उठाइ के दिखाऊ। उठैले आरे उठैले। पिच्छू क कापड़ उठैइके पाछार घुराय कै देखाउ।" फोरेस्टर नाचते हुए चक्कर काट कर खिलखिलाकर हँसते हुए अपने चारों

ओर अदृश्य भीड़ के एक-एक आदमी को ऊँगली दिखाकर बोला, "उठैले, उठैले, पिच्छू क कापड़ उठैले।" फ़ॉरिस्टर घूमता जा रहा था और कहता जाता था, "उठैले, उठैले" फिर एक चक्कर लगा लेने के बाद फॉरिस्टर ने सिर हिलाकर कहा, "कोहू दिखाइले नाइ सकतै, हजूर। सबै का पिच्छू रहैइये। सबै के पिछू हगा रहलै, बाघ नाई। पर मई साचा फ़ॉरिस्टर चन्दर बाघारु बर्मन। मई मोइर उघाड़े दैईं। देखालै हजूर, तुमरे टारच ऑखिन म न देउ। चलै, रेडि, बन-टू-थिरी।"

फॉरिस्टर ने अपने बदन का चिथड़ा हटाकर पिछले हिस्से को उघाड़ दिया। जैसे टॉर्च की रोशनी सचमुच पड़ी हो ऐसे घूम-घूमकर दिखाने लगा, ऐसे चक्कर लगाने लगा जेसे चारों ओर सचमुच देखने वाले हों।

चक्कर लगाने के बाद फॉरिस्टर सीधे खड़े होकर बोला, "बस हजूर, अबै तो आप जानै लेइन के जोई बाघारू सोई साचा फॉरिस्टर चन्द्र। इहै तो बहुतै फ़ॉरिस्टर-बर्मन हई बहुत हजूर। रायबर्मन भी हईं। पर बाघारू बर्मन इऐ इकेठो। त मई जाइछे हजूर। गयानाथै इल चलैइया काम सिखाइय जाइछे। तूमलोगई कल फइसला दे दईहैं।—बाघारू अपनाइ जामीन गयानाथ जोनधार के दिया देइछे। अबैसे गयानाथ हल चलाइबे इहे।"

"न मई जाइछे हजूर," बाघारू कुछेक क़दम के बाद रुक गया, "हजूर इकोठो सिगरेट खाइया जाइछू," बायीं ओर के कान से एक सिगरेट निकाल कर बाघारू अपने होंठों के बीच रख लिया। जले हुए सिगरेट का आख़िरी बचा हुआ हिस्सा। दाहिने कान के पीछे से माचिस की तिली और कान के भीतर से बारूद लगा हुआ छोटे-से काग़ज़ का टुकड़ा निकाल कर सामने लिया। फिर सिगरेट को होंठों के बीच में रखे-रखे बोला, "साहेब, सांच रहइलै मई सराबी छू, देखलइ कइसनै फस् करै के काठी जलाइबे, वन-टू-थिरी" पहली बार नहीं जली। दूसरी बार जल गयी। माचिस बुझ न जाये इसलिए उसने दोनों नलहथियों से घेरा बनाया। हल्का-सा मोड़ने में उसके सख़्त पंजे में खिंचाव महसूस हुआ जैसे टूट ही जायेगा। पंजे पर झुके हुए चेहरे पर अँधेरे में मंगोलिया स्थापत्य का नमूना स्पष्ट होने लगा था। सिगरेट जलाकर तीली फेंक देने के बाद बाघारू जितना धुआँ छोड़ता था उससे ऐसा लगता था कि मात्र एक ही कश लेने के बाद सिगरेट ख़त्म हो चुकी है। सिगरेट को मुँह से निकालकर बाघारू उसमें सुलगती आग को देखता रहा।

15

सर्वे पार्टी का दौरा

सुहास को आभास हो चुका था कि वे लोग जग गये हैं और तैयार हो रहे हैं। पर रातभर की नींद तब भी आँखों में सवार थी। वह करवट बदलता रहा। पर बाजू वाले कमरे से और भी तेज़ आवाज़ें आने लगी थीं। कल सुबह छह बजे से तिस्ता के उस पार से काम शुरू होगा—फिर अपलचाँद के दक्षिणी छोर से उत्तर-पूर्व की ओर बढ़ेगा। यहाँ

से दो-तीन मील पैदल चलना पड़ेगा। अभी न उठा तो देर हो जायेगी।

यह सोचते-न-सोचते बाहर दरवाज़े से खटखटाने की आवाज़ सुनाई पड़ी—'सर' यह विनोद बाबू की आवाज़ थी।

'हूँम' कहकर सुहास को उठना पड़ा। पर आँखें खुलती ही नहीं। आँखों में बड़ी जलन महसूस हो रही थी। इसीलिए उसके पैर स्लीपर किसी भी हालत में टटोल नहीं पा रहे थे। दरवाज़ा खोलकर सुहास बाहर निकल आया। देखा कि उसके कमरे के सामने बरामदे में एक बड़ी बाल्टी में पानी और नहाने का मग रख दिया गया है।

मुँह धोना होते-न-होते प्रियनाथ एक कप चाय सुहास के टेबिल पर रख गया। उसके साथ के सब लोग बिल्कुल तैयार खड़े थे। बस उसी के कारण देर हो रही थी। पर वह मिनटों में तैयार हुआ करता है। पर पहले ही दिन वह सबसे आखिर में तैयार हो रहा है। इससे सुहास मन ही मन लज्जित हुआ। पर किसी ने उसे तैयार हो जाने के लिए जल्दी नहीं मचाई। इधर विनोद बाबू या अनाथ-प्रियनाथ किसी ने भी जल्दी नहीं मचाई। जैसे उन्हें पता हो कि सुहास को देर लगेगी। या फिर सुहास जब निकलेगा तभी काम शुरू होगा—इसीलिए उनमें किसी तरह की उत्तेजना नहीं थी।

चाय पीते-पीते सुहास झट से पानी ले आया और दाढ़ी में साबुन घिसने लगा। सुहास ने सोचा था दो-एक सिप चाय लेने के बाद दो बाद दाढ़ी पर रेजर चला लेगा। यहां तो एक बात बन गयी पर मूंछ तक आकर रुक गयी। मूंछ के समय हड़बड़ाने से और भी ज्यादा समय लगेगा। इसीलिए सुहास आहिस्ते से ब्लेड चलाना चाहता था पर अंगुली ठीक नहीं बैठ रही थी। सुहास ने जल्दी से मूछ पर से ब्लेड हटा लिया और आईने में अपनी मूंछ देखता हुआ सोचने लगा, ये मूंछें हर रोज़ उसे परेशानी में डालती हैं, डालेंगी। क्यों न इन्हें उड़ा दिया जाये। बहुत हुआ तो सिर्फ़ विनोद बाबू, प्रियनाथ बाबू और अनाथ बाबू को इसका पता चलेगा। और तो किसी ने उसे पहले देखा नहीं, दफ्तर लौटूंगा तो...। यह मौक़ा हो सकता है फिर हाथ भी न आये। आज ही सब लोग मूँछ वाले हाकिम साहब को देख लेंगे। फिर मूंछ सफाचट नहीं किया जा सकेगा। आख़िरकार सुहास ने ब्लेड से नीचे की रेखा को सीधा किया और फिर ऊपर से ब्लेड चला दिया। फिर भी आदत के मुताबिक आईने में देख ही लेना पड़ा और देख लेने के बाद छोटी कैंची भी उठानी पड़ी थी। लाइन को थोड़ा दुरुस्त करके आईने से उसने झट से नज़र फेर ली। विनोद बाबू ने खिड़की से कहा, "आप तयार होइए। मैं उन लोगों को लेकर आगे बढ़ता हूं। ज्योत्सना बाबू आपको साथ ले जायेंगे.

"मैं करीब-करीब तैयार हो ही गया हूं।" कहकर कप की बाक़ी चाय सुहास ने मुँह में उड़ेल ली। फिर कहा, "बाथरूम किधर है ?" कहकर समझ गया कि आफ़त आ ही गयी है। कल शाम से दो-एक बार ऐसा लगा था पर पूछना नहीं हो पाया। विनोद बाबू खिड़की से हट चुके थे, फिर भी वहीं से बोले, "देखता हूँ पाखाना है भी ?"

इसका मतलब ये लोग सब मुँह अँधेरे उठकर मैदान या झाड़-झंखाड़ में कहीं

काम तमाम कर आये हैं। अब तो दिन निकल आया है। मैदान में जाना असंभव है। और फिर सुहास मैदान में जा सकेगा ? इस मामले में सुहास को पहले ही संदेह था। अभी भी इस बारे में संदेह का पूरी तरह खुलासा नहीं हुआ है। सोच रहा है इन लोगों की तरह मुंह अंधेरे उठ जाता तो हो सकता है मैदान में जाना उसके लिए भी संभव हो जाता, पर अभी निकल कर दोपहर बारह एक बजे तक काम है। पूरी तरह तैयार हुए बिना भी कैसे निकले ? दोपहर को लौटकर आ भी जाये तो यहां बाथरूम तैयार हो जाने से रहा। सुहास थोड़ा परेशान-सा कमरे से निकल पड़ा। उसके बाथरूम की समस्या के कारण काम पर जाने में देर हो जायगी—यह भी उसे नागवार है। इससे तो अच्छा विनोद बाबू ने जो कहा वही ठीक है। प्रियनाथ बाबू और अनाथ बाबू को लेकर विनोद बाबू पहुंचे, ज्योत्स्ना बाबू के साथ वह कुछ देर में ही पहुंचेगा। बरामदे में किसी को न पाकर सुहास ने सीढ़ी के मुंह पर आकर देखा, बाग के पास विनोद बाबू और प्रियनाथ बाबू खड़े हैं और ज्योत्स्ना बाबू किसी आदमी से कुछ कह रहे हैं। सुहास के कुछ कहने से पहले विनोद बाबू ने कहा, "सर पाखाना तो गंदा पड़ा है, भीतर झाड़-झंखाड़ भी है। अभी कहा गया है, साफ करके रखेगा। आप ..." विनोद बाबू अपनी बात पूरी नहीं कर सके। तब तक ज्योत्स्ना बाबू उस आदमी से बात खत्म करके लौटकर विनोद बाबू की बातों का सूत्र पकड़कर सुहास से और देखकर बोले, "गिरिजा बाबू के पास खबर भेजी है। हम लोगों के लौटने से पहले ही सब ठीक-ठाक हो जायेगा।"

"हां, हां चलिए। हम लोगों को रवाना हो जाना चाहिए। बाद में देखा जायगा।" कहकर सुहास शर्ट-पैंट पहनने के लिए कमरे में चला गया और सोचा, अगर मैदान जाना बहुत जरूरी हो ही गया तो जहां जा रहे हैं वहीं सुविधा से चले जायेंगे। पर गांव भर के लोग वहां खड़े होंगे और साहब मैदान जायें—यह भी जाने कैसा दिखेगा। सर्वे तो दोपहर बारह एक बजे तक चलेगा। देखा जायगा। सुहास बाहर निकलकर बोला, "चलिए, देर तो नहीं हो गयी ? गिरिजाबाबू कौन हैं ?"

"यहीं के हाट कमेटी के हैं। वहीं जो कल आपसे मिले थे। नहीं देर क्या, देखते ही देखते पहुंच जायेंगे।"

कल शाम को जिसका निमंत्रण सुहास ने अस्वीकार कर दिया था आज सुबह उसी से मदद की जरूरत पड़ गयी—इससे वह शर्मिंदा हुआ। अब फिर वह सज्जन दोपहर को आकर कहीं और ले जाना चाहें जहां पर एटैच्ड सामने ही तो चाय-बागान और उन लोगों का इंस्पेक्शन बंगला है। सुहास मैदान नहीं जा सका इसी से उसकी कमजोरी साफ हो जाती है।

वे लोग पक्की सड़क पर आकर खड़े हो गये। प्रियनाथ ने पीछे से आकर विनोद बाबू को चाबी दी। वह ताला लगा रहा था। फिर वे लोग दक्षिण की ओर चल पड़े। सुहास ने केर्वी (खानापूरी-कम-बुझारत) का काम एकदम से तिस्ता के किनारे से शुरू

कर दिया--ठीक जहा अपलचाँद फॉरेस्टर के दक्षिणी-पश्चिमी सीमा और गाजलडोबा चाय-बागान है। पश्चिम में तिस्ता। यहीं से '88 में बाढ़ से तिस्ता का पानी घुसा था। गाजलडोबा चाय बागान और यहीं का अपलचाँद फॉरेस्टर का एक बहुत बड़ा हिस्सा बिल्कुल बह गया था। इसीलिए वहाँ मेपिंग में बहुत झमेला है यानी तिस्ता अब कहाँ से होकर बह रही है, नदी में कहीं टीलानुमा द्वीप बन गया है या नहीं, गाजलडोबा का कितना हिस्सा नदी में बह चुका है और कितना अभी भी मौजूद है। सन् 68 की बाढ़ के बाद पिछले दस-पंद्रह सालों में अपनी पिछली स्थिति में लौटा है या नहीं, अपलचांद का दक्षिण और दक्षिण-पूर्व में कहां, किस सीमा तक किया जाये--इन सबका निर्णय करना पड़ेगा। इसके बाद अपलचांद जंगल में बायीं ओर उत्तर में रखकर वे लोग धीरे-धीरे सीधे उत्तर-पश्चिम की ओर आनन्दपुर चाय-बागान के जोतलैंड तक पहुँचेंगे। यहाँ मेपिंग का कम झंझट है और फॉरेस्टलैंड का तो मौजामैप (मानचित्र) वगैरह ...र्मिंग की ओर से ही तैयार हो जाता है। चाय बागान के मामले में भी ऐसा ही होता है। इसीलिए जंगल को (बायें हाथ में रखकर) दरकिनार कर इस टुकड़े के सर्वे का काम खत्म कर लेना है। दूसरे दौर में ...... से होकर उसके नीचे के हिस्से से होते हुए दक्षिण-पश्चिम में एकदम बड़े नाले तक। इस योजना के तहत नोटिस और इस्तेहार दे दिया गया है।

पक्की सड़क छोड़कर वे लोग मैदान में आ गये, पर पगडंडी से होकर चलने के कारण उन्हें एक लाइन में होकर चलना पड़ रहा था। सबसे आगे अनाथ था - कंधे पर फोल्डिंग सर्वे टेबिल लिए हुए। और सबसे पीछे प्रियनाथ था। जंजीर भरी थैली उसके दाहिने कंधे पर थी लेकिन बायें और दाहिने दोनों हाथों से उसे ज़ोर से पकड़ ...। वजन भारी होने के कारण प्रियनाथ का सिर बायी ओर झुक गया है। उसके पीछे ज्योत्सना बाबू थे--उनके कंधे पर भी एक बेग था और हाथ में एक पोटली थी। उसका अपना सामान बैग में था और हाथ में लाल कपड़े में 'मौजा' (प्लाट) मानचित्र का ही एक हिस्सा था। उसके पीछे सुहास। उसके दोनों ही हाथ खाली थे। पीछे विनोद बाबू-- उनके हाथ में भी 'मौजा' मानचित्र (प्लाट) ही था। सुहास को इन लोगों ने कुछ भी पकड़ने नहीं दिया था। सुहास ने भी नहीं माँगा था। कारण सुहास खुद नहीं समझ सका कि इनमें से किस चीज़ को वह माँग कर ले सकता है। एकमात्र 'मौजा' (प्लाट) की दो-एक बही वह ले सकता है। पर इन लोगों ने उन सामानों को बोरे में ऐसे बांधा था कि मांगने का कोई चारा भी नहीं था। पर सुहास को यह इतना बुरा लग रहा था कि बाकी चारो लोग या कहना चाहिए तीनों, कारण ज्योत्सना बाबू तो उनकी पार्टी के आदमी नहीं हैं, इतना भारी बोझ उठाये चल रहे हैं और वह एकदम खाली हाथ। ज्योत्सना बाबू भी कुछ क्यों उठायें। पर वे इस पार्टी में शामिल होते और प्राइवेट प्रैक्टिस करते हैं इसीलिए उन्हें कुछ उठा लेना पड़ता है। इससे उनके प्रैक्टिस में भी सुविधा हो जाती है।

"ज्योत्सना बाबू, आप मुझे अपने कंधे वाला बैग दे दीजिए।" सुहास ने पीछे

से कहा।

उसकी बात पूरी होने से पहले ही ज्योत्सना बाबू ने कहा, "नही सर, नहीं। यह तो मेरा बेग है।"

सुहास को चुप रह जाना पडा—एक बार उन्होने पीछे मुडकर विनोद बाबू को देखा—दोनो हाथो मे मोटा-मोटा 'मौजा' लेकर चल रहे हैं। सुहास उस 'मौजा' का साइज देखकर समझ गया था कि इसे झुलाना उसके वश का नही। इसे कंध पर ही उठाना पड़ता। और अपना 'मौजा' खुद अपने कंधे पर रखकर सर्वे अधिकारी के पास जाना पडे तो उसे सर्वे नही करना पडेगा।

16
गयानाथ द्वारा खेतिहरगिरी की प्रैक्टिस

हल मे बैल जोतकर और खेत तक हल-बैल पहुंचा कर बाघारू ने बाहर से गयानाथ को पुकारा—"ए मालिक, उठन काहि नाही। गेदा चढ गइछै।"

गयानाथ उठकर बिस्तर पर बेठे-बेठे खासना शुरू कर दिया। अभी वह खासेगा, फिर थोडी देर हॉफेगा, तब जाकर उठेगा। बाघारू खलिहान मे घुसकर बॉस के बिचाली के पास बीडी ढूंढने लगा, पर नहीं मिली। बाहर निकलकर देखा, 'फटफटिया' बाहर रखकर आसिदर जिमाई (जवाई) खडे-खडे सिगरेट पी रहे हैं। "ए जिमाइ, इकाठे सिगरेट मोईरे दउ।" अपने सिगरेट का एक लम्बा सा कश लेकर आसिदर ने हाथ बढ़ाकर बाघारू को दिया। बाघारू ने सिगरेट हाथ मे लेकर लबी सास ली। जैसे वह सूंघना चाहता हो कि यह गध सिगरेट की है या आसिदर की। "जिमाई का देहे मं कइसा पटरोल का बासछे। अऊर इ बूढा का बदने मं कादो-कीचडिया का गदछे।"

"एई, काया कहते ?"

"कुछू न, कुछू न। गंद के बात।" बाघारू अपने अगूठ और तर्जनी मे सिगरेट फंसाकर खेत की ओर देखते हुए करीब आधा सिगरेट पी गया। पर उसकी ऊंगलियाँ इतनी भारी और मोटी है कि लगभग आधी सिगरेट ढक जाती है। होठों को बाघारू ने सिकोड ली—उसके होंठ मोटे नही हैं। खेत मे सफेद और धूसर रग की चितकबरी बैलों की जोड़ी खड़ी इधर-उधर देख रही थी, काफी देर तक एक-एक तरफ देखती रहती है।

गयानाथ हल चलायेगा इसीलिए दो-दो बैल जोते गये हे। बैल हल खींचेगे। बूढ़ा सिर्फ हल थामे रहेगा। इस सर्वे का साहेब सुना है नक्सलपंथी हैं। "जेइ जोतधार अपनै खेती दिखाइबे, उनके कहइबे, चालाउ हल चलाउ। उके बाद मं दूई हाथा देख—नरमबटे नाके सखतबटे। टेढ़ियाबटे कि नाहीं टेढ़ियाबटे हथेलिया मं हाथा फेरे के देखबे कि हाथा बबूलिया के बाछा निया खड़खड़िया कि नाही। अउर जेई हल जोता नाहीं सकैइत उकै नामा केनसिल करे दिबे। अधबटिया नामे ज़मीन रिकारड करे दिबै।"

इसीलिए गयानाथ हल चलाना सीख रहा था। अपलचाँद फॉरेस्टर की ज़मीन में लगा हुआ है—उसका बड़ा-सा खेत। खुद भी किसान ही है। उसके खेत पर कभी-कभी बाघारू खेती करता है। उस ज़मीन को उसके अपने खेत के रूप में रिकार्ड कराते समय अगर साहेब गयानाथ को हल चलाकर दिखाने को कहे या देखने के लिए कि वह सचमुच खुद खेती करता है या नहीं ! गयानाथ का हाथ वैसे नरम भी नहीं है न ही वह बहुत गोरा है। पर हल तो बैल खींचेंगे और बैल तो बाघारू से परिचित हैं। वैसे बैलों को क्या पता कौन खेत का मालिक है, कौन हल चलाता है और कौन साहेब है। और साहेब अगर उसे हल चलाने के लिए खेत पर उतार ही दे और तब बैल उसकी बात न सुनें तो ? इसीलिए गयानाथ ने बाघारू से कहा, "बइल माथे मोइक पहिचान करइ दे बाघारू। मोइर आवाज-टावाज बइल सेउ पहिचान करइ ।"

आसिंदर बोला, "ए बाघारू, तुमार बूढ़ा का दिमाग फिर गइले रे ? ई अबै हल डिगदब (चलाना) करै चाही ?" इस बात के जवाब में बाघारू ने मुड़कर भी नहीं देखा। खेत और बैलों की तरफ थोड़ी देर तक वह देखता रहा जैसे दोनों बैल उसके सामने, थोड़ी-सी नीचे ज़मीन पर और हल उनके कंधे पर लगा हुआ है। फिर बोला, "मई काय जानं ? काल्है हटात् सुनइछे साहेब नाकि हाथ टिप के देखिबै, देहउ टिप के देखिबै, माथा टिपबै·· ।"

उसकी बात पूरी होने से पहले आसिंदर ज़ोर से हँस पड़ा। सुबह होने से पहले रात का अँधेरा और भी घना हो जाता है उसी तरह ज़रा ज़ोर से हँसते हुए बोला, "तूमार अउर बइल का बुधि न एके जइसा। तूमार सेटलमेंट साहेब का बिहा करैल जाइसछे—लरेकी का देहिया टिपबे, गाल टिपबे ?" फिर आसिंदर को जैसे और भी कुछ याद आ गया और वह गयानाथ की ओर इशारा करके हो-हो कर हँसते हुए बोला, "ई बूढ़न कै देहिया टिपबै त जिबा बाहिरे हइया जइबे। अ गाल टिपबै त सबै दाँतियाँ खुलके भड़भड़ाके गिरे जाइबे।"

गयानाथ दरवाजा खोलकर निकला और खड़ाऊं खड़खड़ाता हुआ कुएँ की ओर निकल गया। उसके बदन पर सिर्फ़ धोती थी। आँख-मुँह पर पानी का छींटा देकर वह फिर खटिया तक लौट आया। फिर बनियान डालकर और धोती को घुटने तक उठाकर खटमट करता हुआ तैयार होकर कमरे से बाहर निकल आया। आसिंदर हक्का-बक्का सा देखता रहा। बूढ़ा अब दरवाज़े पर खड़ाऊँ खोलकर आँगन में उतर आया तो आसिंदर बोला, "खेतिया म जाइबे का काम किया तूमारा काम हाय ? छाड़ो दैन। उकिलबाबू पठाइया दैन। उहे जामीन हाय। जोइ करियबा उहे करियै। तूमारे अबै हल चलाइबै ?"

गयानाथ ने हँसकर जवाब दिया, "काहे रै बाबूआ, खेतिआरा कै जमाई होइले से लाज लागिछे ?" फिर मैदान की ओर देखते हुए जल्दी-जल्दी उतरते हुए बोला, "ए बाघारू ! चल अबै !"

आसिदर पीछे-पीछे आया पर पगडंडी पर नही गया। ऊपर से बोला, ' तुमरे एइ बुधि कौउन दिहिन। हाकिम किया तुमार डिरेइभिग लाइसेस देबे का ?"

"आरे. कालै हठान् सुनिछु रू हाकिम नकसालिगा छे। हाथ टिपबे, दाँत टिपबे।"

"आरे बब्बा, तुमर किया माथा फिराय गईले। सटलमेट हाकिम तुमरे हाथ देखिये जमीन रिकॉड करिबे ? तुमार सब काम किया ? छाड़ी दउ। मइ कैम्प म जाछे देखिय।"

"आरे बाप्पा, तु त तुमार जीवनियाभर इकोटो सेटलमट नाही देखइल। जिसको जाने नियमबादे करेल होय। खेतियान भी रहिन आ ई हमारे पिराक्टिसा गइले।"

"कइसा पिराक्टिस ?"

"एहि हल चलैइबान। जदी मोदर आज गानहारी करनु कह ?

"तुमार कहा हल चलबनु करिबे ?"

"उइ फोरस्ट जमीन म "

"त तुमे चलइ जाइछु। मइ पिराक्टिस करेबे। हाकिम काहल जर दिन इ माइर जमाइ, इहे हल चलाइले।" आसिदर खड़ा हो गया।

'आर हट जाइ बब्बा।" कहकर गयानाथ ने जल्दी मे आग बढकर बैना के पीछे लग हल को पकड लिया।

आसिदर जोर स बोला, ' ए बप्पा, तुमी छाड़ी दउ। मइ हल धरब।

गयानाथ मुँह से 'हट्' आवाज निकाल रहा। दोना बल अपनी अपनी पूंछ हिलात रह, मुह भी घुमाते रहे, पर हिल नही। 'हट' करके गयानाथ न फिर एकबार आवाज कर दी पर बेल नही हिले। पास ही खडे बाघारू क जीभ से दो बार आवाज निकलते ही बैल आगे कदम बढाते हुए चल पड़।

आसिदर चिल्ला कर जोर से बोला. "एइ बप्पा, तुमर न मइ गिर देउ। छाड़ी दउ। मइ जा रहछे, मोइक दउ।"

गयानाथ ने इस बार डाँटकर कहा, "एई, तुम चुप करेउ, बाका। तुमर बात सुनेक मोइर जमीन मुई खरचा कर देउ का ?"

17

हल, बैल और मोटरसाईकिल

अपलचाँद फॉरेस्ट से सटी जमीन को लेकर ही इतना झमेला है। फॉरेस्ट म जमीन इस कदर सटी हुइ है कि लगता है फॉरेस्ट की ही जमीन है आर कोई उस पर खेती करता है। इस जगल का एक अश इन्ही लोगो का था–गयानाथ के पिता पद्मनाथ, पद्मनाथ के पिता भद्रनाथ के समय मे। भद्रनाथ को सब भादह राय के नाम से जानते थे। इन्ही के समय म ये लोग भद्र और नाथ हुए। बाद मे पचास साल पहले सेटलमेंट के समय निशान लगे जमीन के एक हिस्से मे जगल की कुछ अपनी जमीन शामिल

हो जाती है। ऐसा होना तो असम्भव ही है। होना भी नहीं। पर हो जाने पर उनकी अपनी जमीन जंगल की जमीन के भीतर ही शामिल थी। और एक ही बही खाते में दर्ज यह भद्रनाथ राय पद्मनाथ राय और गयानाथ राय—तीन पीढ़ियों से दखल आ रहे हैं। उन दिनों जमीन का हिसाब खेतिहर मजदूर और अधबट्या किसान नहीं रखते थे। इसीलिए सब यही जानते थे कि भादर राय की जमीन का पूरा हिस्सा भादर राय के ही नाम है। और फॉरेस्ट डिपार्टमेंट के आदमी कभी उस जमीन पर साल का पेड़ नहीं लगाते हैं। या फिर वे लोग ऐसा न करें इस डर से भद्रनाथ पद्मनाथ, गयानाथ तीनों पीढ़ी नजर रखे रहती थी फलस्वरूप फॉरेस्ट की जमीन के बहुत बड़े हिस्से में भी गयानाथ अपनी जमीन कहकर खेती करता रहा है।

पर अब अड़चन हो सकती है। अब तो सारे खेत मजदूर और अधबट्या किसान जमीन का हिसाब समझते हैं। जमीन का नपाई भी समझते हैं। उस पर इस जमीन से सटे आनन्दपुर के अम्बर जमीन (जलभूमि) पर राधावल्लभ के लोगों का जबरन दखल है। वे लोग वकील मुख्तार बुलाते हैं शीटमैप देख सकते हैं कौन सा निशान कहाँ गया है यह भी बता सकते हैं। अगर वे लोग सर्वे (जमीन नपाई का काम) के समय मौका देखकर अचानक उजराव करकर अपना न मान दें इसलिए गयानाथ किसी झमेले में नहीं पड़ना चाहता। अगर उसे हल चलाकर यह दिखाना पड़े कि जमीन उसकी है तो वह यह भी कर दिखा देगा।

गयानाथ खेत के दक्षिण में सीधा अपने घर की ओर जा रहा था। हल लेकर चलने से रास्ते में एक लंबी लकीर बनती जा रही थी। आसिदर ने अपनी मोटरसाइकिल को स्टार्ट करने के लिए जैसे ही किक मारा कि दोनों बैलों के कान खड़े हो गये। गयानाथ चिल्लाकर डाँटते हुए बोला हे रे साल्ला जमाई फटफटिया बंद कर। चिल्लाने से गयानाथ के गले से जंगली मृग की सी आवाज निकल रही थी। आसिदर पर उतार कर हो हो करके हँस पड़ा 'चढ़ लाइसंस ने काहे चढ़ जा। नाड़ ने तुमार गिरय देबे हे बप्पा।' गयानाथ अपने घर के पास से बायीं ओर मुड़ गया। पीछे से उसकी बेटी ने आवाज दी, बप्पा नाह देइछ।'

गयानाथ जब जमीन के एक ओर चला गया तब आसिदर ने अचानक मोटरसाईकिल स्टार्ट करके एक्सीलेटर को पूरा घुमा दिया। उस गों आ आ की आवाज सुनते ही दोनों बैल कान और पूंछ खड़ाकर दोनों तरफ घूमकर खड़े हो गये और फिर दो तरफ दौड़ पड़े। गयानाथ को हल खोलने के समय भी नहीं मिल पाया और वह मुँह के बल गिर पड़ा।

कंधे पर हल का लंगर और पीछे हल लेकर दोनों बैल दो तरफ दौड़ते दौड़ते हुए रुक गये। बायीं ओर ग्रे रंग के बैल का पैर थोड़ा सा लड़खड़ा गया। दाहिनी ओर का सफेद बैल खिंचाव के कारण पास ही ऊँचे टीले की ओर दौड़ने लगा जिससे हल को एक झटका लगा और वे बैल के ही ऊपर गिर पड़ा। और ग्रे रंग वाले बैल के घूमकर

दौड़ने से पहले ही रस्सा उसके पैर में लिपट गया और फिर सफेद बैल उसे अपनी तरफ खींचने लगा। इससे ग्रे रंग वाला बैल हल का लंगर वगैरह लिये-दिये धड़ाम से गिर गया। हल के लंगर के साथ बँधे उसके गले में मोच आ गयी। ग्रे रंग वाले बैल के गिरने से खिंचाई लगी और सफेद बैल के पीछे के दोनों पैर ऊँची पगडंडी से झटके से उतर गये। तब बैल सामने के पैरों से मिट्टी को खोदते हुए खड़ा होना चाहा।

गयानाथ को गिरते देख बाघारू गयानाथ को उठाने को एक पैर बढ़ाया ही था कि तभी "ऐई, ऐई" कहते हुए बैलों को पकड़ने के लिए दौड़ पड़ा। बैल अगर न गिर पड़ते तो वह उन्हें पकड़ पाता भी या नहीं, संदेह है। बाघारू ने जाकर पहले हल के लंगर की रस्सी को खींच कर ग्रे रंग वाले बैल को मुक्त किया और बैल के खड़ा होने के बाद अपने कानों को खड़ा करके इधर-उधर देखने लगा। जैसे उसी आवाज़ को ढूँढ़ रहा हो।

ग्रे रंग वाले बैल के छूटते ही सफेद बैल हल के लंगर को खींचते हुए ऊँची पगडंडी पर सामने के दोनों पैर उठाकर खड़ा हो गया। पर पीछे झूलते लंगर और लंगर के भार से वह झटपट खड़ा नहीं हो पा रहा था। बाघारू ने दौड़कर उसकी रस्सी पकड ली। फिर दोनों लंबी रस्सियों को हल के लंगर से खोलना शुरू कर दिया।

तब तक गयानाथ घुटने और पैर के बल चलकर खड़ा हो गया। उसके सिर-नाक-मुँह-बनियान, घुटने के कपड़े में कीचड़ लग गया था। गयानाथ खड़े होने के बाद खुद को भी नहीं देखा, बैलों को भी नहीं। उसने जितनी ज़मीन पर हल चलाया था उसी में से एक मुट्ठी मिट्टी का गोला बनाकर अपने घर की ओर फेंका। पर वह गोला उसी के सामने टूट-टूटकर बिखर गया। तब गयानाथ, "साल्ला जमाई, तुमार पाछे इकोठो लाती मारबे" कहकर वह घर की ओर दौड़ने लगा। आसिंदर ने एक्सीलेटर को एक बार घुमाकर बंद कर दिया। उसकी हँसी की आवाज़ सुनकर गयानाथ की घरवाली और बेटी दौड़कर आ गयीं। गयानाथ तब भी ज़मीन पर पड़ा था। तीनों मिलकर इतना हँसते रहे कि गयानाथ के उठकर खड़े होने के बावजूद थमें नहीं। गयानाथ धेला मारने के बाद आगे बढ़ गया। उनकी तरफ दौड़ना शुरू कर दिया और वे तीनों धेले से मार खायी मुर्गी की तरह इधर-उधर दौड़ने लगा था। इतना दौड़ने और घर की ढालुई ज़मीन पर चढ़ने के बाद वह हाँफने लगा था। उसने मोटरसाइकिल पर चढ़कर उसमें एक लात मारी। मोटरसाइकिल ज़रा-सा भी नहीं हिली। उसके पैर के पास एक लकड़ी का टुकड़ा पड़ा था। उसे ही उठाकर मोटरसाइकिल पर मारा। "ऐ हे किया करै जाइछू ?" गयानाथ की घरवाली आकर खड़ी हो गयी। "चाह ठांडी हुवा जाइछे, पिय लेइय।" सुनकर गयानाथ की लड़की घर से निकल आयी थी, "बप्पा तूमारै काउन कहिसे हल चलैयबा।"

"तुमार बप्पा कहिसे। कहिया उहै सेयाल कागै बेटा गइछे। साल्ला, बोका..."

सुनकर गयानाथ की घरवाली मुँह पर आँचल रख ली। और ठीक पीछे, घर के नीचे, मैदान के पास आसिंदर हाथ जोड़कर चिल्लाते हुए बोला, "ऐहे बप्पा, मोइर क्षिमा

करैय देए। मोइर क्षिमा काइने देअ, बप्पा।'' कहकर हँसने लगा था। आसिंदर की आवाज़ सुनकर गयानाथ पीछे मुड़कर जंगली मुर्गे की तरह चीख़-चीख़कर बोला, ''साल्ला, मुई हल चलाइछै और तूमै बेटा फटफटिया सँ घुर्र, साल्ला।''

''क्षिमा देअ काहने, बप्पा। मोइर बात काइने न सुनिलू। मई न उवार्निंग दियछू तूमारै।'' एक सुरक्षित दूरी बनाकर आसिंदर हाथ जोड़कर बोला।

''साल्ला तूमारे उवार्निंग के लात मारिबै।'' चाय का कप लेकर लड़की गयानाथ के सामने आकर खड़ी हो गयी। होंठो पर आँचल रखकर वह आसिंदर की ओर देखने लगी। गयानाथ के चाय का कप लेते ही बेटी बरामदे में पट्टा लगाकर बोली—''बइठ के पिया, बप्पा''। गयानाथ तब तक एक सिप चाय ले चुका था।

पट्टे पर बैठकर वह गुस्से में चिल्लाकर बोला, ''साल्ला, बोका, जा तूमै हल पकड़ैया। मई न जाव जरीब मँ। तूमाइके हल चलाइव पड़िये।''

18

आसिंदर का हल चलाना

इससे आसिंदर बच गया। ''बहुते अच्छा बप्पा, मुइ आइ छू। मई त आपने इहे चाहीछू।'' कहकर मैदान की ओर दौड़ पड़ा जहां बाघारू हल और बैल लेकर खडा था और गयानाथ उसे दौडता हुआ देख धोती का छोर उठाकर अपने मुंह में लगा कीचड़ पोंछने लगा था। फिर चाय की चुस्की लेने लगा। गयानाथ की घरवाली और लड़की उसके पीछे आकर खड़ी-खड़ी देखने लगी थीं। आसिंदर के बाघारू के हाथ से रस्सी ले लेने पर बाघारु ने दोनों बैलों के कन्धे पर हल जोत दिया था। धूसर ग्रे रंग वाला बैल टस-से-मस नहीं होना चाहता था। बाघारु के उसके गले में हाथ फेरने पर वह सफेद बैल के पास आकर खड़ा हो गया था। बैल अभी भी सतर्क था मानों अभी भी कहीं से मोटरसाईकिल की आवाज़ सुनाई पड़ सकती थी—इसीलिए दाहिनी ओर का बैल बायीं ओर सिर घुमाकर गयानाथ के घर की ओर देखता रहा। हल का लंगर जुत जाने पर आसिंदर ने बाघारू के हाथ से रस्सी लेकर हल ज़ोर से पकड़ लिया। फिर बोला, ''अबे मई इसटाट देउछू, रे बाघारू।''

''ऐहे जिमाई, लिरिंग-फिरिंग न करैय। गोरू डर आइह।'' कहकर बाघारू ने इंतज़ार किये बिना जीभ से बहुत ही नरम आवाज निकाली।

बैल ज़रा भी नही हिले। पर आवाज़ सुनकर दाहिनी ओर का बैल थोड़ा-सा मुँह घुमाया। बाघारू तब फिर से एक के बाद एक 'टर्टर-टर्टर' की आवाज़ निकालकर सामने की ओर आकर दोनों बैलों के सींगो के बीच मे हाथ से थोड़ा खुजला दिया। दोनो बैल गर्दन उठा दिये थे। गर्दन के नीचे झूलते हुए चमड़े को सहलाकर बाघारू बोला था, ''देई जिमाई देई, इसटाट देइ।''

आसिदर ने निर्देश दिया था और दोनों बैल चल पड़े थे। हल का एक छोर वह अपने हाथ से बड़ी सख्ती से पकड़े हुए था और हल का फाल मिट्टी पर गड़ा जा रहा था। मिट्टी के बड़े-बड़े टुकड़े हल के फलक के दोनों ओर छूटते जा रहे थे। थोड़ी ही देर में दोनो बैलों को यह समझ में आ गया था कि उन्हें कोई मज़बूत हाथ थामे हुए हैं। हल के लंगर पर दोनों ओर बराबर का खिंचाव पड़ता है। दोनों बैलों ने धीरे-धीरे गर्दन सीधी की और आसिंदर के 'टर्टर-टर्टर' की आवाज़ से दोनों बैलो ने अपनी गति बढ़ा दी। जिन्दगी में पुष्ट मांसपेशियों से भरपूर शरीर को कभी हल नहीं पकड़ना पड़ा था अचानक हल चलाने से उसके शारीरिक सौष्ठव को कुछ आराम ही मिला था और यह पसीना झरने की आरामियत थी। अभ्यास न होने के कारण आसिदर के हाथों का दबाव बराबर नहीं पड़ रहा था। कभी ज्यादा तो कभी कम हो रहा था। और तब हल में उछाल आता था. हल का लंगर भी उछल पड़ता था और दोनों बैलों को ठोकर-सी लगती थी। पर ऐसा तो दो-एक बार ही होता था। उसकी धोती और बनियान से आसिंदर को भी ऐसा नहीं लग रहा था कि वह ज़मीन मे धंसा जा रहा है। उसे लग रहा था कि शौकिया तौर पर हल चला रहा है। पर देखते ही देखते उसके हल चलाने से जमीन की काफ़ी गहराइ तक खुदाई हो जाने से जो काली और नरम मिट्टी हल के फाल के दोनों ओर पीछे छूटती चली जा रही थी—इससे उसके शरीर की ताकत और योग्यता के प्रमाण से हल चलाने की विषयवस्तु ही बदलती जा रही थी। दूर देखने पर अभी भी गहरा कुहासा नजर आ रहा था। आँखों के सामने का कोहरा कट भी नहीं रहा था। सामने बाँस के झाड़ के ऊपर मकड़ी के जाल की तरह कोहरे का जाल फैला हुआ था। चार-पांच लोग जंगल के पास से ही जा रहे थे। उनमें से दो-एक के सिर पर गट्ठर था। यहाँ का दूर-दूर तक का इलाका परिचित ही है—यहाँ तक कि आसमान की रेखाएँ भी। बाघारू को नज़र करके यह दृश्य स्थिर करना पड़ता था. "ए हे जिमाइं, इहे देइख्वा" आसिदर से बाघारू बोला। आसिंदर हल छोड़कर बोला, "किया देइखाबू।" पर थोड़ा-सा नज़र उधर पड़ते ही आसिदर दौड़कर खेत पर से ही गयानाथ को बोला, "ए हे बप्पा, तुमारे सरवे (सर्वे) पार्टी त आइछ सरवे करले।" बाघारू ने आगे बढ़कर बैलों की रस्सी थाम ली। 'आँन' गयानाथ के मुंह से आश्चर्य से आवाज निकली और वह उछलकर खड़ा हो गया। "बाघारू उ उ।" बाघारू ने खेत से ही उधर देखा। "ई चियार लेहके सरवे जगहे तुई दौड़ी जा।" कहकर गयानाथ भागता हुआ कुएं के पास गया। आसिंदर जल्दी से आगे बढ़कर बाघारु के हाथ से रस्सी लेकर बोला, "कोइ के भेजिय देई जलदी। आउर चियार लेहके जा।"

बाघारू भागा-भागा घर के मुख्य दरवाज़े से होकर गोशाले की तरफ जाकर चिल्लाकर बोला, "ए हे मोचकू, आ, बइल दुनू के लेहके जा" और फिर वह दौड़ते हुए आकर देखा कि गयानाथ की बेटी चेयर पर बैठी है। "उठऊ, अबै उठऊ" गयानाथ की बेटी उछलकर उठ गयी। चेयर को उलट कर सिर पर रख बाघारू सीधे पश्चिम की ओर से उतर गया। इस ओर एक शॉर्ट रास्ता है। इस समय उसके बदन पर एक

लगाटी है। बाकी पूरे शरीर पर कपड़े का एक छोटा सा टुकड़ा भी नहीं है। सिर पर उल्टी चेयर है जिसके पैर ऊपर की ओर उठे हुए हैं। बाघारु जल्दी-जल्दी कभी इस पगडंडी, कभी उस पगडंडी से चलता जा रहा था। उसे सर्वे पार्टी से पहले पहुँचना है। चेयर को किसी पेड़ के नीचे रखने पर हाकिम उस पर बैठेगा। और हाकिम अगर पहले पहुँच गया तो बिगड़ेगा। हाकिम के आने का पता नहीं—इस स्थिति को टालने की जिम्मेदारी लेकर बाघारु अपने चिर परिचित मैदान झाड़ से होते हुए छोटे छोटे रास्ते से निकलकर चलता जा रहा था।

गयानाथ साफ-सुथरे कपड़े पहनकर आँगन में आकर जोर से बोला, "ऐ है जिमादे, फटफटिया बाहर निकालो। लेट हुआ जाता है। मोटर आईये दिया आइ।" आसिंदर मोचक को दौड़कर आते देख बगल की खाट पर बैठा बोनियान पहने ही मोटरसाईकिल को धक्का मारते मारते सामने पगडंडी पर बाहर निकल आया। गयानाथ कमरे से ... सूती अपने में बंधी पोटली को बाएँ की थैली में भरते हुए बाहर निकल आया। आसिंदर ने साथ लेकर उस झोले को लेकर मोटरसाईकिल की टंकी पर रख ली। गयानाथ पीछे बैठ गया। गयानाथ की घरवाली और बड़ी तेजी से बाहर निकल आयी पर उससे पहले ही मोटरसाईकिल स्टार्ट होने की आवाज सुनाई दी। वे लोग बड़ी पगडंडी से साँय साँय करते हुए निकल गये।

19

जंगल के रास्ते में आसमान और हवा

सहास को अपने सामने ज्योत्सना बाबू को पीठ पर और पोटली का बोझ उठाये देखना पड़ रहा था और पीछे विनोद बाबू के जोर-जोर से साँस लेने-छोड़ने की आवाज़ सुननी पड़ रही थी। प्रियनाथ और अनाथ अपने-अपने कंधे पर इससे भी ज़्यादा बोझ उठाये बहुत आगे निकल गये थे—उनकी टोकरी और जर्जर की थैली झुलाते हुए आगे बढ़ते जा रहे थे। यह देखकर ऐसा लगता था जैसे उस बोझ के कारण ही उनके चलने की गति तेज हो रही है।

भादों महीने का आखिर था। बारिश का मौसम अपनी चरम सीमा पर था। पर आज सुबह बारिश नहीं हुई थी। बादल भी नहीं छाये हुए थे इसलिए धूप में गरमी थी—इतनी सुबह-सवेरे भी। यह गरमी तेजी से चलने के कारण थी या इतनी सुबह की उमस भरी धूप के कारण—यह समझ पाना मुश्किल था।

इस बारिश और बादल-विहीन सुबह को देखकर कोई भी यही समझता कि बारिश के दिन खत्म हो गये हैं। मैदानों का घास, खेत, जंगल और चाय-बागान के सारे पेड़-पौधे, झाड़-झंखाड़ का रंग एकदम से कटहल के पत्ते की तरह गहरा हरा हो गया था। झाड़-झंखाड़ और छोटे-मोटे सारे जंगली पेड़-पौधे बारिश के पानी से ऐसे

फूले फले थे कि सीधे डटे नही रह सकते थ, अपने ही भार स मिट्टी पर लुढककर बडे से ढेर मे बदल गये थे। ऐसा दिखता था कि यह सब मिट्टी क अन्दर की पानी से ऊपर तैर आये है। पर अब, सुबह की इतनी तेज धूप मे इन्ही सब झाड-झखाड के ऊपर स पानी बहने लगा था। सामने एक जगल शुरू हा रहा था। थोडी सी ऊचाई म, नीचे से जगल के ऊपर वाष्प का धुआँ पहाड-सा दीख रहा था—जगल के ऊपर स आग के धुएँ की तरह ऊपर उठता जा रहा था—जस उदलाबाडी की तरफ एक हल्के से बादल का टुकडा तैरता जा रहा हो। इसका मतलब हवा अभी भी पूरब की ओर से बह रही है। क्या तो नाम ह फॉरेस्ट का इसी नाम की एक चाय बागान भी ह। सर्कल मप सुहास अपन साथ रख हुए था। "क्या नाम है इस फॉरेस्ट का ?"

"मालहाटी।" ज्योत्सना बाबू न उसकी तरफ दखे बिना ही कहा।

मालहाटी। मालहाटी। मालहाटी फॉरेस्ट और मालहाटी टी एस्टेट।

वे लोग एक टीलेनुमा ऊँची जगह, बरमतल क नीच उतर आय थ। सामन फिर चढाइ थी। इस चढाई क बाद समतल मिट्टी और फिर फॉरेस्ट। इसी निचली जमीन मे एक आदमी एक बल की गदन पर हल का लगर डालकर हल चला रहा था। इस ऊचाइ से उसके विपरीत की चढाइ क बीच तक उस आदमी का देखत रहना पडता था। सामने वाली चढाइ क बीचाबीच तक चढने पर फॉरेस्ट म नजर रुक जाती थी। उस समय प्रियनाथ और अनाथ फॉरेस्ट के लगभग करीब करीब पहुच गय थ। अब इधर थोडा नीचे से फॉरेस्ट क पड-पौधा की ऊचाई पर धूप चमकती हुइ दिख रही थी। पेडा के पत्तो और हवा मे कही भी धूल नही थी। यहा तक कि आसमान मे बादल उतना ही दमक रह थ—पर अनाथ और प्रियनाथ जगल मे नही गय। जगल क बायी ओर स दाहिने मुड गये थे। जगल के करीब पहुँचन पर पेडो का शिखर अदृश्य हता जा रहा था। नजर जगल क शिखर स धीरे-धीरे पडो के तन से होती हुई नीचे उतर जाती थी। इसक बाद ही उसे जगल की लबी-लबी परछाइयो स होकर गुजरना पडता था।

उन्ही परछाइयो से गुजर कर जगल को बायी ओर छोडकर दाहिने मुडना पडता है। जगल के भीतर न भी जाओ पर उसके बिल्कुल करीब स होकर जाना पडता है। तब धूप नही होती है पर बारिश के पानी म जगल क धूपविहीन इस हिस्से मे लबी-लबी घास घुटन का छूती है। पैर म पानी लगता है। इसी तरह चलते-चलते पसीना धीरे-धीरे सूख जाता है। इससे अच्छा लगता है। साँस स्वाभाविक हो जाती है। पर इसके बाद धूप चमक उठती है और तब शरदकालीन आसमान की याद आने लगती है। ऐसा लगता है चारों ओर बारिश हो रही है—और बारिश जगल के पेडों पर हो रही है इसीलिए फुहार भी बदन पर नही पडती। दाहिनी ओर देखने पर गहरे हरे रग के घास का विस्तार और बायीं ओर घना अँधेरा जगल दिखता है—पेडो के तने भी जगल को हरियाली से ढँके हुए है। कहीं शैवाल की हरियाली है तो कही लता-लत्तर की।

अब ठड लगने लगी थी पर इस ठड मे भी चमडी तैलीय हो जा रही थी। जगल

में से गरम भाप उठ रही थी। एक तरफ ठंड थी तो दूसरी तरफ जंगल से उठती हुई भाप की गरमी का पसीना। पीठ-छाती पर बोझ महसूस हो रहा था। साँस भी भारी होने लगी थी।

ज़मीन पर फल-फूल उठा यह जलीय जंगल मिट्टी पर ही उग आया है। पानी पर लता-पत्तर की जड़ें मिट्टी के नीचे इतनी कम हैं कि वे मिट्टी को अपनी पकड़ में नहीं ले पाते थे। शाल, सागौन, कत्थे का पेड़ अपने ही शरीर के भार से मिट्टी के भीतर धँसे जा रहे थे। इतनी बारिश और पानी में इन पेड़ों के पत्ते भी मोटे और घने होकर फैल गये थे। इनकी शाखा प्रशाखाओं के भार से शाल पेड़ का फैलाव बहुत ज्यादा घना नहीं लग रहा था।

कुछेक महीनों की लगातार बारिश से सारे पेड़ जैसे सिमट से गये थे। दोनों ओर की मोटी-मोटी मुथा घास (एक तरह की घास जिसकी जड़ में खुशबू होती है) के नीचे चलने का रास्ता दब गया था। दाहिनी ओर की अव्यवहृत नीची मिट्टी में घास और जंगल फैलकर टीले-सा ऊँचा हो गया था। उस टील पर कुछ छोटे-छोटे जंगली पेड़ आसमान की ओर उठने लगे थे। उन्हीं सब पेड़ों के शिखर पर आसमान की पृष्ठभूमि थी। इससे ऐसा लगता था कि आसमान बहुत ही नीचे झुक आया था। जबकि थोड़ी देर पहले यही आसमान नीला और गोलाई लिये हुए दिख रहा था। इस तरफ घास, लता-पत्ता, झाड़-झंखाड़, पेड़-पौधे और विशालकाय पेड़ों के चूड़े के घने विस्तार से मिट्टी का संकुचित होकर फूल उठना और इसके साथ ऊपर से आसमान का नीचे झुक जाना—धरती को संकुचित कर छोटा कर दे दिया था और इससे सब कुछ सिमट कर आड़ में छिप गया था। टीले पर नजर से छिपे हुए किसी घने पेड़ के शिखर पर आसमान की नीली छतरी थी। पेड़ मिट्टी के नीचे का पानी सोखकर ज़िंदा थे। और बढ़ रहे थे। पर क्या इसी बीच बारिश के दिन के बाद की प्रक्रिया शुरू हो गयी है ? इसके बाद शरद ऋतु की धूप से मिट्टी सूख जाने पर हवा के शुष्क हो उठने पर—यह सब झाड़-झंखाड़ आहिस्ते-आहिस्ते सूखने लगेंगे। पेड़ के नीचे की मिट्टी अब अचानक दब जायेगी ! दिन-प्रतिदिन यह पानी मिट्टी के और भी नीचे चला जायेगा, तब आहिस्ते-आहिस्ते मिट्टी सख्त हो जायेगी और सख़्त होते-होते कहीं-कहीं पत्थर की तरह जम जायेगी। पर कहीं-कहीं। क्योंकि जंगल के भीतर मिट्टी गले पत्तों की वजह से साल भर नम्र ही रहती है। अभी भी फॉरेस्ट, जिसे झाड़-झंखाड़ कहते हैं, लगभग स्थिर है। पर उद्वेलित जलाशय की तरह लहर पर लहर उठती रहती है उसी तरह दूर-दूर तक बड़े-बड़े पेड़ों की शाखाएँ आपस में हिलती मिलती रहती है। पेड़-पौधे की उन लहरों में आदमी डूब जायेगा। एक बार डूबा नहीं कि मुँह तक भी नहीं उठा पायेगा—नीचे की ओर लता पत्ते इतने जटिल थे और सिर पर फैली शाखा-प्रशाखाएँ इतनी घनी थीं।

यह सब मिलाकर चारों ओर परिवेश में पेड़ पौधों की शाखाएँ ऊपर से ढक्कन की तरह लग रही थीं। आसमान के नीचे और धूप के तेज़ होने के कारण परिवेश में

एक खुलापन था पर वह ढक्कन अभी भी खुला नहीं था। बादल के पानी और मिट्टी के नीचे के पानी—दोनों का ही जमाव अब सड़ने लगा था। आसमान का पानी खत्म हो जाने पर मिट्टी के नीचे का पानी पेड़-पौधे सोख लेंगे। बारिश के इस मौसम में यह प्रक्रिया शुरू हो गयी थी ? हवा में भी अनिश्चितता थी—कभी पूरब की ओर से तो कभी उत्तर से आती थी। धूप भी अनिश्चित थी कभी इसमें राहत महसूस होती थी तो कभी लगता था शरीर का पूरा रस चूस लेगी। छांह भी उसी तरह थी कभी सुखद लगती थी तो कभी कंपा देती थी।

आसमान और हवा के इस दो तरह के मिजाज का एहसास धान के खेतों में अधिक होता है। नयी पौध की कच्ची हरियाली फीकी पड़ती जाती है ऐसे में धान के तमाम खेतों का रंग उड़ा-उड़ा सा लगता है। हवा में धान के खेतों में लहरें उठती हैं—जिससे धान के खेतों के पौधे पानी में उठती हुई लहर-से दिखते हैं। लेकिन इस तरह झूमने से धूप उन पर बराबर नहीं पड़ती और तब लगता है मानो गल में खेतों का साम्राज्य फैला है। अब धीरे-धीरे खेतों के पानी सूखने लगेंगे। फिर मिट्टी सूखेगी। इसके बाद मिट्टी चटखने लगेगी और अगले तीन महीनों में इस प्रक्रिया के चलते धान के पेड़ों से हरियाली का आखिरी कतरा तक जाता रहेगा। हवा में धान के पौधों का झूमना हुई रंगत देखकर समझ में आ जाता है कि मिट्टी और हवा में तब भी कितना रस बाकी है। यह रस जितना सूखेगा धान के पौधे की हरियाली उतनी ही खत्म होती जाएगी। जाते जाते इसका रंग एकदम से बदल जायेगा। तब धान के पौधों का पूरा रस सूखता जाएगा और धान का दूध गाढ़ा होता जायगा। इसके बाद हवा मिट्टी और पेड़ का सारा पानी सूख जाने पर धान का खेत सुनहरा हो जायगा। सुनहरा पीला धान। खेत की नियति ही बड़ी अजीब है। वह जितना सूखता है इसका रंग उतना ही सुनहरा होता जाता है। आखिर कितना पकेगा धान ? फिर एक ऐसा समय आयेगा कि इन्हीं रसविहीन सूखे पत्तों की तुलना में धान के पेड़ का चावल भरा शिखर भारीपन से झूल जायेगा। पूरे का पूरा धान का खेत मुरझाया-सा झुक जाएगा। धान के पौधे के शिखर पर धान का गुच्छा मिट्टी में फिर से समाने का मचल उठेगा और फिर झुके हुए सूखे पत्ते सीधे होकर हवा में झूमने लगेंगे। ऐसे में धान के खेत हवा में जलाशय की तरह तरंगित नहीं होते बल्कि मैदान की तरह फैल जाते हैं—देखने से ऐसा लगता है धान का खेत नहीं बल्कि पुआल का खेत है।

सामने फॉरेस्ट खत्म हो गया था। फॉरेस्ट की छांह से उन्हें सामने घास, झाड़-झंखाड़ पर वही चिर-परिचित धूप दिखाई दी। जैसे इस धूप की आहट भर से फॉरेस्ट की छांह भागने लगी हो। फॉरेस्ट पार कर वे लोग बायीं ओर धान खेत की तरफ मुड़ गये थे।

धानखेत के भीतर से होकर गुजरते हुए बारिश का मौसम बीतने के बाद शरद शुरू होने जैसा लगने लगा था। दाहिनी ओर एक गांव है। बाँस की बाड़ और लाइन से सटे हुए मकानों के पीछे की ओर मुसलमान मुहल्ला है गोचीमारी। उसी के नज़दीक

से वे लोग तिरछे आगे बढ रहे थे। थोड़ी ही दूर पर तिस्ता की ठंडी हवा लगने लगी थी। यह हवा तिस्ता के ऊपर से होकर आ रही थी– हवा ठंडी थी और उसमें ताजगी थी। पर कुछ-कुछ भीगी-भीगी सी भी। फॉरेस्ट में होकर जो हवा बाहर आ रही थी वह भी भीगी थी। पर फॉरेस्ट में होकर आते समय उसकी नमी नन्हाव और भीगी सी छाँह में भी पसीने से सराबोर कर रही थी। धान के खेत की धूप में भी वह पूरी तरह सूखी नहीं। अदृश्य तिस्ता की झलक मात्र से वह मिट गया। वे लोग एक सकरे-से रास्ते पर आ गये थे। वे दाहिनी ओर मुड़ गये। विनोद बाबू जोर से बोले, 'यही बागमारी हाट जाने का रास्ता है।'

बागमारी भी सुहास के हलके के अंतर्गत आता है। सरकार ने अपने काम की जो योजना बनायी थी उसमें यह इलाका सबसे आखिर में ... था। अभी जिस लाइन से शुरू होगा इसके बाद पूर्व पश्चिम में एक और लाइन बागमारी में होगा। नव ... में आदाबाड़ी नये मालानी दक्षिण चर मालानी, दक्षिण मार्गीयाली झाड़मार्गीयाली ये सारे कस्बे पिछले सेटलमेंट के बाद मानो नक्शे में अनगिनत आ गये हैं। इससे पहले मार्गीयाली सकल में थे। सुहास थोड़ा रुक गया। विनोद बाबू उसकी बगल से आगे बढ़ गये। उस दल के पीछे से सुहास इसी ... में बागमारी हाट की ओर देखने लगा। फिर मुड़कर दल के पीछे-पीछे चलने लगा। थोड़ी दूर चलने पर ही सामने फॉरेस्ट और तिस्ता दिखाई पड़ा। फॉरेस्ट अचानक गायब हो गया और फिर वहीं से घास और काचवर्तिमान रेत के विस्तार के बाद नदी आ गयी थी। हवा में पानी की नमी है। थोड़ा दूर आगे बढ़ने पर तिस्ता का प्रवाह और उसका फेन 'झाग' दिखाई पड़ा। तब फॉरेस्ट के छोर में पड़ी ... जमीन और ... देखकर लगता था जैसे तिस्ता फॉरेस्ट को निगल रहा है।

20

तिस्ता के किनारे की ज़मीन का जरीब

सुहास को अपने दल-बल के साथ आते देखकर लोग उचककर खड़े हो गये थे।

इसी बीच प्रियनाथ और अनाथ पहुँच गये थे। और उन लोगों ने एक शाल के पेड़ के नीचे सर्वे टेबल डाल दिया था। टेबिल के सामने एक चेयर भी दिख रही थी। पर वह खाली थी और पेड़ के नीचे ही थी। उस चेयर और टेबिल के चारों ओर तरह-तरह के लोगों की भीड़ थी। उससे थोड़ी ही दूरी पर एक पेड़ के नीचे आसपास के पेड़ों पर पॉलिथीन की चादर बाँधकर चाय की दुकान थी। यह दुकान उसी लड़के की है जो हरेक हाट में चाय बेचता है।

वहाँ पहुँचकर वह पार्टी एक ऊँचे से स्थान पर चढ़ गयी। उससे पहले विनोद बाबू और ज्योत्सना बाबू ने अपना-अपना बोझा जमीन पर उतार कर सर्वे टेबिल के

ही पास रख दिया। ऊपर चढ़कर ज्योत्सना बाबू ने उस बोझ पर हाथ नहीं लगाया। वे अपने बैग को झुलाकर भीड़ से होकर चाय की दुकान की तरफ़ चले गये। हाफ शर्ट, धोती और कैनवश का पम्पशू पहनने गयानाथ ने आगे बढकर नमस्ते करते हुए कहा, "आसेन सर, आसेन।" फिर उसी चेयर को दिखाकर बोला, "बइठे सर, बइठे।" सुहास को बैठने का मन हो रहा था, उनके कहने भर से उस खाली चेयर पर सुहास बैठ जाता तो लगता वह यहाँ मेहमान है। और उसका मेजबान यही सज्जन है। पर सर्वे पार्टी तो सुहास की ही थी। यहाँ वह ज्यादा देर नही रुकना नही चाहता था। यहाँ दूसरी कोई चेयर नही थी। बैठना तो है पर थोड़ी देर बाद बैठना ठीक होगा।

विनोद बाबू का हाथ लगभग मशीन की तरह वास्तविकता से दूर अपनी जगह पर जमा हुआ है। उन्होंने सुहास से कुछ पूछा भी नही। लाल कपडे मे लिपटा मौजा मानचित्र सुहास की ओर बढा दिया। फिर यहाँ के खानापूरी का टेकनिकल मेन्युअल खोलकर उसके भीतर सेटलमेन्ट का फॉर्म रख लिया। मौजा मे एक नंबर लगे निशान से काम शुरू होगा। पर इस जगह के मैपिंग मे एक झमेला है। इसीलिए तो केजी वन मे काम शुरू करना पडेगा। बही ओर कपास लेकर विनोद बाबू अनाथ और प्रियनाथ को ढूँढने लगे। अनाथ को देखते ही बोले, "प्रियनाथ को बुलाओ और जल्दी मे जजीर को पकडो। अभी धूप है जितना हो सके काम निपटा लेते है। नदी के किनार से जजीर को पकडो।" फिर विनोद बाबू से सुहास के पास आकर बोले, "आपने तो मैप देखा है। बाढ के कारण यहाँ की नयी मेपिंग करनी पडेगी। मैने जजीर फैला दिया है।"

विनोद बाबू के नदी की ओर बढते ही अनाथ पहुँचा और कहने लगा, "प्रियनाथ तो दिखाई ही नही पड रहा है।" उसकी बात का जवाब दिये बिना विनोद बाबू ने कहा, "तो क्या इस बीच उसे बाघ निगल गया ? जल्दी से चेन पकडने को बोलो। बारिश शुरू हो गई तो हम फिर एक दिन यहाँ आना पडेगा। ज्यादा दिन लगाने से हम कोई फायदा नही होने वाला। ऑफिसर को तो एलाउंस मिल जायेगा पर तुमको और मुझको नहीं।"

विनोद बाबू जानते थे कि प्रियनाथ इस भीड मे अपना मुवक्किल ढूँढने गया है। बस्ती और बडे जोत के काम मे समय लगता है। हिस्से का मामला होता है। मुवक्किल ही प्रियनाथ को ढूंढ निकालेगा। यहाँ तिस्ता नदी की कटाई और शालवन के फॉरेस्ट की सफाई देखने के लिए तो दुनियाभर के 'वानर दल' आये थे—अब वे राजवंशी हो या मदेशिया या फिर नेपाली। इस पूरे इलाके मे जिन्हें एक टुकड़ा जमीन का नाम नसीब नहीं हुआ और यहाँ तक कि फॉरेस्ट की जमीन पर गैरक़ानूनी खेती करने के लिए भी जिन्हें गाजलडोबा—सिदाबाडी मे होकर तिस्ता के किनारे आना पडता है—उनमें मुवक्किल कहाँ मिलेगा ? गयानाथ ही एक जोतदार था। पर वह भीड़ मे मौजूद रहने वाला अदना-सा मुवक्किल नहीं था। सब-डिवीजन की बड़ी-बड़ी ज़मीनो को लेकर उसका कारोबार था। ठीक-ठाक से काम हो गया तो हो सकता था वह सबको थोक भाव मे कुछ-न-कुछ दे। यहाँ का काम जल्दी-जल्दी सलटा लेने मे ही फायदा

था। प्रियनाथ इसकी टोह मे गया था कि इस मामले मे किसी दलाल की घुसपैठ तो नही। नदी के पास पहुँचकर विनादबाबू ने जोर से आवाज़ लगायी, "प्रि य''ना''थ"। उसकी आवाज तिस्ता की आवाज़ में थोडी दब जरूर गयी थी पर सुहास विनोद बाबू के गले का जोर देखकर थोड़ा चौंका।

सब-डिवीजन का मानचित्र खोलकर सुहास चेयर की ओर बढ़ गया।

"सर, इकठो बात थी सर। बात नही सर। एकठो गुजारिश थी सर…।" उस सज्जन ने कहा।

"सर, ये जरीब यानी सर्वे का काम तो सर रोज चलना ही रहेगा सर ! इसमें अभी बहुते टाइम लगेगा, सर। अब रोज-रोज ये टेबिल, ये बही-खाता आप लोगों को और सर, उन लोगों के लिए ढो कर लाना ले जाना उचित है सर ?"

"और उपाय क्या है। सर्वे मे ये सब लगेंगे ही।" मानचित्र की ओर देखते-देखते सुहास चेयर के सामने जाकर खड़ा हो गया।

"इसी बारे मे तो एक गुजारिश थी। यह सब तो सर हम लोगो का काम है। इसके लिए आप लोगों को तकलीफ देना जरा ठीक नही लगता है, सर।" सुहास चेयर पर बैठने ही जा रहा था कि गयानाथ ने टोका, "ठहरिये सर, अभी न बैठिए।'

सुहास तब तक एकाग्रचित्त ढंग से मैप देख रहा था। इसके बाद इस मैप के ऊपर नये मैप की ड्राइंग कहां से शुरू करनी पड़ेगी यह तय करने से पहले आउट लाइन देख रहा था। अगर इस सेक्शन का एक एनलार्ज आउटलाइन होती तो सुविधा होती। पर उस आदमी की बात से चौंककर सुहास के नजर उठाते ही कही से आवाज आई—"ऐ हे बाघारू।" भीड़ जो इधर उधर बिखरी थी उसी मे से एक आदमी आकर खडा हो गया था। सुहास दोनो हाथ से मैप संभाले हुए था—नीले कागज पर सफेद रेखाएं खिंची हुई थी। और यह आदमी भी जैसे एक मैप ही है—रिफिल से खीचा हुआ। वह एक निष्प्राण चीज की तरह सामने आकर खड़ा हो गया था। सिर से पाँव तक वह शाल और सागोन के तने की तरह सूखा, रसविहीन, बदरंग और बेढब था। आखों की गहराई में कहीं कोई तारा नही था। नाक भी फैले मैदान पर चित पड़ी थी। बदन में एक लगोटनुमा कपड़ा था और वह भी उसका रंग बदन के रंग से मेल खाता हुआ था। गयानाथ ने इतने ज़ोर से पुकारा जैसे वन में जंगली मोर कर्कश आवाज में बोलता है। और जब वह आदमी आकर खड़ा हो गया था तब कही जाकर मालूम पड़ा कि उसे ही बुलाया गया था।

"चेयर पोंछि दे।"

सुहास को फिर हाफ शर्ट पहने आदमी की ओर देखना पड़ा था।

फिर "ठीक है" कहकर सुहास चेयर पर बैठ गया—यानी चेयर इसी आदमी ने मँगवा कर रखी थी। फिर दोनो घुटनो पर मैप फैलाकर देखने लगा था। तभी सुहास को आभास हुआ कि उसके बैठ जाने के बावजूद वह रीफिलनुमा आदमी चेयर का बैक रेस्ट, हत्था और पाया अपने हाथ से पोंछे जा रहा है। सूखी लकड़ी पर उसके

खरहरे हाथ की खस-खस आवाज़ सुनाई पर रही थी।

"इसीलिए सर, ई टेबिल, चेयर--ई सब कुछ मर मोइर आदमी उठाय के ठीक जगह परी पहुँचाय देय। अऊर रोज-रोज लइ आवयगे सर। ई खाना-बही लाने के लिए एकठो आदमी आपही के कइम्प मे पठा देयब, सर।'

सुहास ने सिर उठाकर फिर नही देखा। वह तिस्ता के किनार के जिस हिस्से का आज काम होना था वही पेसिल से एक निशान बनाता रहा।

"सर, ई जगह मे हामलोग का एक नाम मुनाम है। हाकिम-अफसर-बरे-बडे नेता लोग माइर सेवा लेत रही है। इसलिए आप मे इ निवदन हम करिह।"

गयानाथ के चुप होने के बाद भी सुहास ने नजर नही उठाइ। पर नजर नही उठान के बावजूद समझ गया था कि वह आदमी अभी भी वहा खडा है या नहीं।

सुहास समझ गया कि वह आदमी वही खड़ा है। उसने एक बार सोच देख लिया। दूर मे बहुत से लोग थे उनमे एकमात्र यही आदमी खडा था। सुहास का मन हुआ कि वह उसे चले जाने को कहे। पर कहत-कहते वह रुक गया। सुहास खुद थोडा-बहुत गुस्सा दिखाना चाहता था—अपने मन की बात समझाकर सुहास को यह अच्छा भी नहीं लगा था। उस आदमी ने अभी तक आपत्तिकर बात कह कही भी नही थी। फिर वह उससे खार क्यो खाये हुए है ? सुहास ने अपना मन फिर से मैप मे लगाने की कोशिश की।

"सर" उसकी आवाज फिर सुनाइ पडी। इसके बाद थोडी देर सन्नाटा। फिर आवाज मुनाई दी, "सर।"

सुहास बिना सिर उठाये बोला, "कहिए, कहते जाइए। मै सुन रहा हूँ।'

"सर, बात इ है कि हमलोग का ई उचित नाही लगता है कि अपनलोग के काम मे अडचन डाले ।"

सुहास झुका हुआ अपना सिर हिलाता रहा। फिर रुका नहीं हिलाता ही रहा। आगे उस आदमी को कुछ न कहते देख सुहास सिर हिलाता रहा। मप पर वह अपनी नजर ऐसे गडाये था कि लगता था मैप को वह मनस्थ कर रहा है ताकि बाद मे मेप देखे बिना ज़मीन को वह पहचान सके।

"आप ही लोगो की सुविधा के लिए, सर। हमलोग को सेवा का जरा मौका देइ, सर।"

थोडी देर चुप रहने के बाद उस आदमी की आवाज मे जरा-सा अभिमान का पुट शामिल हो गया था, "ई त सर, हामीलोग के इलाका का अपमान हेई।"

सुहास मन ही मन आनंद ले रहा था यह सोचकर कि हाकिम ऐसा चीज है जिससे मातृभाषा मे बात की नही कही जा सकती। सुहास ने सिर उठाकर देखा नदी के किनारे अनाथ बाबू जंजीर का एक किनारा पकडे खडे है और जजीर का दूसरा छोर निश्चित रूप से तिस्ता के किनारे से होकर जगल के भीतर तक गया है। सभवत

विनोद बाबू इस तरफ़ होंगे।

वह चेयर से उठ गया। वह आदमी अभी भी बैठा-बैठा चेयर का पाया पोंछे जा रहा था। सुहास नदी के किनारे की तरफ बढ़ता चला गया।

21

पेड़ के शिखर पर मौजा मैप

अनाथ को छोड़कर सुहास तिस्ता नदी की तटरेखा की सीध में उत्तर की ओर देखने लगा। यह किनारा राइट एंगेल में उत्तर को चला गया था। सुहास जहां खड़ा था वह जंगल मौजा के मैप के मुताबिक, जे.एल. नंबर 87 और 88 सिदाबाड़ी गाचाबाड़ी बॉर्डर लाइन से उत्तर में थोड़ा सा पूरब की ओर सरक आया था। और ठीक यहीं पर नदी थी। इससे सटकर पश्चिम में सिदाबाड़ी गाचाबाड़ी का ही एक भाग और आपलचाँद का एक छोटा-सा हिस्सा और उसके उत्तर में इस मंडल के सबसे बड़े भाग जे-एल 84 आपलचांद फॉरेस्ट था।

उसके पश्चिम में 85 नंबर गाजलडोबा और थोड़ा सा उत्तर में मौजा हांसखाली का ही 21 नंबर जे-एल। इसी 21 नंबर जे.एल. से ले 84 नंबर का पश्चिम सीमा, 85 नंबर गाजलडोबा और वह जहां खड़ा था उसके बायीं ओर पश्चिम का सिदाबाड़ी गोचाबाड़ी सब कुछ अब तिस्ता के भीतर। इसके नीचे इसी 84 नंबर का ही और एक हिस्सा था। 62 नंबर उत्तर और 83 नंबर दक्षिण हांसखाली उसके ऊपर में आपलचाँद था जिसके उत्तरी भाग में असल हांसखाली था। लेकिन आज आपलचांद जोत के नीचे तक फैला है। न हो तो एक ही जे.एल. नंबर के नीचे इतनी जमीन कैसे यकायक आ सकती थी? मौजा के नक्शे को जमीन पर फैला, उस पर उकड़ू बैठकर सुहास बड़े हांसखाली के 21 नंबर, 85 नंबर, 86 नंबर, 87 नंबर के पश्चिमी भाग में एक-एक मार्क लगाया। 87 और 88 नंबर के पूरब में एक लंबा निशान बनाया। इसके बाद एक रास्ता था जो ठीक आपलचांद के बीच से निकलता था। अगर इन गांवों को मौजा मैप से निकाल दिया जाये तो फिर एक नयी आउटलाइन निकल आएगी। पर नदी तो जे.एल. नंबर के साथ-साथ बहने से रही। इसी कारण 84 नंबर का पश्चिमी छोर उसे साबित करना ही पड़ेगा।

हरेक मार्क में एक एक गाँव का हिसाब लगाकर सुहास नक्शा लेकर उठ खड़ा हुआ। तभी तिस्ता में भारी बवंडर उठा था और इतने भारी तूफानी हवा में मौजे का नक्शा उसके हाथ से एक फटे कागज़ के टुकड़े-सा उड़ गया था। 'हे-हे' चिल्लाता हुआ सुहास उठकर नक्शे के पीछे बेतहाशा भागता चला गया। नक्शा उड़ते-लुढकते ज़मीन पर रुक गया। अनाथ ज़मीन मपाई का चेन वहीं छोड़ नक्शे को पकड़ने दौड़ पड़ा। पर उसके नक्शे तक पहुँचने से पहले ही नक्शा फिर उड़ने लगा। अबकी बार

सीधे नहीं, तुड़मुड कर ऊपर पेड के शिखर की ओर, जैसे जहाज आकाश में उड़ान भरता है। उस समय सुहास खड़ा हो गया था। पर अनाथ हाथ उठाये उसे पकड़ने के लिए भागे जा रहा था। नक्शा मानो किसी उस्ताद के लटाई से बँधी पतंग हो। इसी तरह नक्शा ऊपर उठता गया और एक मझोले साइज की डाल के अदर फँसकर झूलने लगा। इतनी देर तक अलसाई खड़ी भीड़ मानो एक ही पल में जाग उठी। सबलोग मिलकर इस नक्शे के पीछे भागने लगे। सुहास ने सोचा, तूफान चले जाने के बाद नक्शा अपने आप 'टप' से नीचे गिर पड़ेगा। पर ऐसा नही हुआ। आख़िरकार थक-हार कर इसी उम्मीद पर चुपचाप खड़े हो गये कि हवा का कोई एक जोरदार झोंका उसे पड से निकाल लायेगा।

फिर सुहास नदी के किनारे-किनारे पीछे लौटने लगा। उसके सामने थोड़ी ही दूर पर सर्वे टेबिल थी। उससे सट कर कुछ दूर पेड के नीच वही कुर्सी थी उससे थोड़ी दूर बायीं आर तमाम भीड़ जाकर जमा हो गयी एक पेड के नीचे। सुहास हाथ में पकड़ी पेंसिल की आर देखकर हंस पडा। उसके बाद अपनी मूर्खता को फिर एक बार देख अनमने भाव स क्षितिज तक फैली मटमैली जलभूमि की ओर देखने लगा था। जिसके ऊपर से जैसे सिर्फ तूफान ही बहता आया हो—धारावाहिक, पर प्रबलतर। "हे बाघारू" चिल्लाने की आवाज़ से मानो फिर एक बार मुर्गा बाल उठा। सुहास मुडकर देखने लगा, पेड़ के नीचे उस भीड़ के पीछे वही बीमार, मरियल-सा आदमी चीख रहा था। उसके चिल्लाने से भीड की प्रतिक्रिया सुहास देख नही पा रहा था। पर कुछ हो रहा है, इसका अदाज लगा लिया था। थोड़ा-सा आगे बढने पर वह आदमी उसके करीब आकर बोला, "सर, तूफान जोर का है।" सुहास ने देखा एक आदमी हडबडाता हुआ पेड़ पर चढ़ रहा है। यह वही आदमी है जो कुर्सी पोछ रहा था। यह आदमी जैसे ठीक उसी की तरह चिल्लाया था।

पेड पर चढ़ने वाला आदमी इस तरह चढ रहा था जैसे जमीन पर चलने की बजाय पड़ पर चढ़ने का उसका अभ्यास अधिक रहा हो। पर वह डाल में फँसे हुए काग़ज़ को निकालने के बाद भी समझ नहीं पाया कि नक्शे का क्या करे। अगर उसे ऊपर से छोड़ देता है तो वह हवा में फिर उड़ जायेगा। अगर हाथ में लिये उतरना चाहे तो पेड़ की टहनियों की रगड से नक्शा फट भी जायेगा। पर सुहास के पास खड़ा वह हाफशर्ट पहना आदमी और पेड़ के नीचे खडी भीड़ उसकी दिक्कत समझने पर भी कुछ नहीं कर पा रही थी। ऊपर एक हाथ से पेड़ से लिपट कर दूसरे हाथ में नक्शा लिये वह ठिठका हुआ था। हवा के झोंके से नक्शा फडफड़ा रहा था।

"हे बाघारू ! कागज मुंह में लइके उतर आ।" उस आदमी को शायद पता था कि ऐसा कोई निर्देश आयेगा। पल भर में ही वह इतने बड़े नक्शे को दाँत में दबाये सर्र-सर्र उतरने लगा—मानो तेज़ हवा के झोंके से तमाम पेड़ टूटकर ज़मीन पर गिरे जा रहे हों—डाल पात पर चिड़ियों के घोंसले, चींटियों के अंडे, यहाँ तक कि साँप-जोंक

सब कुछ। ज़मीन पर पहुँचने से पहले ही नक्शे का एक कोना मिट्टी से छू गया। लोगों ने उसे पकड़ लिया। उस आदमी ने दाँत की पकड़ ढीली कर दी। दूसरे लोग नक्शे को लेकर सुहास की ओर बढ चले। पर सुहास के पास पहुँचने के पहले ही हाफ़ शर्ट वाले आदमी ने नक्शा ले लिया। फिर वह सुहास की ओर बढ़ आया, नक्शा देकर बोला, "इके दबाकर रखिए, जोर के अंधड़ हई" मानो वह नक्शा उसका कोई उपहार हो। नदी के किनारे सर्वे टेबिल के पास सुहास और इस ओर भीड़ थी उसके पीछे वह आदमी कहीं नजर नहीं आ रहा था जो पेड़ पर चढा था। भीड और सुहास के बीच यह हाफ़ शर्ट वाला आदमी जैसे एक सूत्र हो। "पर यह आदमी है कौन ? देखने से तो एक जोतदार किसान नजर आता है।"

22
जंगल के भीतर

फॉरिस्ट के भीतर से प्रियनाथ निकल आया था–"सर, जरा इधर तो आइये, विनोद बाबू खड़े है।"

"हाँ, चलो।" प्रियनाथ के साथ शालवन के अन्दर जाते-जाते सुहास ने हसकर कहा, "नक्शा हाथ से उड गया था।"

"अरे कुछ मत कहिए, यह तूफान था ही ऐसा। हमे दे दीजिए सर।" प्रियनाथ ने हाथ बढकार नक्शा ले लिया। सुहास ने देखा कि वही हाफ शर्ट वाला आदमी भी उनके साथ चल रहा है। एक बार सोचा कि कह दे, आप क्यो आ रहे है ? पर बोल नही पाया। जरूरत भी क्या है ? जब किसी नाप वाप के बारे में उलझेगा तो देखा जायेगा। पर उस समय भी क्या देखा जायेगा ? वह आदमी किसी बदनीयत के चलते साथ चल रहा है, सुहास क्यो ऐसा सोच रहा है ? सुहास संदेह को मन से परे हटाना चाहता था। पर शक बना ही रहा। और उसके चलते मानो वह रुककर, घूमकर आदमी को ताकता हुआ पूछ बैठा, "आप तो यहाँ काफ़ी अरसे से रह रहे होंगे ?"

प्रश्न सुनकर प्रियनाथ भी रुक गया। वह आदमी भी रुक गया। प्रियनाथ अवाक्-सा सुहास की ओर ताकने लगा था। यही तो सिर्फ कई-एक कदम चले हैं पर इतने मे ही सुहास को लग रहा था कि जैसे फॉरिस्ट के काफी अन्दर आ गये हैं। तिस्ता भी नज़र नही आ रही। नपाई की जगह भी नही दीख रही।

और चारों तरफ बरसाती जंगल का सघन-श्याम विस्तार। इसी सबके बीच उन दो जन के रुक जाने के कारण सुहास को भी रुकना पड़ा।

प्रियनाथ ने पूछा, "कौन सर ?"

सुहास बोला, "नही, आपसे नहीं, इनसे पूछ रहा था। आप तो यहाँ काफ़ी दिनों से बसे होंगे ?"

प्रियनाथ सर हिलाकर बोला, "ये तो सर, गयानाथ जोतदार है।" सुनने मे ऐसा लगा जेसे 'सर' गयानाथ की कोई उपाधि रही हो। यह बात सुनते ही गयानाथ अपने दोनो हाथ उठाकर ऐसे नमस्ते किया जैसे सुहास ओर प्रियनाथ ही नही बल्कि यहाँ बहुत से लोग हो। इन पेड-पाधो के आगे भी उसके परिचय का कोई अर्थ हो। हाथ जोडे गयानाथ ने कहा, "हा बाबू। हम गयानाथ हई।" उस आदमी ने पहली बार ही शायद अपनी भाषा मे पूरी बात कही हा। सहास के चेहरे-मोहरे पर इस बात का कोई अर्थ पकड मे न आने पर भी वह बोला, "ओह ! अच्छा !" उसके बाद वह आगे बढ गया।

गयानाथ सुहास और प्रियनाथ के पीछे-पीछे ही रहा। उनके साथ नही आया। वही से उसने पूछा- "आपने ... क्या पूछा था ?"

"आप तो काफी दिनो से यहाँ है न ?"

"हाँ सर ! हम तो इहाँ ही रहते हइ।"

"नही नही। वह तो ठीक है। पर क्या आप बचपन से ही यहा है ? मतलब क्या तिस्ता बराबर यही से बहती रही है ?"

"अगर सन् अडसठ को छोडकर देखा जाय तो सर, तिस्ता इहाँ से ही बहती रही हइ।" गयानाथ ने सुहास के पहले सवाल का कोइ जवाब नहीं दिया।

"यानी अडसठ के बाद ही तिस्ता का रास्ता बदला ?"

"नही, ऊ तो बदलता रहता हइ, नदी तो कोइ मानुष के घर का अगना नाही कि एकबारेक पक्का रहेगा, हिलडुल नही लेगा। बदलता तो रहता ही हइ - होना भी चाही।"

दरअसल सुहास यह जानना चाहता था कि नक्शे मे तिस्ता के रुख मे जो परिवर्तन दिख रहा है, उसे गयानाथ ने अपनी आखो से कितना देखा है। पर गयानाथ इतनी दार्शनिकता से बोल रहा था कि सुहास ने बात को और आगे नहीं बढाया। गयानाथ को जैसे इतजार था कि सुहास कुछ कहेगा। जगल मे झीगुरो का स्वर प्रतिध्वनित हो रहा था। तिस्ता के गर्जन से यह जगल और घना होने लगा था। इसकी नीरवता और फेलने लगी थी।

गयानाथ आत्मचिन्तन मे लीन होकर बोला, "किशुक आउर नद्दी का तो स्थाइ भाग भी रहता हई। ये जितना भी टूटे और मरे सर, आखिर मे इनका एकी भाव ठीक ही रहता हई। जइसे कि..."

गयानाथ पल भर के लिए रुक गया। कोन सा उदाहरण दे—तय करने के लिए उसका कुछ समय सोचने मे बीता। फिर सुहास भी कुछ-कुछ अदाजा लगाने की कोशिश करने लगा। गयानाथ खुद को कुछ वर्ष पहले देखे हुए किसी सिद्धान्तवादी की तरह कुछ कह रहा था। नदी का किनारा एकाएक बदल जाता है। नदी अपने पुराने रास्ते पर फिर वापस नही जाती। ऐसा गयानाथ ने खुद नही देखा, पर इसी से तो वह झूठा नही हो जाता। सुहास मानो समझ गया कि गयानाथ ने साजा नक्शे के ठीक होने का वह जो प्रमाण चाहता है सो उसे नही मिलेगा। इसलिए भीगे सडे पत्तों पर से होता हुआ

वह चुपचाप चलता गया। सुहास ने प्रियनाथ से पूछा, "कहाँ?" प्रियनाथ हाथ को उठाकर अंदाज़ से बताता है। उसी समय गयानाथ बोला, "सन् अट्ठसट की बात को ही लीजिये, तिस्ता तो ईसी जगह से सीधे बायां घुस गई, या कि मान लीजिये, तिस्ता आउर धरला के बीचोंबीच जो परती जमीन को तोड़ कर बहा ले गई। हमने सोचा, बस हो गया, अबकी थिका-धरला का रास्ता तिस्ता का रास्ता बन जायेगा। पर तिस्ता तो फिर से अपने पुरानी जगहे पर लौट गई। अभी भी उसी में बह रही हई।"

यही कोई कुछ समय पहले जिन जगहों का नक्शे से निकाल देने की बात सोच कर वह निशान लगाता आया था सुहास मन ही मन उन जगहों की बात सोचने लगा "पर आप लोगों के तो कई गाँव बह गये हैं।" नाम उसका याद नहीं। जो याद है, वही कहता है, "इस फॉरेस्ट का भी तो बहुत बड़ा हिस्सा बह गया है। इसके उत्तर में हांसखाली है।"

"पर सर, नदी का माने ही तो तोड़नाइ हई। जिसका किनारा टूटता हई तो फिरे नया कगार बनता भी हई, तो वही हई जिसका किनारा टूटता नहीं आउर नया भी बनता नहीं। कहा नदी हई पोखर होता हई।"

नदी के इस सच्ची परिभाषा से सुहास काफी चमत्कृत हुआ। वह कुछ कहने ही जा रहा था कि उसके पहले ही गयानाथ फिर से शुरू हो गया—"पर आपलचाद का जितना हिस्सा टूटता था, उतने फिर से बनने भी लगा हई।"

"कहाँ?"

"वहाँ टूटा वहीं। नया टीला, नया जंगल।"

"सर इधर।" प्रियनाथ बायीं ओर मुड़ गया और उसके घूमते ही तिस्ता का गर्जन जैसे बढ़ गया। एक झाड़ पार होते ही सामने पेड़ के झुरमुट से तिस्ता दिखाई देने लगी। विनोद बाबू एक जगह एक टूटे पेड़ के तने पर बैठे बही में नोट करते जा रहे थे। सुहास और दूसरे लोगों को आता देख उठकर खड़े हो गये।

23
नदी का नक्शा

"सर, क्या आप नक्शा मिला चुके?"

"हां-हां ये देखिये। जिनमें क्रास लगाया गया है, उन्हें बाहर छोड़ दिया जायेगा। इससे एक आउटलाइन भी मिल जायेगी हमें। पर हमें सागर यानी कि इस गांव के टोटल एक रेंज की जरूरत है। इससे पहले के एक रेन के साथ इसका एक कंपेरिजन हो पाता। देखिये, यह रहा हमारा डिमार्केशन।"

सुहास ने प्रियनाथ की ओर हाथ बढ़ा दिया। प्रियनाथ नक्शे को खोलने लगा। सुहास बोला, "सावधानी के साथ खोलिएगा।" फिर विनोद बाबू की ओर देखकर हंसता

हुआ बोला, "मेरे हाथ से नक्शा उड गया था वहाँ।" विनोद बाबू थोडा मुस्कराए। तभी सुहास ने हसकर कहा. "एकबारगी पेड के ऊपर।"

जमीन पर नक्शा फैला हुआ था। उस टूटे पेड के तने पर अबकी सुहास बैठ गया था। विनोद बाबू मिट्टी पर उकडूं ही नक्शे मे निशान लगी जगहो पर ऊँगली चलाकर समझा रहे थे। प्रियनाथ ने नक्श को एक ओर से दबाये रखा था। और गयानाथ कुछ दूरी पर खडा माथे का थोडा झुकाकर नक्शे की ओर देख रहा था। पर यह निश्चित ह कि वहाँ से उसे कुछ भी नजर नही आ रहा था।

तमाम बाते समझ लने के बाद विनोद बाबू उठकर खडे हो गये। फिर प्रियनाथ से बोले, "प्रियनाथ चेन को थोडा बायी ओर खिसकाने के लिए कहो ता अनाथ को। ओर थोडा-सा दायी ओर ले जाओ। यानी कोण बनाकर। 'तो फिर इसी को ही प्वाइट पकड लेते है सर, आपने जहाँ स देखा था ?"

"ठीक है, वह ता एक बेहतर प्वाइट होगा।" पियनाथ चेन को थोडा-सा हिलाकर चिल्लाते हुए कुछ बोला। तिस्ता की हवा म उसकी आवाज तैरती चली गयी। पर उसी तरह से अनाथ की आवाज भी हवा म लहरायी। विनोद बाबू ने नाप कर कहा, "हा, ठीक है। या फिर और थोडा-सा छोड द, मर ? जैसा आप कह ?"

बात का जवाब तलाशते हुए सुहास एकबारगी किनारे पर पहुच, तिस्ता की गति का अदाजा लगान का प्रयास करने लगा। नदी की ओर देखने का मतलब उस पार की ओर ताकना। उस पार नीले क्षितिज तक फले धुधलके को ताकना। पर सुहास इस पार की तटरेखा की ओर देख रहा था, जो उसके पाव तल फला हुआ था।

यहाँ पर किनारा काफी ऊचा था और इसके एकदम किनारे बडे बडे छतनार पेड थे। हल्के-फुल्के पेड-पाधो के झुरमुट के सहारे यह खडा रह पाया था। अगर शाल का वृक्ष होता तो अपने वजन से ही ढह जाता। वे जहा पर खडे थे उसके कुछेक हाथ आगे एक विशाल पेड डालपात समेत उखड कर पानी म जा गिरा था। पानी मे गिरने के बावजूद उसके डाल पत्ते सब पानी के ऊपर ही रह गये थ। कुछ हिस्सा डूबा नीचे की ओर। सुहास ने थोडा-सा आगे झुककर देखा, तलहटी की मिट्टी भी बहने लगी थी। वह बोला, "इस तरफ यह किनारा भी टूटेगा ऐसा लगता है, और थोडा-सा छोड दे क्या ?"

"सर, फिलहाल हम उसे ही प्वाइट बनाकर रखे तो बेहतर होगा। फिर एक रेज देखकर और नार्थ हालके का नक्शा देखकर एलाइनमेंट ठीक कर लेंगे।"

"ठीक है वही कीजिये फिर।" मौजा मेप के ऊपर विनोद बाबू पेंसिल से नयी लाइने बना रहे थे और प्रियनाथ से पूरी चेन की लाइन भी देखते जा रहे थे।

"गयानाथ बाबू इसके बाद वह उदलाबाड़ी चा-बागान ?" गयानाथ से विनोद बाबू ने पूछा।

"हाँ। पर नदी आउर जंगल, कितना नष्ट होगा, कितना बचेगा नक्शे पर इसका

हिसाब भला कइसे कर पाइगे ?" गयानाथ उसकी प्रत्यक्षता को इनकी अनुमानिकता के खिलाफ ला खडा कर दिया कि जो आनुमानिकता, नाप जोख मे स्थिर है, अदालत के फैसले-सा। विनोद बाबू ने कोई जवाब नही दिया।

उस तरफ से सुहास ने देखा–तिस्ता के इस छोर से उस छोर तक, जैसे जल का स्रोत नही। सिर्फ़ एक कठिन जलभूमि का विस्तार। कुछ देर देखते रहने पर लगता था कि तिस्ता बह नहीं रही, बल्कि ये किनारा, तटभूमि बह रही हो। उस वक्त उसे ऑखे मूँदकर बहाव के विभ्रम को काटना पड़ा। तिस्ता का बहाव इतना तेज़ था कि किसी प्रकार का कोई आलोडन नही हो रहा था। फौलादी चादर की तरह हर तरफ नदी का फैलाव ही नजर आ रहा था। अचानक बीच-बीच मे एकाध लकड़ी या पेड का सूखा तना बहता हुआ नजर आता था तो पता चलता है कि नदी का बहाव कितना तेज है। इतना बडा बडा तना एक तिनके जमा बह जाता है। पर नदी की गर्जना उसके चारो ओर के शोर-शराबे से अलग किये बिना सुना नही जा सकता। खास तौर पर जगल मे खडा हो तो चारो ओर की तमाम आवाजो के साथ नदी का शोर इतना घुला-मिला होता है। पर नदी की ओर देखते हुए उसके बहाव को लक्ष्य करते और नदी की आवाज को उस माहौल की आवाजो से अलग कर लेने से दोनो की अलग पहचान होती है। फिल्मो मे ऐसे दृश्य को समझाने के लिये एक की आवाज धीरे धीरे तेज कर दी जाती है। ठीक उसी तरह जैसे तिस्ता का गर्जन बढते-बढते प्रबल होने लगता है। उस समय लगता है इस प्रचड आवाज को सुने बगैर कैसे रहा जा सकता है ? फिर भी इस आवाज के बीच अविराम मेघ गर्जन जैसे एक दूरी का सकेत होता है। पर अवरुद्ध गुम-सुम ध्वनि पानी की तलहटी से और नीचे की ओर उतरता जाता हो जैसे। पहाड पर से बडे-बडे चट्टान प्रखर बहाव मे तलहटी मे गडगडाते हुए बहते जा रहा होता है। इस गडगडाहट मे जैसे पहाड के चट्टान भी टकरा रहे है। पानी की तलहटी मे बडे-बडे पत्थर जब टकराते हैं, उस समय तलहटी मे जैसे तोप-गोले फटने लगते है। यहाँ के लोगो ने इस आवाज़ को एक नाम भी दे रखा है, 'तिस्ता का तोप'। जिस समय सुहास मोता की ओर देखते हुए, दृश्य-शब्द, शब्द के भीतर के शब्द को सुन रहा था, उस समय उस ओर का कुछ सुनाई नही दे रहा था। उसे कुछ दिखाई भी नही दे रहा था। अपनी तमाम समग्रता के साथ ये दृश्य और शब्द उसे जैसे सम्मोहित किए जा रहे थे। उसे दिखाई दे रहा था– तिस्ता जो यहाँ से उत्तर और पश्चिम की तरफ मुड गयी है ठीक यहाँ यह मटमैला प्रवाह तकरीबन एक बना-बनाया तोता जैसा मोड लेता है। उसी मोड से पानी सुहास की ओर बहता जा रहा था। और सुहास की ऑखे उस प्रवाह के साथ-साथ चलते हुए उसी मोड तक पहुच रही थी। उसका सिर चकराने लगा था। इस बहाव की प्रखरता को नजरअदाज नही किया जा सकता था। सुहास इस चक्कर से बचने के लिए पहले ऑखे बद कर लेता फिर वही बैठ जाता था।

24
नदी है या नहीं : गयानाथी तर्क

आँखें बंद करते ही नदी और नदी की आवाज़ दोनो ही वातावरण में मिल जाती थी। इसी तरह नदी के सामने बैठ कर नदी से खुद को अलग कर लेने या फिर से नदी को उसके वातावरण के साथ मिला कर अस्पष्ट कर लेने पर सुहास अपना आप को काफ़ी हल्का अनुभव करता था। वह नदी की ओर पीठ फेर कर देखता था कि विनोद बाबू नोट लेने में जुटे हैं। गयानाथ उसकी ओर देखता था। पर प्रियनाथ बाबू नहीं थे।

"प्रियनाथ बाबू कहाँ हैं ?"

"वे चेन समेट रहे हैं।"

अबकी गयानाथ सुहास की ओर बढ़ आया, "सर, इसी का नापजोख में आपको कुछ मिला ? क्या नदी का कगार टूटा हुई ? नापजोख में"

सुहास ने बैठे-बैठे ही कहा, "आप जो कुछ देख रहे हैं, मैं भी वही देख रहा हूँ। मैंने यही सब नापजोख नोट कर रखा है।"

"वही तो कहना चाहता हूँ सर। अइसठ के बाढ़ में कगार टूटा तक आ गया था। फिर अंदर भी घुस गया था। हाँ, पर उसके बाद अबतक टूटा नहीं। अब तो ई जंगल भी इधर नदी की ओर बढ़ता चला जाहियें।"

"वह जब जायेगा तब जायेगा। अभी और जा नहीं रहा।" विनोद बाबू अपने नोटबुक पर से बगैर नजर उठाए बोले।

"पर सर। ईस भरी बारिस में तो नदी हर कहीं घुस जाहिए। जहाँ तक जाहिए किया वह जमीन सर्वाई में रद्द कर दी जाहिए। तमाम मौजा को रद्द ही समझा।" गयानाथ उत्तेजित हो गया था। वह और उत्तेजना में अपनी भाषा का प्रयोग नहीं कर पा रहा था। इतनी देर के बाद गयानाथ की बातों से सुहास को लगा कि गयानाथ इसी गाँव में सारी जिन्दगी गुजार देगा। यही इस नदी को देखकर वह किसी सामान्य सार्वजनिक दर्शन तत्त्व का बखान नहीं कर रहा बल्कि वह कुछ खास कहना चाहता है। उसने गयानाथ से पूछा—"तो फिर आप कहना क्या चाहते हैं।"

"नहीं सर, हम भला क्या कहें ? मन कहा कि हमारा मौजा के नक्शे में कुछ बदल तो नाहीं रहा हइ न ? जौन नक्शा हई उही" गयानाथ बात खत्म नहीं कर पाया। पर लगता था, वह बात को पूरा करना चाहता था।

सुहास ने पूछा, 'यानी, मैं तो देख रहा हूँ कि नक्शे के गाजलडोबा नहीं, हासखाली नहीं, नागसी नगर नहीं, इतने सारे का नामोनिशान तक नहीं, और हम यह लिख दें कि मौजा मैप से सब ठीकठाक है।"

"नहीं, नहीं, उसमें लिखने का काम आउर हई भी क्या सर ? कुछ भी मत

''तो फिर उसे भी रिकार्ड करना होगा। मैं दाग नंबर भी कहा हूँ ? फिर दाग नंबर भी शुरू शुरू कहाँ से करूँ ?''

''जहा से जंगल का ज़मीन दखल होना हुई उहीं से।''

''जंगल का जमीन दखल हुआ है यानी ?''

''मान यही कि, आगे जहा जंगल था अब खेतीबारी हो रही हइ। अब तो उसे खेती का जमीन कहेंगे न ?''

''कौन कर रहा है खेती ? जंगल का जमीन तो जंगल का ही है। किसे खेतीबारी के लिए दिया गया है ? बल्कि उल्टा हुआ है, पहले वहा आबादी थी, अब जंगल है।''

''हा ऊ भी हो सकता हइ। पर यहा तो सभी जमीन जंगल का ही था, फिर उसमें खेतीबारी होने लगा हइ।''

विनोद बाबू ने अबकी बार सर उठाकर देखा। फिर कहा 'पुरानी बातें निकालने का क्या फायदा ? अभी हम यह जो देख रहे हैं कि नदी यहा तक आ गई है तो क्या इसे हम दर्ज न करें ?'' विनोद बाबू उठकर खड़े हो गये। फिर सुहास से बोले, ''आपने समझ लिया न सर, जंगल की जमीन पर जिस समय गयानाथ बाबू खेतीबारी का काम करेंगे उस समय उसे कागज़ का दिखाना पड़ेगा। और गयानाथ बाबू की जमीन जब नदी में जायेगी, तब भी वह गयानाथ बाबू की ही रहेगी। क्या कहते हैं गयानाथ बाबू ?''

'बात ना आपने सीधी ही कही हइ अमीन बाबू, पर ठीक ही कहा हई। जमीन का तो पर नाहीं कि कहीं उड़ जायेगी। जहा का जमीन उहीं पर रहा करती हई। चाहे ऊ जमीन पर जंगल हो या कि फिर पानी।''

अब सुहास की समझ में कुछ-कुछ आ गया। कभी पीछे-पीछे आकर कभी कुछ अनमने भाव से, और कभी काफी जोर देकर गयानाथ बाबू किसी बात को प्रमाणित करना चाहते थे। और उस बात में क़ानून का कोई समर्थन न होने से उनकी बात शायद इतनी जटिल लग रही थी। पर हो सकता है कि क़ानून का समर्थन भी रहा हो या रह सकता है। सुहास के सामने बात कर रहा था इसी से शायद इस ढंग से कर रहा हो। ''पर उससे आपको क्या फायदा होगा ? आप लोगों को ? हम अगर नदी को न भी दिखायें, तो भी नदी तो यहीं रहेगी ही। उठकर तो चली नहीं जायेगी कहीं ?''

''पर नदी तो इहा से खिसक जायेगी न सर ? आखिर एक-दो महीने बाद नदी इहा से नीचे खिसक जायेगी।''

''ना, वह तो उतरेगी। बरसात में नदी जितनी चढ़ती है, सर्दी में तो फिर उतनी नहीं रहती। पर क्या आप सर्दी की नदी को ही नदी कहेंगे ? बरसात की नदी भी तो नदी होती है। फिर बरसात का पानी जायेगा कहा ?''

''ऊ तो है सर, अगर आप इसे नदी कहकर डिक्लीयर कर देंगे, नोटिस देंगे, और उसके बाद भी नद्दी आउर बढ सकती है, बारिस बसी होने से घरे के अंदर घुस

सकती है, तब आप क्या बोलेंगे ? ऊँची जगह अगर नद्दी का पानी घुस गया तो वह स्साला सब जगह नद्दी का हो जायेगा ?"

गयानाथ की ये बाते सुन सुहास समझ गया कि उसकी बातों का जवाब देना मुश्किल है। तर्क के दाँवपेच में गयानाथ माहिर है। सुहास का यह संदेह कि गयानाथ अपनी बात शायद ठीक तरह से कह नहीं पा रहा है, मिट गया। विनोद बाबू ने कहा, "हम लोग अभी जो कुछ देख रहे है, वही लिख रहे है। इसके बाद आप अटैम्टेसन के समय कहिएगा। तब तो और बारिस भी नहीं रहेगी। जांच के समय कहिएगा, भूल होने पर भूल की लिस्ट निकलेगी। चलिये सर। हमे देर हो जायेगी। एक ही जगह तो सारा समय नहीं दे सकते।"

"ऊ तो किया ही जायेगा अमीन बाबू। पर एहीं पर तो मई सर के सामने अपना बात कह सकता हूँ। हई कि नहीं ?"

सुहास ने फौरन कहा, "क्यो नहीं, जरूर, आप कहिये ना। हम भी सुन रहे है आपकी बातें।"

सुहास को पता लग गया कि गयानाथ ने अपने हिसाब से कानून का विधान भी सुना दिया। विनोद बाबू भी चुप हो गये। गयानाथ ने तभी कहा, "मेरी बात तो एकदम सीधी हइ सर। आपने जहाँ नदी आँका, इहां कोइ नदी नाही, ई तो वर्षा का जल हई।"

सुहास नदी की ओर लौटने लगा है। वह नदी के ओर जरा निकट जाता है। फिर वह नीचे झुक कर किनारे का कटाव देखने लगा। फिर वह नदी के कटाव से उत्तर की ओर बढने लगा वैसे ही नीचे की ओर झुककर, किनारे का कटाव लाइन देखते-देखते उसे परखते हुए। बीच में वही उखड़े हुए पेड़ का अवरोध। फलस्वरूप उसे पेड को घूमकर पार करना पडा। गयानाथ और विनोद बाबू पीछे-पीछे थे। सुहास समझ गया था कि गयानाथ क़ानून की ओर से बात करना चाहता है, इसलिए सुहास इनके तर्क को और थोड़ा परखना चाहा। उसने एक मोड़ तक देखना पसन्द किया। जो मोड़ नदी को यहाँ से दाहिनी ओर ले गया है। यह तटरेखा निश्चित रूप मे नदी की कटाव रेखा है। बरसाती पानी से नदी अगर यहाँ तक चढ़ आयी होती तो क्या इस तरह किनारे का कटाव हो सकता ? सुहास ने तटरेखा का कटाव कोई ज़्यादा नहीं देखा था। सामान्य तौर पर देखे होने पर भी, बारिश और नदी का कटाव उसके खयाल से परे की चीज है। सुहास ने सीधे खड़े होकर तिस्ता की ओर एक बार निहारा। उसके आगे एक-आध झुरमुट थे। वह भी घने नहीं, पतले। उस झुरमुट से तिस्ता दिखायी दे रही थी। दूर मटमैले विस्तार के ऊपर आकाश और उजास के विचित्र संयोग से छाया और धूप का ताना-बाना कितना खूबसूरत लग रहा था। यह ताना-बाना स्थिर था, कोई बहाव नहीं। टूटन नहीं। आक्रमण नहीं। आवाज़ भी नहीं। सुहास का मन हुआ कि वह तिस्ता की आवाज सुने। आँखें मूँद कर वह तिस्ता की ओर ध्यान लगा दिया। पहले नदी और जगल के झींगुरों

की आवाज़ के साथ मिली हुई आवाज़ सुनाई पड़ी। उसके बाद धीरे-धीरे नदी और झीगुरों की आवाज़ अलग होने लगी। अलग होते-होते नदी की तलहटी का स्रोत ऊपर उठने लगा। तब तिस्ता फिर से दुबारा, जलस्रोत से ध्वनि-स्रोत बन जाती है। अविरल कलकलाती ध्वनि। लगता था चट्टान के साथ चट्टान के टकराने से नाप की सी गरज मिट्टी को भेद कर गूंज रही है। अदृश्य जलगर्भ जीवित हो उठा। सुहास ने आँखें खोली। आवाजें बहुत कुछ विलीन होने लगी।

सुहास लौट पड़ा। उसने अपना तर्क तैयार कर लिया था। अगर कोई प्रमाण हाजिर कर सकता है गयानाथ, तो करे। वरना जो उसने लिखा है वही पक्का।

गयानाथ, विनोद बाबू उसकी ओर ही देख रहे थे खड़े होकर। सुहास उनके निकट जाकर खड़ा हो गया। दोनों मे से कोई भी कुछ नही बोला। सुहास बोला, "नहीं गयानाथ बाबू, नदी यहां तक ही आयी है।"

गयानाथ जैसे दार्शनिक भाव से सुनता रहा था, ठीक उसी तरह अबकी बार भी सुना। कुछ बोला नहीं। गयानाथ या विनोद कोई भी नही हिला। सुहास ने विनोद से चलने को कहा तब विनोद बाबू ने कहा, "सर, मै कह रहा था कि जब गयानाथ बाबू इतना कह रहे है तो फिर से एक बार देख लेने मे नुकसान क्या है ?"

"मै तो उसी को देखकर आ रहा हूं। यह नदी का ही आउटलाइन है। स्पिल एरिया नहीं है। अगर गयानाथ बाबू कोई प्रमाण देना चाहते हैं तो हाजिर करे।" विनोद बाबू की इसी बात पर सुहास ने एक बार गयानाथ की ओर, एक बार विनोद बाबू के मुंह की ओर देखा। सुहास भी कुछ कहने के लिए सोच रहा था। पर गयानाथ कुछ कहे तो। वह अपनी ओर से कहना नही चाहते थे। विनोद बाबू ने पहले ही कह दिया था प्रमाण की बात एक बार सामने आ जाती है तो फिर पीछे लौटते नही। इससे विनोद बाबू ने कहा, "गयानाथ बाबू ?"

गयानाथ खड़ा था। सुहास ने कहा, "आपके पास अगर कोई सबूत है तो कहिए।"

"हमको थोड़ा समय दीजिये सर। हमको इहा से जाना होगा। तब फिर परमाण पेश करूंगा। जरूर पेश करूंगा।"

"हा, आप जाइये। पर जल्द ही वापस आइएगा।"

"हा सर! बस अबहैं गिया आउर आया। गया आउर आया।"

दूसरे ही पल गयानाथ पत्ते कीच के बीच से सरसराते निकल गया।

25

दस साल आगे-पीछे : 'गयानाथ का जोत'

सुहास गयानाथ के जाने की दिशा मे देखता रहा। गयानाथ हालांकि खुद दुबला-पतला,

नाटे कद का व्यक्ति था. उसके आने जाने पर किसी किस्म की आवाज नहीं होनी चाहिये। पर गयानाथ जैसे उसकी कल्पना के पर निःशब्द जंगल के बीच काफ़ी तेज तर्रार किसी जानवर की तरह गुम हो गया। अब तक सुहास सोच ही नहीं पाया था कि गयानाथ मे इतनी फुर्ती होगी। उसने काफी धीरे से पूछा, "कौन है यह सज्जन ?"

"गयानाथ जोतदार। राय वर्मन। तीन पीढ़ी से। देखा नहीं आपने इस मौजा का सब कुछ तो इसी का है। इसके नीचे का मौजा भी पहले इन लोगों का था।"

गयानाथ राय बर्मन ! सुहास जैसे कोई पुरानी याद कुरेदकर इस नाम को याद करने का प्रयास करने लगा। दलील-दस्तावेजों में नहीं, रिकार्ड में नहीं, पर्चा में नहीं, पर गयानाथ, यह नाम उसने किसी न किसी से सुना है जरूर ! "इसका क्या जंगल में भी कोई दखल है ?"

"कहा, कहा नहीं है मगर यह भी गयानाथ का कारन है, जोत है, यह सभी जानते हैं। आप मौजा का नाम बदल सकते हैं, 'मौजा गयानाथ का जोत' भी लिख सकते हैं।"

"क्या, किसलिए ऐसा लिखें ?" सुहास थोड़ा सा अनमने भाव से विनोद बाबू से बोला। पर लगता था कि इस बात में काफी दम था। विनोद बाबू ने फौरन ही कहा– "ऐसा कोई बात नहीं सर। बस यूं ही कह रहा था।"

अबकी सुहास के सामने जैसे बहुत कुछ साफ हो गया था। उसने थोड़ा सा हँसकर नदी की ओर हाथ से इशारा करते हुए कहा, "उसकी जमीन है सब ?" विनोद बाबू ने थोड़ा-सा हँसकर सर हिला दिया। "तो फिर नदी का भी दोष है हमारा भी दोष है।"

अगली बार जो सेटलमेंट हुआ था, उसके पच्चीस वर्ष बाद यह सेटलमेंट हो रहा है। बीच में अड़सठ की बाढ़ जैसी घटना भी हो चुकी है। तिस्ता बैरेज का काम शुरू होगा। यह सर्वे तिस्ता बैरेज के लिए ही किया जा रहा है। तिस्ता बैरेज बन जाने से नदी का बहुत कुछ बदल जायेगा। फिलहाल सर्वे में इस मौजा के नक्शे से ये पुराने दाग नंबर सदा के लिए छोड़ दिए जा रहे हैं। हाल का दाग नंबर नये सिरे से शुरू होगा। मतलब नदी ने जो कुछ भी ग्रास किया है वह नदी की संपदा बन जायेगी। बन जायेगी क्या, बल्कि बन चुकी है। अभी अगर दो चार-आठ-दस-बारह-चौदह वर्ष बाद यहां बालू का भँवर हो जाये या फिर बैरेज के होने से किनारा आगे बढ़ जाए तो इस पर गयानाथ का कोई अधिकार नहीं होगा। जो चाहे वही कब्जा कर सकता है। फिर सरकार भी जिसे चाहे उसके नाम उस ज़मीन का बंदोबस्त कर सकती है। पर यहाँ तक अगर नदी की सीमा को न माना जाये, पुराना मौजा मैप ही अगर चालू रहे तो पाँच-सात, आठ-दस, बारह-चौदह वर्ष बाद भी बालू का भँवर हो जाये तो गयानाथ क़ानूनी तौर पर कहेगा कि यह बालू का भँवर नहीं, उसका खुद के खतियान में दर्ज ज़मीन है। और उस बार के सेटलमेंट में एक जने के नाम में एक ही खतियान इशू किया जायेगा। यानी,

इस नदी के नीचे जो मिट्टी है, उसका भी हाल खतियान पाना चाहता है गयानाथ। सुहास एक कदम आगे आ गया। झुककर नदी का किनारा ऊपर से एक बार फिर देखने लगा। इस बार उसे नदी की इस टूटी लाइन का एक और नमूना देखने को मिला। यहां जमीन में जो कटाव है वह जंगल का है। पर और थोड़ा हटकर दक्षिण में जो जमीन कटी है या कट रही है वह सब गयानाथ की जमीन है। तिस्ता की तलहटी की मिट्टी प्राकृतिक रही नहीं, जल के नीचे का रहस्य रहस्य नहीं। जल स्रोत और प्रखर स्रोत में अमानवीय कोई शक्ति रही नहीं। तिस्ता का जल प्रत्यक्षतः यहीं तटवर्ती जल, तिस्ता की मिट्टी—विशेषतया यहीं तीरवर्ती मिट्टी एक वस्तु यहाँ प्राकृत मानविक शक्ति हो उठी। झप-झप कर जो मिट्टी धंसती है अथवा जल प्रवाह के आघात से जो किनारे की मिट्टी खोखली हो गयी है, वह सब मिट्टी और तटभूमि गयानाथ की है।

सुहास तिस्ता की ओर देख रहा था। पर दूर के तिस्ता के आनंदिपना में आंखें फिरा कर पास की निर्लिप्तता पर नजर गड़ा देता था। सुहास खूब निकट से देखता था, सरसराता पानी, कांच, उफनते हुए फेन (आग की एक सूक्ष्म रेखा सी खेल रही थी, कई हाथ छूकर भी तिस्ता का पदचिह्न पास रहा नहीं [illegible] नहीं पाता। मिट्टी पर से एक तिनका चुन कर सुहास ने एक पत्थर [illegible] पानी में फेंक दिया। फिर विनोद बाबू से बोला, "उसके पास जो भी प्रमाण है वह वहीं जाकर दे सकता था। यहां आने की जरूरत ही क्या है?"

विनोद बाबू कुछ पल रुके फिर विह्वलता के साथ बोले, "हां वह तो है ही सर! आपने कहा, मैंने भी और नहीं सोचा।" फिर रुककर बोले, "अभी हम यहां से चल सकते हैं, वह वहीं जाएगा।"

"जब गया है तो फिर उसे यहीं आने दो।" कहकर सुहास एक तने के ऊपर बैठ गया। फिर हंसते हुए विनोद बाबू से बोला, "क्यों, जगह का नाम आप कहीं बदल तो नहीं रहे? क्या कह रहे थे आप गयानाथ का जोत?"

"नहीं सर, बस यूं ही कह रहा था।" विनोद बाबू जैसे कैफियत देते हुए बोले। पर सुहास ने फिर कहा, "कोई खराब तो नहीं है यह नाम भी—'गयानाथ का जोत' इधर तो इस तरह के नामों का प्रचलन भी है।"

"हां सर, वो तो है ही।"

शायद इसी से सुहास को लगा था कि नाम कहीं का सुना है जरूर। काफी दिनों पहले किसी से सुना था, याद भी थोड़ा-थोड़ा आ रहा था—नक्सलबाड़ी, बूढ़ा का जोत, मंगलबाड़ी जोत, काली का जोत। उस दिन इसी तरह से कहीं चले जाने के बदले दस-बारह साल बाद, अभी, सुहास एक ऐसी जगह पर बैठा था जिसका नाम हो सकता था—'गयानाथ का जोत'। वह चाहे तो यह नाम भी दे सकता है। और गयानाथ जोतदार ! वह गया है अपने पक्ष में प्रमाण लाने। सुहास फ़िलहाल जोतदार का विचारक है। यह तो एक तरह से सुहास की जीत है। काफी बड़ी जीत। पर सुहास

को विजय का बोध हो नही पाता—'गयानाथ का जोन' इसी एक नाम के अनुसग के साथ ही उसका तमाम विजय बोध जाता रहा मन से। वह प्रतीक्षा करता रहा गयानाथ का। गयानाथ उसे बिठाकर गया है, फिर वापस आएगा, दस साल पहले उसे देखकर गयानाथ भागता रहा है। पर फिलहाल उसने सुहास को अफसर मान लिया है। अभी गयानाथ आ रहा है—यह नदी, नदी का जल और नदी के भीतर की मिट्टी और यह जगल सब गयानाथ का है, यह मनवाने के लिए। अगर मान नही लेगा तो अपील होगी। फिर अपील पर अपील होगी। अपील पर अपील की अपील होगी। वहा तो सुहास बस एक सीढ़ी मात्र ही है। आत्मकरुणा से अपने को बचाने के लिए सुहास फिर से नदी की ओर ताकने लगा। यह भी किस्मत थी कि तिस्ता को गयानाथ की इतनी जमीन मिली थी। इसी से कम से कम सुहास जोतदार का अफसर बन पाया है। सुहास ने फिर से नदी मे एक तिनका फेका। 'जोतदार विरोधी बधुशक्ति' या 'वर्गसघर्ष का मित्रशक्ति', फिर 'वामफ्रट सरकार किसानो की मित्र सरकार' फिर 'सुहास किसानो का मित्र अफसर'। चारो ओर मित्र ही मित्र। पर जिसका मित्र रहा ही ढूँढ नहीं पा रहा था।

26
भीड़ और गयानाथ

बहुत सारे लोगो के कदमो से सड़े-गले, भीगे पत्ते पीसे जा रहे थे। पिसे पत्तो से एक तरह की आवाज निकल रही थी। सुहास आँख उठाकर उधर ही देख रहा था। बहुत से लोग आ रहे थे। विनोद बाबू ने कहा, "क्या बात है, वह तो सभी को शायद लिये आ रहा है।"

"लगता तो ऐसा ही है।", कहकर सुहास सोचने लगा कि ये सब क्या, पहले से ही तयार खडे थे। अगर ऐसा ही है तो सुबह सर्वे के दौरान वहा जितने भी लोग थे सभी गयानाथ के ही आदमी थे ? यहां तो जैसे गयानाथ का कोई विरोधी पक्ष भी नहीं है, सुहास सोचने लगा।

सुहास उसी टूटे-सूखे पेड के तने पर बेठा हुआ था। पूरा का पूरा दल वहां आकर उसके सामने ठिठक गया। सुहास बेठे-बैठे ही देख रहा था उन्हें। गयानाथ को वह देख नहीं पा रहा था। लोगो मे जैसे एक 'मुकाबले' की भावना नज़र आ रही थी। यहां इस जगल में बीच-बचाव की कोई जगह भी नहीं थी। बचने के लिए कोई यहां नही आता। बैठने की भी जगह नहीं—बरसात के जंगल में। तमाम लोगो का दल एक भीड के रूप मे सामने खडा था। इसी से मजबूर होकर भीड़ को कई कतारों में बँटना पड़ा है। और भीड के सामने अकेला सुहास बैठा था, नदी की ओर पीठ किये। विनोद बाबू सुहास से कुछ दूरी पर खडे थे, पर भीड़ के सामने। यहाँ जिस तरह खड़ा होना पड़ा था, इसी

से सबका चहरा माना एक ही जगह मिल गया था। सभी सजे-सजाय हुए। ठीक केलेंडर मे राष्ट्रीय एकता के चित्र की तरह-ताबइ-मगोलाइ चहर क निकट नेपाली चेहरे की तीक्ष्णता, पीछे-पीछे लबानरे मथाली चेहरे। सुहास वहाँ पर नया था, इसी से वह इस क्षेत्र से परिचित नही था। जा भी परिचय था वह तथ्य से, नक्शे से, और रिपोर्टो से ही था। इसी स चहरा की भिन्नता को वह शिद्दत क माथ महमूस कर रहा था। वरना पहनाव-आढाव स इस भीड के भीनर वैचित्र्य इतना कम नजर आ रहा था कि तमाम लाग बस एक भीड ही नजर आ रह थ। अलग-अलग आदिवासी उपजाति के थे, ऐसा नही लग रहा था।

पर इतने सारे लोग, इतनी घनिष्ठता के साथ इस जगल के बीच सुहास के सामने खडे ह, जेसे गयानाथ लागा का जुटा कर उसे भय दिखान के लि‌ए आया हो। सुहास उठकर खडा हो गया। फिर थाडी-मी कडकदार आवाज म पूछा, "गयानाथ बाबू कहाँ ह ?" अचानक जस सुहास न सावधानी बरतने की आवश्यकता महसूस की। इस जगल क बीच उस आर विनाद बाबू का कुछ-कुछ अलग करक गयानाथ ने क्या कोइ जाल बिछाया ह ? सुहास न विनाद बाबू की आर नही देखा। पर समझ गया कि उनकी मुद्रा से भी अनिश्चितता झलक रही ह। सुहास भूला नही था कि ठीक उसके पीछे ही तिस्ता ह—बारिश से उफनती तिस्ता। आर सामन इतन सारे लाग। सभी क सभी आदिवासी।

पर इतनी अनिश्चतता-अस्थिरता के बीच भी सुहास अपन सामने इन चेहरो की ओर दख रहा था। इस किस्म क चहरा क समावेश का सपना वह अक्सर देखा करता था—दस-बारह बरस पहल। विभिन्न घटनाओ मे वह भी ऐतिहासिक घटनाएँ। पर, अब लगता है जेसे यह परीकथा ही हो। व्यष्टि नही, समष्टि ही हो। इन चहरो के आयतन मे ओर रेखाओ म, नाक-मुँह-आख कान की तरह वेयक्तिकता तथा शारीरिकता खुदी हुई थी। उस दृश्य ने जेसे सुहास को किसी एक गुप्त समावेश के सामन लाकर हाजिर कर दिया था। किस पता था कि इस नरह की प्रतिपक्षता मे उसका यह आविष्कार घटित हो जायेगा।

'ऐ हटो, हटो' जगली मुर्गे क गले मे जेसे गयानाथ बाबू की यह पुकार जगल के भीतर से सुनाई दी। उसक बाद सामने के आदमियो म एक व्यवधान उत्पन्न हो गया और उसी फाक से हाते हुए आगे बढते-बढते गयानाथ बाबू रुक गये। उसे न देखकर सामने का एक आदमी बाइ आर जरा हट कर फॉक का पाट दिया। गयानाथ पहले माथा निकालकर, फिर भीड से पूरे शरीर को बाहर लाया। धोती का एक सिरा भीड मे कही फँस जान स उसका एक पैर जॉघ तक उघड गया था। पीछे धोती का ढेका भी खुल गया था, इसी से वह धाती को हाथ मे सभाले हुए था। भीड ढूँढ नही पायी कि धोती कहाँ फसी हे। और इसी हालत मे गयानाथ जगली मुर्गे के गले मे चीखने लगा, "साल्ला। सब चूतिए का औलाद ! तुम लोग साल्ला। जंगल मे आ के जगली बन गया हई। साल्ला पीछे भी देख नाही पाता क्या हइ, क्या नहीं हई ? इहाँ

क्या सर्कस लगा हुआ हई या नोटकी चल रहा ?''

तब तक धोती का छोर गयानाथ को वापस मिल चुका था। गयानाथ सुहास के सामने खडे होकर भीड के साथ फिर से गाली-गलोज करने लगा। उसको नाटेपन के कारण भीड को सामने से देखने के लिए उसे अपने शरीर का काफी उछालना पड रहा था। इतना हिलडुल कर गुस्साया नहीं जा सकता। या कि फिर शरीर हिलाकर गले से इस तरह की आवाज निकालना उसके लिए संभव नही था। इसी से भीड के सामने खडे हो कर, शरीर झुकाकर मिट्टी की ओर ताकते हुए गले मे जितना जोर लगाया जा सकता है, उतना जोर लगाकर, गयानाथ बके जा रहा था—''कउन साल्ला कहा हई तुम सबको इहाँ आने को ? सब आ गये साल्ला। भूतो की जमात। साल्ला चीउटी जइसा लाईन बनाओ, लाईन मे चलो, साल्ले बैल।'' गयानाथ के चीखने चिल्लाने से पहले सब घबरा गये थे। पर धोती के फस जाने से सबको मानो एक काम मिल गया। लेकिन धोती कहाँ फँसी है, वह ढूँढ न पाने का सबको तनाव था। इस बीच धोती के खुल जाने का गयानाथ का डर देखकर सबको मजा भी आ रहा था। फिर गयानाथ का सिर झुकाकर चीखना-चिल्लाना देख भीड के लोग धक्कम धुक्का कर आपस में हंसने लगे। पर मुँह छुपाकर। गयानाथ के सामने हँसने की हिम्मत किसी में नहीं थी। भीड के भीतर गयानाथ को कोइ देख नही पा रहा था और गयानाथ भी भीड के आड से बाहर निकल नहीं पा रहा था -इससे बढकर और मजा भीड के लिए क्या हो सकता था

गयानाथ ने जोर से खखार कर थूका—''आक थू।'' धोती के छोर से मुह और होंठ पोछा और फोरन धोती का छोर उलट कर कमीज की जेब मे ठूस लिया। उसके बाद, फिर से सिर झुकाकर उसने धोती के छोर को थोडा सा ढीला कर दिया। सुहास की ओर पीठ करके वह यह करता रहा। भीड सामने थी। मानो भीड ही उसकी भीतर हो। आखिरकार भीड की ओर पीठ फेरकर सुहास के सामने खडे होने से पहले लोगो की आखो मे आँखें डाल, अपने कंठ से चिहुँक उठा—''साल्ले भस के पोतो।''

सुहास बैठ गया था। बैठे ही रहा। उसने गयानाथ से कुछ भी नहीं पूछा। पूछने के लिए भी कुछ नही था। इसके अलावा, सुहास समझ गया कि गयानाथ कुछ समय पहले अकेले-अकेले, धीरे-धीरे ही बात कर रहा था। सुहास के सामने अपने आपको भली-भाँति प्रतिष्ठित कर रहा था। फलत उसे कुछ तरजीह भी मिली थी। पर अभी उसने अपने व्यवहार से पहले के रोब पर पानी फेर दिया था। भीड उसकी गवाह थी। अब सुहास भी उसे महत्त्व नहीं देगा। उसे उसका गवाह सीधे-सीधे पेश करना है। चाहे कुछ भी प्रमाण रहे न क्यों। सुहास को क्या कहना था। वह तो कह चुका था—''आपकी बातें सुन लिया, हमारा जो विचार है वह ड्राफ्ट मे देख लीजियेगा। अगर तब भी कोई आपत्ति हो तो दरख्वास्त दे दीजिएगा।''

गयानाथ ने कहा, ''सर।''

''हाँ कहो, क्या सबूत लाये हो ?'' सुहास ने हाथ बढ़ा दिया।

"सबूत दिखाये सर ?" गयानाथ ने पूछा।

"सबूत दिखाने को कह रहे थे न आप, अब दिखाये या नहीं, वह आपकी मर्जी।" सुहास कानूनी जुबान मे कह रहा था।

"सर, हमने दो ठो आदमी को बुलाया है। वे आ गये हैं।"

"आप कुछ सोचेंगे त नहीं न सर ?"

"क्यों, क्या नहीं सोचूँगा ?"

"लो, जगली लोग भी पहुँच गया, जगल से हाँत हुए।"

"उससे हमारे काम मे तो कोई दिक्कत नहीं आ रही – आप क्या दिखाना चाहते हैं दिखाइए।"

"दिखाइ रहा हूँ सर । पर मुझे कोई दोष नहीं देंगे।"

"दोष गुण की कोई बात ही नहीं उठती। यह तो कानून की बात है।"

"... जगली लोग आ गिया है।"

"ठीक है, लाइए, क्या दिखाना चाहते थे

... बाघारू गयानाथ ने जगली मुर्गे की तरह पुकारा।

गयानाथ की पुकार सुनकर भीड को ठेलठाल कर एक आदमी सामने आकर खडा हो गया। भीड की पीछे छोडकर वह ज्यादा दूर तक आगे नहीं बढ़ता ऐसा तो समझा नहीं जा सकता पर गयानाथ की पुकार सुनकर वह भीड को चीरकर सामने आ गया। गयानाथ ने उससे कहा, जा फिर, जल्दी से जा, मौजा की लाइन पकड कर जाना, समझा ?" वह आदमी चुपचाप उत्तर की ओर चला गया नदी के किनारे-किनारे, नदी की कटाइ की लाइन परखने के लिये थोडी देर पहले सुहास जिधर ... था ठीक उसी ओर। उस आदमी के चले जाने के कुछ पल बाद सुहास को लगा—... वही आदमी है जो ... कुर्सी पोंछ रहा था और पेड पर चढा था / क्या वही है वह ? भीड की ओर देखकर सुहास समझ नहीं पा रहा था। इतनी बार गयानाथ की जुबान से यही नाम सुनने पर भी वह जैसे उस आदमी का नाम समझ नहीं पा रहा था। उसी तरह इतने लोगो का जमघट खडा रहने पर भी वह पहचान नहीं पा रहा था –एक भी चेहरा। या एक चेहरे से दूसरे चेहरे को अलग कर नहीं पा रहा था, कर भी नहीं पायेगा।

उस आदमी के चले जाने के बाद भीड थोडी सी हल्की हो गयी थी। बहुत-से आदमी उसके साथ-साथ उत्तर की ओर झुरमुट के भीतर से होते हुए रवाना हो गये थे और बहुत-से उसी जगह बैठ गये थे घुटने टेककर। और कोई-कोई खडे होकर विनोद बाबू, सुहास और गयानाथ को ताकते रहे।

"सर, आप त इस जिला का नक्शा-वक्शा देख चुके होंगे ?"

"जिले का ? हाँ। पर क्यों ?"

"नहीं, बस ऐसे ही। मान लीजिये कि हमरे जमीन आउर तिस्ता के बहुत पास ही खाडी है हमारे पीछे। माने मान लीजिये कि आउर थोडा उत्तर में और पूरब में

चालसा हायहायपाथार।"

'हॉ, वह पाता है मुझे।"

"ऊ ते जरूर जानते ही होगे सर। आपको पता नाहि होगा तो किसको होगा ? आउर यह तो तिस्ता हे, इसके सटकर इस पार, पच्छिम मे, बैकुंठपुर फॉरेस्ट। इह तमाम फारस्ट मे था—उसी टलुआ मेदान पर, वह बादोगज हई।"

'तव तो नदी नही थी ?"

"उही तो कह रहा हू सर। नदी थी, फरिस्ट था, मौजा भी था, कुछ भी तो गिया नही ।"

27
ज़मीन, जरीब और गयानाथी तरीक़ा

गयानाथ ने नदी की ओर अगुली दिखाया। और सुहास ने देखा, दूर नदी में दो आदमी घास-फूस की तरह बहे जा रहे थे। सुहास थोड़ा-सा चीख उठा, "अरे अरे।'

"छोडिए सर, इह त बाघारू हई।"

"मतलब " सवाल करते ही सुहास ने जैसे समझ लिया, "क्या बात है, ये लोग आखिर नदी मे उतरे क्यो कर ?"

"हाँ सर, अब जहाँ पर इ लोग बह रहे हइ, उही से तो मेरा मौजा शुरू होता हई।"

"तो क्या इसके लिए आपने उन्हे इस बरसात से उफनती नदी मे उतारा "

"उह त बाघारू हई सर, देखते देखते पानी मे निकल आयेगा। आउर मइने बाघारू को नद्दी मे उतरने को कहा हई। आउर एक कोउन उतरा हई रे ?" गयानाथ ऊँचे गले से सवाल किया।

"मोइनुद्दीन। डोया-डाबरी का।"

'ओ ? मोइनुद्दीन। इह त चांपियन तइराक हई सर । उह भी हमरी बात सुनता हई सर। ई जहाँ पर बाघारू आउर मोइनुद्दीन तैर रहे हई - यही बेकुंठपुर का बोदागज आउर इह आपलचाँद मिलते हई। हमरे बूढा बाबा का, यानी कि हमरे दादाजी का मोजा इहाँ था। पर मइने उन्हे कहा कि इह मौजा हमरे नाम लिख दे। हमरे पास इसका कागजात है, बिल्कुल टीकठाक, सही-सलामत। पर इहाँ त नद्दी हई। तिस्ता नद्दी। इस नदी को त मई मान लेता हूँ। पर इसका मतलब त इह नाहीं कि मई इहाँ भी नद्दी को मान लूँ।" कहते हुए वह किनारे के पानी को दिखाता है—"इहाँ नद्दी नाहीं, बरसात का पानी हई। बाघारू इहाँ आ जाये तो देखेगे इहाँ पानी नहीं, सोता नाहीं। जिसका पानी नहीं सोता भी नाही—क्या ऊ नद्दी हो सकता हई ? यह नद्दी नाहीं हई। इहाँ आपको दाग नंबर देना पड़ेगा।"

अब तक वह भीड नदी के किनारे जमघट लगाकर उनका तरना देख रही थी। सुहास को कैसा लगा था—वह सोचने लगा। गयानाथ उसे तराकी में फॉसेगा, यह पता नहीं था। क्या विनोद बाबू को भी पता नहीं था ? या फिर गयानाथ उनके साथ सॉठ-गॉठ कर चुका था। इन दोनों आदमियो को उसके सामने ही नदी में उतारने के पीछे गयानाथ का कोई मतलब भी हो सकता है। अगर इन दोनों का कुछ हो-हवा जाये तब ? गयानाथ का मतलब आखिर है क्या ? सरकारी अफसर के तौर पर क्या वह उसे किसी बात का गवाह बनाना चाहता है ? पर क्या सुहास बस इतने में ही पीछे हट जाये ? हटा तो जा सकता है ? इन दोनो लोगों के ऊपर आने से पहले ही।

सुहास की बायीं ओर गयानाथ था। सुहास उससे बोला, "क्यों आप इस तरह से समय नष्ट कर रहे है हमारा ? सर्वे का आज हमारा पहला दिन है। हमारा ड्राफ्ट निकलने के बाद आपको जो भी सबूत देना हो, दे सकते है। उन्हे आने के लिए कहिए।"

"वे तो वैसे ही आ जायेंगे, अभी। पर उन्हे तो टाइम देना होगा। वे क्या सोत काट कर आ जाएँगे इतनी जल्दी ? बहाव के साथ-साथ धीरे-धीरे आयेंगे।"

इस तिस्ता को आज सुबह से न जाने कितनी बार देखना पड रहा था सुहास को। बीच-बीच मे वह ऐसे ही देखता रहा। पर तिस्ता के पेट मे गड़ जमीन पर गयानाथ के दखल के सबूत की बात जब से उठी थी, तबसे ऐसा महसूस हो रहा था जैसे यह नदी असल मे कोई नदी ही नही—गयानाथ का जोत हो। साथ ही तबसे तिस्ता कोई दृश्य न रहकर उसके सर्वे का एक घटनास्थल बन गयी थी। और अभी तिस्ता नदी के इस क्षितिज विस्तार मे ये दोनो जने, प्राय अदृश्य पानी के भार मे बहे जा रहे थे। बहते-बहते जैसे सर्वे मैप के लाइन को अदर घुसाए जा रहे थे। सुहास ने फिर कहा, "अरे, उन्हे ऊपर आने को कहिये।"

"ऊपर आने को कह देने भर से क्या वे ऊपर आ पायेंगे सर ? ये तो बहते-बहते, घूमते-घूमते ऊपर आयेंगे। ऊ दोनो त उफनती नदी मे बहाव के साथ अपने को पूरी तरह से ढीला छोड़ रखा हई। ये लोग शायद कोई एकाध छिछली ज़मीन मिल जाने पर ही निकल पायेंगे। फिर उहा से मुड़कर इहा पहुँचेंगे उस बालू के भीतर घर से होते हुए।"

सुहास ने देखा कि तिस्ता के अन्दर अब वे दोनों आदमी नजर नहीं आ रहे थे। वह उनके सिर के बाल तक भी देख नही पा रहा था। पर उसके पीछे और सामने की भीड़ से कोई हाथ के इशारे से दिखा रहा था—"वो देखो, वहाँ, वहाँ बह गया, आगे बाघारू हे, हे, डूब गया।" इशारे की दिशा मे सुहास दो एक काले धब्बे पल भर को देख पाया था, पर देखते ही देखते वे इतनी दूर बह जाते हैं कि फिर वहाँ ऑखे वह जमा नही पाया था। पर जब भी पल-दो-पल के लिए देखता, तब उसे लगता कि वे कभी धरती पर वापस नहीं आ पायेंगे, उनकी वापसी संभव नहीं। तिस्ता के इस मटमैले विस्तार मे ये दो काले बिंदु अब कभी नहीं दिखेंगे। "हेइ, और नज़र नही

आ रहे, बालू के भवर में पहुँच गये है।"

किसी ने मदेशिया भाषा मे पूछा, "दोना जने का बालूचर (बालू के भवर) मिल गया है ?"

"हा दोनो पहुँच गये है।"

"अभी फिर लाटेंगे ?"

अरे 'हइ, कुछ देर तो सुस्ताने मे लगेगा ही ?"

"अरे शरीर छोड दग। बेठ गय तो शरीर छोड दगे।"

'अरे काहे का सुस्ताना बहाव मे तो बहते चले गय है। मसक्कत कुरना थाड ही पडा है "

"क्या जी, बहाव म बहने के लिए क्या ताकत नही लगती "

"बहाव की तजी से "

"हा, हा, वापस आ रहे ह।"

"कहा, कहा" आँखा के ऊपर हथेली टेककर बहुत से लाग देखने की कोशिश करने लगे। कुछ पल की खामोशी के बाद किसी ने कहा "नही हो, तख्ती बहा जा रही है। लकडी का खूँटा बह रहा ह और कहत हो कि व आ गये।" मदेशिया गल में निस्तेज रसिकता टपकती है—"नदी का पानी पीकर मतवाल हो गय । नदी म इन दोनों आदमियों के बहते जान पर नजर रखते हुए भी मन, जो दृढता से बधा हुआ था अब ढीला पडने लगा था। य दोनो नदी के किसी बालचर पर हाथ पर पसारकर कहीं सुस्ता रहे हों शायद। यहीं इतने सारे लोग भी नदी मे जब तक उन्हे देख नहीं पाते तब तक वही खडे हुए बातो-बातो म थोडा-सा आराम कर लेते।

एक गयानाथ है जो आराम नहीं कर पा रहा। कभी आखो पर बाये तो कभी दाहिनी हथेली रखकर किसी एक बिंदु मे इन दोना आदमियो को तलाशने की कोशिश कर रहा था। गयानाथ अगर भाहो को एक ही हाथ से ढके रहता तो शायद इतना अस्थिर नहीं लगता। पर एक बार बायां तो एक बार दाया हाथ उठाने और फिर गिराने के चलते लगता था कि वह तिस्ता के पूरे विस्तार पर ही नजर दौडा रहा है। और, इस तेज़ बहाव में इतने बड़े विस्तार की ओर एक दृष्टि से ताकने मे लगता था जैसे समूचा किनारा ही बहा जा रहा था, जहाज की तरह। और डेक पर खडा गयानाथ समुद्र के दूर-दूर टापू मे किसी को तलाश रहा था।

सभी चुप थे, शायद अनमनेपन में। और जगल के इतने भीतर नदी के चुप हो जाने पर इस जगह ने अपनी स्वाभाविक स्तब्धता को वापस पा लिया था। फिर उसमे इतने सारे लोगो का समवेत सॉसों के उतार-चढाव का स्वर भी मिल गया था। उसी समय तिस्ता के ऊपर से तेज हवा बही। हवा पेड़ो से टकराकर घने जंगल मे जाते हुए शालवृक्ष को मरोड़ देना चाहती थी।

"लौट रहे हैं वे।" खूब दबे स्वर मे किसी ने कहा। सभी को बात माननी पडी।

क्योंकि बात ही कुछ इस तरह से कही गयी थी। उसके बाद चुपचाप तलाश जारी रही। सुहास ने भी अपनी नजर गड़ा दी। पर उसे भी पता नहीं था कि वह किस ओर देखे। इस धूसर समतल के ऊपर जब कोई बिंदु स्थिर हो कर नजर आयेगा, तभी सुहास समझ पायेगा कि वे तैरते हुए बढ़ते आ रहे हैं।

"ए, ए ए ए आ गये, आ गये।" सुहास ने देखा कि सभी लोग उसके बायीं ओर अंगुली उठाए हुए हैं। देखने पर भी उसे कुछ नजर नहीं आया। स्रोत के विपरीत उन दोनों को कितनी दूर तक तैरना पड़ेगा?

सुहास के करीब से गयानाथ बोला "हे मउयामारी के सीमा तक पहुँच गये। न?" सुहास ने कहा, "आ।"

तभी गयानाथ ने सुहास से पूछा, "देख रहे हैं तो वे आ गये।"

"कहा?"

"इ ऽधर बायीं ओर।" गयानाथ ने उसके दाहिने हाथ से सुहास के चेहरे को दाहिनी ओर ढक कर कहा, "इधर उधर इहाँ, हाँ बायीं ओर मुड़िए, धीरे-धीरे, बस! देखिये।" गयानाथ ने सुहास को समय दिया फिर पूछा- देख आ रहे हैं न?"

सुहास जरा खुद निश्चित न हो, रभस भाव से बोला आ।'

गयानाथ ने सुहास को और कुछ समय दिया। फिर पूछा, ' देख पा रहे हैं सर? वह देखिये!"

हाँ! सुहास ने अपनी आँख गड़ा दी। अभी तो वे तैर कर इधर ही आ रहे हैं—इसी से वह काला बिंदु आँखों से ओझल ही नहीं हो रहा। एक बार नजर आ जाने पर फिर वह दिखने लगेगा।

"ये देखिये, उहाँ, जहाँ से वे पानी काट कर तैर रहे हैं, उसके बायें हाथ की ओर, हमरे बायें हाथ की तरफ, इस साइडे," कहता हुआ बायाँ हाथ उठा लिया था गयानाथ, "अठारह नंबर दाग भोयामारी मौजा और दाहिनी तरफ इस साइड पाँच नंबर हासखाली मौजा। दोनों जगह पर हमरा ही दाग है। सोलह आना अपना ही खतियान। त आप भोयामारी को अलग कर दीजिये। इहे से भोयामारी खत्म हो गयी है। पर हासखाली को आप रखे जरूर। हासखाली त इहँ से शुरू होता है। इहँ से घुमघुम कर चली गई है।" दोनों अब साफ दिखायी दे रहे थे। जबकी उनके हाथ पाँव की गति समझ में नहीं आ रही थी। पर धीरे धीरे उनका माथा और शारीरिक हरकत स्पष्ट होती जा रही थी। गयानाथ अपने जंगली मुर्गे के आवाज को सबसे ऊपर ले गया "हे ए ए ए बाघारू, बायीं ओर जरा हट जा रे।" उसने दाहिना हाथ हिलाकर इशारा किया हट जाने के लिए। गयानाथ की तेज पुकार तिस्ता की तेज हवा से टकरा कर पहाड़ पर गूँज उठी थी।

"देऊनिया, इस किनारे रधामालि का बाँध पर जाकर चिल्ला। सुनाई दे रहा है न?" खूब वजनदार और ऊँचे गले से पूर्वी बंगाल की बोली में कुछ शब्द कान में पड़ रहे थे।

गयानाथ ने इस पर कान नहीं दिया। तभी दोनों तैराकों को जल के छींटे नज़र आ रहे थे। गयानाथ फिर से चीख कर बोला, "हटकर, थोड़ा-सा बायें हट कर। सत्रह नंबर दाग पकड़ ले। पकड़-पकड़।" दोनों में से जो आगे था वह सचमुच बायीं ओर घूम गया। पहले-पहल तो समझ में ही नही आया, पर उसका सर निश्चित रूप से बायीं ओर मुड़ा था। "इहाँ एक ठो पोखर है। फोरेस्ट डिपार्टमेंट के साथ आंशिक बंदोबस्त, इहें हाथी आकर पानी पीते थे, पर हमला-वमला कुछ नाहीं करते थे। हे बाघारू, दाहिने घूम, दाहिने घूम, सीधा चला आ।"

तैराकों का घुमाव देखने और उसके एक नाप का अंदाज़ा मन ही मन लगाने के लिए गयानाथ ने जैसे सुहास को समय दे दिया था। उसके बाद बोला, "इहें से शुरू होता हई सर, सिदाडोबा, हाथीडोबा, बाघाडोबा।"

'गयाडोबा' आवाज़ सुनते ही सुहास समझ गया कि वही पूर्वी बंगाल के दल होंगे। पर यह हुजूम आ गया कब, सुहास ने तो देखा नहीं इन्हें, या पहले से ही वहाँ मौजूद थे किसी आड़ में।

"साला, तेरा बाप का डोवा" सुहास के निकट से ही गयानाथ पीछे की ओर मुड़कर गुर्राया उसकी इस हरकत से सभी लोग ठठाकर हँस पड़े। समझा जा सकता था कि गयानाथ के इस आकस्मिक क्रोध ने सबको एक मनोरंजन मुहैया कराया था।

28
गयानाथी सबूत

अब नदी में और कोई आकर्षण नही रहा था। दोनों आदमी बहुत ही निकट आ गये थे। गयानाथ ने कहा, "इस बार देखिये सर, मई आपको दो और मौजा दिखाता हूँ, अब देखिये, आप इन मौजाओं का कितना भाग नदी में छोड़ना चाहते हैंई। ऐ··· हे···बाघारू, सीधा बायीं ओर चला जा।" बाघारू सीधा बायीं ओर तैरता जा रहा था। तैरता ही जा रहा था। सुहास गयानाथ की ओर देखकर बोला, "आप इन्हें बाहर आने के लिए दोबारा कहिये। मैं आपका प्वाइंट समझ चुका हूँ।" पर वह अच्छी तरह से जानता था कि जब तक वह खुद उस जगह को छोड़कर नहीं जायेगा, तब तक गयानाथ छोड़ने वाला नहीं। "अब हमें लौट कर जाना है। वापस जाना है" और सचमुच वह लौट रहा है यह दिखाने के लिए वह नदी की ओर पीठ फेरकर पुकारने लगा, "विनोद बाबू।"

सुहास को लौटते देखकर भीड़ ने रास्ता दे दिया था। विनोद बाबू की आवाज सुनाई दी, "हाँ सर।"

"चलिये, हमें वापस चलना है।"

"हाँ सर

"पर हुजूर, हमरा न सबूत आपने देखा नाहीं, असली सबूत।"

"आपने तो दिखा दिया सब कुछ। और क्या सबूत ?" सुहास दो क़दम बढ़ गया, भीड़ भी दो क़दम पीछे हट गयी। पीछे-पीछे गयानाथ भी बढ़ आया। तिस्ता में दो आदमी तैरते रहे—यह बात गयानाथ और सभी भूल से जाते हैं। सुहास बोला, "अरे उन्हें बाहर आने को तो कहिये।"

"मगर सर, आपने तो नदी देख लिया, पर हमरा दाग-नंबर तो अभी तक देखा नाहीं ?"

पीछे से पूर्वी बंगाल के दल में किसी ने फिर फिकरा कसा "जाँघ तक तो दिखा ही दिया ह।"

सुहास के सामने गयानाथ ने ठंडे गले से जवाब दिया, "तेरे घोंचू बाप का घर दिखाना अभी बाकी हई रे।"

निश्चिन्त मुद्रा, ठंडी आवाज़ के चलते अबकी बार गयानाथ की विजय हो गयी। समवेत हँसी भी इसका समर्थन कर रही थी। सुहास समझ गया था कि उसके होंठों से भी हँसी फूट गयी है।

"एक मिनिट सर, एक मिनिट, ए हे बाघारू, इहां आकर खड़ा हो जा, इहाँ।" सामने से सबको हटाकर गयानाथ ने सुहास के लिए खुली जगह कर दी। पर सुहास अपनी जगह से हिला तक नहीं। बस सिर्फ़ जरा-सा मुड़कर देख लिया। पानी के भीतर गयानाथ का बाघारू खड़ा है। बाघारू की छाती तक जल है। सर के बाल भीग कर चिपक गये हैं। यह आदमी है कौन ? और एक तैराक शायद बाहर निकल चुका है।

"बाघारू, अब चल, सीधा चलता जा।" पानी के भीतर बाघारू शराबियों की तरह लड़खड़ाता चल रहा था। वह चाहे पानी के भीतर उबड़ खाबड़ मिट्टी की वजह से हो चाहे थकान की वजह से वह सीधा चल नहीं पा रहा था।

पीछे से किसी ने आवाज लगाई, "लेफ्ट राइट, लेफ़्ट राइट।" जैसे बाघारू को चलने का निर्देश दे रहा हो- "लेफ़्ट राइट।"

बाघारू एक जगह डूब कर फिर से उभर आया। गयानाथ अपनी जेब से एक पुलिंदा दस्तावेज़ निकालकर बोला, "यह देखिये सर, हमरा खतियान हई यह, सोलह आना हमरा खतियान।" हाथ में मुड़े-तुड़े दस्तावेजों का बंडल लेकर सुहास उसे खोलने लगा। इस मौजा का जो इलाका फिलहाल नदी में समा गया हई उसके विभिन्न दाग-नंबरों का किस्म किस्म के खतियान। उसने जल्दी जल्दी उलटते-पुलटते हुए कहा, "ठीक है, मैंने तो देख ही लिया।"

"आपने क्या देख लिया, सर ?"

"मुझे जो देखना था सो देख लिया।"

"देख लिया न सर, इतनी बड़ी नदी आउर इहां छाती भर या कान भर का

पानी। इहां बरसात का पानी आकर जम गया हई—येह नद्दी नाहीं हेई।"

"ठीक है। आप अपने खतियान सब विनोद बाबू को दिखा दीजियेगा। मैंने तो देख ही लिया। इस आदमी को बेकार इतने दूर तक घुमाने की क्या ज़रूरत थी? यहाँ एक बाँस डाल देते तो आपकी बात समझ मे आ जाती कि यह नदी का पानी नहीं है।"

"मगर सर, आपको त नापजोख के हिसाब से सब समझना होगा। मौजा का असली सीमा से शुरू होकर। कहां पर खत्म हुई। कहां इसका माथा और कहां इसका पूँछ हेई। सब बात का सही-सही पता चल गया।"

सुहास चलने लगा। उसे घेरकर भीड़ भी चलने लगी थी। दो चार कदम चलने पर सुहास को अहसास हुआ कि वह भीड के बीच घिरा है। भीड के हिले बगैर वह भी हिल नही सकता। भीड से पीछा छुड़ाने के लिए वह तेजी से बढ़ने का दिखावा करने लगा। ठीक इसी समय उसके बायी ओर से किसी ने गला साफ करते हुए कहा, "सर आपसे हमरी एक ठो बिनती है।"

सुहास उधर देखने लगा। "एइ जगह दो, जगह दो", कहता हुआ कोई पास से भीड हटाता हुआ आगे बढ आया। बीच के कुछ लोगों ने थोड़ा हटकर जगह बना दी। एक आदमी निकल कर उसके सामने खड़ा हो गया। देखने मे बीमार सा, सफेद कुर्ता-धोती, बगल मे छतरी, बिखरे हुए बाल, चेहरे पर चेचक के दाग, गले मे कंठी की माला। वह आकर अपने निर्धारित स्थान पर आँखें बंद कर सिर झुकाए खड़ा हो गया—चुपचाप। होठो पर मंद-मंद मुस्कान थिरक रही थी। शरीर को थोड़ा सा हिलाकर आँखें मूंदे-मूंदे ही कहने लगा, "बात किया है कि सर से मैं कहना चाहता था कि मालखाना के क्रांति क्षेत्र मे बहुत से कुख्यात जोतदार, जैसे कि यह गयानाथ बर्मन

"खबरदार राधावल्लभ," गयानाथ मिट्टी की ओर देखते-देखते चीख उठा था, "हमको जोतदार कहना चाहो तो कहो, पर कुख्यात मत कहना।"

राधावल्लभ आँखें खोले बिना ही सिर्फ उसकी ओर थोड़ा-सा घूमकर, हंसकर बोला, "क्या न कहूं?" फिर आसपास के लोगो की ओर घूमकर सवालिया नजर से हंसता हुआ बंद आँखों को भी नचाते हुए।

"हां, हां कहिये" सुहास बोला, "चलिये न। वहां चल कर एक-एक कर सभी की बात सुनते है। ऐसे सुनने से तो कोई फायदा नही। दाग नंबर के साथ बात शुरू की जाये तो बेहतर है। आपको भी जो कहना है कहियेगा। सुहास अबकी बाहर जाने के लिए चलने लगा। भीड़ भी उसके साथ-साथ चलने लगी। पीछे से राधावल्लभ की आवाज़ सुनायी पड़ रही थी—"उसमें मुझे कोई आपत्ति नही। पर ये तमाम बदनाम जोतदार जैसे गयानाथ बर्मन, नगेन मजूमदार, तारानाथ बसु और नासीर आलम। अगर इनकी बातों के मुताबिक सेटलमेंट हुआ तो फिर हम अपनी जमीन का नापजोख होने नहीं देंगे।"

इतने सारे लोग जल्दी-जल्दी चल नही पा रहे थे। राधावल्लभ तकरीबन सुहास के पीछे से कहे जा रहा था। उसने जो बात शुरू की थी, वह खत्म होते ही रुक गयी।

"सब कोय झुट्ठा, मक्कार ओर कुख्यात हैं और इहे एक राधावल्लभ साहा साचा हे। सर, ईस डाकू आदमी का कुछ बात आप मत सुनियेगा।" गयानाथ बोला।

सुहास थोडा-सा भौचक हुआ। तो क्या य इनका जबरन दखल की हुई जमीन है। इसी से नापजोख न करने देने के लिए एक बहाना गढ रहा है। पर वह सभी बात पर तूल नही देना चाहता था, इसी से बात आगे बढाया भी नही। इस बार सरकार जबरन दखल, अनुमति से दखल, बगा दखल—सबका रिकॉर्ड दर्ज करवा रही थी। सिर्फ़ खास जमीन की जबरन दखल का रिकॉर्ड न करने का आदेश है। सुहास का मानना है कि इस आदेश मे भी रद्दोबदल होगा। प्राइवेट लैंड का जबरी दखल को अगर रिकॉर्ड किया जाता है तो फिर खास जमीन का क्यो नही ? इसी से उसने तय किया था कि वह सादे कागज मे खास जमीन के जबरी दखल करने वालो की भी लिस्ट तयार रखेगा।

सुहास को घेर कर जो भीड चल रही थी उसमे से दो चार बार 'कामरेड, कामरेड' शब्द सुहास को सुनायी पडा। पर कौन किसे कह रहा है, यह सुहास समझ नही पाया। राधावल्लभ जरूर किसी पार्टी का आदमी है। पर कौन-सी पार्टी ? एक तो हो सकता है कांग्रेस (आइ)। या फिर किसी कम्युनिस्ट पार्टी का आदमी हो सकता है। सरकारी पार्टी का आदमी न हो तो इतना ताकत लायेगा कहां से कि कह -सेटलमेट का चेन फेक देगे। पर 'कामरेड' कहने से तो कांग्रेस (आइ) का हो नही सकता। हॉ, राधावल्लभ को ही यह सबोधन किया गया हो। तो क्या यहा भी बहुत सी पार्टिया है ? या फिर कांग्रेस (आई) मे भी आजकल कामरेड पुकारा जाने लगा है

इन तमाम लोगो का रास्ता रोककर वह आदमी आकर सुहास के एकदम सामने खडा हो गया। नख से शिख तक तरबतर। धोती का छोर जांघ पर चिपक गया था। वह आदमी एक भीगे शालवृक्ष के समान खडा था। बाढ का पानी उतर जाने पर टूटी फूटी जमीन मे खडा एक अकेले शालवृक्ष की तरह इस भीड के सामने खडा था वह। उसके चारो ओर से हट कर भीड को गुजरना पड रहा था।

29
जन-समावेश

आदिवासी-उपजाति भीड को साथ लिये जब सर्वे पार्टी जगल से बाहर निकल आयी तब वहा सर्वे टेबल और गयानाथ की कुर्सी जहा पडी थी, वहा सजी-धजी भीड उमड पडी थी। यह भीड लबी थी। यह जगह डागर के ऊपर, पूरब मे जो ढलुआ ज़मीन थी, जो दलदल से थोडी ही दूर पर स्थित थी। यहा से ही डागर जगल से निकट होकर मुड-तुड़कर सीधा उत्तर पूर्व की ओर चली गयी थी। देखने पर लगता था जैसे यह

जंगल का बॉर्डर हो और यहाँ से दस-पंद्रह हाथ जमीन को छोड़कर ही जंगल विभाग वन उगाया गया है।

इस रास्ते की तरह जमीन के ऊपर मोटे-मोटे मोथा घास बढ़ उगी थी। फलत. घास का घनापन खूब है, तो वहीं मिट्टी ही प्रायः नंगी हो गयी है। कहीं-कहीं घास इतनी घनी थी कि बैठ जाओ तो घास में लगे पानी से कपड़े भी भीग जायें। इस रास्ते की तरह ही डांगर काफी साफ है। जैसे जतन के साथ रोज सफाई की जाती हो। दोनों तरफ दाहिनी निचली जमीन मे या बायीं ओर की छोटी-सी नाली के उस पार जंगली झाड़-झंखाड़ों के बीच घनी लबी घासों का भी काफ़ी विस्तार हो गया है। वनो में बाघ रहते थे। कारण, झाड़-झंखाड़ झुरमुटी जगल भी दोनों ओर खड़े थे। पर रास्ते के ऊपर कोई झाड़-झंखाड़ या घास का जंगल उगा नहीं था। हाथी इधर से ही पानी पीने आते थे। जंगल के विभिन्न भाग से पगडंडियां आकर यहीं पर मिली थीं। अभी बारिश का मौसम था। जंगल के भीतर भी पानी काफ़ी था। पर हाथियों के दल कभी कभार इधर आ ही जाते थे। और उनकी आवाजाही से ही रास्ते की तरह डांगर की सफाई हो जाया करती थी। हाथी लंबी-लंबी सरकंडे, नालीदार घास खा जाते थे और झाड़ झंखाड़ को कुचल कर साफ-सुथरा बना देते थे। पर हाथियों की सूंड की छुअन से परे एक तरफ जंगल के दूसरी ओर निचली ढलान पर वही लंबी नालीदार घास और सरकंडों का बेहिसाब विस्तार। हाथी एक नाले को पार नहीं कर पाते, ना ही ढलान पर उतर सकते थे। इसी से वहाँ घास-वन फैल गया था दूर तक।

फिलहाल उसी हाथी लाइन मे भीड़-भड़ाक से खड़ी थी। थोड़ी ही दूर आपलचांद के भीतर से होते हुए जो रास्ता उदलाबाड़ी जाकर राष्ट्रीय सड़क मे जुड़ा था उस पक्की सड़क के ऊपर एक जीप खड़ी थी—आनंदपुर चायबागान की जीप। और उसके थोड़ी दूर पर फॉरेस्ट डिपार्टमेंट की एम्बेसडर। दोनों गाड़ी के बाबू और साहब लोग—कोई गाड़ी के भीतर बैठा था तो कोई गाड़ी से पीठ टिकाकर तो कोई पैर टिकाए बाहर खड़ा था। दोनों गाड़ियों के बीच मे ढाल पर पैर रखे ड्राइवर लोग एक गार्ड के साथ गप्पें हांक रहे थे। गार्ड की पीठ पर बंदूक झूल रही है। दोनों गाड़ियां जहां खड़ी थीं, वहीं से जंगल की ओर एक इसी तरह की साफ-सुथरी खारी झील भीतर की ओर चली गयी थी। उसी फॉक मे दो-एक टूटे पेड़ को छोड़ कोई झाड़-झंखाड़ नहीं, बस कहीं-कहीं थोड़ा-बहुत झुरमुट और कुछ नहीं था। काफ़ी दूर तक फैली इतनी घनी हरी शून्यता देखने में कैसी लगती थी ? ठीक खारी झील की दाहिनी ओर मदेसिया लोगों का एक दल गोलाई में बैठा था। उनमें से कोई पहना था गमछे की तरह रंगीन कपड़े का टुकड़ा, कोई हाफ पैंट, किसी का बदन नंगा था तो कोई सेंडो बनियान पहने था। दो-एक जनें का गोल गले का बनियान था। बहुतों के हाथों में छोटी-छोटी लाठी। दो आदमियों के कंधों पर छोटी कुल्हाड़ियाँ टंगी थीं। कुल्हाड़ियों की बेंत कमर को छू रही थी।

इन्हीं मदेसियों का दल असली भीड़ से थोड़ा हट कर बैठा था। वे सामने के

मेप-चेयर टेबिल से हट कर बैठे थे। उसके बाद कुछ झुरमुटों के बाद वह जगह थी, जहाँ से होकर सर्वे पार्टी अंदर जंगल में गयी थी। इतने सारे लोगों के एक साथ चलने से भीगे घास के ऊपर पगडंडी बन गयी थी। नेपालियों का एक दल गलियारे के निकट ही खड़ा था। वे अभी वहां से हट कर दूसरी तरफ आ गये थे। सुबह सुबह वहाँ कोई नहीं था। उस समय चाय की दुकान काफी दूरी पर थी। पर अभी चाय की दुकान के दोनों ओर लोग भरे हुए थे। ज्योत्स्ना बाबू ठीक इसके पास अपना सिरस्ता खोले बैठे थे। वहाँ सबसे अधिक भीड़ लगी थी। चौड़ी जगह के ठीक बीचोबीच बालूचर के किसानों की एक विशाल गोट बैठी थी। सब चाय पी रहे थे, बिस्कुट खाते लोगों का समूह। देखने से लगता था जैसे वे दिनभर वहां रहने के लिए ही आये हों।

30
किसान कमेटी का प्रोग्राम

अपने दल बल के साथ आकर राधावल्लभ इस भीड़ के बीच खड़ा हो गया था।

उसकी बायीं काँख में छाता, दायां हाथ सिर के ऊपर कोहनी से मुड़ा हुआ, दाहिने हाथ की अंगुलियाँ गले से निकट, दोनों आँखें तकरीबन हर समय मुँदी हुई, शायद कोई बीमारी है, आँखों के कोने में मैल जमी हुई।

दलबल लेकर सर्वे की जगह पर पहुंचने में देर हो जाने के कारण शायद राधावल्लभ को कोई ठीक भूमिका मिल नहीं पा रही थी। यहाँ तक कि उसे खड़े होने की जगह भी नहीं मिली। तय हुआ था कि सुबह के समय यहां झंडा गाड़कर, वोट के दिन की तरह बूथ आफिस जैसा एक ऑफिस खोला जायेगा, कम से-कम एक वकील या मुख्तार बाबू यहां जरूर होंगे, काला कोट और सादा पैंट पहने। यह व्यवस्था करने के लिए शहर के दफ्तर में एक आदमी को दो दिन पहले ही भेज दिया गया था। शहर से खबर भी आयी थी कि सब सामान भेज दिया जायगा। सुबह यहाँ झंडा वंडा लगाकर आफिस में एक वकील या मुख्तार रहने से लोग तो कम-से-कम यह समझते कि उनके पास नौकर है, कानून भी है उनके पास।

तय हुआ था कि सर्वे शुरू होने से पहले ही नारे वारे लगाकर राधावल्लभ एक जोरदार भाषण देगा। भाषण में यहाँ के कुख्यात जोतदारों का नाम लेगा। अफसरों को सावधान कर देगा कि इनके साथ किसी किस्म की रियायत न बरती जाये। वरना किसान कमेटी इस गरीब के विरुद्ध प्रत्यक्ष आन्दोलन करने के लिए मजबूर होगी। यानी इस सेटलमेंट को पहले से ही किसानों और काश्तकारों के पक्ष में ले आना होगा। फिर भाषण में तमाम दिन यहां चाय-बागान की जोतदारी, जंगल की जोतदारी, खास जमीन की दखलदारी को लेकर सब कुछ कहा जायेगा पर धीरे धीरे। पहले सिर्फ

सावधान कर दिया जायेगा, फिर नारेबाजी होगी, हृषिकेश ने कहा था कि सिर्फ नारेबाजी को कोई नहीं सुनना। गाना-वाना भी होना चाहिये। "वही करो, तुम गीत तैयार करो और गाओ। अच्छा ही है। अफसर लोग समझेंगे कि हमें गाना वाना भी आता है।"

पर उनके पहुँचते-पहुँचते काफ़ी देर हो चुकी थी। भगत का बछड़ा कल रात घर नहीं लौटा—शाम को जब लेने के लिए गया था तो वह रस्सा तुड़ाकर भाग चुका था। उसे ढूँढ कर निकाले बगैर वह यहा सर्वे में आकर भला क्या करेगा बछड़ा हालाँकि पास के घर की एक गोहाल से मिल गया। भगत के बछड़े को पहचान कर वह रास्ते से ही उसे बाँध कर घर ले आया था रात में। पर जब देर हो ही चुकी है तो जलपाइगुड़ी की पहली बस से वकील या मुख्तार जो भी शहर से आए, उन्हें लेकर कैंप में जाना बेहतर होगा यही सोचा गया था। पर उस गाड़ी से कोई नहीं आया। हृषिकेश ने मजाक करते हुए कहा, "भगत का कोट में पहनकर चलता हूँ। वकील जैसा लगूंगा।" भगत का एक काला कोट है सर्दी के मौसम भर वह उसे पहने रहता है।

वे अपने दलबल के साथ जब कैंप में पहुँचे तब तक कैंप पार्टी जंगल में जा चुकी थी। उनका झंडा गाड़ना भी नहीं हुआ। भाषण, नारेबाजी, गाना-वाना कुछ भी नहीं हो पाया। गयानाथ जिस समय राधारमण को बुलाने आया, तभी जैसे इतनी लम्बी प्रतीक्षा के बाद उन्हें उनका शिकार हाथ लगा—जंगल के बीच गयानाथ के साथ अफसर अकेला क्या कर रहा था ? वह भी सबको लिये दिये जंगल में घुस गया। फिर वहाँ जाकर ही राधावल्लभ ने अपना भाषण शुरू कर दिया। कार्यक्रम के मुताबिक भाषण तो कम-से-कम हो। पर उस समय सभी लौटने लगे थे। भाषण खत्म नहीं हो पाया। जंगल से निकलने के रास्ते पर फिर से उसने भाषण शुरू कर दिया था। पर उसके पास से होते हुए सब कतरा कर अपनी अपनी राह चले गये थे। वहां भी भाषण खत्म नहीं हो पाया। और अभी, इस समय राधावल्लभ अपने दलबल के साथ सही जगह पर पहुँच गया है। ऊपर-नीचे आँखें उठाकर वह पूरी जगह का जायजा लेने लगा था, तिस्ता के किनारे से लेकर इस उदलाबाड़ी के गड़ तक एक बार अच्छी तरह से जाँचा-परखा—उस सीमा की मोटर गाड़ी, जीप और इधर सर्वे का टेबिल चेयर सब कुछ देखा।

चाय की दुकान के सामने आकर उसका दल रुक गया। एक तो चाय की दुकान में भीड़ उमड़ पड़ी थी। फिर बालूचर क्षेत्र के लोग आकर उसके सामने बैठे हुए हैं। उस पर ज्योत्सना बाबू—पटवारी। इसमें वे और आगे बढ़ नहीं पाते। राधावल्लभ चाय की दुकान की ओर पीठ किये ढलान से होते हुए सीधा पूरब की ओर देख रहा था। बगल से छाता को उतारा नहीं। दाहिने हाथ से एक बार आँखें पोंछी। बुद्धिमान इधर-उधर घूमकर राधावल्लभ के पीछे आकर बोला, "कामरेड, लेक्चर यहीं पर ही

दो, इतने मारे लोग है, ठीक से सुन पायेगे। चाय भी पी रहे है। हिलेंगे-डुलेंगे भी नही, जरूर सुनेगे।" कहता हुआ बुद्धिमान फिर से हो-हो करता हुआ ताली बजाने लगा। मानो इतने सारे लोगो को उसने अक्लमंदी से यहा लाकर रोक रखा था। और इस बार कामरेड के लेक्चर शुरू करते ही किला फतह। बुद्धिमान की बातो मे भी गाधावल्लभ पीछे नही मुड़ा। रावण ने एक गिलास चाय लाकर गाधावल्लभ को पकड़ा दी। गाधावल्लभ दाहिने हाथ मे चाय लेकर पीने लगा। फिर बगल मे छाता उतारे बगैर बाये हाथ मे जेब टटोलकर देखा कि—पैसा है या नही। उसे एक पान खाना था। गर्दन घुमाकर देखा कि आलविश भगत और हृषिकेश चाय पी रहे थे। हृषिकेश तो कही भी चुप नही रह सकता वहा भी उसने मसखरी शुरू कर दी थी।

चाय पी लेने के बाद आलविश आकर गाधावल्लभ के पास खड़ा हो गया। आलविश भगत पुरोहित थे। इसी से मांस मछली नही खाते थे। लम्बे लम्बे केश, कान से होते हुए कधो पर झूल रहे थे। उसका माथा काफी चौड़ा था। बालो मे लगातार कंघी करता था। तेल चुता रहता था। दाढ़ी शायद बढ़ाने की थी। दाढ़ी घनी नही होने की वजह से वह देखने लायक नही। सिर की जुल्फो के नीचे थोड़ी सी दूर तक वह फैली हुई थी और मूँछे होंठो पर यहा वहा बिखरकर झूल रही थी। आलविश की दोनो आखे और सामने के दात बड़े बड़े है। वह जब कुछ कहता था तो उसकी गर्दन सामने से हिलने लगती थी। साथ ही बोलते हुए दाँत निकाल कर आखे नचाने लगती थी। "कामरेड यहा पर एकठो लेक्चर झाड़ते चलो।" आलविश फिर से गर्दन हिलाता हुआ हँसने लगा, 'लेक्चर झाड़कर घर चलते बनो।'

आलविश की ओर से मुह घुमाकर गाधावल्लभ बोला "... तो यही एक ही बात है। अभी घर जाकर क्या होगा ... वैसे तो हम काफी देर ... रुके है। अब तक तो हम जो कहना था, वह भी कहा नही गया।

"तो फिर बोलो, बोलो अपनी बात।" कहता हुआ भगत थोड़ा खिसक गया। इस बीच बुद्धिमान और हृषिकेश आ गये। बुद्धिमान बोला "कामरेड यहा पर एक मीटिंग शुरू कर दो।" हृषिकेश किसी भी बात को छुपाकर नही कहता। चीखकर, चारो ओर देखता हुआ एक हथेली पर दूसरे हाथ से मुक्का मारता हुआ बोला, 'कामरेड, मीटिंग शुरू कर दो एकदम अभी।'

हृषिकेश देखने मे काफी शौकीन लगता था। पहनता है शर्ट और नायलोन का पैंट। पाव मे चमड़े का सैंडिल। बंगाल के एक बाबू से एक सिलाई मशीन जुटाकर लाटागुड़ी हाट मे एक दर्जी की दुकान लगाता है। वही उसका खास पेशा है फिलहाल। बैंक से कर्जा मिलने पर खुद की एक मशीन लेगा और सिलीगुड़ी से एक कारीगर लायेगा। कोई बीस-पच्चीस साल पहले लाटागुड़ी मे हृषिकेश के बाबा की खास जमीन की दखलदारी हुआ करती थी। काफी दिन हो गये है हृषिकेश के बाबा का देहात हुए। हालाँकि वह जमीन अब भी हृषिकेश के दखल मे है। उसके बड़े भाई के साथ

आधा-आधा। हृषिकेश खुद खेतीबारी नही करता। पर इससे क्या, किसान कमेटी छोडा नही। कामरेड के साथ सर्वे कैंप पर आया था—किसान कमेटी का दावा लेकर। एक गीत भी लिखा था—नाटक और गीत हृषिकेश का खास नशा था। पर नहीं लगता कि आज उसे गाने का कोई मौका हाथ लगेगा। हृषिकेश राधावल्लभ से बोला, 'जहां तक बोल चुके हो, वहीं से आगे बोलो यहाँ।"

राधावल्लभ ने पूछा, "बोलूँ ?"

बुद्धिमान ने कहा, "बोलिये, बोलिये, जल्दी बोलना शुरू कर दीजिये। सभी बैठे-बैठे चाय पी रहे थे, अबकी बार बैठे-बैठे सुनेंगे। कहिये।"

31

राधावल्लभ का भाषण

राधावल्लभ चाय की दुकान की ओर पीठ किये खडा था। वह चाय की दुकान की ओर मुडा। उसकी बायीं बगल में छाता तो करीब सटा हुआ था। दाया हाथ उठाकर माथे पर मुडी कोहनी को सीधा कर अगुलियों को गर्दन के पीछे कर लिया। राधावल्लभ ने आँखें बंद कर ली। घडी को एक तरफ हिलाते ही हृषिकेश निकट से बोला, 'रिपीट मत करना, जो कह चुके हो, अब तक उससे आगे कहो।'

उसकी बात सुनते ही शुरू हो गया राधावल्लभ, "दरअसल बात यह है कि हमारे इस माल-लाटागुड़ी-क्राति क्षेत्र मे बहुत से कुख्यात "

"यह पार्ट तो हो चुका है, कामरेड !"

राधावल्लभ ने आँख खोल ली, "हमे कहने दो हृषिकेश।"

"कहिए, पर रिपीट मत कीजिये।"

राधावल्लभ ने फिर से आँखें बद कर ली। थोडा-सा समय लेकर कधा हिलाकर फिर शुरू हो गया—"दरअसल बात यह है कि हमारे इस माल-लाटागुड़ी क्राति क्षेत्र में बहुत-से कुख्यात जोतदार रहे है। किसानों का शोषण करना ही उनका एकमात्र उद्देश्य रहा है। पर ऐसा हो क्यो रहा है ? मान लीजिए कि आनंदपुर चायबागान जोत की ज़मीन भी है, और चाय की ज़मीन भी है। पर ये मालिक लोग चाय की जमीन पर धान की खेती करते है और धान की जमीन पर चाय उगाते है। ये मालिक लोग चाय-बागान के मज़दूरों से ही धान की खेती कराते है और ज़मीन को बँटाई पर देकर किसानो से चाय बागान का काम कराते है। पर ये किसान मजदूरों की तरह मासिक पगार नही पाते। ठीका मजदूरी पाते हैं। और मजदूर लोग भी किसानो की तरह बँटाई नहीं पाते—यानी की फसल का कोई भी भाग नहीं मिलता है उन्हे। सिर्फ़ मजदूरी का पैसा पाते हैं। कंपनी को हर तरफ से फ़ायदा ही फ़ायदा। पर मज़दूर किसानो का हर तरह से नुकसान--मजदूरी में भी, और हलवाही में भी।" राधावल्लभ शायद

दम लेने के लिए पल भर को रुका था। मौका देखकर हृषिकेश ने बोला, ' यह कौन-सा लेक्चर झाड़ रहे हो कामरेड, यह मजदूर-किसानों की मीटिंग नहीं है, सर्वे को लेकर मीटिंग है। जमीन का सर्वे हो रहा है। जमीन की बात कहो।'' शायद हृषिकेश की बात सुनकर या कि फिर जमीन की बात पर किसी तरह से न आने पाने पर राधावल्लभ जबर्दस्ती पल भर को रुक गया था। दुबारा शुरू करते ही वह सीधा जमीन पर आ जाना चाहता था, आगे के प्रसंग को फलांग कर।

''हम किसान कमेटी की ओर से किसानों के लिए तमाम ज़मीन का बंदोवस्त चाहते हैं। जो किसान खास जमीन अपने दखल में रखकर खेतीबारी कर रहे हैं, जोतदारों का लाठी, गाली, पुलिस का अत्याचार, जेल-मामला-मुकदमा सहते आये हैं, उन्हें उसी जमीन का बंदोवस्त देना होगा। जो किसान फॉरेस्ट की जमीन दखल में रखकर खेती कर रहे हैं, जहां सिर्फ इतने बड़े बड़े चट्टान थे, उन चट्टानों को तोड़कर जो लहलहाती फसल उगा ... उन सब जमीनों का दखलदार किसानों के नाम बंदोवस्त करना होगा। पर फॉरेस्ट की जो जमीन जोतदारों के कब्जे में है, उन्हें उनके हाथ से छीनकर हलवाहे और बँटाई के किसानों में बाँटना होगा। राधावल्लभ आवेश में था। यह आवेश उसके किसान कमेटी से प्रत्यक्ष अनुभव से था। कमेटी में उसका काफी अनुभव रहा था और उस आवेग से प्रभावित आवेश यादों की लहर में कैसा एकाकार हो जाता है—वह उसके तरह-तरह के वक्तव्यों के विरुद्ध तर्कों में जाहिर हो जाता था। अभिव्यक्ति का राधावल्लभ चरम सहजता के साथ सामने ले आता—पर तर्क के साथ उसका कोई सम्पर्क न रहता। अनुभव के सबल दबाव से प्रभावित था सबकुछ। वह थोड़ा-सा रुका। कम-से-कम ऐसा तो लगता था कि वह दम लेने के लिए रुका है, पर उसकी बातों से पता चलता था कि वह फिर किसी दूसरी समस्या को भाषण में उछालेगा।

और हमारा एक खास वक्तव्य है हमारे बालूचर के किसान भाइयों के लिए। हमारी यह तिस्ता नदी हर समय अपना प्रवाह बदलती रहती है। जहाँ जमीन है, कल वहां बालूचर बन जाता है। इसी से जोतदार जमीन नदी में समा जाने पर भी अपना कब्जा बनाये रखते हैं। बालूचर जमीन पर भी किसान को दखल नहीं मिलता फिर तिस्ता में ऐसी-ऐसा चार जमीनें हैं जो सख्त है, पुख्ता है, नदी में बह जाने का कोई भय नहीं बिल्कुल, पर सरकार का क़ानून है कि पचास साल तक भी अगर चर जमीन चर न रहे तो उसे कायम जमीन डिक्लेयर नहीं की जायेगी। इसका फ़ायदा उठाकर पूर्वी बंगाल के हिंदू भाई लोग आकर यहाँ के तमाम चर जमीन में खेती करने लगे हैं। जहां पर भामनी का जंगल था, बाघों का घर था वहां अभी धान, पटसन, सब्ज़ियाँ, तरबूज उग रहे हैं। पर पूर्वी बंगाल के लोग हमारे यहां के राजवंशी और मदेसियों को चर में घुसने नहीं देते। मानो चर जैसे '' तभी भाषण के दौरान उधर जहाँ बड़ा-सा गोला बनाकर कुछ लोग दूर बैठे चाय पी रहे थे, उसमें से एक आदमी कूद कर खड़ा हो गया और चीख-चीखकर कहने लगा, ''अबे साला साहा, यहाँ पर चर का बात

करने वाला तू साला होता कौन है ?"

इधर हृषिकेश गरज उठा, "खबरदार, कोई लेक्चर रोक नहीं सकता।" हृषिकेश की गरज़ खत्म होते न होते ही बुद्धिमान ने जोर से नारा लगाया- "इ न कि ला ब" और इतनी बड़ी भीड़ के अंदर यहाँ-वहाँ से बहुत सी मुट्ठियाँ बंद हवा में तन गई, किसी-किसी हाथ मे चाय का ग्लास भी थमा हुआ था, "जि दा बा द।"

बालूचर देश से अचानक एक आदमी एक ही छलांग मे बुद्धिमान के सामने आ धमका, "साला।" जवाबी हमले मे बुद्धिमान उस पर झपट पड़ा, "सा लो" पर किसी ने किसी के शरीर पर हाथ नही लगाया। दोनों ही आमने-सामने तकरीबन सट कर खड़े थे। भिड़त मुद्रा म ठीक दुर्गा मैया के असुर की तरह एक-दूसरे को फाड़ खाने जैसी नजरों से घूर रहे थे। जैसे किसी पल कुछ भी हो सकता था। एक दूसरे पर टूट पड़ने के लिए तैयार।

इतने गोलमाल के भीतर भी राधावल्लभ आखें खोल कर मुस्कराता हुआ दाहिना हाथ ऊपर उठाकर सबसे बोला, 'आप लोग शांत रहें। शांत हों। बात यह है कि इस लड़ाई-झगड़े से किसका फायदा होगा ? दरअस्ल बात तो यह है कि हमारे इस माल-नागराकाटा क्रांति क्षेत्र में बहुत से कुख्यात जोतदार '

जो आदमी बुद्धिमान पर झपटा था, वही एक उल्टी छलांग लगाकर राधावल्लभ की ओर कूद कर बोला, 'उस जोतदार-वोतदार को लेकर जो कहना चाहो, कहो। पर 'चर' के बारे मे कुछ नहीं कहना, वह यहां चलेगा नहीं। चर में जोतदार नहीं, बटाइदार भी नहीं, सटलमेंट और पट्टा भी नहीं।"

राधावल्लभ ने फिर से अपना दाहिना हाथ उठाया, "आप लोग शांत रहें। बात यह है कि चाहे चर की हो या बागान की बात हो, बात सिर्फ उसकी ही नहीं है। बात है, पिछले सेटलमेंट के बाद हमारे इस माल-नागराकाटा क्रांति क्षेत्र में बहुत कुछ हुआ है, बाढ़ आई है, चर भी हुआ है, जंगल भी उगा है, जमीन भी हुई है, नदी भी आई "

"हाँ, यही सब बोलो साहब, जंगल की बात करो, पर चर की बात मत करो। चर मे साली तुम्हारी किसान कमेटी की बात चलने वाली नहीं।'

"चर में जमीन भी है, किसान भी है।" चर के दल में से कोई एक चीख कर बोला, "खबरदार। किसान कमेटी का नाम लिया तो जुबान खींच लूगा।" कहकर हृषिकेश इस दल के सामने छलांग लगाकर खड़ा हो गया। साथ ही साथ आलविश के लंबा हाथ बढ़ाकर उसके लंबे-लंबे बालों को छूते ही वह बैठ गया।

"अरे सालो, क्या बात है, किसकी बात है—कुछ सुन बगैर चिल्लाने लगे तो लगे।"

जिस आदमी ने किसान कमेटी का नाम उछाला था चर-दल का कोई उसके सर पर चपत जमा देता था, "ठीक है साहब, बोलते जाओ।"

"बात क्या है कि, आप लोगों को पता है इस बार का सेटलमेंट, किसानों के

हित मे होनी चाहिय।"

"ठीक बात ह साहा, जोतदारो को गाली मारा आर जमीन का खलास करो।"

राधावल्लभ अचानक रुक गया। ऐसा लगा जैसे उसने भाषण को खत्म कर दिया गया हो। पर भाषण रुकने जैसे मोड पर तो आया नही। सभी राधावल्लभ के मुह की ओर देखने लगे। राधावल्लभ हसने की कोशिश कर रहा था।

राधावल्लभ जोर से हस नही पा रहा था। उसके चेचक के दाग भरे चेहरे पर अनगिनत झुर्रिया दिखायी पड रही थीं। उसके बाद, उसका निचला होठ फैलने लगा था। पान खायी जुबान और दात उभर आये थ। राधावल्लभ चेहरे पर अपना दाहिना हाथ फिराते हुए बोला "यह खूब मन की बात है। मजा शब्द पर उसे इतनी हसी आ रही थी कि उसे अपने चेहरे और आखो पर बार बार हाथ फेरना पड रहा था 'जोतदार कहते है कि चर की बात करो और चर वाले कहते है कि जोतदार की बात करो—

हसी के झोके मे राधावल्लभ आखे ढककर सर हिलाने लगा और चर दल तालिया बजाने लगा था।

भाषण का रुक जाना राधावल्लभ के गले की आवाज का धीमा होना, हसी मुस्कान तालिया—इससे आलविश को समझ मे आ गया था कि भाषण खत्म हो गया। उसने फौरन एक पान पीछे से हाथ बढाकर राधावल्लभ की ओर बढा दिया। राधावल्लभ मुह मे पान डालकर मुस्कराता रहा। उसके होठ मे भाषण को फिर से शुरू करने पूरी हसी हसने और पान को चबाकर एक गाल मे लेने मे जितना समय लगा था उसी मे लोगो ने समझ लिया कि भाषण खत्म हो चुका है। फिर से राधावल्लभ को शुरू करना हो तो उसे एकदम भूमिका से करना होगा।

राधावल्लभ हसते हुए पान चबाता जाता है।

32

हृषिकेश का गाना

हृषिकेश वही जो नीचे बैठ गया तो फिर उठा ही नही वही पर वैसे ही उकडू बैठा हुआ था। यह मोका पाकर मुह उठाकर चीखने करने लगा चर जमीन का कोई जोतदार नही है, अधियार नही है, सिर्फ गुड है, चाटो और चाटो चाटो और चाटो "

कहते-कहते वह उठकर जात्रा की कुबडी मथरा की तरह दो चार कदम ठुमकने लगा। उससे सभी समझ गये कि हृषिकेश अभिनय करेगा सभी लोग थोडा सा हटकर सँभल कर बैठ गये। पीठ झुकाकर घिसटने जैसा चलते चलते हृषिकेश उस चर के दल के सामने जाकर खड़ा हो गया और उनके सामने लबा जबान निकाल कर हाथ को चाटने की मुद्रा मे जीभ को हरकत देने लगा। जो लोग खडे थे वे बैठ गये।

'ऐ' ' हृषिकेश, थोड़ा घूम-घूमकर। हृषिकेश ने अचानक अपनी कमर को काफी ऊँचा उठा ली, उस उठी हुई कमर से ढरक कर पीठ जैसे नीचे को बह आयी थी, सिर और नीचे झुक गया था, पर मुँह ऊपर को उठा था। फिर उसमे से निकली हुई काफी लबी होती पुआल से बँटकर बनायी गयी एक लबी और मुड़ीतुड़ी पूछ। हृषिकेश अपनी ऊँची कमर को और ऊँचा उठाकर बेताल नाच नाच सकता था, एक बार बाये, एक बार दाय, दो एक बार दानो ओर से नाचता है। इस नाच म उसको काफी महारत हासिल थी। हृषिकेश अबकी बार अपनी पिछाड़ी को चर वालो के सामने ले गया और अचानक खूब जोर से हिलाता हुआ छलाग लगाकर घूम गया। हाथ को जुबान के आगे इस उस ओर चाटने की मुद्रा म फिराने लगा। चर वालो म से एक ने हृषिकेश की पिछाड़ी मारने के लिए एक लबा रोबदार टाग चलायी, पर हृषिकेश इस तरह से फिसल गया कि टाग उसे लगी ही नहीं थी। उस आदमी के पाव म खरोच आ गयी। हृषिकेश फिर उसके सामने पिछाड़ी नचाने लगा। सभवत हँसी और तालियो से रोनक आ गयी। फिर उस आदमी का टाग चलाना और उसके मुँह के सामने हृषिकेश का पिछाड़ी नचाना, इससे जैसे दगल म नाटकीयता आ गयी थी। हृषिकेश अचानक मुँह उठाकर सबसे पूछने लगा, 'कहिए, आप लोगो को कैसा लगा।

हृषिकेश ने फिर से हाथ चाटने की मुद्रा बना ली। अपने चारो ओर लगी भीड़ को घूम-घूमकर दिखाने लगा। बीच-बीच म बोल रहा था ' कहिए, आप लोग, यह काहे की चटनी है ?' एक एक बार पूछना और पिछाड़ी उठा-उठाकर ठमकाना। आखिर म चर के लोगो को फिर एक बार चटनी दिखा फिर एक बार पिछाड़ी मटकाकर हृषिकेश बोला, 'यहाँ भी चाटने म मीठा, यहा भी चाटने से मीठा, मेरी आँखे गुड़ की मिठाई है। आर ? आर ? कहिए और क्या ?'

हृषिकेश गाने के झोक से सीधा होकर एक कदम घूमता था, फिर वही बात पूछता था। मन ही घूमते-घूमते गीत का तुक तलाश रहा था। दर्शक और नेताओ के बीच भी एक प्रत्याशा जागृत हो रही थी। एक लाइन के बाद ही गीत का पूरा मर्म बँध जायगा। हृषिकेश घूमते-घूमते फिर से चर के लोगो के सामने आ जाता।

हृषिकेश सीधा तनकर खड़ा हो गया। एक हाथ कान के पास ले जाकर और एक हाथ से मुँह ढाँपकर चर के लोगो की ओर देखता, गला फाड़कर सुर पकड़ने लगा

"हो-हो मेरे चर के हलवाहा भाई,
तेरे गुणो का क्या कहना
तेरी इतनी जमीन है पर
भूख नहीं मिटती
तेरे पेट की सीमा नही
हो-हो मेरे चरुआ, हलवाहा भाई
तेरे पेट की सीमा नहीं।"

चारों ओर तालियों की गड़गड़ाहट। लोगों ने तालियों के जरिए अपनी खुशी जाहिर की। हृषिकेश रुक गया था। सर नवा-नवाकर सबका अभिनन्दन स्वीकार कर रहा था। इधर-उधर झूलते हुए घुँघराले बाल, उजले दाँत, हृष्ट-पुष्ट चेहरा-मोहरा से वह एक पेशेवर गवैया नजर आता था। राजवंशियों के प्रचलित सुर में ही एक लम्बे आलाप के साथ उसने गाना शुरू किया था। लम्बी साँस फेफड़े में भरकर। चर के लोगों में से किसी ने उसकी ओर एक सिगरेट उछाली। हृषिकेश ने उसे लपक ली। फिर बोला, "थैंक यू।"

इस तरह गीत की महफिल जम जाने पर सभी आकर वहाँ घेरकर खड़े हो गये थे। देखते ही देखते वहाँ 'पाला गान' जैसा एक माहौल बन गया। उस भीड़ में राधावल्लभ, आर्लविश भी खड़े-खड़े सुन रहे थे। पीछे से कोई आर्लविश को एक लाठी से कोंचता। उसने पीछे की ओर मुड़कर देखा। वह आदमी राधावल्लभ को दिखाकर राधावल्लभ और आर्लविश को बाहर आने के लिए कह रहा था। वे दोनों जब 'देखें देखें' कहते हुए बाहर निकलने लगे तब हृषिकेश उनकी आवाज सुनकर खड़ा हो गया था। उधर देखते ही चर के लोगों में से एक ने हृषिकेश का हाथ जोर से पकड़ लिया। फिर चीखता हुआ सा बोला, "अरे अरे ओ भाई रुकना नहीं रे गाना जब शुरू किया है तो खत्म भी करना होगा।" हृषिकेश ने देखा कि राधावल्लभ और आर्लविश भीड़ में से बाहर निकल गये हैं। कुछ कहा भी नहीं। वह फिर से सबके सामने अपने फैले हाथ को पसारकर गाने लगा।

"ओ ओ ये मैं क्या कर बैठा रे
मोर चरुआ, हलवाहा भाई
तोरे साथ हमने ब्याह रचाया
पर सुहाग रात नहीं मनाई।"

चारों ओर भीड़ जमा हो गयी थी। अपने अनुभव से ही उन्होंने अंदाजा कर लिया था कि हृषिकेश गीत के नियमानुसार चरम बिंदु की ओर जा रहा है। आखिरी दो लाइन वह दो-एक बार दुहराकर और फिर पहली कड़ी में लौटकर लोगों के कौतूहल को ओर ही बढ़ाता जा रहा था। अबकी बार बड़ा-सा तोंद निकाल कर चलने की मुद्रा में पहला चरण दुहराया। फिर जरा-सा भी रुके बिना अचानक गाने लगा—

"ओरे ओ-ओ चरुवा हलवाहा रे
तोरे पेट तले का पेट गदबदा रहा
वहाँ कुछ भी नहीं।"

इतनी देर के बाद गीत अपने प्रत्याशित चरम बिंदु की ओर बढ़ने लगा था। हृषिकेश दाहिना हाथ सामने लाकर कोहनी से अंगुलियों तक झुलाकर हिलाते हुए अलापने लगा :

"ओ-ओ रे मोर चरुआ हलवाहा भाई रे
मोर पेटवा के भूक तो मिट गवा"

और उसका एक पाव घुमाने के साथ उसकी हँसी फूट पड़ी थी और ऊपर उठता जा रहा था। चर के उन लोगों के आगे पहुँच कर हृषिकेश अपने पेट पर दोनों हाथ रख चरम दु:खी होने का अभिनय करते-करते विह्वल हो गया—

"ओ-ओ-रे, मेरे चर के हलवाहा भाई,
हम पेट का भूक तो मिटा लिया रे
पर हमरा तलपेट भरा नहीं।"

निचले पेट को पकड़कर रोते हुए हृषिकेश घूम गया। "मोरा नीचे का पेटवा भरा नहीं," और कुछ समय ऐसे ही घूमकर अचानक सीधा हो गया। एक हाथ माथे पर, दूसरा हाथ कमर पर रख कमर मटकाता हुआ गाता जा रहा था, "मोरा नीचे का पेट भरा नहीं, मोरा नीचे का पेट भरा नहीं।" फिर धप् करके जमीन पर बैठ गया। एक पर मोड़कर बैठ गया था, फिर दूसरे पाव को घुटने से आगे निकाल कर कव्वाली के अंदाज में एक हाथ कान तक ले आता था। दाहिना हाथ आगे बढ़ाकर झटका देते-देते कव्वाली जैसे द्रुत लय में गा उठता है, 'नीचे का पेट भरा नहीं। हमरा तलपेट भरा नहीं।" चारों ओर बैठे सभी उसके गीत और मुद्रा में ताल से ताल मिला कर लय बढ़ाये जा रहे थे। बढ़ते-बढ़ते एक समय आया जब सुर चरम पर पहुँच कर एक चीख के साथ खत्म हो गया। हृषिकेश जमीन से उठ पड़ा। उठकर खड़ा हो गया। फिर जेब में वह सिगरेट निकालकर सुलगाने लगा। फिर मुस्कराता हुआ चर के लोगों की ओर देख उनकी ओर धुआँ उगलने लगा।

33

किसान-मज़दूर आलोचना

हृषिकेश का गीत जिस समय शुरू हुआ था, यानी कि राधावल्लभ का भाषण जिस समय रुक गया था—तभी आनंदपुर के वीरेन बाबू और फागू वगैरह राधावल्लभ को भीड़ के भीतर से बाहर ले आये थे। साथ में आर्लविश भी था। उसके बाद जब वे दोनों उसे गाड़ी की ओर चलने लगे थे तब राधावल्लभ ने कहा था, "यहीं पर, जो बोलना है बोलिये। आपके साथ इतनी दूर जाने पर उधर वे सब ढूँढ़ने लगेंगे।"

"अरे, चलिये न ! यहाँ से कोई क्या आपको बातचीत करते हुए देख नहीं पायेगा ?"

आर्वालिश माथा हिलाकर बोला, "चलो कामरेड, चलो, चलने को कह रहे हैं तो चलो।"

सब मिलकर साल्टलेक पार होकर बैठ गये। थोड़ी दूर पर गाड़ी में वन विभाग के बाबू लोग बैठे थे। साल्टलेक के मुहाने पर जो मदेसिया बैठे थे, उनमें से कोई

इधर आ नही रहा था। कोई उधर ताक भी नहीं रहा था।

वीरेन बाबू ने ही पहले बात शुरू की—"सुनो राधावल्लभ, सर्वे तो शुरू हो ही गया। अब तो खसरे का काम राज ही चलेगा। तुम्हारी जमीन की बारी तो शायद आजकल में ही आ जाये। दो-एक दिन में तो बागान मे पहुच जायेंगे। तो तुम क्या करोगे—इस बगान के मामले मे।"

"दरअसल बात यह है कि कुछ करने को ही नहीं है। आप लोगों के कम्पनी जमीन के वेस्टलेंड में हमारे किसान दखल करके इतने दिनों से खेतीबाड़ी करते रहे है। हमें सरकार से पट्टा चाहिये।"

"सेटलमेंट तो पट्टा बनेगा नहीं, वह तो जहां बनेगा वहां बनेगा। तुम वहां चाहो तो जा सकते हो। पर अभी तुम लोग अगर किसी समझौते पर न पहुंचे तो दंगा-फसाद हो जायेगा।"

"दंगा-फसाद होने पर तो फायदा आप ही का होगा। सहूलियत भी आपको ही होगी। आपने तो मजदूरों को समझा-बुझा दिया है कि हमारी जमीन छोड़ देने पर आप उन्हें बंदोबस्त देंगे। फिर उस पर यह भी कहने लगे है कि आप लोग बगान और बढ़ा नही पा रहे—इस जमीन को छोड़कर। उसके चलते आप पर्मानेंट लेबर भी नही ले पा रहे है। काम अगर इतना ही कम है आप लोगों का, तो फिर बगान छोड़ क्यों नहीं देते।"

"उस भी वेस्ट कर देंगे ... तो कहो, क्या तुम हम नौकरी चाकरी दोगे ?" वीरेन बाबू थोड़ा-सा हंसकर बात को मुलायम करने की हल्की कोशिश करने लगे। राधावल्लभ भी चुप हो गया। थोड़ी देर के बाद वीरेन बाबू फिर से कहने लगे, "अबकी सेटलमेंट तो आपके हक में हो जायेगा। जो कुछ बंदोबस्त करना है अभी ही कर लो। इसके बाद के चुनाव में अगर सी.पी.एम. हार जाये तो फिर तुम झमेले में पड़ जाओगे। इसी से जो कुछ करना है अभी ही कर लेना बेहतर है। कंपनी भी कायदे मे नहीं है, राजी हो जायेगी। फिर सरकार भी तो अभी आप लोगों के साथ है। सुना है कि ये अफसर लोग भी नक्सल थे। वे भी तो आपके साथ ही हैं। अभी बंदोबस्त कर लेने से तुम्हें ही सहूलियत होगी।"

आलविश थोड़ा-सा पीछे बैठा था। वह गर्दन उचका कर तमाम बातें सुन रहा था और सर हिलाता जा रहा था। ऐसा लगता था कि सभी बातों में उसकी सहमति है। बीच-बीच में 'हां-हूं' भी करता जा रहा था। वीरेन बाबू की बात खत्म होते ही वह बोल उठा, "हां बाबू, ते कहते हो कि हमहूं सब जमीन छोड़ दें ? और बगनिया लोक इ सब जमीन दखल ले लिहें ? त फिर हम सबहं कहां जइबे करी ?"

वह शायद बहुत झुक कर बैठा था इसी से शुरू से ही उसकी लार टपकने को हो रही थी। बार बार वही लार अंदर सुड़ककर निगलते-निगलते वह फिर बोला, "तोहार मालिक लोग अपना ठीका मजदूर को काम मे लेता राज, लेकिन कोई को

भी परमानेंट करने से तो समझा जाता, क्या, ना—ई बगान पर काम है बहुत, इसको अउर जमीन का जरूरत है।" बात करने में आलविश कोई ज्यादा माहिर नही है। पर उसका लम्बा चेहरा, लम्बे बाल, चौडे माथे से लगता था जैसे उसको बहुत कुछ कहना हो। फिर मदेसिया होने के बावजूद बाङ्ला और राजवंशी मिला-जुलाकर वह एक ऐसी अद्‌भुत भाषा तैयार कर बैठा था। खास तौर पर वीरेन बाबू लोगों के साथ बातचीत करने के लिए ही।

आलविश की बातों के जवाब मे फागु उरॉव नाम का वह लड़का गुस्से मे बोला, "मालिक या किसी का इसमे कोइ दोष नही। बागान बाटन का जमीन ना था तो परमानेन काम बनाया जाये कैसे ?"

आलविश काफी जोर-जोर से सिर हिलाता था और 'हॉ, हा,' करता जा रहा था जैसे कि इतने समय के बाद ही बात की असली तह मे पहुंचा हो फागु उरांव। पर लड़के ने काफी गुस्से मे कहा था। वीरेन बाबू हाथ उठाकर बोले, "फागु, इतना गुस्सा क्यों कर रहे हो ? इसमे तो झगडे की कोई बात नही। फागु अपनी लाठी से घास पर धीरे-धीरे चोट करता रहा और मुंह भी थोड़ा-सा फेर लिया। आलविश फिर से बात शुरू करना चाहता था। अपना दाया हाथ उसने आगे कर दिया, फिर उलटा करके—पॉचो अंगुलियो को अलग अलग करके फिर हथेली को चित करके पॉचों उंगलियों को मिलाकर इकट्ठा सा कर लिया। एक बार मुट्ठी भी करली। जब मुट्ठी खुली तो उसके चौडे माथे पर लम्बी-लम्बी गहरी रेखाएं दिखायी देने लगी। बात करने के लिए ही इतनी मेहनत। आखिरकार आलविश बोला, 'ठीक बात है ठीक बात। पर बागान का काम बहुत है। फायदा बहुत है। मुनाफा भी काफी है तो परमानेंट मजदूर भी बेशी होगा, हा ? तो होते होते कंपनी कह सकता है कि नहीं ? बागान को इतना काम, आउर बढाना होगा, तो हामको जमिन नहीं है। हा कंपनी को हिसाब लगाने बोले, कोन माल पर केतना परमानेंट लेबर ? । हा आ आ" यही आखिरी 'हॉ···आ आ···' मे वह इतनी लम्बी करके गर्दन हिलाया कि उसके मुंह से लार टपक कर हाथ पर ही गिरने लगा। लार गिरने के बाद उसे पता चला। पता चलने पर 'हॉ···आ···आ···' करने के लिए उसने जो मुंह खोला था, उसे जल्दी से बंद कर लिया। सुड़कने जैसी आवाज़ के साथ उसने लार को फिर से अंदर खींच लिया। हाथ को उल्टा करके घास मे पोछ लिया। फिर हथेली से होंठ।

आलविश की बातों के बाद सभी कुछ पल के लिए चुप हो गये थे। यहॉ जितने भी लोग थे सभी मामले के बारे मे अच्छी जानकारी रखते थे। बात निकलते ही सभी ने समझ लिया था कि इसका जवाब देना मुश्किल है। कंपनी की जिद थी कि चाय-बागान का इलाका न बढ़ाये जाने पर नये मजदूरों की बहाली भी नही होगी। इसलिए आनंदपुर का जोत लैंड का जो भाग वेस्ट हुआ है उसे आनंदपुर चाय-कपंनी ही सरकार से लीज पर लेगी चाय बागान उगाने के लिए। यानी की वेस्ट जोत लैंड

फिर से उसके जोतदारों के पास वापस चली जायेगी। इंडस्ट्रियल लैंड के रूप में। इसलिए वेस्ट लैंड जिन किसानो के पास है, उन्हें जमीन छोड़नी होगी। पर कंपनी के परमानेंट मजदूर हर वर्ष कम होते जा रहे थे। पहले कंपनी के परमानेंट मज़दूरों की तादाद पाँच-सात वर्ष पहले जितनी थी, उतनी करे। तभी तो समझा जायेगा कि और भी नये मज़दूरों की आवश्यकता है। रिटायरमेंट, छुट्टी-वृट्टी, मृत्यु—सभी जगहों में कंपनी कभी भी परमानेंट मज़दूर नहीं रखती। सभी काम ठेका मजदूरों से कराती है। तो फिर अब इन वेस्ट जमीन के किसानों की बर्खास्तगी की कोशिश क्यों ?

आलविश की बात काटने के लिए जितना समय लगा उसके बाद वीरेन बाबू बोले, "पर कोई न कोई फ़ैसला तो आप लोगों को करना ही होगा। वरना बागान के मजदूर अपना हक छोड़ने के लिए क्योंकर तैयार होंगे ?"

राधावल्लभ अपने दाएं हाथ से मुँह पोंछकर बोले, "पर बात यह है कि···आप सभी क्या · ·· नहीं पा रहे हैं कि चाय-बागान के मजदूरों का हक कंपनी के साथ और हमारे इस वेस्ट जमीन का हक सरकार के साथ जुड़ा है। आप लोग हमारे साथ क्यों उलझ रहे हैं ?"

राधावल्लभ के जवाब से वीरेन बाबू थोड़ा-सा गर्म होकर बोले, "इन सब बातों से कोई फायदा नहीं है, राधावल्लभ ! कंपनी के साथ मजदूरों को जो करना है, वे करेंगे ही। पर कंपनी का कहने से वह कहती है कि हमें ज़मीन दो, चाय बागान बढ़ायेंगे। बागान बढ़ाने से ही मजदूरों को लाभ होगा।"

वीरेन बाबू के क्रोध ने राधावल्लभ को और भड़का दिया था। वह और गर्म होकर बोले, "देखो वीरेन बाबू, आप तो कंपनी नहीं हैं न ?"

"वह तो नहीं हूँ। मैं तो कंपनी में नौकरी करता हूँ।"

"तो फिर कंपनी की तरफदारी करते हुए इतनी बातें कीं क्यों तुमने ?"

"तुम भी तो राजवंशी नहीं हो राधावल्लभ। तो फिर तुम क्यों राजवंशियों के पक्ष में इतने बोल रहे हो ?"

राधावल्लभ उठकर खड़ा हो गया, "ऐ आलविश चलो। इनके साथ अब क्या करना ? ठीक है, तुम जो करना चाहते हो करो। हाट-घाट में ढिंढोरा पिटवा दो कि राधावल्लभ साहा भाटिया क्यों राजवंशियों को लेकर जमीन दखल करना चाहता है।" उसके बाद चंदा-वंदा लेकर एक उत्तराखंड पार्टी खड़ी करेगा।

34

किसान मज़दूर : लेन-देन

वीरेन बाबू ने समझ लिया कि उन्होंने एक गलत बात कह दी है। अभी अगर कोई मीमांसा का सूत्र ढूंढ कर निकाला न जा सका तो सब कुछ चौपट हो जायेगा। सभी

मारे जायेंगे। और वही बात वे कह नहीं पाये थे। दरअसल राधावल्लभ ने अपनी नौकरी की बात निकालकर माथा गरम कर दिया था। वीरेन बाबू फागू को एक घूँसा मारकर बोले, "जा उसे पकड़ ला। समझा-बुझाकर। जल्दी, किसी भी तरह। जा जल्दी जा।"

फागू ने दौडकर आलविश और राधावल्लभ का रास्ता रोक लिया। गोलमाल का अंदाज़ा लगाकर साल्टलेक के निकट खड़ी भीड़ मे से दो-चार आदमी उठकर आ गये थे। फागू उनकी ओर देखकर धमकी देने के अंदाज में बोला, "अरे कुछ नहीं है, हटो, हटो।" फागू की बात सुनकर वे रुक गये थे। पर वहाँ से हटे नही, खड़े रहे।

फागू राधावल्लभ को पकड़कर बोला, "चलो, कामरेड चलो, बातचीत में अइसा तो होता ही रहता है। तुमको भी किसान-कमेटी-लालझंडा, हमको भी इउनियन-लालझंडा। तो बातचीत तो होनी ही चाहिये।"

राधावल्लभ सचमुच उतना क्रोधित हुआ नहीं था, जितना कि समझा जा रहा था। पर वह काफ़ी थका हुआ था। वह बोला, "अरे भई, इतनी सारी बातों से क्या होगा ? तुम थोड़े ही हमारे लिये कंपनी से कहोगे कि ख़ास जमीन से किसानों को बेदख़ल करना नहीं चलेगा। उल्टा कंपनी ही तुम लोगों को भिड़ा कर हम वहां से निकलवायेगी। फिर इसके बाद किसी दिन तीर-धनुष देकर मारपीट करवा देगी और तुम भी हमारे ख़िलाफ़ हो जाओगे।"

आलविश ने राधावल्लभ.की बातों का सूत्र पकड़कर कहा, "आउर बस, लग जायेगा देसिया और मदेसियों की बीच फाइट। पुलिस आयेगी। फटाफट दोनों गुटों के कामरेडों का आरेस्ट।" फागू बोला, "अरे, छोड़ो भी उन बातों को। कौन नहीं जानता कि तुम्हारे ख़ास ज़मीन में देसिया, भाटिया-मदेसिया सब कोई है। चलो, चलो बात खत्म करो।"

राधावल्लभ लौटते हुए बोला, "यही तो कपनी का ख़तरा है। न हो तो कितने दगा-फसाद खड़ा कर देगी।"

आलविश ने राधावल्लभ का समर्थन किया, "वह तो है ही।" फिर दोनों बैठ गये।

पर फागू ने अपनी कोशिश नहीं छोड़ी। वह वीरेन बाबू से बोला, "आप यह सब बाहरी बातें न करें। यह तो राधा-कामरेड ने कहा है। हमारा लेबर लोग भी नहीं बोलेगा, ख़ास ज़मीन से किसानों को हटाना नहीं चलेगा। और वो लोग भी हमको बात बोलेगा। क्यों, ठीक है न राधा कामरेड ?"

राधावल्लभ ने कहा, "ठीक तो है, पर बोलेगा क्या ?"

आलविश ने कहा, "हाँ, बोलो, क्या है तुम्हारा मतलब, बोलो ?"

फागू ने वीरेन बाबू से पूछा, "क्यों, वीरेन बाबू, ठीक है न ?"

वीरेन बाबू ने कहा, "हाँ, अभी तुम तय कर लो कि क्या कहना है। तुम दोनो पक्ष अगर एक होकर कुछ कहो तो सरकार भी उसे मान लेने को मजबूर होगी। और यह तुम्हारे सेटलमेंट मे भी रिकार्ड हो जायगा।"

फागू ने कहा 'तो बोलो कि क्या बोले ?"

फागू ने यह सवाल किससे किया समझ मे नही आया क्योंकि बात भी उसी ने ही उठायी थी और जवाब भी उसी ने दिया था। पर फिर समझ मे आ गया कि वह इस सवाल का जवाब भी वीरेन बाबू से जान लेना चाहता था। वीरेन बाबू ही उसके असली मुखिया है। पर उसकी बातो के जवाब मे तो वीरेन बाबू कोई शर्त देने से रहे इससे उसे चुप हो जाना पड़ा था। इस मुद्दे पर सब मानने लगे थे, वीरेन बाबू भी। आखिरकार वीरेन बाबू ने शुरू की, 'जो लोग जमीन के दखल मे है, यानी कि राधावल्लभ के आदमी "

बात ... हुए राधावल्लभ ने कहा हमारा कोई आदमी नही है वीरेन बाबू। लोग तो सज्जनो के होते है या फिर जोतदारो के होते है। और हम तो सज्जन भी नही जोतदार भी नही है।"

क्या ? तुम्हे तो सभी बाबू कहकर पुकारते है। वह जो भी हो जिन लोगो का जमीन पर दखल है, उन्हे जमीन से हटाया न जाय, यही तो देखना है न ?"

'ठीक है आप लोगो की बात सुन ली।'

'फागू वगैरह क्या कहना चाहते है। क्या फागू ?'

नही, वह तो बोलना ही होगा, जरूर।"

'क्या ?' वीरेन बाबू ने फिर से सवाल किया था।

"यही कि राधावल्लभ के लोगो को हटाना नही चलेगा।

"नही तो चलेगा, पर जमीन भी तो तुमलोगो को ही चाहिये न ?"

"जरूर । चाय बागान को खास बागान को देना होगा।"

"सब तो होगा। पर वह होगा कैसे, वह बताओ।'

"वह तो जरूर बोलना होगा" कहते-कहते फागू रुक गया। फिर कुछ देर चुप रहकर वीरेन बाबू ने कहा, "तो फिर तुम्हारी ही जमीन का मापजोख पहले हो जाये।"

अबकी बार राधावल्लभ बोल उठा, "हमारी जमीन की नापजोख फिर किसलिए ? सरकार की वेस्ट जमीन है। सरकार नापजोख करके दाग नबर दे-देकर दखल लिया है। बस-सरकार का फाम देखकर ... नबर मिलायेगे। हमे भी पट्टा मिला नही। हम भी नाप करने नही देगे। पट्टा मिलेगा तो नाप होगा। पट्टा नही तो नाप भी नही।'

"वाह । तुम लोग अगर पूरी जमीन मे किसकी दखल मे कितनी जमीन है उसका एक हिसाब निकालने नही दोगे, तो फिर फैसला कैसे होगा ?"

"क्या हिसाब होगा ? हमे तो पता है किसकी कितनी जमीन है।"

आलविश ने बीच में टोका तो राधावल्लभ ने उसे रोककर कहा, "चुप रहो भगत, चुप रहो। वीरेन बाबू हमारी ज़मीन नपवाना चाहते हैं। तो चाहें जिसे नापना हो वह नापे।"

"राधावल्लभ सुनो। अगर तुम्हारी बात मान भी लें तो भी यह देखना ही पडेगा कि किसे कितनी ज़मीन दखल कर रखी है ? तो कंपनी भी तो सरकार को कह पायेगी कि तुम्हें कानून के मुताबिक पट्टा देना चाहिये किसानों को। फिर दे-दिलाकर जो कुछ बचेगा, उसे कंपनी बगान के लिये लीज पर ले लेगी। फागू लोग भी वही कहेंगे, क्यो फागू ?"

"जरूर, हमलोग बोलेगा सब पट्टा दो, उसके बाद कपनी को दो।"

"माने वीरेन बाबू, आप लोग हमे यह कह रहे है कि हम लोग अपना दखल मे दो बीघा ज़मीन रखकर बाकी जमीन आप लोगों को दे दे ?"

"सरकार का तो यही कानून ह। जो कानून है वही तो करना पड़ेगा। वरना तुम्हारे यहाँ तो हर एक के पास कुछ न कुछ जमीन है ही। हृषिकेश तो दर्जी का काम करता है। फिर उसके पास कहा से जमीन आयी ?"

"ये सब बातें छोडिये। बीस साल से हमारे दखल में जमीन है। आप लोगों ने तो हम पर गोली भी चलायी है। दिलो-दिमाग से न मार कर हाथ से मारा है।" राधावल्लभ दाहिने हाथ से बाये हाथ के बाजू को दबाता है—बायें बगल में छाता है, "वही तो फिर जमीन छोडने के लिए नहीं ?"

"राधावल्लभ, तुम पर गोली क्या हमने चलायी है ? यह सब तुम क्या कह रहे हो ?"

"ठीक है, ठीक है। वह कोई बात नहीं। दरअसल, बात यह है कि मान लो अगर तुम जो कह रहे हो, वह होता है, तो फिर बात यही ख़त्म हो जाती है। हम किसी भी कीमत पर ज़मीन छोड़ेंगे नहीं। नापजोख भी होने नही देंगे। वेस्ट ज़मीन तो खास ज़मीन है। ख़ास ज़मीन का खतियान अलग होता है। उसका फिर नापजोख क्या ?"

वीरेन बाबू ने समझ लिया कि उसका जो ख़ास प्रस्ताव था, उसे राधावल्लभ ने अस्वीकार कर दिया है। वह भी कहता है, "वाह, वाह, तुम ख़ास ज़मीन पर बँटाईगिरी करोगे और मज़दूरों के बागान की ज़मीन में अपना हक़ भी मिलेगा नहीं ? क्यों ?"

"यह बागान की ज़मीन नहीं है, सरकार की ज़मीन है, इस बात को तुम अच्छी तरह समझ लो। यहाँ मज़दूरों का कोई हक नहीं है। आप मज़दूरों के साथ हमारा कोई दंगा-फ़साद करवाना चाहते हैं"—राधावल्लभ उठकर खड़ा हो गया। साथ ही आलविश भी उठकर खड़ा हो गया। फागू भी। वीरेन बाबू ने बैठे-बैठे ही कहा, "दंगा-फ़साद तो हम करने जायेंगे नहीं—तुम्हारी ही पार्टी की इउनियन करने जायेगी।

तभी उनसे ममझना। बागान क वर्कर लागा न दावा किया ह कि यह खाम जमीन किसकी कितनी ह, उसका नापजाख की जाय।"

"ठीक है, समझ लग। हम जमीन पर ही हैं। आप लाग अफमरो का लेकर आइय। दखते ह कौन किसकी जमान नापता ह ?" गधावल्लभ न ताव म कहा।

35
किसान मज़दूर वर्ग संघर्ष

बाहर आन ही गधावल्लभ न कहा, "भगन, फारन जमान की तरफ चला। गोलमाल हो सकता ह।" उसक बाद गीत की महफिल की आर दखकर बोला, "बुद्धिमान का भी बुला लाओ।" इतना कहकर गधावल्लभ चलन लगा। वह विपरीत दिशा मे चलना गया। आलविश भीड की आर भागा। उसकी काफी उम्र हो चुकी थी। जल्दी चलना , पर पर उसकी पीठ झुक जाती थी। पर जम आग बढत ही नही थे। चलत हुए वह कमर म सिर का आग बढा दता। आलविश भीड म बुद्धिमान की तलाश करन लगा। एक क्षण घूमकर दखा कि चाय की दुकान पर बैठा बुद्धिमान हृषिकेश क गीत पर ताल द रहा ह।

" बुद्धिमान चला उठा ।"

बुद्धिमान उसकी आर दख बिना ही बोला, 'अर भगन बेठ जा यार। देखते नही माला हृषिकेश कैसा पाला रचा ह, चरुआ का पाला।" भीड स हृषिकेश की आवाज तरती हुई आयी। भगन आर दर करना नही चाहता। फिर गधावल्लभ भी अकले ही चला गया। उसन बुद्धिमान की पीठ पर अपने घुटन स ठाका। अबकी बार बुद्धिमान न आलविश की आर दखा। आलविश हाथ क इशार स उसे उठने क लिए कह रहा था।

विगत पद्रह वर्षो स बुद्धिमान किसान समिति क साथ था। आर यहाँ किसान समिति का माने ह खास जमीन को दखल म रखना, खेती करना, लान पाना, झमेला करना—यही सब। एक-एक बार चुनाव म अलग अलग किस्म की सरकार, अलग अलग कानून लागू करती ह। पर इस दखलदारी और खास जमीन का कोई फैसला नही होना। दखल म रखना ही कानून की बात अपना हक बन जानी है। इस तरह क अनुभवो क चलते बुद्धिमान का समझते दर नही लगी कि—कोई न कोई गडबड जरूर है। वह तपाक से कूदकर खड़ा हो गया। आलविश के कान के पास मुँह मे जाकर फुसफुसाया—"क्या हुआ ?"

"कामरेड न तुमको जमीन क पास जाने क लिए कहा है।"

"क्यो ? कोई गडबडी हुइ ह क्या ?"

"पता नही, जल्दी चलो।"

आलविश और बुद्धिमान फौरन चल दिये। बुद्दिमान अचानक रुक कर बोला, "हृषिकेश को बुलाता हूँ।"

आलविश खडा हो गया। पर कुछ सोच नही पाया। हृषिकेश को बलाने का मतलब है इस गीत की महफिल को तोडना। यानी कि इतने सारे लोगा को पता चल जायेगा। इससे गडबड़ी और अधिक बढ जायेगी। पर गड़बड़ी तो अभी शुरू नही हुई है पर हो सकती है। वीरेन बाबू साला ने धमकी से बात की है। कामरेड अकेला है। नही, छोड दे। आगे चल।"

बुद्धिमान आगे बढता हुआ बोला- "चलो, चलो।'

वे जल्दी जल्दी चले जा रहे थे। बुद्धिमान ताव मे था, पर आलविश ठडा था। फलत बुद्धिमान के अस्थिर क़दमो के साथ आलविश लबे-लबे डग मिलाकर चल रहा था।

आलविश ने बुद्धिमान से कहा, "स्साला वीरेन बाबू "

"कौन वीरेन बाबू ?"

"अरे, वही साला, आनदपुर वाला।"

"आ, उस साला को तो नौकरी मिला है, हम हटाने के लिए वकील है।'

"वकील ?"

"यह साला वीरेन। वीरेन वकील।"

"धत्। वकील तो कोर्ट मे जाता है, काला कोट पहिन के। वकील होकर बगान मे क्या कर रहा है ?"

"तुम्हारा सिर कर रहा है। साला इतना बडा वकील है कि एक भी मुअक्किल नहीं। उसी मे साला कपनी मे नौकरी करने आया है। इस खास जमीन की हलवाहा बटाईगिरी के पीछे—दो। अफसर बना है, बागान का। क्या किया है साले ने ?"

"कहता है कि तुम लोग दो-दो बीघा जमीन लेकर बाक़ी सब छोड दो।"

"क्यो, क्या उसकी जमींदारी "

आलविश क्रोधित होकर रुक गया, "अरे आग की बात सुनेगा या ऐसे ही बकेगा ?"

"कब कहा तुमको इन सालो ने ऐसी बात ?"

"यही जब कामरेड लेक्चर "

"कौन-सा लेक्चर ? कामरेड तो हर वक्त लेक्चर झाडते रहते है। सोते-सोते भी कहते है कुख्यात जोतदार "

अबकी बार आलविश हँस पड़ा, "अरे यही गाना-बजाना मे ही।"

"क्या ? तुम्हे बुलाकर ले गये ?"

"हाँ।"

"कान बुलाकर ले गया ?"

"फागू और वीरेन बाबू। तो हम लोग गये। उसके बाद बैठ के उनके साथ बातचीत होने लगी।"

"एक दम से मे बैठ के बातचीत, खड़े-खड़े नहीं ।"

वे हाथी रास्ते के उस मोड़ के पास पहुँच गये थे, जहां से बायीं ओर मुड़ते ही सामने, दाहिनी ओर उसी खास जमीन का इलाका शुरू हो जाता है। बायीं ओर जंगल है। चाय-बागान यहां से काफी दूर है।

मोड़ पार करते ही उन्होंने देखा कि उसी जमीन के अंदर और हाथी रास्ता के ऊपर कई लोग खड़े हैं। वहां पर सर्वे वाला आदमी भी नजर आ रहा है। वे दोनों खड़े हो गये थे। "साले चेन फैला रहे हैं--जमीन नापने चले हैं।"

बुद्धिमान दाहिनी ओर की ढलान से होता हुआ दौड़ने लगा था। आलविश ने भी अपना कदम तेज कर दिया। पर वह ढलान से उतरा नहीं। नयी मिट्टी कीचड़ से भरी है, आलविश उस पर से तेजी से बढ़ नहीं सकता।

पर घटनास्थल पर कोई उत्तेजना नहीं। कोई घटना भी नहीं। सर्वे की लम्बी चेन जमीन पर मरे हुए साँप सी पड़ी थी। राधावल्लभ सामने कुछ लोगों को लिये खड़े थे। इस जमीन की एक ढलान के ऊपर, कुछ दूरी पर चाय-बागान के मजदूरों की एक भीड़ जमी थी। कोई बैठा था और कोई खड़ा। और बायीं ओर हाथी रास्ते के मोड़ पर से सहाय, विनोद बाबू, प्रियनाथ और अनाथ खड़े होकर वीरेन बाबू और कई लोगों के साथ बातचीत कर रहे थे।

बुद्धिमान आकर राधावल्लभ के सामने खड़ा हो गया। हाँफते हुए पूछा, "क्या हुआ है कामरेड ?" फिर साँस छोड़ी। ऐसा लगता था कि बुद्धिमान के साँस लेने-छोड़ने से उसकी बनियान फट जायेगी। इतना तेज चलने और दौड़ने से उसकी आँखों के नीचे की दोनों हड्डियां धूप से चमकने लगी थीं। ये दोनों जैसे और प्रखर हो सकते थे। छाती के धड़कने से साँसें फूल रही थीं या नहीं यह तो समझ में नहीं आ रहा था। बुद्धिमान के दोनों हाथ शरीर से लगे हिल रहे थे।

उस वक्त आलविश भी वहां पहुंच चुका था। राधावल्लभ आँखें मूँदे, दायें हाथ को माथे पर से कोहनी तक मोटे अंगुलियों को गर्दन के निकट किए जा रहे थे फिर बीमार छाती को फुलाकर भाषण के लहजे मे कहना शुरू किये, "बात यह है कि हम जिस समय सर्वे के अफसरों के सामने किसान कमेटी की बात रखना चाहते थे, उसी समय मुझे और आलविश भगत को आनंदपुर चाय बागान के वीरेन बाबू और इस यूनियन के फागू उरांव ने बुलाकर बातचीत करना चाहा। हम बातचीत के लिए बैठे भी। उन्होंने इधर-उधर की बहुत हाँकी। वो सब बातें करने की फिलहाल कोई आवश्यकता नहीं। खैर, जो भी हो, वीरेन बाबू ने कहा कि हमें जमीन छोड़नी ही पड़ेगी, हर व्यक्ति के लिए दो-दो बीघा जमीन रहेगी और इन तमाम ज़मीन का

नापजोख होगा।''

इस बात मे चारो ओर फुसफुसाहट होने लगी। राधावल्लभ का रुकना पडा। वह हाथ उठाकर उन्हे रोकते हुए बोले, ''पर यह भी कोई खास बात नही है। हम इन सब बातो की आलोचना मे चले आये। पर वह भी कोई खास बात नही। हम जिस समय यह सब आलोचना कर रहे थे, उस समय जमीन पर हमारा कोइ भी आदमी मौजूद नही था। सभी सर्वे की जगह पर गये हुए थे। हृषिकेश ने गाना शुरू किया था, 'साला इस वीरेन बाबू का आदमी, इस कपनी का आदमी। हमारे पीछे से आकर, छुप कर अमान बाबू के साथ यहाँ हमारे जमीन पर चेन फलाने आ गया।'

दम लेने के लिए राधावल्लभ को रुकना पडा था। तब तक उसके गले की तमाम नसे फूल उठी थी। जिस आवाज और जिस नफरत के साथ वह इन बातो को कहना चाहता था, वह जैसे वह कोशिश करने पर भी जुटा नही पा रहा था। उसी से उसका मुँह थोडा-सा दाहिनी तरफ झुक गया था जबकि उसके सुनने वाला मे से ज्यादातर बायी ओर थे और उसका निचला होठ पपडाया हुआ था। उस पर उसके टूटे दातो से बहता थूक। राधावल्लभ धिक्कारते हुए बोलने लगा वीरेन बाबू आनदपुर चाय बागान मे नौकरी करते है। बातचीत के नाम पर हम जगल की ओट मे ले गये थे और उसी मौके मे इस अमीन का चेन देकर यहा जमीन नापने के लिए भेज दिया था। यहा हमारे जमीन पर कोई नही था। वे उस चेन के ऊपर लेट गये थे। और उसी समय चाय बगान के इजीनियर के दो मजदूर यहा आकर कतार बाँधकर इन सबका नजारा देख रहे थे। वे लोगो को धमकी दे रहे थे। हम जब यहाँ पहुँचे तो यह हाल देखा। आप सब तैयार हो जाओ। हम हमारे दखल की जमीन नही छोडेगे। इस जमीन की नपाई नही होने देगे। चाय कपनी और सरकारी दलील की साजिश बेकार कर दो।''

राधावल्लभ ने पजाबी के आस्तीन से मुँह पोछ लिया। उनके निकट खडे होकर जो लोग उनकी बाते सुन रहे थे वे हट गये। बुद्धिमान अचानक कूद कर सामने की मेड पर चढ गया था और मजदूरो की ओर घूरने लगा था। कई बार चहलकदमी करता था। बुद्धिमान को देखकर मजदूरो की कतार मे खडी औरतो को हँसी आ रही थी।

36

किसान-मज़दूर : भाषण संग्राम

बुद्धिमान जिस बडे से ऊँचे मेड पर खडा था, वह पश्चिम मे जाकर हाथी रास्ते के साथ मिल गया था। वहाँ से सुहास इस मेड पर से होता हुआ आ रहा था—अकेला। अमीन और चेन मैन वही खडे थे। वीरेन बाबू भी।

सुहास के करीब पहुँचते ही बुद्धिमान ने नारा लगाया, "खास ज़मीन की दखलदारी।" और ऊँची समवेत आवाज गूँज उठी, "नहीं छोड़ेगे, नहीं छोड़ेंगे।"

"खास जमीन का नापजोख।"

"नहीं चलेगा, नहीं चलेगा।"

"खास जमीन का पट्टा चाहिये।"

"लोन चाहिये, उर्वरक चाहिये।"

बुद्धिमान के गले से राधावल्लभ ने नारा ले लिया। मुट्टी भीचकर आवाज़ लगायी, "किसानो के खिलाफ बागान के मालिक और उनके दलालो की साजिश" यह स्लोगन उन्हे पता नही था, सो सब चुप रह गये थे। पीछे मे एक स्त्री की आवाज एक बार 'नही चलेगी' सुनायी पडी थी। दम लेकर राधावल्लभ ने स्लोगन के जवाब में और जोर से चीखकर बोला, "व्यर्थ करो, व्यर्थ करो।" दूसरे बार की "व्यर्थ करो" मे बहुतरी आवाज मिल गयी थी।

इस दौरान सुहास छलाग लगाकर मेड पर से उतर कर इन लोगो के सामने चला आया।

स्लोगन रुक जाने पर भी सुहास ने बात शुरू नही की। तब ये लोग फिर से एक बार चुप हो गये। मजदूरो की कतार भी थोडा-थोडा आगे सरक गयी थी। सुहास ने सिर नही उठाया, बल्कि थोडी-सी हसी मिलाकर बोला, "आप लोगो की जमीन नही नापी जायेगी। आप लोग चेन छोड दीजिये।"

यह बात सुहास ने इतनी सहजता से कही थी कि सब थोडा-सा चौक गये। पलभर के लिए एक अप्रस्तुत भाव जगाया था कि क्या किया जाना चाहिये। सुहास ने पास मे देखा। फिर दुबारा चेहरा घुमाता है। अनाथ बाबू और प्रियनाथ को बुलाकर चेन समेटने के लिए कहे या न कहे इस दुविधा मे पडा था।

फिर उनमे से कोई भी इस ओर नही आ रहा।

उस समय राधावल्लभ ने आँखे बद कर गर्दन सीधा कर लिया था। उसने फिर कोई नारा नही लगाया। पर उसके चेहरे पर क्रोध, धिक्कार, कष्ट—इन सभी का भाव काफी स्पष्ट हो उठा था। राधावल्लभ ने कहा, "हम सरकार का चेन रोकना नही चाहते। खासतौर पर वामफ्रट सरकार का चेन। वामफ्रट सरकार जनगण की मित्र-सरकार है। पर जिनकी साजिश से यह चेन खास जमीन पर फैलाया गया है, उनका फैसला करना होगा।"

"देखिये साजिश-वाजिश कुछ भी नही है। हम अभी दाग नबरवारी जमीन नापने जा रहे है। उसी से आपकी जमीन पर चेन पड़ा है। हमारा अभी यह जमीन नापने का काम नही है। हम चेन उठाकर ले जा रहे है। आप लोग छोड दीजिये, हटिये।" विनोद बाबू, अनाथ बाबू, प्रियनाथ बाबू कोई भी आगे नही बढा—सुहास मन ही मन कुछ क्रोधित होकर फिर से दाहिनी ओर देखने लगा। अभी अगर ये लोग चेन

छोड़ दें, छोड़ेंगे जैसा कि लग रहा है, तो क्या सुहास को ही चेन समेटना होगा ?"

"सर, इस विषय पर हमारी तमाम बातें सुनने पर ही आप समझ पायेंगे कि ये पाँचों कंपनियों ने कितनी बड़ी साज़िश के अदर वामफ्रंट सरकार को धकेल दिया है।"

सुहास को मजबूरन खड़ा रहना पड़ा। पर राधावल्लभ अपनी बात शुरू कर नहीं पाया। मज़दूर लोग मेड़ पर से लाल-झंडा लिये 'ज़िंदाबाद-ज़िंदाबाद' करते हुए आ धमके। फिर सुहास के उद्देश्य से आवाज़ उठायी, "खास ज़मीन का सेटलमेंट, करना होगा, करना होगा, ख़ास ज़मीन में बंटाईगिरी, नहीं चलेगी, नहीं चलेगी", वामफ्रंट सरकार को क़ानून, मानना होगा, मानना होगा।"

बुद्धिमान ने राधावल्लभ से कहा, "कामरेड, हृषिकेश को बुलाऊँ।"

"बुलाओ, बुलाओ, सभी को बुला लो, सबको खबर दे दो" राधावल्लभ ने आँखें उठाये बग़ैर ही कहा। बुद्धिमान भीड़ को पार कर दौड़ता हुआ गया, "लड़ाई करेंगे ? हमसे भिड़ेंगे ?" पीछे की ओर मजदूर, सामने किसान और सुहास इनके बीच खड़ा था। पीछे से स्लोगन रुक जाने पर उसने राधावल्लभ से कहा, "देखिये, हम तो सर्वे करने आये है। आप लोगों की जमीन हम नापेंगे नहीं। इस बार में हमारा और सुनना क्या है ? सिर्फ सर्वे के बाबत कोइ अगर कुछ कहना चाहे या कि उत्तराधिकार या शेयर, दखल के बारे मे किसी को कोई शिकायत हो तो वह हम सुन लेंगे।"

सुहास ने पहले से ही अंदाजा लगा लिया था कि इस ग्रुप के सभी लोग एक एक इलाके की ख़ास ज़मीन अपने दखल मे रखे हुए है। इसके चलते तकरीबन सभी के पास निश्चय ही एक-डेढ-दो हल की जमीन है। अभी नापजोख करने पर वह पकड में आ जायेगी। फिर वेस्ट ज़मीन फिर से वेस्ट हो जायेगी। इसी से ये लोग पहले से ही आवाज़ उठाये हैं कि ज़मीन नापने नहीं देंगे। जो किसान ख़ास जमीन दखल में रखे हुए हैं वे तो फ़ौरन अपने नाम से रिकॉर्ड कराना चाहते है। गवर्नमेंट का पहले आर्डर था कि ख़ास जमीन की नाप होगी और दख़लदारों के नाम रिकॉर्ड होंगे। बाद में आर्डर आया कि अभी उन सबकी कोई ज़रूरत नही। इसी दूसरे ऑर्डर के कारण ही इस तरह की घटनाएं हो रही है।

इतने समय तक आनंदपुर के इस्टेट ऑफिस के कागज़ात और मौजा मेप देखकर सुहास की यह धारणा बन चुकी थी। चाय कपनी का मतलब भी सुहास भली भाँति समझ चुका था। पर उस विवाद के निबटारे मे वह कुछ नहीं कर सकता था। न ही कोई भूमिका निभा सकता था। बल्कि उसे थोड़ी-सी विरक्ति भी हुई थी कि विनोद बाबू ने उसे बताये बिना इसी ज़मीन में चेन डालकर पहले ही दिन इस तरह का एक झमेला मोल क्यों लिया ?

जो गुट ढलान के ऊपर खड़ा था, वह चुपचाप सुहास और राधावल्लभ की

बाते सुन रहा था। सुहास की बाता के बाद चाय बागान के मजदूरो म स भाषणबाजी शुरू हो गयी

"साथिया, चाय बागान के लेबर और किसान लोग दुश्मन नही है। भाई-भाई है। साथी है। एक का दु ख दूसरे को समझना पडेगा। नही समझने म मालिक लोगन मजदूरो और किसानो को खत्म कर देगे। लेकिन साथियो, हमारी इस खेती पर एक खराब काम हो रहा है कि नही। चाय-बागान का वेस्टलेड पर किसान लोग जबरन सेटलमेट कर लिया है। ऐसा जबरन दखल कि इस गवनमेट को भी वह सेटलमेट नही करने देगी। पर वामफ्रट सरकार जनता की सरकार है। इसको सब काम ठीक-ठीक करना होगा। हम कहने है कि सरकार का जो अफसरान है उहाँ, उन अफसरन को तो सरकार के लिए कानून का रास्ता साफ करना होगा। हमलोगन का यह डिमाड है कि इस वेस्ट जमीन को पूरा नापना होगा। किसके पास कितनी जमीन है उसका लिस्ट निकालना होगा। साथियो, मजदूर और किसान दुश्मन नही है। मजदूर इउनियन का लाल झडा, लाल पार्टी और किसान समिति का भी वही झडा, वही पार्टी। हम लोग साथी है। उसी म हम लोगन का डिमाड यह है कि सब खास जमीन को तलाश करना होगा, करना ही होगा। ये अफसर लोगन का और जोतदार लोगन का जो कलकब्जा होता है जो करप्सिटी होता है वह खत्म करना होगा। इन्किलाब जिदाबाद।"
फागू उराव ने भाषण खत्म होने के बाद स्लोगन दिया– इंकिलाब। पर इस स्लोगन के जवाब म कही जैसे कोई एक मजाक भी मिला हुआ था। मदेसिया स्त्रियो की अकारण हसी मे स्लोगन का स्वर रीन रीन बज उठा था। उसम स्लोगन की एक आदिवासी किस्म की महक थी। कुछ भी जैसे बगैर नाच गीत के होता नही है। उसी तरह फिर म यह शक भी जाहिर हो गया कि जैसे यह स्लोगन व ' गुट लडाइ म नही आया था। इन स्लोगनो का असर होने म ग, न होने से जैसे इनका कोई सपर्क न ी, जीने-मरने का कोइ सपक नही था उनसे।

सुहास राधावल्लभ की ओर पीठ फेर बागान के लोगो मे बोला "आप लोग अपने एस्टेट आफिसर को आने के लिए कहिय।

"किसको "

"एस्टेट ऑफिसर, एस्टेट आफिसर। वहा हमारे साथ जो बाते कर रहे थे।"

फागू ने हुकुम दिया, 'वीरेन को बोलो, वीरेन एस्टेट ऑफिसर है।"

"हो वीरेन बाबू, वीरेन बाबू हो " पुकार बागान वाले लोगो के सामने से पीछे की ओर चली गयी थी।

राधावल्लभ की ओर देखकर सुहास ने कहा 'देखिये, अब तो हर दिन हमारा सर्वे का काम चलेगा। काम जल्दी से न होने पर आप लोगो को असुविधा होगी। पर यह सब हगामा तो हम मिटा नही सकते। मान यह तो हमारा काम नही।"

"क्या आपका काम नही है सर ? वामफ्रट सरकार जनता की सरकार है

इसलिए "

"न, न वह तो ठीक है—पर जिसका जो काम है, वह तो उसे करना ही होगा। हम तो, फर्ज कीजिये, फॉरेस्ट रेंजर का काम तो नही कर सकते ? यह, हमारे, यानी सेटलमेंट का काम नही।"

"कौन सा सर, आपका काम नही ?"

"यह जो, यह खास जमीन का एक-एक कर कितने लोग इसमे दखल कर रहे है, वह उन्हे मिलेगी या फिर चाय कपनी को मिलेगी यह तो हम फैसला कर नही सकते।"

राधावल्लभ ने कहा, "सर, आप अगर हमारी जमीन नापना चाहते है तो चलिये सर नाप लीजिये। हम खुद चेन पकड़कर आपकी मदद करेंगे। नापना ही तो आपका काम है। हम भी तो नापजोख चाहते है।"

"सुनिये, ये वेस्ट जमीन तो दाग-दाग पर मिला सरकार ने नाप कर दखल मे लिया है, हम लोग भी लिये है, तो इस जमीन का खानापुरी बुझारत का काम हो चुका है, हमारे मौजा मेप म भी है। और किसके दखल म किसने कितनी जमीन रखी है, सरकार ने उसके रिकार्ड करने पर मनाही की है। जगह जगह पर उसका एक लिस्ट हम बना रहे है। अगर सरकार चाहती है तो हम वह जमा करने को भी तैयार है। आप भी अगर चाहे तो हम उस तरह की एक लिस्ट बनाकर दे सकते है।"

भगत बोला, "हम वह जरूर देगे सर। आप चाहे तो देगे सर। हम तो सरकार के साथ बदोबस्त ही चाहते है सर। कुछ खास जमीन नापने के बारे म बागान के मजदूरो को आपत्ति क्यो हो रही है सर ? इस नापजोख मे तो उनका कोई फायदा नही। क्या, है न ? इस वीरेन बाबू के मार्फत कपनी दगा करवाना चाहती है सर।"

"क्या आपने हमे बुलाया है सर ?" वीरेन बाबू ने ढलान पर से ही पूछा। नीचे नही उतरे। सुहास प्रतीक्षा करता रहा कि वो नीचे उतरेंगे। पर वह समझ गया था कि नीचे किसान कमेटी के लोगो मे शामिल होने से वह डर रहा है। सुहास की यह प्रतीक्षा और समझने के बीच म थोड़ा व्यवधान के बीच राधावल्लभ बोला, "सर, यह जो वीरेन बाबू है न, उसने हम जगल के बीच तरह तरह की बातो से भरमाए रखा और अमीन बाबू के साथ साजिश रचकर यहाँ चेन फँसाया है। वह चाय बागान मजदूर और बस्ती के किसानो के बीच दगा भड़काना चाहता है।"

वीरेन बाबू ऊपर से चीख पड़े- "राधावल्लभ, बी केयरफुल।" वह भी एक स्लोगन जैसा सुनायी दिया। बागान मजदूर उस स्लोगन समझकर नारे लगाने लगे, "नहीं चलेगा, नहीं चलेगा।"

सुहास किसान समिति की ओर पीठ कर वीरेन बाबू को धमकी देते हुए बोला, "यहाँ तो आपका कोई इंटरेस्ट नहीं है तो फिर आप हमारे काम मे इतना इन्वाल्व

क्यों हो रहे है। और लॉ एण्ड ऑर्डर सिचुएशन पैदा कर रहे हैं ?''
''मैने आपके काम में किसी तरह की दखलंदाजी नहीं की।''

''आप तो इनके साथ एक कंप्रोमाइज की कोशिश कर रहे थे, जबकि यहां चैन पड़ी है ?'' और ठीक उसी समय किसान कमेटी ने पीछे से अचानक 'ज़िंदाबाद' का स्लोगन उछाला और हुंकार भरते-भरते हृषिकेश और बुद्धिमान पीछे में आ धमके।

37
किसान-मज़दूर : सीधी भिड़ंत

हृषिकेश मजे से सिगरेट का धुआं छोड़ रहा था। पर चर वाला गुट प्रायः एक साथ उठकर खड़ा हो गया था। उसके बाद हृषिकेश से बोला, ''यहां और सिगरेट फूंकने की जरूरत नहीं, जल्दी से दौड़ो। आनंदपुर के जमीन को लेकर झगड़ा शुरू हो गया है। चलो, चलो।''

हृषिकेश आगे बढ़ा। एक तरह की विह्वलता के साथ एक बार उसने चारों ओर देखा। उसके गुट का कोई भी नहीं था वहां। अब तक जो लोग गीत सुन रहे थे उनमें से कुछ चाय की दुकान के सामने थे और कुछ ज्योत्स्ना अमीन के पास थे। बहुत-से लोग सीधे हाथी के रास्ते में उतर कर आनंदपुर की तरफ भागे जा रहे थे। ऐसा लग रहा था कि वहां गीत का पाला खत्म हो गया था पर वहाँ कोई बड़ा सा मजमा जुटा रहा। हृषिकेश कई कदम धीरे-धीरे चलता रहा। फिर चारों तरफ देखा। उसे जैसे विश्वास ही नहीं हो पा रहा था कि उसके गुट का कोई भी नहीं है वहां। चर वाला गुट का कोई उसे पीछे छोड़ते हुए आगे बढ़ गया। हृषिकेश ने पीछे मुड़ कर एक बार तिस्ता की ओर देखा। वही कुर्सी खाली पड़ी थी, कुछ दूरी पर वह टेबिल भी। यह समझने के लिए हृषिकेश को थोड़ा समय लगा कि जिस भीड़ के बीच अब तक वह था, अब उसमें नहीं है। अब उसने सिगरेट फेंक दी। चाय की दुकान की ओर देखकर पूछा, ''अरे, यह क्या हुआ है ?'' भीड़ में से किसी ने झिड़कते हुए कहा, ''जानते नहीं क्या हो रहा है—सब तो यहां है, हाकिम, अमीन सब। सुना है कि तुम्हारे समिति के साथ बागान वाले मदेसियों की मारपीट होने वाली है।''

''क्या ?'' इसी एक बात से हृषिकेश की चेतना लौट आयी। इस तरह की मारपीट का अंदेशा तो हर समय लगा ही रहता है। आज सर्वे के मामले को लेकर झमेला हो सकता था। पर हृषिकेश के बिना मारपीट हो कैसे सकती है ? हृषिकेश फ़ौरन दौड़ने लगा। जितना जल्दी हो सके वह दौड़कर पहुंच जाना चाहता था। कामरेड तो फिर मारपीट कर नहीं सकते। आलविश भी कर नहीं सकता। उन्हें क्या करना चाहिये वह हृषिकेश को छोड़ और किसी को पता नहीं। एक बुद्धिमान है। पर बुद्धिमान भी तो अकेला पड़ जायेगा। हृषिकेश चर के लोगों को पार करते हुए चल रहा था।

"अरे धीरे-धीरे चलो। हमलोग भी तो आ रहे हैं।" पर हृषिकेश नहीं रुका। दौड़ते-दौड़ते सोच रहा था बागान के मदेसिया लोग अगर बस्ती में आकर घरों में आग लगा दें तो ? हृषिकेश अंदाजा लगाने की कोशिश करने लगा, तीर-धनुष चलाने वाला एक जत्था तैयार करने में उसके दल को कितना समय लगेगा ? पर कौन कितना तैयार है, सब कुछ तो उस पर ही निर्भर करता है। आनंदपुर में समिति के साथ लड़ाई छिड़ गयी है तो वह यहां बैठे गाना गा रहा है, जबकि सब लोग उसे एक बार भी बुलाये बगैर चले गये हैं ? बुलाने का समय नहीं मिला ? एक बार आवाज़ देते तो हो जाता—"हृषिकेश चले आओ।" अबकी दौड़ते-दौड़ते हृषिकेश वही आवाज़ सुनने की कोशिश करने लगा। या फिर उसे बुलाया गया था, वह सुन नहीं पाया ? और वे लोग समझ गये कि हृषिकेश भी साथ में है। अगर ऐसा है तो फिर ? या फिर किसी ने समझा नहीं। और लड़ाई अचानक छिड़ गयी ? पर हृषिकेश के बिना तो झगड़ा-फ़साद इतनी देर कैसे चल सकता है ? तब तक हृषिकेश आनंदपुर के ज़मीन के करीब पहुंच चुका था। बस यहीं हाथी का रास्ता सामने बायीं ओर मुड़ा है—उसी मोड़ से आनंदपुर के वेस्ट जमीन का इलाका शुरू हो जाता है। जमीन के निकट पहुंचकर हृषिकेश समझ पाया कि वह इतनी तेजी से दौड़ा है कि जमीन पर पहुंचने तक उसका दम फूल जायेगा। उसने फौरन गति धीमी कर ली। गति कम होते ही उसकी छाती और कान के पास की नसों की धड़कती आवाज से मानो उसका कान सुन्न हो आया।

हृषिकेश जब मोड़ के करीब पहुंचा तो उसने देखा कि सामने से बुद्धिमान दौड़ा आ रहा था। हृषिकेश को देखते ही बुद्धिमान रुककर चिल्लाया—"रिषिकेश, ल""ड़ा" ई, ल ड़ा ई।" बुद्धिमान एक ही छलांग से नाली को पार कर जंगल में पहुंच गया। इधर-उधर ढूंढने पर भी उसे कोई डाल नहीं मिली। वह एक छोटी झाड़ी से तना मोड़ने लगा। तना तो टूट गया पर वह पेड़ से अलग नहीं हो पा रहा था। तमाम ताकत बटोर कर वह उसे झाड़ी से अलग करना चाहता था। तभी बाहर से बुद्धिमान ने पुकारा—"ए रिषिकेश, चला आ। ये लाठी ले ले।"

बुद्धिमान की आवाज सुनते ही हृषिकेश ने तेजी से छलांग लगाकर नाली पार कर ली। देखा कि रास्ते के ऊपर एक लाठी साइज की डाल छोड़ बुद्धिमान सीधा दौड़ा जा रहा है। हृषिकेश ने डाल उठाकर जोर से हुंकार भरी "रे रे रे रे" करता हुआ वह सामने हाथी रास्ते की भीड़ की ओर लपका। बुद्धिमान भी हुंकार भरता हुआ भाग जा रहा था। उनके क़दमों की चाप से हाथी-रास्ता दहल उठा था। उसी दौड़, हुंकार और दोनों लाठियां पकड़ने के अंदाज से सामने गंजी पहने बुद्धिमान और पीछे कमीज पहने हृषिकेश के शरीर की नसें जैसे नाचने लगी थीं। ये मचलती नसें काफी दूर से भी नज़र आ रही थीं।

सामने इस हाथी-रास्ते के ऊपर ही भीड़ खड़ी थी। वहीं से दाहिने हाथ को

और जमीन काफी दूर तक फैलती चली गयी थी। वहाँ भी भीड़ लगी थी। दौड़ते-दौड़ते समझ में ही नहीं आ रहा था कि कौन किस ओर खड़ा है। पर बुद्धिमान तो जगह देखकर ही गया था, फिर उसे भी पता है कि कौन सा गुट कहाँ खड़ा हो सकता है। हाथी रास्ता के ऊपर भीड़ इनके जानलेवा हमले के आगे दो भाग हो गयी थी। ताकि वे दोनों बीच में ही निकल जायें। पर वहाँ से पहले ही बुद्धिमान और उसके पीछे-पीछे हृषिकेश ढलान से नीचे उतर गये थे। सामने एक दलदली जमीन थी, वे छलांग लगाकर उसके मेड़ पर चले गये थे। फिर दो चार मेड़ के पार फिर मिट्टी थी। भीड़ के करीब तब तक वे पहुँच ही गये थे। बुद्धिमान और हृषिकेश दोनों लाठियों को सिर के ऊपर घुमाकर चीखने लगे थे ' साले, सिर फाड़ देंगे।' उनके और जोर से हुंकार भरते ही भीड़ के भीतर से 'इंकिलाब ' का नारा उठा । वह नारा उनकी हुंकार के साथ मिल गया। सभी तैयारी के साथ वे मानो हृषिकेश और बुद्धिमान का इंतजार कर रहे थे। उनकी आवाज सुनते ही भीड़ ने एक ओर होकर उनके बढ़ने के लिए रास्ता दे दिया था। वे पीछे की ओर से भीड़ में घुस गये। एक ही छलांग में मेड़ मेड़ के ऊपर पहुँचकर सामने की बागान के मर्दासियों की ओर झपट पड़े। इन दोनों की हुंकार सुन, गुस्से से चीखते बाबू एक छलांग में मर्दासियों के बीच घुस गये। इनके बढ़ने तो मर्दासिये सामने खड़े थे वे भी दो कदम पीछे की ओर हट गये। उनके हटते ही आसपास खड़े कुछ लोग भी दो चार कदम पीछे हो गये। फलस्वरूप मर्दासियों की कतार गड़बड़ा गयी। बस किसान समिति बस इसी मौके की तलाश में थी। राधावल्लभ चीख उठा, 'इंकिलाब' एक लंबी 'जि दा बा द'' आवाज के साथ जैसे कि स्लोगन खत्म होते ही दम फूलने लगा किसान समिति तकरीबन एक जुलूस की शक्ल में आगे बढ़ी मेड़ों पर दौड़ते हुए पीछे हटने लगी। इसका सुराग पाते ही राधावल्लभ ने फिर से स्लोगन की- इ न क ला ब।''

पर अचानक ठिठक कर उन्हें रुक जाना पड़ा। मर्दासिया लोगों ने अपने पीछे देखा कि एक टीले के ऊपर तीन मजदूर तीन 'चियाड़ि' (धनुष बाण) ताने खड़े हैं राधावल्लभ की ओर। बुद्धिमान चीख पड़ा, ''खबरदार।' हृषिकेश ने घूमकर अपने दल के लोगों से बोला, 'धनुष तान लो, धनुष तान लो।' पर किसान समिति को शायद धनुष निकालने का समय नहीं मिल पाया था। राधावल्लभ और हृषिकेश दोनों ने ही पीछे लौटकर परख लिया था कि उनके दल के धनुर्धर लोग तैयार हैं कि नहीं। पर कहीं कोई चियाड़ि दिखाई नहीं दिया। उधर मर्दासियों के चियाड़ि में तीर चमकने लगा था। एकमात्र उपाय यही था कि सब जान झपट कर तीर चलने के पहले ही उन्हें काबू कर लें। बुद्धिमान ने हुंकार भरी ' इ न कि ला ब।'' किसान समिति के लोग नये उत्साह के साथ झपटते ही अबकी बार टूटे बाँध और बाढ़ के जल की तरह झपटे जैसे पल भर में रिसाव हो जायगा तीन धनुषों से तीर छूटे नहीं कि एक बार में तीन आदमी मारे जायेंगे। उनके पास पहुँचने पहुँचते न जाने

कितनी बार धनुष चलेगा और न जाने कितने लोग मारे जायेंगे आलविश भगत पीछे से दौड़कर सामने आ गया। मदेसियो की ओर देखकर दोनों हाथ ऊपर उठाकर खड़ा हो गया। किसान समिति के लोग भी फ़ौरन खड़े हो गये थे, सीना तानकर आलविश की तरह।

जब यहाँ भिड़न्त की पूरी तैयारी थी उस समय आलविश की आखें जैसे और बड़ी-बड़ी हो गयी थीं। माथे की लकीर और भी गहरी हो गयी थी। बबरी बाल गुच्छा-गुच्छा होकर कंधे पर झूल रहा था। वह मुँह फाड़े खड़ा था। इससे उसके बड़े बड़े दाँत, लाल जीभ बाहर को निकल गये थे। जो लोग धनुष ताने खड़े थे, वे चीख उठे, "भगत, हट जाओ सामने से।" पर भगत हटा नहीं। कुछ बोला भी नहीं। आलविश उराँव उनके गोत्र के एक अंश का पुरोहित है। पर पुरोहित तो आखिर पुरोहित ही होता है। भगत तो भगत ही है। किसान समिति के होने पर भी भगत भगत ही है। लाल झंडा होने पर भी वह भगत है। राधावल्लभ ने बुद्धिमान को दाँत पीसकर कहा, "बुद्धिमान स्लोगन मत दो।" धनुष वाले भगत पर तीर छोड़ने की आनाकानी कर रहे हैं। एकदम आमने-सामने। भगत ही मारा जायगा। अभी स्लोगन देने पर उन्हें धनुष चलाने का बहाना मिल जायगा। पर हृषिकेश और राधावल्लभ यह भी जानते हैं कि अगर ये लोग धनुष चला देंगे तो तीन के बदले में तीस मारे जायेंगे। तब उन्हें काबू करना सम्भव नहीं रहेगा। फिर किसान समिति वाले जिस तरह किनारे में खड़े हैं, तीर छूटते ही तीन आदमी मारे जायेंगे। सामने-सामने खड़े होकर तीर या गोली लगने पर कोई भी हो सामने की ओर ही भागता है। पर खड़े खड़े ही एक आदमी मारा जाये तो पूरा का पूरा दल पीछे की ओर ही भागता है। तब एक के बाद एक गिरते जायेंगे। राधावल्लभ और हृषिकेश ने अपनी छाती और माथे की नस की धड़कन से जैसे हिसाब लगा लिया कि दो तीन आदमियों के मारे जाने से जो वे जीत सकते थे, अभी न जाने कितनों की मृत्यु से वह हारना पड़ेगा। छाती की एक-एक धड़कन के साथ एक-एक लोग मारे जा रहे हैं।

पर आलविश को थोड़ा बहुत सुराग मिल गया। वह अपने उराँव स्वभाव से समझ गया कि तीर चलाने का समय टल गया है। इसके बाद तीर चलाया नहीं जायेगा। पर दल धनुष झुका नहीं पा रहा है क्योंकि इससे उनकी हार प्रमाणित हो जायेगी। आलविश फ़ौरन मदेसियों की ओर से घूम गया। दोनों हाथ उठाकर किसान समिति के लोगों को चीख-चीखकर बोला, "बैठ जाओ, सब कोई बैठ जाओ।" राधावल्लभ और हृषिकेश सबसे पहले बैठ गये। पीछे से खींच कर बुद्धिमान को भी बिठा दिया। किसान समिति के लोग अचकचा कर बैठ गये—सिर्फ आलविश को छोड़कर।

38

किसान मजदूर : एक संग्राम

मैदान में सुहास अकेला ही खड़ा था। फिलहाल रोपाई हुए धान के खेत में अभी घुटने भर कीचड़ था। धान के पौधे कीचड़ में धंसे हुए थे। इतने सारे लोगों के क़दमों ने इस खेत को इतनी बुरी तरह रौंदा था कि मिट्टी के भीतर का पानी ऊपर को आ गया था। उस कीचड़ सने पानी में कुछ धान के पौधे तैर रहे थे।

सर्वे के लिए लोहे की चेन लम्बाई में पड़ी हुई थी। जो कि इधर सब्ज़ खेत में होते हुए कीचड़ के अंदर से होते हुए हाथी रास्ते तक फैला था।

बड़े मेड़ के नीचे खड़ा होकर सुहास ज़मीन नापने वाले चेन को समेटने में व्यस्त हो गया था। इसके बाद बीच में चिल्लाकर दो आदमियों के घुस पड़ने के बाद जो शोर शुरू हुआ– उसे खड़ा-खड़ा देखने के अलावा उसके लिए करने को कुछ न रहा। पर सिनेमा की तरह देखकर भी सुहास ठीक तरह से समझ नहीं सका था कि क्या वे बूढ़े सयाल को देखकर ही धनुष-तीर झुका लिये थे, या फिर डर दिखाने के लिए। चलाने के लिए उठाये ही न थे, यह समझ नहीं पा रहा था सुहास।

आज से करीब दसेक साल पहले धनुष, नाथान, आदिवासी, ज़मीन, लड़ाई, टांगा, तीर इन सबके बारे में सुहास जो कुछ सुना था, सोचता था, वही सब आज उसके साथ गुजरा था। घट रहा था। पर इस घटना का एक ही केन्द्र बिन्दु होने पर भी उसे अतीत की, वह भी सिर्फ दसेक बरस पहले की, कोई झलक उसके मन में कहीं भी नहीं उभरी। इतने सारे आदिवासियों की भीड़ में भी नहीं।

तो शायद दसेक बरस बाद स्मृति में आज की इस घटना की याद फिर से उभर आयेगी। स्मृति में इस भीड़ को पहचाना जायगा–आदिवासियों की इस लड़ाई को पहचाना जायेगा- ज़मीन की लड़ाई। दस बरस पुराने सपने और दस बरस बाद की घटने वाली घटना को छोड़ फिलहाल सुहास बायीं ओर देख रहा था। देखा कि हाथी-रास्ते पर से विनोद बाबू, अनाथ बाबू, प्रियनाथ बाबू उसकी ओर चले आ रहे थे। सुहास आगे बढ़ गया, कूदकर मेड़ पर उठ गया। फिर उनकी ओर चलने लगा। दूर से ही विनोद बाबू ने पूछा, "सर, आपको तो कुछ नहीं हुआ ? ठीक तो हैं न आप ?"

"नहीं, कुछ हुआ तो नहीं। पर आप लोगों ने चेन डाली थी, पर इतनी देर तक थे कहां ?"

"सर, जिस तरह का लड़ाई-झगड़ा हो रहा था, हमारी तो हिम्मत ही नहीं पड़ी।"

"नहीं, अपने लिए नहीं कह रहा। पर चेन तो समेटना होगा आप लोगों को। और मेरी समझ में नहीं आ रहा है विनोद बाबू कि इस जमीन पर चेन डालने को किसने कहा था ?"

"क्यों सर, हम तो एक के बाद एक नापते चल रहे थे।"

"हाँ, वह तो कर ही रहे थे। पर यह तो बार्डर लाइन नहीं है, यह तो एकदम से वेस्टेड लैंड के बीच का भाग है। हम तो वेस्टेड लैंड की नापजोख कर नहीं रहे। नाप की बात भी नहीं है।"

"हमें तो पता नहीं सर ! क्यों प्रियनाथ, तुम ?" विनोद बाबू ने कहा।

प्रियनाथ ने कहा, "हम तो दाग-नंबर पहचानते नहीं हैं सर। इस लाइन से जैसे चेन खींच रहे थे वैसे ही खींच रहे थे।"

अनाथ लपककर चेन समेटने लगा। सुहास ने उन दोनों से मुखातिब होकर कहा, "देखिए, इस तरह की भूल दोबारा नहीं होने पाये। इस छोटी सी बात को लेकर इतना बड़ा फसाद हो गया।"

विनोद बाबू थोड़ा सा चुप रहकर बोले, 'आप कुछ कह रहे हैं सर ...'

"नहीं, अगर वैसा कुछ करना होता तो कहता। पर इस तरह की भूल तो खतरे से खाली नहीं ..."

"हाँ चलिये।"

आगे-आगे सुहास और पीछे-पीछे विनोद बाबू लौटने लगे। तभी पीछे से 'सर सर' की आवाजें सुनाई पड़ीं। सुहास खड़ा हो गया। राधावल्लभ, वह बूढ़ा सान्याल, हाफ पैंट पहने एक आदमी, शायद बागान का रहा होगा और उसके पीछे वीरेन बाबू, ऊपर मेड़ पर से उतरकर इधर ही आ रहे थे। करीब आकर राधावल्लभ ने कहा, "सर, हम तो आपके लिये ही यहाँ बैठे हुए हैं।"

"हमारे लिये, वह किसलिये ..."

"वो, तभी आप कुछ कह रहे थे न सर, उसमें एक मिसअण्डरस्टैंडिंग, यानी, वे दोनों, यानी हरिकेश और बुद्धिमान।" वीरेन बाबू ने इतना ही कहा। सुहास समझ गया कि उन लोगों की लड़ाई समाप्ति की घोषणा करने ये आये हैं। सरकारी अफसर की भाषा में कंप्रोमाइज कर लिया है। वरना जीत-हार का फ़ैसला उनके खुद के ऊपर ही निर्भर करता था।

सुहास ने कहा, 'हम तो अपना चेन वापस लेने आये थे। अभी कैंप में वापस जायेंगे। क्या आप लोगों का मेल-जोल हो गया ..."

फागू थोड़ा-सा हँसकर बोला, "मेल-जोल तो होना होगा। किसान और मजदूर का एक ही पार्टी, एक झंडा। किसान और मजदूर का एका ही ..."

फागू को रोककर भगत हाथी रास्ते की ओर देखता हुआ बोला, "अरे एसएलओ साहब आ गये, एसएलओ।"

सब उधर मुड़कर देखने लगे

विनोद बाबू ने कहा, "तो फिर हम चलें सर। आप ..."

सुहास खड़ा रहा। एसएलओ आ गये हैं तो फिर वह जा कैसे सकता है

39
यह कौन है—किसान या मज़दूर ?

बड़े गेट पर से होते हुए ... नाथ राय यानी एमएलए साहब आ रहे थे—धोती कुर्ते में सजे धजे एमएलए साहब। उनके साथ में कोई दूसरा नहीं था। पीछे पीछे गयानाथ था। गयानाथ के पीछे यहां सब ... की कुर्सी सिर पर उल्टा लाद बाघारू चला आ रहा था।

एमएलए साहब को देखते ही ऊपर मिलन में आदमी थे सभी उठकर खड़े हो गये। मारपीट होते होते भी न हो पाने के कारण जो एक तनाव थी, वह भी खत्म हो गयी थी। उनके निकट आते ही गयानाथ ने पीछे मुड़ के बाघारू से कहा—जा पहले जाकर कुर्सी लगा दे।

बाघारू मेड़ पर से कूदकर नीचे आ गया। यहां गेट था, धान के खेत पर। फिर एक मेड़ पर से होता हुआ वह मेड़ पर से भीड़ के पास पहुंच गया। बाघारू भीड़ के पीछे से घुसा। भीड़ तो एमएलए साहब की ओर मुंह किये खड़ी थी। बाघारू पीछे से सिर पर कुर्सी लिये भीड़ को एक तरह से ठेलते हुए एकदम सामने की ओर गया। एमएलए के पहुंचने से पहले। उस भीड़ के बीच में बाघारू जिसे भी ठेलता, वह ... होता हुआ चारों ओर देखता। दूसरे की जगह बाघारू को ... नहीं पाती। पर वह देख रहा था कि एमएलए उधर से ऊपर की तरफ बढ़ने लगे थे। बाघारू अब तक अपने कुर्सी लादे सिर को बचाने का प्रयास कर रहा था भीड़ के बीच। स्वभावतः भीड़ में मिलने से कुर्सी लोगों के सिर से ... सकती थी। पर इस समय चूंकि दुनिया 'एमएलए' को लेकर प्राय पहचान हो जाता था, तब उसके लिए और कोई उपाय बचा नहीं। वह माथे पर कुर्सी उठाए उठाए पीछे से घुस पड़ा। अरे अरे क्या है रे, अरे अरे करते करते एक रास्ता खुला हो जाता। पर साथ ही साथ सब कुर्सी के लिए राह भी दे देते। लोग पीछे कुर्सी की ओर एक बार और सामने एमएलए की ओर देख लेते। बाघारू जब दो एक हाथ की दूरी पर था, तब एमएलए साहब खड़े हो गये थे और बाघारू ने कुर्सी को सिर पर से उतार कर हड़बड़ी में एमएलए के सामने रख दिया। ऐसा करते समय वह सिर के बल थोड़ा लड़खड़ा गया था। एमएलए घबराकर दो कदम पीछे हट गये।

'साला बैल कहीं का। कुर्सी पर मानुस बैठेगा या मानुस पर कुर्सी बैठेगा ?' कुर्सी के हत्थे पर हाथ टेककर एमएलए साहब खड़े थे और बाघारू ने जहां खड़े होकर कुर्सी नीचे उतारी थी वह वहीं खड़ा था लंगोटा पहने। बाघारू काफी लम्बा-चौड़ा डील डौल वाला। अगर बाघारू छोटे क़द काठी का होता या कम से कम बीमार मरियल होता या भीड़ के बीच खड़े होने पर भी अगर अलग से दिखायी न देता बल्कि वह भीड़ में मिल जाता तो शायद उस पर किसी की नजर न जाती। पर

यह बाघारू तो एक पुराने शाल वृक्ष के मानिंद था। उसे अपने साँवले बदन से सबको ढँकते हुए ही उसे खड़ा होना पड़ता था एक छाते की तरह। यहा तक कि उसकी लंगोटी भी उसके बदन से ऐसे मेल खाती थी कि सचमुच ऐसा लगता था जैसे बाघारू एक वृक्ष ही है। किसान-मज़दूरों के समावेश मे भी बाघारू अलग दिखता था। यहां चाय-बागान के मज़दूर थे। वे हाफ पैंट और बनियान पहने थे। कोई-कोई नायलोन की बनियान पहने हुए था। सिर पर तेल और कंघा किये हुए काले काले बाल। कुछ लोग धोती पहने थे। जो लोग वयस्क थे उनकी खाकी हाफ पैंट या धोती औरों से कुछ साफ नज़र आती थी। यहाँ किसान समिति के सब हृषिकेश से नहीं थे, यहा तक कि बुद्धिमान जैसे लोग भी नही थे--सजीले हृषिकेश की तरह। आलविश भी था—पर वह भी लंगोटी ही पहनता था, छोटी-सी। पर उसके भी तेल चुपड़े लम्बे बाल कंधे पर छितराये होते थे। पर बाघारू की चमड़ी भी पेड़ की छाल की तरह, चेहरा, आँखें भावशून्य, सिर के बाल का भी कोई अलग रंग नही, सच्चाई यहा नहीं चलती। यहाँ पर क़तई नही चल सकती।

"हे बाघारू, अरे हट जा जरा।"

"अरे चट्टान, हट जाओ भाई।"

"अरे..."

बाघारू को पता नहीं चला। तब तक एमएलए बिल्कुल उसके सामने पहुंच चुके थे। इस तरह एक दीवार जैसे आदमी को खड़ा देखकर वह दो बार गला खखार चुके थे। पर कुछ कह नहीं पा रहे थे। गयानाथ पीछे से एमएलए के पास आकर हाथ से नीचे खेत की ओर दिखाकर बाघारू से बोले, "अरे वहा देख बैल चर रहा है, और तू यहां खड़ा-खडा क्या कर रहा है ?"

सुनते ही बाघारू फ़ौरन एमएलए के पास से लपकते हुए गयानाथ के पीछे से और एक-दो आदमियों को ठेल ठाल कर नीचे दौड़ता चला गया। उसकी कद-काठी ही कुछ ऐसी है कि उसे ज़्यादा जगह की आवश्यकता नहीं होती।

उसके चले जाने के बाद इतने सारे लोगों के होते हुए भी जगह कुछ पल के लिए ख़ाली-ख़ाली लगने लगी।

उसी अवसर पर सुहास एमएलए के सामने आकर नमस्कार करते हुए बोला, "मैं इस इलाके के चार्ज में हूं।"

"अच्छा, अच्छा, आप लोगों ने हाट में कैंप लगाया है न ? देखकर आ रहा हूं। यहां कोई प्रॉब्लम तो नहीं है ? सुना है कि कोई मारपीट..."

सुहास फ़ौरन बोला, "जी नहीं, हमें कोई प्रॉब्लम नहीं है।" फिर सबकी ओर एक बार देखकर बोला, "अगर इनको कुछ हो तो ये कहेंगे। तो फिर मैं चलता हूं। हमारे कैंप के लोग इंतज़ार कर रहे हैं। उन्हें जाकर फिर खाना वाना बनाना है।"

"हाँ-हाँ, एमएलए घड़ी पर नज़र डाली, फिर बोले--"दो तो बजने ही वाले

है, मै भी तो बैठ नही पाऊंगा। हमें फूलबाडी बस्ती मे जाना है। बीच जंगल में है। फौरन जाना है। वहां एक कलवर्ट को लेकर गोलमाल है।"

"बागान की जीप को खबर कर दी है ?" बीरेन बाबू ने कहा।

"फूलबाडी बस्ती तक तो जीप भी नही जाती। नदी है, पदल ही जाना होगा। और आपकी जीप ज्यादा इस्तेमाल करेंगे तो फिर पैदल चलना भूल ही जायेंगे। फिर आप लोग जब जीप नही देंगे, तब " एमएलए साहब हंसने लगे। सुहास को शक हुआ कि दरअसल यह आदमी बागान की जीप की तलाश म ही आया था। कम-से-कम नदी तक तो जा ही सकता था। पर अभी तो फिर जीप भी ली नही जा सकती। जब एमएलए हैं, तो जीप लेगे नहीं कैसे "

"पर आप लोग हमारे यहा कैंप मे खाना वाना बनाकर हाथ जलायेंगे, यह तो हमारी बदनामी होगी।"

"नहीं, नही सर, ठीक है। अच्छा, तो म चलता हूं। नमस्कार।"

"हां हां नमस्कार।"

अबकी बार एमएलए ने सीधा देखते हुए कहा, "सुनिये, हमारी सरकार की अमलदारी म कम-से-कम बटाईगिरी रिकॉर्ड बनवाने के लिए इस सेटलमेंट की व्यवस्था की गयी है। जलपाइगुडी मे तिस्ता बैरेज के लिये इस इलाके का सेटलमेंट होना एकदम जरूरी है। फिलहाल बटाईगिरी का मतलब, जो बँटाइगीर है वह तो नही भी हो सकता है। पर खेती कौन कर रहा है, उसका रिकार्ड होना ही चाहिये। वह चाहे अनुमति लेकर हो, तो भी उसका रिकॉर्ड जरूरी है। पर इन सबको लेकर तरह-तरह के झमेले खड़े करने की कोशिश हो रही है। अभी अगर हमारे बीच लड़ाई-झगडा है, तो इसका निपटारा बाद मे हो जायेगा। कर दिया जायेगा। पर अभी आप लोग किसी तरह का गोलमाल न करें। क्यो राधावल्लभ "

राधावल्लभ हसते हुए, आँखे मूँदे, गर्दन सीधा किये खडे थे। छूटते ही उन्होने कहा, "दरअसल बात यह है कि आप पधारे है, यह तो हमारे लिये सौभाग्य की बात है। पर आप तो यहां रुक नही सकते। एक दिन आइए जरूर हमारे यहां। बैठकर हमारी तमाम समस्याएं सुने और फैसला भी करें तो यहाँ के गोलमाल, मारपीट ख़त्म हो जायेंगे।"

"हां हॉ, क्या नही, जरूर। तो फिर आप लोग अपनी सुविधानुसार एक दिन तय कीजिये, जब हमारा सेसन बंद होगा, तभी किसी दिन बैठा जाये।"

"हमे तो सर रोज ही सुविधा है। आप ही समय निकालकर अपनी सुविधा से आने की कृपा करें। पहले से खबर कर दे और पूरा एक दिन और एक रात यहाँ विराजे। आये और गये ऐसा नही होगा सर।"

"अच्छा अच्छा, वो देखा जायेगा। हम पहले से ही ख़बर कर देंगे।" कुर्सी के हाथ से एमएलए साहब ने हाथ उठाया—"क्यो फागू, हमे तो आज फूलबाडी भी जाना है।" गयानाथ पास से हटकर नीचे आ गया।

"ठीक बात है।" फागू सिर हिला कर बोला।

"पर दरअसल आपको शायद एक बात जान लेना बेहतर होगा, सर ।" राधावल्लभ ने कहा था।

"हाँ-हाँ कहिये, जरूर कहिये।" एमएलए साहब एक कदम आगे बढ़ आये थे।

"दरअसल बात बागान की, चाय बागान की है, कंपनी कौन-सा अफसर रखेगी, उसका क्या काम होगा, वह सब तो हमारे सोच विचार का काम नहीं है, पर एक बात आप कंपनी से जरूर साफ कर लीजियेगा कि क्या इस्टेट ऑफिसर का काम यूनियनबाजी होना है ?"

वीरेन बाबू सामने ही थे, एमएलए के पास। वे अचानक दबे स्वर में कह उठे—"हाईली आब्जेक्शनेबल। फागू ?"

फागू समझ नहीं पाया। उसने सिर हिला दिया। एमएलए साहब ऊँची आवाज में बोले, "वह तो राधावल्लभ दा, यूनियन ही समझेगा। आप-हम तो कुछ कह नहीं सकते। पर इसके चलते अगर हमारा नुकसान होता है तो इसके लिये यूनियन के साथ बैठना पड़ेगा। आप लोग भी खुद बैठ सकते हैं। या फिर हम जिस दिन आयेंगे, चाहें तो उस दिन भी इस विषय पर बात कर सकते हैं ? क्या ? क्या ख्याल है आपका ?" थोड़ा-सा रुककर फिर कहने लगे, "पर आज तो मैं किसी तरह से रुक नहीं पाऊँगा। अभी से निकलने पर भी फूलवाड़ी तक पहुँचते पहुँचते शाम हो जायेगी।"

"हाँ-हाँ, और देर करना ठीक नहीं होगा।" राधावल्लभ का कथन सब भीड़ के मनोभाव को ही प्रकट कर रहा था। यहाँ का जो अनुभव था, इसलिए कोई भी इस बात का विरोध नहीं कर सकता था।

40
बाघारू का जीप पर सवार होना

एमएलए साहब को विदा करने के लिये बहुत-से लोग आगे बढ़ गये थे। राधावल्लभ बड़े मेड़ पर से उतर आया था। साथ में भगन। हृषिकेश उसी बड़े मेड़ पर खड़ा हो गया था। राधावल्लभ के साथ वह आगे नहीं बढ़ा। फागू एमएलए साहब के साथ ही चल रहा था। वीरेन बाबू थोड़ा पीछे-पीछे आ रहे थे। फागू उन्हें समझा रहा था, "आप कुछ सोचिये मत। यह तो हमारे घर का मामला है, घर पर ही फैसला होगा। क्यों राधा दा ?"

राधावल्लभ ने पीछे से जवाब दिया, "तुम सब तो समझदारों जैसी बातें करते हो, मुश्किल तो यही है। तुम्हें जो समझा दिया जाता है, वही समझ लेते हो।" यह बात सुनकर एमएलए साहब मुड़कर राधावल्लभ की ओर देखने लगे और हँसने लगे।

फागू सिर हिलाकर शह देता हुआ हँसने लगा, "ई तो ठीक बात है।"

एमएलए साहब तभी फागू की बाँह दबाकर बोले, "फागू कॉमरेड सुनो। सब बात तो ठीक है। पर तुम्हें यह सोचना है कि तुम्हारी पार्टी के लिये कौन-सी बात

ठीक है। वही सबसे वही ठीक होगी।"

"हाँ सरकार, जरूर।" फागू ने सिर हिलाया। एमएलए साहब के साथ सभी लोग एक साथ हँस पड़े।

"अरे नहीं, नहीं, भाइयो सुनो, आज अगर हमारे पार्टी के बीच ही कोई दंगा फसाद, मारपीट, खून खराबा हो जाता है, पुलिस आती है, अखबारों में खबर छपती, उससे तो हमारी सरकार की बदनामी हो जाती न?"

"जरूर। इस रिषि का माथा बहुत गरम है। पता नहीं कहाँ से लाठी उठाये जिंदाबाद जिंदाबाद करते चला आया एकदम। अरे बाबा!" फागू कहते-कहते हँसता हुआ रुक गया।

"हाँ हाँ जरूर। इसमें हृषिकेश का ही कसूर है हृषिकेश..." एमएलए पीछे मुड़कर देखा हृषिकेश नहीं था। राधावल्लभ ने हँस दिया, "अरे कुछ मत पूछिये साहब। बात बात में लाठी उठा लेता है। और दूसरी ओर हमारे फागू सब कुछ में 'ठीक बात' इन्होंने तो समझा दिया, वही समझ गये।" राधावल्लभ वीरेन बाबू की तरफ ताकने लगे। एमएलए ने आँखें घुमा लीं जैसे वे उस इशारे को समझना नहीं चाहते।

वे सभी रास्ते की चढ़ाई पर चल रहे थे। राधावल्लभ वगैरह रुक गये "तो फिर हम यहीं से रुकते हैं सर, तो आप आ ही गये हैं न, अभी सब बात..."

"हाँ हाँ ठीक है, आपलोग जाइये। माथा ठंडा रखियेगा। हम आने से पहले पता देंगे।"

"आप क्या अकेले ही जायेंगे जंगल में?" राधावल्लभ ने पीछे से पूछा। एमएलए साहब बिना मुड़े हाथ उठाकर बोले, "नहीं-नहीं, कोई साथ जायेगा"—एमएलए तब तक फागू की बाँह पकड़े हुए थे। इससे लगता था कि वह एमएलए के साथ और कुछ दूर तक चलें ऐसा चाहते हैं वो। हाथ वे न छोड़ें तो चलने के सिवा और चारा क्या है? वीरेन बाबू थोड़ा पीछे पीछे चल रहे थे। पर राधावल्लभ वगैरह के चले जाने के बाद, ऐसा लगता था जैसे वे इस दल के साथ ही आ रहे हैं।

वे फूलबाड़ी जाने के रास्ते की ओर बढ़ रहे थे। जो बड़ा सा रास्ता जंगल के अन्दर से होता हुआ फूलबाड़ी गया था, उसी ओर वे चल रहे थे। रास्ते के ठीक मुहाने पर खड़ी जीप दूर से ही नजर आ रही थी- आनंदपुर की जीप। गयानाथ जोतदार पास ही खड़ा था। वह एमएलए को आता देख दो कदम आगे बढ़ आया था।

मोड़, जीप और गयानाथ के करीब आते ही पीछे से वीरेन बाबू बोले "क्या फागू, बागान की जीप तो खड़ी ही है।"

फागू फौरन मुड़कर वीरेन बाबू से बोला, "हाँ कामरेड को पहुँचा दो फूलबाड़ी बस्ती।" उसके मुड़ने से उसकी बाँह एमएलए के हाथ से फिसल गयी।

वीरेन बाबू थोड़ा-सा हँसकर बोले, "तो फिर बहादुर को बुलाओ।"

बहादुर जीप के पास ही जमीन पर बैठा था। इसी लिए दिखायी नहीं दे रहा

था। उसके उठकर खडे होते ही वीरेन बाबू ने कहा, "वीरेन बाबू को फूलबाड़ी तक छोड दो।"

एमएलए साहेब ने कहा, "अरे, बस थाडी ही दूर है। पैदल चले जायगे। फिर बस्ती तक तो गाडी जा नहीं सकती। बीच मे नदी है।"

गयानाथ जीप के सामने वाली सीट की ओर इशारा करके बोला "बैठिये, बैठिये, नदी तक तो गाडी मे चले जाइये, उसके बाद नदी पार करा देगा ये बाघारू ।"

जब हाथ से इशारा किया तो ऐसा लगा जैसे कि गयानाथ ही गाडी का मालिक हो। जब बोले तो ऐसा लगा जैसे एमएलए के मालिक और जब बाघारू का पुकारा तो लगा जैसे कि वही बाघारू का मालिक हो।

गाडी स्टार्ट होकर जब रास्ते के सामने आयी तो वीरेन बाबू सामने की सीट दिखाकर बोले, "लीजिये बैठिये। फागू भी जा रहा है क्या ?"

"हाँ जरूर।" एमएलए जीप मे बैठकर गोद मे ब्रीफकेस रखकर थोडा सा दाहिनी ओर खिसककर जगह बनाने लगे थे। फागू सामने की सीट पर चढ गया। गयानाथ आगे बढकर बोला, "मेरा आदमी जा रहा है। आपको नदी पार कराके फूलबाडी पहुचाकर वापस आयेगा।"

एमएलए साहब ने बाघारू को ठीक से देखा कि नहीं पता नहीं चला। गयानाथ ने कहा, "अरे बाघारू, खडा क्या है ? पीछे चढ जा फौरन।"

जीप तब तक स्टार्ट होकर थरथरा रही थी। बाघारू इतना लम्बा था कि वह जमीन पर से ही पाव उठाकर जीप के अन्दर घुस सकता था। पर पाव की लम्बाई और जीप की ऊचाई का उसको अनुभव नही था। इससे ऐसा लगा कि जैसे गाडी एक पहाड हो, और उसमे चढने के लिये बाघारू पीछे की लोहे के रॉड पर दोनो हाथो से शरीर का बोझ डालकर भीतर उतर जाना चाहता था, पर ऐसा करने पर उसका माथा गाडी की छत मे टकरा गया। और ठीक उसी समय गाडी के चल पडने से बाघारू पीछे गेट के ऊपर सिर के बल गिर गया। पर गिरते ही फौरन सँभलकर हाथ के बल उठकर, दोनो पाव ऊपर टिका लिया। फिर दाहिने घुटने को रेलिंग के ऊपर फँसाने मे सफल हो गया। वह रेलिंग के ऊपर बैठ गया। बायाँ पाव जमीन मे घिसटता गया। तभी वह जीप के अन्दर गिर गया। उसका लबा, मासल, नगा, रोम विहीन बायाँ पाँव जीप के पीछे शून्य मे काफी देर तक झूलता रहा। उसका मिट्टी से पुता, ऊबड-खाबड़ रेंगते हुए हुकवाम जैसा भग ततुआ टगा था वहाँ–ठीक एकपोस्टर की तरह। फिर पाव को वहाँ वैसे रहना ही चाहिये था, रहा। अपने को खींच-मरोडकर अन्दर घुसाने जा रहा था। जब तक उसका सिर सामने सीट के पीछे जाकर सट नही गया, तब तक बाघारू बराबर कोशिश में जुटा रहा। बरसाती जगली रास्ते की गड्ढे-खदक फलाँगती, हिचकोले खाती, धचकाती, मुड़ती-घूमती हुई जीप पहाडी ढलान पर लुढ़कते चट्टान-सी तालहीन चाल से भागी जा रही थी। उसमे

बाघारू के इस लोटपोट, धचकने का कोई पता ही नहीं चल रहा था। सिर्फ़ बहादुर एक बार कनखियो से देख लिया करता था। जीप की इतनी-सी छोटी जगह पर अपने इतने विशाल शरीर को ठेल-ठाल कर कभी सीधा हो तो कभी उकडूं हो, कभी औंधे हो, घुटने और हथेलियों पर उचककर उठक-बैठक करने के बाद ही कहीं बाघारू फिर से मुड़कर बाहर की ओर देखने मे सफल हो गया था -ऐसे ही काफ़ी मेहनत-मसक्कत का काम, फिर कौशल का कमाल, उस पर जीप के धचके उसके लिये सँभाले नहीं जा रहा था। आखिरकार जीप के बीच में बैठ, पीछे की ओर मुड़, पीछे जंगल की ओर देख पाने में सफल हो पाया था बाघारू।

इस तरह जगल को कभी नहीं देखा था उसने। हमेशा जंगल बाघारू के सामने रहता था। फिर बाघारू जगल के अन्दर रहा करता था। फिर उसके चारों ओर जंगल ही जंगल, ऊपर-नीचे, दाये-बायें, आगे-पीछे, आखिरकार जंगल उसके शरीर के साथ मिल जाता था। ऐसा बराबर ही होता आया था। पर पीछे बैठकर जंगल के ऊबड़-खाबड़ सिर पैर, कुछ भी तो देख नही पा रहा था वह। उस ओट से दोनो ओर जंगल तेज़ी से गुजरते हुए रास्ता बनाये जा रहा था। जगल पहाड़ की तरह स्थिर था, रहता था अविचल और बाघारू उसमे घुसता जा रहा था। जीप के पीछे वही स्थिर जंगल उसके दोनो ओर से सरकता जा रहा था—जैसे जगल के अन्दर वह घुस नहीं रहा था—जंगल के भीतर यह रास्ता ही सेंध मारता जा रहा था। पीछे जहाँ तक नज़र जाती थी यह काला रास्ता लम्बे से लम्बा होता जा रहा था और लम्बा। बाघारू कुछ अधिक ही लम्बा था शायद इसलिये उसकी आँखे सामने फाँक पर जाकर ठिठक जाती थीं। इसी से वह पेड़ों के शिखर देख नहीं पा रहा था। सिर्फ इतना ही नहीं, उसे लगता था जैसे इस जंगल के भीतर से एक पाताल के जगल मे वह घुस गया है। पाताल जैसे जगल में—जहाँ जंगल का ओर-छोर नजर नहीं आता, सिर्फ़ घनापन ही नज़र आता था।

यह जंगल क्या बाघारू बमन का जंगल है ? यहाँ का तो कुछ भी वह पहचान नहीं पा रहा था। कभी वह जंगल मे रहा था ऐसा भी तो उसे लग नहीं रहा था। जबकि इस बरसाती जंगल में उसकी आँख पर पट्टी बाँधकर छोड दिया जाता तो हो सकता है कि जगल के वृक्ष-लता मे उसका पाँव उलझ सकता था। पर किसी बड़े-से पुराने पेड़ से उसकी टक्कर कतई नही होती। पर अभी इस जीप पर सवार होकर उसे समझ में नही आ रहा था कि वह किस दिशा से कहाँ, किधर जा रहा था। जीप गाड़ी के पीछे की ओर से, गाड़ी के भीतर धचके खाते, गिरते-पड़ते, हिचकोले खाते, बाघारू इस चिर-परिचित जंगल से अपरिचित हो जाता देखता था, जैसे कि वह देखता है कि तभी तो सब कुछ सामने, उसकी आँखों के सामने होता था। इसी से गाड़ी के रुकते ही पहले फागू छलांग लगाता हुआ और उसके बाद एमएलए के ब्रीफकेस लिये घिसटने-सा उतर जाने के बाद भी बाघारू उतर नहीं पाया। फागू और एमएलए के उतरने का मतलब उसको भी उतरना है। मोटर गाडी की गति से दूरी को

समझते-समझते बाघारू की बोध-शक्ति जाती रही कि इतनी जल्दी क्या फूलबाड़ी के नदी पार में पहुंचा जा सकता है ? यह तो संभव तब है जब जंगल को खींचकर फूलबाड़ी की नदी के पास ले जाया जाये। चारों ओर के वन-जंगल का जो परिचय कम-से-कम बाघारू को कुछ आश्वस्त कर जाता--वह भी तो इस जीप की आड़ में कहीं गुम हो गया था।

बहादुर अचानक गियर बदलकर सॉय से जीप को पीछे ले गया। उस समय जंगल बाघारू के सामने था। कुछ दिखायी न दे पाने पर भी जंगल सामने ही था। जंगल के अन्दर वही घुस रहा था. जंगल स्थिर, अविचल था कम से कम इसका ज्ञान तो उसे वापस आ गया था।

पर दूसरे क्षण बहादुर फिर से एक धक्के के साथ जीप को आगे बढ़ा ले गया। बाघारू सिर के बल गच्चा खा गया। गाड़ी को मोड़कर आनंदपुर वापसी के लिये खड़ा करके बहादुर बगैर मुड़े ही बोला, "उतरो।"

उस समय बाघारू के सामने, कुछ दूरी पर ब्रीफकेस हाथ में लिये एमएलए और फागू खड़े थे। गाड़ी मुड़कर खड़ी होते ही फागू लपक कर सामने सीट पर बैठ गया। पर तब तक बाघारू गाड़ी से उतर न पाया था, कोशिश जारी था। वह, बहादुर की बात सुनते ही हड़बड़ा कर खड़ा हो गया था। पर माथे पर जोरदार ठोकर लगने से फिर अचकचा कर बैठ गया था। फिर घिसटते-घिसटते पीछे की डाल के पास आकर एक पैर उसके बाहर निकाला। पर वह पैर मिट्टी पर रखने से पहले ही गाड़ी सांय से निकल गयी। फागू पीछे मुड़कर 'लाल सलाम' बोला और इधर उधर उचककर देखने लगा। पर एमएलए को देख नहीं पाया, क्योंकि बाघारू तब रास्ता घेरे खड़ा हो चुका था। पीछे से एमएलए ने पुकारा, "चलो भाई, जल्दी से नदी पार करा दो।"

अब जीप नजर नहीं आ रही थी, फिर भी दूर से उसकी घरघराहट सुनायी दे रही थी। हवा में जले पेट्रोल की गंध तैर रही थी। बाघारू चलना शुरू कर दिया। पीछे-पीछे एमएलए। बाघारू ने एक छोटी सी डाल को लाठी बना ली। उससे दोनों ओर की झाड़-झखाड़ को हटाते जाता था। थोड़ा-सा जंगल पार होते ही मैदान आ गया था। मैदान के उस पार नदी थी। और नदी पार होते ही फूलबाड़ी गाँव।

41

माँ का बाघारू को जनम देना, बाघारू का बाघ मारना और एमएलए तरुण एवं बाघारू का प्रथम संलाप को लेकर आदिपर्व का आख़िरी अध्याय

कुछ कदम चलते ही जंगल की खुशबू से सारा शरीर सराबोर हो गया था। झींगुरों की आवाज बढ़ने लगी थी। दोनों एक-दूसरे के सांसों की आवाज सुन पा रहे थे। जैसे इन्हें इस तरह काफ़ी देर तक चलना होगा। जैसा कि जंगल में होता है।

एमएलए ने पीछे से पूछा, "क्यों जी तुम्हारा नाम क्या है ?"

बाघारू ने हाथ की लाठी से सामने के झाड-झखाडो को हटाते हुए कहा, "ई तो बडी सरम की बात है बाबू ?"

"क्या ? क्या शर्म की बात है ?"

"इ जो हमार नाम है ना ?"

"धत् तेरे की ! अरे नाम तो नाम होता है। इसमे शर्म की बात कैसी ?"

"हमार नाम तो लम्बा गीया।"

"लंबा हो गया है मतलब ?"

"जीत्ता टाइम पास हो रहा है, हमार नाम भी सलमलात हुए उतना ही बडा होता जा रहा है। अबत तो इत्ता लम्बा हो गीया है कि इ नाम हमर मे अटाना नही। ढुलढुला रहा है।'

"पर वह नाम क्या है, सुनाओ तो सही।

"कह रहा हूँ एमलिया बाबू। पर तमको हमरा नाम छोटा करना होगा। सभी का नाम छोटा होना। हमरा नाम भी छोटा होना चाही।'

बाघारू खूब नीची आवाज मे बात कर रहा था। और लाठी से सामने का झाड-झखाड हटाते हुए चल रहा था। एमएलए देख रहे थे कि जगल का झाड-झखाड कभी भी बाघारू के कमर से ऊपर नही पहुच पा रहे थे। वह जैसे जगल मे नही, किसी मैदान मे से गुजर रहा था। ऐसी ही चाल थी उसकी आहिस्ता-आहिस्ता। बाघारू की बात जारी रखने के लिये एमएलए ने थोडी-सी अन्यमनस्कता के साथ कहा, "अरे नाम भला किस का छोटा होता है रे ?"

"सबका न छोटा होता बाबू, सिरफ हमरा ही ... बडा है। जइसा कि हमरा देउनिया गयानाथ रायबरमन के नाम छोटा होकर गया जानदार बन गीया।

एमएलए थूककर हसने लगे, "और ?"

"जैसे राधावल्लभ का हो गीया है राधुलिदर।"

एमएलए को अबकी बार जोर से हँसी आ गयी -"और ?"

"ई न आपका नाम भी छोटा होने गीया है, इतने छोटा हो गीया है कि बढेगा भी नाही।"

"कैसे ?"

"आगे था बीरेनदर मोहन राय बरमन, अभी ... गीया 'एमिलिया'।"

"अरे धत्, यह थोडे ही नाम है, यह तो काम है।"

"ऐ, ऐ बाबू, काम न ही नाम होता है न ? हमरा त वही गोलमाल है। हज्जारो काम। हज्जारो नाम। काम भी बदल रहा, नाम भी बदलता जा रहा। एक काम के बाद आउर एक काम, एक नाम के बाद दूसर एक नाम।"

एमएलए बोले, "इसी से तो मानसिला तुम्हे बाघारू ही कहते है।"

बिना मुडे ही चलते-चलते बाघारू ने कहा, "मानसिला त मुझे बाघारू नाम दे के ही खलास हो गीया। मानसिला त जानता नही। हमरा ओर एक नाम भी था। गयानाथ दिया था।"

"गयानाथ नाम दिया था ?"

"हाओ। गयानाथ त हमको नाम दिया था बाबू। गयानाथ हमरा देउनिया, हमरा देउनिया, ज़मीन का देउनिया, जगल का देउनिया, तिस्ता नदी का देउनिया, वोट का देउनिया। जैइसा की एक बार वोट का पहले कहा, ऐ बाघा, वोट में तेरा नाम दे दिया है। त मइने पूछा, किया है हमरा नाम ? त उसने बोला फारेस्टचंद्र बर्मन, याद रखना फॉरेस्ट चंद्र बमन। त मइने मान लिया—फारेस्टचंद्र बर्मन। मन में रखकर वोट दिया - गयानाथ का वोट। पर उसके बाद एक दिन साहेब को देखा—पर मे गमबूट, सिर पर टोप मलीटरी जइसा फारेस्टर साहेब जगल के भीतर चले जा रहा था एक मदमस्त हाथी-सा। त मइने अपना नाम बदलकर फारेस्टर कर लिया, हमरा पक्का नाम लिखा है फारेस्टचंद्र बर्मन। पर मई कहता हू फारेस्टचद्र बमन।" एमाएलए तब तक बाघारू के पीछे-करीब पहुँच चुके थे। उन्होंने उसकी ओर देखा। बाघारू की पीठ और पीछे की तरफ तरह-तरह के दाग उन्हे नजर आये। जैसे पेड़ के तने पर बहुत-से कटे फटे दाग होते है।

"तो फिर तुम्हारा नाम कहाँ जाकर खत्म हुआ ?"

"ऐही न बात है। मइने न हर कहीं नाम रख दिया है—फारेस्टरचद्र बाघारू बर्मन। इहाँ बहुत-से बर्मन मिलेंगे। फारस्टचंद्र भी बहुत मिलेंगे, गय बर्मन भी है, पर बाघारू बर्मन सिरफ एके ही है। पर नाम इत्ना बडा हो गीया है कि ढुलढुला रहा, खुलखुला रहा, खुलखुल जा रहा है।"

"तो भल मानुस, अपने नाम को काट-छाँट कर टाइट कर लो।"

"कियां ?"

"सभी तो तुम्हे बाघारू कहकर बुलाते है। तुम खुद ही अपने नाम को इतना बड़ा कर रहे हो।"

"हो एमेलिया बाबू। तुम भी किया कह रहे ? अजी बाघारू भी त हमरा नाम नहीं था।"

"उसके पहले क्या था ?"

"कहा है तेरा फरेस्टरचंद्र बर्मन। उसका पहले भी एक नाम था।

'उसके पहले भी तुम्हारा नाम था ?"

"था त ? हमरा जनम के पहिले से ही हमरा एक ठो नाम था।"

"जनम से पहले ?"

"हाओ, हाओ। हमरी त एक ठो माँ भी थी।"

"हाँ, वह तो होगी ही।"

"त मइ इहाँ चाय बगान की फैक्टरी के भोंपू जैसा मानुष हूँ। हमरे इहाँ माँ न होने पर भी चलता। माँ न होती त मइ आता कहां से ?"

"तो ठीक है, कहां से आई थीं तुम्हारी मां ?"

"हमरी माँ त गीयानाथ के पास से ही आयी थी। काम-काज करती। जूठन खाती। आउर जंगल में जा के सूखी लकडी, डाल-पत्ता बटोरती। कंद-मूल खोद के लाती। इतने-इतने डाल। इतने-इतने पत्ते। ला के गीयानाथ के खलिहान में जमा करती। दिन नहीं, रात नहीं, ढेर के ढेर लगाती जाती। ढेर पहाड़ जैसा ऊँचा हो जाता त गीयानाथ एक ट्रक लेकर आता आउर बेच देता। तब मइ माँ के पेट में आ गीया था। माँ का पेट बड़ा होने लगा था। सब जान गये कि मइ आ रहा हूँ। आ रहा हूँ। सब साले मुझे कहने लगे थे, 'कुल्हाडी का बच्चा।'"

"तो यहाँ पर तुम्हारा पहला नाम क्या पडा ?"

"उसके पहिले हमरा नाम कहाँ से आता। पर मइ माँ के पेट के अन्दर बड़ा होने लगा था और माँ का पेट बढकर ढाक इतना बडा हो गीया था। अब फटा के तब फटा। उसी टेम एक दम से' 'बाघारू घूमकर एमएलए के सामने खडा हो गया, "हमरी मां को जनम का दर्द होने लगा था। मुझे जनम होना जो था। माँ का पेट फट जाना चाहता था। बाहर आना चाहता था। आउर हमरी मा जमीन पर चीख-चीखकर लोट रही थी, लोटे जा रही थी "

बाघारू अपनी कमर के बराबर जगल को देखे जा रहा था, मानो वहाँ अभी भी उसकी माँ दर्द से तडप रही हो। अपना जन्म होने के समय तक उसका वह देखना जारी था। उससे कुछ हाथ की दूरी पर एमएलए उस जगह की ओर ताक रहे थे।

"मइ त बाहर निकल आया—माँ के पेट से।"

फिर एक बार देखकर उसे चुप होना पडा—"मिट्टी पर पडी थक न से चूर माँ ने नये बच्चे को देखा। मनभर देखकर फुसफुसा कर बोली—"मैं तो ऐसा रोने लगा था कि जगल के पेड़ो पर से पाखी उड गये थे। उस साल वृक्ष से उड़े पंछियों को देखने के लिये ही तो आकाश की ओर ताका था।" एमएलए ने सिर उठाकर ऊपर की ओर देखा, जहाँ से आकाश को तोड़कर वनस्पतियाँ, पेड उतर आयी थीं। बाघारू ने देखा कि पंछी आकाश में उड़ रहे थे, शाल वृक्ष के शिखर डाल पर बैठ रहे थे, फिर उड़ रहे थे। ऊपर उन पंछियों की तीखी आवाजे गूँज रही थीं और नीचे बच्चे के रोने की आवाज़। बाघारू काफ़ी गोपनीय भाषा मे कहता है, "मइ रोता और पाखी चीखते। पाखी चिल्लाते और मइ रोता। पर नाभ कटे तो कैसे ? काहे से बाघारू आँखें नही उठाता। जगल के नीचे नाभ से बँधे एक माँ और एक बच्चा अलग हो गये थे।"

"हमरी माँ के पास एक छोटी-सी कुल्हाडी थी। यही समझो डाल काटने वाली कुल्हाड़ी। दिनभर तो काट कूट चलता रहता। धार भी था बहौत तेज। इस छोटी-सी

कुल्हाडी से ही माँ ने अपनी नाभ काट ली। बस, काट ही त ली।'' बाघारू अपनी छाती ओर बाँहो की आर ताकने लगा। बार-बार ताकता और एमएलए को दिखाता जैसे कि उसका बालिग आर जवान होना उसके नाभ काटने के फौरन बाद की घटना हो। उसके बाद बोला -थोड़ा-सा हँसता हुआ, 'उसी लिये त सभी हमको कहते—कुल्हाडी का काटा। त देखा कैसे जनम से पहले ही मुझे लेकर एक पाला गान बनना शुरू हो गिया था—कुल्हाडी का बच्चा, कुल्हाडी का काटा।'

बाघारू फिर से चलते चलते, जगल हटाते हटात बालने लगा ''रावण की जितनी गाय और भईस, गीयानाथ का भी उतना बडा गोहाल। गीयानाथ का जितना बडा गाय का गोहाल, भइस का गोहाल उतना ही गीयानाथ का मानुष गीयानाथ का जमीन का कट्ठा। यान इस धरती सब के मानुष गीयानाथ का बॅगाइगीर आउर हलवाहा इस धरती की सब गाय और भईस सब गीयानाथ के गोहाल क गाय आर भईस। यानी इस धरती की सब जमीन गीयानाथ की जमीन, सब जगल गीयानाथ का जगल, जगल मे साला जितन भी हाथी और बाघ—सब माल गीयानाथ का।'

''त एक दिन किया हआ कि दोपहर का टम, मइ अपलचाद जगल क बीच से आ रहा था। याद नही कि कहा से आ के कहा से जा रहा था पर कही स आक कही जा रहा था। कही ना कही तो जा ही रहा था। अपलचाद जगल तो हमरे लिये जइसे गीयानाथ का ही खालिहान था। कितना काम इहा पर हो सकता था। इहा गीयानाथ का खेती का जमीन ह। चरने क लिय गाय ह। हलवाह आर बटाइगीर मानुस हे, मइ भी हू। हाँ, याद त नही कि कहा जा रहा था। पर अचानक एक शाल वृक्ष की आड मे—नाहीं, बात ठीक बनी नाहीं। हमर हाथ म त एक गाठदार लाठी था। ऐही समझ लो कि डढ हाथ लबी एक गाठदार लाठी था, इस लाठी से भी छोटी। मइ त चला जा रहा था। आउर एक बार इधर त एक बार उधर झाड झखाड म लाठी चलाता जा रहा था, अइसे, ये ये ''

बाघारू खड-खडे एक बार बायें और एक बार दाये घूमकर नाचन जस अपने को डुला रहा था। ओर उस नाच ताल मे एक बार बाय आर एक बार दाये, 'यूँ, यूं' कहते-कहते हाथ की लाठी स झाड झखाड पर वार कर रहा था, बरसाती जगल के झाड-झखाड की टहनियाँ टूटती जा रही थी लाठी की मार स। पर बाघारू जिस छद से बाये-दाय डोल रहा था, आर उसका हाथ ताल क साथ ऊपर नीच हो रहा था, उसमे एक सगत ही थी, एक लय था, जो टूट नही रहा था। बाघारू अपनी चाल समझाने के लिय जल्दी-जल्दी चलता जा रहा था, एस कि जस कही छूटते ही भाग रहा हो। एमएलए के साथ दूरी बढ़ाता हुआ वह कई पेडो की आड म चला गया। फिर वहाँ जाकर रुक गया। फिर उन पेडो के भीतर एक पड की तरह सीधा खडा हो गया। दोनो पैर फलाये हुए। कमर से छाती तक उठा हुआ। दोना कधा ऊपर मे छाती की आर झुका हुआ। पलभर के लिए बाघारू का पूरा आकार जैसे उस जगल मे, पेडो

पर खुद गया। पर दूसरे पल उसने खूटी हुई मूर्ति को तोड़कर जैसे वह अँगड़ाई लेते हुए झुक कर कहा, "अइसे लाठी मारता हुआ चल रहा था।" बाघारू ने थोड़ा-सा पैर फैलाकर समझाया कि वह चला जा रहा था, "ठीक तभी पीछे से एक ठो बाघ आकर हमरे पीछे एक पाँव और गर्दन पर एक अपना पंजा रख हमरे बगल से मुँह निकाल के खड़ा हो गिया। उसका मुँह खुला हुआ था। उह बाघ का मुह से कितना बदबू आ रहा था।" एमएलए कहानी सुनते-सुनते चलते-चलते रुक गये।

बाघारू ने हाथ से नाक बंद कर ली। फिर दूसरे पल सीधा हो कर बोला—"बाघ हमको ठेल के गिराना चाहता था। आउर मइ दोनो पैर मिट्टी में धँसाकर जोर से खड़े रहने की कोशिश में लगा था। गिरे हुए पत्तों पर पर जइसे फिसल कर मइ गिर न पड़ूँ। गिर जाऊँ तो सर्वनाश हो जाय। फिर इस तरह से यूँ घूमके हमरे इस डेढ़ हाथ की लाठी को बाघ के मुँह में घुसेड़ के दोनों हाथ से ठेलने लगा--कउन किसे गिरा सकता था साला ठेलमठेल चला।" फिर वह पेच खाता हुआ अचानक घूम गया, जैसे सचमुच उसके पीछे पीठ पर बाघ खड़ा हो, और वह उसको दोनो हाथों से लाठी को बाघ के मुह में ठेल रहा हो। जंगल के इस आबोहवा में उसकी यह स्थिर पर प्रचंड वेगवान मूर्ति, दंगा प्रतिमा के साथ राक्षस-सा नजर आ रहा था। पर राक्षस की तरह वह पीठ झुकाने का मौका नहीं पाता। फिर राक्षस की तरह वह छाती दिखाकर भी खड़ा नहीं हो सकता। उसके दोनो तने हुए हाथों पर ही उसके शरीर का तमाम वजन केन्द्रित था, लाठी के थोड़ा-सा ढीला पड़ते ही बाघ उसकी गर्दन पर दाँत गड़ा देता। और दोनो पैर भी जरा थोड़ा-सा भी न टले। "हमको न पता था कि आपलचाँद जंगल की इस जगह की मिट्टी बहुत नरम है। पानी, कीच, गीले, सड़े पत्तों की दलदली जमीन। बाघ तो आपलचाँद की जमीन को नहीं पहचानता था। मै पहचानता था। पर दोनो पाँव फिसल सकता था। आउर फिसल ही गीया तो" इसी से दोनो पैर मजबूती से जमा दिया था। फिर दोनो पाँव की चाप से जमीन काँप रहा था। बाघ मुँह इधर-उधर घुमाने की कोशिश कर रहा था।" बाघारू अपने सर के बालों को झटका, और उसी लहजे मे समझाते हुए कहा, "बाघ त मुँह घुमा रहा था, पर मइ त वइसा कर नाहीं सकता था। मगर घुटना जइसे टूटे जा रहा था। घुटना टूटने जइसा एक आभास मिला कमर से। बात किया है कि, कौन पहिले गिरेगा मइ या बाघ जो गिरेगा वही हारेगा। बस मइ साला, मइ गिरने-गिरने को हो आया, ई हमरा घुटना। दाया घुटना बस अब टूटा की तब टूटा। ओर संभाल नहीं पाया, बस बाघ के मुह में रह गीया, रह गीया। ठीक इसी टम साला, बाघ हमरे कंधे और पीठ से अचानक चट से अपना मुँह पीछे हटा लिया, मइ ने दोनों हाथ मे कस के लाठी पकड़ रहा था, हमरा हाथ भी अचानक नीचे हो गीया।" बाघारू नीचे की ओर झुककर पोजीशन बतलाने लगा कि कैसे वह बाघ की ओर झुक गया था, "स्साला, मइ सोचा कि अब गीया, काम खतम हमरा। अरे, अरे बाघ त मुझे मालूम छोड़ दिया है। बस, उतने में ही सड़ाक से छलांक मार

के सामने के पेड़ पर चढ़ गीया सो चढ़ गीया।"

बाघारू उचक कर पेड़ की डाल पकड़ कर झूल गया, फिर दाहिना पैर डाल के ऊपर रखकर बायाँ पैर ऊपर उठाने की भंगिमा करने लगा। "उसके बाद आउर ऊपर चढ़ गीया। नीचे की ओर देखे बीना सलसलाता हुआ ऊपर चढ़ गीया। बिल्कुल ऊपर पहुँच कर देखता हूँ⋯" ज़रा-सा झुककर देखने की मुद्रा अपनायी, जैसे नीचे बाघ अब भी हो और उसी डाल पर बैठा वह हँसी से फट पड़ा, वह हँसी फिर रुकी नहीं—"तो देखता किया हूँ कि हमरा उह डेढ़ हाथ वाला लाठी यूँ बाघ के मुँह के अन्दर घुसा हुआ है, दोनों जबड़ों में फँसा हुआ। आउर बाघ उसे निकाल नहीं पा रहा है। सिर्फ सर झटके जा रहा है यूँ यूँ।" बाघारू मुँह में हाथ की लाठी को फँसा बार-बार सिर झटकने लगा, "साला मइ ऊपर के डाल पर बैठा एक बड़ा-सा बाघ जइसा आवाज़ छोड़ता हूँ, 'हाउम्, हाउम्⋯!' स्साला बाघ दाँतों में दातुन पकडकर यों भागा, यों भागा, यों भागा कि⋯" बाघारू हँसने लग गया था ज़ोर से।

"बस ! बाघ अपने घर चला गीया था। आउर मइ जलपाइगुड़ी अस्पताल में—पता नहीं छह महीना की दो महीना। एक ठो खेती का मोसम भी चला गीया, हमरा हल भी चला गीया।" वह दिखाता है कि अस्पताल में कैसे सोया पड़ा था। "वहीं से हमरा नाम हो गया बाघारू। बाघ को मइ हरा दिया। स्साला मेरा नाम हो गया बाघारू। जाय, साला का नाम त रेकाड हो गया। अगर बाघ मार डालता त ईस जगह का नाम हो जाता 'बाघाखाऊ'। त फिर मान लो कि एक पूरा का-पूरा पाला का गान हो गया⋯कुल्हाड़ी का काटा, बाघारूआ, फारेस्टुआ. चंद्र बर्मन।"

बाघारू ने पीछे लौटकर रास्ता दिखाते हुए फिर से चलना शुरू कर दिया, एमएलए ने भी देखा कि बाघारू की पीठ पर बाघ के जबड़े के निशान हैं। शाल वृक्ष के तने पर जैसे कितने दाग़ होते हैं, ठीक वैसे ही। गर्दन घुमाये बग़ैर बाघारू बोला—"एमेलिया बाबू !"

"बोलो।"

"मेरा एक छोटा-सा नाम बना दो।"

"तुमने कहा तो तुम्हारा पाला का गान जैसा लम्बा नाम है। मै तो गान-वान बना नहीं सकता।"

"मुझे पाला का गान नहीं चाहिये। येह नाम का पाला तो ढुलढुला रहा है, खलखला रहा है। तमको एक ठो आदमी का, मानुस का नाम दो।"

एमएलए ने कोई जवाब नहीं दिया। चलते-चलते बाघारू फिर से बोला, "तुम त एक बड़ा एमेलिया हो। बागानिया मानुस को झंडा दिये हो, बस्ती के मानुस को ज़मीन दिये हो और मुझे एक ठो नाम नहीं दे सकते हो। येह कैसे हाकिम हो तुम एमेलिया बाबू ?"

जंगल पार करके वे उसी पत्थर पर आ गये थे। अधोया पत्थर। ऊँचा उठा हुआ,

काफी गहरा, पत्थर के बाद नदी, बग़ैर पुल वाला।

बाघारू बोला, "आओ एमेलिया बाबू, पार कर ले नदी ?"

एमएलए ने पूछा, "कैसे ?"

बाघारू बोला, "हमरे कधे पर आ जाओ।"

एमएलए ने चारो तरफ देखा। जंगल, पत्थर, आकाश और फिर यह नदी। बाघारू नदी के पाट पर बेठ कर बोला, "आओ।"

ब्रीफकेस जमीन पर रखकर, जूते खोल बाये हाथ मे ले बाघारू के दाहिने कंधे पर एमएलए ने डडा गाड दिया था। बाये हाथ से बाघारू का सिर पकडकर दाहिने हाथ मे ब्रीफकेस उठा लिया था। एक हाथ मे ब्रीफकेस और दूसरे हाथ मे जूते के साथ बाघारू का सिर कसकर पकड लिया। बाघारू ने पूछा, "टाइट हरके बेठे है न ?"

"हां।'

"खडा होइए।"

"खडा ?"

एमएलए को कधे पर बिठाकर बाघारू के दो-डग भरते ही जूता-ब्रीफकेस लिये बाघारू का माथा पकडे-पकड एमएलए चीख उटे, "अरे गिर रहा है, मेरा ब्रीफकेस गिर रहा है।" पीछे लोटकर बाघारू बेठ गया। पहले जूता को जमीन पर फेककर ब्रीफकेस के साथ एमएलए उतर आये। "मै नही कर पाऊँगा इस तरह से पार।"

"हमको गीयानाथ ने कहा है, पार करा दूगा तुमको।"

"केसे पार होऊँ ? तेर सकता हूँ। तेरूँ ? कपडे-लत्ते खालकर ?"

"नाही, नाही। गील पाँव मे कपडे पहनेगे कइसे ? बदन सुखाने के लिए टाइम लगेगा। हमरे पीठ पर झूलो। झूल जाओ।"

"पर ये जूते, बैग ?"

"हमे दो " बाघारू ने एक हाथ मे जूते और एक हाथ मे बग ले लिया। पर बाघारू की पीठ पर झूलते ही एमएलए का पिछला हिस्सा जमीन पर लग गया। बाघारू तभी पाट के नीचे पीठ झुकाकर खडा था और एमएलए उसका गला पकडकर पीछे लटक गये, दोनो पैरो को बाघारू की कमर के इर्द-गिर्द लपेट लिया।

"ठीक है। चलूँ ?"

"हॉ, चलो।"

बाघारू जूते और ब्रीफकेस झुला-झुलाकर, पीछे एमएलए को लेकर जैसे ही पानी में पैर रखा कि एमएलए ने कहा, "अरे बाघारू, नहीं बनता हे रे "

"क्यो ? क्या हुआ ?" बाघारू खडा हो गया।

"अरे, हाथ फिसला जा रहा है। मुझे उतार दे।" बाघारू फिर से लौट कर पाट के पास नीचे को झुक गया। एमएलए उसकी पीठ पर से उतर आये। जूते और ब्रीफकेस लौटाते हुए बाघारू ने कहा, "अपने हाथ से अपना वजन सँभाल नहीं पा

रहे हो फिर खड़ा हो जाओ।"

एमएलए सीधा होकर खड़े हो गया।

"जूते और बक्से को दोनों हाथों में कसकर पकड लो।"

बाघारू ने अपने सिर मे पाँव तक नंगे शरीर में दोनों हाथों से एमएलए को झपट कर पकड लिया। बाघारू पर अपना पूरा वज़न डालकर एमएलए ने जूता और ब्रीफकेस के साथ बाघारू के गले को दोनों हाथों से लपेट कर पकड लिया। धोती, कुर्ता, जूते, ब्रीफकेस के साथ एमएलए ऐसे लग रहे थे जैसे उनका विसर्जन होने जा रहा हो। बाघारू का कधा छोड़ पानी के टीक ऊपर ही ऊपर। नदी के पानी में धीरे-धीरे बाघारू का घुटना डूबता गया। फिर कमर डूबने लगी। तब एमएलए का पिछला हिस्सा और जूते-ब्रीफकेस तकरीबन पानी को छूने-छूने को हो आये थे। और एक-दो कदम बढ़ते ही वही गहरा जल, वहाँ पर बाघारू नीचा हो जायेगा—दूसरे पल भारमुक्त हो तैरने लगेगा।

पर बाघारू को पता था कि और दो कदम जाते ही पानी कम होने लगेगा। इस नदी के साथ किसी बरफानी झरना का सजोग नहीं—बाघारू जानता है।

न होने पर भी नदी तो है न। आकाश के सिवा कोई ढकना नहीं है।

नदी तो। लहरें आकर बाघारू के शरीर में चोट करती—वानभामी जंगल में एक-एक शाल वृक्ष से जैसे लहर की टकराहट होती है।

एक चलने-फिरने शाल वृक्ष के मानिंद बाघारू नदी खड़ा-खड़ा पार कर रहा था। बीच नदी में खड़ा था। फिर से प्रांत को सँभालकर एमएलए ने कंधे पर पैर बढ़ाया।

तिस्ता पार के इस वृत्तांत का आदि पर्व यहाँ—इस बीच नदी में ही फिलहाल खत्म होता है। मामूली कई क़दम पार होने पर उस ओर फूलबाड़ी बस्ती है। नदी पुलविहीन होने पर भी फूलबाड़ी और उसके आसपास की सब बस्ती-गाँव के इलाके में, खेती में, चाय बागान में, छोटे-छोटे झरने या सोते मे अनेक जगह कलवर्ट है, जैसा कि होना चाहिये या रहता है। या फिर अभी बीच-बीच में दो-एक बन रहा है, जैसा कि होना है। उस तरह का एक कलवर्ट बनवाने के चक्कर में डिपार्टमेंट के साथ स्थानीय लोगों के गोलमाल के संदर्भ में एमएलए जा रहे थे। इसका मतलब यह है कि इंजीनियर, कंट्रैक्टर, ओवरसियर, सीमेंट का मिक्सचर, लोहा, बालू, पर्सेंटेज, इयूनियन, किसान मज़दूर, लिडर, आफिसर से लेकर एमएलए, फिर एमएलए से मीटिंग वगैरह। वहाँ तो फॉरेस्टरचंद्र बाघारू बर्मन का कोई काम नहीं। तब तक कम-से-कम दूर तक एक रास्ता विहीन जंगल या पुल विहीन नदी रास्ते में न पड़ती हो।

लेकिन वह तो एक अलग गाथा है—

वनसर्ग

बाघारू का निर्वासन

42
एमएलए लौटे

क्रांति हाट के मैदान पर शाम उतर आयी थी। रास्ते पर मिठाई दुकान की लालटेन की रोशनी से मैदान का यह किनारा साफ दिखायी दे रहा था। दूसरे मकानों में भी बत्तियाँ जल चुकी थीं। फलस्वरूप सुहास के बरामदे से रास्ते तक रोशनी थी। दुकानों के चाल घर के ऊपर भी प्रकाश फैला हुआ था। धीरे धीरे रास्ते के किनारे के पेड़ों के नीचे की पत्तियों पर भी प्रकाश के छींटे पड़ने लगे थे।

सुहास के बरामदे से रास्ते का एक भाग दिखायी नहीं पड़ रहा था, पर ऊपर से उजाले का भान होता था। सिर्फ इतने से इलाके को छोड़कर हाट मैदान का बाक़ी हिस्सा शाम के अंधकार में डूबा हुआ था। लड़खड़ाते घास की बनी छावनी ज़मीन पर झुकी जा रही थी। शाम जितनी गहराती, धरती और आकाश के बीच का फासला उतना ही बढ़ता जाता।

एक समूह मैदान पार करके हालका कैंप की ओर आ रहा था। सुहास बरामदे में बैठा था। इतने सारे लोगों को एक साथ देखकर सुहास ने अनुमान लगा लिया कि सर्वे के मामले में कुछ कहने के लिए ही ये लोग इधर आ रहे हैं। उसने मन-ही-मन तय कर लिया कि अगर इन्हें कुछ कहना है तो सर्वे के समय कहें और अगर कोई आपत्ति हो तो लिखकर दें—वह चाहे कोई सरकारी दल का हो चाहे विरोधी दल का ही क्यों न हो। कानून सबके लिये बराबर है। पहले से ही सुहास इस विषय पर क़ानून के मुताबिक चलना चाहता था जिससे किसी को कुछ कहने का मौका न मिले।

वे लोग जब मैदान के बीच में आ गये तो सुहास से किसी ने पुकार कर कहा, "आपके पास थोड़ा बैठना चाहते हैं।"

सुनकर भी सुहास पहले कुछ समझ नहीं पाया। कुर्सी से उठकर सीढ़ी की ओर थोड़ा बढ़ गया। अंधेरे में वह समझ नही पाया कि आने वाले कौन लोग हैं। फिर अचानक एक ही चाल से समझ गया कि वह एमएलए है।

घर के अन्दर से आकर प्रियनाथ पहले ही खड़ा था। उसने अबकी बार लालटेन लाकर दरवाज़े के बाहर रख दी। एमएलए सीढ़ी से ऊपर आते-आते बोले, "हम आपके यहाँ थोड़ा बैठेंगे।"

"अरे हाँ-हाँ आइये, आइये।" कहता हुआ सुहास प्रियनाथ की ओर देखा प्रियनाथ ने घर के अन्दर से एक कुर्सी लाकर बाहर डाल दी। कुर्सी बाहर आते-आते एमएलए भी पहुँच गये। दरवाज़े के सामने खड़े होकर बातें करने लगे। तो फिर प्रियनाथ कुर्सी डाले कहाँ ? एमएलए ने थोड़ा-सा हटकर जगह दी। प्रियनाथ ने पहले सीढ़ी के सिरे पर ही कुर्सी डाल दी। पर समझ गया कि इससे आने-जाने में दिक्कत होगी। फिर कुर्सी को थोड़ा-सा दूसरी ओर कर दी।

एसएएलए ने कुर्सी की तरफ़ देखा। फिर उसे थोड़ा-सा कोने मे खिसका कर बैठ गये। फर्श पर कुर्सी के पास ब्रीफकेस रख दिया। उनकी दायीं ओर सीढ़ी, बायीं ओर घर का दरवाजा, सामने बरामदा और कोने मे मैदान था। ठीक किस जगह बैठने पर सबकुछ उनके सामने हो इसका अंदाजा लगाने मे एसएएलए पहले से ही अभ्यस्त थे।

सुहास ने प्रियनाथ से कहा, "प्रियनाथ बाबू, थोड़ा चाय-वाय ले आइये।" वह पैसे लेने घर के अन्दर जाने लगा। फिर प्रियनाथ उसके पीछे-पीछे आकर दरवाजे मे बोला, "सर स्टोव जलाकर बनवा लेता हूँ। अभी तो हमारा खाना-वाना भी बनवाना है।"

"ज्योत्सना बाबू, विनोद बाबू, सब कहाँ चले गये, पता है ..."

"आस-पास ही कहीं होंगे सर, आ जायेंगे। अनाथ थोड़ा काठालगुड़ी मोड़ की तरफ गया है, वहा शायद उसके इलाके का कोई रहता है।"

"ठीक है, फिर चाय बनाइये।"

"आप भी तो लेंगे न सर ..."

"एक कप मुझे भी दे दीजियेगा।" सुहास कुछ सोचने लगा। प्रियनाथ जब जाने लगा तो बोला, "अभी खाना वाना मत बनाना। वे लोग आये हैं।"

प्रियनाथ ने थोड़ा सा हैरान होकर कहा, "किसलिए सर ..."

"वे किसलिये आये हैं समझ मे नही आ रहा, अगर हमारे यहा उनका कोई काम-वाम हो तो ...।"

प्रियनाथ थोड़ा सा हँसकर बोला, "तो फिर सर आप तो किसी दिन भी खा नही पायेंगे, यह तो लगा ही रहता है।"

प्रियनाथ की हँसी मे अनुभव की ऐसी सच्चाई थी कि सुहास को मान ही लेना पड़ा।

प्रियनाथ लौट गया।

सुहास ठीक तरह से समझ नही पाया कि कैसे तैयार हो। हो सकता है एसएएलए उसे कुछ कागजात दे जाये। सुहास रख लेगा। फिर सुहास सोचने लगा, रसीद भी देनी होगी। इन कागजात की एक फाइल अलग से बनायेगा। पर यहाँ तो ऑफिस का और कोई नहीं है। वह खुद ही फाइल रखेगा। अगर जवाब देना पड़ेगा तो वह भी दे देगा। सुहास ने जैसे समझ लिया कि इस तरह नियम-क़ानून के एक बंधन के सिवा वह अपने आपको बचा नही पायेगा। सुहास लौट पड़ा। प्रियनाथ जो लालटेन रख गया था उसकी रोशनी मे मेज चमक रही थी। एसएएलए की कुर्सी के पायों और एसएएलए के बाये पैर के ऊपर चढ़ा कर रखे दायें पैर की अंगुलियों पर भी रोशनी पड़ रही थी। एसएएलए पांव हिला रहे थे। बरामदे की सिलिंग पर लालटेन की रोशनी में इसकी परछाई पड़ रही थी। एसएएलए के चेहरे का साया दीवार के कोने को छूता हुआ बाहर चला गया था।

43
ज़मीन की मेड़ और विधायक का सिरदर्द

एमएलए ने सुहास से पूछा, "फिर यहाँ किसी किस्म का गोलमाल तो नहीं हुआ न ?"

सुहास थोड़ा सा हट कर खड़ा था। कुर्सी लिये वह एमएलए के निकट नहीं बैठा था। फिर फिलहाल जहाँ कुर्सी पड़ी थी, वहाँ भी नहीं गया। खाली पड़ी कुर्सी और एमएलए की कुर्सी के बीच आत्मविश्वासी भाव से खड़ा था। अगर एमएलए उसके पास आया है तो वह पहले बताये। एमएलए की बात का उत्तर देते हुये वह बोला, "नहीं !" फिर उसे लगा कि और कुछ कहना चाहिये उसे, फिर बोला, "मेरे साथ भला किसी का और क्या गोलमाल हो सकता है ?"

एमएलए यह सुनकर जोर से हँसे, "अरे आप भी क्या सोचने लगे आप ही के साथ तो गोलमाल है।"

"क्यों ... मेरे साथ भला क्योंकर गोलमाल होने लगा ?" एमएलए ने जिस हल्केपन के साथ यह बात कही थी वह सुहास को छू गयी जैसा देखेंगे वैसी ही लाइन खींचेंगे यहां मेड़, यहां रास्ता, यहाँ पेड़।"

"ये सब मेड़, पेड़ इन सबकी पहचान होगी कैसे ?" हँसते-हँसते एमएलए ने पूछा था, जैसे यह उसका धंधा हो।

"निशानपट्टी है, उसी से की जायेगी।"

"हां, पर मजा तो यही है, यह अगर न हो तो कोई भी कह सकता है कि यहां पेड़ नहीं है।"

"अगर न हो तो कहेंगे कि नहीं है।"

"नहीं-नहीं। वह कैसे हो सकता है। मान लीजिए किसी की ज़मीन की सीमा इस पेड़ तक है, वह तो चाहेगा ही कि पेड़ न रहे।"

"क्यों ?"

"कह सकता है कि पेड़ नहीं है तो मेरी ज़मीन की भी सीमा नहीं है।"

सुहास हँसने लगा, "हाँ, कह सकता है, जरूर कह सकता है।"

फिर गुपचुप से एमएलए ने कहा, "वह तो आपसे कहेगा कि नक्शे पर पेड़ का निशानदेही न करें।"

सुहास ने फिर से हँसते हुए कहा, "हाँ, वह तो कह सकता है।"

एमएलए ने तभी हँसते हुए कहा, "देखिये न एक हिस्सा जमीन को लेकर खूनखराबा तक हो सकता है। और आपने तो इन तमाम ज़मीन की हदबंदी की है...।"

सुहास मुस्कराता हुआ ताक रहा था—एमएलए थोड़ा-सा रुक कर फिर बोले, "तो गोलमाल तो आपके साथ होगा, एक नहीं कई गोलमाल।"

एमएलए के यह सब कहने के अंदाज में सिर्फ़ बातचीत करने का ही भाव था।

एक रहस्यमयी बातचीत। उसका एक कारण भी था, क्योंकि बातचीत सचमुच ही गोपनीय थी। फिर दूसरा कारण यह था कि, सुहास अंदाज़ा लगाना चाहता था कि इस गुप्त बातचीत से एमएलए उसका समर्थन पाना चाहता है या नहीं। यह सोचते ही सुहास सावधान हो गया। इस समर्थन के बदले में शायद जाने से पहले उसे कोई व्यक्तिगत और दलीय काम की बात कह जायेगा। सुहास दरअसल समझ नहीं पाया—एमएलए आकर उसके ही बरामदे में क्यों बैठा है। वह जब तक समझ नहीं पाता सुहास की बौखलाहट कटेगी नहीं।

प्रियनाथ काँच के गिलास में चाय लेकर आ गया। एमएलए ने गिलास लेने के लिए दाहिना हाथ बढ़ा दिया। प्रियनाथ बिस्कुट लेने अन्दर गया। सुहास ने फ़ौरन पूछा—"आपके खाने के लिये कुछ मँगाया जाये ?"

"अरे नहीं-नहीं।" प्रियनाथ बिस्कुट ले आया। एमएलए चाय में डुबो-डुबोकर खाने लगे। सुहास ने बिस्कुट नहीं ली। चाय की चुस्की लेते हुए एमएलए ने कहा, "आप तो शायद पहली वार ही इस काम पर आये हैं न ?"

जवाब देने पर भी सुहास ठीक से समझ नहीं पाया कि वह उस आदमी को पसंद कर रहा है या नापसद। उस आदमी की भाषा ही जाने कैसी थी—राजवंशी भाषा के साथ चालू बांङ्ला के मिलावट को लेकर कोई समस्या नहीं। मिलावटी भाषा बोलते-बोलते उसकी खुद की एक भाषा बन गयी है। उसके जरिये वह हर कहीं सभी के साथ बातें कर सकता है। उसकी बातें सुनने पर वह काम का आदमी लगता था। फिर कुर्सी पर इत्मिनान से बैठा था। पैर पर पैर रख। कमीज़ कंधे के पीछे की ओर खिंच-सी गयी थी। चाय की चुस्की लेते-लेते एमएलए ने फिर से कहा, "गाँव की ज़मीन-जायदाद के तो दखल को ही कानून समझा जाता है, क्यों ? दखल जिसकी, ज़मीन उसकी। आप अगर एक लाइन खींचकर हमारी ज़मीन का भाग कर दें, अरे भाई फर्ज़ करो कि ऐसा कुछ होना है और हमारी ज़मीन का कोई भाग आय किसी और की ज़मीन के अन्दर घुसा दें, तो हम दूसरे ही दिन आदमी, लाठी, सोंटा लिये इस ज़मीन को दख़ल कर लेंगे। बस···" बात ख़त्म करते हुए एमएलए ने कहा—"तो आप कहते हैं कि आपके साथ झगड़ा-फ़साद नहीं होगा ? आपके नापजोख को लेकर हर रोज झगड़ा-फ़साद खड़ा होगा। मगर आप एक सशक्त अधिकारी हैं। जोतदारों के घर पर नहीं खायेंगे, आपसे कहे दे रहा हूँ। जोतदार तो भय खाये हुए हैं।" एमएलए अबकी बार ज़ोर से हँस उठे।

सुहास ने अपनी हालत समझाने के लिए कहा, "हम तो प्रापर्टी राइट यानी ज़मीन-जायदार की मिल्कियत तय नहीं कर रहे, वह तो सिविल कोर्ट का मामला है।"

"परिपाटी राईट-टाइट तो आपका गयानाथ जोतदार, फ़ारेस्ट डिपार्टमेंट और आनंदपुर चाय बागान का मामला है। और सबों का राइट मानें तो सालभर की खेती होती है। बस ! कोर्ट में जाने से हमारे लोग तो यूँ ही डरते हैं। गाँव में क्षमतावान

पार्टी का नेता या कि आप जसे कोई अफसर जो हुक्म करते ह उसी को सब मान लेते है। कम स कम मान लेना तो चाहते ही है। साधारण लोगो क लिए तो सरकारी-ऑफिसर ही सरकार होता है। यह जस मान लो डीसी, एसडीओ, जेएलआर लोग भी, थाना का दरोगा और आप जैसे जितने सार ऑफिसर भी उनके लिये सरकार ही होते है। ऑफिसर भला न हो तो सरकार बदल जाती ह। यही देखो न मातालडीह का मामला। सब इजीनियर सतानी कर बेठ थे।

सुहास चौक गया। समझ गया कि यह आदमी इस इलाक का एमएलए हे पर सचमुच उसक पास अनुभवो का ऐसा एक खजाना है, जहा स वह कभी हटना नही है। और उसी क चलत इतन समय तक उसकी बातो म एक अन्तरगता का अहसास होता रहा है सुहास को। तो क्या यह आदमी इसीलिय यहाँ आकर इतनी देर से बैठा रहा ? सुहास भी यहा का आदमी नही है। उसक पास यहा का कोइ अनुभव नही, तो एमएलए क पास यहा के अनुभव के बारे मे बात की जा सकती ह।

सुहास न पूछा "आपको तो जरूर एसबली म बराबर बोलना पडता होगा ?"

"हा बीच बीच म बोलना पडता ह, लेकिन समस्या कुछ हो तो, कभी-कभी क्वेश्चन भी करना पडता है। हमार दूसर कामरेड्स भी है व कह देते ह।"

उसक चुप होन हो सुहास न पूछा "आपको अच्छी लगती हे एसेबली ?" एमएलए चुप हो गय। सुहास समझ गया कि व सोच रह ह कि इस सवाल का जवाब द कि न द। या फिर सही जवाब तलाश रहे है इस तरह की बात का शायद उन्होने इसस पहल सामना न किया हो ? या फिर कितना कह कितना न कह उसका कोइ हिसाब लगा रहे हो।

एमएलए ने हल्का सा हँसा "आपने काफी तगडा सवाल पूछा ।" फिर थोडा-सा चुप होन के बाद कहा, "दूगा तो सही जवाब दूगा वरना चुप रहूगा। फिर थोडा रुककर बोला, "म आपस यह भी पूछ सकता हू कि आपने यह क्यो पूछा ?" सुहास समझ नही पाया कि इस भाषा मे दरअसल सवाल सही ढग से किया जा सकता है या नही। एमएलए न कहा, "पर वह तो मुझे पता है, आपने यह सवाल क्यो पूछा। इसलिये मै सही जवाब ही दूगा।" फिर कुछ पल की चुप्पी के बाद एमएलए न कहा, "यह मै पहले स ही आपको बता दू कि मुझे एसेबली काफी पसन्द हे। वहाँ काफी अच्छी नीद आती है।"

सुहास हस पडा—"मने तो वही सुना है, एसबली मे काफी नीद आया करती है।"

"हा, ठीक ही सुना है आपने। एयर कडिशन्ड है न ? फिर कलकत्ते की जो गरमी है कुछ न पूछिये। फिर ठड के दिनो मे जो ठड। शरीर जेसे चट से छोड देना चाहता हे। पहले-पहल तो दोना आँखे खुलते ही हगामा खडा हो गया था। जब भी जाता हूँ, तब सो जाता हूँ। उसके बाद मैने भात खाने के बदले रोटी खाना

शुरू कर दिया।"

"एसेंबली के लिए खाना ही बदल डाला ?"

"अरे, बदलता नहीं तो क्या करता ? हम तो भात खाते हे, पता है, हाई जंप के लिए। इतना खाना खाओ तो फिर एसेंबली मे घुसते ही मुर्दे के जैसे नींद घेरने लग जाती है। पर अभी नींद कुछ कम हो गयी है। चाहने ही सो भी सकता हूं। चाहते ही जग सकता हूँ। पर सर पकड़ने से अभी तक मुक्ति नहीं मिली।"

"सर पकड़ना है ?"

"हॉ।"

"भाषण देने से ?"

"नहीं। इस एयर कंडीशन से। जब एयर कडीशन से बाहर निकलता हूँ तो तन-मन टूटने लगता है, माथा घूमता हे ओर छाती मे ठड महसूस होती हे।"

"तो फिर जाते ही क्यो हैं वहॉ ? आपको तो बार बार बोलना भी नही होता।"

"हमे तो बोलना नही होता, पर हमारे जो दूसरे प्रोफेसर-कामरेड्स ह, वकील कामरेड्स हैं, वे अच्छा बोल लेते है। यूनियन के नेता लोग भी अच्छा बोल लेते है। वे सब प्वाइट देकर बातों को समझाने लगे, ठीक कोर्ट जसा।

"कोर्ट के जैसा !"

"हॉ, और नहीं तो क्या ? आप हम थोडे ही जाकर कोर्ट मे सवाल-जवाब कर सकते हैं ? उसके लिये वकील-मुख्तियारो की जरूरत होती है। काले कोट की जरूरत होती है। वे सब कोर्ट का क़ानून जानते हे। वसे ही एसबली के भी कुछ क़ायद कानून है। कब कौन बात कही जायेगी, कौन-सी बात कब जंचगी, कब कौन-कौन सा मुद्दा उठाना है, वह सब जिन्हें पता हे, केवल वे ही कहा-सुना करते हे वहॉ।"

"आप भी तो वकील ह। मवर "

'जूनियर, जूनियर' कहते हुए वह ठठाकर हॅस पडे। फिर कहने लगे–"क्योकि आप हमारे वोटर नहीं हैं, इसी से बता दिया भाइ आपको। वोटरो से कहते हे कि हमारे गये बगैर एसेंबली चल नहीं सकती।" कहते-कहते एमएलए फिर से हँस पड़े। सुहास भी उनके साथ हंसने लगा। फिर कहा, "तो फिर वहां जाते ही क्यो हैं ?"

"यह आप क्या कहने लगे ?" एमएलए हँसी कम करते हुए बोले, "पार्टी का काम करता हूँ, मतलब क्षमता चाहिये। एसेंबली मे जिस पार्टी का सदस्य अधिक होता है, वही सत्ता में आती है। हम सत्ता में हैं, पार्टी करेंगे पर सत्ता नहीं लेंगे, यह कैसे हो सकता है ? ब्याह करेंगे पर बीवी के साथ सोयेंगे नहीं–ऐसा कैसे हो सकता है ? वह तो हिजड़े ही कर सकते हैं।" एमएलए ज़ोर से हँसने लगे। सुहास को भी मुस्कराना पड़ा।

44
एमएलए का चाय पीना

एमएलए के साथ जो लोग आये थे उनमें से कोई-कोइ चाय की दुकान पर चले गये थे और कुछ लोग सीढ़ी के ऊपर सुस्ताते हुए बेठ थे। प्रियनाथ की लालटेन इतनी काली हो चुकी थी कि उसके प्रकाश में और कुछ दिखायी नहीं दे रहा था, सिर्फ़ लालटेन ही नज़र आ रही थी। पर क्रांति हाट जेसी जगह में एक एमएलए इस तरह एक अंधेरे बरामदे में बैठा रहेगा—यह तो स्वाभाविक बात नहीं लगती।

पर एमएलए ने आज दोपहर में ही सर्वे कंप देखा वहाँ सबके सामने एक भाषण दिया, क्रांति हाट, अपलचांद जंगल से होकर उस फूलबाड़ी बस्ती मे चला गया था। फिर शाम को लोट आया था। साथ मे फूलबाड़ी के कई लोग थे। लोगबाग हालाँकि हर वक़्त एमएलए के साथ रहा करते हैं। पर दोपहर को क्रांति हाट से जाकर फिर शाम को क्रांति हाट मे वापस आना, यह कोइ सामान्य बात नहीं थी। एमएलए लोग हर समय कुछ-न-कुछ कारगुजारी करने चलते हैं। इधर से जाकर उधर से निकला करते है। यही वीरेन बाबू एमएलए अगर फूलबाड़ी से होकर मानाबाड़ी-उदलाबाड़ी की ओर से निकलते तो यह जगह 'टूर' कहलाता है। लोगों के साथ बातचीत भी और मिलना भी हो जाता। पर एमएलए वह किये बिना जब वापस आ गये हैं तो घटना जरूर कुछ महत्त्वपूर्ण रुख ले सकती है। लौट कर फिर बरामदे मे आसन जमा लेना। एमएलए लोग कभी एक जगह पर जम कर बैठा नही करते, सिर्फ मीटिंग-वीटिंग को छोडकर। एमएलए का मतलब ही हे चलता हुआ—कभी पेदल, कभी गाड़ी में कभी प्लेन में, तो कभी ट्रेन मे। मीटिंग को छोडकर एमएलए कही अगर अकेला बैठा हे तो इसका मतलब है कि घटना के प्रवाह का रुक जाना।

इस तरह की कोई घटना क्रांति हाट में ही घटित होगी, आज शाम को, इसके लिए कोई भी तैयार नहीं था। एमएलए ने किसी को भी खबर नहीं की थी। जाते समय किसी से कुछ कहा भी नहीं था कि वह वापस आयेगा। सीधा हालका कैंप में जाकर बैठा अंधेरे में। पर यहाँ के लोगों को वह खबर मिलती है फूलबाड़ी बस्ती के एमएलए के साथ आये लोगों से, वह भी चाय की दुकान पर उनकी बातचीत के जरिये। हाट के दिन को छोड़ बाक़ी किसी दिन अगर क्रांति हाट की इस चाय की दुकान में इतने सारे अपरिचित लोग एक साथ बैठे चाय पीते हुए नजर आये तो उनकी बातचीत पर कान रखना ही पड़ता था। और उससे ख़बर के बारे में भी पता चल जाता था। फिर उनसे सीधा-सीधा पूछा भी जाता—क्यों आये हैं, कहाँ पर ठहरे हैं, क्या काम है ? फूलबाड़ी का फूल झरने के ऊपर जो कलवर्ट बन रहा था, उसी को लेकर झगड़ा-फ़साद खड़ा हुआ है। एमएलए के रेलिंग पर एक लाठी मारते ही रेलिंग टूट गयी। इंजीनियर को बुलाने मालबाज़ार में आदमी भेजा गया था। वह इंजीनियर को यहाँ पकड़ कर

लायेगा।

दुकान पर जो लोग बैठे थे, वे हाट कमेटी के घरों की तरफ़, हालका कैंप की ओर चले गये। कोई कोई एमएलए की पार्टी के लोगों को ख़बर करने के लिए भागे हैं। और कुछ अपने मालिकों को ख़बर देने के लिए भी भागे हैं। गेरुए रंग की पोशाक पहने सज्जन सीढ़ी से चढ़ते हुए बीच में रुक कर बोले, "अरे, कब से यहां पर बैठे हो ?"

"बस, अभी-अभी तो पहुंचे।"

"फूलबाड़ी से ?"

"हाँ।"

"वहाँ क्या लाठी से ही ब्रिज को तोड़ डाला ?"

"अरे नहीं नहीं" कहते हुए एमएलए हँसने लगे।

"तो चलो फिर। घर चलो। हाथ-मुंह धोओ, उसके बाद आकर बैठो। क्या यहीं मीटिंग करोगे आज ?'

"अरे नहीं नहीं, मीटिंग काहे की ?"

"कौन तो कह रहा था कि मालबाज़ार से इंजीनियर आयेगा ?"

"हाँ आयेगा। मेरे साथ काम है उसको।'

रास्ते से कई लोग मैदान में पहुंच आये। उनके पीछे पीछे कोई तेज लाइट लटकाये आ रहा था। हैरानी का भाव खत्म होने पर समझ में आया कि वह पेट्रोमैक्स है। मैदान में लोगों के लंबे लंबे साये बरामदे और घर की दीवारों पर तैरते हुए एक एक कर ऊपर तक चले आये थे। उन लोगों के पीछे एक आदमी टीन की थाली में कई कप चाय और एक तश्तरी में कुछ मिठाइयां और समोसे लिए खड़ा हो गया। जिसके हाथ में पेट्रोमैक्स था, वह पीछे से आगे आ गया। बरामदे में पेट्रोमैक्स रखते ही लोगों के खड़े साये बरामदे की दीवार को लांघते हुए मैदान में लंबे से पड़ने लगे थे। पेट्रोमैक्स के क़रीब चाय-मिठाइयों का थाल रखकर नंगी बदन वाला लड़का अंगूठा कुरेदता हुआ गरदन बढ़ाकर बोला– "दुकान से भेज दिया है इत्ती..."

उस गेरुए वस्त्र वाले सज्जन ने तब तक बरामदे पर पहुंच कर मिठाई का थाल एमएलए के सामने ले जाकर कहा, "लो खा लो।" एक समोसा उठाते हुए एमएलए ने सुहास की ओर हाथ दिखाकर कहा, "साहब को दीजिये।"

उस सज्जन ने थाल को सुहास के आगे कर दिया। सुहास ने एक छोटी-सी मिठाई उठा ली। सज्जन थाल को फिर से एमएलए के सामने लाकर बोले, "तुम खा लो वीरेन, रात में यहीं रहोगे न ?"

"अरे नहीं नहीं, मुझे कल जलपाईगुड़ी जाना है, मीटिंग है।" कहते हुए एम. एल.ए. ने एक मिठाई उठाकर मुँह में रख ली और अंगुलियों को पैर पर पोंछते हुए कहा, "मुझे मत रोको।" फिर मिठाई निगल कर कहा, "अरे चाय-वाय कहाँ है भाई।"

गेरुआ वस्त्र पहने सज्जन ने मिठाई के डिश में एक मिठाई नाड़ते हुए कहा, "बस, आ गयी।" फिर उसने फ़ारन ट्रे नुमा थाल पर डिश रख दी। थाल पर गिरे चाय के पानी से अंगुली धोकर, एक कप उठाकर एमएलए को दी। एमएलए ने चाय का कप होंठ से लगाते ही कहा, "चाय तो बिल्कुल ठंडी हो चुकी है।" फिर वे एक ही बार मे चाय गटक गये।

सुहास थोड़ी देर के लिए अपने कमरे में चला गया था। एमएलए चाय सुड़क रहे थे—इससे जैसे उन दोनो लोगो के बीच अनुभवों का लेन-देन हो रहा था, नागरिक अनुभवों का। उसने पूछा, "क्यों, और एक कप चाय लेंगे?"

सुहास की बातों में एक इशारा था—वह बनाने की बात कर रहा था, दुकान से चाय लाने की नही।

"आप लेंगे तो हम भी ले लेंगे।" कहते हुए एमएलए ने हँस दिया।

सुहास अपने कमरे से आगे बढ़कर प्रियनाथ के कमरे में गया। प्रियनाथ ने तब तक खाना बनाना शुरू कर दिया था—"प्रियनाथ बाबू, आपके हाथ की चाय तो हमारे मुह में लग गयी है।"

"बैठिये सर, मै अभी बनाये देता हूं।" प्रियनाथ ने सब्जी काटते हुए कहा।

"आप अकेले खाना बना रहे है?"

"वे आ जायेंगे सर। वह तो हमारा नियम हो चुका है सर।"

सुहास बाहर आ गया और अपने कमरे के सामने पड़ी कुर्सी पर बैठ गया।

इसका मतलब है कि इस एमएलए को कलकत्ते का चस्का लग गया है। इस क्षेत्र में रुतबा रखने वाले इस मनुष्य के स्वाद और अभ्यास में नागरिकता आ गयी है? आने लगी है? कलकत्ते की नागरिकता के चलन क्या यह आदमी फूलबाड़ी बस्ती से आकर यहां बैठ गया है? बस, कुछ अनुभवों के लेन-देन के लोभ मे?

इस थोड़े-से आड को लेकर सुहास अपने मन के इन सवालातों को लेकर एमएलए की ओर ताकने लगा। एमएलए उस समय पर हिलाते-हिलाते हँसते हुए सामने मैदान मे और पीछे सीढ़ी पर खड़े लोगो के साथ घुले-मिले जा रहे थे।

45

एमएलए और गयानाथ

रोशनी बिखेरती हुई एक गाडी रास्ते मे आकर रुकी। पर आवाज़ से पता चल रहा था कि गाड़ी नही मोटरसाइकिल है। मोटरसाइकिल चलते समय जितनी आवाज़ कर रही थी, रुकने पर उससे कही अधिक आवाज करने लगी। कई बार हिचकोले खाकर मोटरसाइकिल फिर से चलने लगती थी। धीरे-धीरे चलने के कारण हेंडिल हिलता था, उसकी लाइट बायें जंगल और दाये घरों की दीवारो पर पड़ रही थी, जैसे कोई चीज

तलाश रही हो। लाइट मैदान मे भी कुछ दूर तक चली आ रही थी और घुस जाती थी। मोटरसाइकिल की आवाज भी कमोबेश आ रही थी। फिर मोटरसाइकिल की लाइट बरामदे की ओर थी और आवाज के साथ वह इधर ही सीधा चला आ रहा था। हेडलाइट का उजाला बरामदा पार कर घर के अदर चला जा रहा था। पेट्रोमेक्स की लाइट को मात देता हुआ सा। पर मोटरसाईकल अचानक रुक गयी थी। आवाज तेज होती थी, लाइट तेज होती थी, पर मोटरसाइकिल आगे नहीं बढ पा रही थी। सीढी के ऊपर से किसी ने कहा, "फँस गया है।" एमएलए बोला, "देखो तो कौन है। थोडा-सा धक्का लगा दो।' दो आदमी सीढी से कूदकर लाइट की ओर लपक पडे, "गाडी कीचड मे धँस गयी है, जरा धक्का लगा दो।" लाइट थोडा-सा घरघरा कर बुझ गयी। तभी बरामदे मे पेट्रोमेक्स के उजाले मे दिखायी दिया कि मोटरसाइकिल पर कोइ बेठा हुआ है और एक आदमी सामने खडा होकर आवाज दे रहा था। गयानाथ जोतदार को पहचानने के लिए इतनी थोडी रोशनी की भी आवश्यकता न थी। बस उसकी आवाज भर सुन लेना काफी था। सीढी पर स किसी ने कहा, 'बस फटफटी जोतदार पहुँच गया।"

इसका मतलब साफ था कि इस भीड मे सिर्फ फूलवाडी बस्ती के लोग ही नही, कुछ स्थानीय व्यक्ति भी थे, जिन्होंने सुबह गयानाथ को फटफटी पर बैठ सर्वे की जगह जाते हुए देखा था। गयानाथ का यह नामकरण इसके पहले कभी नही हुआ था। अपने दामाद के फटफटिए पर वह कभी नही बैठता। यहाँ तक कि जलपाइगुडी जाने के लिए भी वह आमतौर पर बस की सवारी भी नही करता था। पर सुबह सर्वे पार्टी का पहुँचा देख कर उसे मोटरसाइकिल पर सवार होना पडा था। और, अभी, इसी शाम उसके एक चमचे ने आकर खबर दी कि एमएलए आकर बैठा हुआ है। एक ही दिन मे दो दो बार फटफटिया पर सवार होकर एक ही समूह के आगे पहुँचने पर एक नामकरण तो हो ही जाया करता है। पर वह नाम टिकेगा भी या नही, वह निर्भर करता है फटफटिया के साथ गयानाथ के व्यवहार पर।

गयानाथ एक हाथ मे अपने कपडे पकड दूसरा हाथ उठाये आसिंदिर पर बरस रहा था, "साले, फटफटिया को तुम्हारे पिछाडी मे घुसड दूँगा। साला ई दुपहिए से मैदान जोतने चला था। साला कहता रहा कि रास्ते पर उतार दे, पर सुनता ही नही। कहा, चलिए तो, चलिए तो, अभी तो साला तुम्हारे ससुराल जा रहे है। साला तेरे कोई नाजायज बाप मैदान में हाई-वे बनाया है ? साले भड्डवेधामन ।" सीढ़ी के ऊपर ओर मैदान में जो लोग खड़े थे, बैठे थे, वे ताली बजाने लगे।

एमएलए ने पुकार कर कहा, "गयानाथ चाचा, आ जाओ इधर, वे ठेलकर निकाल लेंगे। चले आओ।"

यह सुनकर गयानाथ इधर बढने लगा, पर दो कदम चलते ही रुक गया था। फिर बिफर पड़ा, "साला धामन, धाकड की औलाद।" फिर हनहनाता हुआ बढता चला

आया जैसे कि यही दो शब्द कहना बाकी था। गयानाथ के पास पहुँचते ही किसी ने फिकरा कसा—"असिदर की पिछाडी में कितना बडा फाँक है जो इतनी बडी फटफटी घुस जायेगी ?"

गयानाथ उधर देखकर फिर से चीख पडा, "तुम्हारे बाप की पिछाडी में घुसेड़ूँगा साला हरामजादा।"

एमएलए ने कहा, "अरे काका क्या तुम्हारी मति मारी गयी है जो दामाद को अनाप-शनाप बक रहे हो ?"

गयानाथ ने तब सीढी पर पाँव रखा ही था। चीखकर कहा, "क्या कहा, यह भडुवा हमरा दामाद है ? मइ इसे तलाक देता हूँ।"

पीछे से इस बार तालिया के साथ चीख भी सुनाई दी मस्त। से। एमएलए ठठाकर हँस पडे। गयानाथ बरामदे में पहुँच गया था और तभी मोटरसाईकिल की लाइट गजर के साथ ... गयी और 'हुस्' करके बरामदे के सामने चली आयी। आवाज को दो-चार बार बढा-कम कर, हा-हा हँसता हुआ, बाइक को घुमाकर असिदर रास्ते की ओर चला गया। असिदर पर गुस्से की झोंक में गयानाथ गनगनाता हुआ बरामदे में चला आया था। पर अभी समझ पाया था कि बरामदे में उसके बैठने या खडे होने के लिए जगह नहीं थी। गयानाथ सामने के आफिस में भी घुस नहीं पाया, न ही मेज पर तपाक से बैठ ही पाया। चाहे तो बैठ सकता था पर ऐसे तो कोई नहीं बैठता। उसके लिए तो मैदान में या फिर रास्ते में चहलकदमी करना ही बेहतर था। एमएलए से मिलकर चल जाना ही उचित था। पर एमएलए लौटकर इस हालका कैंप में ही बैठा है क्या ? उसे उसका कारण जानना ही चाहिये। तभी गयानाथ को बाघारू की बात याद आ गयी। एक बार चारों ओर देखा, पर बाघारू कहीं नजर नहीं आया। अगर होता तो—उससे पता चल जाता कि फूलबाडी बस्ती में क्या हुआ। पर बाघारू कहीं पर भी नजर नहीं आ रहा। बाघारू की बात याद आते ही गयानाथ सोचने लगा कि एमएलए के भले-बुरे के बारे में जानने का अधिकार है उसे, क्योंकि उसका आदमी ही साथ मे गया था नदी पार करवाने के लिए। गयानाथ ने खडे-खडे ही पूछा, "आपको कउनो असुविधा तो नहीं हुइ न ?"

"कैसे क्या असुविधा हो सकती है हमको ?" एमएलए ने कहा।

"यही फूलबाडी गये और चले आये ?"

"तो इसमे असुविधा की बात क्या है ? इंजीनियर को खबर करने गया था। यहा बैठने की सुविधा है इसी लिए बैठे है।"

"उसने आपको ठीक से नदी पार करा दिया न ?"

"कौन ?"

"अरे, वही बैल, जो आपके साथ फूलबाडी गया था पहुचाने।"

"हाँ-हाँ।" एमएलए को याद आ गया—बाघारू। "क्या बाघारू ?" एमएलए

याद करने की कोशिश करता है।

गयानाथ ने पूछा, "हाँ-हाँ, बाघारू। ऊ लौटा नहीं आपके साथ ?

"देखो, तुम ऐसा नहीं कह सकते। वह लौट सकता है। वापसी के समय तो नाव थी। बस, कहो मत चाचा, तुम्हारा वह···"

"क्या ?"

"अपने उस आदमी का क्या नाम बताया, बाघारू बमन ?"

"बर्मन ? उसका बाप साला बर्मन।"

"अरे, उसका एक ठो पूरा नाम, लंबा नाम है न ?"

"बाघारू का एक नाम भी है ? आपको बताया है ?"

"उसने बहुत सारी बातें बतायीं। उसे तो बाघ ने पकड़ लिया था।"

"हा, आपको यह सब बताया है, यही न ?"

"अरे चाचा, वह क्या एक बात थोड़े ही। कितनी सारी बातें बतायी है उसने। उसके जनम की बात। उसकी माँ की बात। वह तुम्हारा आदमी काफी भला है चाचा।"

"गधा।"

"किसी ने बटाई दे रखी है ?"

"किसे ?"

"उसे।"

"बाघारू को ?"

"हाँ।"

"बाघारू को बँटाईगिरी ?"

"हा, इतना काम का आदमी है तुम्हारा ?"

"ऊ कहा है आपसे, बँटाईगिरी की बात ?"

"अरे नहीं-नहीं, उसने कुछ नहीं कहा। बस, मैं ही कह रहा हूँ।"

"ऊ त हाल में ही आया है। कइसे दे दूँ बँटाईगिरी ?"

"क्या कहा ? चार पुश्तों में इतनी जमीन है तुम्हारे पास और इस आदमी को थोड़ी-सी जमीन बँटाई पर नहीं दे सकते ?"

"अरे, आप लोग तो मुझे ही एक बटाईदार बनाने पर तुले हुए हैं। मैं और किसे बँटाईगीर बनाऊँ ? खड़े क्यों हैं। घर पर चलिए। मुँह-हाथ धोइए। फिर यहां आकर मीटिंग-वीटिंग जो करना हो सो करिए। आसिदिर को बुलाता हूँ। फटफटिया ले आयेगा।" गयानाथ बात को टालने के लिए नहीं, बल्कि सामाजिकता, शिष्टाचार के प्रभाव में आकर बरामदे पर से नीचे उतर आया और रास्ते की ओर गनगनाता हुआ बढ़ गया। एमएलए ने पीछे से चिल्लाकर कहा, "हो चाचा, चाचाजी, सुनिए तो हो।"

46

एमएलए की लाठी

पहले से ही गाडी की आवाज सुनायी दे रही थी। वह धीरे-धीरे तेज होने लगी। उसके बाद उत्तर म काठालगुडी के मोड से जो इधर घूमा, वह भी आवाज से ही पता चल गया था। उसके बाद लाइट रास्ते पर पड़ने लगी। फिर आवाज और लाइट बढने लगी। इस बरामदे म बैठे लोगो को मैदान पार कर गाडी रास्ते मे दिखायी दी। जैसे नदी मे बाढ आ गयी हो ठीक उसी तरह से लाइट नजर आने लगी। किसी ने कहा भी, "लो आ गया ।"

गाडी थोडा बढकर और म खडी हो गयी थी। मिठाइ की दुकान पर खडी गाडी से शायद कोई पूछताछ कर रहा था। एमएलए ने सिफ इतनी ही खबर की थी कि वह क्रांति हाट के हालका कप म ठहरा है।

नि· · ·ी घरघराने लगी थी। फिर दिखायी दिया कि लाइट हाट के मैदान पर पडती हुई घूम गयी है। फिर उस बरामदे को हल्की सी छूती हुई चली जा रही है। अबकी बार गाडी जोर से घरघराती हुइ मैदान की ओर मुड गयी। हेडलाइट की उजास से पूरा बरामदा नहा गया था।

मैदान के बराबर मे गाडी जिस तरह से मुडी था, उससे यही लगता था कि गाडी पलक झपकते ही आकर बरामदे के सामने पहुच जायगी। पर वैसा कुछ नहीं हुआ। गाडी घरघराती हुइ रुक गयी थी और उसकी लाइट पूरे मैदान मे फैली हुइ थी।

गाडी पर से एक, दो, तीन, चार, पाच आदमी नीचे उतरे। वे मैदान पार करके सीधे चले आ रहे थे। गाडी रास्ते के ऊपर से चलती हुइ खडी ... के लिए पीछे चली गयी थी तो इनमे से दो आदमियों ने हाथ उठाकर मना किया। बरामदे म से वह हाथ उठाया निषेधादेश एक साया जैसा नजर आया। लाइट म मैदान का कीचड पानी देखते हुए वे सावधानी के साथ बरामदे की ओर बढ रहे थे।

इतना सँभल सभल कर बढ रहे थे, इसी से समय लग रहा था। या फिर इन्हे इस तरह म आते हुए देखते रहने मे समय लगने का आभास हो रहा था। फिर वे पाँचो कौन-कौन है, इस बरामदे से सभी पहले से ही जान लेना चाहते थे। बरामदे मे तो एक कोने म एमएलए कुर्सी पर बैठे थे और दूसरी तरफ सहदेव भी अपनी कुर्सी पर बैठा था। प्रियनाथ दरवाजे पर खडा था। सीढी पर जो लोग थे वे भी उठकर खडे हो गये थे। और इन पाचो के पीछे-पीछे और भी ५ लोग उधर की दुकानो से निकल कर चले आ रहे थे। अब तक सभी अलग-अलग जगहो पर बैठे इतजार कर रहे थे, पर अब सब एक ही जगह जमा हो गये थे।

उन पाचो मे से कोई जोर से चिल्लाकर बोला, "हो वीरेन दा, तुम्हे क्या मीटिंग के लिए और कोइ जगह नही मिली जो इस कीचड भरे मैदान मे ?" "अरे मणि दा

आ रहे हैं क्या'' कहते-कहते एमएलए फ़ौरन उठ खड़ा हुआ और बरामदे के कोन की ओर बढ गया। फिर उसने चिल्लाकर कहा, ''अरे मणि दा, तुम कहा से आ रहे हो ?''

''वाह, वाह !'' पांचों अब क़रीब पहुँच गये थे। सीढ़ी पर खड़े लोगों ने हटकर उनके लिए रास्ता बना दिया। ''तुम जाकर लाठी मार-मारकर सब कलवर्ट तोड सकते हो और मैं आ नहीं सकता, वाह-वाह !''

एमएलए ठठाकर हँस पडे, पर उस हँसी की आवाज़ कुछ दूसरी तरह की सुनायी पडी। उसने मुड़कर खडे प्रियनाथ की तरफ़ देखा–''कोई दरी, चादर मिल सकती है बैठने के लिए ?'' प्रियनाथ कमरे में चला गया। सुहास को अपने कमरे के आगे कुर्सी से उठकर खडा होना ही पड़ा। उसने एक बार सोचा कि कुर्सी को आगे बढाकर कमरे मे चला जाये। इस मीटिंग के साथ उसका कोई संबध तो है नहीं। उसका रहना भी शायद उचित नहीं होगा।

प्रियनाथ घर के अदर से कई चटाइयाँ निकालकर लाया। वह अकेला ही जब बिछाने की कोशिश करने लगा तो एमएलए ने सीढी पर खडे लोगो की ओर देखकर कहा, ''क्या आप लोग इस घर के आदमी नही हैं ?'' यह सुनते ही दो आदमी फौरन चटाई बिछाने में मदद के लिए लपक पड़े। गाडी तब रास्ते के ऊपर उठने के लिए रिवर्स गियर में आ गयी थी जिसके कारण मैदान और बरामदे में पलभर के लिए अंधेरा हो गया था। एक आदमी पेट्रोमैक्स मे पप भरने लगा था।

एमएलए ने सोचा था कि वह कुर्सी पर बैठा रहेगा और इजीनियर ऑफिसर लोग बैठने के लिए जगह न पाकर खड़े ही रहेंगे। वरना बरामदे में लोगों के बैठने के लिए तो वह काफी पहले से ही बदोबस्त करवा सकता था।

मणि ही सबसे पहले बरामदे में पहुँचे–''मैं तुम्हारे लिए मालबाजार में कब से बैठा हूँ और तुम यहाँ मीटिंग कर रहे हो।'' मणि ने जेब से सिगरेट और दियासलाई निकाली।

''अरे मैंने सोचा था कि उदलाबाडी में शाम को थोड़ा देख-रेख करने के बाद रात में मालबाजार चला जाऊंगा। आपको तो आज मालबाजार आना ही था–कल जलपाईगुडी चलना है न ?''

''इसी लिए तो आया हूँ।'' आ के सुना कि तुम वहाँ नहीं हो।''

''अरे फूलबाड़ी की इस जगह को लेकर झगड़ा चल रहा है। मैं दो-तीन महीना आ नहीं पाऊँगा इधर। सोचा कि झगड़े का आज ही निपटारा करता जाऊँ।

''तो निपटारा करो भाई। पर इसके बाद तो तुम्हें सर्कस वाले ले ही जायेंगे, इसमें कोई शक की गुंजाइश नहीं। तुमने लाठी मारकर कलवर्ट का रेलिंग तोड जो डाला है।''

सीढ़ी के पास जो भीड़ खड़ी थी, उनमें से किसी ने चिल्लाकर कहा, ''सिमेंट

के बदले बालू से चिनाई करने से तो लाठी की मार से पुल टूटेगा ही। इसी से समझ लीजिए कि काहे से ब्रिज बनाया गया है।"

मणि सिगरेट का कश लेते हुए भीड की बातें सुनते रहे। फिर धीरे से एमएलए से पूछा, "मैंने तो सोचा कि तुम्हारी टाँग टूट गयी है सो यहाँ पडे हो। तुम्हें ले जाना होगा। पर ये कह रहे हैं कि वह ठीक है—पुल ही टूटा है।" मणि ने सबको सुनाते हुए थोडा-सा रुककर यह जुमला कसा था।

अबकी बार एमएलए को हँसना ही पडा। हँसते हँसते उसने कहा, "अरे, हमारी बात छोडिये—फूलबाडी के लोगो के साथ तो इंजीनियर का भेंट होना ही चाहिये।"

"इंजीनियर का तो ऑफिस है।"

"वह ऑफिस टॉफिस तो हो ही गया है मणि दा। फूलबाडी के लोगो का नाम सुनते ही वह क्या पता भेंट न करे, मना कर दे।" सीढी पर से एक आदमी ने कहा।

"जो कहना है वह कहेंगे वह तो आये है। इतना चिल्ला क्यों रहे हो ?" मणि ने सीढी की ओर दो कदम बढाकर कुछ सख्ती से कहा।

"अरे चुप हो जा, चुप हो जा, मीटिंग शुरू होने दे।"

"नही, मै बात की बात कह रहा हूँ।"

"देखे-देखे" कहते हुए दो गेरुए वस्त्र वाले सज्जन अंदर चले आये, पीछे-पीछे एक आदमी सर पर शतरंजी उठाए हुए था। वे बरामदे के ऊपर चले गये। फिर खडे होकर उस आदमी से कहने लगे, "अच्छी तरह से बिछा दो।" इतने लोगो के एक साथ ऊपर आ जाने पर सीढी के मुहाने पर भीड लग गयी थी। हाट कमेटी के मेंबर ऊपर आते है। मणि नीचे आ गये। एमएलए नीचे उतर आये। और एक आदमी ने सीढी पर दो कदम चलकर कहा, "नमस्ते मणि बाबू।"

"अरे गयानाथ बाबू, आप भी पहुच गये है ?"

"आने के लिए कहा था। आज हमारे क्रांति हाट का कितना बडा सौभाग्य है।"

"क्या हुआ, सौभाग्य काहे का ?"

'यही जो आप लोग सब मीटिंग करने के लिए सेंटर बनाए, यह तो सौभाग्य की बात है न ?' कहते हुए गयानाथ ने इंजीनियरो को दिखाया। वे कुछ दूरी पर एक जगह खडे थे। उनको लेकर कुछ कहा गया है, यह सुनकर उनमे से एक ने कहा, "कुछ कहा आपने ?"

मणि ने सिगरेट उठाकर इशारे से 'नहीं' कहा।

गयानाथ ने मणि से कहा, "हो मणि बाबू। इधर सुनो जरा।" सीढ़ी से उतर कर थोड़ा-सा हटकर खडे होते ही गयानाथ ने कहा, "रात मे कितने लोग रहेंगे ? खाना-वाना बनाना शुरू कर देना चाहिये।"

"अरे नही नहीं। हम अभी चले जायेंगे, अभी। तुम वह सब मत करो।"

47
भाषण और भावना

हाट कमेटी की यह शतरंजी इतनी बड़ी थी कि सुहास के दरवाजे तक पहुँच गयी थी। चौड़ाई मे उसे मोडना पडा। सुहास के दरवाजे के पास, शतरंजी के छोर पर दो कुर्सियाँ पास-पास सजाकर रखी गयी थी। पेट्रोमैक्स कुर्सियो के पास ही रखा हुआ है। हाट कमेटी के लेबर ने सीढी के सिरे पर खड़े होकर कहा, "मणि बाबू, बैठिए यहा। आगे से कह देने तो टेबिल-चेयर का भी बदोबस्त हो जाता। पर अभी तो स्कूल भी बद हो चुका है और मास्टर तो मानाबाडी मे रहता है।"

"अरे नहीं नहीं, टेबिल-कुर्सी की आवश्यकता ही क्या है, यह तो आपने जनसभा का ही बदोबस्त किया है।"

"हमारी मीटिंग कितनी देर तक चलेगी ? कब शुरू होगी ? क्यो वीरेन दा ?"

"हाँ भाइ, यह तो वैसे ही कोई मीटिंग-वीटिंग नही है। बस बैठकर बातचीत करनी है थोडी देर के लिए।" कहते-कहते एमएलए बरामदे मे आ गये। जूता खोलकर हाथ मे लिए-लिए एकबारगी पेट्रोमैक्स के सामने जाकर बैठ गये। एमएलए के पीछे-पीछे सभी लोग बरामदे मे आ गये। अपने-अपने जूते हाथों मे पकडे हुए। कुछ लोगों का एक समूह जाकर एमएलए के ठीक सामने बरामदे के कोने की ओर बैठ गया। सब के बैठ जाने पर देखा गया कि जगह की तुलना मे कोई अधिक लोग नही हैं वहाँ। एमएलए ने बुलाया— 'मणिदा, आइए। और देर क्या करें ? आइए, आइए ।'

मणिदा अपना चप्पल उतार कर बरामदे मे रख आये। पीछे मे इंजीनियरो मे से एक ने कहा, "सर जरूरत हो ना बुला लीजियेगा। हम यहीं है।"

"क्यों ? बात तो आप लोगों के साथ ही होगी और आप लोग वहा क्या रहेंगे ?" एमएलए इंजीनियरो की ओर ताकते हुए बोले। फिर उन्होने कहा, "मुँह पीछे छिपाकर बातें करोगे क्या ?"

फिर एक-एक कर इंजीनियर लोग ऊपर आने लगे। उनमे से जो आगे था, वह फीतेवाला जूता पहने हुए था, इसी से झुककर उसे जूता खोलना पड़ा। इसमे थोडा समय भी लगा। पीछे के दोनों इंजीनियरों ने खड़े-खड़े ही जूतो के बेल्ट खोले। और एक के पैरो में सैंडल था। मणि बाबू के पास जूते रखकर वे थोड़ा आगे आये, सबसे पीछे दीवार पर टेक लगाकर बैठ गये।

अचानक गयानाथ सीढ़ी पर से ऊपर आ गया, फिर अपनी पतली आवाज़ में बोला, "मणि बाबू और हमारे एमएलए साहेब, हमरा एक ठो प्रश्न था।" सबके गयानाथ की ओर देखते ही वह कहने लगा, "हमरा प्रश्न ई है कि यह मीटिंग कोई प्राईवेट मीटिंग है या जनसभा है ? अगर यह प्राईवेट मीटिंग है तो मई रहूँगा नही। क्योंकि मई आप लोगों के पार्टी का आदमी नही हूँ और अगर यह साधारण जनसभा

है तो मुझे रहना पड़ेगा। क्योंकि मई जनसभा का मेंबर हूं और मणिबाबू और हमारे एमएलए साहेब का भाषण सुनना चाहता हूँ क्योंकि...''

गयानाथ को रोककर मणि बाबू ने कहा, ''क्या वीरेन दा ?''

एमएलए ने गयानाथ से कहा, ''अरे बैठिये न, बैठिये। यहाँ तो सभी की बात हो रही है। आप होंगे तो और ही बेहतर होगा। मैं कह सकूंगा कि गयानाथ बाबू भी इस मीटिंग में थे। अरे जिसके घर पर हमलोग बैठे हैं वे ही नहीं हैं।'' एमएलए दरवाज़े की ओर मुड़कर बोले, ''क्यों भई, आप भी तो आइए न ?''

सुहास ने कमरे के अंदर से बाहर निकल कर कहा, ''मैं अब और यहाँ...''

''अरे बैठिये, न बैठिये।'' मणि दा ने दाहिने हाथ को दाहिनी ओर मोड़कर इंजीनियरों की ओर की जगह को दिखाया। सुहास एमएलए के सामने से होकर पहले दल के आगे से गुजरता हुआ इंजीनियरों के पास ही दीवार से सट कर बैठ गया।

गयानाथ ने फिर से कहा, ''ठीक है। आप लोग बात शुरू कीजिये। हमको अनुमति दीजिये, आप लोगों की चाय-पानी की व्यवस्था देखकर आता हूँ।''

एमएलए ने इस तरह से सिर उठाया कि लगता था वह अभी-अभी बोलना शुरू कर देंगे। पर एमएलए ने अचानक सामने की ओर देखकर कंधा उचका कर सीढ़ी की ओर नज़र फेर ली। फिर कंधा घुमाकर कुर्सी के ऊपर ताकने लगे और बोले, ''हमारा ब्रीफकेश ?'' सभी एकबारगी तलाश करने लगे। प्रियनाथ घर के अंदर से हाथ बढ़ाकर ब्रीफकेश ले आया।

ब्रीफकेश पास में रखकर एमएलए ने कहा, ''सुनिये, अभी बात आरंभ हो जानी चाहिये। फूलबाड़ी में यह बातचीत करना बेहतर रहा होता। पर वहां हमारे असिस्टेंट इंजीनियर साहब नहीं थे। फिर मालबाज़ार में मैं उनके दफ्तर में भी यह बातचीत कर सकता था। पर आमने-सामने बातचीत होना जरूरी था। इसी से मैंने यहाँ आने के लिए कहा। वह भी मेहरबानी करके आये हैं। हमारे ज़िला किसान-समिति के संपादक कामरेड मणि बागची भी आये हैं। तो अभी हम बातचीत कर सकते हैं। तो मैं अनुरोध करूंगा कि जो लोग फूलबाड़ी के हैं, और यहां उपस्थित हैं, पहले उनका कहना ही बेहतर होगा। वे ही पहले तमाम बातें कहें जो उन्हें कहना है। उसके बाद हम इंजीनियर साहब की बात सुनेंगे। तो कहिये, फूलबाड़ी के कामरेडों में से कोई कहे।''

जो दल एमएलए के सामने, बरामदे में कोने की ओर एक साथ बैठा था, वह ठीक-ठाक होकर बैठ गया। सामने बैठे एक आदमी को धकिया कर बोला, ''हे नकुलवा, तुम ही कहो न।''

उसने गर्दन घुमाकर कहा, ''काकाजी कहेंगे।''

जिसे 'काकाजी' कहा गया था, वह बीचोंबीच बैठा था। वह बैठे-बैठे एमएलए की ओर देखकर ऊँची आवाज़ में बोला, ''इसमें इतना कहना-सुनना क्या है, पता नहीं। जबसे इस फूलबाड़ी के फूलझरन पर एक ब्रिज बनने की बात तै हुआ है, तबसे

तरह-तरह का झमेला शुरू हो गया है। तबसे न जाने कितना झमेला चला आ रहा है।" इतना कहकर काका एक बार मुडकर इजीनियरो की ओर देखने लगे। फिर सिर झटक कर पूछे, "किसने कहा है कि ब्रीज होगा ? किसने कहा है ? आएँ ? नहीं बाबा, इस फूलझरन के ब्रिज को लेकर विगत बीस वर्षो से कितने झगड़े-फसाद हुए हैं। मै जब बीस साल का जवान था, तब खगेन दास गुप्त मंत्री थे। और उसने क्या कहा। अरे तभी मालबाजार जनरल सीट था, क्या तो नाम था उस एमएलए का, तब तो वह कहा करते थे, हो गया रे, हो गया बीरीज, यही समझो कि आने वाला वरसात के पहले ही हो जायेगा, एकबारगी काड।"

वह कहते-कहते एक बार एमएलए की ओर, एक बार मणि और एक बार इजीनियरो की ओर गरदन बार बार घुमा-घुमाकर खुद भी धीरे-धीरे घूम जाता। फिलहाल उसका चेहरा मणि बाबू की ओर था। मणि दा एक और सिगरेट सुलगा कर आराम से बैठे हुए थे थोडा झुककर। मणि दा काफी लबे थे। ऐसा लगता था जैसे वह अपने को मोड-माडकर बैठाये हुए थे। वह सिगरेट के धुंए के बहाने अपने चेहरे पर उभरते विरक्ति भाव को छिपाने की कोशिश कर रहे थे। काका फिर कहने लगे थे, "तो हुआ क्या कि हम सब लोग तभी के पोर मत्री से मिले थे, हमने कहा कि ब्रिज नही तो वोट भी नही। यह सुनकर मत्री ने कहा, क्या कहा ? ब्रिज नहीं हुआ ? हमे तो पता चला कि ब्रिज हो चुका, उसके रुपये-पैसे का भी लेन-देन खत्म हो गया। हमने सोचा, खा गये। झूठ बोलकर एक बार अगर ब्रिज का पैसा निकाला जा चुका है तो फिर हो गया ब्रिज ? बस ढूँढा-ढूँढो कि कहा गया ब्रिज ? मत्री जी कलकत्ता में कागद-पत्तर मे ब्रिज को ढूँढने लगे—कहाँ गया ब्रिज ? और हम सब मिलकर यहाँ ढूँढते फिरे ब्रिज को।" कुछ पल के लिए रुक गये काका। वो जानते थे कि यहाँ हसने के लिए सबको कुछ समय चाहिये। उसने खुद भी हँसकर सबको वह समय दे दिया। मणि ने एमएलए की ओर देखकर हथेली एक बार उलटी। एमएलए की नजरो से पता नही चल रहा था कि वह देख पाया कि नहीं। पर काका की नजरों ने उसे भाँप लिया था और वह फ़ौरन कहने लगा, "मणि बाबू, मैं जल्दी-जल्दी कह दे रहा हूँ। अच्छा तो उस कहानी को छोड दे। अभी बात यह है कि "

पीछे से एक छोकरा चिल्लाकर बोला, "काका, मई कहूँगा। इसके बाद की बात मई कहूँगा।"

काका ने एक बार सबकी ओर देखकर कहा—अरे कहना क्या ? मैं तो वही कह रहा हूँ। मैं बात शुरू करता हूँ तो मुझे सब बात याद है। और तू यही कहना चाहता है न ? हमारे समय नेता थे नरेश चकली—पटल घोष और अभी हमारा मणि बाबू लीडर, फिर उसके बाद क्या कहते है वीरेन बाबू एमएलए। अभी तो तू बोलेगा, बोल-बोल।"

काका की आवाज ऊँची हो गयी थी। वह बात को खींच-खींचकर, तरह-तरह

की मुद्रा से, स्वरों के उतार-चढ़ाव के साथ जब कह रहे थे तो धीरे-धीरे उस कहानी के लिए एक आबोहवा भी बन गयी थी। यहां तक कि यहां जो सज्जन बैठे थे, सुहास, इंजीनियरों और प्रियनाथ, अगर मणि दा को न भी पकड़ा जाये, तो भी वे कहानी के रस में डूबे हुए थे। कहानी की पकड़ में आ गये थे। एमएलए इस तरह बैठे थे कि लगता था कि कहानी रातभर भी अगर चले तो उन्हें कोई एतराज नहीं, रुक जाने पर भी कोई आपत्ति नहीं होगी उन्हें या फिर उन्हें पहले से ही पता है कि कहानी अब खुद-ब-खुद खत्म हो जायेगी। सिर्फ मणि बागची ही अकेला उकता कर, धीरज खोकर बार बार सिगरेट पर सिगरेट फूंके जा रहे थे। पर यह इलाका वीरेन का है। वीरेन यहां बैठे-बैठे ही असिस्टेंट इंजीनियरों को तलब कर लाये हैं। सो, क्या होगा, क्या नहीं होगा उसे वीरेन को ही तय करना है। बाद में वह निश्च... भी वीरेन से कहेगा, इस तरह से अगर ऑफिसरों का 'हरेस' किया जायेगा तो कोई भी अफसर काम करने में उत्साह नहीं दिखायेगा। पर मणि जानता है कि वीरेन भी उससे पूछ सकता है असिस्टेंट इंजीनियर जाकर उसे कहते ही वह एकदम से गाड़ी पर कैसे सवार हो गया—फिर यह जानते हुए भी कि क्रांति हाट पर जबकि खुद मौजूद है। इससे तो सबकी यही धारणा बन गयी कि पार्टी के अंदर अफसरान का खूंटा मणि बाबू ही है। पर ऐसी आशंका है, इसी से मणि बाबू ने भी अपना कैफियत तैयार कर रखी है। वीरेन बाबू लोगों को साथ में रखकर अगर इंजीनियरों को बुला सकते हैं और वे अगर 'पैनिक' होकर उसकी मदद मांगे, तो आफिसरों का 'मोरेल' रखने के लिए मणि को आफिसरों के साथ आना ही होगा। मणि जानता था कि पार्टी के अन्दर अभी सबसे बड़ी दुश्चिंता है कि किसी भी तरह से ऑफिसरों को 'डिमोरलाइज्ड' न किया जाये, इसके चलते एक-दो जगह पर लोग उन्हें गलत समझें तो समझें। मणि दा का ख्याल है कि पार्टी के भीतर के इस स्थान को वीरेन समझ नहीं पाता। पर फिर भी तो मणि दा वीरेन के इलाके में टांग अड़ा नहीं सकता।

48

एमएलए और ऑफिसर : बातचीत का एक और रुख

तभी वह लड़का खड़ा होकर कहने लगा—"कामरेड्स।"

एमएलए ने हाथ उठाकर कहा—"बैठे-बैठे कहो हेमेन। बैठकर ही बोलो।"

काका तभी हंसकर एक हाथ उठाकर हिला रहे थे। पर हंसी के कारण उनसे कुछ बोलते न बन पड़ रहा था। काका के हाव-भाव से अथवा एमएलए की बातों से सब के सब हँसने लगे थे। लोगों के अंदर जो एक तरह की उत्तेजना थी, उसके बावजूद सब हँसने लगे थे। हँसी से उत्तेजना कुछ कम हो जाती थी, इसके बावजूद भी सब लोग हँसी में शामिल हो गये थे। और हेमेन दोनों हाथों से मुँह ढँककर बैठ

गया था।

"अरे, क्या हुआ, क्या हुआ, बोलो हेमेन।" मणि दा सीधा होकर बैठ गये थे। मणि दा के दाँत बडे-बडे है। इसी से उनकी सभी बाते गुस्से से कही गयी-सी लगती है। ऐसा सभी को मालूम पडा। ओर इस बीच किसी ने भी बात शुरू नही की इससे तो मणि बोखलाये हुए थे ही। इजीनियरो से वह घटना के बावत सुन चुके थे। पर इनकी ओर से तो अब तक कुछ नही सुना गया था। हालांकि सुने बगैर भी वह समझ सकते है कि घटना क्या घटी है। आफिसरो की बातो से ही घटना का पता चल जाता है। मणि समझ नही पा रहे है कि घटना के साथ वे कहा तक जुडे है। मालबाजार जाकर इजीनियरो के साथ बात करना स्वाभाविक था। पर बीरेन ने जब वैसा नही किया तो मणि को सबसे पहले बीरेन के मन को जान लेना ठीक लगा। मणि की बातो मे जो ऊब थी, उससे सबकी हँसी कुछ हद तक कम हो गयी थी। काका ने भी हँसी बद करके कहा, ' अरे यह तो तोतला है। यह क्या कहेगा इसी मे खडा होकर भाषण झाड रहा था। भाषण देने मे हमारा हेमेन ततलाता नही है।' काका की बातो से लोगो मे फिर से एक बार हँसी की लहर उठी। पर हेमेन ने हाथो के भीतर से सिर नही उठाया।

"छोडिए, मै कहता हूँ।" जब्बर खडा हो गया। फूलबाडी के सबसे बडे जोतदार का सबसे छोटा लडका। काग्रेसी परिवार है। बड़े भाई लोग भी सब कांग्रेस मे है। जब्बर सन् 68 में पहले सीपीआई ज्वाइन किया। फिर एक दो साल तक बार-बार पार्टी बदलता हुआ अबकी बार वामफ्रंट मे आ गया है फिर से। टेरेलीन का पैंट और टेरेलीन की गजी पहन जब्बर ने खडा होकर कहना शुरू किया "मनिदा। बात तो सभी को ही मालूम है। हमारे फूलबाडी का कलवर्ट बन चुका है। पर हम शुरू से ही इस ठेकेदार के काम से सतुष्ट नहीं हो पाये है। कोई भी सतुष्ट नही है। हमारे बाबा भी नही, जगदीश काका भी नही। यह पार्टी की बात नही है। यह हम सभी की बात है। हम डर था कि ब्रिज टूट जायेगा। तो आज हमारे एमएलए साहब के पैर की चोट से ही वह हो गया। यह हमारे लिए परम सौभाग्य की बात है। क्योंकि '

जब्बर की बातो मे दखल देते हुए इजीनियरो के बीच से किसी ने जोर से कहा, "जरा जोर से बोलिए, सुनाई नही दे रहा।"

"जब्बर जितनी जोर से अगुलियाँ हिलाता रहा था, उतनी जोर से कह नही पा रहा था। थोडी-सी गरदन उठाकर बोला, "आज हमारा परम सौभाग्य है कि एमएलए साहब खुद फूलबाडी गये थे और हमारा आरोप सच है या नही, यह परखने के लिए ब्रिज के रेलिंग पर खुद लाठी मारकर उन्होंने देखा और ब्रिज का रेलिग टूट गया। यानी कि यह बात अगर हम बाद में कहते तो हमारे मत्थे पर दोष मढ दिया जाता कि हमने ही, यानी कि फूलबाड़ी वालो ने ब्रिज तोड़ा है। समझिए, हमारी ही ब्रिज को हम ही तोडे है। जिस ब्रिज के होने से हमारे कितने लोगों को कष्ट दूर हुआ

है, उसे हम ही तोड़ेंगे कैसे, यह बात कोई नहीं समझता।'' जब्बर की आवाज़ ऊँची उठते ही एमएलए ने हाथ के इशारे से उसे रोक दिया।

''ठीक है।'' जब्बर बैठ गया। एमएलए ने गला साफ़ करने के लिए दो-तीन बार खंखारा। चेहरे पर दो-एक बार हाथ फेरा। लगता था कि अब वे कुछ कहेंगे। इंजीनियर लोग दीवार से हटकर सीधा होकर बैठ गये थे। मणि एक और सिगरेट सुलगा कर पाँव समेट कर सीधा हो बैठ गये थे। मणि दा समझना चाहते थे कि वीरेन क्या कहना चाहता। इस घटना से अचानक जुड़ा मणि फ़ौरन ही कोई समाधान ढूँढ़ निकालना चाहते थे। वीरेन समाधान नहीं चाहता, घटना को और उलझाना चाहता था—पर, यह बात मणि को पता नही। और, अभी इस छोकरा जब्बर की बातें सुनते-सुनते मणि को लगने लगा था कि सब असिस्टेंट इंजीनियरों से खबर पाने के बाद अचानक उसे यहाँ आना पड़ा था, इसी से असिस्टेंट इंजीनियरों ने उसे समझा दिया था कि इस झमेले को यहीं पर ही मिटा देना चाहिये। वह भी मणि बाबू जो भी कहें उसके मुताबिक। पर उसके पार्टी के लोगों के मुताबिक नहीं, क्योंकि उनकी बात ठीक नहीं है। आज की यह मीटिंग हो जाये फिर पहले ही वीरेन के पेंच को चलने दिया जाये। मणि, अपने स्वभाव के अनुसार अब तक जो सोचते आये थे, उसके विपरीत सिद्धांत की ओर झुक रहे थे। तब तक एमएलए ने बोलना प्रारंभ कर दिया था। गयानाथ हाट कमेटी के मेंबर के साथ कुछ और लोगों के लिए सीढ़ी से ऊपर आ गया था और शतरंजी के बीचोंबीच बैठ गया सुहास के करीब। ठीक फूलबाड़ी के लोगों के एकदम पीछे।

''यह बात फूलबाड़ी बस्ती के सभी लोग कह सकते हैं कि उन लोगों ने इस कंट्राक्टर के मामले को लेकर हमें, सरकार को और विभाग को ढेर सारे पत्र लिखे हैं और अपनी ओर से मैं कहना चाहूंगा कि मैं उन सब पत्रों का उत्तर नहीं दे पाया हूं। पर हम स्थानीय पीडब्ल्यूडी का असिस्टेंट इंजीनियर के ऑफिस मे उन पत्रों को बाकायदा भेज दिया है। हमारे असिस्टेंट इंजीनियर साहब इस विषय पर प्रकाश डालेंगे कि उन पत्रों का क्या हुआ, उन्हे मिला या नही, अगर मिला है तो उस पर क्या कार्रवाई की गयी है, इन सब पर वे प्रकाश डालेंगे।''

असिस्टेंट इंजीनियर इस तरह की मीटिंग से तो अनभ्यस्त थे ही, फिर कुछ डर भी गये थे। फिर भी वह उठकर खड़े हो गये। एमएलए ने कहा -''आप बैठिये, हमें सुनने में कोई दिक्कत नहीं होगी। आप बैठे-बैठे ही बोलिए।''

किस तरह से बात शुरू की जाये, यह तय कर . में इंजीनियरों को कुछ समय लग गया। 'माननीय अध्यक्ष महोदय या दोस्तों या फिर 'कामरेड्स'—कौन-सा संबोधन उचित होगा, वह सोचने लगा—'कामरेड्स' कहने से तो चलेगा नहीं, इंजीनियर को ''दोस्तो'' कहना नहीं पड़ा है। बैठे-बैठे 'दोस्तो' कहा जा सकता है कि नहीं वह समझ नहीं पाया। 'माननीय अध्यक्ष महोदय' अवश्य कहा जा सकता है, पर यह अध्यक्ष की

सभा है या एमएलए की सभा ? बहुत कम समय में ही उसे इतनी सारी बातें एक साथ सोचनी पडती। और तभी उसने सुना कि एमएलए उससे पूछ रहे हैं, "आपको इनके डेपुटेशन और हमारी चिट्ठी तो मिल गयी थी न ?"

"जी, जी हाँ। यह मामला तो हमारे एसएई मिस्टर मडल डील करते है। वह बता सकते हैं।"

"उनके साथ तो हमारी बातचीत हुई है। उन्होने तो आपको खबर भेजी है। हम यह जानना चाहते हैं कि आपने भी उन पत्रों को देखा है या नहीं ?" एमएलए ने काफी ठडी आवाज़ में सवाल किया था। पर फूलबाडी के लोगो ने इस बात पर जिस तरह से एक साथ सिर हिलाया, उससे लगता था कि सवाल काफ़ी महत्त्वपूर्ण है।

इजीनियर ने तभी बोलना शुरू किया, "दरअसल, सरकारी ऑफिसों मे एक-एक ऑफिसर एक-एक काम के चार्ज पर रहते है। उन सभी कामो का करेसपाडेस फाइल भी वे ही देखते है। वे जब हमे बताते है तो तभी हमे मालूम होता है।"

इस बात पर एमएलए हँस पड़े। फिर बोले, "आपका ऑफिस के लिए यह अच्छा नियम है। वह हमे पता नही था, इसी से सब गडबड हो गया। पर एक-एक सरकारी ऑफिस मे एक-एक नियम हो तो हम जैसे लोग गडबड मे पड जायें।"

"सभी सरकारी ऑफिस मे तो सामान्यतया यही नियम चलता है। एक-एक फाइल एक-एक ऑफिस के चार्ज मे होनी है। मै तो फूलझरन कलवर्ट की फाइल साथ मे ले आया हूँ।"

"वह तो आज आपको लाना ही होता। हम सब यहाँ बैठे है, पर आप जब सरकारी ऑफिस का क़ानून-कायदा जानते है, तो हमे भी तो एक-दो का कम से-कम पता होगा। हमे तो ऐसे सरकारी ऑफिसों का पता है जहा ऑफिस की किसी नई ब्याही लडकी की चिट्ठी-पत्री आती है तो ऑफिसर खुद पहले पढ लेता है।"

सब दबी आवाज मे हँस पडे। गयानाथ बार-बार सिर झटक रहा, हिलाता रहा, जैसे ऐसी बहुत-सी बाते वह जानता हो। हाट कमेटी का मेबर चुपचाप हँसता रहा। और मणि थोड़ा-सा अवाक होकर वीरेन की ओर देखने लगा। वीरेन ने इतना रुक-रुककर, बातें बना-बनाकर इंजीनियर को परेशान कर दिया ? असेंबली में अवश्य वीरेन ने दो-तीन बार भाषण दिया है, अखबारों मे भी आया था। भाषण तो अच्छा ही दे लेता है। और एमएलए होने पर भी सबसे अधिक मेहनत करता है। पर इसी मे क्या वह इतना बदल गया है ?

मणि को जैसे और याद नहीं रहा कि वह इजीनियरो से सुनने के लिए ही यहाँ आया है। उसको लगता था कि वीरेन के इस परिवर्तन को देखना ही उसका लक्ष्य था।

एमएलए बोले, "तो फिर इस बात को इस मीटिंग मे कहने की आवश्यकता

नही रही कि आपका उत्तर हमे क्यो नही मिल पाया ?''

"नही, वह ता आप जरूर पूछेगे ही। कहने का अधिकार बनता है आपका। पर हमारे ऑफिस म सिर्फ दा ही आदमी है क्लरिकल स्टाफ ओर एक टाईपिस्ट। वह मेटरनिटी लीव पर है। कोइ रिलीवर अब तक आया नही। हमारा एक असिस्टेंट टाइपिस्ट का काम कर रहा हे। वह भी कोऑर्डिनेशन कमटी का मेम्बर हे, इससे ।"

"वह ता ठीक ह। पर हम तो आपक यहा क एमएलए ठहरे।"

इस बार की हसी म इर्जीनियर भी शामिल हा गया था। मणि बाबू भी हँस पडे। एमएलए तभी कहने लगा, "हमारे इस इलाक म क्या काम चल रहा है, उसके बारे मे काइ बात जानना हा तो क्या हम पहले मालूम करना हागा कि कौन-सा ऑफिसर काम क चार्ज म ह, तब जाकर हम उसका लिखना पडगा क्या ?"

"नही, नही, एसा कस हो सकता है सर आप ता मुझ ही लिखग।"

"पर आप तो हमारे पत्र का काइ उत्तर नही दत। हमन आपका पहले से ही पत्र लिखा था कि आज हम फूलवाडी क इस ब्रिज का दखने आ रह ह। पर यहाँ आकर दखा कि यहा आपका मिस्टर मडल ह। पर बात ता आपक साथ ही थी।"

"म यह बात समझ नही पाया सर। मन सोचा था कि मिस्टर मडल इस काम क चार्ज म ह उनका रहना ही काफी हागा।

आपक साथ अगर मरा काइ काम हाता ता मै ऑफिस म जाता। पर दरअसल यह बात ब्रिज क सामन ही हानी चाहिये थी। क्योकि आराप था कि ठकदार न काम ठीक स नही किया ह।

49
ठेकेदार और इंजीनियर

ये सब आराप अगर थाडा स्पसिफिक न हाग अथवा पार्टिकुलर कम्पलट न होगी तो डिपार्टमेट क लिए इन्क्वायरी करना मुश्किल हागा। इसस हमार हर काम का प्रोग्रेस हेम्पर हागा। ठकेदार लोग भी डिमोरलाइज्ड हाग।

"फूलबाडी बस्ती के लोग अगर आपको यह बता पाते कि क्या क्या कमी हे तो फिर वे लाग ही इजीनियर हात। पर जो बात बार बार उभरकर सामने आ रही थी, वह यह कि कट्राक्टर बालू और सीमट का मिश्रण ठाक स नही कर रहा। फूलझरन से बरसात मे काफी पानी जाता है, वह भी काफी तेज बहाव क साथ। इस तरह का मिश्रण तो पलक झपकते ही बह जायेगा। य बात क्या आपक कान मे नही पहुँची ?"

"हाँ, हमने सुना था, पर कोइ स्पसिफिक कपलेट नही था इसी से ।"

"मिश्रण मे ?"

फूलबाड़ी बस्ती के लोगो मे से किसी न कहा, मसाले की ।"

"हॉ-हॉ, मसाले का मिश्रण क्या आप लोगों में से किसी ने परख कर देखा था ?"

"नहीं, वह तो नहीं किया गया। ठीक है। पर ऐसा तो कहीं भी किया नहीं जाता। एक ठेकेदार भला ऐसा कैसे कर सकता है।" –सामूहिक हँसी से इंजीनियर की बात दब गयी। इंजीनियर थोडा-सा अप्रस्तुत होकर रुक गया।

"यह आप क्या कह रहे हैं ? ठेकेदार लोग काम मे क्यों घोटाला करते हैं या चोरी करते हैं, वह क्या आप नही जानते ? मणि ने खूब हँसते हुए सिगरेट का कश लिया।"

"ठेकेदार और इंजीनियर
देश को किया तहस नहस।"

"बरसात आयी। कहाँ किस जंगल के बीच कौन सी नदी टूटी बस, डालो पत्थर। किसका पत्थर कौन डालता हे और कौन हिसाब रखता है ? कौन ? एक-एक पत्थर पानी में गिरने मे ठेकेदार का बारह आने और साहब का चार आने, और जो पत्थर उठाये नही जाते, डाले भी नही जाते—उन पत्थरो का चौदह आने साहब का और दो आने ठेकेदार का।"

"अरे, इस तरह की बात हो तो मुश्किल है।"

"काका, चुप भी रहो, यह सब बाते कहा मत करो अगर पकड सका तो फिर साला को कहना।" रामलाल की बात सुनकर फूलबाडी के काका ठठाकर हस पडे—"यह तो आपने बहुत ही अच्छा कहा। फिर तो तिस्ता बुढिया म भी हिसाब लेना पडेगा कि बुढिया को कितना पत्थर मिला है ?"

"आज सुबह ढलाई का काम हुआ। मे शाम को या उसके पहले वहाँ पहुँच गया। और परख करने के लिए पर से एक धक्का लगाया। आपके मिस्टर मडल वहाँ मौजूद थे। पर पूरा-का-पूरा रेलिंग भुरभुराता हुआ गिर गया। क्या यह भी कोई प्रमाण नही हे ? आपके मिस्टर मंडल तभी हमे समझाने की कोशिश करने लगे कि हर जगह ऐसा ही हुआ करता है।" रामलाल ने कहा।

मिस्टर मडल कुछ कहने के लिए खडे हुए, पर इजीनियर ने हाथ के इशारे से उन्हें रोक दिया। "जैसा भी सीमेंट क्यो न हो, कोई भी ढलाई चौबीस घटे से पहले नही जमती। बारह घटे के अदर पाँव से धकियाने पर हिंदुस्तान कन्स्ट्रक्शन का बनाया हुआ रेलिंग भी गिर जायेगा।" इंजीनियर को इतने समय के बाद हँसने का मौका मिला था। और किसी इजीनियर की हँसी उसके साथ मिल नहीं पायी। पर समझा जा सकता था कि उसके साथ गुट का समर्थन था जो सिर हिलाने के भाव से प्रकट हो रहा था। रामलाल अब तक जिस ठंडी जुबान में बातें कर रहे थे, अबकी यह भाव इंजीनियर की जुबान पर आ गया था। उसके कहने के लहजे से पता चलता था कि यह बात उसके ज्ञान के सीमा के भीतर की ही है और

इस विषय में वह काफ़ी निश्चित ही है।

एमएलए को पहले से ही पता था कि यह खतरा आने वाला है और वह उसकी प्रतीक्षा में भी था। अपने अनुभव से उसे पता था कि इस विषय पर चर्चा जितनी लंबी खिंचेगी, इंजीनियरों के लिए उतनी ही सहूलियत होगी। और एमएलए अपने काम-काज के बहाने बराबर यहाँ आकर रुक जाया करता था। उसके रुकने के लिए और भी बहुत-सी जगह थी, पर यहाँ आने पर उसे बिल्कुल रुक जाना पड़ता था। एमएलए ने सिर को ठंडा रखते हुए कहा, "सुनिये, तर्क के जरिये इसका फैसला नहीं हो सकता। हमारा डाक ठीक है या गलत है इसका भी तो परखने का कोई नियम है। उसी नियम के बारे में आप हमें बतायें, हम सुन रहे हैं।"

इजीनियर ने ठडे स्वर मे जवाब दिया, 'इस मिक्सचर का सैम्पल लेकर स्टेट टेस्टिंग लेबोरेटरी को भेजना होगा। वहां से वे रिपोर्ट देंगे।"

"इस केस मे आप वह करने के लिए तैयार है ?"

"हमारे राजी होने, न होने का तो कोई सवाल ही पैदा नहीं होता। आप अगर भेजने के लिए कहे तो भेज दिया जायेगा। तब इस हाल मे जब तक रिपोर्ट आ नहीं जाती, काम बंद रखना होगा।"

"काम कैसे रुक सकता है ? रेलिंग फिर से नहीं बनायेंगे, बस यही न ? क्यों ? आप लोगों को क्या रेलिंग छोड़ देने से काफी दिक्कत होगी ?"

"इस ब्रिज पर तुम लोगों के न जाने पर भी कोई असुविधा नहीं होगी। आज नही तो कल वह गिर ही जायेगा। चाहे इजीनियर कितना ही क्यो न कहे।" फूलबाडी के लोगो मे से किसी ने कहा। एमएलए धमकी देने जैसे अन्दाज में बिफर पड़े, "बेकार की बकवास मत किया करो। जो पूछा जा रहा है सिर्फ उसी का जवाब दो।"

इस बीच इजीनियर लोगो मे कुछ खुसुर-पुसुर हो चुकी थी। इजीनियर ने कहा, "आप सिर्फ़ रेलिंग की बात क्यो कर रहे है, प्लेटफ़ार्म और रोड के बीच मिट्टी का काम भी बाकी है। वह भी नही होगा। मानें ब्रिज को इस्तेमाल ही नहीं किया जायेगा। फिर सैपल तो सिर्फ़ रेलिंग से लेने से होगा नही, सब पार्ट मे लेना पड़ेगा।"

"कहिये। एक-एक करके कहिये। मतलब रास्ता और ब्रिज के बीच जो खाई है, उसे पाटा नहीं जायेगा, यही तो ?"

"हाँ।"

"आप लोग एक बेला काम करके पाट नहीं सकते ?" एमएलए फूलबाड़ी के लोगों से पूछा।

"हाँ, कंट्रेक्टर भी अगर करेगा तो हमसे ही करवायेगा। तो हम यह काम बगैर पैसे के कर देंगे।"

मणि समझ नहीं पाये कि वीरेन किस ओर और क्यो जा रहा है। फूलझरन का

एक-दो हाथ लंबा कलवर्ट का कहाँ सेंपल भेजेगा और इस मौके का फ़ायदा उठाकर ऑफिसर और ठेकेदार काम बद कर देंगे। सभी काम ठप्प हो जायेगा। फिर इस विषय को लेकर इतने दूर क्यों जाया जाये, मणि यह भी समझ नहीं पाया। फूलबाड़ी में कभी भी उसकी पार्टी का कोई नहीं था, पर इस सरकार के बनने के बाद ही कहीं कुछ हुआ है। सरकार के चले जाने पर वह भी चला जायेगा। ओर वीरेन यहाँ तक बेकार ही जा रहा है। इसके साथ तो नीति का प्रश्न भी जुड़ा हुआ है। पार्टी के भीतर बार-बार आलोचना हुई है कि इस तरह का काम कोई कभी नहीं करेगा, जिससे लोकल थाना या प्रशासन अथवा सरकारी अफसरान के भीतर छूत लग जाये। मणि ने समझा कि उसे अब कुछ कहना चाहिये। पर वह तय नही कर पाया कि यहाँ जो चल रहा है, उसे चलने दें, और बाद में—मतलब निपटारा करवा दे या फिर वह यही कुछ कहे। पर वीरेन के साथ तो पहले से कोई बातचीत हुई नहीं है। वह समझ नहीं पाये कि वीरेन आख़िर इतना नाराज़ क्यों हो उठा है।

"तो फिर आज रात वीरेन से बातचीत कर सुबह इंजीनियर को आने के लिए कहा जा सकता है।"

"हाँ, और एक बात क्या कह रहे थे ?"

"नमूना तो सभी जगहों से लेना होगा, यही कह रहा था बस।"

"तो क्या इसके लिए पूरे ब्रिज का ही तोड़ना पड़ेगा ?"

"नहीं, नहीं, उसकी कोई आवश्यकता नहीं है, बस थोड़ा-सा ही तोड़ना होगा।"

"तो क्या वही ठीक होगा ?" एमएलए ने सबकी ओर देखते हुए सवाल किया।

50

एमएलए का गुस्सा और मीटिंग का अंत

"ठेकेदार की ओर से यह आदमी कुछ कहना चाहता है।" इंजीनियर ने अपने साथ बैठे एक आदमी की ओर इशारा करते हुए कहा।

"हाँ, कहिये। आप ठेकेदार के आदमी है ?" एमएलए ने पूछा।

आदमी उठ कर खड़ा हो गया। "हाँ सर। मैं उनका आदमी हूँ। आप लोग इस मीटिंग में जो तय करेंगे वह हमारे मालिक को स्वीकार है। मैं कल ही जलपाईगुड़ी जाकर उन्हें बता दूँगा। हमारे लिए तो यहाँ बहुत सारी बातें हुई हैं। मैं भी अपनी ओर से यहाँ कुछ कहना चाहता हूँ, अगर आप कहें तो..."

"कहिये, आप क्या कहना चाहते हैं, कहिये।" एमएलए ने कहा।

"आपके यहाँ तो कंट्राक्टर को लेकर इतनी सारी बातें हुई। पर ठेकेदार तो एक ही किस्म के नहीं होते। हमारे मालिक बड़े ठेकेदार हैं। वह यह सब छोटे-मोटे काम नहीं करते। यह बात साहब लोग भी जानते हैं। मणि बाबू भी जानते हैं। एमएलए

साहब भी जानते हैं। पर हुआ क्या कि मैं उनके साथ बहुत से साइट पर काम कर चुका हूँ। पाँच-सात वर्षों तक साथ काम किया है। इस तरह के एक छोटे काम के लिए मैंने मालिक से कहकर उनके नाम पर ही टेंडर भरा था। लिस्ट मे तो मेरा नाम नहीं। हमारे मालिक का टेंडर होने से यह बात सबको मालूम हो जायेगी। वैसा हुआ भी। फिर रेट भी काफ़ी लो था। क्योंकि मै खुद ही राजमिस्त्री का काम जानता हूँ। मेरे दो भाई हैं, वे भी जानते है। और कुछ आदमी भी लगा दिया। इससे हमारा जो लो रेट था, उसी से काम पूरा करके कुछ फ़ायदा भी हो जाता। पर अभी जब मालिक यह देखेंगे कि इससे उनकी कंपनी का नाम लेकर तमाम गोलमाल हो रहा है तो इससे मालिक की बदनामी होगी। मालिक मुझे काम से बरखास्त कर देंगे। यानी कि नौकरी से निकालेंगे नहीं यह तो ठीक है क्योंकि मैं उनका काफ़ी विश्वासपात्र हूँ। पर यह जो छोटा-मोटा काम करके मैं अपना एक काम भी कर रहा था, यह बिल्कुल बंद हो जायेगा।''

वह आदमी बात खत्म करके खडा हो गया था। एमएलए भी उसकी ओर देख रहे थे। लगता था कि इस आदमी की बातों से हालात फिर से बदलने लगे हैं। मणि दा सोच रहे थे कि इस अवसर को वे हाथ मे लेंगे। जाने नहीं देंगे। उनके सिगरेट का कश लेकर बात शुरू करने से पहले ही एमएलए ने कहना शुरू किया, ''वह बात तुम ऑफिसरों से बोलो। हम तो उन्हें कब से कहने आ रहे थे कि इस ब्रिज को लेकर एक झमेला होने जा रहा है। पर ऑफिसर लोगो ने हमारी बात को कोई महत्त्व नहीं दिया। तो जायें टेस्ट-वेस्ट हो कर आये।''

वह आदमी बोला, ''इसी को लेकर मुझे कुछ कहना है। मैंने अब तक कुछ कहा नहीं। पर अभी तो मुझ पर विपदा आन पड़ी है। इसी से बोलना ही पड़ रहा है। मै किसी का नाम नही बताऊँगा। आप लोगों से प्रार्थना है कि नाम न पूछें। मैंने जब पहले यहाँ का काम हाथ में लिया, यानी साइट मे आया, तभी यहाँ के कई लोग आकर बोले, ''हम सरकारी पार्टी के आदमी हैं, हमे पांच बोरा सिमेंट देना होगा। मैं किस तरह से काम करता हूँ यह तो आप लोगो को बता ही चुका हूँ, तो मैंने कहा—'भाई एक-आध बोरी लेना हो तो ले जाइये, मगर इतना सीमेंट मैं कहाँ से लाकर दूँ ? पर वे राजी न हुए। वे अपने घर का बाहरी फ़र्श ईंट-सीमेंट से पक्का करवाना चाहते थे। सो मैं इस पर राजी नहीं हुआ तो उसी से मेरा यह हाल हुआ है। आगे से पता होता तो दे दिया होता। पर तब समझ ही नही पाया था कि इतना बखेड़ा होगा। मैंने आज तक यह बात कही नहीं। पर आज अगर न बताऊँ तो मेरे ऊपर ख़तरा है, सो मजबूर होकर कहना पड़ा। अब आप जो उचित समझें।'' वह आदमी बैठ गया। फूलबाड़ी के लोगों में खुसुर-पुसुर शुरू हो गयी। पर मणि ने उसके पहले ही एमएलए को कह दिया था, ''मैं थोड़ा बोलना चाहता हूँ।'' फिर उठकर खड़े हो गये।

पर, फ़ौरन गयानाथ खड़ा होकर बोलने लगा, "मणि बाबू, हमारा तो ई सौभाग है कि तुम सब लोग, एमएलए आउर ये सब इंजीनियर हमरे इस क्रांति हाट में पधारे हो। तो हमें आप लोगन को चाय पिलाना चाहिये। अगर कहें तो फ़ौरन मँगवा लिया जाये।"

"लाइये, चाय पिलाइयेगा, यह तो बहुत अच्छी बात है।" कहकर मणि बाबू प्रतीक्षा करने लगे। गयानाथ और हाट कमेटी के मेम्बर के नीचे उतर कर चले जाने तक। फिर बोलने लगे, "इस बारे में हमरा कुछ कहना तो उचित नही है, मै अचानक ही यहाँ आ पहुँचा हूँ। पर मुझे लगता है कि कहीं-न-कही कुछ गलतफहमी रह गयी है। न हो तो ऐसी घटना क्यों होती ? इतने सारे ब्रिज बन रहे हैं, सड़कें बन रही हैं, पर उहाँ ऐसी कोई बात नहीं। थोड़ा-सा पहिले सावधानी बरती जाती तो इत्ता बखेड़ा न हुआ रहता। हमरे इंजीनियर अगर एमएलए की चिट्ठी का उत्तर देते या फिर उनके बीच कोई संपर्क बना होता तो बहुत पहिले ही ई सब मिट चुका होता। क्या कह रहे हैं इंजीनियर साहब ?"

इंजीनियर ने इशारे को समझ कर कहा, "मै मानना हूँ कि इसमे मेरी गलती हुई है। ग़लती अवश्य है मेरी। पर मैने सोचा था कि मिस्टर मडल ।"

इंजीनियर को रोकते हुए एमएलए अचानक चीख उठा, "सिड्यूल सीट के एमएलए को पत्र लिखने से आप लोगो का प्रेस्टिज घट जाता है न ? आप लोगों की इज्ज़त चली जानी है ?"

मणि दा अचानक चौंकते हुए बोले, "यह तुम क्या कह रहे हो वीरेन दा ?" एमएलए ने तमकते हुए कहा, "आप चुप रहिये। आप लोग यह बात नही समझेंगे, क्योंकि आपके साथ ये लोग तो इस तरह से कभी पेश नही आते। आप लोग अंग्रेज़ी बोलने पर अंग्रेज़ी बोल सकते है। मैं भी अगर एमएलए न होता तो यह सब नहीं समझता। वरना मालबाज़ार का एक मामूली असिस्टेंट इजीनियर की हिम्मत कैसे पड़ती कि मेरा पत्र पाकर भी यहाँ हाजिर न होता ? अगर इन्हे जलपाईगुड़ी या धूपगुड़ी के एमएलए की चिट्ठी मिली होती तो इस बार वहाँ दौड़कर पीछे-पीछे 'सर-सर' कर रहे होते। तो होना चाहिये, ज़रूर फ़ैसला होना चाहिये। मसाला टेस्ट होने के लिये लिया जाये। पर अगर उसमें कोई दोष पाया जाता है तो उसकी जिम्मेदारी इस ग़रीब ठेकेदार या इस सिड्यूल-कास्ट के मंडल पर नहीं जाती, इंजीनियर पर ही जायेगी। वह बच नहीं सकता किसी तरह।"

इसके जवाब में इंजीनियर कुछ कहना चाहता था पर मणि ने हाथ के इशारे से उसे रोक दिया। मणि दा तब तक खड़े ही रहे। वह इसीलिए खड़े थे कि वीरेन चुप हो तब वे कुछ कहें। इंजीनियर को रोकते हुए मणिदा को एमएलए ने देख लिया था। फिर बिफरते हुए बोले, "उन्हें रोक क्यों रहे हो, कहने दो। और कौन-सी नयी बात है जो कहेंगे। देख नहीं रहे कि साला इतने स्टेटमेंट के बाद भी घबराया नहीं,

साला ठेकेदार का आदमी भेजकर कहलवा रहा है कि इस फूलबाड़ी के सब लोग चोर हैं।"

फूलबाड़ी के सभी लोग एकबारगी तमतमाते हुए बरस पड़े, "नाम बताओ, नाम बताओ, हम उसे बुलाकर ले आयेंगे।" गुट मे से दो-चार आदमी खड़े होकर इंजीनियरों की ओर देखकर चिल्लाने लगे थे। मणि उनकी तरफ हाथ बढ़ाते हुए बोले, "बैठ जाइये, बैठ जाइये, बैठो।"

एमएलए का गुस्सा तब तक चरम सीमा पर पहुँच चुका था, "अरे, बतायेंगे क्या ? खाक़ ? ठेकेदार की चोरी पकड़ोगे तो तुम्हे चोर बनायेंगे, इंजीनियर का घोटाला पकड़ोगे तो तुम्हें ठग बतायेंगे, क़ानून के मुताबिक चलोगे तो तुम्हें गैरक़ानूनी बतायेंगे, कल जाकर अख़बारों, रेडियो मे ख़बर कर देंगे हम। फिर होगा जनअदालत में इंजीनियरों का फ़ैसला।"

मणि ने नीचे झुककर एमएलए को जल्दी-जल्दी कुछ कहा, "फिर सीधा खड़े होकर चीखने लगे, "सुनिए, आप लोग अगर नहीं बैठेंगे तो मै इस मीटिंग को अभी बंद कर दूँगा। बैठिये, बैठिये।"

इस धमकी से फूलबाड़ी के लोग बैठ गये। मणि दा चिल्लाकर कहने लगे, "देखिए, ऐसा कुछ नही हुआ है कि उसे लेकर यहाँ दगा-फ़साद खड़ा कर दिया जाये। यहा के इंजीनियरो के व्यवहार मे हमारे एमएलए को काफी दुःख पहुंचा है। एमएलए हमारे वोट से निर्वाचित जनप्रतिनिधि हैं इसलिए एमएलए का दुःख हम सभी का दुःख है। उनका दुःख हमें दूर करना होगा। पर किसी व्यक्तिगत कारण से तो उन्हें दुःख पहुंचा नही है। देश के एक काम को लेकर कुछ इस तरह का झगड़ा उठ खड़ा हुआ है। जिससे उनको कष्ट पहुंचा है। सरकारी कामकाज का क़ानून ही अलग होता है। उसी के चलते शायद इंजीनियर साहब ने सोचा होगा कि छोटे इंजीनियर लोग सब कुछ समझा ही देंगे। पर एमएलए के साथ इंजीनियर साहब को भेंट करना उचित था। पर इस तरह के गुस्से से तो हमारे क्षेत्र का कामकाज चल नहीं सकता। फिर हम लोगों ने ठेकेदार की बात भी सुनी। वह भी एक बहुत ही छोटा ठेकेदार है। वह अगर आज क़ानूनी जाल में फँसता है तो बड़ा ठेकेदार उसे बचाने नहीं जायेगा, यह भी हमें देखना होगा। तो इसी से मैं प्रस्ताव रखता हूं कि इस सभा में तो सब कुछ खुलकर आलोचना की जाये। अभी एक ब्रिज को लेकर इतना हो-हल्ला मचाने की आवश्यकता नहीं। मालबाज़ार में एक दिन एमएलए इंजीनियर, ठेकेदार, और आपके फूलबाड़ी के दो आदमी मिल-बैठकर सब फ़ैसला कर लें। इससे अगर ब्रिज का कोई भाग तोड़ कर बनवाने की ज़रूरत हुई तो वह बनवा दिया जायेगा। फिर एक-दो बारिश में ब्रिज का कोई नुक़सान होता है या नहीं वह भी परखने के लिए काफ़ी समय मिल जायेगा।"

ठीक इसी समय गयानाथ और हाट कमेटी का मेम्बर आगे-आगे और उनके

पीछे-पीछे एक छोकरा एक बड़ी-सी केतली, दूसरा छोकरा एक टोकरी और तीसरा छोकरा और एक टोकरी लिए सीढ़ी पार कर एकदम से शतरंजी पर आकर खड़े हो गये। ऐसा लगा कि मीटिंग अब ख़त्म होने को आ गयी है। उसी ख़त्म होती मीटिंग में दोनों हाथ ऊपर उठाकर मणि ने पूछा, "तो फिर यही तय हुआ न ? तो यही ठीक रहा ?"

गयानाथ और मेंबर मिलकर सबके हाथ में गिलास थमाते जा रहे थे। केतली पकड़ा छोकरा गिलास में चाय डालता जाता था, "अरे देखकर, गिरा मत देना।" इतना छोटा-सा छोकरा इतनी बड़ी केतली से चाय डालने में इतना अभ्यस्त था कि किसी भी गिलास से एक बूँद भी चाय नीचे नहीं गिरी। इसके बाद गयानाथ और मेम्बर एक टोकरी से प्रत्येक व्यक्ति को एक-एक समोसा और मीठा-नमकीन थमाते जा रहे थे।

इस तरह की मीटिंग जिस तरह से ख़त्म हुआ करती है, यह मीटिंग भी उसी तरह से खत्म होने लगी। बातचीत, लड़ाई-झगड़ा, क्रोध-वोध, मेल-मिलाप—इन सबसे होता हुआ एक ख़ास तृप्ति का भाव जगा। ख़ास-ख़ास मौक़े को छोड़ इतनी रात गये इतने सारे लोगों का एक साथ एक ही जगह से निकलना, ऐसी घटना क्रांति हाट में बिरले होती है। इसी से मीटिंग के अंत होने पर एक नये अनुभव का बोध हुआ।

गाड़ी से जो लोग मालबाजार लौट गये, उनमें मणि, एमएलए, इंजीनियर और ठेकेदार थे। और सुहास, यहाँ इस अनुभव का भागीदार नहीं था। कुछ-कुछ गयानाथ भी नहीं।

51

एक मीटिंग के तीन फायदे

चाय-समोसा खाते-खाते मीटिंग ख़त्म होने तक लोग बहुत से ग्रुप में बँट गये। मालबाज़ार से गाड़ी चले जाने के बाद क्रांति हाट वाले अपने-अपने घर चले जायेंगे। एमएलए गयानाथ और हाट कमेटी के मेम्बर शतरंजी वहीं छोड़ जाने को कह गये जिससे कि फूलबाडी वाले लोग वहाँ रात को सो सकें। सुहास से उसने बार-बार खेद प्रकट किया कि उसके घर पर मजबूरन मीटिंग करनी पड़ी। मिठाई की दुकानवाले ने पेट्रोमेक्स लेने के लिए आदमी भेज दिया। वही आदमी एम.एल.ए, इंजीनियर और मणि बाबू को आगे-आगे रास्ता दिखाते हुए जीप तक ले गया। गाड़ी स्टार्ट होकर तैयार थी इसीलिए विदाई में देर नहीं हुई।

गाड़ी के एक-दो मिनट चलते ही इंजीनियर ने एमएलए से कहा, "वीरेन बाबू, मैंने नासमझी से आपके सेंटीमेंटस को चोट पहुँचाया है। आप विश्वास कीजिये, सचमुच

मैंने उस तरह का कुछ सोचकर नहीं किया। आप अन्यथा न लें। और इस ब्रिज़ के बारे मे आपको सोचने की कोई आवश्यकता नही। मै सब देख लूंगा।''

''आपने अगर पहले से देख लिया होता तो इतना बखेड़ा उठ खड़ा न होता। में भी जानता हूं कि स्थानीय समस्याएँ भी हैं। यही देख लीजिए कि इस जब्बर के बड़े भाई लोग तो कट्रक्टरी करते हैं इस मीटिंग में यह बात उठाने पर भी उन्हें कोई मौक़ा मिल नहीं पाया। फिर यह सज्जन यह सब बोले, इन सबके बारे में बातें होंगी।''

''सर में समझ नही पाया। एक झोंक मे आकर कह गया।''

''नहीं, नहीं, यह बात तुमने कही कैसे, क्यों कहने गये थे यह सब। तुम तो फिर नाम-धाम बताने से रहे, वह बात क्या और दस के सामने कहने की है।'' सब-असिस्टेंट इंजीनियर मडल ने कहा।

''जाने दीजिये, छोड़िए सर इसे। इन सबको लेकर इशू को बढ़ावा देने से बढ़ जाता है। फिर उस पर तरह-तरह के इंटरेस्ट भी हैं। पॉलिटिकल इंटरेस्ट भी क्या कम है ? आप लोग जरा टैक्टफुली डील करें। वीरेन दा अगर आपसे नाराज हो जायें तो फिर आप लोग किसको लेकर कामकाज करेंगे ? फिर वीरेन दा भी इतना गुस्सा हुए कैसे ? फिर लात मार कर रेलिंग तोडने से उनका पर भी दुःख रहा है।''

''अरे नहीं भाई, हम थोड ही जोर से लात मारने गये थे। पर आप लोग जो भी कहिये, इस तरह काठी जैसी रेलिंग किसी भी ब्रिज की नही होगी कि बस ज़रा-सा छू दिये तो पट्ट से टूट गयी।''

''आप उस बारे में मत सोचिये, सर। मै कल सुबह ही ठेकेदार और मंडल को लेकर वहाँ जाऊंगा और देखूँगा कि क्या किया जा सकता है। जैसा भी हो उसे ठीक करवा लूंगा। फिर आपको भी बता दूंगा। आप उस बारे में निश्चिंत रहिये सर। सब ठीक हो जायेगा।''

जिस मीटिंग में सुहास सिर्फ़ दर्शक और श्रोता था, उसके अनुभव को वह अपने अंदर आत्मसात् कर लेना चाहता था। पर वह कर नही पा रहा था। आख़िर में तो पता चल ही गया कि एमएलए की नाराज़गी का कारण क्या है। गाँव की किसी एक छोटी नदी पर बना छोटे से कलवर्ट में नियमानुसार सीमेंट-बालू-लोहा आदि का प्रयोग हुआ है कि नहीं। इस बारे में एमएलए के गहरे उद्वेग का असली कारण था कि उनका पत्र पाने के बावजूद असिस्टेंट इंजीनियर के बदले सब-असिस्टेंट आया था, क्यों ? फिर उसे 'सर' का संबोधन भी क्यों नहीं किया गया ? अगर इंजीनियर फूलबाड़ी गया होता, तो फिर इस किस्म की एक मीटिंग की भी आवश्यकता न थी। अगर कहीं कोई बखेड़ा खड़ा होता तो वह भी इंजीनियर के ऑफिस में ही निबटारा हो जाता। जैसे कि अभी होन वाला है। जिस कायदे-क़ानून की बात इंजीनियर बार-बार कर रहा था, सुहास उसे मान नही पा रहा था। सिर्फ़ इस मामूली से व्यक्तिगत कारण को लेकर उसके काम में इस तरह का हस्तक्षेप कैसे सहता ? गडबड़ी होने से उसकी भी तो

एकमात्र रक्षा सरकारी कायदे-क़ानून के अतंर्गत ही होती। फिर इतनी मीटिंग-वीटिंग के बावजूद सभी की आँखों के सामने ही इंजीनियर उसके किसान कमेटी के संपादक को गाड़ी में ले आया। यह कौन नहीं जानता कि यह सज्जन इंजीनियरों की सुरक्षा की सिर्फ़ गारंटी ही नहीं देता था। यहाँ तक कि एमएलए के साथ झगड़े का निपटारा करने वाला भी वही था।

इस सरकारी नौकरी में आने के पहले सुहास गाँव और किसानों को लेकर जागरण के अनिश्चित पर संभाव्य चिंता में डूबा रहता था, इसी से उसने इन सब मामूली पर वास्तविक घटनाओं के लिए ठौर नहीं रख छोड़ा था अपने अंदर कि सरकारी पार्टी का आदमी होने का फ़ायदा उठाकर ठेकेदार से कुछ सीमेंट उगाहने की कोशिश करना और ठेकेदार के काम पर इस तरह की नज़र रखना एक ही साथ हो सकता है। वास्तव में, कार्यकारण के सिलसिले के अलावा भी घटना के ऊपर घटनाएँ लगी ही रहती हैं, और उस एक घटना की भूमिका भी हर समय दूसरी भूमिका पर निर्भर नहीं करती, कभी-कभी अलग और स्वतंत्र भी हो सकती है। इस तरह की संभावना की बात सुहास को तो पता नहीं था। इसी से सुहास अपने निष्पक्ष महत्-वृहत् कामना-वासना में ही लगा रहता है। वीरेंद्रनाथ राय वर्मन जैसे एक लोकल एमएलए की सरकारी नौकरी के एहतिहातवाले इंजीनियरों को उन्हीं के कायदे-क़ानून से पटखनी देकर करीब-करीब पराजित कर दिया। टेस्ट हाउस में परीक्षण के लिए मसाला भेजने का प्रस्ताव रखकर। लेकिन वह पटखनी तो सुहास के निकट एक कौशल भर ही था। और उस कौशल को सुहास पकड़ नहीं पाती। इतना परिवेश निष्पक्ष होने पर सुहास को अपने चारों ओर से मात खानी पड़ेगी।

गयानाथ अपने घर के बाहर पहुँचते ही चिल्लाया, "ऐ ओ बाघारू—बाघारू, अरे ओय बाघारू !" गयानाथ की आवाज़ सुनकर अंदर से कोई एक लालटेन लेकर निकल आया। उस लालटेन के उजाले में गयानाथ का यह मिट्टी का घर साफ़ दिखायी पड़ रहा था।

गयानाथ की पत्नी चीख़कर बोली, "अपने घरै किया डकैती डालने आय हो ?"

आसिंदिर ने मोटरसाइकिल ठेलकर अंदर कर दिया। चिल्लाया, "अरे कौन है, लालटेन इधर लाओ।" जो लालटेन लिए आया था वह खड़ा हो गया फिर लालटेन ऊपर उठाकर रास्ता दिखाने लगा।

गयानाथ फिर चीख़ा, "ए ओ बाघारू, बाघारू।" फिर अचानक ऐन सामने, बल्कि ऊपर बाघारू को देखकर चौंक गया—"साला बैल कहीं का। जवाब नहीं दे सकता ? कबै से गला फाड़े जा रहा हूँ। साला रंभाता भी नहीं। भाग, हट जा, दूर हट जा साला।"

बाघारू जरा परे हट गया। फिर भी गयानाथ उसकी आँखों की ओर नहीं देख पाया। "बैठ जा यहाँ, साला बैल, अरे बैठता क्यों नहीं मरदूद ? खड़ा है साला, जंगली

ठूँठ-सा।"

गयानाथ की बातें सुनकर बाघारू बैठ गया मिट्टी पर। शायद रात की बेला है, इसीलिए बैठने पर भी बाघारू के आगे गयानाथ जैसे और छोटा नज़र आ रहा था। गयानाथ फटी-बाँस सी पतली आवाज में फिर से चीखा, "क्या बोला है एमएलए को ?"

बाघारू बोला, "कुछ कहा नहीं।"

"कुछ नहीं ? जब उसे फूलबाडी पहुँचाने गया था तो क्या-क्या बोला था ?"

"हमरा नाम ले रहा था।"

"बडा नाम बताने वाला बन गिया है, नहीं ?"

"हमरा जनम का बात भी बोला है।"

"तू साला अवतार बनने चला है, नहीं ? साला अपना जनम का बात अपने बताने लगा है लोगों को ? बँटाइगिरी का बात बोला नहीं एमएलए को ?"

"किया बात ?"

"किया बात ? बटाईगिरी, अधियारी की बात। एमएलए हमको बोला कि तू उन्हें अधियारी का बात बोला है। एमएलए हमको बोला कि उसे एक अधियारी कियूँ नहीं दे देते ? साला, जमीन मेरा है कि तेरा एमएलए का ?"

"हमने नहीं कहा।"

"बोला है कि नहीं बोला है, अभी समझाता हूँ तुझे। तू कल सूरज निकलने के पहले इस तिस्ता पार को छोड़कर चला जायेगा। और नागराकाटा का दाहिने में नदी के चर पर जो भैसों को रखा गीया है, वहीं पर रहेगा। समझा ? और सुन, कांदुरा वहाँ पर है, उसे भेज देना। समझा ?"

52

बाघारू और चाँद

दूसरे दिन पौ फटने से पहले ही बाघारू उठ बैठा। देखा कि सुबह का झीना-झीना उजाला फैलने लगा था। आसमान नीला था और वहाँ एक सादा चाँद मद्धिम-मद्धिम चमक रहा था।

बाघारू डोंगी से नीचे कूद गया और चाँद भी फौरन फलाँग कर आपलचाँद जंगल के माथे पर आ पड़ा था। कूदकर जैसे बाघारू खड़ा हुआ, चाँद भी आसमान पर रुक गया। बाघारू ने मैदान में होते हुए दक्षिण हामखाली की ओर चलना शुरू कर दिया। चाँद भी घूमते हुए चल रहा था। चाँद रुपये की जलछवि जैसा फीका लग रहा था। चारों ओर से उजास फूटने पर चाँद नजर नहीं आयेगा। आकाश इतना चमकता हुआ नीला था कि पौ फटने में और देर नहीं थी।

तिस्ता अब उसके पीछे थी। उसे तिस्ता पार चले जाना पड़ रहा था। मालिक अब तक सोकर उठा नहीं होगा। आसिंदिर दामाद भी नहीं उठा होगा। वे उठ कर देखेंगे कि बाघारू नहीं है। जानते हैं, बाघारू नहीं होगा। बाघारू को बुलायेंगे नहीं।

अभी सिर्फ़ आँखों के आगे का हिस्सा साफ़ नज़र आ रहा है। एक-दो बीघा दूर की चीज़ नज़र नहीं आ रही। दूर, घर द्वार जल के छींटे से बने कोहरे से ढंके हैं। धुएँ-धुएँ-सा भाव छँटने में देर लगती है। पेड़ों के शिखर पर, नदी के ऊपर सारा दिन कुछ-न-कुछ लगा ही रहता है, यह सब आकाश का कोहरा नहीं-जंगल या नदी का कोहरा है। सीधा देखकर चलो तो लगता है कि चाँदनी में चल रहे हैं, सामने क्या है, पता नहीं। आकाश की ओर देखकर चलने से काफ़ी दूर तक नज़र आती है। बाघारू ने कंधा उठाकर आकाश की ओर ही देखा।

गोचीमारी से हांसखाली तक बहुत ढालू ज़मीन है—तीनों ओर की सब ज़मीन ऊँची है। कहीं-कहीं तो काफ़ी ऊँची। इस ढलान के ऊपर नीला आकाश जैसे एक ढक्कन है। गोचीमारी ढलान के बीच का भाग एक कड़ाही जैसे नज़र आ रहा था। वहाँ उतरते ही चाँद जैसे कूद कर सीधा उसके माथे पर आ धमकता है। चारों ओर ऊँचे डाँगर होने से और कुछ दिखायी नहीं पड़ रहा था। दूर जंगल के पेड़-पौधे ऐसे लग रहे थे जैसे जंगल पर जंगल उग आये हों।

बाघारू चाँद की ओर देखकर हँसने लगा। हँसता हुआ बायीं ओर मुँह घुम गया—चाँद दाहिनी ओर सरक आया था। दाहिने की ओर मुंह घुमाने पर चाँद बायीं ओर हो जाता था। बाघारू ने एक ढेला उठाया। चांद को मारने के लिए कुछ कदम उसके दौड़ते ही चाँद भी फ़ौरन दौड़ते हुए सरक गया। ढेला मार कर बाघारू खड़ा हो गया था। चाँद भी रुक गया था। कुछ दूरी पर ढेला गिरने की आवाज़ हुई—धप्। चाँद की ओर सीधा होकर थोड़ा-सा मुड़कर बाघारू ने देखा और फिर हांसखाली बाँध की ओर चलना शुरू कर दिया। चाँद भी अपलचाँद की ओर बढ़ने लगा था। अब बाघारू को थोड़ा-थोड़ा करके ऊपर चलना पड़ रहा था। उसी कड़ाहीनुमा ढलान से ऊपर की ओर। चाँद भी थोड़ा-थोड़ा ऊपर उठने लगता था—उत्तर की ओर। अब डाँगर के ऊपर के पेड़-पौधे कुछ-कुछ नज़र आने लगे थे। बाघारू समझता था कि दिखायी न देने पर भी कहीं न कहीं है चांद है। वह हांसखाली के बाँध पर चढ़ गया और देखा बाँध के बराबर ऊँचाई पर ठीक उत्तर-पूर्व में, एकबारगी उसके सामने चाँद आकाश पर सट गया है। इस हांसखाली के बाँध के बायें हाथ की ओर जो रास्ता गया है वह सीधा आनंदपुर बागान में घुस गया है। अपलचाँद के अंदर से होते हुए जो रास्ता उदलाबाड़ी की ओर गया है, उसकी बायीं ओर बाघारू सीधा चलने लगा। चाँद फिर बायीं ओर जंगल के माथे की ओर चला गया। बाघारू जंगल के फाँक से चाँद को देखता रहा। जंगल के भीतर अब तक अँधेरा घिरा

हुआ है—रात का आखिरी पहर था। उस अंधेरे के भीतर-से नीला आकाश और चाँद साफ़ नज़र आता था—सुबह का फीका चाँद नहीं, रात का उजला चाद। इस हाथी रास्ते को छोड़ जगल में घुसने पर चाँद का वह उजास देखने को मिलेगा। जंगल में रात की आड लेकर चाँद काफ़ी दूर निकल सकता है। बीच में एक सड़क जंगल को दो भागों मे बहती है। बाघारू बायी ओर घूमकर खड़ा हो गया। जंगल में रात को ऊपर चाँद दायीं ओर टँगा हुआ था। उसी लाइन की ओर मुँह किये बाघारू खड़ा हो गया। वहाँ पेड़-पौधे नहीं थे। इसी से वहाँ कुछ उजाला था। कुछ दूर जाने पर वह उजाला फिर से अंधकार मे डूब गया। अभी आकाश में दिन का प्रकाश इतना नहीं फैला था कि यह लाइन साफ नजर आये। बीच के उस अधकार के बाद इस लाईन के खत्म होने का भान होता था। आकाश का नीलापन और नदी के रेत के सफेद रग के मिलान मे ही ऐसा प्रतीत होता था। लगता था कि वहाँ जैसे भोर हो गयी हो।

बाघारू जिस तरह घने जगल के सामने खड़ा हुआ था उस तरह से केवल जंगली पशु ही खड़े हो सकते हैं। मानो सही रास्ता तलाश नही कर पा रहा हो। दोनों लंबे-लबे हाथ हिलाकर जगली हवा मे बाघारू जगल की गध सूँघने लगा। एक बार कधा घुमाकर हाथी रास्ता की तरफ से आनदपुर की ओर देखा। फिर कधा सीधाकर आकाश के चाँद की ओर देखा। फिर जगल के भीतर एक बार नजर डाली, आखिरकार दायीं ओर घूमकर बागान की ओर सीधा डग भरने लगा।

अब बाघारू बागान की ओर जितना बढ़ता जाता था, पेड़ों के डाल पात से होता हुआ चाद तिस्ता की ओर उतना ही पीछे हटता जाता था। बाघारू बीच-बीच मे सिर उठाकर उसे देख लेता। उसके लिए उसे बार-बार मुड़ना पड़ता था। आनंदपुर मे घुस जाने के बाद मुड़ने पर शायद चाँद नजर न आये। भोर कुछ और हो, चुकी थी। आकाश अधिक देर तक नीला नही रहेगा। किरण फूटते ही, पहले नीला, फिर सफेद होने लगेगा। तब यह जलछविनुमा चाँद फिर नजर नही आयेगा। बाघारू के चाल के विपरीत ही जैसे चाँद की गति हो आज। ऐसे मे चाँद तिस्ता के पानी पर ही जा पड़ेगा। ऊपर नीला-सफ़ेद आकाश, नीचे तिस्ता का फीका और मटमैला पानी—तो चाँद कहाँ जाकर मिलेगा?

अभी यह जंगल, खेतबाड़ी, नदी, हाट, घरबार, बस्ती, ये हवा, भीगे घासपात, झाड़-झंखाड़, बाँस की झाड़ी, चाय बागान की फैक्ट्री का नल, इन सबको लेकर एक नयी दुनिया बनी है—जैसे एक दिन के लिए।

अब तक इस नयी दुनिया में सिर्फ़ एक बाघारू था और यह चाँद।

53
भोर से पहले की चायबागान

मैदानों में, खेतबाड़ी में, जंगलों में, धान के खेतों में बाघारू जिस तरह से चलता था, अभी भी वैसी ही चाल से चल रहा था। नदी मे या फिर जंगल के भीतर की चाल कुछ अलग ही थी। वहाँ ठेलपेल कर अपने को आगे की ओर निकालना पड़ता था। बाकी सब चाल एक जैसी होती थी–आकाश के काफ़ी ऊपर पछियों के पर फड़फड़ा कर तैरने की तरह की चाल, कदम-कदम सहेज कर रखने की चाल, जिससे अधिक धूल न उडे या अधिक आहट भी न हो, सिर्फ़ ज़मीन पर अपना हल्का बोझ रखने जैसी चाल। तिस्ता के प्रखर प्रवाह में शाल वृक्ष जैसा हल्का हो गया था, इस लबे, दूर तक फैले मैदानी रास्ते पर आकर बाघारू का लबा शरीर, चौड़ी छाती-पीठ, लंबी-चौड़ी बाँहें, वलिष्ट कंधा और दोनो लंबे-लंबे पैरों का भार भी एकदम से हल्का हो गया था।

पर मैदान में भी एक बहाव था और बाघारू की शाल वृक्ष जैसी चाल मिट्टी में धँस जाती थी। इस तरह से जैसे वह नहीं, मिट्टी चल रही हो–जंगल हाट, घर-द्वार के साथ जैसे मिट्टी ही चल रही हो। फिर सामने जो भी आये, गति रोकी नही जा सकती। या तो बाघारू को धक्का खाकर गिरना पडेगा या फिर सामने की बाधा का टूट कर बिखर जाना पड़ेगा।

बाघारू को किसी ओर रास्ते पर चलने का अनुभव नहीं था। पर यहां सामने बहुत लंबा रास्ता दिखायी दिया। फिर रास्ता दोनो ओर मिलता नही, अलग था, सिर्फ दोनों पुश्ते ही बदलते रहते हैं।

पर इसका मतलब तो यह नहीं है कि बाघारू हाथी या जगली भैसे के झुड की तरह पेड़-पौधे तोड़ते हुए चले। उसका क़दम रखने का एक अंदाज ह–एकदम सही अंदाज। उसे अगर चाय बागान के पूरब मे डायना नदी के चर में पहुँचना है तो उसे तकरीबन सीधा उत्तर-पूर्व की ओर ही चलना होगा। अभी स सीधा चलने से रास्ता बन पडेगा। पर रास्ता कम करने के लिए बाघारू तो अपने जाने पहचाने लाइन, परिचित जगह को छोड़ नहीं सकता।

आनंदपुर चाय-बागान में प्रवेश करने के लिए एक गेट था। गेट के आगे जल निकासी के लिए एक बड़ा-सा नाला। नाले पर पास-पास लोहे के पाइप बिछाकर एक कलवर्ट बनाया गया था। पाइपों के बीच में रेगुलर फाँक। गाय-बकरी इसपर चल नहीं पाते। पाइप मे पैर फिसल कर फाँक में अटक जाते हैं। चौड़े से गेट के पास लोहे की छड़ से बने दो अंगुलियों के बीच के फासले की तरह एक छोटा-सा पैसेज–गेट बंद रहने पर जिससे होकर आदमी आ-जा सकता था। वहीं से ही तार का घेरा शुरू होता था, जो पूरे बागान को अपने अंदर समेटे हुए था।

आनंदपुर का गेट पार होते ही जैसे सुबह शुरू हो गयी, पर कैसे ? बाघारू की समझ में नहीं आया। अभी तक तो बाघारू चलता आया था, तब आकाश उजला, पेड़-पौधे सब एक होकर हिलमिल रहे थे। पर आनदपुर का सब कुछ ही सजा-सजाया, अलग तरह का था। दोनों ओर चाय-बागान की काटी-छाँटी हुई समान क्यारियाँ। उनके माथे पर छायादार वृक्षों के समान छत्र। मैदान के समतल चाय की क्यारियों के ऊपर छाते की तरह वृक्षो का शिखर, जो सधे हाथों से काट कर बनाया गया था। क्यारियाँ लोहे के तार के जंगले से घिरी हुई। उधर गहरी नाली। जो पानी जाना होता है जाता है। फिर इस नाली के चलते क्यारियो में हाथी भी घुस नहीं पाते। लोगों के आने-जाने के लिए बीच-बीच मे ईट की सीढ़ियाँ, कहीं-कहीं लकडी की सीढियाँ, दो-एक जगह अंगुलियों जैसे फॉक वाली लोहे की खूँटियाँ।

मैदान, घाट, जगल, पहाड़ पारकर आने के बाद इस आनदपुर चाय-बागान में बाघारू को सिर्फ रग ही रग दिखायी दे रहा था। बाबू लोगो के घर के टीन की छत हरी, बगलो के दो तल्ले की छत हरी, खिडकी-दरवाजे भी हरे—चारो ओर की हरियाली के बावजूद यह हरापन अलग से ध्यान खींचता था। रास्ते के मोड पर लाल-सफेद रग की खूँटियो की क़तार दूर से नजर आती थी। और मोड का तो जैसे अत ही नही था। एक मोड पार होते समय दाये-बाये, आगे-पीछे देखने पर चारो ओर कतार बाँधे मोड ही मोड नजर आते थे। ओर मोड का माने ही तो रास्ता है, रास्ते के बाद रास्ता। एक ही जैसे शिरीष के पेड के नीचे, एक ही किस्म के चाय के बगीचे। एक ही जैसे रास्ते, फिर एक ही तरह के मोड़। सीधे-सीधे रास्तो का ही एक गोरख धधा बन गया था। इतने से रास्ते से कितने लोग चलते है। इन घरो मे कितने सारे लोग समाते है। छोटे-छोटे बरामदे वाले घर, लबे-लबे बरामदे वाले घर, चाल वाले घर, टीन के घर, झोपडीनुमा घर, लकडी के घर, बास के घर।

आनदपुर के लोग अब तक नींद से नही जागे थे कम-से-कम फैक्ट्री और ऑफिस के इस रास्ते पर नही आये थे। पर गोचाबाड़ी से निकलने के बाद मैदान में, हासखाली के बाँध मे, हाथी रास्ते मे, आकाश और मिट्टी के रग मे सुबह जैसे दिखने लगी। आनदपुर मे वह बदल गया। शिरीष के वृक्षो की छावनी और चाय बगान के माथे के बीच और कुछ नही—सब कुछ ख़ाली था। आकाश नही, धरती नही, आकाश और धरती के बीच यह जगह ख़ाली थी। और चाय बगान में तो यही बीच की जगह ही खास होती है। इस ख़ाली जगह में उजाला, आकाश की तरह फैला होता है।

बाघारू उसी बनावटी सुबह के बीच दाये-बायें करते-करते बागान की पूर्वी सीमा की ओर बढ़ गया। बाहर निकलने के लिए बाघारू ने सोचा था पूरब के गेट से निकल कर दाहिनी ओर मुड़कर मैदान के बराबर बढ़ जाएगा। पर एक मोड़ से दाहिनी ओर देखकर वह मुड़ गया—लगता था इधर से निकल जाने से वह उस

ओर मैदान में उतर जायेगा।

पर आगे बढ़कर देखा कि बागान में मुश्किल से घुसने और बाहर जाने के लिए खास तकलीफ की जरूरत नहीं है, बाहर निकलने का एक रास्ता भी है, दो अंगुली फॉक वाले लोहे के खूंटें।

इतनी बारिश के बावजूद बाहर जाने का रास्ता काफ़ी अच्छा और मजबूत था। पैदल चलने वाले रास्ते पर भी घास नहीं थी। रास्ते के बाद रास्ता, मोड़ के बाद मोड़, मोड़ से मोड़ तक घिरा हुआ चौराहा। चौराहे के अंदर मैदान जैसा समानान्तर, एक-सी ऊँचाई वाले चाय के पौधे और छतरी जैसे शिरीष के पेड़। चाय बागान छोड़कर अब बाघारू मेड पर से होता हुआ दूसरे मेड़ों पर से गुजरते हुए, चौराहा पार करते, बहुत सारे ऊबड़-खाबड़ चौराहे पार करते हुए मैदान में उतर आया था। इस मामूली-सी ऊँचाइ पर से बाघारू को लगा कि मैदान की मेड़ें शीतकाल की नदी की तरह है। कहाँ से निकलती हैं, किधर से गुजरती हैं, कहीं पतली तो कहीं मोटी होती जाती है।

मैदान में उतर आने पर फिर वैसा महसूस नहीं हो रहा था। तब सामने पेड पर उगे एक छोटे-से पेड़ की तरह मैदान से दूर एक ऊंचे भाग की ओर वह बढ़ गया था। बगान से लगी ज़मीन कुछ ढलुइ थी। उसके बाद डांगर। ढलुई ज़मीन के खेतों में लहलहाती धान की फसल। पर उसके बाद ही पत्थरों का सिलसिला शुरू हो गया था—काफ़ी नीचे तक। अब तो चाय-बगान और जंगल शुरू हो जायेगा। यहाँ धान का खेत कम होता जायेगा। खेतीबाड़ी तिस्ता के पार ही अच्छी है।

उस निचली जमीन के मेड़ों पर से चलते-चलते बाघारू ने देखा कि सामने डाँगर के ऊपर के आकाश में लालिमा छाने लगी थी। जैसे कि यह डांगर आकाश का ही ढलान हो। बाघारू खुश हो गया। गोचामारी से घर से निकलते ही अगर सूरज निकलता तो वह उसके पीछे से निकलता। वह सूर्योदय देख नहीं पाता। हालाँकि आकाश भी काफी देर तक उसके माथे के ऊपर था—वहां रंगों का उत्सव उसे देखने को मिल जाता। पर अभी तो उसके ऐन सामने ही सूर्योदय हो रहा था, इस ढलान को पार करके डाँगर पर उठते ही। जैसे इस सूर्योदय के कारण ही इस बारहघरिया मैदान में बाघारू का आना हुआ था। वह लपकते हुए डाँगर की ओर बढ़ने लगा था।

डाँगर पर चढ़ने के बाद वह खड़ा हो गया था। उसके सामने कोने में बारहघरिया मैदान, पूर्व-दक्खिन में कांतदिघि-कुमारपाड़ा तक फैला था। कांतदिघि-कुमारपाड़ा की इस दिशा से सूरज उग रहा था। अब बाघारू को सूरज को दाहिनी ओर रखकर ज़रा उत्तर की ओर चलना होगा। पर इस तरह से सूर्योदय होने पर वह जैसे और बढ़ नहीं पा रहा था। डाँगर पर चढ़ते ही वह खड़ा हो गया। फिर उसके बाद, एक अच्छी तरह तलाश कर घने, छायादार पेड़ के नीचे जाकर खड़ा हो गया। उसके सामने अर्धवृत्ताकार मैदान के छोर से दिगंत पार तक सूर्योदय के बाद रोजमर्रा वाला सिलसिला शुरू हो गया था।

54
बाघारू और सूर्योदय

कांतदिघि-कुमारपाड़ा की ओर मुंह किये बाघारू खडा था। उसके पूरब में कमलाई, उसके पूरब में माथाचुलका और माथाचुलका के पूरब म धूपझारा। इस सूर्योदय के भूगोल के बारे में अब तक बाघारू को इतना ही पता था। वह जहाँ जा रहा था, उस डायना नदी के जंगल मे भी तो पूरब दिशा होगी। उन सब पूरब दिशाओ का नाम उसे पता नही। सूरज तो वहाँ से भी उग रहा होगा। पूरब का रास्ता वहा और पूरब में आसान की ओर गया है। उन सब पूरब दिशाओं म भी तो बस यही एक ही सूर्योदय होगा। अभी बाघारू उसी अनजाने पूरब दिशा की ओर चल रहा थ।। इसी के चलते सूर्योदय का प्रकाश सारे आकाश मे फैलने के साथ-साथ जाने अनजान तमाम पूरब दिशा ने बाघारू के सामने खुल जाने लगी।

कांतदिघि-कुमारपाड़ा और कुमलाइ का आकाश आग से रंग गया था। उस आग के जंगल के बड़े-बड़े वृक्षों के शिखर भी आग म रंग गय थ। इतनी दूर से जंगल भी हरा नही लगता था, बस खाली हल्का-सा हरापन दिख जाता था मायाा-सा। जहा जहा आग लग रही थी, वहाँ से माया मे मिल जलकर कोई दूसरा ही रंग निकलता नजर आ रहा था। दूर मे दिखायी देता था कि जगल के भीतर एक-एक अलग-अलग वृक्षो पर आग लगी है, एक-एक वृक्ष पर जैसे गाज गिरी हो।

जंगल का हल्का-हल्का रंग और नदी के ऊपर अथवा मैदान के छोर पर क्षितिज का हल्का-हल्का रंग इस तरह से गड्डमड्ड हो गया था कि समझ में नहीं आ रहा था कि जंगल कौन-सा है। अभी काफी दूर-दूर पर तक आग लगी जा रही थी सो बाघारू की आखो के सामने पेड़-पौधे, जल-जंगलो का रंग अलग अलग लग रहा था।

पर सूरज की उस आगनुमा लाल रंग के उजास से सारे आकाश पर एक ही तरह से नही पुत गया था। गयानाथ के घर मे उसके माथे के ऊपर जो आकाश यहाँ तक चला आया था, जो कि नीला था, उस आकाश मे काफी दूर तक आग जैसे रंग का धुआँ फैला हुआ था। आकाश की नीलिमा तले, कही-कहा थोड़ा-बहुत मेघ भी था। उन सब जगहों पर आकाश का रंग, मेघ का रंग, प्रकाश का रंग मिलकर किस्म-किस्म के रंग बनते जा रहे थे। कौन-सा रंग कहा फूटकर कहा ओझल हो जाता था दिखायी नहीं देता था, न समझ में ही आता था। पलक झपकते ही आकाश फिर से रंग बदल लेता था। आग की तरह का रंग दूर-दूर तक फैलता जाता था, वो देखो पश्चिम की ओर तिस्ता नदी के पार, फिर पश्चिम मे जलपाईगुडी सदर, उसके पश्चिम में फैलते हुए आजगज—सब जगह का आकाश लाल टहटह हो रहा था। इधर कुमलाई के पूरब में रंग फीका पड़ता जा रहा था। पता नहीं, यह लाल रंग घुलने लगा हो। और इस तिस्ता पार का पश्चिम तक पतला होते जा रहा था। कहीं उजाला तो कहीं

परछाईं बिखेरता हुआ-सा।

बाद में तिस्ता पर छलांग लगाने से पहले जैसे आगे-पीछे, दोनों ओर मुड़-मुड़कर बाघारू प्रहार के छल को समझ लेता था, पानी की गहराई देख लेता और मन-ही-मन एक नक्शा बना लेता था, उसी तरह से दाहिने मुड़कर आपलचाँद की ओर देखा, ऊँचे-ऊँचे वृक्षों के शिखर पर आग लग गयी थी, पीछे लौटकर सिर के ऊपर वृक्ष को देखा कि पत्ते सब झिलमिलाने लगे थे जैसे पानी बरसा हो। बाघारू ने अपने शरीर की ओर देखा—तमाम शरीर क्या रंग से नहाया है ? बाघारू अपने आप पैरों तले की घास की ओर देखा—तमाम घास आईना बन गयी थी।

उजाले के उस पारावार में बाघारू खड़ा था—अकेला। इतनी तेजी से चलने के बाद उसके शरीर से पसीना फूटने लगा था। उस बहमडांगा (ब्रह्मडांगा) की एक सीमा पर खड़ा हो और दूसरी सीमा के अदृश्य छोर पर सूर्योदय देखते-देखने इसी समय वह पहुँच नहीं पाता तो सूर्योदय भी देख नहीं पाता। गोचीमारी से हांसखाली के रास्ते में अगर सूर्योदय हुआ होता तो वह बाघारू के पीछे ही होता। हाथी रास्ते पर होना तो एक कोने में सूर्योदय होता। आनंदपुर बगान के अंदर होता तो दाहिने कोने में सूर्योदय होता। और इस बाग्घरिया मैदान में वह कब पहुँचे, इसके लिए अगर सूर्योदय अब तक रुका हुआ था तो फिर बाघारू को खड़े-खड़े ही देखना पड़ेगा और देखने के लिए खड़े-खड़े पसीने में नहाना भी होगा।

वही देखने और पसीने से सराबोर होने के बीच बाघारू ने यह समझा कि, 'मैं ख़ामख़्वाह खड़ा हूँ।' और सचमुच वह सिर्फ़ अपने शरीर लिए खड़ा था यह बात शरीर की भारहीनता से उसे समझ में आयी। उसके कंधे में लागर नहीं है—गयानाथ का लागर। 'मेरे कंधे पर पेड़ नहीं, गयानाथ का पेड़ है।' बाघारू को गयानाथ ने निर्वासित किया था। डायना नदी के जंगल में उसके भैंसों का बाड़ा था—बाघारू वहाँ जा रहा था। पर जा तो रहा था अपने सिर्फ़ इस शरीर के लिए ही। बरहमतला में सूर्योदय के सामने निर्वासन के पथ पर बाघारू के शरीर, मन में न जाने मुक्ति का एक कैसा बोध जाग उठा था। और उस बोध को समझने के लिए, खुद अपने शरीर की ओर बार-बार ताकने लगा बाघारू।

किसी अदृश्य ओट से फेंके गये रंग के इस आकाश में व्याप्त विस्फोट पर और अपने इस शरीर के इस तरह की मुक्ति पर बाघारू हंसने लगा। बाघारू तो अपने अंग-प्रत्यंग को लेकर अलग अलग काम करने से रहा। वह जो भी करता है। तमाम शरीर लगाकर करता है। सिर्फ़ होंठों से तो हँस नहीं सकता बाघारू। इसी से उस उजास रंगों के धक्के से बाघारू का तमाम शरीर हँस उठा, काँपते हुए हवा में शिरीष का पेड़ डोलने जैसा। बाघारू के शरीर को छोड़कर कुछ है ही नहीं—वह भी फिर इतना विशाल शरीर कि सिर्फ़ शरीर ही है, ऐसा कहने पर भी उसे जैसे सर्वस्वविहीन समझा नहीं जा सकता। इतना बड़ा शरीर रंगीन उजाले के धक्कों से सिहरता रहा।

शरीर की इस सिहरन से बाघारू की जान पहचान नही थी। या कि फिर ऐसे किसी से भी उसकी जान-पहचान नही थी, जो इस सिहरन-सा एकदम व्यक्तिगत हो। इसी से बाघारू अपने शरीर के कपन से खुद ही हा होकर हँसने लगा था। इस तरह के खुद-ब-खुद हँसने की आवाज से बाघारू और जोर से हँसने लगा था। फिर इस हँसी से वह और भी जोर से हँसने लगा। अपनी हँसी की आवाज भी तो बाघारू की जानी-पहचानी नही है।

दोनो हाथो से मुँह ढँककर बाघारू अपनी हँसी रोकना चाहता था। उसके हाथ इतना ताकतवर है कि अभी उसकी अगुलियो को झुकाया नही जा सकता। फिर हाथ है तो एक हथेली तो होगी ही। हथेली है तो एक अजुरी भी होगी। बाघारू ने मुँह ढँकने के लिए जब हथेलियो को उठाया तो उसकी हथेलियाँ उजाले से, रगो से भर गयी थी जैसे कि बाघारू नीचे झुककर मैदान से अजुरी भर भर उजाला और रग भर लाया हो अभी उसकी आखों के सामने दोनो अँजुरियो से वही रगीन उजाला झर-झरकर उसके शरीर पर जैसे झरने लगा था।

अपनी अजुरी से, अपने शरीर पर पहली बार रग और उजास उडेल रहा था बाघारू। मानो पहली बार उसका शरीर उसका अपना लगा।

दोनो हाथ माथे पर रख, बाये हाथ से दाये हाथ की कलाई को दबाकर बाघारू पीछे की ओर धनुष की तरह पीठ को झुकाया। कच्चे बाँस जैसा उसका शरीर डोलने लगा। उस हिलने मे भार वहन करने के लिए उसके कधे, जाँघ और पेट, छाती की नसे जैसे टुकडे-टुकडे होकर फूल गयी थी। अगडाई ले रहा था बाघारू। फिर पीछे की ओर झुककर दोनो हाथ माथे पर रखकर धनुष की तरह झुकाया सामने की ओर। कधे पर, गरदन, पीठ तथा भुजाओ पर, कमर, जाँघ, हर जगह उजाले का स्वाद अच्छा लग रहा था बाघारू को—उजाले का कर्म-स्वाद। वह थोडा-सा मुडकर बायी ओर खडा हो गया। उजाला उसकी बाई पसलियों से होते हुए दाहिने हिस्से और पेट के निचले भाग तक लिपटता जा रहा था।

खडा होकर घूमने पर बाघारू ने देखा कि सूरज की पहली किरण एक तेज धारदार रेखा की तरह मैदान के अगले छोर से सो-सो करती हुई बाघारू की ओर दौडी आ रही है। बाघारू उजाले की तरफ भागने लगा पर उसके पहुँचने के पहले ही उजाले की तेज धार सुई चुभने की तरह फट गयी थी और पूरे मैदान मे उजाला बिखर गया था। बाघारू जमीन पर लोट गया और मिट्टी मे पडे रग को अपने तन बदन पर उबटन-सा मलने लगा।

55

बाघारू का संगीत लाभ

बारघरिया मैदान छोड़ बाघारू निपुछापुर की दिशा मे चलने लगा था।

दाहिनी ओर सूर्योदय के पहले वाले मैदान की ओर देखकर बाघारू पहले बड़बड़ाया फिर गुनगुनाने लगा। फिर पलभर के लिए भी रुका नहीं। बार-बार दोहराये जा रहा था।

दुहराता था और चलते-चलते डोलने लगता था—

"उठो, उठो हे समय के देबा
जगमगाते उठो
उठो, उठो, हे समय के देबा
आग से नहाते हुए उठो
खोल रखा हे समृचा शरीर
एक बार झाँकते जाओ।"

गोद के बच्चों को थपथपाते हुए, तेल मलते हुए, सूरज की ओर उठाकर झुलाते हुए माएँ यही गीत गाती है। बाघारू के दोनो हाथो मे कभी कोई बच्चा नही झूला। फिर इस समय, जबकि सूरज की ओर उठाकर झुलाने जैसा कोइ बच्चा बाघारू के हाथ में नहीं था, तो बाघारू ने अपने आपको ही डुलाना शुरू कर दिया। इस तरह चलते-चलते जितना झूला जा सकता था, उतना ही झूलता था और जहा तक गुनगुनाया जा सकता था, गुनगुनाता था। बाघारू उस समय खुद अपना ही बच्चा था।

पर एक बार गाकर तो चुप रह नही सकता बाघारू, यहाँ तक कि कइ बार गुनगुनाकर भी नहीं। यह लोरी एक बार अंदर घुस जाये तो फिर बाहर निकलने से रही। फिर चलते-चलते डोलना भी लोरी के सथ मिल गया था। चलना बद किये बगैर यह लोरी भी नहीं रुकेगी। इस तरह का झूलना और लोरी जन्मकाल से ही बाघारू के भीतर सेध मारकर घुस गयी थी। उसके व्यस्ततार्विहीन माथे के भीतर। फिर उसके बाद पछियो का चहकना, जीव-जन्तुओं की बोली, उजाला, हवा की गति को जैसे पल भर में पहचाना जाता है, जब वैसा समय आता है तभी, इस तरह की लंबी यात्रा में लोरी आ धमकती है, काम छोड़। गाँव छोड़कर इस तरह के सफ़र में, ये लोरी, ये गीत चींटियों की तरह कतार बाँध, एक के बाद एक चले आते है, कहाँ से आकर कहाँ जाते है क्या पता।

बाघारू चलते-चलते झूलता था और झूलते-झूलते गाता था—

"ओ समय देबा की माई
सिंदूर क्यों निकाल दी, सिंदूर क्यो निकाल दी ?
नही फेंकी, नहीं, कटोरा उलट गया है
आकाश इसी से लाल हो गया है"

"सूरज देवा की माई, सिंदूर क्यों फेंक दिया ? फेंका नहीं, सिंदूर फेंका नहीं। सिंदूर का कटोरा उलट गया है, इसी से आकाश लाल हो रहा है।"

"ओ समय देबा की माई

पानी क्यों ढाल दिया, पानी क्यों ढाल दिया ?
पानी नही ढाला, पानी नहीं ढाला
छलक गया है
उसी से मिट्टी भीग गयी है"

"सूरज देवा की माई, इतना पानी क्यो ढाल दिया ? ढाला नही, पानी ढाला नहीं, छलक गया ह, उसी पानी से मिट्टी भीग गयी है।"

"ओ समय देवा की माई,
सुबह इतना क्यों झाडनी है, क्यों झाडनी ह इतना ?
आँचल की हवा में
बच्चे का वदन सुखा रही
इसी से यह झकोरा उठता है"

"सूरज देवा की माई, सुबह इतना क्यो झाड़ती है, ठडी हवा क्या बहाती है ? नहीं झाडा, नहीं झाडा, ऑचल के हवा देकर बच्चे के शरीर का पानी सुखा रही है, उसी से झखोरे उठते है।"

"समय देवा की माई
घर धो क्यों रही है ? घर धो क्यो रही ह ?
नही धोई. नही धोइ,
आगन-आकाश धो रही हूँ"

"सूरज देवा की माई, घर-द्वार इतना धोया-पोंछा क्यो, आकाश क्यों इतना झिलमिलाता है ? मैने नही धोया, घर नही धोया, बोलकर आँगन, आकाश धो रही हूं।"

"समय देवा की माई
बच्चे को छोड़ा क्यों, छोडा क्यों ?
छोड़ा नही, नही छाड़ा
मेरे बच्चे की नीद खाकर
तेरा बच्चा उठेगा"

"सूरज देवा की माई, बच्चे को छोड़ क्यों रही हो ? हमारे बच्चे की नींद खाकर तेरा बच्चा उठेगा, इसी से।"

"अरे ओ मेरे बेटे
ओ ओ मेरे बच्चे
मेरे प्यारे दुलारे
नींद से जाग गया है
जम्हाई ले रहा है, रो रहा है
और तेरे बच्चे को देखकर हँस रहा है"

"हमारा बच्चा जाग गया है, मेरे बेटे की नींद खुल गयी है, जमुहाई ले रहा है, रो रहा है और तुम्हारा बच्चा सूरज को देखकर हँस रहा है।"

"उठो, उठो बेला ठाकुर झिलमिलाते उठो···"

बाघारू की कविता के संगत से ही आकाश का लाल रंग मिट कर जगमगाता नीला रंग निकल आया। और कांतीदिघि-कुमारपाड़ा, कुमलाई, माथाचुलका की ओट से होता हुआ सूरज निकला था, वह सब तमाम दुनिया में निकल चुका था, कम-से-कम बाघारू की पूरी दुनिया में तो निकला ही था, निपुछापुर की फैक्ट्री के भोंपू से तो यही ज़ाहिर होता था।

उस दुनिया के एक सीमांत से दूसरे सीमांत की ओर बाघारू की इस बानगी के पहले यह बारघरिया मैदान की ढलान थी। ढलान पर से बच्चों की तरह लुढ़कते हुए बाघारू अपने शरीर का डोलना और लोरी दोनों खो बैठा था।

बच्चे को छोड़कर कोई लोरी नहीं होती। बच्चे को छोड़ कोई कविता नहीं होती। इसी से बाघारू खुद अभी अपना ही बच्चा था।

56
मज़दूरों का दैनिक उत्सव

भोंपू की आवाज़ सुनकर निपुछापुर चाय-बागान के कतारबद्ध घरों से सब बाहर निकल रहे थे। सबके कंधों पर एक-एक छतरी थी। हर एक के कांधे पर रूमाल जैसी थैली। लंबे डंडों के छोर में छोटी-छोटी चपटी कुदाल थी। साथ में हाथ की अंगुलियों जैसे काँटा-कुदाल, हँसिया और लंबा कलम तलाश छूरी। जिसके कंधे पर जिस तरह से टंगा था या झूल रहा था वह उसी के अनुसार चल रहा था। जिसके कंधे में रूमाल झूल रहा था वह खुद भी खुशी से लहराता चल रहा था। जिसके कंधे पर कुदाल लटक रहा था वह भी थोड़ा हिलकर चल रहा था। पर जिनके कंधे पर हँसिया और छूरी फँसी थी वे कंधे हिलाये बिना चल रहे थे।

मर्द अधिकतर घुटने तक के हाफ पैंट पहने थे। वह भी घुटने से चिपका हुआ। आगे-पीछे बहुत सारी सिलाइयाँ और जेबें। बदन पर तरह-तरह के बनियान, गोल गले वाले, बिना कॉलर वाले, वी-कॉलर वाले। कॉलर के आगे-पीछे दाग, छाती-पीठ पर तरह-तरह के नक्शे। तरह-तरह के रंग वाले बनियान। पर सभी रंगीन। बीच-बीच में एकाध भड़कीले रंग वाले बनियान भी नज़र आ जाते। कई अधेड़ उम्र के लोग धोती पहने हुए थे घुटने तक और ऊपर से बनियान। किसी-किसी के खाकी हाफ पैंट में हाफ़ शर्ट खोंसा हुआ था। ज्यादातर नंगे पाँव थे। पर एक-दो लोगों के पैरों में चमकते बूट और मोजे थे। वैसे एक-दो के हाथ में स्टिक भी थी। कई केड्स भी पहने थे। वे ऐसे चल रहे थे जैसे कहीं खेलने जा रहे हों। तेल से चमकते काले

बाल तरह-तरह से संवारे हुए थे। पीछे जुल्फी, दोनों ओर बॉब कट, सामने माँग—बड़े करीने से सजे-सजाये, सभी मज़दूर बागान की ओर बढ़ते जा रहे थे। ऐसा लगता था जैसे मज़दूरों का कोई सैलाब जा रहा था।

इन मज़दूरों में औरतें भी थीं। औरतों का हुजूम भी मर्दों के बीच अपने एक अलग अस्तित्व के साथ बढ़ रहा था। अलग-अलग साज में। औरतों की साड़ियों का चोखा रंग। साड़ी थोड़ी ऊपर करके बँधी हुई। आँचल नहीं। सामने की ओर थोड़ा अधिक झुकाकर आँचल छाती से नीचे की ओर गिरा हुआ। किसी-किसी का आँचल ही नहीं था एकदम से। पूरी-की-पूरी साड़ी छाती के ऊपर से गोल होकर नीचे झूलती हुई। बालों की बहार पहनावे की बहार को पीछे छोड़ता हुआ। किसी का केश बीच की माँग से दोनों ओर को बँटा हुआ। किसी-किसी की दोनों चोटियाँ माथे पर बँधी हुई। किसी के छोटे-छोटे बाल कंधे पर छितराये हुए। कोई थोड़ा-सा ऊपर की ओर जूड़ा बाँधे। प्राय: हरेक के बालों में फूल था। सुबह जिसे जो भी मिला वही फूल लगा लिया था। एक-दो के सिर मे बड़ा-सा गेंदे का फूल। कल रात बँगले से लाकर सहेज के रखे हुए थी। बैंगनी रंग की घास के फूल भी कोई-कोई तिनके में फँसाकर बालों में खोंसे हुए थी। फूल का तिनका माथे के ऊपर निकला हुआ था, जो चलने से काँप रहा था।

बहुत-सी स्त्रियों के पीठ पीछे झोले में बच्चे लटके हुए। झोले के बाहर बच्चों का सिर निकला हुआ जो चलने के साथ-साथ हिल रहा था। लगता है चाल के पालने पर सब बच्चे ऊंघ रहे थे।

स्त्रियां इतनी रंगीन थीं शायद इसी लिए सफेद साड़ी और ब्लाउज़ पहनी दो-एक अधेड़ ओरतें भी उनके बीच रंगीन नज़र आ रही थीं।

पर औरत-मर्द, बुड्ढे-बुड्ढी, छोकरा-छोकरी—इस तरह से अलग करके देखा जाये तो कुली लाइन के रास्ते पर जो सब लोग एक साथ सुबह का भोंपू सुनकर काम पर निकल पड़े थे, उनके एक साथ चलने को शायद ठीक से समझा नहीं जा सकता था। अभी तक भोंपू को सुनकर, अलस्सुबह, एक साथ जाना ही सबसे बड़ी बात बन गयी है। उससे किसी को अलग नहीं किया जा सकता था। सब मिल-जुलकर एक घटना, एक दृश्य में परिवर्तित हो गये थे। कपड़े-लत्ते, चाल-ढाल से कोई अलग भी हो जाये तो भी वह इसी समग्रता को स्पष्ट करता था। कितने क़िस्म के चलन से बनी थी यह चाल। जल्दी-जल्दी चलने की कोशिश में कोई-कोई दुलदुल चाल चल रहा था। कोई कमर को अधिक मटकाते हुए चल रहा था। लहराते बालों से किसी की चाल सबसे अलग-थलग नज़र आ रही थी—एक अलग ही छंद के साथ। कोई अधेड़ घुटनों तक ढीला हाफ-पैंट पहने मिट्टी की ओर देखते-देखते छोटे-छोटे कदमों में बढ़ता नजर आता था। इतने सारे विचित्र चाल के बावजूद काम पर पहुँचने की जल्दी चाल में जो तेजी लाती थी वह प्रमुख हो उठता था जो कि तमाम वैचित्र्य के

परे भी था।

इतनी भीड़ में भी दो आदमी दो नई साइकिलों को ठेलते हुए लिए जा रहे थे। बीच-बीच में घंटी बजाते हुए। साइकिल के हैंडिल में प्लास्टिक की रस्सियों के गुच्छे चलने से उड़ने लगते थे। बस थोड़ा-सा रास्ता चढ़ाई के बाद तो पहुंच जाएंगे। इसके बदले सबके साथ चलकर जाने में तो काफ़ी समय लग जायेगा। फिर नयी साइकिल पकड़कर चलने का मज़ा ही कुछ और है। काफी समय तक तो साइकिल नयी की नयी रहेगी। ठेलते हुए काम की जगह जाना फिर ठेलते हुए लौटना अभी कुछ दिनों तक तो चलेगा। साइकिल है इसी लिए बाबू उसे किसी ज़रूरी काम से भी भेज सकते हैं। वैसा हो तो तमाम बागान घूमा जा सकता है। तब अकेले-अकेले साइकिल चलाने में काफ़ी मजा आता है। दोनों ओर की क्यारियों पर या रास्ते पर जो लोग काम कर रहे होते हैं, वे पलट-पलट कर देखते हैं कि किसने साइकिल खरीदी है। परिचित लोग आवाज़ भी देते हैं, औरतें खिलखिला कर हँसती हैं। और इन सबसे पेडल का ज़ोर बढ़ जाता है। दोनों ओर के घने सब्ज़ चाय के पौधों के भीतर से चमकती ग्रीन साइकिल दौड़ती रहती है। सिर्फ रंग के लिए ही पचहत्तर रुपये अधिक मूल्य है। हैंडिल के लाल झालर दोनों ओर उड़ते रहते है हवा में। फिर दोनों हैंडिल में लगे मिरर से पीछे की चाय-क्यारियाँ साँय-साँय सामने से निकलते जाते है। दोनों मिरर के लिए पचास रुपये अलग से पीछे का लाल बैकलाइट चारों ओर की हरियाली मे चमकती हुई। लाइट देखकर ही पहचान ली जाती है कि किसकी साइकिल है। चलाना हो तो इसी तरह से साइकिल चलाने में सुख है। जैसे सर्कस का खिलाड़ी खेल दिखा रहा हो, चारों ओर गैलरी, आवाज़, तालियाँ। और अगर ऐसा हो जाये तो जहाँ साइकिल चलायी जा रही हो और आसपास कोई न हो, तो अपने ही कानों के दोनों ओर स्वर की छूटती, जितनी तेज़ हो साइकिल उतनी ही ज़ोर से भागती है। चलाना हो तो इस तरह से साइकिल चलाया जाये, वरना भोंपू सुनकर सबके साथ पैदल चलना ही बेहतर है। साइकिल भी जैसे काम पर जा रही हो।

तमाम जुलूस में ट्रांजिस्टर बजता जा रहा था। चमड़े के बैग में किसी कंधे पर झूलते हुए बैग के बदले किसी के हाथ मे झूलता हुआ। कोई हाथ में पकड़े हुए था तो किसी का कान से सटा था। सब अपनी पसंद के केंद्र सुन रहे थे—कोई विविध भारती, सिलान तो कोई कराची। किस्म-किस्म के गीत बज रहे थे। एक-एक गीत को पसंद करने वाले श्रोताओं के झुंड। कोई-कोई ट्रांजिस्टर के साथ सुर मिला रहा था। कोई गीत के ताल पर हाथ से ताली देता था। दोनों हाथ ऊपर उठाकर कोई-कोई चुटकी बजाता था।

इतने सारे गीत इतने ज़ोर से एक साथ ऐसे बज रहे थे कि वह सब मिलकर एक अर्थहीन हो-हल्ला क्रमशः बढ़ता जा रहा था। इतने सारे लोगों का एक साथ चलना, बातचीत करना, गाना, हँसना, आदि से वह हो-हल्ला बढ़ता ही जा रहा था। आँखें

बद कर सुनने पर लगता था कि एक अर्थहीन, उद्देश्यविहीन कोलाहल बागान के इस रास्ते से होकर गुजर रहा है। उस कोलाहल का कोई उद्देश्य ही नहीं था, इसी से उसमें कोई आकस्मिकता भी नहीं थी। और इसी में बीच-बीच में बनावटी, नाटकीयता जोरों से उठकर फिर अचानक उसी में मिल जाती।

पर जो इस शोरशराबे के बीच में थे वे अपनी अपनी पसद के अनुसार गीत सुन रहे थे या फिर सुन नही रहे थे। वे अपने-अपने पसद के गीत भी चुन ले रहे थे। एक गीत खत्म होने पर किसी और रेडियो में पसदीदा गीत आ रहा हो तो उधर चले जा रहे थे। और किसी-न-किसी रूप में अपनी इस पसद को जाहिर भी कर रहे थे—चाहे गाकर या फिर ताली बजाकर, कभी उत्तेजना से या खुशी में। जिसने किसी चीज़ को अपनी पसद नहीं बतायी, उस पसद पर इनका जैसे कोई स्वत्व प्रतिष्ठित नहीं हो पाता।

इतना कुछ के बावजूद भी इतने सारे लोगो के इस तरह से लपकने के भीतर अभ्यास और रोज़मर्रा का एक छद था। कभी नहीं लगता कि यह छुट्टी का दिन है। फिर यह भी नही लगता कि काम पर जाने के पहले और आखिरी पल तक ये अपने जीवन यात्रा की स्वाभाविकता को अपनाने का श्वासरुद्ध प्रयास, हड़बड़ी है—इसीसे यह हो-हल्ला, शोर-शराबा है। चाय-बागान के कामकाज में खेतीबाड़ी के लिए अनिवार्य रूप से अवसर रहता है—कुछ-कुछ। उसी से बगीचा के निकट ही यह साइकिल खड़ी कर दी जायेगी। रेडियो चाय के पौधे पर लटका दिया जायेगा। ये रग, ये सजावट, ये गीत, इस ताल के अदर से ये सब काम पर चले जा रहे थे। रोजगार के लिए, बागान के भोपू के साथ-साथ। जैसे कोई मेला हो, उत्सव हो। काम पर जाना तो मजदूरों का रोजाना का उत्सव हुआ करता है।

57

बाघारू और मज़दूर-वर्ग

इस उत्सव का कोई अग नही था बाघारू। बारघरिया के मैदान से उत्तर निपुछापुर में घुसते ही वह इस उत्सव के पथ पर, उत्सव के बीच फँस गया था। बारघरिया का मैदान ढलान बनकर निपुछापुर बागान के सामने वाली जमीन तक फैला हुआ था। कंपनी इसमें से कुछ जमीन बागान कुलियों को बटाई पर दे देती थी। उसी धान के खेतो से होता हुआ तार बाड़े को पार करता कुली लाइन के भीतर के रास्ते पर बाघारू आ पहुँचा था। पहले उसे पता ही नही चला कि वह फंस गया है। भोपू की आवाज़ सुनकर लोग अपने काम पर जा रहे थे, बाघारू भी अपने काम से जा रहा था। पर ऐसे ही कुछ कदम चलते ही रास्ते के दोनो ओर के घरो से, खुली जगह और दूर के घरों से कुलबुलाते लोग निकल कर रास्ते मे आते चले गये थे और यह भीड़

एक बड़े-से जुलूस का रूप ले लेती थी। अगर बाघारू को पहले से ही पता होता तो वह बाहर निकल कर खड़ा हो सकता था। और इनके चले जाने के बाद अपनी राह लेता। पर जब तक वह यह समझ पाये तब तक काफ़ी भीड़ बढ़ चुकी थी और रेला अपनी गति से और अपने नियम से बहने लगा था। फिर बाघारू को अंदाज़ा हो गया था कि उसके सामने और पास वाले लोग जिस वेग से क़दम बढ़ा रहे हैं उसे भी उसी तेजी से बढ़ना पड़ रहा है। बाघारू ने दो-एक बार रुकना भी चाहा था, पर वह रुक नहीं पाया। फिर इस तरह से खुद सोचकर रुकने की बात उसने कभी सीखी भी नहीं थी। चाहे तो भी नहीं रोक सकता अपने को। अगर वह गिर जाता और भीड उसे रौंदती हुई निकल जाती, या फिर सब मिलकर धकियाते हुए उसे बाहर खदेड़ देते कि वह इस लाइन का आदमी नहीं है तो शायद बाघारू इस भीड़ से बाहर निकल गया होता। पर बाघारू के कारण कभी कोई घटना नहीं घटी, बल्कि उसे लेकर घटनाएँ घटित होती हैं। और जब तक वह घटित नही होती तब तक बाघारू को इस भीड, इस जुलूस के साथ चलते ही जाना था, जिधर वे जाये उधर ही।

पर उससे भी कुछ नहीं होना। बाघारू तो इस विचित्र जुलूस के साथ मिल भी सकता था। बाघारू अगर कोई छोटा-मोटा आदमी होता तो किसी की नजर भी शायद उस पर नहीं पड़ती या बाघारू का इतना बडा शरीर अगर ढँका हुआ होता तो भी । बाघारू इस भीड में फँसकर जब भीड़ की गति से भाग रहा था तो ऐसा लगता था जैसे वह भीड़ का मस्तूल हो। काफ़ी पीछे रह गये लोग भी दूर से ही बाघारू के सिर को देखकर अपनी सही दिशा तय कर पायेंगे। सचमुच के मस्तूल में कम-से-कम अलकतरा या जो रग पुता हुआ होता है, बाघारू का वह नहीं था। कमर में एक छोटी-सी लँगोटी बँधी थी। पेड का पत्ता इस लँगोटी से कहीं कुछ अधिक ढँक सकता था। इसी से उस एकमुँही भीड़ के साथ प्रवाह के वेग मे बह जाने के बावजूद बाघारू कोई प्रवाह बन नहीं पाया। वह प्रवाह नही, प्रवाहित है। तिस्ता के स्रोत में जिस तरह खड़ा शाल वृक्ष बहता है ठीक वैसे ही प्रवाहित हो रहा था बाघारू। औरतों की जो भीड़ ठीक बाघारू के पीछे-पीछे थी, वह बाघारू को देखते ही हँसना शुरू कर दी थी अचानक। और इस तरह उत्सव के पथ पर तो हँसी भयानक रूप से संक्रामक होती ही है। देखते-देखते वह आग-सी फैलने लगती है। जो लोग आसपास थे वे तो हँसी के कारण का साक्षात् दर्शन कर रहे थे आँखों के सामने। और फिर थोड़ा गौर से देखने के लिए उसके और करीब आना चाहते थे। औरतों के बीच एक हुड़दंग शुरू हो गया था। वे उसे ठेलकर आगे बढ़ जाना चाहती थीं। पर ऐसा कर नहीं पा रही थीं। बाघारू के पीछे जो पहली कतार में थीं, वे किसी तरह से भी जगह छोड़ने के लिए तैयार नहीं थी। पीछे से कोई-कोई ठेलठाल कर उनके अंदर आ जातीं। धीरे-धीरे बाघारू के चारों ओर एक बड़ा घेरा-सा बन गया। खासकर औरतों का।

पानी में एक ढेला पड़ने से जैसे पानी में कंपन का तरंग उठता है, उसी तरह इस भीड़ में बाघारू को लेकर हँसी की तरंग जागी थी। जो लोग काफ़ी दूरी पर थे वे बाघारू को ठीक से न देख पाने पर भी हँस रहे थे। कोई-कोई अंगुली के इशारे से बाघारू को दिखाता और हँसी की लहर काफी दूर-दूर तक फैल जाती। आखिर में बाघारू इस संपूर्ण और क्रमशः बढ़ते जुलूस का एक चलता-फिरता दृश्य बनकर ही रह गया था।

हर दिन काम पर जाते लोगों की इस भीड़ में फँस जाने से बाघारू की सूरत देखने लायक बन गयी थी। धूल-मिट्टी से सराबोर जटाजूट सिर के बाल। शरीर पर धूलमाटी का मुलम्मा—मानो धूल-मिट्टी से उठकर ही सीधा वह इस भीड़ में आ गया हो। इतनी बड़ी एक कतार को इतने सारे लोगों को बाघारू के रूप में जैसे एक बैसाखी मिल गयी थी, जिसे लेकर वे लँगड़ाते हुए चल जा रहे थे। भीड़ का एक पूरा-का-पूरा हिस्सा।

एक आदमी काफी लपक-लपक कर चल रहा था। टाइट, छोटा सा पैंट और वैसी ही टाइट गोल गले की गंजियान, पैरों में मोजे के साथ कड़स हाथ में एक खूबसूरत-सी स्टिक। वह बीच बीच में स्टिक से कदम को ठुकठुकाता हुआ लपकते चाल से चला जा रहा था। उस आदमी को जैसे अपनी स्टिक के और बेहतर व्यवहार का साधन मिल गया था। वह बाघारू के पास आकर खड़ा हो गया फिर पीछे की ओर पैर कर मार्च करता हुआ कभी कदमताल करता हुआ उचक-उचक कर चलता था। बाघारू के तमाम शरीर में उस पल भीड़ की चाल या लँगड़ाने ने धक्का दिया था। इस तरह के दलबद्ध लँगड़ाने का तो वह अभ्यस्त नहीं है। और फिर उसके इतने विशाल शरीर के भार में भी उसका लँगड़ाना काफी हद तक बढ़ गया था। धीरे-धीरे, जैसे पहाड़ से पत्थर गिर रहा हो। वह आदमी बाघारू के कमर भर ऊँचा होगा। वह जब बाघारू के ऐन सामने इस तरह कदम कदम पर पीठ पर लटकाते हुए चल रहा था तो लग रहा था जैसे बाघारू कोई ऊँची और बड़ी-सी मूरत हो, जिसे वह देख रहा था गौर से और देखने के फाँक में वह अपनी स्टिक उठाकर बाघारू की बायीं भुजा पर मारा। पहले हाथ से ठेलकर दबाया, पर वह पीछे नहीं हटा तो फिर स्टिक से दबाया। फिर दाहिने बाजू पर वही क्रिया दोहरायी। बाघारू के पेट में ठहाका जैसा करते ही जो औरतें बाघारू को घेरे में लिए हुए थीं, वे तालियां बजाकर नाचने लगीं। कौतुक से दोनों हाथ होंठ के पास ले जाकर हवा में हिलते पेड़ों की तरह हँसी के फव्वारे-सा खिल उठीं।

माथे में फूल लगाये, रंग-बिरंगी साड़ियां पहने सब औरतें अगर एक साथ साड़ी पहनकर खड़ी हो जायें और एक ओर हिलने लगें तो उन्हें एक-दूसरे का हाथ पकड़ना ही पड़ता है। और इस तरह से हाथ पकड़ने से नृत्य का ताल भी अपने आप आ जाता है। यह बात वे खुद समझ पाएँ कि इसके पहले ही बाघारू को घेरे इन औरतों

ने एक-दूसरे की कमर मे हाथ डाले नाचना शुरू कर दिया और हँसने लगी

"अरे ओ चरवाहा, जल्दी जल्दी आ
पहाड पर से एक जगली भालू
उतर आया है
और हमारे नाच की कतार
तोड गिया है।'

इस गीत के संगति से वह आदमी झट मे बाघारू के पीछे चला गया। बाघारू अब औरतो की कतार के बीच था। औरतो के गीत के ताल के साथ कदम मिलाता हुआ वह बाघारू के पीछे-पीछे नाचने लगा। बाघारू के इतने बडे शरीर के पीछे उस आदमी का इतना छोटा-सा शरीर, टाइट छोट मे पेट मे उसकी मटकती कमर ने सबकुछ मिलाकर नाच, गाना, अभिनय, नौटकी और तमाशा का समाँ बाध दिया था। आदमी अपना स्टिक लिए बाघारू के पीछे पीछे चलता था, मटकता हुआ। एक बार बाये पैर के बाई ओर दाहिना पाव तो अगली बार दाहिने पैर के दाहिने और बाये पैर का ताल से रखता हुआ। आदमी स्टिक लेकर बाघारू के टखने पर मारता था दायें बायें। जांघ मे मारता, दाहिने-बाये। पिछाडी मे मारता था, दाये बाये। और आखिर म जाँघो के बीच जो फाक है, वही लँगोटी के छोर के ऊपर, स्टिक का सीधा करके पकड लिया, जैसे उसे बाघारू के चूतड के भीतर घुसेड दूगा।

इससे जो हँसी की लहर उठी, उसे सभालने के लिए हाथो की आवश्यकता थी, इससे औरतो की कतार टूट गयी। गीत रुक गया। और इस आदमी के पीछे की भीड और तमाम जुलूस खिलखिलाहट से फट पडा। बाघारू तो जुलूस के बीच मे पड गया था, उसके सामने भी लोगो की अथाह भीड थी। वे भी मुडकर देखते थे और बाघारू को देखते ही समझ लेते थे कि इस हो-हल्ला का कारण क्या है।

उसे घेरकर यह भीड पगलायी हुई है—बाघारू को इसका अदाजा हो गया। उसे लेकर तमाम भीड हँस रही है--यह भी उसकी समझ मे आ गया। उसे घेरकर औरते नाच रही थीं—बाघारू ने यह भी कुछ-कुछ देख ही लिया। इस आदमी ने आकर उसे टोका मारा और सामने से पीछे की ओर चला गया--बाघारू सब जानता था। पर सोच नहीं पाया कि वह क्या करे ? बाघारू इस भीड से छूटकर भाग सकता है, पर जाये तो आखिर कहाँ जाये ? इस जुलूस के पास तो घर-द्वार है। घर के सामने बच्चे-कच्चे, मुर्गियाँ-बकरियाँ है। जुलूस को तोडकर बाहर चला भी जाये तो रुकेगा कहाँ ? खडे होने के लिए ठौर भी तो चाहिये ? जुलूस के बाहर ? जुलूस चले जाने की प्रतीक्षा में ? बाढ म उखडे शाल वृक्ष के मानिंद आखिरकार बाघारू जुलूस के साथ ही बहता चला गया--उसको घेर कर चलती, तालियाँ, नाच, गीत गाती भीड़, हो-हल्लड़ और उसके साथ-साथ वह भी चलता गया।

उसे तो देखकर पलक झपकते ही कहा जा सकता था कि वह इस भीड का

आदमी नही है। अलम्मुवह इस कामकाजी लोगों के जुलूस में बाघारू का शरीर कहीं अधिक नंगा हो गया था। इतना नंगापन जिसे यह भीड़ भी सहन नहीं कर सकती। हो-हुल्लड़ मचाकर भीड़ ने इसी से अपने को बाघारू से अलग कर लिया है। बाघारू ने भी इस नग्न शरीर से अपने को अलग कर रखा था।

पर बाघारू के पैर इतने लम्बे-चौड़े थे कि लगता था कि इस जुलूस मे ही वह गड़ा हुआ है। जैसे वे पाँव मिट्टी के भीतर से उभरकर मिट्टी के साथ ही चल रहे हों। कई दशकों में बढ़े वृक्ष के तने जैसी उसकी पीठ पर कहीं फिसलन, कहीं खुरदरापन, कहीं नमी सी तो कहीं रुखापन, मगर मेरुदंड के दोनों ओर की पेशियाँ झरने की तरह उठती-गिरती थीं। नाच-नाच उठती थीं—लगता था इस शरीर में वृक्ष की प्राचीनता तो है पर स्थायित्व नहीं। कमर से पाँवों की सरल चाल एक मूर्ति के आकार सी प्रतीत होती थी क्योंकि कहीं से कोई आवरण नहीं था। जैसे किसी प्रस्तावित पुल के नये-नये बना दो पिलर खड़े हों जो नदी से उठकर इस जुलूस में आ खड़े हुए हों। जबकि इस जुलूस में शामिल यह शरीर इस जुलूस का नहीं था। बाघारू का शरीर अब बाघारू का बैरी बन चुका था।

बाघारू को घेरकर नाचते गाते और कवायद करते यह जुलूस एक चढ़ाई पर पहुँचते ही बिखरने लगा। बाघारू चढ़ाई को देख रहा था—सबके सामने तो इतने सारे लोग थे कि कुछ देख पाना ही कठिन था। पर चलते चलते उसे रगों का खिचाव, नसों का खिचाव, अंगुलियों के भार से उसे पता चल जाता था। चढ़ाई पार करते ही जुलूस से निकल कर एक भीड़ अलग हो गयी और दाहिनी ओर मुड़ गयी। बाघारू के हटकर खड़ा होने की कोशिश करते ही फिर वही जुलूस उसे खींचकर लेकर चला गया। वह फिर निकल नहीं पाया। दाहिनी ओर फैक्टरी नजर आती थी। चाय के पत्ते सुखाने के शेड भी दाहिनी ओर नजर आ रहे थे। बाघारू को लेकर भीड़ बढ़ती जा रही थी और जुलूस से झुंड के झुंड लोग निकलते जा रहे थे अपने-अपने काम पर। अब बाघारू को नजर आया कि उसके सामने आनंदपुर गेट जैसा एक गेट है और उसके पार चाय की बागान। साइकिल और ट्रांजिस्टर लिए बाकी भीड़ चाय के बगीचे में चली गयी।

अब बाघारू को लेकर भीड़ में कोई दिलचस्पी नहीं पर बाघारू जुलूस मे अटक गया था। इस ऊँचाई से नीचे देखते हुए बाघारू ठहर गया। उनके बाड़े के घेरे से होकर चाय बागान, रास्ते के बाद रास्ते, मोड़ के बाद मोड़ मैदान के मानिंद समतल चाय के पौधों के ऊपर छतरी की तरह समतल शिरीष वृक्षों के शिखर। और उस बागान मे फैले, काम करते रंग-बिरंगी लोग।

पर देखते-देखते ही पूरा-का-पूरा जुलूस बागान में उतर गया था। फिर वह बाघारू की नजरों से ओझल हो गया था। वह उसे देख नहीं पाया। वह उसी गति से बढ़ता चला गया—उसे घेरकर चलते जुलूस को छोड़ते हुए।

58

बाघारू और बाबू

दोनों ओर चाय-बागान की कतारें, बीच में चौड़ा सपाट हरा-भरा रास्ता। बाघारू खड़ा रहा, अकेला, छाल छिले हुए अर्जुन वृक्ष की तरह। समूची भीड़ चली गयी कि नहीं, यह देखने के लिए।

बाघारू के सामने हर कहीं काम चालू था। चाय के पौधो से औरतों की छाती ढकी हुई थी। ऐसा लगता था जैसे सब्ज़ समंदर में नहाने के लिए उतरी हैं। औरतें एक-एक पत्तियाँ तोड़-तोड़ कर हाथ में ही रख रही थीं। हाथ भर जाने पर कंधे पर टँगी टोकरियों में डाल रही थीं। फिर अंगुलियाँ पौधों पर उतर आती थीं। तलाश करने की आवश्यकता नहीं थी। अंगुलियाँ जानती थी कि तोड़ने लायक़ पत्तियाँ कहाँ हैं। पल-पल भर मे फुसफुसा कर बातें करने की आवाज़। निराई के समय जैसे धान के खेतों की-सी आवाज़ें भर जाती हैं। खेतों की बात याद आते ही बाघारू अपने काम और इस काम के बीच कोई मेल तलाशने लगा था। वह मेल भी मिल गया उसे। खड़े-खड़े बाघारू ने दोनों हाथों को अपनी आँखों के आगे ले जाकर फैलाया। उसे अगर पत्तियाँ तोड़नी पड़ें, तो क्या वह एक भी पत्ती तोड पायेगा ? या फिर उसकी अंगुलियाँ सांड के जीभ की तरह एक गुच्छा पत्तियाँ तोड़ लायेंगी ? बाघारू ने दाहिना हाथ आँखों के आगे फैलाया, अंगूठा को झुकाकर भीतर की ओर लाने की कोशिश करने लगा पर अंगूठा मुड़ा ही नहीं। अगूठे के नीचे के मांस पर सिर्फ़ एक-दो लकीर खिंच आयीं। तब बाघारू अंगूठे के बाक़ी चार उँगलियों के पोरो को छूने का प्रयास करने लगा। फिर समझने की कोशिश की कि उस छुअन को वह महसूस कर पाया है या नहीं।

बायीं ओर कुछ लोग हँसिया लेकर चाय-पौधों की डाल काट रहे थे। हँसिए छूरी की मानिंद पतले-पतले थे, हैंडिल भी छोटे-छोटे। क्या बाघारू अपनी मुट्ठी में इसे पकड़ पाएगा ? बाघारू फिर अपना दाहिना हाथ आँखों के सामने ले जाकर परखने लगा। अनुभवी आँखों से पता चल गया कि उसकी मुट्ठी का ज़ोर इतना बड़ा है कि उसमे सिर्फ़ कुल्हाड़ी, कुदाल या लंगर पकड़ा जा सकता है, पर छूरी जैसी पतले हँसिया की मूँठ नहीं पकड़ी जा सकती। वह फिसलकर एकबारगी गिर जायेगा। बाघारू ने दायें हाथ की मुट्ठी बाँध ली। अवलंबविहीन उसकी अंगुलियाँ गुँथ नहीं पायीं। अलग-अलग हो गयीं। बायीं ओर कुछ मर्द नाली में उतरकर कुदाल से गीली मिट्टी खोदकर ऊपर उलीच रहे थे। माथे के ऊपर कुदाल उठाने की मुद्रा से बाघारू परिचित था। खोदी गयी वह मिट्टी भी बाघारू की जानी-पहचानी थी। बरसाती जंगल में बंद नाली के एक भाग का धीरे-धीरे साफ़ होना भी बाघारू को पता था।

सामने की ओर उसने नज़र डाली, मोड़ पर कई बाबू खड़े थे। जुलूस के उसे

यहाँ छोड़कर चले जाने के बाद, फिर अपने को खुद-ब-खुद ग्रहण कर लेने में बाघारू को कुछ समय लगा। चाय-बगान के चारों और होने वाले कामकाज के अनुभव का वह मेल-जोल बिठाता रहा। इन सबके भीतर होते हुए बाघारू ने अपने खोये हुए अपनत्व को पा लिया था। वह अपने आप में लौट आया था।

सामने बाबुओं को देखते ही वह जैसे जाने के लिए एक जगह पा गया। बाबू लोगों के न होने पर ही बाघारू अब तक जुलूस की कैद में था। अब जब बाबू लोग आ गये हैं तो उसे कोई काम-धंधा भी मिल सकता है—यही कुदाल से नाली की सफ़ाई का काम या फिर कुदाल चलाने का कोई और काम। कामकाज होता तो जुलूस उसका इस तरह से मजाक न उड़ाता, फिर उसे अकेला छोड़ कर यूँ ही खिसक न जाता। क्या बाघारू जुलूस में शामिल होना चाहता था? बाघारू बाबू लोगों के सामने तो पहुँच गया। पर वहीं से मुश्किलें शुरू होती थीं। ऐसे ही तो बाघारू यहाँ-वहाँ खड़ा हो सकता था अकेला, पर अब उसे इतनी ऊँचाई से आँखें झुकाकर बाबुओं की ओर देखकर बात करना होगा, यही तो मुश्किल है। बाघारू का शरीर ही कुछ ऐसा था कि सिर्फ खड़े रहने पर भी उसे देखे बिना कोई उपाय बचा नहीं रहता। बाबू ही पूछता उससे—"क्यों, कुछ कहना चाहते हो ?"

"नहीं, बाबू" कहते ही उसे याद आ गया कि वह तो बस यही कहना चाहता था कि वह कुल्हाडी-कुदाल चलाने का काम कर सकता है, कोई कामकाज मिल जाये तो, फिर उसने फ़ौरन कहा, "हाँ बाबू।"

बाबू के पास शायद थोड़ा समय था—जैसे बाबुओं के पास हुआ करता है। वह पूछने लगा—"बोलो, क्या कहना चाहते हो ?"

बाघारू फिर से घबरा गया। अक्सर बाबू लोग बाघारू से कभी कोई बात पूछा नहीं करते थे। पर दूसरों के करने से तो वह बाघारू को सुनायी तो देता था। कभी-कभार कोई-कोई बाबू उससे भी कुछ पूछ लिया करते थे, जैसा कि एमिलिया बाबू। पर कभी किसी बाबू के किसी बात का जवाब उसके दिमाग़ में नहीं आया था। बाबू लोग क्या जानने के लिए पूछा करते है, बाघारू वह अंदाज़ा लगा नहीं सकता। फ़ौरन कह दिया—"नहीं बाबू।"

जवाब सुनकर लगा कि बाबू खुश हो गये हैं—हंस रहे हैं। जैसे इसी जवाब का ही उन्हें इंतज़ार हो। बाघारू बोलना चाहता था कि उसे पत्तियाँ तोड़ने का काम नहीं आता। छुरी चलाने का काम नहीं जानता। इसके बाद वह कहना चाहता था, कि वह कुदाल चलाने का काम जानता है। उसे कुल्हाड़ी चलाने का काम भी आता है। इसके बाद वह कहना चाहता था कि बाबू उसे एक कुदाल या कुल्हाड़ी दे दो। पर इन तीनों बातों में से कौन-सी बात पहले कहे, और कौन-सा बाद में उसे लेकर बाघारू के संशय की सीमा नहीं थी। वह काफ़ी उधेड़बुन में था। याद भी नहीं था उसे कि कौन-सा आगे और कौन-सा पीछे। हालाँकि यह क्रम बाघारू का खुद का

बनाया हुआ था। बाघारू के मन मे बातें जैस क्रमवार आती हैं वह बाबुओ के सामने नहीं आती शायद। यही एक शब्द 'शायद' बाघारू को विपर्यस्त करने के लिए काफी है।

"बाबू मै पत्ती नही तोड़ सकता।"

यह सुनकर बाबू ने उसे सिर उठाकर देखा। बाघारू ने वह जगह तलाशने के लिए गर्दन घुमाई, जहाँ औरतें पत्तियाँ ऐसे तोड रही थी जस छाती भर भर पानी मे हों। पर वह उस जगह को देख नही पाया। फिर बाघारू को मुड़कर खड़ा होना पड़ा—बाबू को बिल्कुल ही बिसरा कर। पर उसकी बातो के प्रमाणस्वरूप बाबू के आगे पत्तियाँ तोड़ने का काम दिखाने के लिए। बाघारू बातो से काम समझा नही पाता। काम से बात को समझाता है।

फिर उन औरतो को देखते ही अगुली बढाकर बोला "वो जो बाबू !"

"क्या ?"

"पत्तियाँ तोड़ रही हैं बच्चों की माँ। मइ नही तोड सकता।"

"हूँ" बाबू ने आँखे घुमा लीं। आँखो के फेरन मे कोइ अवज्ञा भाव नही था मतवाले कुली कामगारो की इस तरह के दार्शनिक सलाप म उनके अनुभव का एक प्रकाश मात्र था।

"बाबू !"

"हूँ।"

"मई डाल भी नही काट पाऊँगा।" कहता हुआ बाघारू ने बाबू के आगे अपने हाथ फैला दिए। बाबू को छोड़कर हाथ प्राय एक बित्ता आगे निकल गये थे—उसका हाथ इतना ही लंबा था—"यहाँ बाबू।"

"हूँ।"

"ऊहां जो छुरी चल रहा है मई नही चला सकता बाबू।"

"हूँ।"

डाल काट सकता है, पर यह कलम छुरी उसके हाथ मे पकड़ायेगा नहीं, इतनी जटिल बात को कौन-सी भाषा में समझाये बाघारू ?

बाघारू चुप हो गया। उसको और कुछ याद नहीं आया। पर वह यह समझता था जरूर कि उसकी बात अभी बाकी है। बाघारू के साइज का आदमी इतने पास खड़ा रहे तो उसका साया पड़ेगा ही। बाबू जैसे प्रतीक्षा मे ही थे कि वह साया हट जायेगा। उसे जाता नहीं देख चेहरा घुमाकर बोले—"तो हो गया न, अब तो जाओ।".

"कहाँ बाबू ?"

"जहाँ जा रहे थे।"

"कहाँ बाबू ?"

"अरे बाबा, वह भला मैं कैसे बता सकता हूँ। यहाँ तो जो काम होता है चाय

बागान का। यह सब तो तुम्हारा काम नहीं है। अब जाओ।"

बाबू की इस बात से बाघारू को याद आया। इस ख़ुशी मे हुलसते हुए वह फौरन बोला, "मइ कुदाल चला सकता हूँ बाबू, कुल्हाडी भी चला सकता हूँ।" जो बोला उसका प्रमाण देने के लिए टॉगे फैलाकर झुककर खडा हो गया और दोनो हाथो को मिलाकर और उठाकर कुदाल कुल्हाडी चलाने की मुद्रा दिखाते हुए बोला, "ऐसे, ऐसे।"

"हू।"

"और ऐसा।" जैसे कुदाल-कुल्हाडी चलाने की बात कह कर वह बाबू को पूरी तरह समझा नही पाया, तभी उसका उन क्रियाओ को दुहरा कर बताना और दिखाना पड रहा था।

"चला सकते हो तो चलाओ।"

बाघारू पल भर के लिए सीधा खडा हो गया। उसके उपरान्त उसकी ऑखें कुदाल-फावडे से काम करते लोगो पर स्थिर करनी पडी थी। वे नाली से गीली मिट्टी निकाल रहे थे फिर उन्हे देखते ही बाघारू सीधा उधर भागने लगा।

क्यारी और रास्ते के बीच की सीधी नाली इतनी गहरी थी कि उसमे उतर कर जो लोग काम कर रहे थे, उनका सिर्फ सिर ही खडे होने पर ऊपर नजर आ रहा था। चौडाई इतनी कि इन्हे पक्तिबद्ध होकर कुदाल चलाने मे कोई दिक्कत नही हो रही थी, यहाँ तक कि घूमकर वे दीवार भी फावडे से साफ कर रहे थे। पर गहराई बहुत होने से चौडाई नजर नही आ रही थी। अभ्यस्त काम की व्यस्तताविहीनता मे भीतर की सडी गली काली मिट्टी छान कर ऊपर निकाली जा रही थी। फिर कुदाल के जरिये ऊपर से खाई के अँधेरे मे फेंकी जा रही थी।

बाघारू सरासर काफी दूर निकल गया था। मानो उसके लिए कुदाल जैसे बाहर ही रखा हुआ हो। उसे लेकर वह नाली मे सीधा उतर जायेगा। इसी निश्चितता के साथ वह कुदाल तलाशने लगा। काफी दूर जाकर फिर लौट आया। लौटते-लौटते बोला, "मेरा कुदाल कहाँ है, बाबू ने कहा मुझे, मेरा कुदाल ?"

तभी बाबू ने उसे जरा जोर से पुकारा, "अरे अरे, यहाँ क्या, अरे इधर आओ, अरे ओ "

चेहरा घुमाकर देखा कि बाबू उसे ही पुकार रहे थे "इधर आओ, वहाँ क्या कर रहे हो ?"

बाघारू फिर बाबू की ओर लौटने लगा। पास पहुँचते ही बाबू क्रोधित होकर बोले, "वहाँ क्या कर रहे हो ? काम चल रहा है। जाओ।" बाबू ने बायॉ हाथ उठाकर बायी ओर दिखाया, बाघारू जिस रास्ते पर खडा था उसकी सीध मे ही रास्ता बता दिया। वही बाघारू के लौटने का एकमात्र रास्ता था। बाघारू ने उसी रास्ते पर फौरन चलना शुरू कर दिया था—इस तरह के आदेश पालन करने के शारीरिक अभ्यास के चलते। बाबू पीछे से बोले, "बाप रे बाप, यह तो बुलडोजर है।"

बाबू के क़रीब से कुछ दूर चले जाने पर वह फिर से पेड़-पौधों, झाड़-झंखाड़ का हिस्सा बन गया। चाय-बगान मे झाड़-झंखाड़ और पेड-पौधे ही तो अधिक होते हैं। इतने जगह पर भला काम होता है। पर इतने सजे-सजाये झाड़ झंखाड़ और तने सीधे सड़क पर बाघारू का यह इतना लंबा शरीर फिर से उदास हो उठा।

59
सिर पर छत बनाना

सामने, कुछ दूर चाय-बगान की आख़िरी छोर पर झाड-झंखाड़ की कनार शुरू हो गयी थी, रास्ते के अंत में। उस ओर ज़रूर कोई झरना था या फिर खाइयां की लाइन। बागान की सीमा वहीं ख़त्म हुई थी। इस पेड-पोधों की फॉक मे बाघारू बाहर निकल सकता था। बस थोड़ा इधर-उधर होकर जान लगानी पड़ती।

अचानक भीड में घिर जाने पर उसके बहाव मे यहाँ, इतनी दूर तक उसे मजबूरन चले आना पडा था—बिल्कुल चाय बागान के बीचोंबीच। उसके बाद वही भीड़ उसे अकेला छोड़कर निकल गयी थी।

इतनी बडी और लंबी भीड उसे घेरकर इतनी दूर तक ले आयी थी, क्या इसी से अब इस चाय बागान की इस निजनता में बाघारू अपने आपको 'लँगोटिया' समझने लगा था। मैदान में, जगल में, नदी के किनारे तो कभी बाघारू ने ऐसा अनुभव नही किया। वहाँ तो उसका शरीर एक पेड की तरह, चपा पड की तरह हवा मे झूमने के लिए तैयार खड़ा रहता था। फूल के सुगंध बिखेरें, हवा को इशारा देने के लिए खड़ा रहता था या फिर स्रोत को इशारा करने के लिए खड़ा रहता था, झूमता रहता था। बाघारू के शरीर ने जैसे उस इशारे को खो दिया था, मनुष्य के हाथ से लगाये गये इन हज़ारों चाय के पौधे, क़तार-दर-क़तार शिरीष के पेड़ और झाड़-झंखाडों के बीच। मैदान जैसा समतल चाय के पोधे और छाते-जैसे शिरीष पेड के शिखर के बीच आकाश से हो हवा आकर बाघारू को छूते ही वह कंपकंपा के—काश उसका शरीर थोड़ा छोटा हो पाता, या फिर लगोटी कुछ बडी, इस चाय बागान के भीतर से चलने के मुताबिक छोटा या बड़ा।

दायें-बायें मुड़े बग़ैर बाघारू सीधा इन झाड़-झंखाड़ों की ओर बढ़ता चला गया। जुलूस ने उसे काफ़ी दूर उत्तर में खदेड़ दिया था। यहाँ से दक्षिण में जाकर उसे डैमकाझारी रास्ते में चलना पड़ेगा। दिशा की निशानदेही अगर सही हो तो इस रास्ते पर भी जाया जा सकता है।

सामने आकर देखा कि घने पेड़ों की पंक्ति में बाड़ा बनाया गया था। अन्नानास जैसे मोटे, मज़बूत और काफ़ी बड़े-बड़े वृक्ष। चपटे-चपटे पत्ते। बड़े-बड़े वृक्षों में एक डाल से दूसरी डाल निकली हुई। सिर झुकाकर बाघारू फल ढूँढ़ने लगा, मिलने पर

तोड़ लेगा। थोड़ा इधर-उधर देखा। अभी फल का मौसम नहीं है। पर पेड़ देखते ही फल ढूंढ़ने लगता। "पेड़ देखना, फल ढूंढ़ना।"

फल न पाकर बाघारू पत्तों को देखने लगता है। यहाँ कोई इन पत्तों को नहीं काटता। किसी के पास भी शायद नहीं आता। यहाँ के कुली लोगों का तो घर है। फिर इन पत्तों की क्या छाजन के लिए ज़रूरत होती है ? फिर ये तो ऐसे हुआ नहीं करते कतार से। चाय-बागान की सीमा में लगाये गये हैं—कंटीले तार का बाड़ा देने के लिए।

बाघारू को तो इन पत्तों की ज़रूरत होती है। जहाँ बाघारू जा रहा था वहाँ अगर इतने बड़े-बड़े पत्ते न मिलें तो ? इतने बड़े-बड़े टीन जैसे पत्तों को छोड़कर बाघारू कैसे जा सकता है ? छोड़ा जाये ? इतने बड़े साइज के पत्ते। मान लो कि घर के लिए दस फीट टीन चाहिये, तो चार ठो पत्ते जोड़ दिये जायें तो एक टीन का साइज़ बन जायेगा। और दो टिन पास में लगा देगा—बस।

अपने आधे शरीर को ढंकने लायक इस तरह का छाजन हाथ में पाकर कैसे छोड़ दे बाघारू ?

पर इतने मोटे, लंबे पत्तों को फिर हाथ से मोड़कर तोड़ा नहीं जा सकता, काटना पड़ेगा। हँसिया या कुल्हाड़ी लाये कहाँ से ? नीचे झुककर झाड़ झखाड़ा के बीच कोई साइज का पत्थर तलाश करने लगा बाघारू। इन पत्तों की डाल में रस होता है। चपटा, धारवाला कोई पत्थर मिल जाता तो उसी से कूट-कूटकर काटा जा सकता है। पर वैसा पत्थर मिलेगा कहाँ से ? कहीं पर हो तब भी बागान साफ़ करने के लिए खोदकर फेंक दिया जाता है। बाड़े के उस ओर शायद पत्थर मिल जाता, चपटा, धारदार पत्थर, पर वहाँ जाये तभी तो।"

बाघारू झाड़-झंखाड़ों के बीच कोई फांक तलाशने लगा, बाहर जाने के लिए। बरसात का पानी और मिट्टी का रस खाकर वृक्षों की जड़ें इतने फूल गयी थीं कि एक-दूसरे में धँसी जा रही थीं। नीचे से काफ़ी अंकुर भी फूटा था। पेड़ों की जड़ों के ऊपर जैसे मिट्टी चढ़ा दी गयी हो, जिससे कोई फॉक ही न रह पाये। पर बाघारू एक फॉक की तलाश में था—सियार, सियार के बनाये गये फांक। सियार सामने के दोनों पैरों के नाखून से मिट्टी हटाते-हटाते चारों पॉव से खोदकर बाड़ा में फॉक बनाते। गड्ढे के पीछे मज़बूती से सोकर धँस-धँस कर सिर को दूसरी ओर निकाल लेते हैं खोद-खोदकर। जैसे सियार कोई चौपाया जानवर न होकर कोई सरीसृप हो। सियार मांद से घिसट-घिसट कर निकलते ही एकबारगी कूदकर चारों पैरों पर खड़ा हो जाता है और फटफटाकर बदन से धूल-मिट्टी झटक देता है। इसी तरह सियार की कोई माँद मिल जाये तो बाघारू अपने हाथों से उसे चौड़ा करते हुए बाहर निकल जायेगा ? यही कुछ समय पहले जो बाघारू अपने शरीर की विशालता और नंगेपन को लेकर चलते-चलते संकुचित हुआ जा रहा था, वही

अब एक बाड़ा पार करने के लिए अपने शरीर को सियार जैसा नरम और लचीला करने की सोच रहा था।

पर बाघारू कुछ उल्टा ही कर बैठा। पत्थर या माँद ढूँढने के लिए कमर झुकाकर दायीं ओर के झंखाड के नीचे देखते हुए चल रहा था–जैसे कही पैसा गिरा हो। एक जगह देखा कि पेड़ वहाँ उतने सघन नही थे। फिर वहाँ कि जडे भी खास बडी या मोटी नहीं थी। मतलब पेड के शिखर भी ऊँचे नही होंगे। देखने के लिए उठ कर खडा हो गया। खडा होकर दोनो हाथो मे पत्तो को पकडकर फैला दिया, फिर खुद उचक कर पहले बायाँ पैर बाहर रखा, फिर दाये पैर को खींचा। हाथी भी इसी तरह फाँक से कँटीली झाडियो का पार करता है, जिससे नीचे की कँटीली झाडी उसे जरा भी छू नही पाती।

बाघारू ने अपना बायाँ पैर पेड की जड पर चढाई गयी मिट्टी पर रख दिया। उस समय उसका तमाम वजन बागान के भीतर उसके दाये पैर पर था। बाया पैर उठाकर छाती को झाडी के फाँक से घुसा चुका था कि तभी उसके बाऍ मे पैर तले की मिट्टी खिसक गयी और नदी के पास धसकन जैसा बाघारू देखत देखते गुडमुडाकर गिर गया।

लुढकते लुढकते बाघारू एक जगह पर अटक गया। गर्दन उठाने की कोशिश करते ही वह फिर से लुढक गया। अबकी बार लगा जैसे लबे और पत्थर से भी मजबूत पैरों की गिरगिट की तरह अगुलियाँ मिट्टी को छू गयी। वह अटक गया। अब पाव तले जमीन की पकड थी। वह किसी भी तरह लुढक नही सकता था।

बाघारू पजो के बल उठ बैठा। चारो ओर देखा। कोइ खास बात नही। चाय बागान वैसे खडी थी। मिट्टी के धँस जाने से ढलान मे बाघारू नीचे गिर गया था। इस ढलान के सामने खुला मैदान फैला था।

और एक बार देखने के बाद बाघारू ने देखा कि यह ढलान पत्थरो से भरी हुयी थी। इतने सारे पत्थरो को एक साथ देखकर उसे याद आया कि वह पत्थर ढूँढ रहा था। अचानक गिर पडने से वह भूल गया था। और याद आते ही गिरने की बात भूलकर बाघारू उठकर खडा हो गया। बाघारू के सिर से पैर तक पत्थर के अनगिनत चोट और रेत के कण लगे हुए थे। ऐसा लगता था जैसे बाघारू न होकर–बाघारू की पत्थर की मूर्ति हो। उसका पशीदार शरीर इतना गाँठदार और गड्ढों से भरा और चिपचिपे पसीने से ऐसा गोंठिला हो गया था कि पत्थर के कण उसमे जा चिपके थे।

खडे होकर बाघारू ने इन पत्थरों को एक बार देखा। सिर्फ इस ढलान पर ही जो कुछ पत्थर दिखायी पड रहे थे और कही नहीं। नीचे की ओर बड़े-बड़े पत्थर नजर आ रहे थे। फिर बोल्डर और बड़े साइज के पत्थर ही अधिक थे। फाँकों मे छोटे-छोटे पत्थर भरे हुए थे। बडे-बड़े पत्थरों के नीचे काई जमी हुई। काफी दिनों

से जमी हुई-सी लगती थी। छोटे-छोटे पीले पत्थरों की भरमार थी। कुछ सफेद कंकड़ भी थे। चाय-बागान के सीमांत की ढलवाँ यह जमीन भी शायद बागान की ही रही हो। पर चाय की खेती यहीं पर खत्म हो गयी थी। मिट्टी का कटाव रोकने के लिए शायद कंपनी हर वर्ष यहां कंकड़-पत्थर डलवाती रही हो।

60

बाघारू का पत्थर ढूंढना

बाघारू खड़ा खड़ा आँखें फैलाए इधर उधर अपनी जरूरत का पत्थर तलाश कर रहा था। उसे किसी भी ऐसे पत्थर की तलाश थी, जो इतना छोटा हो कि आसानी से हाथ से पकड़ा जा सके और धारदार भी हो जिससे काटने का काम लिया जा सके। एक लंबोतरा सा पत्थर का टुकड़ा उसकी नजर में पड़ा—ठीक एक लकड़ी के टुकड़े जैसा। पकड़ने में भी सहूलियत होगी। चकचक करता हुआ। मतलब बालू-पत्थर था, जो मामूली जोर लगाने पर भुरभुरा कर टूट जाता।

बाघारू ने वहां से नजर हटा ली। इधर उधर चारों ओर नजर दौड़ा कर फिर वापस उसी को देखने लगा। वही पत्थर वहाँ से उसे अपने काम का लगा। पर वह जब इतना चमक रहा था तो बाघारू समझ गया कि वह बालू का पत्थर है। पर एक बार परख न लेने पर नजर बार बार वहां जाकर पड़ती रहेगी। बाघारू पत्थर की ओर बढ़ा। चलते ही उसका शरीर सनसनाने लगा और शरीर पर चिपके बालू, कंकड़, पत्थर झड़ने लगे।

उसने पत्थर को उठा लिया था—साबुत नहीं है, एक तरफ के कोने पर थोड़ा-सा टूटा हुआ था और उधर ही थोड़ा-सा चटक भी गया है। चटक जाने से इधर अधिक नुकीला और धारदार था। मारा जाय तो कट जायेगा। पर पकड़ने के लिए जगह नहीं थी। बाघारू ने फिर दोनों हाथों से पकड़ कर देखा। लगता था पत्थर पर जैसे खुदाई की गयी हो। बालू-पत्थर पकड़ने पर ऐसा ही लगता है। बाकी पत्थर एकदम ही चमकते और गोलाकार थे। कहीं पर भी थोड़ा सा ऊबड़ खाबड़ नहीं थे।

दोनों हाथों से पेड़ पर मारने से पत्थर टूटेगा या नहीं यह जांचने के लिए बाघारू ने दोनों हाथों से पकड़ कर उसे दबाया। बायीं ओर का पत्थर लंबाई में टूट गया। बाघारू के दोनों हाथ हटा लेते ही पत्थर उसके पैर के पास गिर पड़ा। गिरते ही फिर वह लंबाई से टूट गया। बाघारू ने देखा, उसके पैरों के पास एक टूटी हुई मूर्ति पड़ी है। पीठ के पास थोड़ी खुरची हुई थी। गला लंबोतरा था। किसी बच्ची की मूर्ति। बाघारू ने मूर्ति पर से नजर हटा ली। बाघारू को तो किसी पेड़ के नीचे बैठाने वाला पत्थर नहीं चाहिये, वह तो डाल काटने वाले पत्थर की तलाश कर रहा था। काटने वाले धारदार हथियार सा।

फिर एक पत्थर पर नज़र पड़ते ही वह आगे बढ़ा। उसके शरीर से वैसे ही कंकड़-पत्थर झड़ रहे थे। करीब जाकर देखा कि—पत्थर शायद ज़मीन पर गड़ा हुआ था। पैर से पत्थर को हिलाने की कोशिश करने लगा, पर वह हिलता ही नहीं है। मतलब मिट्टी में काफ़ी गहरा धँसा है। बाहर जो हिस्सा नज़र आ रहा है, उससे कुछ समझ में नहीं आता। एक पैर इस पत्थर पर रख कर बाघारू फिर से पत्थर तलाश करने लगता है।

पैर के पास एक छोटा-सा जंबूरे साइज का पत्थर पड़ा था। उसने उसे उठा लिया। दोनों हथेलियों पर उस गोल, सुघड़, पत्थर को घुमा-फिराकर देखने लगा। वाह, देखने में कितना सुंदर लग रहा है। वही थोड़ा-थोड़ा मटमैला, सफ़ेद, ठंडा, अंडे की तरह एक तरफ गोल और दूसरी तरफ़ से। बाघारू ने लबोनरे पत्थर को मुट्ठी में सीधा करके पकड़ लिया। गोल भाग ऊपर की ओर था—ठीक आदमी के माथे की तरह।

बाघारू उसे घुमा-घुमाकर देखने लगा। इससे अच्छे-अच्छे टुकडे निकाले जा सकते हैं। आरी से काटें तो बीच का टुकड़ा एकबारगी एक हँसिया-सा निकल आएगा। बाघारू ने जोर लगाकर पत्थर को एक बडे से पत्थर पर दे मारा। आग की चिंगारी फूट निकलने के साथ कई बंदूकों की-भी आवाज़ हुई। बाघारू की नाक मे बारूद की गंध पहुँचते ही बागान की ओर से गरज की प्रतिध्वनि आयी—"गुड़म्।" वह बड़ा-सा पत्थर तब लुढ़के जा रहा था।

बाघारू ने देखा, अथवा पहले से ही देखा था, पर अब सोचने लगा कि यहा के इतने सारे पत्थरों के बीच में काम के पत्थर को तलाशने की अपेक्षा थोड़ा-सा नीचे जाकर जहाँ ढलान ख़त्म हुई है, वहाँ के छिटपुट पत्थरों म से धारदार पत्थर को ढूँढना ज्यादा आसान होगा। यह सोचते ही बाघारू नीचे की ओर उतरने लगा। एक बडे पत्थर से दूसरे पत्थर पर छलांग लगाते हुए छोटे पत्थर पर पैर रख बड़े पत्थर पर चढ़ते-कूदते बाघारू ढलान के नीचे उतर गया। उसके पैर के धक्के से, छलांग से छोटे पत्थर सब नीचे को लुढ़क गये। और जिन पत्थरों पर वह पैर रखता वे मिट्टी में धँस जाते।

जहाँ वह छलांग लगाकर उतरा, उसके सामने एक काफी बडा और लंबा-चौड़ा मनुष्य का सिर पड़ा हुआ है। घास, बाल और जंगली झाड़ियों के बीच जैसे कोई उसे फेंक गया हो। बाघारू नीचे झुककर माथे को सीधा कर देना चाहता था, परंतु वह इतना भारी था कि वह सीधा नहीं कर पाता। फिर दोनों हाथों से पत्थर को खींचने लगा। मिट्टी और पत्थरों के रेखाओं से बाघारू समझ गया कि यहाँ बरसात का जल उतर कर जमा होता है और फिर बहा कर ले आता है ऊपर से। मिट्टी के साथ मिलकर सख्त होते-होते वह मनुष्य के माथा जैसा पत्थर बन गया था। अब तक बाघारू उसे उलट कर देख लिया था तो वह सिर जैसा नहीं लग रहा था। बाघारू उसे देखते-देखते

हँसने लगा—'मैदान में सोया हुआ था, अब पत्थर पर बैठा है।' बाघारू को जैसे पता था कि सदा के लिए उसने इस मूर्ति को वहाँ स्थापित कर दिया है।

61

पत्थर, धातु या फिर··

यह जो इतनी देर तक बाघारू पेड की ओर झुककर पत्थर तलाश करने में लगा हुआ था, इसी मे उसे लगने लगा था कि वह झूठ-मूठ ही पत्थर तलाश किये जा रहा है। किसी पेड की डाल कितनी मोटी हो सकती है उसे मरोड कर तोड़ा नहीं जा सकता या खीच कर उखाड़ा नही जा सकता ?

वह इस निचली ज़मीन से चाय बागान के बाडे की ओर देखने लगा। यहाँ से जैसे और साफ नज़र आ रहा था कि वह जंगली पेड़ नही, बल्कि जतन से लगाये गये पेडो की पात था। और किसी ने भी अब तक इस झाडी से पत्ते भी काटे नहीं शायद। पत्ते टीन की चादर जैसे छावनी बनाये हुए थे। बाडे पर की छाजन ठीक बरामदे जैसी। यहाँ से ज्यादातर पत्ते ही नजर आ रहे थे सो लगता था जैसे इनके नीचे घर-द्वार बनाया गया था। दो छोटे-छोटे बासो के दोनों ओर दो पत्तो का बाँध दिया जाये तो बच्चों-कच्चो के लिए एक छोटा-सा घर ही बन जाये। धूप तो लगेगी ही नहीं, हाँ बरसात के छींटे लग सकते है। दो पत्ते लंबे और दो पत्ते आड़े-तिरछे रख देने पर एक आगन ढक जायेगी। और फिर उसके लबाई की ओर दो और पत्ते लगा दे तो बाघारू की कमर तक का भाग आसानी से ढंक जायेगा। तो क्या अब बाघारू को इस पेड की छह-छह पत्तियाँ काटनी होगी ? एक दो नही, पूरे छह।

पत्ते का साइज देखकर, हिसाब कर के बाघारू को निश्चित होना पडा कि उसे काटने के लिए हँसिया या छोटी कुल्हाडी चाहिये। पत्तो को मरोड कर या खीच कर उखाडा या तोडा नही जा सकता। वैसे कोई धारदार पत्थर भी मिल जाये तो एक बार कोशिश किया जा सकता है। पर उसमे कितने समय मे कितने पत्ते काटे जा सकते थे यह अदाज़ा नही लगाया जा सकता। याने कि मरोड कर उखाडना तो संभव ही नही है। पत्थर ही आखिरी हथियार है। इसीलिए पीछे की ओर लौट कर इस मैदान में ही बाघारू को पत्थर तलाश करना होगा।

बाघारू थोडा-सा उदास होकर आगे बढ़ा। पत्थर उसे नही मिला, यह घटना ऐसी है जो कही खत्म ही नही होती। वह ढूढते-ढूढते ऐसे ही चलता रहेगा। उसके चलने के साथ यह तलाश भी जारी रहेगी। फिर उसे चलते-चलते किसी समय यह तलाश ख़त्म हो जायेगी। तब वह सिर्फ़ चलता रहेगा पर बिना तलाश के। हो सकता है कि उससे पहले तलाशते हुए उसे पत्थर हासिल हो जाये, पर वह फिर दुबारा लौटकर नहीं आयेगा। वहाँ से लौटकर काटने का कोई मतलब ही नही होता।

बाघारू को लोहे की पत्तियों का एक छोटा-सा बंडल नज़र आया। इन पत्तियों को मोड़ कर चाय की पेटी बाँधी जाती है। उसने दौड़कर उसे उठा लिया। उसके उठाते ही कुछ फिसल कर हाथ से नीचे गिर गया। जंग लगी पत्तियाँ। पर बाघारू खड़े-खड़े ही बंडल को खोलने लगा। कुछ भी अगर काम का निकल आये तो।

छोटी पत्तियों का एक बंडल पहले से नीचे गिरा हुआ था। कुछ गोल-गोल मुड़े हुए थे, जिनका सिर अंदर ही था। बाघारू ने गड्डी खोलकर पहले पत्तियो को सीधा किया। उसमें से वह छाँटकर एक टुकड़ा निकालना चाहता था। चाहे कितना ही छोटा टुकड़ा क्यों न हो, है तो आख़िर लोहे का ही। पर गड्डी के दोनों ओर पकड़कर ज़ोर लगाते ही वह भुरभुराकर गिर पड़ा। फिर बाघारू गाँठ खोले बगैर ही ऊपर से देखने लगा कि भीतर का कोई टुकड़ा सलामत है या नहीं। नहीं, एक भी साबुत नहीं। तभी हाथ में पकड़े लोहे की पत्तियाँ पाउडर होकर गिर गयीं।

पर जंग लगी लोहे की पत्तियाँ अगर यहाँ मिल सकती हैं तो बिना जंग लगा थोड़ा-सा लोहे का तार भी तो बाघारू को यहाँ मिल सकता है या फिर कुछ अच्छी-सी पत्तियाँ ही, या पत्ती का कोई टुकडा ही। बागान की सीमा की जमीन में, बागान का कचरा-वचरा, फेंके गये जगहों में कहीं-न-कहीं तो मिल ही सकता है। उसमें क्या कोई लोहे की पत्तियाँ बगैर जंग लगी अब तक बाघारू के लिए पडी होगी कहीं ? कम-से-कम रह तो सकता है ? पत्तियाँ नहीं तो कोई तार-वार / रस्सी जैसे एक तार का टुकड़ा ?

तार की बात मन में आते ही बाघारू के लिए पत्तियों से बढ़कर तार कहीं अधिक उपयोगी लगने लगा। मजबूत, नया तार अगर हो तो, पत्ते की जड़ मे गोल कर के फँसा कर दोनों ओर पकड़ कर बाघारू अगर खींचे तो पेड के नरम तने में तार धँस जायेगा और वह कट जायेगा। अगर तना अधिक मोटा रहा तो वह रुक-रुक कर पत्ता भी काट सकता है।

पथरीली ज़मीन ख़त्म हो चुकी थी। अब सामने सिर्फ़ घास, झाड़ियाँ दिख रही थीं। बाघारू लोहे की पत्ती और तार के साथ-साथ काँच का टुकड़ा तलाश रहा था। बागान के लोग काँच का व्यवहार करते हैं। तो यहाँ टूटे हुए काँच का टुकड़ा भी तो उपलब्ध हो सकता है। टूटी बोतल का किनारा हर समय तेज़ रहता है। बोतल का काँच तो लम्बाई में टूटता है। एक तरफ़ से पकड़ कर दूसरी तरफ़ से काटा जा सकता है। अगर गोलाकार भी टूटा हो तो फिर घिस-घिसकर काटा जा सकता है। सो बाघारू काँच भी ढूँढ़ने लगा।

लोहे की पत्ती, तार या काँच—कुछ भी मिल जाये तो बाघारू के लिए कोई दिक़्क़त नहीं होगी। खींचकर, घिस-घिसकर, उस तार या काँच उसके हथेली को भी जैसे काट न पायेगा, इस तरह से सोचे जा रहा था, बाघारू।

पथरीली ज़मीन ख़त्म हो गयी थी।

बाघारू तब तक मैदान के तकरीबन बीचोंबीच पहुँच चुका था। बीच-बीच में इक्की-दुक्की झाड़ी। पर कहीं भी ऐसा कुछ नहीं जिसे मनुष्य व्यवहार के बाद फेंक दिया करता हो और जिसे बाघारू अब व्यवहार में ला सकता है। या फिर एक पत्थर जिसे बाघारू ही पहली बार व्यवहार में लाये।

62

बाघारू को मिला हथियार

बाघारू को उसका पत्थर मिल ही गया आखिरकार। पत्थर जो खास उसके लिए ही बना था। या फिर पत्थर ही बाघारू को ढूँढ रहा था।

यही पत्थर उसको मिलना था शायद इसी से पत्थर से बँधी ढलान पर उसे कोई और पत्थर नहीं मिला। ढलान के अंत में मैदान में, पत्ती, तार या कांच का टुकड़ा नहीं मिला। बाघारू तब धीरे धीरे कदम बढ़ाते हुए आ रहा था। चलते हुए मन ही मन जोड़ बना रहा था कि मैदान के कोने-कोने चलता जायेगा और जहाँ उसे डूमकाझारी मिलेगा वहीं उसे पार करेगा। उसके बाद, ऊपर जाकर अपनी राह पकड़ेगा। इस तरह सोचते हुए एक-दो बार सिर उठाकर उसे मैदान का छोर देखना पड़ता था। शायद रास्ते और पत्थर की तलाश में। शायद मैदान और उसके छोर को देखने के लिए भी। इन सबके बीच वह थोड़ा-थोड़ा बँटता जा रहा था। शायद इसी के चलते उसके बायें पैर का बायां भाग अचानक किसी खड़े धार वाली चीज पर पड़ा। ऐसा लगा जैसे उसके पांव के भीतर वह धँसता चला गया है। वह भी बाघारू का पैर, जिसके दबाव से पत्थर चूरन बन जाता था। हॉलाकि बाघारू को लगा, उसके पैर में कोई तेज नस्तर चुभ गया है, वह दर्द के मारे बैठ गया, पर उसने पहले पैर नहीं देखा बल्कि उसके पैर से कौन उलझा है, यही देखा। उसे तलाशने लगा।

कुल्हाडी के फाल जैसा एक तेज धारदार नुकीला पत्थर मिट्टी के ऊपर उभरा हुआ था। और ठीक उसके ऊपर ही बाघारू का पैर जा पड़ा था। बाघारू ने अपने पैर को देखा—कटा नहीं था। पर दर्द अभी भी बरकरार था। पैर छोड़कर बाघारू दोनों हाथों से पत्थर को हिलाने लगा। ढीला होने पर बाहर खींच लायेगा। पत्थर अधिक गहराई में नहीं गया था। बाघारू जितने ज़ोर से हिला रहा था, बस उतने ही में वह उखड़ गया। पत्थर के अचानक उखड़ जाने पर बाघारू सामने मुँह के बल गिर पड़ा। फिर सँभल कर दोनों हाथों में पत्थर को लेकर देखने लगा। फिर उठकर खड़ा हो गया। उठकर फिर ग़ौर से देखा। जो भाग मिट्टी मे धँसा था, वह भाग मोटा, गीला और मिट्टी लगा हुआ था। ऊपर का भाग काफी तेज़ और चमकीला था। जितना तेज़ होना पत्थर के लिए संभव था उतना ही तेज़, पर मनुष्य के घिस कर बनाये गये धार से कम। अगर कोई आदमी घिस कर इसे तेज़ करता तो इस पत्थर मे लोहे की सान आती।

बाघारू पत्थर के आकार को समझना चाहता था। छोटी हँसिया की तरह। पर दाँती नहीं ? काटने वाली आरी जैसी दाँती। पर उसका आकार-प्रकार बाघारू को जाना-पहचाना लगा। नीचे की ओर पतला। बस एक मुट्ठी में पकड़ा जा सकता है। दाहिनी मुट्ठी में पत्थर को पकड़ कर हाथ को डुलाने लगा। पत्थर झूलने लगा था। हिलते-हिलते हाथ में गति आ गयी। फिर पत्थर के साथ हाथ को ऊपर उठा के ले गया। जैसे किसी पर चोट कर रहा है, इस भाव से पत्थर हवा में नीचे उतरा। तभी अचानक बाघारू के मन में कौंधा—"पहाड़ियों की खुखरी की माफ़िक।"

बाघारू जिस ज़ोर से पत्थर को नीचे ला रहा था, उससे नीचे जाते ही पत्थर के साथ हाथ भी डोल उठता था। डोलना कम होने पर उसने दोनों हाथों से पत्थर को पकड़ लिया और फिर से पत्थर को देखने लगा। इस पत्थर से भी बाघारू का काम बन सकता है, चाहे पत्ते न हों तो भी। कितने सारे तरीके से इसे व्यवहार में लायेगा वह, सोचकर वह पत्थर को माथे के ऊपर ले गया और उसे देखने के लिए खुद भी गर्दन उठाकर ऊपर ताकने लगा।

बाघारू ने गर्दन इतनी ऊपर उठा ली कि उसे पत्थर के बदले आकाश का नीलापन नज़र आता था। जैसे उस नीलिमा ने ऊपर से उसे ढँक रखा हो। दोनों हाथों में पकड़ा पत्थर उस नीलिमा की ओर तना हुआ। बाघारू ने देखा कि इस पत्थर के माथे से लेकर बाघारू की मुट्ठी, कलाई, भुजा तक जैसे एक पत्थर का बना हुआ था। यह देखना इस तरह से हो जाता था कि उस नीलिमा में खुदे पत्थर के आकार को बाघारू पहचान लेता है—उसकी भुजाएँ, कलाई और दोनों हाथ नमस्कार की मुद्रा में जुड़े एक पत्थर हों जैसे। 'परनामिया पत्थर !'

पत्थर के साथ बाघारू ने दोनों हाथ नीचे कर लिया। फिर एक हाथ से मुट्ठी में जैसे एक जोड़ा हाथ पकड़ कर हिलाते-हिलाते एक बड़े पेड़ की ओर भागने लगा।

ढलान से ऊपर जाते हुए बाघारू को थोड़ा कष्ट हो रहा था। वह अपने शरीर के चलते जिस आसानी के साथ उतराई में उतर सकता था, उसी बोझ के साथ छोटे-छोटे पत्थरों से होकर ऊपर जा पाना उसके लिए उतना आसान काम न था। उसके शरीर के बोझ से पत्थर खिसक जाते थे। ढलान के सिरे पर पहुँच कर उसे कुछ पकड़ने की आवश्यकता महसूस होती थी। वरना किसी वृक्ष के जड़ पर एक पैर रखकर दूसरे पैर पर जब भार डालेगा तो फिर गिरेगा। बाघारू ने ढलान के ऊपरी सिरे पर पत्थर को रख दिया। फिर मिट्टी का एक खाँचा पकड़, उचक कर ऊपर जाकर पत्थर को ले खड़ा हो गया।

बाघारू पत्ते छाँटने लगा। पत्ते के सिर्फ़ बड़ा होने से ही काम नहीं चलेगा, सीधा भी होना चाहिए। इस पत्ते के साथ मज़ा जो यही है कि इसमें टीन के चादर जैसा खाँचा बना हुआ होता है। एक पत्ते के खाँचे के ऊपर दूसरे पत्ते का खाँचा सहज ही फिट हो जाता है। बरसात का पानी इस खाँचों में से होकर निकल जाता

है नीचे। पर पत्ते अगर टेढ़-मेढे हों, खाँचा से खाँचा न बैठे, तो पानी फिर भीतर की ओर बहने लगता है। पत्ता अगर काफ़ी बड़ा हो, तो सामने की तरफ़ से फट-फट जाता है, करेले के पत्तों जैसा। फिर अपने ही वजन से टूट कर चूर-चूर हो जायेगा। इसी से बाघारू ऐसे पत्ते की तलाश करने लगा जो बड़ा हो पर बूढ़ा न हो, केले के पत्ते जैसे दोनों ओर फैला हो, पर झुका हुआ न हो। ऐसा एक पत्ता जिसका खाँचा ऊपर से नीचे तक साबूत हो, फटा-वटा नहीं।

ढलान में पेड़ की इन पंक्तियों में, इतनी हड़बड़ी में बढ़े पत्तों में बाघारू अपना पत्ता या पत्तों को ढूँढ़ नहीं पाया। कुछ तो वह उद्भ्रांत था, और कुछ खुद चाह कर भी चुनाव का अधिकार नहीं था उसे, इसी से ढूँढ़ नहीं पा रहा था। चाहे दिशाहीन हो, चाहे स्वतंत्र भाव से हो, बाघारू का इस तरह का चुनाव का फ़ैसला हड़बड़ाहट भरा भी था।

इस बाड़े के उस तरफ चाय का बागान था। मैदान जैसे लंबे-लंबे रास्ते, रास्ते में भीड़, मैदान जैसे समतल शिरीष के पेड़। वहाँ पत्तियाँ तोड़ी जा रही थीं, नाली बनायी जा रही थीं, डाल काटे जा रहे थे। सियार अंदर न घुस आयें, इसीलिए पेड़ के नीचे मिट्टी चढ़ाई गयी थी। हाथियों का झुंड जिससे तोडकर अंदर न घुसें, इसीलिए उस पेड़ के काँटेदार पत्तो की पंक्तियाँ थीं। पत्ते जैसे बड़े हों, चारों ओर फैलें, इसके लिए बाक़ायदा देखरेख भी किया जाता रहा होगा निश्चय ही। जो पत्ता इतने सारे काम के लिए रखा गया हो, उसी पत्ते को बाघारू काटे जा रहा था। अगर बाघारू को पकड़ लिया जाये तो ?

पकड़े जाने पर क्या होगा, इस बारे में बाघारू की कोई निश्चित धारणा नहीं था। भय भी नहीं थे। पर पकड़ने के लिए आने पर लोग भागते हैं। इसी से बाघारू देख लेना चाहता था कि मैदान के भीतर चाय-बागान की सीमा कितनी दूर है जैसे उस पर ही उसका पकड़ा जाना या पकड़ा न जाना निर्भर करता था।

फिर उसने देर नहीं की। पहले पत्ते को ढूँढ़ने में ही वह इतनी देर कर चुका है, पर उसे तो एक नहीं छह-छह पत्ते ढूँढ़ निकालने हैं।

एक पत्ता बाघारू को मिल गया। वह पत्ता मानो कटने के लिए ही खड़ा था। कच्चा पर बड़ा। बीच का खाँचा भी सीधा और साबुत। पर पत्ते की डाल पेड़ के दूसरी ओर थी। इधर से काटना हो तो उधर हाथ बढ़ा कर ही काटना पड़ेगा। हँसिया जैसे किसी चीज से किया जा सकता है। पर पत्थर को तो ऊपर से ही झुकाना होगा, बाघारू ने उसे छोड़ दिया।

बाड़े के इस ओर उसे एक पत्ता मिल गया। नीचे की ओर थोड़ा छितराया हुआ। पर बाघारू ने तय कर लिया कि उसे ही काटेगा। फिर ढूँढ़ना पड़ा तो पाँच और ढूँढ़ लेगा। पत्ता डाल के सबसे नीचे इधर छितराया हुआ था—बाघारू की ओर जैसे गला बढ़ा दिया हो। डाल की जिस ओर से पत्ता फूटा था वहाँ आसानी से काटा जा सकता था।

बाघारू ने एक बार पत्थर को जाँच लिया—लोहे के अस्त्रों की धार परखने जैसा। फिर पतले भाग को हाथो से दबाकर सिर के ऊपर से उठाया। जरा दम लेकर पत्ते पर भरपूर वार किया। पत्ता कटकर झूल गया। बाघारू ने देखा कि पेड के काँटों की धार भी बहुत कम हो गयी है। पत्थर से रस और पेड का कच्चा छाल हटाकर बाघारू ने फिर से एक चोट मारी।

63

कुत्तों का खदेड़ना

अब बाघारू के सिर के ऊपर वही सब पत्ते थे, एक के बाद एक लब-चोड। खाँचा मे खाचे मिला हुआ। उसके बाद बाघारू के सिर के ऐन ऊपर पत्थर था, वही पत्थर। पत्थर के वजन से जैसे पत्ते टूट न जाय, इसी से पत्थर थोड़ा सा इधर-उधर हिलता हुआ। अब तक एक ही हाथ मे पत्ता को लिए चल रहा था। अब दोनो हाथो मे पकडकर डूमकाझोरो मे उतर रहा था।

डूमकाझोरा एक छोटी-सी डबरा जैसी नदी है, पर पाटा काफी ऊचे। सिर पर पत्ते और पत्थर लिए बाघारू को सभल-सभल कर कदम रखना पड रहा था। पानी मे उतरने के पहले वह जमीन पर बैठ गया। दाहिना पैर पानी मे डालकर उतरने की जगह तय करने लगा। परखने के बाद घूमकर खड़ा हो गया। बाये हाथ मे पाट और दाहिने हाथ मे पत्ते पकडे हुए। फिर बाये पैर को धीरे-धीरे झुकाकर घुस गया। पानी मे एक बार उतर जाने के बाद दोनो हाथो मे पत्ते को पकड कर बाघारू धीरे धीरे बढने लगा।

अगर एक गमछा या रस्सी होती या फिर रास्ते मे कुछ पुआल मिल गया होता तो एक थैला बाँध कर सिर के ऊपर पत्तो और पत्थर को रखकर दोनो हाथ छोड़कर वह चल सकता था। एक हाथ मे पत्थर और दूसरे हाथ मे पत्ते लेकर चला नही जा सकता—क्योंकि दोनो हाथ रुक जाते है। रास्ते मे अगर कोई छोटा-मोटा जगल मिल जाये तो, तो वहा एक बीडा बाँध लेगा।

अचानक पानी अगर वहाँ गहरा हो जाये तो खतरा है। उसी से बाघारू दोनो हाथ से पत्तो को कस कर पकड़े हुए था। अगर वैसा हो जाये तो पत्तो को झुकाकर सामने रख, पत्थर को एक हाथ में पकडकर वह थोडा सा तैर कर निकला जा सकता है।

अब पानी कमर तक हो गया था। बाघारू एक-एक कदम बढ़ा रहा था। अचानक पत्थर अगर पानी मे गिर जाये तो उसे डूब-डूब कर निकालना होगा। पाट सामने आ गया था। इस बीच पानी के अचानक बढ जाने की कोई आशका नहीं थी। बढेगा भी नही, पर पानी का क्या विश्वास ? हो सकता है कि पाट के पास ही कोई गहरा गड्ढा हो ? सामने का पाट आ गया।

बाघारू ने पहले पत्तों को फिर पत्थर उतार कर रखा। उसके बाद खुद ऊपर आ गया। ऊपर आते ही उसके शरीर के निथरे पानी से उसके खड़े होने की जगह कीचड़ हो गया। बाघारू दोनों हाथों से शरीर का पानी झाड़ने लगा। इधर-उधर ताकने लगा। फिर एक बार शरीर का पानी झाड़ने लगा। हाथ से। फिर पत्ते और पत्थर को सिर पर उठाया, दोनों हाथों से ज़रा ठीक किया और चलना शुरू कर दिया।

हाट के लोगों के आने-जाने से डूमकाझारी हायहायपाथा जाने के लिए एक छोटा-सा कच्चा रास्ता बन गया था। उस रास्ते में सामने एक बड़ा-सा घर नज़र आया। तो क्या बाघारू वहाँ से थोड़ी-सी पटसन की रस्सी माँग लेगा। न हो तो थोड़ा-सा पुआल ही। पत्ते और पत्थर को बाँध लेगा एक बीड़ा बनाकर।

जिस कच्चे रास्ते से होकर बाघारू इस टाड़ी में प्रवेश कर रहा था, उसके ऊपर एक कुत्ता सोया था। सामने ही एक टीन की छाजन वाला बड़ा-सा घर था। बाघारू इस घर में ही जायेगा।

बाघारू के कदमों की आहट सुनते ही कुत्ता सोये-सोये, बगैर आँखें खोले ही एक बार चौंका—"भौं !" उसकी आवाज़ से बाघारू के पैरों की आहट रुकते न देख फिर एक बार भौंका—"भौं !" बाघारू उसके निकट से सरसराते हुए निकल गया। बाघारू की दनदनाती चाल से कुत्ते ने चौंक कर गरदन घुमा ली। फिर भौं-भौं आवाज से आकाश फाड़ते हुए बाघारू को खदेड़ने लगा। कुत्ता बाघारू के पास से निकल कर सामने खड़ा होकर बेतहाशा भौंकते हुए उसका रास्ता रोकने लगा। बाघारू उसकी ज़रा भी परवाह किये बिना दनदनाते हुए बगैर रुके उसके सामने आ गया। कुत्ता रास्ते से हट गया था दौड़कर। फिर लौट कर खड़ा होकर ज़ोर-शोर से भौंकने लगा। सामने दाहिनी ओर वह बड़ा-सा घर था, जहाँ बाघारू जाना चाहता था। पर कुत्ते के बेतहाशा भौंकने से ही अथवा बाघारू की दनदनाती चाल से ही हो, घर से एक साथ दस-बारह कुत्ते निकलकर बाघारू के चारों ओर इस तरह से भौंकने लगे कि जैसे अंधेरी रात में मुहल्ले में कोई डाकू घुस आया हो। कुत्तों ने बाघारू को इस तरह से घेर लिया था कि जैसे वह आगे बढ़ न पाये। अब अगर बाघारू को घर के बाहर आँगन में भी घुसना हो तो उसे कुत्तों को धकिया कर बढ़ना होगा। बाघारू इस हंगामे में गये बिना सीधा चला जा रहा था एक ही गति से। बाघारू को अपनी गति थोड़ी सी भी कम नहीं करता देख कुत्ते सामने से हट कर तीनों दिशाओं से घेरकर भौंकने लगे। टाड़ी के अंत में बाँस का झाड़ था। यहाँ रास्ता दायें से बायीं ओर मुड़ गया था। उसके बायीं ओर पटसन के सरकंडों से बना हुआ घर था। कुत्ते यहाँ आकर खड़े हो गये थे और बाघारू मुड़ गया था। फिर भी एक कुत्ता भौंकता ही रहा। बाघारू बाँस-झाड़ को दाहिने छोड़ दाहिने मोड़ पर ओझल हो जाने के थोड़ी देर बाद सुना कि कुत्ते फिर से एक बार भौंकने लगे थे, फिर धीरे-धीरे एक-एक कर चुप हो गये। बीच-बीच में कोई कुत्ता भौंक उठता। फिर वह भी चुप हो जाता।

बाघारू खडा होकर हाथ से सिर के पत्तो को थोडा-सा सरकाकर देखता, बायी ओर उसके पीछे हायहायपाथा के चाय बागान की सीमा। थोडा-सा देखना और थोडा-सा समझना पडा बाघारू को। डूमकाझारो नदी यही कही जरूर मुडी है। नदी को बायी ओर छोडते हुए यह रास्ता दायी ओर मुड, फिर बायी ओर होते हुए चाय बागान की ओर चला गया था। चाहे कुछ भी हो बाघारू फिर से किसी चाय बागान म नही जायेगा। वह रास्ता छोड कर मैदान म उतर गया। सीधा चलकर हायहायपाथा का डागर पार करते हुए उत्तर मे चलता हुआ शालबाडी म पहुचेगा। शालबाडी मे न भी पहुँच सकता था। दक्षिण मे होकर जगल के अदर से निकल कर हाईवे भी पहुच सकता है। फिर हाइवे मे चालसा होता हुआ नये रोड मे पहुँच सकता है। फिर जगल स होता हुआ भी तो जा सकता है। छोडो, जब का बात तब देखी जायेगी। अब सामने मालनदी थी। पत्ते और पत्थर को वहाँ पहुँचने के पहले ही बाधकर रखना होगा।

बाघारू ऊँचाई पर चढ रहा था। हायहायपाथा का वह बडा सा डागर जैसे एक बडा-सा जगली सुअर हो—पूछ का मिट्टी म सटाय सिर को सीधा करके उत्तर के पहाड़ की ओर भागा जा रहा है था। घास नही, पेड-पौधे नही, खेतीबाडी नही, घरद्वार नही। उस सुअर के बाये पेट म होकर बाघारू ऊपर को उठ रहा था, पीछे के बाये पैर के निकट से होता हुआ।

बाघारू की नजर अबकी पैर की ओर थी। लाल-लाल पत्थरो से भरी हुई चढाई। इस तरह के पत्थर इधर देखने को नही मिलते। ये पत्थर पहाड स नदी मे बहते हुए गोल होकर नही उतरे। लगता है कि यहा कभी कोई खूब तोड फोड की गयी थी। सभी पत्थर धारदार थे। बाघारू ने सोचा—यहाँ शायद किसी तेज धार पत्थर को तलाशना नही पडता, हाथ बढाते ही मिल जाता है। पत्थर की बात याद आते ही फौरन उसको खुद की पत्थर की बात भी याद आ गयी। "जो भी हो, मुझे एक परनामी पत्थर मिल गया है, ऐसा पत्थर कहाँ मिलेगा और ?"

सुअर का डाँगर पीठ। दाहिनी ढलान म होकर नदी की ओर उतरते हुए बाघारू पैर से दो एक पत्थर को ठोकर मार कर लुढकाना चाहता था। देखकर जिसे मजा आये। पर किसी भी पत्थर को वह हिला नही पाता। सिर्फ दो-चार अलग पत्थरों का छोड। "ये सब क्या पत्थर के पेड है ? सभी मिट्टी के अदर से फूट कर सिर उठाये हुए ?" ऊपर स ही उतर रहा है इसी से बाघारू को बहुत से दृश्य दिखायी दे रहे थे। यहाँ पत्थर खत्म हो गया था अब हरियाली शुरू हो गयी थी। जल की रेखा, चाय बागान की सीमा, बडे घने छायादार पेड-पौधे और माल नदी के उस पार के जगल की छायादार रगीन दीवार। दूर से जो जगल का आभास होता था—ऐसा लगता था जैसे घुसा नही जा सकता। माल नदी के उस पार यह जो जगल शुरू हुआ, इसका कोई अत नहीं बीच में हाईवे था, रेल लाइन थी, नदी था, नदी का चर भी है—पर वह सब कुछ जगल के भीतर ही। इस जगल के भीतर ही एक जगह पर बाघारू को पहुँचना

था। दायीं ओर के जंगल में।

यह जितना नीचे उतरता जा रहा था, दृश्य उतने ही कम होते जा रहे थे। पर बाघारू को कुछ-न-कुछ तो तलाशना है। इस पत्थर और पत्तों को बाँधने के लिए। उसे थोड़ा ढूँढ़ना है। देखना है कि रस्सी जैसी कोई चीज़ कहीं मिलती है या नहीं।

बाघारू खड़ा होकर सिर से पत्थर को दाहिने हाथ से नीचे लाया। बायें हाथ से पत्ते और दाहिने हाथ मे पत्थर लटका कर उसने उतरना शुरू कर दिया।

64

कुत्ते का आस्वान

नदी से थोड़ा ऊपर, ढलान पर बाघारू ने ज़मीन पर पत्तों को रखकर ऊपर से एक पत्थर से दबा दिया। फिर ख़ाली हाथ उतर आया। गर्दन घुमा कर एक बार तसल्ली कर ली कि पत्ते और पत्थर ठीकठाक है अथवा नही। रस्सी, पुआल या कोई लता-वता कुछ मिला है या नहीं, देखने के लिए बाघारू को थोड़ा इधर-उधर घूमना पड़ेगा। इन्हें बांधे बगैर नदी को पार नहीं किया जा सकता।

नीचे उतर कर बाघारू ने जब पलट कर देखा तो सुअर डाँगर के इस ढलान के ऊपर की ओर एक कुत्ता खड़ा-खड़ा पूछ हिला रहा था। डांगर के सिर की ओर कुत्ते की पूछ थी और डांगर के पूँछ की ओर कुत्ते का सिर। कुत्ता इस ओर सिर घुमा-फिरा रहा था—उधर जगल की ओर, इधर बाघारू की तरफ, यहां तक कि इन दोनों के बीच नदी का जो टुकडा था उधर की ओर भी।

बाघारू उसे देख चुका था, इसे वह समझ गया था—यह जताने के लिए कुत्ता गर्दन के साथ साथ सामने के दोनो पैरों को भी इधर थोडा-सा घुमा लेता था, पर उसकी नज़र नदी पर ही टिकी थी। थोड़ा पूँछ भी हिलाता था। भाव ऐसा कि जैसे उसे भी नदी पार जाना हो।

पर इस डांगर के ऊपर कुत्ता आया कहाँ से ? क्या रास्ता भटक गया है ? पर कुत्ते तो रास्ता भूला नही करते। बागान की ओर से आया है ? आ तो सकता है, पर क्यों ? तो क्या फिर बाघारू के पीछे-पीछे ही कहीं से चला आ रहा है ? कहाँ से ? बाघारू को तो कुछ पता नहीं। सिर पर पत्ते होने के कारण बाघारू हालांकि काफी देर तक पैर के नीचे के सिवा और कुछ देख नहीं पाया था। पर क्या कुत्ता एक बार भी उसके सामने नहीं आया इस बीच ? उसे आवाज़ भी तो सुनायी नहीं पड़ी। एक बार भौंका भी नहीं। तो क्या वह बुला रहा था उसे। या फिर वह भौंक नहीं सकता ? पीछे-पीछे आया है तो भौंकेगा क्यों ? क्या बाघारू ने एक बार भी पीछे मुड़कर नहीं देखा ? पीछे देखा नहीं ? आखिरी बार पीछे कब मुड़कर देखा था बाघारू ने ?

इतनी दूर तक अकेले चलकर, इस तरह से डाँगर के जंगल में घुसने के ऐन

पहले आख़िरी नदी में और उस पार गहरे जंगल में गहरी निर्जनता के सामने जैसे बाघारू के लिए कुत्ता काफी जरूरी चीज़ बन गया था। कुत्ता उसके ही पीछे-पीछे आया है यह प्रमाणित करना जरूरी हो गया था। कुत्ता और गाय, जो भी समझो।

डूमकाझोरा पार हो, पाट पर पत्तों और पत्थर को रखकर बाघारू चारों ओर देखा—खड़े-खड़े ही। फिर सिर उठाकर रवाना हुआ था। चलता आया, चलता आया। फिर तो उसने पीछे मुड़कर देखा नहीं। फिर तो देखा नहीं मुड़कर कहीं। उस टाडी में कुत्तों के विशाल झुण्ड ने घेर लिया था उसे।

यह सोचते ही जैसे बाघारू को सूत्र मिल गया। तो यह कुत्ता क्या उसके साथ था ? और इसी से सरकंडे वाले घर के कुत्ते इतने पगला गये थे ? वरना बाघारू को देखकर इतना भौंकने की जरूरत ही क्या थी ? बाघारू कोई साहब हाकिम थोड़े न है, उसके सिर पर टोपी भी नहीं है, बाघारू की फटफटिया नहीं है ? बाघारू तो अपने इन दो पैरों पर खडा एक मानुस है। कुत्ते तो पहचान ही लेते है। तो फिर ऐसे भौंकने क्यों लगे थे ?

ज़रूर तभी यह कुत्ता भी उसके पीछे रहा होगा, और घर के कुत्ते इस दल से निर्वासित अकेले कुत्ते को भगाने के लिए जी-जान से लगे थे। टाड़ी पर यह तो एक बार भी नहीं भौका। खदेड़ा जाने वाला कुत्ता भौकता नहीं। यह तो एक बार सामने भी नहीं आया ? सामने भला आये क्यो ? दोनो टाँगो के भीतर पूँछ दबाकर मेरी दोनों टाँगों के अंदर दुबक गया होगा ? तो मैंने नहीं देखा ' कौन कुत्ता खदेड रहा है, और कौन कुत्ता खदेडा जा रहा है ? क्या पता ? देखा है, पर समझ नही पाया।

अपने साथ इस स्वागतालाप के अंत मे बाघारू ने हायहायपाथा के इस सुअरनुमा डाँगर के नीचे से कुत्ते की ओर अपना लबा हाथ बढ़ाकर बुलाया—"सिओ, सिओ।"

पलभर को कुत्ता सीधा हो गया था, जैसे जाँचना चाहता था कि यह बुलावा सही है या नहीं। सीधा होकर पूँछ-कान हिलाना बद कर दिया था और उस ओर के जंगल की तरफ गर्दन उठाकर ताकने लगा। 'साला मुझे नखरा दिखा रहा है ।' चेहरा दिखा रहा है बाघारू को। हालाँकि यह देखना बाघारू को अच्छा लग रहा था। कान खड़े, गर्दन सीधी, टाँगें पतली पर लंबी, छाती बड़ी सी। 'साला झपट सकता है। मगर दौड़ ? बाघारू ने अब तक उसकी पीठ और पिछाड़ी देखा ही नही।

बाघारू ने फिर से अपना दाहिना हाथ उठा लिया—'सिओ, सिओ।' इस बार आवाज सुनकर कुत्ता हिले बगैर रह नहीं पाया। दो कदम उतर कर फिर से खड़ा हो जाता है। दूसरी ओर देखकर पूँछ हिलाने लगा। जैसे, अब तो बाघारू की आगे बढ़ने की बारी है। बाघारू और इस कुत्ते का तो एक बार भी अब तक आमना-सामना नहीं हुआ। एक बार भी तो दोनों के बदन एक-दूसरे से घिसे नहीं। फिर अब तक तो दोनों एक दूसरे की भाषा भी नहीं जानते हैं। कम-से-कम एक बार तो जान लेनी चाहिये। सिर्फ़ एक बार। कुत्ता और गाय, जो कहोगे वही।

बाघारू कुत्ते की ओर बढ़ने लगा था।

कुत्ता दूसरी ओर मुँह किये खड़ा था। एक नया आदमी उसकी तरफ बढ़ रहा था और वह वैसे ही खड़ा था—यह अनिश्चयता शायद उसके लिए असहनीय थी, इसी के चलते उसने शायद गर्दन घुमा ली। पर बाघारू प्राय. दोनों के बीच की आधी दूरी तय कर चुका था—यह देखकर वह एक बार बाघारू को देखे बगैर रह नही पाया। तब तक उसने पूछ, कान, गर्दन हिलना शुरू कर दिया था। काफी दुर्बल भाव से एक बार सुअरनुमा डॉगर की पीठ को देख लेना—भागने का रास्ता। बाघारू कुत्ते के निकट चला आया था। कुत्ता अपनी गर्दन जमीन और बाघारू की तरफ लबा करके दो कदम पीछे लौट आया था। बाघारू और दो कदम पीछे लौट गया था। बाघारू और दो कदम चलते ही एकबारगी उसके सामने पहुच गया।

अबकी बाघारू कुत्ते को पकड सकता था चाहे तो। पर पकडा नही था। अब कुत्ता छलांग लगा कर भी भाग नही सकता। पूँछ को टॉगो के बीच दबाकर कुत्ते ने 'कुइ, कुई' करना शुरू कर दिया था। बगैर हिले, सिफ हाथ बढाकर बाघारू ने जब उसका गला पकडने की कोशिश की तो 'कुइ कुई' करता हुआ कुत्ता थोड़ा-सा हट गया। बाघारू फिर आगे नहीं बढा। वह सीधा होकर खडा हो गया, दोनों हाथ सामने फैलाकर बुलाने लगा—'सिओ, सिओ। उसने फुसफुसाकर बुलाना शुरु किया।

गर्दन, पूछ नीचे छिपाकर कोने की ओर से देखकर कुत्ता जैसे पहले की तरह बाघारू को समझ लेना चाहता था। अब तो सब कुछ उसके हाथ की सीमा के अदर था। पर बाघारू और आगे नही बढा। कुत्ता एक बार अगर बढकर बाघारू की पकड़ मे आ जाये तो उसके भागने का और कोई रास्ता नहीं बचा होगा। कुत्ता आखिरी बार की तरह अपने गृहहीनता का अनुभव कर लेना चाहता था। बाघारू को वह पहचानता नही था, यही भय अब उसके चरम पर था। दोनों का समाधान एक साथ ही जायेगा। समाधान के आख़िरी पल मे कुत्ता मिट्टी से जैसे सटा जा रहा था।

पर कुत्ते को लगा कि उसे अब एक कदम बढ़ा देना चाहिये—चाहे कितने भय मे ही क्यो न हो। गला भी बढ़ाना चाहिये इस बार—मिट्टी मे लिपटे हुए भले क्यों न हो ?

कुत्ता 'कुई-कुई' करता हुआ दो कदम आगे बढ गया। बाघारू कमर पर हाथ रखकर खडा हो गया। खडे-खड़े ही कुत्ता पूछ हिला रहा था। बाघारू ने उसे छूआ नहीं। कुत्ता समझ गया, छूने का समय पार हो चुका है। तभी बहुत धीरे-धीरे अपना मुँह ऊपर उठाया। पहले बाघारू की दोनो टागो का फॉक से नदी-जंगल के परिचित दृश्य की ओर देखा, फिर उसके बिल्कुल सामने खड़ा होकर अपरिचित दृश्य को ताकने लगा। फिर भी बाघारू ने अपने हाथ या पॉव को कुत्ते के शरीर को छुआ नहीं। किसी भी पशु के लिए इतने समय तक अपनी क्षमता की प्रयोग सीमा से संपूर्ण बाहर रहना संभव नही होता। पूँछ हिलाना बंद करके कुत्ते ने बाघारू की कमर की

ओर मुंह उठाया। पीछे के पैरों से मिट्टी छीटने लगा। कुछ छोटे-छोटे ककड़-पत्थर उड़ने लगे। बाघारू मुस्कराता हुआ कुत्ते के मुंह की ओर ताकता रहा, फिर दाहिने हाथ से बहुत धीरे-धीरे कुत्ते के मुंह को दबाने लगा। कुत्ते के होंठों पर बाघारू की हथेली थी।

कुत्ता बस इसी की प्रतीक्षा मे था। उसने अपने गीले होंठों को बाघारू की हथेली मे थोड़ा जोर से घुमा दिया। बाघारू की मुट्ठी गीली हो गयी। बाघारू भी इसी इशारे की प्रतीक्षा मे था। वह प्यार से कुत्ते के दोनों गाल थपथपाने लगा।

65

बाघारू का संगी लाभ

इतनी देर तक जो उसे गर्दन, पूछ झुकाकर मिट्टी के साथ सटाकर रहना पड़ा था, वह सब भूल कर पल भर मे ही कुत्ता बाघारू की मुट्ठी से छिटक कर हट गया। फिर पिछले पैरो पर खड़ा होकर सामने दोनों पैरों को बाघारू की छाती पर रखकर अपना मुह उसकी ओर बढ़ा दिया। बाघारू ने उसका माथा सहला दिया। नाक मे कुत्ते के शरीर की गध घुस आयी। वह बाघारू के गले के पास नाक ले गया, फिर बाघारू के देह की गध अपने छोटे-छोटे नथुने मे भरने लगा।

कुत्ते के उसकी छाती पर पैर रखकर खड़ा होने से बाघारू का पैर कीचड़ मे डगमगा गया। वह असन्तुलित होते-होते फिर संभल गया। उसने कमर और दाएं पैर को थोड़ा आगे कर लिया। उद्वेग और अनिश्चितता मे इतनी देर बाद छूट कर कुत्ता भरपूर शारीरिक तृप्ति पाये बिना शात होने वाला न था। बाघारू फौरन कुत्ते के आगे के दोनों पाँवों के नीचे हथेलियाँ रखकर उसे थोड़ा सा सहलाने लगा। फिर बाया हाथ कुत्ते की गर्दन के बालो में घुमाकर अगुलियो से पकड़ कर 'हा-हाँ, सिओ, सिओ' कहता हुआ पुचकारने लगा। उस पुचकार मे भी बाघारू को पूछ की गरमी लग रही थी।

बाया हाथ कुत्ते की गर्दन में घुमाते ही बाघारू की बायी बाह और गर्दन उसके मुंह के अदर चली गयी। कुत्ते ने बाघारू की बाँह को 'हाँ' करते हुए काट ली। बाघारू ने बाँह पर दांत का नुकीलापन अनुभव करने लगा। दाहिने हाथ से कुत्ते को थोड़ा ठेलता हुआ, गर्म सांस लेता हुआ बाघारू बोला, "अरे, अरे, खड़ा हो, खड़ा हो, थोड़ा खड़ा हो जा।" दाहिने पैर को थोड़ा-सा खिसकाना पड़ा बाघारू को। और तभी इतनी तीव्रता के साथ कुत्ते ने दाहिने से बायीं ओर गर्दन घुमा ली। तभी बाघारू का पैर फिसल गया और वह चित्त होकर ज़मीन पर आ गिरा धड़ाम से। कुत्ता भी पास ही गिर पड़ा, पर वह चारों पैरों पर खड़ा हो गया। और अबकी बार जैसे ही मौक़ा मिला, समझ कर कुत्ते ने बाघारू के गर्दन की ओर 'हा' करके मुँह बढ़ा दिया। "खड़ा

हो, खड़ा हो'' कहता हुआ बाघारू उसे ठेल दिया। पर कुत्ता भी अपनी ताकत लगा देता है। बाघारू हंसता। फिर दोनों हाथों में उसकी गर्दन पकड़ कर 'साला' कहकर फेंक देता।

कुत्ता बाघारू के पैर की ओर लुढ़क गया। पर फ़ौरन उठ खड़ा हुआ। तब तक बाघारू ने उठने के लिए सिर से पाव तक आकाश की ओर धनुष जैसा तान लिया। उस मुद्रा को आह्वान समझ कर उसकी टांगों में से होकर कुत्ता बाघारू पर कूद पड़ा। पर वह बाघारू के सीने पर धप्प से गिरा और बाघारू फिर से चित्त हो गया। कुत्ता उसके ऊपर चढ गया।

''साला, बार-बार कह ईहा खड़ा हो जा, पर साला सुनताई नइं।'' बाघारू ने अपने मज़बूत हाथों से कुत्ते को जकड़ लिया और पास ही फेंक देना चाहा। कुत्ता भी अपने वज़न से बाघारू को कई पल के लिए दबोचे रखा। बाघारू ने अपने दोनों घुटनों की ... से कुत्ते को दबोच लिया। फिर उसी झोंक में उसे और दंड देने के लिए चित्त कर दिया। कुत्ते के पास उकड़ू होकर बाघारू हाथ और पैरों के ज़ोर से कुत्ते को चित्त कर ठेले रखता। आकाश की ओर चारों टांग उठाये और मुँह दायें-बायें घुमा-घुमाकर कुत्ता 'कें-कें' करने लगता। ढील पड़ते ही फिर झपटता-- ''साला बार-बार कह रिया हूं, छोड़-छोड़, साला सुनता ही नहीं। 'बड़ी गरमी दिखा रहा है ? रह साला, ऐसे चित्त होकर ?''

उसके जवाब में जैसे कुत्ता फिर से 'कें-कें' कर उठता--''अभी साला कें-कें का राग अलाप रहा है।'' बाघारू बायें हाथ और पैर के दबाव से उसे चित्त किये रखता। और खुद जमे आराम करने के लिए दाहिनी कोहनी मोड़ क... पर रखता। कुत्ता फिर और करुण भाव से किकियाता और शरीर झाड़कर उठ खड़ा होना चाहता है। 'साला' कहता हुआ बाघारू हाथ और पैर का दबाव ढीला करते ही कुत्ता एक झटके से छिटक जाता। बाघारू के हाथ और पांव वहां वैसे ही पड़े रहे। उसने फिर आख नही खोली। सिर घुसाकर उकडूं हो पड़ा रहा।

छूटते ही कुत्ते ने कई बार शरीर झाड़ा। एक बार 'भौं भों' करके भौंक उठा। फिर चुपचाप खड़ा हो गया, जैसे बाघारू वहां है ही नहीं। अंत में बाघारू की ओर ताकने लगा। बाघारू वैसे ही चुपचाप उकडूं हो सोया पड़ा रहा। हिलता-डुलता नहीं। और उसका बायां हाथ-पाँव इस तरह से छितराये पड़े रहने के कारण कुत्ते को संदेह हुआ। वह नरम गले में धीरे-धीरे भौंकने लगा, मानो बाघारू को बुला रहा हो। फिर भी बाघारू हिला नहीं। कुत्ता मिट्टी सूंघते-सूंघते बाघारू के हाथ के करीब आया। हाथ को सूंघा। हवा को सूँघा। और दो कदम आगे बढ़ाकर बाघारू की पीठ को सूँघने लगा। बाघारू की पूरी पीठ उसके गले, नाक की छुअन को महसूस कर रही थी।

उसके बाद न जाने क्या देखकर कुत्ते ने बाघारू की पीठ से नाक हटा ली।

फिर उसके मुँह से दबी गुर्राहट निकली, जैसे वह डर गया हो। उसके बाद बाघारू के दाहिनी पीठ को सूंघने लगा। सूंघते हुए गर्र-गर्र करता जाता है। फिर मुंह को छुआ। आवाज़ बंद हो जाती। पीछे की टांगों से मिट्टी कुरेद कर फेंकता। लंबी-लंबी साँसें लेता। बाघारू समझ गया- कुत्ते ने उसकी पीठ पर के बाघ के पंजों के निशान को पहचान लिया है।

बाघारू ने महसूस किया, अबकी कुत्ते ने चाटना शुरू कर दिया। उस गर्म-गर्म खुरदुरेपन से चाटने से बाघारू को आराम महसूस हो रहा था। जीभ की कर्कशता से पुराना ज़ख़्म सिरसिराने लगता। फिर लार से गीला हो जाता था। चाट चाट कर साफ करके कुत्ता और एक पशु का पंजों की दाग को मिटाकर मनुष्य के शरीर पर चिह्न उकेरना चाहता है।

66
निर्वासन की ओर

कुत्ते को देखने के पहले बाघारू जिधर जा रहा था, अब कुत्ते को साथ लेकर उसी झाड़-झंखाड़ की ओर जा रहा था। कुत्ता बाघारू के कदम से सटकर चल नहीं रहा था, बल्कि अपनी मर्जी के मुताबिक चल रहा था। बीच-बीच में अपनी पूंछ खुजलाने के लिये मुड़कर गोल हो जाया करता था।

पत्तों और पत्थरों को बांधने के लिए कुछ तो चाहिये ही–नदी पार करने के लिए। चढ़ाई चढ़ते ही जंगल। एक झाड़ी पर चढ़ी बेल को देखकर बाघारू के खींचकर उसकी मज़बूती परखने ही वह टूट गयी। इन सबकी ज़रूरत ही नहीं थी अगर कहीं से थोड़ा पुआल मिल जाता। पर पुआल ही नहीं मिला। फिर रास्ते भर में कहीं कोई जंगल भी नहीं मिला।

ढक पाकुर पेड़ से पतली जट झूल रही थी। बाघारू खड़ा हो गया। सूखी हुई जट थी। मज़बूत हो सकती है। गुत्थमगुत्था, पेंचदार भी नहीं है। खींचकर तोड़ी जा सकती है।

तोड़ी जा सकती है कि नहीं परखने के लिए बाघारू ने जट को पकड़ कर एक झटका दिया। उसका हाथ झन्ना गया। बाघारू ने फिर से हाथ में मोड़ कर कस लिया जट को। झटका देकर अगर न टूटे तो इस पत्थर से कुटाई करके तोड़ी जा सकती है। एक पत्थर नीचे रखकर कूटने से कट तो जायेगी ही।

बाघारू ने अबकी बार और ज़ोर से झटका मारा। उसे लगा कि अब तोड़ा जा सकता है। इतने समय बाद जब उसे एक मज़बूत लता मिल गयी है तो बाघारू उसे छोड़ने से रहा।

बाघारू ने अबकी बार दोनों हाथों से लता को पकड़ कर घुमाया। हाथों को

सिर के ऊपर उठाया। लता में ढील आ गयी। फिर ज़ोर से एक झटका मारने पर झूल गयी। ऊपर 'पड़-पड़' की आवाज़ हुई। बाघारू समझ गया कि थोड़ी-सी उखड़ गयी है। और एक-दो झटके में टूट जायेगी। उसने फिर से ढील दी।

फिर दोनों हाथों से मरोड़ने लगा। हाथ ऊपर उठाया। ज़ोर से झटका मारा। झटका मारकर लता पर झूल गया। लगता था कि लता कुछ और नीचे आ गयी है। ज़्यादा-से-ज़्यादा दो-एक झटका और चाहिये। पर बाघारू ने लता को छोड़ा नहीं। अपने पूरे वज़न के साथ झूलता रहा। 'पड़-पड़' की आवाज़ के साथ लता डाल से बिछड़ने लगी। पर पूरी तरह नीचे आने से पहले बीच में ही टूट गयी। और बाघारू लिए दिये ज़मीन पर धड़ाम से गिर गया। उसके ऊपर लता गिरी और—उसे ढँक लिया।

कुत्ता तब तक दूर खड़ा था। खड़े-खड़े मुँह से हवा में उड़ने वाले कीड़ों को लपक लपक कर भगा रहा था। बाघारू को गिरता देखकर एक बार भौंकने लगा। भौंकते-भौंकते सामने आ गया था। "साला खाली भौंक रहा है साला भुक्खड़ कहीं का ?"

बाघारू लता के साथ उठ खड़ा था। सर, गर्दन से लिपटी लता को छुड़ाया। काफी लंबी थी लता। बीच से ही टूट गयी। देखते-देखते वह लता को दाहिने हाथ से बायें हाथ की कोहनी में लपेटने लगा। काफ़ी मोटे बंडल-सा हो गया था। फिर बाघारू आकर अपने पत्ते और पत्थरों के पास बैठ गया।

फिर बाघारू सोचने लगा कि किस तरह से बाँधा जाये। सूखी लता है इससे तो टूटेगी नहीं, मजबूत भी है। पर जितनी मजबूत हो, जोर से गाँठ नहीं बाँधी जा सकती। कुछ सोचकर पत्थरों को अलग कर लिया। फिर पत्तों पर नज़र डाली, फिर हाथ की लता को देखा। लंबाई से एक-दो पेंच देकर बाँधने से पानी के हिचकोले से पत्ते निकल जा सकते हैं। तिरछा करके बांधे तो नीचे की ओर से फिसलकर निकल सकता है। लता हाथ में लेकर और पत्तों के गुच्छे को सामने रखकर बाघारू ने एक हाथ की ओर और एक बार पत्तों की ओर बारी-बारी से देखा। इस प्रक्रिया से जैसे बाँधने का तरीका उसकी समझ में आ गया। बाघारू ने एक बार गर्दन घुमाकर नदी के प्रवाह की ओर देखा कि पानी कितनी ज़ोर से हिचकोले मार सकता है।

बाघारू ने पत्तों को पहले आड़े से बाँध लिया—पत्तों के सिरे पर। यहाँ पत्ते सबसे कम चौड़े थे। बाँध तो लिया पर यहाँ गाँठ नहीं डाली जा सकती। उसने एक गाँठ लगायी पर वह मज़बूत नहीं हुई। अगर ज़ोर से बाँधे तो पत्ते सब टूट जायेंगे। इस बंधन को कुछ समय तक बाघारू निहारता रहा, लता जैसे पत्तों को न काट डाले, वह निश्चित होना चाहता था। हाँ, यही ढीला बाँधना ही अच्छा रहेगा। फिर पत्थरों को उठाया। लता के नीचे एक टुकड़ा पत्थर रखा। एक हाथ में 'परनामी पत्थर' उठाकर लता के ऊपर मारा। बाघारू के होंठों पर हँसी फिर आयी। इतनी धार

थी उसके पत्थर मे कि एक ही वार से लता करीब-क़रीब कट गयी। बाघारू ने एक ही बार मे छिछली जगह से लता को ताड ली। अबकी दूसरी ओर एक और गाँठ लगायेगा।

आख़िरकार जैसे-तैसे बडल बन ही गया। बडल को उठाकर बाघारू खड़ा हो गया। हाथ से तोलकर झुलाया। फिर दो ओर तिरछी गाँठ मार दी। दोनो ओर से रस्सियो को मिलाता हुआ एक टुकडा लता से बाध दी, फिर कस कर गाँठ लगा दी। बीच मे एक खाचा जैसा हो गया था। पत्ते अब पानी के तेज बहाव मे भी निकल नही सकते। पर बधन कुछ ढीला जरूर था। पर एक भरोसा था कि पत्ते बीच के खाँचे मे अटके हुए है। फिर पत्ते भी फिसलने वाले नही थे।

पर पत्ते तो कधे से हाथ भर नीचे झूलने लगेगे। अबकी बार बाघारू कधे पर से झूलने के लिए लता से एक झूला बनाकर उस बडल मे फसा दिया।

पत्थर को पकडने के लिए बाघारू को इतना सोच विचार करना नही पडता। उसने अदाजा से लता काटकर चपटे पत्थर की आड मे लबा लबा कस कर एक गाँठ मार दी। थोडी-सी दूरी छोड कर एक फास बना दिया। बस माला जैसा बन ही गया अब। बाघारू खडा हो फास को हाथ मे लेकर झुलाता है। 'बस इसे झुलाकर ही पकड लेइगे।' बाघारू ने फास को गले मे पहन लिया। पत्थर उसके सीने के पास झूल गया। वह झूलते झूलते छाती मे लगेगा या नही देखने के लिए वह एक-आध कदम चला। पर नदी के भीतर पत्थर झूलेगा कैसे? 'साले तो तैरने लगेगे।' बाघारू रुक गया। परतु उसके बाद ही उसको ख्याल आया कि पाट पर चढते ही वह पत्तो को कधे पर और पत्थरो को गले मे लटकाकर चल सकता है आराम से। बाघारू ने पत्थरो को गले से खोलकर फास को और थोडा छोटा कर लिया जिससे पत्थर छाती पर इधर-उधर डोलने के बदले सटा रह सके।

फिर भी बहुत सारी लताएँ बची रही। बाघारू ने कुत्ते की ओर देखा। कुत्ता अपनी पूँछ खुजलाने के लिए तब तक पीछे की दोनो टागो के अदर सर घुमाते हुए लुढक गया था। "साला भुक्खड है मूरखिया है। अरे ओ मूरख चल इहाँ आ जा।" कुत्ता उसकी बात नही सुनता। बाघारू चिल्लाता रहा। "अरे इहाँ आ मरदूद।" फिर उसके बाद बाये हाथ से कुत्ते की गर्दन पकड कर उसके गले मे बाकी लता को गोलाई से लपेट दिया। "इको इहे रहने दे, क्या पता कहाँ क्या काम आन पडे ?"

अब बाघारू नदी की ओर चलने लगा। छाती पर पत्थर झूल रहा था। कधे पर पत्तों का बोझ। उसके पास ही मे कुत्ता, कुत्ते के गले मे लिपटी हुई लता। बाघारू सीधा नदी के पाट पर पहुँच गया। फिर पाट को देखते हुए चलता रहा कि कहाँ उतरा जा सकता है आसानी से। पाट काफी ऊँचा और जगह-जगह से टूटा हुआ था। पर पत्थर से भरा हुआ—वहाँ छोटे-बडे विभिन्न आकार के पत्थर थे। धीरे-धीरे नीचे उतरा जा सकता था।

इस तरह की जगह देखकर बाघारू खड़ा हो गया। फिर पाट के पत्थर पर सँभल कर पेर रखता हुआ एक ही छलांग से पानी के किनारे वाले पत्थर पर जा पहुँचा। फिर ज़रा भी रुके बिना नीचे उतर कर पानी के किनारे वाले पत्थर पर पेर रख दिया। अब पानी मे उतर गया। उतरते ही पानी घुटने भर हो गया। और पत्ते हाथ के क़रीब तेरते हुए कंधे पर लगते है। तेरने के लिए वह दाहिना हाथ चला नहीं सकता। बाघारू ने पल भर में ही फांस मे हाथ निकाल कर गले में पहन लिया। पत्ते पीठ पर छितराये हुए थे। फिर चकित होकर एक बार सोचा कि पत्थरों को कमर मे बांध लेना बेहतर होगा। पर उसके पास और समय नहीं था। जिस जनपद मे गुज़र कर वह आया था, उधर एक बार भी ताके बगेर बाघारू पानी में उतर गया। जेसे कि पानी म घुसना बाघारू का स्वभाव हो, जेसे कि वह पानी पर चल सकता है। इस पत्थर चिगना बहाव के ऊपर होता हुआ। उस ओर जनपद नहीं 'अरण्य' है। उस अरण्य का अंत कहाँ है, बाघारू ने न देखा था, न जानता था। यहीं पर उसका निर्वासन था। माल नदी में बहाव था। तेज प्रवाह आकर बाघारू की छाती पर धक्का मारने लगा। बाघारू ने उस प्रवाह मे अपने को छोड दिया। बाघारू ने पीछे लौटकर नही देखा। नहीं देखा कि उसका वह कुत्ता पानी मे उतरा या नहीं। बहते बहते बहाव को धकियाते हुए बाघारू को छोड़कर आगे बढ़ गया था। फिर सामने देखा कि वह भुक्खड और मूख, बहाव पर सिर उठाये दायें-बायें तैर रहा था। बाघारू के सिर के पीछे, पीठ के ऊपर पत्तों का बंडल तेर रहा था, गले का पत्थर डूब गया था और भुक्खड, मूख की तरह बहाव मे तेरते हुए बाघारू उस पार के जंगल मे, अपने निर्वासन मे चला जा रहा था।

67
अर्थनीति का परिशिष्ट

सरकारी जंगल मे गाय-भेंस चराने की एक व्यवस्था होती है। उसके लिए प्रति गाय-भैंस एक पेसा देकर लाइसेंस लेना होता है।

आख़िरी सर्दी में आग लगाकर जंगल साफ किया जाता है, ताकि बरसात के पहले नये वृक्ष लगाये जा सकें। कहीं-कहीं सूखे पेड काटकर हटाये जाते है। कोई-कोई पेड़ इतना मरा हुआ होता है कि उसे कटवाने का कोई फायदा नहीं होता। उन सब पेड़ों को जला दिया जाता है।

आग लगाकर जब जंगल साफ़-सुथरा किया जाता है, तभी से गाय-भेंस चराने के लिए लाइसेंस बनवाना पड़ता है। ये लाइसेंस पहले से ही बनाकर रख लिए जाते हैं। बीट ऑफिस यह लाइसेंस देता है। बाद मे रेंज ऑफिस जाकर वहाँ सील-मुहर लगवा कर लाना पड़ता है।

आग लगाने के बाद तमाम जंगल न जाने कैसे तो सूना-सूना लगने लगता है। एकदम खाली-खाली। नीचे-नीचे काफ़ी दूरी तक देखा जा सकता है। एक नदी के आर से दूसरी नदी के पार तक। जंगल का जला हुआ दाग़ मिटाने में बरसात के कई दिन निकल जाते हैं। देखते-देखते चारों ओर निखार आ जाता है। जगमगाहट आ जाती है पूरे जंगल के आंगन में आकाश, हवा, पेड़-पौधे सब कुछ में निखार आ जाता है।

फिर तभी नयी घास की कोंपलें फूटने लगती हैं। देखते-ही-देखते जंगल कच्ची घास से लहलहा उठता है। जला हुआ जंगल हरी, नयी घास से लक़दक़ कर उठता है। उसी समय गाय और भैंसों के झुंड से जंगल का अधिकांश क्षेत्र भर उठता है।

इनके रखवाले प्रायः वर्ष भर जंगल में ही बिताते हैं। सर्दी के अंत और बसंत के प्रारंभ में ही लाइसेंस की अवधि पूरी हो जाती है। उन्हें अपने झुंड लेकर जंगल के बाहर चले जाना पड़ता है—यही क़ानून है। क्योंकि तभी जगल साफ़ करने का समय होता है। पर गाय-भैंसों के झुंड को लेकर जंगल से बाहर जाना प्रायः संभव नही होता है। पच्चीस, पचास, सौ गाय-भैंसों को जंगल से निकल कर फिर गाँव में लौटना क्या संभव है ? इन सब गाय-भैंसों के साथ गाँव का कोई संपर्क ही नहीं होता। इसी से चरवाहे इस समय जंगल के अंदर ही रहते हैं। इन चरवाहों को पता होता है कि कब, कौन-सा जंगल साफ़ किया जायेगा। उसी के मुताबिक वे हटते रहते हैं। और अगर वैसा मौक़ा हाथ लगे तो जंगल के अंदर, जंगल की ख़ाली ज़मीन में या नदी के चर में या किसी चाय बागान के खुले मैदान में ये कई दिन बिता देते हैं। जंगल के बीच चाय-बागान की वैसी कोई खाली ज़मीन हो तो वहाँ कई दिनों के लिए बड़ा-सा गौ-हाट, भैंस-हाट लग जाता है। कई झुंड एक साथ कई-कई दिनों तक रहते हैं। वैसा अवसर हो तो उनके मालिक भी इन दिनों आकर अपनी-अपनी गौशाला देख जाते हैं। कुछ-कुछ खरीद-फरोख़्त भी होती है। साल-दर-साल इसी एक ही नियम के चलते अब सब कुछ सबका जाना हुआ है कि कब कौन-सी गोशाला कहाँ होती है, जाने में कोई कठिनाई नहीं होती।

ये झुंड की झुंड गाय-भैंसें जंगल के भीतर क्यों साल भर रहा करती हैं ?

दोनों ओर से इसके दो कारण रहे हैं। एक कारण है जंगल का। इतने सारे गाय-भैंसों के खाने के बाद भी जंगल में इतना सारा फालतू घासपात उगता है कि नये पेड़ों के बाड़े नष्ट हो जाते हैं। पुराने पेड़ बढ़ नहीं सकते। खासकर जलपाईगुड़ी के इस जंगल में, जहाँ बारह महीनों में सात महीने तक बारिश होती है। इसके अलावा भीतर और भी बहुत सारे छोटे-मोटे कारण रहे हैं। वर्ष भर गाय-भैंस चराने का लाइसेंस प्रति जानवर दस-बीस पैसे। जिसके बीस हैं वह दस के लिए, जिसके पचास हैं, वह पच्चीस के लिए, जिसके सौ हैं वह पचास के लिए लाइसेंस फीस भरता है। इसके अलावा गाय-भैंसों के लिए फॉरेस्ट गार्ड, बीट ऑफिसर, वैसे बड़े-बड़े गोशाले हों तो

रेंज ऑफिसर को भी कुछ पैसे मिल जाते हैं। इसी से जंगल में गाय-भैंसों की चरवाही में फॉरेस्ट डिपार्टमेंट का जैसा स्वार्थ है, कर्मचारियों का भी वैसा ही स्वार्थ रहता है।

गोशाला के मालिक लोगों का जंगल में गाय-भैंस रखने देने के पीछे भी एक कारण है। जंगल में गोशाला रखना काफी किफायती होता है। सिर्फ़ इससे ढोर-डांगर के खाने-पीने का खर्च बच जाता है। इतना ही नहीं, इतने सारे पशुओं को एक साथ रखने से जमीन, खेतीबाड़ी का जो नुकसान होता है वह बच जाता है। फिर गोशाला बनाने, हर साल मरम्मत-वरम्मत करने में भी जो ख़र्च होता, उसकी भी बचत होती है।

इस प्रधान कारण के अतिरिक्त और भी बहुत सारे छोटे-मोटे कारण जुड़े हुए हैं। बहुधा उन छोटे कारणों का जोड़ मुख्य कारण से भी बड़ा हो जाता है।

जंगल की ज़मीन तो हर जगह ख़ाली होती है। उस पर सरकार के सिवा किसी का अधिकार नहीं होता। जंगल के बाहर भी काफ़ी ज़मीन पड़ी रहती है। कहीं-कहीं तो ख़ास जंगल से इस ज़मीन का रुतबा अधिक रहता है। गोशाले का मालिक अगर इस तरह के मैदानी इलाके के लाइसेंस का बंदोबस्त कर लेता है तो फिर चरवाहे हल-बीज के साथ वहाँ पहुंच जाते हैं। गोशाला तो गोशाला की तरह का ही होता है और रखवाल-चरवाहे जंगल की जमीन पर जोतदार के लिए खेतीबाड़ी आबाद करते है जंगल विभाग के जो लोग इधर होते हैं, वे भी खेती में मदद करते हैं, क्योंकि फसल का एक भाग उन्हें भी मिल जाता है।

जंगल की ज़मीन पर खेतीबाड़ी करने का (अर्थात जमीन जंगल का और हल-बैल-बीज जोतदार का) और एक तरीका भी है। जंगल के अंदर 'फॉरेस्ट-विलेजर' नाम से एक-एक ग्रुप को रहने दिया जाता है। वे सूखे पत्ते, लकड़ी-वकड़ी और मुट्ठी भर जमीन मे मामूली खेतीबाड़ी करने और रहने के अधिकार के बदले में जंगल की खबर बीट-ऑफिस को पहुंचाते हैं। ये लोग इतने गरीब होते है कि ग़रीब राजवंशी गांवों में भी इन्हें जगह नहीं मिल पाती। पर फॉरेस्ट विलेजर होने के नाते फिलहाल इनकी कदर जोतदारों में काफ़ी बढ़ गयी है। जंगल ज़मीन पर इन विलेजरों का कुछ-कुछ क़ानूनी अधिकार होता है। पर उसी अधिकार के चलते अगर उन्हें हल और बीज दे दिये जायें या जोतदारों के हाथो और उन्हें अपने घर से लगी जमीन पर खेती करने को कहा जाये तो वह तो क़ानूनी खेतीबाडी ही हो जाती है। जोतदार-देउनिया अगर उसमें से अपना न्यायोचित हिस्सा ले जाये, तो वह भी क़ानून-संगत ही होता है।

इसे दो दृष्टिकोणों से देखा जाता है—जंगल की ज़मीन पर जोतदारों की बंटाईगिर, या फिर डुआर्स के घने जंगलों में खेतीबाड़ी का विस्तार।

तरह-तरह से यह प्रक्रिया भारत के सभी वनांचलों में शुरू हो गयी है। जंगल की कृषि-उपयोगी ज़मीन को वन-विभाग अपने दखल में रख पा नहीं रहा है।

पुलिस-वुलिस के जरिये इन 'जबरदखलकारों' को हटाया जा रहा है। पर देखते-देखते विगत कई वर्षों के समाचार-पत्रों में 'फॉरेस्ट स्क्वार्ड' शब्द तैयार हो गया है।

जंगल में जाते ही बहुत सारी ज़मीन और फ़सलें देखने को मिलती हैं। पर मामला अगर यही होता तो जंगल में गांव के गांव ही बस जाते। शायद बसता भी। पर अभी तो ऐसा सभव नही है। क्योंकि अव तो जंगल का व्यवसाय जोतदारों के खेतीबाड़ी के व्यवसाय से भी कई-कई गुना फायदेमंद है। जोतदार अथवा किसी भी व्यापारी के लिए भी भला क्यो न हो, जिस व्यापार का पैसा घर पर नहीं आता, वह व्यापार ही अर्थहीन होता है। अब, इतने पहाड़-पहाड़ और जिला-जिला जगल रखकर भला क्या हो रहा है ? अरे, आदमी के रहने के लिए जगह ही नही, फिर वृक्ष कहां से रहेगा ? फिर बाघ को बचाने मे लगे हो, घड़ियाल को बचाने में लगे हो ? तो फिर बचाओ। मनुष्य को पकड़-पकड़ कर बाघ को क्यों दे रहे हो · बचा रहे तेरा वन जगल और बाघ-हाथी।

अगर खुद जंगल बनाने का और लकड़ी बेचने का नियम होता तो फिर ये लोग खून-पसीना एक कर खेती-बाड़ी करने के बदले वन की खेती करते।

फिर दूसरी ओर व्यापार अर्थनीति का ऐसा सरल गणित नही है कि गोशाला के बहाने जगल मे घुसकर किस्म-किस्म के गैरक़ानूनी जोतदारी करना ही इतने सारे गोशालों का उद्देश्य है। गोशाला रखने के बहुत सारे कारण रहे है—दूध बेच बिना, मेहनत-मसक्कत किये बिना खर्चे में दैनिक फायदा। पर उसके साथ कहीं-कहीं यह गैरक़ानूनी जोतदारी भी मिल जाती है और कभी-कभी नही भी। जगल के भीतर मवेशियों को रखना सुविधाजनक है, इसी से भी रख दिया जाता है। बात सिर्फ इतनी-सी है कि जंगल की जमीन पर मवेशियो को रखना जैसे एक व्यवसाय या रीति है। जंगल की ज़मीन पर गैरक़ानूनी जोतदारी भी वैसी ही एक रीति है। पहले वाली तो काफ़ी पुरानी रीति है—अभी फिर से नये तौर पर शुरू हुआ है। और दूसरी बिल्कुल ही नयी रीति है—इतनी नयी कि उसे रीति के हिसाब से प्रतिष्ठित हुए कहा भी नहीं जा सकता। जंगल में इतने सारे पशुओं का खाद्य रहता है, जो कि बाहर कहीं नहीं मिलता और जो मवेशियों को लेकर यहाँ जंगल मे रहते है उनके पेट में इतनी कम भूख रहती है कि जो बाहर मिटती ही नहीं। इसी से गोशाले के रखवाले, पेड़-पौधे, पशु-पक्षी, यहाँ तक कि बाघ-हाथी जैसे जानवर भी एक साथ तालमेल कर रह सकते हैं। पर ज़ोर-ज़बरदस्ती के चलते यह तालमेल नष्ट होता जा रहा है।

68

कृषिविज्ञान का कुछ परिशिष्ट

यह तालमेल नष्ट हो रहा है। कृषि कार्य के आधुनिकीकरण से भी।

सिर्फ़ हल-बैल से कृषि हो सकती है, बीज से भी कृषि हो सकती है। पर फ़सल होते ही तो फिर फल नहीं हो जाता। फ़सल को पकने, फिर काटने तक तो फ़सल को मैदान में रखना पड़ता है।

जंगल के भीतर की ज़मीन में 'फॉरेस्ट विलेजर' लोग पहले हल-बैल को छोड़कर जो थोड़ी-बहुत ज़मीन है, दोनों हाथों से खेती कर सकते थे, बस वही फ़सल के फल होने तक बचाए रख पाते हैं। पर जंगल के भीतर हल-बैल की खेती, बुआई और फसल की दोनों हाथों से रक्षा नहीं की जा सकती। दोनों ओर से खतरा हो सकता है।

पहला : जंगल के पंछी इतनी खुली जगह पर इतने सघन धान देखने के आदी नहीं होते। धान फलते-न-फलते वे झुंड के झुंड उतर कर कुछ ही दिनों में धान चट कर जाते है। धान के पोधों के कुछ दिनों मे पुआल हो जाने पर भी उनको उड़ान भरने में कोई दिक्कत नहीं होती।

दूसरा : धान के पौधे भी आग की तरह होते हैं—अपने कीड़ों को खुद खींच लाते हैं। थोड़ी-सी फसल हो तो ऐसे कीड़ों को दो अंगुलियों में मसल कर मारा जा सकता है पर हल-बैल की खेती में बीज डालते समय धान के कीड़ों को मारने के लिए दवाइयों की आवश्यकता होती है। उन कीटनाशक दवाइयों के लिए आजकल कोई असुविधा भी नहीं। मालिक, जोतदारों के घर पर वे कीटनाशक दवाये प्लास्टिक के बोरे में भरी रहती हैं। पटसन, धान और आलू के कीड़ों को मारने के साथ-साथ जोतदार कभी-कभी दूसरे काम में भी उसे लगाते है। घर में भी बाहर भी। फिर चाय-बागान तो है ही। वहाँ तो इन दवाइयों से गोदाम भरा पड़ा होता है। चायपत्ती का मूल्य धान-गेहूं से कहीं अधिक है। और उन पत्तियों को बचाने वाली दवाइयों का दाम भी अधिक है। तब जरूरत पड़ने पर जंगल में छिड़काव करने के लिए चाय-बागानों से ये सब दवाइयां लायी जाती हैं। जंगल में हल-बैल से की गयी खेती में ये सब दवाइयाँ छिड़की जाती हैं। कौन सी दवाई कैसे छिड़की जाती है वह सब अंदाज़ा से किया जाता है। किसी को भी सही ख़बर नहीं होती।

हिरण, हाथी, गैंडा, धान खाना काफ़ी पसद करते है। धान की खोज में झुंड बनकर जंगल के बाहर भी चले जाते हैं। जंगल के भीतर, हो सकता है वह उनके यातायात के रास्ते में, इस तरह धान का खेत दिखे तो चले आते हैं। हिरण, हाथी जहाँ झुंड बनाकर आते हैं, वहीं अधिकाश गैंडा अकेले-अकेले ही आते हैं।

दवाई छिड़काव के फ़ौरन बाद ही अगर ये आ गये तो धान के साथ-साथ इन दवाओं को भी निगल जाते हैं। फलत इनके जंगल मे लौटते ही विषक्रिया आरंभ हो जाती है। जो जितना जहर खाये होता है, उसी अनुपात में मरता है। उन मरे जानवरों का मांस जो सियार, जंगली, कुत्ते और पक्षी खाते हैं—वे भी मरने लगते हैं। इससे अत्यंत आकस्मिक भाव से एक-एक जंगल के एक-एक भाग में महामारी

फैल जाती है। यह महामारी फैलने न पाये इसके लिए आजकल तरह-तरह की व्यवस्थायें की गयी हैं—पर वह भी कीटनाशक, जीवाणुनाशकों को लेकर ही। कीट और जीवाणुनाशक खाकर जो महामारी शुरू होती है उसका कोई प्रतिरोधक उपाय नहीं होता। केवल एक ही भरोसा है--पास ही कोई नदी हो तो यह महामारी दूर तक नहीं फैलती। अगर हो तो पानी में मिलकर जहर और नीचे चला जाता है। और भी एक भरोसा है कि अगर घनघोर बारिश हो तो फिर इतने सारे पानी में जहर की प्रतिक्रिया कम हो जाती है। बरसात के बाद जो धूप खिलती है, फसल तो उसी में पक कर तैयार होती है। और तभी कीड़ों का हमला अधिक होता है। पशु-पक्षी भी ज़्यादातर तभी धान के खेतों में अधिक जाते हैं फिर तभी दवाइयों का छिड़काव भी अधिक होता है।

दक्खन के किसी-किसी जंगल मे गोशाला से गाय-भैंसों को बाघ अगर मार कर उठा ले जाये तो रखवाले उस मरे हुए पशु को जंगल से ढूँढ़ निकालते हैं। बाघ भी तो एकबारगी पूरा का पूरा खा नहीं पाता। बाद में खाने के लिए रख छोड़ता है। गाँव वाले उसी शिकार के अंदर कीटनाशक और जीवाणुनाशक दवाई घुसाकर चले आते हैं। फिर उस मांस को खाकर बाघ तो मरना ही है, गीदड़, सियार, लकड़बग्घे भी मरते हैं। अपने गोठ के गाय-भैंसों को जंगल में सुरक्षित चराने के लिए जंगल के मांसाहारी जानवरों को उस दवाई के ज़हर के प्रयोग से नष्ट किया जाता है। 1976 में केनेड आंडरसन ने कहा था कि इसके फलस्वरूप आज दक्खन के इन्हीं सब जंगलों में कोई बाघ नहीं, सियार नहीं, लकड़बग्घा नहीं—इसलिए गिद्ध भी नहीं होते।

जलपाईगुड़ी के आसपास के जंगलों में फिलहाल हालात इतने बुरे नहीं हैं। पर उसका लक्षण प्रकट होना शुरू हो गया है। कुछ साल पहले जंगल के एक ब्लॉक में एक ही रात में साँभर, हिरनों का एक झुण्ड सारे सॉल्टलेक में सूखे पत्तों जैसे छितराये पड़े पाये गये थे। शरीर के भीतर समाये विषक्रिया के चलते शारीरिक धर्म के किसी अनजाने नियम से जीभ निकाल नमकीन मिट्टी चाटते-चाटते मर जाते हैं। इस मृत्यु की तहकीकात भी की गयी थी। कलकत्ते से विशेषज्ञ बुलाये गये थे। पोस्टमार्टम भी किया गया था। उसके बाद और कुछ पता नहीं चला।

कई वर्ष पहले फालाकोट के क़रीब जो गैंडा मारा गया था, उसका कारण भी शायद यही ज़हर था। किसी-किसी को संदेह है कि जबरीदखलकारों ने ही ज़हर मिलाया था। पास के खेत में धान खाने के लिए दो गैंडे बराबर आया करते थे। वे भोर से पहले ही लौट जाते। चाँदनी रातों में बहुत-से लोगों ने उन्हें देखा भी था सीमा पर। दूर से देखने पर ऐसा लगता था कि जैसे किसी कटे हुए पेड़ का ठूँठ खड़ा है। जो लोग चौबीसों घंटे इन खेतों को देखते हैं, उन्हें पता है कि वहाँ कोई ठूँठ नहीं है। पहले-पहल दोनों गैंडों को खदेड़ने के लिए भी कोशिश की गयी। पर कोई

खास सफलता नहीं मिली। फिर, धीरे-धीरे यह उनका अभ्यास बन गया—रास्ता या मुहल्ले के साँड़ के जैसा अभ्यास हो जाता है। जैसे लोगों को हकलाने की आदत होती है, वैसे ही गैंडों का आना भी उनकी आदत है। और एक बार आदत हो जाने पर तो वह दोनों गैंडे रात में गांव के मेहमान बन गये थे।

पर आदत की एक और भी दिशा है। जब दोनो गैंड़ों का अपना तक़रीबन एक नियम बन गया, और इस बात का सबको पता चल चुका, तभी एक दिन देखा गया कि एक गैंडा मरा पड़ा है। बल्कि यूँ कहना चाहिये कि उसके मरने की बात सुनने में आयी। क्योंकि रात के आखिरी पहर मे दूसरे गैंडे के दिल दहला देनेवाली चीख से सभी लोगों की नीद खुल गयी थी। पहले तो कोई भी इस चीख़ को पहचान नहीं पाया। पर नियमित व्यवधान से एक ही जगह से चीख के बार-बार सुनायी देने से लोग उधर निकल कर जाने के लिए बाध्य हो गय। पता चला कि चीख़ एक गैंडे की न होकर दो गैंडो की है। लोगो ने तभी देखा कि एक गैंडा खेत के भीतर भागदाड मचाये हुए है, जैसे भूकप आ गया हो। और एक गैडा चुपचाप खड़ा था। उन्हे दूर-दूर से ही यह सब देखना पड रहा था। और एक गैडा सुबह मरा हुआ मिला। पर मादा गैडा तब भी खडी थी। सिर्फ तभी नही, दिन पर दिन उसे वहाँ, उसी हालत मे खडे पाया गया। पहले दिन काफी चीख़ चिल्ला रही थी, बाद के दिनों मे कभी-कभी उसकी दर्दभरी चीख सुनायी देती थी। उस मर्मभेदी चीख से ऐसा लगता था जैसे धरती फटी जा रही है। मादा गैडा को जगल मे वापस भेजने और मृत गैंडे की मृत्यु का कारण ढूंढने के लिए कलकत्ते से विशेषज्ञ बुलाये गये थे। उसके लिए जेनेरेटरवाली गाड़ी लानी पडी थी। इस सबसे क्या पता लगा, वह किसी को भी पता नही।

सुना जाता है कि कीटनाशक दवा खाने से ही गैडे की मृत्यु हुई थी। और शायद वह जहर पोचारो का दिया हुआ था। वे शायद इस जगह इतनी दवा डाल गये थे कि वह जगह बिल्कुल ही जल गयी थी। पर दो गैंडो के बदले एक ही गैंडा खेत मे गया कैसे ? वह तो शायद बहुत बार भी हो सकता है। पर क्यों होता है, यह तो शायद इन जानवरो को ही पता था।

कुछ लोगो का कहना है कि जिसकी जमीन थी उसकी गलती के चलते यह सब हुआ था। और कुछ कहते हैं—उसका भी पोचर होने में बाधा कहाँ है ? या फिर पोचरों की ओर से यह काम करने मे भी उसे क्या मनाही हो सकती थी ?

सो जो भी हो, इस कीटनाशक से गैंडे की मृत्यु हो सकती थी या नहीं, उसे लेकर काफ़ी तर्क-वितर्क होता रहा। पर अगर कीटनाशक से मृत्यु नहीं हुई, कोई और कारण उसे ही मृत्यु का मान लें, तो इसी से समझा जा सकता है कि यह एक सामाजिक वास्तविकता के नाते स्वीकृत हो चुका है—पशु-पक्षी, पेड-पौधे, नदी-नाला, मनुष्यों को लेकर जंगल का वह तालमेल तबाह होता जा रहा है।

69
राजनीति के कुछ परिशिष्ट

पुरानी जोतदारी की नई खेती की तरह, नया-नया बाथानदारी (रखवाले चरवाहों की जबरीदखल) भी शुरू हो गयी है।

जलपाईगुड़ी, डुयार्स और दार्जीलिंग पहाड़ी के नीचे की ओर बहुत सी जगहों के नाम भी बाथान से शुरू हुए हैं। "गोरूबाथान", "महिपबाथान" तो काफी जाने-पहचाने नाम हैं। बहुत-सी छोटी-मोटी जगहों के नाम भी इस तरह के हैं। ये सब नाम क्यों पड़े –इस बारे में कुछ-कुछ कहानियाँ भी हैं। इन जगहो में तो जनबस्तियाँ कोई खास पुरानी हैं नहीं। तो इसी से उन कहानियों के पीछे अब तक शायद इतिहास भी रहा हो।

पर अभी-अभी कोई बारह-पंद्रह वर्ष हुए गोठ के गोठ गाय-भैंस रखना काफी ज़ोरों से चल रहा है। ठीक तौर से कहा जाये तो दस-बारह वर्षों से ही यह काफी जोर पकड़ा है।

1962 में जब चीन-भारत युद्ध शुरू हुआ तो, रेडियो से सुबह शाम नयी नयी जगहों के नाम सुनने के सिवा डुआर्स के रहने वाले युद्ध के बारे में कुछ नहीं समझते थे। हाई-वे के पास जो लोग रहते थे, उन्होंने देखा है कि मिलीटरी गाड़ियों का कैसे तांता बँधा रहता था। जैसे उनके यातायात का कोई अंत ही न था। पर सभी को तो वह देखने को मिला नहीं था। तो वे लोग भी देश के दूसरे भाग के लोगों की तरह रेडियो में सुना करते थे, जो पढ़ पाते थे वे लोग अखबारों से पढ़ते थे। यह लड़ाई तो कई एक माह के बाद रुक गयी थी।

लड़ाई बंद हो जाने के बाद तमाम डुआर्स में तरह-तरह की घटनायें घटित होने लगीं–साल-दर-साल चला यह सिलसिला। पतले-संकरे रास्ते चौड़े हो गये। लकड़ी का कलवर्ट पक्का बन गया। छोटी-मोटी नदियों पर पक्के पुल बन गये। जलपाईगुड़ी के तिस्ता नदी पर ब्रिज बना। अबकी और सिभक ब्रिज होकर घूमकर जाने की आवश्यकता नहीं रही। फिर सिलीगुड़ी के उत्तर में दार्जीलिंग पहाड़ी की तलहटी से लेकर आसाम तक, हाई-वे के दोनों ओर जंगल साफ करके मिलटरी कैंप बनवाया गया था। उन कैंपों का जैसे कोई अंत नहीं। जंगल के भीतरी भाग को साफ करवा के पक्का घर, पक्के रास्ते, अनगिनत गाड़ियाँ और अनगिनत लोग। जंगल के बड़े-बड़े पेड़ तो रह गये पर नीचे बिल्कुल साफ़ कर दिया गया।

सिर्फ़ जंगल में ही नहीं, कहीं-कहीं शहर के बाहर भी एक और शहर बना दिया मिलटरी वालों ने। शहर कहाँ से शुरू हुआ है और कहाँ उसका अंत होता है, किसी को भी पता नहीं। तमाम जगहें कहीं दीवारों से तो कहीं काँटेदार तारों

से घिरी हुई हैं। कहीं-कहीं उसके घेरे के भीतर हवाई जहाज भी उतरता है। फिर गाड़ियों की कतार तो लगी ही रहती है। इस तरह में धीरे-धीरे न जाने कितने तो शहर बसे हैं—दार्जीलिंग पहाड़ी की तलहटी में, सिलीगुडी के उत्तर में, हाई-वे होते हुए आसाम तक। अक्सर अविच्छिन्न नया फौजी पत्तन का कोई परिचय नहीं होने पर भी स्थानीय लोगो को इसी सूत्र मे काफ़ी दूर-दराज की जगह मिली हुई है। कहीं किसी पहाड़ के पीछे गोला-कमान (ताप) की शक्ति-परीक्षण से या गोला-बारूद चलाने के अभ्यास से दूर-दूर तक कांप उठता है। अब तो इतने दिन हो जाने पर लोग इस कॅपकॅपी के अभ्यस्त हो चुके है। कमान, गोल की आवाज़, प्रतिध्वनित होने के सिवा इस व्यापक क्षेत्र में इतनी सारी फौजी कार्रवाई घटना की कोई प्रतिक्रिया ही नहीं होती। और फिर जरूरी तौर पर एक कारण यह भी है कि इन तमाम क्षेत्रों में ज़मीन की तुलना में जनबस्ती काफ़ी कम है और बस्ती की तुलना में पहाड़, नदी, जंगल काफ़ी हैं। इसी मे यह इतने दूर व्यापक क्षेत्र मे सेना नगर बन पाया है स्वतंत्र भाव से। स्थानीय किसी समस्या पर उसकी कोई प्रतिक्रिया नही होती। सिर्फ़ मालबाजार और हासीमारा में पुराने और रद्द किये गये यूनिफाम की दो दुकानें खुल गयी हैं। इन दोनों जगहों पर कई फोटो की दुकाने भी खुल गयी है। फिर इन दोनों जगहों पर तो था ही, और भी किसी-किसी जगह छोटी-छोटी किताबो और पत्रिकाओ की दुकाने भी खुल गयी। फिर ये दुकानें भी बडी होती चली गयी। मालबाजार और हासीमारा जैसी जगहों मे हिंदी-अंग्रेजी के साथ साथ तमिल, तेलुगु भाषाओ की पत्र-पत्रिकाएँ दुकान मे टंगी दिखायी देने लगी। इतनी भाषा के इतने पत्रों के बावजूद सभी पत्रो के ऊपर एक ही स्त्री की तस्वीर। वीरपाडा मे एक बड़ी दुकान खुल गयी—वहाँ दवाई स लेकर कपडे-लत्ते, सूटकेस, साइकिल जैसी सभी चीज मिलने लगीं।

पर इन सामान्य कई दुकानो को छोड़कर, इतने सारे कैंप जो इधर-उधर बस गये—सुना जाता है कि बिन्नीगुड़ी में तो एक पूरा-का-पूरा कैंटोनमेंट ही बस गया है, सिर्फ अब तक घोषण होनी बाक़ी है, बस। स्थानीय बाजार पर इसकी भी कोई प्रतिक्रिया नही हुई। यानी बाज़ार मे चीजों की खरीद फरोख्त बढ़ेगी, आमदनी बढ़ेगी, लोगो के हाथ में पैसा खेलेगा, वह सब हुआ नही। लोगो की किस्मत में हो तो इस फटे जर्जर पोशाक और फटे कागज़ की दुकान पर खड़-खडे मिलटरी की दया से विभिन्न भाषा और रंगो में एक स्त्री की अधनगी तस्वीर कवर पर देखने को मिलती है।

इतने सारे कैंपों के लिए खाने की चीजे—कंट्रै ्र लोग ट्रक में ला-लाकर बाहर से रखते हैं। सिलीगुड़ी में एक डिपो है। वहाँ से कुछ हरी सब्ज़ियाँ यहाँ आती हैं। पर खस्सी बाजार से लाये जाते हैं ट्रकों में लादकर। खस्सियो से खचाखच भरे ट्रक। अब शायद किशनगंज के बाद बालूघाट में भी डिपो खुल गया है। बालूघाट के डिपो के कारण बांग्लादेश से चोरी-छिपे चालान का काम भी शुरू हो गया है। पूरे देश

में मिलटरी का कारोबार चलता रहता है। और फिर इन मिलीटरी कट्रैक्टरों के चलते ही यह सब चलता है, जैसे यह उनका ही कारोबार रहा हो। यहाँ जो भी कपनी तबादला होकर आती है, उसका कट्रैक्टर भी साथ-साथ चला आता है। चाहे वह भारत के उत्तर-पश्चिम सीमांत से हो या फिर पश्चिम समुद्र पार से। इतने दिनो के बाद शायद ये सब कट्रैक्टर यहाँ और ख़ासतौर से सिलीगुड़ी में यहां के लोगों को कुछ-कुछ सब-कट्रैक्टरी दे रहे हैं, पर असल कट्रैक्टर के मामले में यहाँ किसी का वश नहीं चलता। कोई टाँग अड़ा नहीं सकता। यानी कि पूरे इलाके में '62 के युद्ध के बाद मिलीटरी के इतने सारे कांड हो जाने के बावजूद स्थानीय लोगों के आय-व्यय पर उसकी कोई प्रतिक्रिया नहीं हुई। मिलीटरी एक राष्ट्रीय-व्यापार होने पर शायद उसकी प्रतिक्रिया भी राष्ट्रीय स्तर पर होती है, यह इससे नीचे और उतर नहीं पाता।

पर एक चीज़ का कट्रैक्टरों को यहीं जुगाड़ करना पड़ता है—वह है दूध। पाउडर मिल्क या इस तरह की स्थानीय चीजों की सप्लाई में शायद कोई दिक्कत ज़रूर होती है। या फिर शायद इस तरह की पानीय चीज़ तो दूर के किसी जगह से एक बार में ही आती है, उसके साथ स्थानीय लोगों से इकट्ठा किये गये दूध को मिलाकर दैनिक राशन का कोटा पूरा किया जाता है। कारण जो भी रहा हो, मिलटरी कैंप के चलते स्थानीय तौर पर सिर्फ दूध की मांग बढ़ी है, ऐसा तो कहा नहीं जा सकता, बढ़ते-बढ़ते वह शिभक ब्रिज पार होकर उस पहाड़ी की तलहटी में, जगल में, यहाँ तक कि पहाड में, बांगड़ूबी-मिरीक से आसाम की सीमा तक बढ गया है। दूध के लिए ही तो कंट्राक्टर लोग हैं। वही दूध जुगाड़ करके लाते हैं बस्ती और जगल के अंदर से।

पहले-पहले इसको लेकर तरह-तरह के बवाल भी हुआ करते थे। मिलटरी कैंपों में दूध पहुँचाने के व्यापार में नदी-नाला, जगल, पहाड़ो के पार के सभी बस्ती के राजवंशी-नेपाली-मदेसिया आदि लोग जुड गये हैं। लोग एक जगह दूध पहुँचा आते। वहां से एक आदमी और एक जगह पहुँचा आता है। फिर वहाँ से एक आदमी बडे रास्ते तक वहाँ से फिर ट्रक में—इस तरह से। उन तमाम प्राथमिक स्तर से होकर फिलहाल एक पक्का बंदोबस्त तैयार हो गया है।

जोतदार तीन-चार वर्ष के अंदर किशनगंज-पूर्णिया अपने आदमी भेजकर भैंस खरीद लाते हैं। शायद सामरिक कारण से ही फॉरेस्ट डिपार्टमेंट ने गाय भैंस चराने के लिए लाइसेंस देने में उत्साह दिखाया है। देखते-देखते कुछ एक वर्ष में इस हाई-वे के दोनों ओर सिलीगुड़ी के उत्तर से आसाम के सीमांत तक के तमाम जंगल गाय-भैंसों के गोशाले से भर गया। दूध कट्रैक्टर के साथ हर एक गोशाले के मालिको का बंदोबस्त है। कट्रैक्टर को जिन कैंपों में दूध सप्लाई करना होता है, उस कैंप के रास्ते के आसपास जंगल में गोशाला रखना पड़ता हो, जिससे गाड़ी से अलस्सुबह दूध संग्रह करके लाया जा सके। इसमें खैर कोई असुविधा नहीं होती। क्योंकि जिस तरह एक

मालिक के कई-कई गोशाले होते हैं, उसी तरह से एक कंट्रैक्टर के भी एकाधिक कैंप हुआ करते हैं। सुबह होते ही जंगल के भीतर बड़े-बड़े रास्तों पर दूध से भरे हुए ट्रक भागते नज़र आते हैं। फनेल लगे लंबे-लंबे नल गाय-भैंसों के थन में लगाकर पंप के जरिये दूध दुहा जाता है। डायना नदी के ब्रिज के नीचे, लेटरल रोड के पास, गयानाथ की ऐसी ही एक गोशाल है।

70
निर्वासन भूमि

बाघारू की यह निर्वासन भूमि दिगंत में लंबे धनुष जैसी बाँकी और नदी के एक पार से दूसरे पार तक धूसर थी।

कलकत्ता से आसाम नेशनल हाई-वे चालसा के करीब दक्षिण में उतर कर फिर मयनागुड़ी होते हुए उत्तर की ओर उठता चला गया है। जो विशाल जंगल यही कोई पचास मील 'U'(यू) लम्बाई में विच्छिन्न दोनों प्रांतों को घेर रखा है, जंगल के नक्शे पर उसके विभिन्न जगहों के नाम भी मिलते हैं, जैसे—अपर चालसा, लोअर चालसा, अपर और लोअर तंडु, डायना रेंज, डायना चर, गरुमारा, खुटमारी। फॉरेस्ट मैप के इस विभिन्न नामों के भीतर भी एक नियम है--बड़ा से छोटा होता आया नाम। इसी चालसा से ही एक लेटरल रोड निकलकर इस पचास मील 'U'(यू) के ऊपरी दोनों सिरों को जोड़ता हुआ करीब सत्तर-अस्सी मिल बड़ा एक 'O'(ओ) बना दिया है।

बाघारू की यह निर्वासन भूमि धनुषाकार है तो वह लेटरल रोड उस धनुष की प्रत्यंचा की तरह है। डायना नदी का ब्रिज उस प्रत्यंचा का मध्यबिंदु है। प्रत्यंचा और धनुष के मध्य जो शून्यता फैली है, वहीं बहती है डायना नदी। दोनों छोरों को जोड़ती हुई डायना का चर जंगल है। उसके पीछे पहाड़ से होता हुआ जंगल ऊपर को उठता चला गया है—खड़ा और धनुषाकार। उसके उस ओर भूटान पहाड़ है। इस डायना नदी का कोई पाटा नहीं, जैसे तिस्ता का है। इस नदी के तीनों ओर पहाड़ ही पहाड़—अपलचाँद के तिस्ता का वैसा नहीं है। इस नदी से अपलचाँद नदी की शैया काफ़ी बड़ी है। इस डायना की खुली शैया पर सिर्फ़ एक और सिर्फ़ एक धार पत्थरों पर से टकराती हुई बहती है। फिर मिट्टी जल छू नहीं पाती। इतने सारे पत्थरों से टकराती बार-बार मुड़ती हुई यह डायना नदी उतरती है और बढ़ती है। ऐसा लगता है नदी में पानी नहीं, सिर्फ़ बुलबुले ही हैं। बाघारू के तिस्ता में फेन नहीं, बुलबुले नहीं—पाताल छूते जल की गहराई है। तिस्ता की छाती में जल समाता नहीं, फट जाता है। तिस्ता की तरह इसे इस पार से उस पार देखा नहीं जायेगा। डायना को लंबाई में देखा जा सकता है, नीचे से ऊपर की ओर। पर लंबाई में भी डायना का बहुत कुछ एक साथ नज़र नहीं आता। पत्थर और पहाड़

की ओर हमेशा बनी रहती है।

नदी के भीतर का कुछ भाग और पानी के दोनों ओर बालू भरा है। उसके बाद. काफी दूर तक सिर्फ़ पत्थर ही पत्थर। ऐसा लगता है जैसे पहाड़ों पर पहाड़ को तोड़ कर फेंक दिया गया है। छोटे-छोटे पहाड़ बड़े-बड़े पत्थर की तरह नदी के बीच अलग-अलग पड़े हुए हैं, जिस पर चढ़ने के लिए आदमी की बुद्धि और बाघ या कुत्ते के नाखून की ज़रूरत पड़ेगी। इतने बड़े पत्थर का खड़ा माथा मिट्टी पर झुककर अपने शरीर के भीतर एक ऐसा गह्वर तैयार करता है जहां बारिश और तूफ़ान में मनुष्य और पशु आराम से शरण ले सकते हैं। किसी-किसी पत्थर की पतली सुई जैसी नोक आकाश की ओर उठी हुई है। चढ़ाई पर लुढ़कते-लुढ़कते झूलता हुआ रुक-सा गया है--कोई पत्थर। जैसे कि बस अभी ही लुढकता चला जायेगा। पर उसी पत्थर के पीछे से टकराते-बहते जल से पत्थर के नीचे काई लगी हुई है। कहीं-कहीं किसी ऐसे पत्थर के चारों ओर घास का ऐसा जंगल है कि वहाँ आदमी ही डूब जाये। समतल पत्थरों की बेदी पर कोने की तरफ़ खड़ा है सफ़ेद पत्थर से कोई स्थापत्य कला--जो कि हरियाली के सामने. बहते फेन पुंज के पीछे और बालू और छोटे पत्थरो, कंकड़ों के बीच दिखायी पड़ता है।

पहाड़ जैसे बडे-बडे पत्थर कंकड से बिखरे हुए है कि अचानक समझ में ही नहीं आता कि तमाम नदी इतने सारे बोल्डरों से कैसी अटी पडी है, जैसे बाँध बनाया गया हो। बलुई ज़मीन और नदी का गर्त तक इतने सारे बोल्डर पडते ह कि लगता है जैसे पत्थरों से नदी को बंद कर दिया गया है।

इन बड़े-बडे पत्थरों और बोल्डरों के अलावा छोटे-छोटे कंकड़ पत्थर बालू जैसे बिखरे पड़े हैं। किस्म-किस्म के आकार, तरह-तरह के रंग के। जब डायना में बाढ़ आती है तो इन्हीं कंकड़-पत्थरों पर से पानी ज़ोर से बहने लगता है। फिर बाढ़ का पानी जब कम होने लगता है तो छोटे-छोटे पत्थरों का यह कंकरीला प्रांत पानी के भीतर इंद्रधनुष-सा चमकने लगता है। डायना के सहसा फैले उस पानी पर लगता है जैसे आकाश का साया पड़ रहा हो—इतना गहरा और इतना रंगीन होता है वह छोटे-छोटे पत्थरों का जलपथ।

अपलचाँद के तिस्ता में पत्थरों का यह विस्तार नहीं है। वहाँ आधी रात को तिस्ता की गहराई से तोप की गरज सुनायी देती है। लोग कहते हैं—"तिस्ता का तोप"। तिस्ता की तलहटी मिट्टी पर पत्थरों से जोर से टकराता है। जल इतना गहरा होता है, नदी इतनी उच्छृखंल होती है कि पत्थर ऊपर सिर नहीं उठा सकता, डूबा ही रहता है। और डूबे-डूबे ही बह रहा होता है, टकरा रहा होता है। अपलचाँद तो नीचे है, समतल में है, वहाँ मिट्टी की ढलान इतनी ऊँची नहीं है।

डायना नदी के ठीक इसी जगह पर ऐसा हुआ है, और कहीं नहीं। चूँकि डायना यहीं पर पहाड़ से उतरती है, थोड़ी-सी बायीं ओर मुड़कर समतल में निकल गयी

है। पश्चिम मे गाठिया, ओर कुछ पश्चिम की ओर जलढाका नीचे जाकर डायना के साथ मिला है। डायना के ब्रिज पर खडे होकर दक्षिण की ओर देखने पर वह समतल दिखायी देता है। काफी दूर तक डायना की चर भूमि दिखती है। उसके बाद ही लोअर तड़ का जगल की नदी की सीमा पेडो की दीवार से गुथी हुई है। डायना का पाट क्रमश चोडे-से-चोडा होते हुए नीचे चला जाता है। तीन तीन बडी नदियो का जल और बहुत से झरने-नालो का जल इस पाट म समा जाता है। वहाँ से जलढाका-गाठिया-डायना, तिस्ता से पूरब मे, और पूरब की ओर हटते चले गये हैं, अत मे ओर ही पूरब को कूचविहार मे होता हुआ चला गया है। उसके नीचे दक्षिण-पूरब मे मुडकर रगपुर के करीब तोर्सा के साथ मिलकर तिस्ता म जाकर गिरती है। डायना के पूरब मे ओर कोइ नदी नीचे तिस्ता से मिली नही है। पश्चिम मे तिस्ता और पूरब मे डायना—यही तिस्ता पार का विस्तार है।

डायना क इसी चर पर गयानाथ की गोशाला थी। इस चर जमीन को हासिल करने के लिए गयानाथ का अपने जँवाई आसिदर के जरिये फॉरेस्टर आफिस मे तदबीर भिडानी पडी थी। इधर उसे गोशाला रखना ही होगा। उसका कट्राक्टर इसी लेटरल रोड के ऊपर बिन्नागुडी की तरफ दूध सप्लाइ करता था। वह तो फिर ट्रक का तेल फूक कर आपलचाद जाकर दूध दुहाने से रहा। अगर उल्टी दिशा मे, आपलचाद मे गोशाल होता तो गयानाथ को उदलाबाडी की तरफ किसी कंट्रेक्टर के साथ बदोबस्त करना पडता। पर उधर भी गयानाथ का कोई गोशाल नही होगा, उसका क्या ठिकाना ? तिस्ता पार के पूर्वी सीमा सिभक और पश्चिमी सीमा डायना के बीच कहाँ पर गयानाथ था और कहाँ नही था—क्या यह बात गयानाथ को भी पता होती थी ?

गोशाला के लिए डायना के इस चर को चुनने का एक साथ इतना सारा कारण रहा था कि उनमे से कोन-सा आगे और कोन-सा बाद मे कहना कठिन था। यह तो सोच पाना भी कठिन था।

यही से डायना पहाड से उतर कर समतल मे चली जाती है, इसी से ब्रिज के बाद पानी जैसे फट कर चारो ओर बिखर गया था। पर बालू और पत्थरों के चलते इतना बडा पाट होने पर भी यह समतल नही था कही। फलस्वरूप डायना के चर को बीच मे छोड काफी दूर-दूर होते हुए दो बडी-बडी धारायें बहती चली गयी थी। कुछ-कुछ धार चर के बीच मे भी घुस आयी थी। ऐसे इस बीच के चर मे अगर गोशाल हो तो दोनो ओर की धारा के जल से गोशाले को बहुत कुछ बचाया जा सकता था।

इस बीच मे रहने के लिए तो और कोई दिक्कत नही थी--क्योकि चर ऊँचे घास के जंगल से छाया हुआ था। अगर तरह-तरह के घास खिलाने का मन हो तो चर के अदर एक बार चारो ओर सिर्फ घुमा भर देने से ही गाय-भैसे अपनी पसद के मुताबिक घास चुन कर खा लेती। फिर इस धानखेत के बाद ही जगल शुरू हो

जाता था। वहाँ छोटे छोटे किस्म के झाड़-झखाड़, पेड़-पौधे, बेलबूटे भरे थे। गर्दन झुका-झुकाकर घास खाते-खाते अगर गाय-भैंसों को उकताहट होती तो उन्हें एक बार जंगल में घुमा दिया जाता था। उसके बाद पत्थर और बालू के पार पहाड़ से होता हुआ जंगल शुरू हो जाता था। पूरा का पूरा गोशाल लेकर उस धनुषाकार जंगल के बायी ओर होकर सुबह होने मे घुसने पर, दायी ओर से रात के भीतर ही चर मे वापस आया जा सकता था।

जंगल की कई जगहे कुछ खास काम के लिए ही निश्चित हुआ करती है। ठीक उसी तरह से यह जगह गोशाला के लिए ही तयशुदा था। इन सब चर के जंगल और घास के जंगल मे सिर्फ एक ही डर रहता था- गो-खउवा बाघ का (गाय-भैंस खा जाने वाले बाघ)। पर उस तरह का कोइ बाघ है या नही इसकी खबर पहले से ही लग जाती थी। फिर इतने सारे भैंसों को लेकर अगर गो-खउवा बाघ का सामना करने की हिम्मत न हो तो फिर गोशाला रखने की जरूरत ही क्या है? लेटरल रोड बीचोंबीच चला गया था इसी से गाड़ी-घोड़ा की आवाज मे बाघ इधर नही टपकता। फिर इस रास्ते के होने से ही कट्राक्टर की गाड़ी आकर यहा खड़ी हो जाती थी।

71
पक्षी जागते हैं, बाघारू जागता है

इसी इतिहास और भूगोल के बीच निर्वासित था बाघारू। अभी रात के अंत में पहाड़ और ब्रिज के बीच वाली खाली जगह मे नदी के पाट पर एक छोटे टीलानुमा अकेले पत्थर के ऊपर बाघारू सोया था।

तीन ओर से तीन जंगली मुर्गो ने एक साथ बाँग देकर रात खत्म होने की मुनादी कर दी। तीनों मुर्गों में से एक बाघारू के दाये और एक बाये की ओर जंगल के अंदर था। दोनों तरफ से बाँग मिल जाते थे, पर दोनों की प्रतिध्वनि मिलती नही थी। और एक मुर्गा ब्रिज के दक्षिण मे, चर के बीच से बाँग दे रहा था। उसकी बाँग हल्की थी। उसके बाँग की कोई प्रतिध्वनि नही हो रही थी। इससे सिर्फ तीन जंगली मुर्गों की बाँग की सात-आठ तरह की आवाज़ों से अचानक वह जगह गूँज उठी। इन आवाजों के धीरे-धीरे घुलने में काफी समय लगा। और जंगल के भीतर की तरह-तरह की आवाज़ें एक साथ घुल-मिल जा रही थीं।

कई पक्षी पंख फड़फड़ा कर नींद से जाग रहे थे। वृक्ष के पत्तों से मर्मर ध्वनि उठ रही थी। वह ध्वनि वृक्षों मे होती हुई फैलती चली जाती थी। कोई-कोई पछी चहचहाने की अपेक्षा गले से एक स्वागत ध्वनि निकाल रहे थे। गले मे उभरी वह ध्वनि गले के अदर ही मिल जाती थी। भैंसों के गोशाले से एक छोर से दूसरे छोर

तक कान फड़फड़ाने और पूँछ फटकारने की आवाज़ उभरती चली जा रही थी—दूर तक हवा में लहराती हुई। रह-रहकर, थम-थमकर झींगुर और झिकारी की आवाज़ उस रात को और निशब्द कर देती।

डायना के ऊपर, जगल के भीतर किसी ऊँची डाल पर वह पाखी जाग उठा था। जोर से उसके पख फड़फड़ाने की आवाज नदी पथ से होती हुई इधर आ रही थी। वह पाखी एक डाल से दूसरे डाल पर उड रहा था। वृक्ष के कई पत्ते फड़फड़ाते-लहराते हुए गिर जाते थे—काफ़ी शोर मचाते हुए। पाखी के शरीर से पत्तों के घर्षण की आवाज भी नदी की ओर से आती थी। वह बैठे बैठे ही एक बार फिर से पख झाड़ा। फिर उस नीम अँधेरे में एक कातर 'क-अ-अ क' आवाज उतरती चली आती थी। उस जगह पर उसने दो बार चक्कर काटी, बाघारू जिस पत्थर पर सोया था, उस पत्थर के ऊपर दो बार उड़ता आया, फिर 'झप्' करके जैसे नदी पर उतर गया। फिर पलट कर बाघारू के पत्थर के किनारे आकर बैठ गया। इस पत्थर पर उड़ जाने के लिए ही जैसे उसे नदी पर उतरना पडा था।

पर यहाँ आकर बैठते ही बाघारू को देखा। बाघारू को देखकर पख नहीं समेटा, जैसे फिर से उड जाने की तैयारी में उसके पख कपकँपा रहे थे। पर वह उडा नहीं। इस ऊँचे पत्थर के किनारे पख फैलाकर दोनों पतली टाँगों के ऊपर बैठ गया। पख खुले हुए शरीर के भार से दोनों पैर कँपकँपाने लगे। पख डोलने लगे। इस कँपकँपी और दोलन को सँभालने के लिए वह घूमने लगा। एक-एक कदम, दो-दो कदम। फिर पख खुला रखे ही दो छोटी-छोटी छलांगे मार कर बाघारू की ओर घूम गया। घूमते हुए भी पखों को बद नहीं किया। खुले पखों के साथ स्थिर होकर बाघारू को देखना चाहता था। स्थिरता लाने के लिए ही वह पखों को आहिस्ता से बद करता था और अपने शरीर मे समेट लेता था। फिर लबे शरीर को हिलाकर बाघारू की तरफ़ दो कदम बढ़ जाता था। पहले पख शरीर से बिल्कुल न मिल पाया था, अबकी मिल गया। डाल पर बैठने से पूँछ नीचे झूल सकती थी, अब यहाँ पत्थर के ऊपर उसे खड़ा रखना पड़ा था।

पख को बिल्कुल समेट कर पाखी अपने शरीर की लबाई को स्पष्ट करके बाघारू के सिरहाने खड़ा हो गया था। पत्थर के ऊपर एक पत्थर की तरह सोया था बाघारू। बाघारू के माथे के ऊपर से होते हुए पाखी ने गला ऊपर को उठाया। फलतः बाघारू के माथे की रेखा पाखी के शरीर की रेखा के साथ मिल जाती थी। जैसे कि बाघारू का माथा ऊँची रेखा मे पाखी के गले की नरम ढलान बनकर चोंच तक जाकर लौट आया था। उस रेखा को तोड़कर पाखी दाहिनी ओर गर्दन हिला कर दो क़दम घूमता था। उसके बाद किनारे की ओर सरककर बाघारू के उल्टे दिशा में पहाड़ की ओर मुँह कर लेता था। पूँछ जब बाघारू के माथे पर लग जाती थी तो ऊपर उठा लेता था। छाती इस तरह से झुक जाती थी जैसे अभी उड़ने ही वाला हो, पर उड़ता नही

था। पूँछ को बाघारू के सिर के ऊपर फैलाये रहता। उडान की मुद्रा में फिर स्थिर हो जाता।

बाघारू की नींद खुल गयी। उसने आँखें खोली है। पर हिला नहीं। अब पाखी की पूँछ उसके माथे से हट कर आँखों पर पड रही थी। इसी से बाघारू समझ नहीं पाया था कि पूँछ कितनी बड़ी है, किस तरह की है, सिरा फटा हुआ है या साबुत या फिर पूँछ के आखिरी छोर पर कोई अन्य रंगीन घेरा है ? पाखी ने उसे जिस तरह मरा हुआ समझ कर उसके माथे पर पूँछ को लाद रखी थी, बाघारू उसी तरह से मरा-सा पडा रहा। वर्ना पाखी पल भर में ही उड जायेगा। और अगर बाघारू पत्थर के ऊपर पत्थर-सा पड़ा रहे, तो पाखी घूमकर कहीं ऐसी जगह खड़ा हो जायेगा जहाँ से बाघारू उसे पूरी तरह से देख पायेगा। पिछले तीन दिनों से बाघारू उसे देखने की कोशिश कर रहा था, पर देख नहीं पा रहा था—एक बार के लिए भी नहीं।

बाघारू के माथे पर पूँछ थोड़ी हिली। इधर-उधर मुड़ा। मतलब पाखी थोड़ा घूम गया था। तो पाखी थोड़ा-सा घूमकर इधर-उधर मुड़ने लगा था अब। पूछ से अभी बाघारू की दायीं आँख ढंक गयी थी। बायें हाथ से एक झटके मे बाघारू पाखी को पकड़ सकता था। पूँछ बाघारू के माथे मे अब हट चुकी थी।

बाघारू को पाखी की कोई आहट नहीं मिल पा रही थी। कोई आवाज भी कान में नहीं पड़ रही थी। मतलब वह उडा नही अभी। बाघारू अपने इस पत्थर पर पाखी के पतले नाखून की कोई आवाज नही सुन पाता। तो क्या चल नहीं रहा ?

उसके बाद ही बाघारू के मुँह पर पख का एक झपट्टा मारकर पाखी उड गया। उसके पैर की ओर से आकाश पर ब्रिज की ओर। अलबत्ता पाखी उड गया था, यह बाघारू समझ गया। दोनों आँखे खोलकर बाघारू ने देखा कि आकाश मे कोइ तारा नहीं है। वह प्रतीक्षा में था कि पाखी फिर कब उडकर आयेगा। तब तक पाखी बाये मुड़कर फिर नदी के ऊपर खाली जगह मे चला गया था। बाघारू औंधा हो गया। देखा, उसकी उल्टी दिशा में, जल के उस पार पाखी बड़े से पत्थर पर जा बैठा है।

पत्थर चिकना और बड़ा था इसलिए पाखी की छाया दिखायी पड रही थी-- जैसे पत्थर का पाखी हो। गर्दन घुमा रहा था। इसी से समझ में आ रहा था कि पत्थर नहीं, पाखी है। छाया मुर्गे जैसी तगड़ी लग रही थी और छाती चितकबरी है। माथे पर कलंगी है कि नहीं, समझ में नहीं आ रहा था। औंधा हो दोनों हाथों के ऊपर थुथना रखकर बाघारू ने देखा। बाघारू एक बार पाखी को देखना चाहता था पूरी तरह से।

पाखी उस पत्थर से उड़ कर फिर से इस पत्थर पर आ सकता है। या फिर नदी के ऊपर से होता हुआ जंगल में वापस जा सकता है। पीछे घास के जंगल में उतर सकता है। ऐसा नहीं भी हो सकता। अभी इस पाखी का खाने का कोई

मन नही है। दूसरा कुछ चाहता है।

तो फिर आवाज़ कर सकता है। फिलहाल बाघारू के सामने की छायामूर्ति से ही। तो कम-से-कम बाघारू एक बार तो समझ सकेगा कि तीन दिन से जो आवाज़ रात के आखिर में और दिन के अंत मे उसे पागल करने पर तुली है, यह पाखी वह आवाज किस तरह से निकालता है। तीन दिन तक बाघारू पाखी की आवाज के उत्तर मे खुद भी बोल उठता था। बाघारू को बोलते ही पाखी चुप हो जाता। फिर काफी देर तक चुप ही रहता। बस कुछेक पल बीत जाने पर, गुस्से से उबलते हुए तीखी आवाज मे बार-बार बोल उठता था वह पाखी। वह समझने लगा था कि एक दूसरा पखेरू भी यही कही है। बोलने भी लगा है। पर आ क्यो नही रहा ? पाखी के पूरे शरीर मे साथी के लिए पुकार मची है। जब भी वह पुकारता है, तभी उसकी पुकार के कंपन मे उसके शरीर के कंपन को समझा जा सकता है। शरीर के उस कंपन से पाखी इतना विह्वल हो जाता था कि वह बाघारू की आवाज को ही साथी की आवाज समझ बैठता था।

पर क्या सचमुच वही सोचता है ? बाघारू को अगर सचमुच ही साथी समझता तो फिर "औगीफोरी" जंगल से चला आता। बाघारू उसका साथी नही है क्या यही सोचकर पाखी बाघारू की आवाज पर चुप्पी साध लेता है, और फिर इतनी तीखी आवाज में चिल्लाने लगता है।

शाम खत्म होने न होते पाखी आकर इस खुली जगह मे उड़ने लगा था। पौ फटने के पहले पंख फड़फड़ाकर चला गया। जंगल के भीतर मे और भीतर, जहाँ हर समय अंधेरा रहता है। दोपहर की धूप ढल जाने के बाद फिर पाखी पंख फड़फड़ाते हुए यहाँ के अंधेरे मे लौट जायेगा। जंगल से नदी, पत्थरो मे, अंधेरे-उजेरे मे पाखी अपने साथी को ढूँढ रहा था। बाघारू की पुकार मे उसने अपने साथी का इशारा पाया, ढूँढता रहा।

बाघारू के गले के अंदर से एक पुकार गुर्र-गुर होकर निकली थी और अंदर ही खो गयी थी। 'पुकारेगा ?' बाघारू ने सोचा। पाखी क्या उसी को ही अपना साथी समझ बैठा है। या फिर पाखी यह सोचता है कि उसका साथी तो बुलाता है पर आता क्यो नही है ? इस बार जैसे पाखी पत्थर के ऊपर बैठकर नदी के पथरीले पाट को देखता रहा था—न जाने कितने क्षणो तक—'इस बड़े पत्थर का पूरा शरीर एक पक्षी जैसा है। उड़ जाये तो यह जगह खाली हो जायेगी।

पाखी अब सीधा बाघारू के इस पत्थर की ओर देखा। इसी से उसके चोंच, माथे, कलगी की अलग-अलग पहचान नहीं हो सकती थी। पाखी के पत्थर से बाघारू के पत्थर का माथा पूरा नहीं दिख पा रहा था। इसलिए पाखी बाघारू को देख नही पा रहा था, पर पत्थर को देख रहा था। अभी अचानक बाड़ से इस पत्थर पर आ सकता था। बाघारू चुपचाप स्थिर था, हिलता-डुलता नहीं था। थुथना के नीचे उसके

दोनो हाथ थे। कोहनी तक दोनों ओर समान भाव से मुड़े हुए थे। बाघारू ने धीरे-धीरे अपनी साँस को भी कम कर ली थी। और उसी स्थिरता के साथ प्रतीक्षा करता रहा। शरीर को कैसे तो आगे बढ़ा, गले को आगे ले जाकर, दोनों पंखों के जरिये बीच के इस फाँक को भर, पाखी उस पत्थर से इस पत्थर के माथे पर कोने से उड़कर आ बैठेगा। बाघारू उसके उड़ान को पहली बार देख सकता है। पत्थर को छोड़ते ही समझ गया कि कितना लंबा है। चोंच, आँखें देखकर समझ सकता था कि पतला या लंबा है। और अगर इस पत्थर पर बाघारू की आँखों के सामने आकर बैठे, घूम-घूमकर खड़ा हो जाये तो बाघारू पत्थर की तरह स्थिर रहकर जैसे पत्थर की आँख लिए पाखी को पूरी तरह से देखने में समर्थ होगा। उसका देखना ख़त्म होने पर अगर पाखी बाघारू की आँखो के आगे बैठे तो फिर बाघारू काफी हल्की आवाज़ में वही बोली धीरे-धीरे दुहरा देगा। वह देखना चाहता था कि उसकी आवाज को सुनकर पाखी क्या करता है, कैसे चुप रहता है, किधर ताकता है, गर्दन कैसे हिलाता है। बाघारू समझ गया, गुर्र-गुर्र करती एक पुकार उसके गले से निकल कर और ही कहीं भीतर खोती जा रही थी। दम रोककर बाघारू ने सोचा कि कहीं 'भुक्खड़' कुत्ता भौंक कर गुड़गोबर न कर बैठे ! पता नहीं कहाँ है ? अगर बाघारू के पैर की ओर नीचे के पत्थर में होगा, तो बुलायेंगे नहीं। पर अगर ऐसे किसी जगह पर हो, जहाँ से पाखी दिख जाये तो ?

पाखी अचानक उड़ा। पर सीधा आकाश में, मानो कोई उसे डोरी बाँधकर खींच रहा हो। अभी वह बाघारू के सामने ही ऊँचाई पर था। बाघारू चूँकि औंधा लेटा हुआ था, इससे देख नहीं पाया कि पाखी इधर आ रहा है या नहीं। उसके बाद ही हवा में पंख फड़फड़ाता हुआ नदी के उस ओर से होता हुआ जंगल के भीतर चला गया। बाघारू की आँखों के सामने उसका उड़ता हुआ शरीर पीछे जंगल में मिल गया था। पर बाघारू हिला नहीं। फिर लौट आयेगा—बाघारू के सोचते-न सोचते पाखी फिर से नदी की ओर होता हुआ लौट आया। अबकी बार जैसे पानी में छलांग लगा, फिर उठकर, बाघारू के बायीं ओर जंगल की ओर मुड़ गया था। गुम हो गया था। फिर अंधेरे से निकल कर बाघारू के पत्थर के ऊपर से होते हुए घूमकर उतर गया। 'माला' जंगल में पत्थर की जोड़ी तलाश रहा है ? आदमी को देख नहीं पा रहा है।

72

नदी जागी

बाघारू जैसे अब तक जाग कर भी नहीं जागा था, अब जाग रहा था। पाखी के लिए अब तक शरीर को स्थिर रखने में उसका शरीर अकड़ गया था। चित होकर,

उसने दोनो हाथ-पैर पत्थर पर उसने फैला दिये। फिर दोनों हाथों में मुट्ठी बाँध सर के पीछे ले जाकर मोड़ा, गर्दन उचकाया, और पत्थर पर से छाती उठा ली। बाघारू ने फिर से अँगड़ाई ली–करवट ले-लेकर। उस अगडाई और लोट-पोट में शरीर शिथिल हो गया था। बाघारू दायाँ पैर खींच कर ले आया। बायाँ हाथ इधर उधर झटका। बायाँ कंधा सीधा किया। पाखी जैसे बाघारू की नींद में आया था और चला गया। बाघारू ने फिर से देखा–आकाश में एक भी तारे नही थे। बाघारू ने पहली बार आवाज दी, "भुक्खड़।"

बाघारू देखे बगैर ही समझ गया कि भुक्खड़ उठकर आ गया है। उसके पैताने खड़ा हो गया है। इस सोच के बीच उसने दाये पैर की अंगुलियों पर उसके मुँह के स्पर्श का अनुभव किया। भुक्खड उसके पैर को सूंघ रहा था। पैर को फैलाकर बाघारू हवा में भुक्खड़ को ढूँढता रहा। भुक्खड समझ गया। समझ कर थोड़ा आगे हट आया। भुक्खड़ की पीठ पर बाघारू ने बायाँ पैर रख दिया था। उस भार को लिए भुक्खड कुछ समय तक खड़ा रहा, फिर बैठ गया। बाघारू के पैर के निकट गुरमुटा कर बैठ गया। बाघारू ने आकाश की ऊँचाई पर नजर गडाकर फिस्स से हँस दिया, "साला आलसी कहीं का।"

रात के अंत और भोर की शुरुआत के बीच के समय सबसे ज्यादा अँधेरा रहता है। आकाश में चाँद और तारों का प्रकाश नही रहता। भोर का प्रकाश फूटा नहीं होता है। जंगल के बड़-बड़े पेड़ों का शिखर आकाश में और झाड़-झखाड़ मिट्टी से लगा होता है। छाया की मूर्तियाँ भी साफ हो नही पाती है। एक धुँधलापन रहता है चारों ओर। "अभी तो छाया भी नही जागी।" बाघारू भुक्खड़ की पीठ पर बायें पैर को हिलाता रहा–"साला आलसी। भोंकता भी नहीं–खाली सो ना चाहता है। रे, सो जा। सो जा। सोता क्यों नहीं। साला सुनक्कड सो जा।"

बाघारू पैर खींच कर बैठ गया। दोनों हाथों को घुटनों के बीच रखकर बैठते ही देखा कि पाखी दो पंख गिरा गया है। हाथ बढ़ाकर पंख उठाने के लिए आगे को झुकते ही उसका बायाँ पैर मुड़ गया। उसने अपने दाये घुटने पर दायाँ हाथ रख बाये हाथ से पंख उठा लिया। फिर पंखो को बाये पैर पर रख लिया। याद करना, भूल जाना, मन में रखना, बिसार देना -इन सब मानसिक क्रिया-प्रक्रियाओं का तो बाघारू ज्यादा अभ्यस्त नही था। पाखी के उस प्रमाण की ओर देखकर वह सिर्फ़ इतना ही याद कर पाया था कि "कल भी दो तो छोड़ दिया था, उसके पहले दिन साँझ को भी एक पर छोड़ गया था।" बाघारू उन परो को हाथ मे लिए-लिए नदी की ओर देखता रहा। ठीक नदी की ओर नहीं, उसके गोशाल, चर जमीन की ओर या फिर गोशाल के साथ नदी की ओर। और साथ-साथ उसके कानों मे पानी के बहने की आवाज, पानी के अंदर छोटे-छोटे पत्थरो के टकराने से उत्पन्न ढुग-ढांग की आवाज सुनायी पड रही थी। और ठीक उसी समय वह आवाज आयी थी। रात

में जंगल की तरह-तरह की आवाज़ें कान में नहीं पड़ रही थी। दिन में भी नहीं। रात और दिन के बीच इस समय ही जलप्रवाह के नीचे छोटे-छोटे पत्थर कुछ क्षण तक बजते रहते हैं। यह आवाज़ कभी-कभी नींद भी खराब कर देती है। यह आवाज़ कान में पड़ते ही बाघारू समझ गया कि सुबह होने वाली है।

एक-एक आवाज़ को सुन कर बाघारू ने अबकी बार नदी से आँखे हटा ली थी। फिर अपने भैंसों की ओर ताकने लगा था। इस पत्थर का इसीलिए चुना था बाघारू ने। सबसे ऊँचा पत्थर था। तीनों तरफ बालू और पत्थर पर भैंसे बिखरी रहती हैं। नज़र उठाने भर से एकबारगी सभी दिखायी पड़ती है। बादल-बरसात न होने पर बाघारू इसी पत्थर पर आकर सोया करता था। बरसात के टुकड़े जोड़ जाड़ कर एक मचान बनाया था। और उसके ऊपर जगली पत्तों को बाँध-बांधकर ऐस झुला दिया था जैसे एक छप्पर बन गया हो। वृक्ष के घने पत्तो के बीच इस पत्ता की छतरी के नीचे हाथ-पैर समेट कर बाघारू आराम से सो भी सकता था।

भैसों की ओर देखते ही उनके पगुराने की समवेत आवाज़ उसके कानो में पड़ती थी। यह आवाज़ रात भर बढती जाती थी। पर जगल की बाकी सब आवाज जब तक थम नहीं जातीं, तब तक सुनायी नही देती। और अगर सुनाइ भी दे तो लगता था कि जंगल के बीच जैसे कहीं कोई एक गड्ढा तैयार हो रहा हो मिट्टी में। इतनी सारी भैंसों के अपने गले की घास को मुँह खोले बगैर चुभलाने की आवाज़ जंगल के साथ मिल जाती थी, ठीक झींगुरों की आवाज़ की तरह। जब तक ढोर-डागर लेकर जंगल में घूमते रहो, तब तक यह ढोर-डाँगर जगल से नहीं अलग होते, फिर जब जंगल की सीमा के बाहर इस चर में रात खत्म होती है, तब यह जगल के साथ मिल जाता है।

ढोर-डाँगर को और अच्छी तरह से देखने के लिए बाघारू उठ खड़ा हुआ। लगता था जैसे यह पत्थर और थोड़ा लंबा हो गया था। बाघारू एक छाया-मूर्ति की तरह उठ खड़ा हुआ था, उसका कारण सिर्फ़ यही था कि बाघारू को घेर कर चारों ओर आकाश और शून्यता को छोड़ और कुछ नहीं होता।

इस जंगल में सारी रात प्रकाश और छाया बदलते रहते हैं। पत्थर का, वृक्ष का और कभी-कभार मनुष्य का सिर—जो कुछ भी आकाश भेद कर ऊपर उठता था, उसका आकार बदलता रहता था। आकाश रेखा के इस तरह से लगातार बदलाव से ही सिर्फ़ समय के प्रवाह को समझा जा सकता था।

बाघारू देखता था, ढोर-डाँगर ठीक-ठाक हैं। भुक्खड़ भौंका नहीं था मतलब सब कुछ ठीक-ठाक है। भुक्खड़ सो रहा है माने सब ठीक है। बाघारू भुक्खड़ के करीब जाता। उसके नरम पेट में अपने पैर की ऊँगलियों को घुसाकर बालों को थोड़ा हिला देता प्यार से—"साला, आलसी सुतक्कड कहीं का।" भुक्खड़ ज़रा भी आवाज़ नहीं करता। बाघारू के उस पैर से लिपट कर गोल होकर वह फिर सोता रहता।

कीचड़ मे पैर पड जाने से जैसे निकाला जाता है, उसी तरह पैर को खीचते हुए बाघारू ने अनुभव किया कि भुक्खड ने पैर को पकड रखा है। छोड नही रहा। वह हँस देता। "अरे छोड, नीचे उतरूँगा।" बाघारू को पता चल जाता कि भुक्खड के पेट के नरम रोम उसके पैरो मे नरम-नरम लग रहा है। और पैरों के पास भुक्खड के नाखून लग रहे है।

बाघारू पैर को खीचकर निकालता। पर पकड हाथ को सर के ऊपर उठाता। पत्थर से कूदता और उसके नीचे पत्थर पर आ जाता। वहा घूमकर खडा हो जाता। फिर नीचे के पत्थर पर आता। आकाश पर बाघारू की छायामूर्ति धीरे धीरे जगल के अधकार मे विलीन होती जाती। अत में उसके हाथ मे पकडे हुए पाखी का पर विलीन हो जाता। बाघारू की रात खत्म हो गयी। टार अब तक जागे नही। जगल के अदर अधेरा अब सबसे घना था।

सबसे नीचे के पत्थर पर पर रखकर एक छोटी सी छलाग से बाघारू नदी पर उतर गया। अब तक पत्थर के ऊपर जिस प्रकृति के मध्य बाघारू था, वह बदल गयी। अब उसके सामने फन ही फन, नदी का कल्लोल चारो ओर फैला हुआ था।

जिस पत्थर पर से बाघारू उतरा था, उसके नीचे एक-एक करके कई बडे पत्थर थे। टीले जैसे पत्थरो के बीच एक जगह एक छोटी गुफा सी थी। बाघारू उसके अदर घुस गया। नीचे झुका। और दो पत्थरो के जोड पर हाथ के दोनो परो को रख दिया। वहा पहले के तीना पर भी थे। और बाघारू का 'परनामी पत्थर' भी वही रखा था।

अब बाघारू नदी मे उतर गया। पत्थर और बालू के ऊपर अपने ढोरो के ठीक बीच मे। भैसो के पीछे से, उनके पेट, मुँह, सीगो को छूता हुआ, उन्हे हटाता हुआ बाघारू पानी की ओर बढता गया। भैसे फो-फो साँस छोड रही थी। बाघारू को मानो बताये जा रही थी कि वे उसे पहचानती है। भैसे गर्दन घुमा रही थी, कान और पूँछ से शरीर को पट-पट पीट रहे थे। पत्थर के नीचे से जल के किनारे तक आवाज से ही भैसो को पता लग चुका था कि बाघारू जग गया है। रात के गोबर से बाघारू का पैर लथपथ हो चुका था। घास-पात खाकर बने गोबर की गध आखिरी रात की बोझिल हवा मे चारो ओर फैली हुई थी। गोबर के साथ बाघारू के पैरो मे गीले रेत भी लगे थे। कुछ गोबर भैसों के शरीर को छूने से बाघारू के हाथ मे लग गया था। डायना के जल के किनारे आकर बाघारू थोडा-सा खडा हो गया था।

पानी के रहने से वह जगह थोडी साफ-सुथरी लगती थी। पानी मे तो प्रकाश खेलेगा ही। फिर डायना का उफनता हुआ जल तो खुद ही एक तरह का प्रकाश देता है। बाघारू ने एक मन से निहारा। वह नीचे तिस्ता पार का आदमी है। ऊपर इस जैसी नदी रोज देखने का उसका अभ्यास नही है। इसी से भूल-चूक जाता है। तिस्ता तो एक जगल की तरह है, या फिर एक बडे डॉगर जैसा है, या फिर एक आकाश की तरह है। 'वह तो यहाँ रह जाती है चाहे देखो या न देखो।' वहाँ तो

अभ्यास होन जैसा कुछ नहीं - तुम्हीं तो खुद उस नदी के भीतर हो, चाहे तुम्हें पता हो या न हो। पर पानी में इतने सारे फेन उठाय हुए इस तरह शोर मचाते हुए डायना का बहते चले जाना, ऐसा लगता था कि जब हम नही देखेंगे तो यह दृश्य भी नहीं होगा। सुबह होने से पहले प्रतिदिन बाघारू को डायना को ऐसा कुछ समय देना ही पड़ता था बल्कि यूं कहे कि उसे यह अभ्यास ही कर लेना पडा था। डायना के उस भागते फेन राशि को देखकर उसे समझ लेना पड़ता था कि डायना तमाम रात ऐसे ही बहती रही है।

काफ़ी देर तक इस तरह से देखन के बाद यह कल्लोल और बहाव बाघारू को अपनी ओर खींचने लगा। बाघारू थोड़ा-सा हँसना—यह डायना भी कैसी नदी है भला कि कोई डूबना चाहे भी तो डूब नहीं सकता, पर बह रही है रात-दिन, रात-दिन।

बाघारू नदी मे उतर गया। पर पानी पेर के पड़ते ही छलक उठा। बहाव पैर से थोड़ा ऊपर उठना चाहता था। बाघारू ने पानी मे पेर डाल कर ही बहाव की तेज़ी को महसूस कर ली थी। बाघारू के पैर की रुकावट बनना स्रोत और प्रखर हो उठा था। आवाज़ भी थोड़ी बदल ली। जल के रात भर की गर्मी बाघारू के पैरों से होकर तमाम शरीर में फैल गयी थी। बाघारू ने फिर कदम रखा था। पाँव मे कंकड़, छोटे-छोटे पत्थर छिटक जाते थे। नदी के बीच एक चौड़े पत्थर पर बाघारू खड़ा हो गया था।

रोज़ इस पत्थर पर खड़ा होता था बाघारू। उसका रास्ता इस पत्थर पर से घूमता हुआ नदी के ऊपर की ओर जाता था। पहाड़ और जंगल से निकल कर ठीक जिस जगह पर डायना प्राय: समकोण बनाकर बायीं ओर घूमती है, पत्थर ठीक उसी जगह पर था। बहाव के उल्टे दिशा म खड़ा बाघारू के बायीं ओर अब वह नुकीला ऊंचा पत्थर था जिस पर वह पाखी बैठा था और दाहिनी ओर कुछ दूर पर बाघारू का पत्थर था।

पानी के भीतर का यह पत्थर ज़्यादा स्थिर नहीं था। छोटे-छोटे कंकड़-पत्थरों के ऊपर रहने से हर समय स्रोत के धक्के से हिलता रहता था। बाघारू के वज़न से भी हिलता रहता था। पर इतने सारे दिन हो गये, रोज़ बाघारू इस पत्थर के ऊपर आकर खड़ा होता था। इस बीच एक दिन एक बड़ी सी बाढ़ भी गुज़र गयी थी ठीक पहली रात को। बाघारू पत्थर के टीले पर ही था। भैंसों के घुटने-घुटने तक पानी पहुँच गया था। धारा आकर पत्थर के टीले के नीचे पछाड़ खा रही थी। पर तब भी पत्थर सुबह इसी जगह पर था। धारा के ऐसे धक्के से भी लुढ़का नहीं।

उसके दोनों विशाल पैरों से भी भारी हुए पत्थर के ऊपर बाघारू का खड़ा होना सीधा होता है। कोई हलचल नहीं। यहाँ से ही बाघारू को डायना का बहुत सारा हिस्सा देखने को मिला था। बाघारू देखता था, जो रोज़ ही देखा करता है,

पर ऐसे लगता जैसे वह पहली बार ही देख रहा हो, ऐसा ही नया था वह दृश्य उसके अनुभव में। अँधेरे आकाश में बिजली की चमक जैसा उद्भासित होकर सफ़ेद फेन की एक चलती हुई रेखा में डायना कूदती हुई उतरी थी। मिट्टी के साथ पानी की टकराहट से जो जल-कल्लोल उठ रहा था, लगता था, उसके पीछे धारा का इस तरह कोई प्रबल धक्का हो। यह समझ में आता था जलप्रपात जैसा डायना का निष्क्रमण देखकर।

पाखी इस धारा के ऊपर से होकर अपने घर जाते हैं और पुकारते हैं। पुकारेगा ? अभी ? बाघारू डायना को ही देख रहा था। डायना तो बाघारू की नदी नहीं है। पर प्रतिदिन बस एक ही समय डायना के बीच में खड़ा हो और कुछ देख-देख बाघारू जैसे कहां एक अपनेपन का बोध करता कि सामने का यह जंगल-पहाड़ और रास्ता बाघारू को जैसे आश्रय भी दे सकता है।

अपने पत्थर पर खड़े-खड़े बाघारू जल के ऊपर झुक जाता। उस उफनते फेन में अपना दायां हाथ डुबा लेता। हाथ से छिटके हुए जल की बूंदें बाघारू के आँख तथा चेहरे छाती पर पड़ती रहतीं।

73

ढोर-डांगर जागते हैं

नदी के किनारे-किनारे चलता हुआ बाघारू थोड़ा ऊपर चला आया था। फिर नदी को छोड़कर ऊपर की ओर बढ़ गया। अब उसने इस सीमा से भैंसों को एक बार देख लिया था। सिर्फ देखा ही नहीं बल्कि पूरे ढोरों को एक बार सजाने की कोशिश की। दूध देने वाली भैंसों को बाघारू को पत्थर के पश्चिम में ले जाना पड़ा, रास्ते के क़रीब। दूध गाड़ी आने के पहले। नहीं तो हंगामा हो जाएगा। भैंसों को भी इस बारे में बहुत कुछ पता है। वे यहाँ बाघारू से भी पुरानी थीं। बाघारू को ही यहाँ आकर नयी-नयी जानकारी हासिल करनी पड़ी थी। यह एक-दो धक्के खाने पर ही भैंसों की समझ में आ जाता था कि कहाँ जाकर खड़ा होना है।

सारे दिन जंगल में चरने के बाद दोपहर को ढोर जब वापस आते हैं तब जिसका जहाँ मन होता है खड़ा रहता है या बैठता है। सुबह उन्हें कतार में खड़ा करने का काम शुरू होता है। एक बार पंप लगाने का काम प्रारंभ हो जाने पर फिर खोजबीन नहीं किया जाता कि कौन है, कौन नहीं है। यह जगह अधिक चौड़ी नहीं है इसी से भैंसों को एक-दूसरे से सटकर रहना पड़ता है एक ही जगह, बाघारू के पत्थर के तीनों ओर। यहाँ जंगल नहीं है। सिर्फ बालू और पत्थर है। फिर रास्ते की ओर थोड़ी-बहुत घास। भैंसें ज़्यादा दूर जा नहीं पाती।

इसी कारण शरीर से शरीर सटाकर इस तरह से ये रहते है कि भीतर से गुजरने

का रास्ता ही नहीं मिलता कोई। फिर भैंसो के बैठने की एक अजीब आदत होती है कि दो भैसें दोनों ओर मुँह किये एक-दूसरे से सटकर इस तरह आराम से बैठती हैं कि लगता है जैसे उनका शरीर एक ही है। सिर्फ़ उल्टी दिशा में मुँह करके बैठने से ऐसा होता है, यह बात नहीं। एक ओर मुँह करके भी एक-दूसरे पर लदकर ऐसे बैठती हैं कि शरीर और गले को इस अंदाज से रखती हैं कि उनका शरीर आपस में सटे रहते हैं।

सारी रात भैंसे अपनी-अपनी मुद्रा में प्रायः स्थिर रहती हैं, इसी से बाघारू इस गोशाले की भैसों की मूर्तियों को देख पाता था, जैसे ये भैंस नही पत्थर हों। या फिर सुबह का प्रकाश फूटा नहीं था इसी से भैंसो का सिर्फ साया ही था, नजर आता रहता था। पूरा शरीर नहीं, शरीर का आभास भर ही होता रहता था। इसी से उनके पूरे शरीर की बाह्यरेखा प्रखर नजर आती है।

ढोर के पिछले भाग में पहुँचने के लिए बाघारू को पानी का किनारा छोड़कर, धीरे-धीरे ऊपर उठना पड़ता था। भैसों को एक साथ देखने के लिए यह एक उबड़-खाबड़ पत्थर की नाव थी। फिर कहीं-कहीं दो-एक भैसों की सींग भी उग आयी थी। बीच में एक भैंस ऐसे खड़ी थी, जैसे गले के आकाश की ओर काफी ऊँचा उठाकर किसी ऊँचे पेड़ की डाल पर मुँह मारना चाहती हो। दोनों सींग पीछे की ओर होकर शरीर के साथ जैसे मिल गयी हो, सिर्फ उसका खुला मुँह ही नजर आ रहा था। ऐसा लगता था जैसे पीठ ही बढ़कर एक बड़ा-सा खुला मुँह बन गयी है। बाघारू ने पहचान लिया—यह बुढियाली है। "शाली बूढ़ी हो रही है, नींद कम हो गयी है।" बाघारू ने चलते-चलते जीभ से चटखारते हुए एक आवाज निकली—"टर्, टर्, टर्, टर् ।"

चलते-चलते चटकारते हुए देखता रहा, इसी से बाघारू समझ नहीं पाया कि उसकी आवाज़ पर बुढ़ियाली ध्यान देती है या नहीं। अब वह करीब पहुँच कर बुढ़ियाली के लंबे गले और मुँह का एक और चेहरा देख पाया। बाघारू ने जैसे बुढियाली को थोड़ा-सा परेशान करने के लिए ही फिर से आवाज़ की, "टट् टर्र-र्र, टट्, ट-र, र ट् र र।" फिर कूद कर एक भैंस की पीठ पर टपक पड़ा और फिर एक-दूसरी भैंस की पीठ पर हाथ का भार देकर उचक कर ढोर की आख़िरी भैंस के निकट जा पहुँचा था। अब बाघारू सबको जगायेगा। पर उसके पहले ही बुढ़ियाली अपनी गर्दन और बढ़ाने लगी थी—जैसे कि डाल उसके मुँह की पहुँच में आ नहीं रही थीं। और उसके बाद ही "आँ, आँ, आँग्" करते हुए अपनी पुरानी घिसीपिटी आवाज़ में एक हुंकार भरी। बाघारू के हाँकने की आवाज़ सुनकर उसे ढूँढ़ रही थी। न पाकर बुला रही थी।

बुढ़ियाल की हुंकार सुनकर इन पत्थर जैसी भैंसों के सिर थोड़ा-थोड़ा मुड़ गये थे, वे खड़ी थीं। और तभी बाघारू पुचकारने लगा—"ए, उठ, उठ। उठ। चल।" बाघारू

ने आख़िरी भैंस की पिछाड़ी में घुटने से एक ठोकर मारी, "ऐ, उठ उठ, उठ चल।" फिर भैंस की गर्दन और पीठ पर जोर से चपत जमा दी, "ऐ, उठ, उठ। बुढ़ियाली वहीं बीच मे खड़ी-खड़ी गर्दन घुमाकर बाघारू की तरफ देख रही थी। गला उसका वैसे ही आगे की ओर बढ़ा हुआ था। बुढ़ियाली बाघारू की आवाज़ सुनकर फिर एक हाँक लगायी, "ऑ ऑ ऑ ग।" अबकी बार आवाज़ उतनी लंबी न थी। बुढ़ियाली जान गयी थी कि बाघारू कहाँ है। बाघारू चिल्लाया, "अरे रह, आ रा हूँ, ठहर।" फिर वह बैठी हुई भैंस को पीछे से कोचा–"उठ, उठ चल, अरे, उठ रे उठ। टर्-र-र-अ टर-र-र-अ।" अब भैस ने पीछे के दोनो पैर हिलाना शुरू कर दिया। बाघारू ने उसके कान के पीछे जोर-जोर से दो चपत जड़ दिया था। भैस ने पीछे के दोनों पैरो को सीधा कर लिया और कान फटफटाने लगी बाघारू के हाथ पर। वह समझ लेना चाहती थी कि वह बाघारू ही है या कोई और। फिर वह उसकी आवाज का जवाब भी देना चाहती थी। फिर पीछे पर पूँछ फटकारती रही। भैंस की पिछाड़ी ऊँची हुआ करती है। पिछली टाँगें आधा-आधी उठते ही सामने के दोनों पैर झट से उठाकर भैस खड़ी हो जाती है। भैस के मिट्टी से थोड़ा उठते ही नीचे से पेशाब और गोबर की गंध आने लगी। भाप की तरह। फिर शरीर से बालू और कंकड़-पत्थर झरने लगे थे।

अब भैस बाघारू की ओर मुँह फिरा कर देख रही थी। बाघारू उसका गला पकड़ कर घुमाने लगा था सहलाते हुए। थोड़ा-सा घुमाते ही भैस खुद घूमना शुरू कर दी थी। इस भैस से सट कर जो भैस थी, वह भी इस बीच गर्दन सीधी करने लगी थी। बाघारू पहले वाली भैस के गले से नीचे से निकल कर इस भैस के गले के पास पहुच गया और घुटने से कोच कर बोला, "उठ, उठ" और उसके बाद वाली भैंस की पीठ पर एक चपत मारा। फौरन दोनो भैसे उठ गयीं। अब ये भैंसे चलते-चलते दूसरी भैंसो को भी उठा देंगी।

इस बीच बाद की दो भैंसें उठ खड़ी हुई थीं। पहले वाली बुढ़ियाली के पीछे-पीछे ये दोनों भी चलने लगी थीं। बाघारू इनके दाये-बायें पूँछ मोड़ता हुआ, घुटने से टहोकता, हाँकता, चटखारता हुआ एक की पीठ पर चाँटा मार कर चलने लगा था। एक भैंस जब उठेगी तो अब पूरा-का-पूरा ढोर उठकर खड़ा हो जायेगा। और पीछे से भैंस ने जब चलना शुरू किया है तो उसके धक्के से सामने की भैंसें भी चलना शुरू कर देंगी। पर इससे पहले बाघारू सामने जाकर खड़ा हो जायेगा। फिर दूधवालियों को पहले जाने देगा–कतार बाँध कर।

बढ़ते-बढ़ते बाघारू बुढ़ियाली के पास जा पहुँचा। सामने खड़े होकर उसकी दोनों सींगों के बीच खुजलाने लगा। यहाँ तक कि बाघारू का इतना बड़ा पंजा भी भैंस के माथे पर कैसा तो छोटा नजर आता था। बाघारू का स्पर्श पाकर भैंसें अपना गला आगे बढ़ा देती थीं। बाघारू के कंधे पर गला रख देती थी। बाघारू अपने माथे

के पास उसका माथा लाकर दोनो हाथों से उसके गले को लिपटा लेता और धीरे-धीरे कान के पास थुबना के नीचे दोनों हाथ ले जाकर सहलाने लगता। बुढियाल के गले से निकलते हुए "घुर्र-घुर्र" शब्द को सुन पाता था, बाघारू, "अरी खडी क्यो है, ओए, सुबह हो गया है उठ चल।" बाघारू उसके कान के पीछे हाथ ले जाकर मोडता था।

पीछे वाली भैसे बुढ़ियाल और बाघारू को बीच मे छोड दोनो ओर से आगे बढने लगी थीं। बुढ़ियाली के गले मे सहलाते-गुदगुदाते हुए बाघारू देखता जा रहा था कि वह गाभिन भैंस भी डोलती-डोलती चल रही थी--'आज होगा या कल होगा' जैसे समय आ गया है उसका। अब तक उसके प्राय तमाम ढोर जग उठे थे। पूरे के पूरे ढोर चलना शुरू कर देगे। बुढियाली नहीं जायगी। यहीं खड़ी रहेगी। बाघारू को अब सामने जाकर खड़ा होना पड़ा था। बाघारू ने बुढियाली को दो चाटा लगाए--"अरे ठहर जा, कहाँ आ रही है " कहता हुआ धीरे से चलते हुए भैसो के पीछे से फौरन आगे की ओर बढ़ने लगा।

पर आगे बढते हुए बाघारू एक-एक भैस के गले से धकियाते हुए पीछे से कई भैसो के लिए जगह बनाता जा रहा था। वह फाक के अंदर घुसते ही पहली भैंस को छोड देना। अभी दूधिया की ही आवश्यकता थी। बाकी के सब यहा रहेंगी। बीच में एक बछडा जैसे बडी-बडी भैसों के बीच रास्ता भटक गया था। बाघारू ने उसकी पूँछ पकड़ कर इस तरह से मरोड़ा कि पीठ के दोनो टाँग उठा कर एक ही छलाग मे वह दौडना शुरू कर दी और आगे वाली भैसो की कतार जैसे बिखर सी जाती। बाघारू ताली बजाता हुआ हँस पडता -"चल फिर, रर र र ।

74

दूध-ट्रक का इंतज़ार

बाघारू अब डायना ब्रिज के ऊपर रेलिंग से टेक लगाये खड़ा था। दो भैसे भी ब्रिज के ऊपर चढ़ आई थीं। ठीक ब्रिज के बीच मे सींग उठाकर बाघारू की तरह पूरब की ओर ताक रही थीं। उधर बिन्नागुडी थी। इधर से ही दूधवाली गाड़ी आयेगी। आने का समय भी प्रायः हो चला था। समय मे कभी कोइ अधिक हेर फेर नहीं होता।

अभी गाड़ी के लिए प्रतीक्षा करने के अलावा बाघारू का कोई काम नहीं था। तो फिर बाघारू गाना गा सकता था। बाघारू का गीत भी पूर्व निर्धारित था। सूर्योदय और सूर्यास्त की तरह व्यस्तताविहीन नियम मे बँधा उसके काम के बीच यह गाना एक योगसूत्र के तौर पर हमेशा तैयार रहता था। एक काम से दूसरे काम के बीच बाघारू का यह समय कभी भी ऐसा न होता कि गीत से जोड़ा नही जा सके। काम-काम से अविच्छिन्नता की उन गीतों में इतनी कशिश कहाँ से आ जाती थी ?

"बाथान-बाथान कॉरसन मईपाल र ग ग
(अ तोर) बाथान कॅरीलेन घर
बाथान हइलेन आऊला-झाऊला र ग ग
(अ तोर) बाथान भरा गोबर
अ मोर मइषाल बध् र-ग-ग

बाघारू सुर चढाकर गा रहा था। बाघारू खुद ही भैंसों का चरवाहा, खुद ही उसकी विरहन नायिका का गीत गाता था–डायना के पुल पर दूधगाडी की प्रतीक्षा करते हुए थोडा बहुत समय सुबह मिलता था उसे वह गीत में गुजार देता था। चलना या बातचीत करना सीखने की तरह ये सब गीत गाने का समय वह जान गया था—खास इस समय में गाने के लिए। भैंस वाली का यह विरह बाघारू की ही थी, बाघारू ही भैंस वाला है। उसका विरह, भैंस वाला चरवाहा बाघारू के लिए ही था। पर बाघारू का जाना हुआ है, भैंस भी बाघारू की जानी हुई है और भैंसवाला तो खुद बाघारू ही है। इतनी सारी जानकारी के होते हुए और भैंस वाली होने की गैर जानकारी को पार करने में कितना समय लगता है। बाघारू तब ने चलना हुआ दो तारा की झोंक में गाये जा रहा था–

गोशाल में बारह सौ भैंस है
और मेरा चरवाहा अकेला घूम रहा है
मानो मेरी इस जवानी को
कपड़े में बांध कर रखा है
ओ मेरे भैंसवाल साथी र ग-ग।'
बाघारू खुद ही अपना विरहणी है।

बाघारू के गीत का जवाब देते हुए नीचे से मैं भुक्खड जोर जोर से भौंकने लगता था। बाघारू गीत बंद करके हँस देता– 'साला।' बाघारू के चुप होते ही भुक्खड और जोर से भौंकता हुआ नीचे से ऊपर की ओर भागता हुआ आता था। आकर ब्रिज के बीच में खड़ा हो जाता और ट्रक के रास्ते की ओर देखता।

भुक्खड के खडे होने के ढंग से ही संदेह हुआ था। बाघारू ने रुक कर कान खड़ा कर लिया था बहुत दूर से ट्रक की घरघराहट सुनायी दे रही थी। पहले-पहल बाघारू का पता नहीं चलता था। पर अब तो इस जगल की आवाजों को वह खूब पहचान गया है। कौन सी आवाज जगल के भीतर की और कौन-सी जगल के बाहर की आवाज है वह सब अब उसका पहचाना हु है। इसीसे सुनते ही उसे मालूम हो गया था। उसके बायी ओर हृदयपुर बस्ती थी। और ऊपर के जगल के उस पार से ट्रक आने की आवाज सुनायी दे रही थी। बस कुछ ही देर बाद आ धमकेगा। आवाज को बाघारू जितना पहचानता था, भुक्खड भी उससे कम नही पहचानता था। बल्कि थोडा अधिक ही पहचानता था। इसी से तो सबसे पहले सुनते ही भुक्खड

पुल पर खडा हो गया था। पर शायद यह आवाज भैसो की भी जानी पहचानी थी। सामने वाली दोनो भैसे सिर को न जाने कैसे तो हवा मे उठाये हुए थी माना गध सूँघ रही हो। उनका थुबना सिर के उठाने से तना हुआ था।

बाघारू तब भी खडा नही हुआ। अभी देर है ट्रक के आने मे। ट्रक यहाँ से कई मील दूर इस रास्ते पर आकर इधर मुडगा। पर कुछ पहले ही आवाज सुनाई पडी क्योंकि उधर के रास्ते के एक कोने मे यह हृदयपुर के गाँव, एक छोटी-सी बस्ती और इधर का पतला जंगल पडता था, जिसे पार करने मे आवाज का कोइ असावधा नही होनी। इसी से आवाज सीधी चली आती थी। पर उसके बाद ही आवाज बद हो गयी थी। आवाज फिर से सुनायी देगी- ट्रक जब इस रास्ते पर बढने लगगा तब। और आवाज क्रमश बढती ही चली जायेगी। चारो ओर से प्रतिध्वनि भी गूजेगी। बाघारू जिस भूगोल को अब तक नही देख पाया था, आवाज सुनकर ही उसे जान गया था।

उस आवाज के पीछे-पीछे ट्रक चली आती थी और आकर इस ब्रिज के ऊपर पहुंच जाती थी। ट्रक का रुकना, खडा होना आदि भुक्खड और भसो का इतना जाना-पहचाना था कि ट्रक को इतनी तेजी से आता देखकर भी वे ब्रिज से नीचे नहीं हटते। थोडा सा रास्ते से सरक भर जाते थे।

भुक्खड काफी पहले से ही ट्रक की ओर देखकर भोक रहा था। ट्रक जितना क़रीब आता जाता वह उतनी ही जोर से भौकता जाता। आखिरकार ट्रक जब रुका तो भुक्खड भोक-भोक कर ट्रक पर जसे झपट ही पडा। ड्राइवर और दूधवाला सामने से एक आदमी और पीछे से एक आदमी उतर जाने से भुक्खड का भोकना बद गया। फिर पुल के रेलिग के पास जाकर अचानक भौकने लगा था।

दोनो भैसे सामने खडी होकर माथा हिला रही थी। ट्रक रुक जाने पर वे दोना एक साथ ब्रिज के नीचे चली जाती थी। फिर ढलान की ओर चली जाती थी जहा दूधवाली भैसों को बाघारू छोड आया था।

ट्रक के आकर रुकते ही पाइप लेकर एक आदमी आगे की ओर बढ जाता। अब तो बाघारू भी सीख गया था। दूधवाले आदमी के उसे पाइप पकड़ा देने पर भी वह जस-का-तस खडा रहता था।

"लो पट्रोल चलाओ।" वह आदमी हँस कर बोला।

बाघारू ने बिना हिले-डुले ही हँसकर जवाब दिया—"पहिले हमरा पेट्रल दो, फिर चलाऊगा।"

"ओह, क्यों नहीं, जरूर जरूर।" उस आदमी ने पैंट की पॉकेट से सिगरेट का पैकेट निकाला और उसे सिगरेट देते हुए बोला, "अच्छा तुमको हम एक पूरा पैकेट सिगरेट दे जायेगा, फिर तो तुम्हें रोज पट्रोल नहीं लगेगा न ?"

"पाकीट ? काहे का पाकीट ?"

"यही। तुम्हारे पेट्रोल का, और क्या ?"

ड्राइवर दरवाजा खोलकर बाहर निकल आया था "जाओ बाबा, जल्दी-जल्दी करो न ? यह पूरा ट्रिप करने मे ही तो दस बज जायगा।" ड्राइवर रेलिंग के ऊपर से झुककर नीचे डायना को देखने लगा था।

"हमका पाकीट देईबे ? पूरा एक टो ? सिगरीट का ?"

"हाँ, पूरा पेट्रोल।" बाघारू ने एक सिगरेट निकाल कर पैकेट रोकने की कोशिश की। पर हाथ की मुट्ठी मे सिगरेट दबाकर बाघारू ड्राइवर के हाथ से इस कागज के पैकेट को भला रोक सकेगा कैसे ? फलत उसका जैसे एक दुविधा हो गयी थी। बाये हाथ मे सिगरेट और दाये हाथ मे सिगरेट का पैकेट। उस आदमी के आगे बढकर दियासलाई देने पर बाघारू को एक समाधान मिल गया—पैकेट को खुले हालत मे उसे वापस करने के लिए। पर यहाँ भी वह समझ नही पाया दियासलाई से एक तीली निकाल कर खुद जलाने लगा। वह इस तरह से जलायेगा इसके लिए भी बाघारू कतई तैयार नही था। फलत वह अपने सिगरेट को इतनी जल्दी मुँह मे लगा नही पाया। तीली बुझ जाने पर आदमी ने और एक तीली जलाई। तब कही बाघारू मुँह मे सिगरेट लगा पाया। दियासलाई की लौ पर झुकते-झुकते बाघारू समझ गया कि हवा मे तीली फिर से बुझने वाली है। तभी वह एक साथ एक जटिल प्रक्रिया से समाधान किया। पीठ को हवा की तरफ करके हवा को रोक लिया और हाथ बढाकर पैकेट को लौटा दिया तथा लौ के ऊपर झुक कर सिगरेट सुलगाने लगा।

सिगरेट सुलगाने के लिए बाघारू जो जोरदार कश ली, तो ऐसा लगा कि इससे पूरा का पूरा सिगरेट ही खत्म हो जायगा। सिगरेट सुलग जाने बाद और तीली बुझ जाने के बाद भी उसका कश चलना रहा। और फिर साँस बद करके धुआँ भीतर ही भीतर निगल कर जब छोडा, तब लगा जैसे उसके मुँह मे एक छोटी-सी कागडी तोरसी है। धुआ निकलना खत्म होने के पहले उसने दूसरा कश लिया। ड्राइवर हँसकर बोला, "तेरा यह कश देखकर तो अपना दम ही रुक जायेगा बाबा।"

बाघारू की आख तबतक सिगरेट के नशे मे बद हो चुकी थी।

75
कुछ शहरी प्रवृतियाँ

ट्रक के पीछे क्लीनर तब भुक्खड के साथ खेलने लगा था। भुक्खड की नाक के आगे कोई एक चीज हिला-हिलाकर उसे ललचा रहा था। और भुक्खड के उसे पकड़ने जाते ही हटा ले रहा था उसकी पीठ की ओर। भुक्खड उसे खाने के लिए मुंह पीठ की ओर मोड़ने की कोशिश मे गोल होकर झपट रहा था और झपटते-झपटते गोल होकर मिट्टी पर सो जा रहा था। भुक्खड जब गिर जाता तो क्लीनर छोकरा ठठाकर

हँस पड़ता। उसकी हंसी से उस लाल-लाल चीज का डोलना बंद हो जाता। तब भुक्खड़ खेलना छोड़कर सीधा होकर मिट्टी पर बैठ जाता था। क्लीनर ड्राइवर से बोला, "साला अच्छी क्वालिटी का चीज है दादा। पता नहीं कहाँ से ले आता है यह सब ? बोलूँगा एक ठो पकड़ कर रखेगा हमारे लिए भी ?"

"अरे जंगल से ही लेना है तो एकाध बाघ लाय ले। जंगल से कोई कुत्ता लेता है बुद्धू ?" ड्राइवर नदी की ओर देखते-देखते बोला।

"मेरे को दादा खूब शौक है एक एलसेशियन पालने का। मालबाजार के बकुलदा ने कहा है एक ठो देगा।"

"कहाँ से लाकर देगा ?"

"पता नहीं। बकुलदा तीव्र आदमी है। वह किसी बागान से जुगाड़ कर देगा।"

"बस, यही आशा लेकर रह। बेटा, एलसेशियन के एक बच्चा का दाम कितना होता है पता है ?"

"तेरे से भी ज्यादा।"

"ज्यादा ता ज्यादा।"

"उस तरह का चीज मिले ता बकुल मित्तिर तुझे भला क्या देगा ?"

"आधी रात को जा गाड़ी लेकर बागान जाना होता है, तब तुम जाओगे"

"मैं भला क्यों जाऊँ ? मुझे नहीं चाहिये एलसेशियन। मुझे जरूरत भी नहीं है जाने की। क्यों रे तू भी यह सब शुरू कर दिया है क्या ?"

"क्या ?"

"बकुल मित्तिर के साथ गाड़ी लेकर जाना है ? रात में गाड़ी का काम कहा है ?"

"गाड़ी ता बकुलदा का खुद का ही है। इतने रात गये चलाने को आदमी नहीं मिलता उनको। मैं एकबार ही गया था।"

"तुझे तो गाड़ी चलाने का लाइसेंस भी नहीं मिला अब तक। फिर गाड़ी लेकर रात में ? अरे, मत जाया कर।"

"बकुल दा ने कहा है मुझे एक एलसेशियन का बच्चा देगा।"

"जेल में बैठे बैठे एलसेशियन पालेगा ?"

"क्यों ?"

"बकुल मित्तिर रात में गाड़ी लेकर मर्डर केस तक करता है, पता है ?"

"कौन बोलता है ?"

"उससे तुझे क्या ? इस तरह रात-बिरात मत जाया कर।"

छोकरा थोड़ा चुप हो गया। एक कुत्ते की बात को लेकर वह यहाँ तक आ पहुँचेगा—वह सोच भी न पाया था। इसी से उसे चुप कर जाना पड़ा। एलसेशियन कुत्ता न पाने का दुःख और बकुल मित्तिर के साथ गाड़ी चलाने का खतरा—इन दोनों

में से किसको लेकर वह अधिक चिंतित हैं, यह समझ में नहीं आ रहा था। इस ख्याल से शायद दूर हट जाने के लिए ही उसने ब्रिज के छोर की ओर चलना प्रारंभ कर दिया था। पर कई क़दम चलने के बाद ही फिर वापस आ गया था। छोकरे के साथ बात करते-करते ड्राइवर रेलिंग की ओर पीठ किये सटकर खड़ा था। छोकरा उसके क़रीब जाकर बोला, 'बकुल दा तो मेरा डेरा पहचान गया है।"

"क्यों क्या हुआ ?"

"अगर बाद में कभी आये ?"

"बोल देना, नहीं जा सकता।"

"वाह, और पहले जो गया था।"

"बोल देना, हमारा लाइसेंस नहीं है, रोज-रोज नहीं जा सकता।"

"मारेगा तो ?"

"खा लेना।"

बकुल दा उसे एलसेशियन देगा, इसी से वह उस आधी रात को पकड़ कर मारेगा, और वह मार खायेगा- इस सत्य को स्वीकार करने के बीच अपने को और अपने चारों ओर उसे देखना पड़ा। पर कुछ ही समय के अंदर। और इस छोकरे के लिए वह इतना कष्टप्रद था कि वह उसे सहज ही लिया। बकुल दा उसे मारेगा ही, एक कराग झापड़, यह उसे भी पता था। और इसीलिए इस पल से ही वह झापड़ खाना शुरू कर दिया था। पीठ से ड्राइवर ने फिर से पुकारा–

"अरे ओ।"

छोकरे ने मुड़कर देखा और खड़ा हो गया।

"सुन।'

छोकरे को फिर वापस आना पड़ा। ड्राइवर रेलिंग से हटकर सीधा खड़ा हो गया और बोला–"सुन, बकुल बाबू इसके बाद कभी आयें तो कहना कि थाना बाबू ने तुझे काफी पीटा है--बगैर लाइसेंस के गाड़ी चलाने के लिए। और पूछता रहा है कि बकुल बाबू की गाड़ी चलाता है कि नहीं। सिर्फ इतना ही कहना। तो फिर देखना वह तुझे फिर कभी लेकर जायगा नहीं।"

"दारोगा का बात कहूँगा।"

"हाँ, यही कहना, दारोगा, तुझे बकुल बाबू का बात पूछ रहा था।"

अबकी बार छोकरा दूध दुहने के जगह की ओर बढ़ गया। उसके हाथ में लाल रूमाल तो था ही। उसने एक बार उसे ल. [illegible] दिया। देखते ही उछलते हुए भुक्खड़ उसके सामने चला आया। पर वह फिर भुक्खड़ के साथ नहीं खेला।

76
दूध दोहन

पहले दिन पाइप से दूध दूहना सीखने के लिए बाघारू को तीन-चार भैंसों की आवश्यकता पड़ी थी। बाद में कहीं जाकर समझ मे आया कि सीखने की कोशिश में ही वह हंगामा कर बैठा था। दरअसल, सीखने को कुछ भी नही था, ऐसी मशीन है कि लगा भर देने से ही काम बन जाता है। हाथ जैसे आकार का एक रबर का पत्ता। उसमें हाथ के पांचों ऊँगलियों के बदले थोड़ा-थोड़ा छोडकर चार उँगलियाँ। उँगलियों का सिरा खुला हुआ। भैंसों के थनों में थोडा-सा फाक छोड़कर घुमा देना पडता बैलून की तरह। उसके बाद, इस ट्रक से पप करना शुरू कर दिया जाता और दूधवाला आदमी ड्रम भरता जाता। पाइप काँच जैसे साफ प्लास्टिक का बना हुआ था। बाहर से ही साफ नजर आता कि दूध का पाइप भरता जा रहा है। जैसे दू᳚ कोई तरल चीज़ नहीं है। वह नीचे भी बहता नहीं है। जैसे दूध कोई ठोस चीज हो। और थन से ड्रम तक फैला है पाइप के भीतर। यह जो ट्रक के ऊपर मे पंपिग होती है, इससे थन पर लगे बेलून जैसी चीज़ थन पर कसके दबाव डालती, फिर छोड़ देती, ठीक हाथ से दूध दूहने की तरह।

पहले-पहल बाघारू एक भैंस के थन में पाइप लगाकर फिर उसके बाद वाली भैस के थन को थोडा-सा खींचतान करता था दूध ले आने के लिए। प᳚ अब वैसा नही करना। दूध बछडो के चूसने से ही आ जाता है।

गोठ में बछड़े नही रहते। क्योकि बथान में ही बछडा का काम रहता है। पर बछडों को न देखने से, और बीच-बीच मे बछडो के मुँह न मारने से, और बछडो की पीठ न चाटने से भैसों का दूध आना बद जो जाता था। यह काम सिर्फ एक बछड़ा भी कर देता। पर एक ही बछडा अगर इतनी सारी भैसो का थन चूसे तो हालत खराब हो जायेगी और इतनी सारी भैसे अगर एक ही बछड़े को चाटे तो उसकी खाल ही उधड जायेगी। इसी से गोठ के साथ चार बछड़े रखे जाते थे।

ब्रिज के छोर पर बाघारू रास्ते के ऊपर ही बैठा था। इससे काम में थाडी दिक्कत होती थी। इधर एक चढाई से होकर भैसो को ऊपर आना होता था। बहुत-सी भैंसे चढ़ाई चढना पसद नहीं करतीं। नीचे ही खड़ी रहती थी। फिर कोई-कोई भैंस घूमकर पीछे चली जाती। इधर अगर कोई रहता तो इधर बैठकर काम करने मे सुविधा होती। वह नीचे से भैंसों को ऊपर भेज देता और यहाँ उन्हें दूह कर बाघारू नीचे भेज देता। भुक्खड़ के जरिये यह काम बाघारू थोड़ा-बहुत करा लेता। भैंसें तो भुक्खड़ की बात सुनती थीं। पर अगर कोई गड़बड़ कर बैठता तो भुक्खड़ और भैसों के बीच एक हंगामा खड़ा हो जाता। इसी से भुक्खड का बाघारू यहाँ आते समय बहुत कम ही बुलाता। इस बड़े रास्ते के ऊपर बैठकर बाघारू को जो दो-चार भैंसें मिल

जातीं, उन्हें दूह लेता। उसके बाद एक बार उठकर बाक़ी सबको बुलाकर ले आता। उस समय अगर किसी भैंस को ढूँढ़ना पड़ जाये तो बड़ी मुश्किल हो जाती। इस जगह यहाँ एक सहूलियत थी कि भैंसों के इधर-उधर अलग होने का चांस कम ही होता।

दिन भर में सिर्फ़ इस दूध दूहने के समय में ही तो पूरे गोठ को एक ही काम शुरू और ख़त्म करना पड़ता। इसी स इस समय गोठ के अंदर ऐसा एक भाव होता था जो दिनभर और किसी समय नहीं होता। इस समय दूध देने वाली भैंसें सबसे आगे रहतीं। उन्हें पता होता था कि एक के बाद एक जाकर दूध देकर आना है। गोठ के बछड़ों की भूख कम ही होती है। यो फिर दूध की भूख कोई ज़्यादा बाक़ी न रहते, इतने सारे थन जो हैं। हर एक थन को एक बार करके चूसने से भी चार बछड़ों का पेट ढोल बन जाता। फलतः भैंसों के थन फूलकर शायद दर्द करने लगते। पंप करके जो दूध निकाला जाता उससे निश्चय ही शरीर को आराम मिलता। इसी स भंसें जिस समय समझ जाती थीं कि अब दूही जायेंगी तब वे पास में ही चली आया करती थीं। जैसे चाहतीं कि उनका दूहना सबसे पहले हो जाये तो अच्छा है।

फिर बछड़े भी तो भूख के मारे नहीं चूसते। थन चूसने का नशा तो दो-चार थन चूसते ही मिट जाता। फिर ये चारों बछड़े मिल कर पूरी लाइन में हंगामा मचाते। दुधियारी भैस के पीछे से मुँह घुसाते, किसी के तलपट में ढूँस मारते। ऐसा ऊधम मचाने लगते। उन्हें रोकने वाला कोई नहीं होता। फिर सब अपने आप में मस्त हो जाते। कुछ और करने लगते। फिर शरीर झाड़ कर सरपट दौड़-कूद करने लगते।

बछड़े और दुधियारी भैंसों को छोड़कर इस समय भैंसों का कोई काम न होता। इसी से कोई-कोई खासकर बुढ़ियाली, बेल ओर एक दो बूढ़ी भैंसें नीचे ही रहती थीं। पर कुछ जवान भेंस-भैंसे इस रास्ते के ऊपर चले आते थे और कुछ आस-पास बिखर जाते थे। पिच रास्ते पर चलने से भैंसों के पैरो में तकलीफ होती। इसी से भैंसें रास्ते के ऊपर ही खड़ी रहती थीं। पर चलना हो तो किनारे-किनारे ही चलती थीं।

बाघारू का माथा अब भैंस के पेट के नीचे था। और यहाँ बैठे-बैठे वह पेट के नीचे से बहुत कुछ देख पाता था। पेशाब और गोबर की बदबू नाक में अधिक आती थी। बाघारू इन गंधों को अलग करके पहचान लेता था। पर अब, पहले बाघारू उसी गंध के बीच एक थन में पाइप लगाकर दूसरे थन की ओर हाथ बढ़ाता। हाथ लगाकर ही वह समझ जाता था कि बछड़े का मुँह अभी तक लगा है या नहीं। सख़्त है या नर्म, सूखा है या गीला। बाघारू जीभ के चटखारे से दूसरी तरह की आवाज़ें करता था। और दो-एक बछड़े चले आते थे। बछड़े की गर्दन पकड़ का बाघारू थनों में घुसेड़ देता। बछड़ा थन से मुँह हटाने की कोशिश करता था तो उसका कान पकड़ कर सीधा कर देता। फिर एक हाथ से थन और एक हाथ से बछड़े का माथा पकड़

कर पास खींच लाता। जिसके थन के लिए इतना सारा झमेला वही दुधियारी जीभ निकाल कर बछड़े का शरीर चाटना चाहती थी, पर चाट नहीं पाती। दाये से बायें कंधा घुमाती थी। थन खिंच जाता था। तृप्ति दिखाने के लिए और कोई उपाय न पाकर दुधियारी जोर से रंभाती आं ऑं आँ काफ़ी लंबा खीचती। वह रँभाना, मानो उसके थन के उस पीने वाले के लिए है वहीं उसका स्तन भरा हुआ हो। दुधियारी के पीछे के दोनो पैर कुछ फैले हुए थे—जिससे कि अच्छी तरह से खिच पाये। इस बीच पहले के भैस का दूहना ख़त्म हो जाने पर बाघारू बाये हाथ से पाइप को खोलता दायें हाथ से बछडे को थन से हटाकर पाइप लगा देता। अनिच्छा मे ही भले क्यो न हो थन से एक बार मुँह लगाते ही बछडा जैसे कि मुँह हटाना नहीं चाहता। बाघारू एक धक्के से उसे हटाना और पाइप लगा देना। दूधियारी पीछे के पैरों को फैलाये रखती। और पाइप मे आते प्रेशर को थन पर महसूस करते ही अपनी तृप्ति जतलाने के लिए एक लबी ऑं आँ ऑं निकलती। अपने बछडे के लिए जैसे वह अब और उसके थन से लग नही सकती। दूधियारियों के लिए यही सबसे आराम की बेला होती। जैसे-जेसे उसके थन पर प्रेशर बढता, उसका शरीर हल्का होता जाता। बाघारू अपने दोनो खुरदुरे हाथों से उसके तलपेट को सहला देता। गले को सहलाना, मोड़ता। पेट मे गुदगुदी करता। दुधियारी के पिछले पैरो से होते हुए तमाम शरीर में सिहरन दौड़ जाती। उसके पीठ की चमडी चिहुंक-चिहुंक जाती। एक बार पिछली एक टाग से जमीन को खुरचती। बाघारू इसके बाद दूसरी भैस के थन में हाथ मारकर देखता कि बछड़े का मुँह लगा है कि नहीं। इस तरह से दूध निकालने मे कुछ और समय लग जाता। बाघारू ट्रक के निकट आकर खड़ा होता। कागज और स्टैम्प पैड उसके पॉकेट मे ही रहता। उस कागज पर क्या हिसाब-किताब है, और वह उस पर काहे के लिए अंगूठे का निशान लगाता है—कुछ भी जान पाना बाघारू के लिए सभव नहीं था। वह बस इतना ही समझता कि कितना दूध निकाला गया उसी की एक रसीद है वह। यह कंट्रेक्टर जोतदार को देगा। महीने के आख़िर मे इस कागज को लेकर हिसाब किताब बनेगा। यह तो कहीं दो-चार सेर का हिसाब नहीं कि एक पौवा, आधा पौवा हिसाब का गोलमाल होगा। हर रोज एक ही गिनती की भैसों के दूध का एक ही परिमाण का ही होना चाहिये। इस बीच तिनेक दिन बाघारू ने एक दुधियारी भैस को दुहाया ही नहीं। थन में घाव हुआ था। कई एक दिन बाघारू ने रसीद के पीछे एक दाग देने के लिए कहा था। उसके नीचे उसने अँगूठे का निशान लगाया था। वह अगर मुँहजबानी कहे तो मालिक शायद यकीन न करे। पर अविश्वास आखिर करे भी तो क्यों ? एक भैंस का दूध न दुहाकर बाघारू करेगा भी क्या ? पियेगा ? कितना पियेगा बाघारू ? बेचेगा ? किसे बेचेगा ? पहाड़ को ? फिर कंट्राक्टर का आदमी तो रोज का हिसाब-किताब लिखता है। वह क्या नहीं देखेगा कि कितनी भैसें दुही गयी है, कितनी छूट गयी हैं, क्यों छूट गयी हैं ? पर यह सब तो बात की बात है। बाघारू

ने एक जगह दाग दिलवा दिया है कि फलां तारीख को दूध नहीं गया।

दूध लेकर ट्रक सीधा चला जाता है। ड्राइवर और वह आदमी हाथ बढ़ाकर बाघारू को विदा करते हैं। ट्रक के पीछे डाला पर वह क्लीनर छोकरा बैठता है। उसे देख गर्दन उठा कर भुक्खड़ जोर-जोर से भोंकता हुआ पीछे-पीछे दूर तक भागता है। छोकरे का लाल रूमाल अब उसके दाँतों में दबा हुआ है। वह जैसे भुक्खड़ की आवाज सुन ही नहीं पाता, न जाने कैसे तो एक उदासीन भाव से चेहरा घुमा लेता था - भुक्खड़, डायना ब्रिज, यह भैंसा का गोठ, बाघारू, जंगल और पहाड़ पर से सीधा, जिस ओर ट्रक जा रहा था, उसी ओर से। सुबह के उजाले में उसकी आँखों में अब आधी रात को गुप्त हत्या का भाव भर गया

बाघारू और भैंस, ट्रक का जाना खड़े खड़े देखते रहे। काफी देर तक ट्रक दिखायी देता रहा। जैसे हवाई जहाज छोटा होकर विलीन हो जाने तक। उसके बाद भी आवाज सुनायी देती रही। इस तरफ पहाड़, जंगल, नदी, चाय बगान। इसी से इस छोर से ट्रक की आवाज इन सब जगहों से होते हुए, धक्का खाते खाते, प्रतिध्वनित होती रही। फिर चारों ओर की आवाजों के साथ घुल मिल गयी।

पूरे दिन में यही एक काम अत्यन्त जरूरी होता। सबसे अधिक जरूरी और महत्वपूर्ण और दिनभर में यही एक बार तो इतने सारे लोगों का मुँह देख पाता बाघारू। बाघारू को छोड़ दूसरे लोगों का मुँह देख पाती थीं ये सारी भैंसें। इसी से उनके चले जाने पर कुछ पल के लिए एक ऐसा भाव आता था कि फिर से कल सुबह यही काम करना पड़ेगा। पर वह भाव भी इतने कम समय के लिए आता है कि आवाज गुम हो जाने से काफी पहले ही गुम हो जाती है।

बाघारू ब्रिज के रेलिंग के पास ऊँचे फुटपाथ पर बैठ गया। वह तो इस काले फटफट पक्के रास्ते और सफेद झकझक पक्के ब्रिज पर दिन में एक बार ही आता। इसी से उसे लगता कि वह काफी दूर निकल आया है।

यह जो बायीं से दायीं ओर सड़क इतनी सफ़ाई से जंगल को चीरती दो भागों में बाँटती हुई चली गयी थी, उसको देखते ही कैसा तो कुछ गड़बड़ सा लगता। जैसे किसी एक दिशा में अटक गयी थी, और इस सड़क ने उस दिशा को खोल दिया हो। जबकि इस रास्ते की ओर से देखते हुए क्षितिज नजर नहीं आता। फिर भी बाघारू समझता था इस रास्ते के दोनों ओर दो क्षितिज हैं।

बाघारू जहाँ पर था, डायना के उस जंगल में दिक या दिगंत नहीं था। एक तो आकाश था और धरती। बाघारू यह सब अच्छी तरह से समझता हो, ऐसा भी नहीं। पर इस ब्रिज के नीचे या सामने के जंगल में या पीछे के चर में चौबीसों घंटे रहने के बावजूद भी सुबह कुछ पल के लिए इस रास्ते में और ब्रिज में आकर उसे लगता था कि कहीं काफ़ी दूर से आया है। जो कुछ हमारी आदत के बाहर है वही तो दूरी है।

77
गोठ, किसी एक का नहीं, सभी का

बाघारू अब गोठ को लेकर डायना जंगल के भीतर था।

उस बुढ़ियाल के ऊपर बाघारू सोता। बुढ़ियाल ढुलकी चाल चलती है और बुढ़ियाल की पीठ पर बाघारू डोलता रहता। डोलते-डोलते बाघारू जंगल की ओर उल्टी दिशा से देखता ऐसे, जैसे कि दिखायी नहीं देता या कि ऐसे जैसे इन पेड़ों के पत्तों की फाँक से आकाश छींट जैसे नज़र आता। और उस आकाश पर पेड़ों के डाल-पत्ते गड़े हुए हैं और बाघारू तो मिट्टी के ऊपर के जंगल को देख नहीं पाता। सिर के ऊपर वाले पेड़ के पत्तों की छावनी काफ़ी ऊपर है। बीच में तरह-तरह के साइज और किस्म-किस्म के पेड़ो के पत्ते छितराये हुए थे पर वह मिट्टी पर उगे जंगल जैसा घना नहीं था। गोठ को लेकर बाघारू का समय इस तरह आलस से कटता था जैसे वह जगल को भी सीधा नही देख पाता।

बुढ़ियाल एक छोटे-से हाथी जैसी भैंस है—वाँझ है, विगट, बंझली भैंस। उसको अब बच्चे नहीं होंगे। दूध देती नहीं। किसी काम में नहीं आती। पर गोठ में अगर ऐसी कोई भैंस न हो तो वह गोठ तो गोठ ही नहीं होता। तने हुए खड़े सींग। जंगल के भीतर जब चलती तो नीचे के लता, डालपात, सींग में लगाते हुए चलती। सींग उठाकर सामने खड़ी हो जाये तो लगता, छोटे साइज के किसी बाघ को पकड़ कर दोनों सींगो में गूंथ कर घुमा कर फेंक सकती है। बदन के बाल लाली लिए हुए थे। दोनों आँखों के बीच इतनी सारी जगह कि जैसे डायना नदी बह सके। लंबा होने के पहले ही मुँह भोथरा गया था। एक बार मुँह खोलकर जुबान चला दे तो कट्ठा भर ज़मीन साफ कर दे। कपोल के दोनों ओर इतने व्यवधान में दोनों आँखें ऐसी थीं जैसे एक ही समय दो चीजों को देख रही हो। एक ही चीजों को दोनों आंखों से देखने के लिए आँखों की दोनों पुतलियाँ घुमा-घुमाकर नाक के पास ले आती थी। हाथियों का झुंड या बाघ या अकेले कोई गुंडा हाथी आकर खड़ा हो जाये तो पूरे गोठ में एक यही बुढ़ियाल है जो खड़े सींग लिए सीना तान कर उसके सामने खड़ी हो सकती थी। बाघारू ने देखा कि इस तरह से जब वह खड़ी होती है तब उसके गले के नीचे सामने के दोनों पैरों के बीच एक जगह बन जाती है। जिससे पूरा का पूरा गोठ वहाँ घुसकर अपनी जान बचा सकता है।

"यह गोठ तो ख़रीद-ख़रीद कर बनाया है मालिक ने। इस गोठ की कोई भी भैंस किसी की भी नहीं है। पर देखने से मन में आता है कि सभी बुढ़ियाल के बच्चे हैं। पर नहीं हैं। बुढ़ियाल जब खड़ी हो जाती है, साला मन तो ऐसा

कहता है कि तमाम भैंसें इस बुढ़ियाल के पेट से निकल आये हैं।"

गोठ में जेसे बुढ़ियाल है—"कोई भी उसका बच्चा नहीं होने पर भी वह सबकी माँ है" उसी तरह से और दो-दो बूढ़ी भैंसें भी वहीं हैं। जो पहले बाप-भैंसे थे, वे अब बूढ़े और बेकार हो चुके हें।

कोई भैंस बच्चा देने के अयोग्य है फिर भी उसे गोठ में रखा जाता है। इस तरह के मुअत्तल किये गये और बूढ़े भैंसे को देखने पर लगता है कि गोठ जैसे जंगल के पेड़ों की तरह ही पुराना है। जंगल में जैसे बूढ़े जानवर रहते हैं, चरें जानवर भी रहते हें, उसी तरह गोठ मे भी। इन्हें भी तो खरीदना पड़ा है मालिक को। इन सब भैसों के दाम कम हुआ करते हैं। पर उन्हें गोठ में रखना पड़ता है। किसी-किसी समय काम भी आती है ये। अगर जगल के बीच कहीं कोई बड़ा शाल का पेड हो—रस्सा बाँध कर इन सब भैंसों के गले मे बाँध देने मे उसे खींचकर सड़क के किनारे ले जाते हैं। और एक शाल का पेड़ अगर बेच दिया जाये तो गोठ का दूध बेचने की कोई आवश्यकता नहीं रहेगी। यहाँ, इस डायना जगल मे उसकी कोइ सुविधा नहीं। पहाड़ी जगह मे पड़े खीचकर लाना मुश्किल है। खींच कर ले जाने पर भी सडक के किनारे कौन उसे ट्रक पर लादेगा ? फिर यहाँ दिनभर मे कितने ट्रक जाते हे ? यह सब सुविधा लाटागुड़ी-उदलाबड़ी की ओर है। किंतु गयानाथ का यह गोठ जो अगले साल यहां पर होगा यह कौन कह सकता था ? या, अगर ऐसा हुआ तो इन बूढ़ी भैसों को गयानाथ लाटागुड़ी और उदलाबाडी की ओर ले जा सकता है। वहाँ एक चुराया शाल का पेड रास्ते के किनारे रख दिया जाये तो बिकने में कितना समय लगेगा ? तभी गोठ मे ये दो-दो बूढे भैसे हैं—कोई भी उनका बच्चा नहीं, पर ये सबके बूढ़े बाप हैं।

चार बछड़े तो हे ही। न हो तो थन मे दूध आयेगा कहाँ से ? इन चार बछड़ों मे से शायद कोई भी इस गोठ का नहीं हे। शायद इन्हें भी मालिक ख़रीद लाया हे। या फिर उसके घर में जो भैसें हैं, ये उनके बछड़े हों। जिन्हें गोठ में भेज दिया गया है। गोठ मे भैंसे जल्दी-जल्दी बढती हैं। गोठ में बच्चे होने पर मालिक उन्हे ले जाता है। अधिक बछड़े रखने के बदले उन्हें बेच देना ही अधिक लाभप्रद है। सिर्फ अपने गोठ जिससे भरपूर हो, इसके लिए जितने बछड़े रखने चाहिये, उतना रखते हे और बाकी बेच देते हैं। इनमे से कोई भी गोठ का बछड़ा नही, पर सभी भैंसों के बस यही चार ही बछडे हें।"

दुधियाल भैंस ही तो गोठ की असली संपदा होती है। पूरा गोठ तो उनके बल पर ही चलता है। बाघारू भी तो उनके ही बल पर है। जितना खिलाता-पिलाता है, दूध उतना अच्छा होता है। पर दूध होने का भी तो एक नियम बनाना पड़ता है। सभी भैंस अगर एक साथ दूध दें, तो फिर दूध बंद

भी एक साथ हो जायेगा। इससे सबको एक साथ बच्चा नहीं होना चाहिये। पर जो दूध दे रही है उनका दूध चालू रखना ही तो सबसे बड़ा काम होता है गोठ का। अगर इस तरह की कोई विपदा आये तो सभी को छोड़कर इन दूध देने वाली कई भैसों को पहले बचाना होगा बाघारू को। गोठ की सभी भैंसे दूधियाली नहीं थीं, पर दूधियाली भैंसे ही गोठ की सब कुछ थीं।

आज दूधियालियों को लेकर सब कुछ चला रहे हो, पर कल क्या होगा? क्या हो सकता है? गोठ तो सालो साल चलता रहेगा, साल-दर साल दूध देता रहेगा। तुमको तो सिर्फ़ अभी का, इस मास का या फिर इस वर्ष का हिसाब करने से काम नहीं चलने का। दूध तो किसी एक ही दूधियाली का नहीं होता है, पूरे गोठ का होता है। इसी से जितनी भी दूधियाली थीं उतनी या उससे कहीं अधिक ही थीं ऐसी माधा भैसे जिनका पहला बछड़ा अब तक हुआ नहीं था। ऐसी ही बाँझ भैसें भी गोठ में थीं। गोठ चलाये रखने के एकमेव उपाय के तौर पर इन्हें रखा भी जाता था। यह तो प्रायः हर समय हिसाब में रहता था कि कितनी भैसें गाभिन हुईं, कितनी और होंगी, उनका बछड़ा कब होने वाला है, कब से दूध देंगी, उस बीच कितनों का दूध बंद होगा, अगले साल फिर कितनी गाभिन होंगी।

इन भैंसों को गाभिन करने के लिए साथ में एक भैंसा भी होता है—"उस साले को तो कोई और काम नहीं। घास खाना और ऊँघता रहता है। ऊँघता रहता और घास खाता है। चलने को कहने से ऊँघता हुआ चलता। और साला जब जागता तो एक भैंस के पीछे जाकर दोनों टांगें उठा देता। साले का बस यही काम है—खाना, ऊँघना और ।" फिर बाघारू को सावधानी भी बरतनी पड़ती थी इस एक ही मामले में। वह जानता था कि यह गोठ कैसे बढ़ सकता है संख्या में भी और दूध में भी। और उसी के अनुसार बड़ी चालाकी से गोठ को चलाना पड़ता। ध्यान रखना पड़ता था कि कब किसके पेट में बच्चा बनाना है।

पर इस सावधानी का एक और कारण भी था और यह प्रधान कारण था। गोठ में भैंसा एक से अधिक रखा नहीं जाता। इस जंगल के आस-पास कहीं दूसरा कोई भी गोठ हो सकता था। उसका भैंसा इस गोठ में आकर भिड़ न जाये, यह भी देखना पड़ता था। फिर वह यहाँ से दो-एक भैंसों को भी भगाकर ले जा सकता था। या पास ही कहीं अगर कोई अकेला जंगली भैंसा हो तो वह यहाँ के भैंसों को भगाकर अपना एक दल बना सकता था। गोठ में भैंस-भैंसे एक साथ ही रहते थे—क्योंकि अकेले रहने से उन्हें भय लगता था। पर वह हिम्मत अगर उन्हें किसी और भैंसे से मिल जाये तो उसके साथ भी वे चले जा सकते थे। भैंसा अगर गोठ छोड़कर भाग जाना चाहे तो उसे रोक पाना किसी भी रखवाले के वश की बात नहीं थी। इसी के चलते ही सावधानी बरतनी पड़ती

थी। कड़ी नज़र रखी जाती थी कि किसी भैंस का शरीर अगर गरमा जाये तो वह गरमी किसी भी तरह नष्ट न हो।

फिर उसके साथ साथ एक लोभ भी तो होता। उस 'गरमी' के समय कोई भैंस आकर किसी जंगली भैंसे के साथ मेल-मिलाप कर बैठे तो फिर उसे पेट में जो बच्चा होता—उसका शरीर काफी ताकतवर होता और भैंस भी अधिक दूध देती थी। तो यह लोभ रहता ही था कि गोठ की भैंसें गोठ में ही बंदी रहें पर जंगली भैंसे का बच्चा भी अपने पेट में पालें।

यही तो गोठ था—कोई किसी का नहीं पर सभी-सभी के थे। जिसका एक भी बच्चा नहीं था, वही सबकी माँ। जिन बछड़ों की कोई माँ नहीं, वही सभी का बछड़ा। जिस भैंस का अभी तक बछड़ा नहीं था वही सब बछड़ों की गोठ भी रखेगी। और यह सब गयानाथ के गोठ का चलन था। उसके गोठ में यह भैंस, गाभिन, कुमारी, जंगली भैंसे भी थीं। वे सब गयानाथ की थीं। जो भैंस यहाँ इस गोठ में थीं, जो हाट में थीं, जो गोहाल में थीं, सब गयानाथ की।

जिनका जन्म हो चुका था, जिनका जन्म नहीं हुआ था, जो जन्म लेंगी, जो मरेंगी, सब गयानाथ की थीं।

78

बाघारू का घर

सब गयानाथ का। इस डायना का जंगल भी गयानाथ का। वह अपलचांद का जंगल भी गयानाथ का। यह डायना नदी भी गयानाथ की। यह तिस्ता नदी भी गयानाथ की। यहाँ की तमाम जमीन गयानाथ की। यहाँ का जंगल भी गयानाथ का। यह बुढ़ियाल गयानाथ की, दूधियाली गयानाथ की—सबकुछ गयानाथ का। यह बाघारू और भैंसे भी तो गयानाथ की।

बाघारू आकाश तक फैले हुए जंगल की ओर ताकते हुए सोचता। वह बुढ़ियाल के ऊपर चित्त सोया हुआ है—दोनो ओर बुढ़ियाल के पेट पर से होते हुए नीचे झूल रहा है और इस जंगल के तरह-तरह के पत्तों के, उसमें किस्म-किस्म के बनते-बिगड़ते नक्श आँखों के सामने बदल-बदल जाते थे। पत्तों के भीतर से होते हुए दूर, काफ़ी दूर ऊपर छींटेदार आकाश दिखायी देता था। बाघारू वृक्षों के पत्तों को ताकते हुए समझ जाता कि वह जरे हुए जंगल के दक्षिण की ओर जा रहा है। अब अगर बाघारू दाहिनी ओर नजर घुमाये तो उन जले वृक्षों की लाइन देख पायेगा। उसके पास उस ओर डायना के बायीं ओर सूखी हुई नदी का दरार था।

कभी बाढ़ का पानी यहाँ तक चढ़ आया था और शायद इन वृक्षों को

जला गया था। पानी में क्षार तो होता ही है। उसी पानी में तमाम जंगल की मिट्टी घुल गयी थी। फिर जंगल के आदमियों ने आग लगाकर जंगल जला दिया था। क्यों ? क्योंकि यहाँ जब तक नयी मिट्टी डाली नहीं जाती, तब तक नया जंगल पनप नहीं सकता। तो जला दो। जो जंगल मिट्टी की आग से जल जाता है, उसे आग से जला दो। इसी से यहाँ जला हुआ जंगल था।

पर यहाँ जो भरपूर जगल था, यही जगह, जहाँ भैंस की पीठ पर चित्त होकर बाघारू आकाश का जंगल देख रहा था और मिट्टी के जंगल का ज्ञान प्राप्त कर रहा था।

'गयानाथ ने मुझे यहाँ भेजा—गोठ देखने के लिए। मैं बँधा-बँधा नही रहना चाहता। हमको गोठ दिया है। इहाँ कोई भी हमको ढूँढ़कर नहीं पायेगा। मै भी किसी को पाऊँगा नहीं। मैं पहले इहाँ कभी नहीं आया हूँ रे। मैंने इहाँ के जंगल को भी पहचाना नहीं है। गयानाथ हमको इहाँ भेजा है। अनजान जगह में भेजा है। हमको उदास करने के लिए भेजा है इहाँ।'

बुढियाल बायीं ओर एक नाली में आगे के बाये पैर से उतरने के लिए थोड़ी-सी झुक गयी थी। बाघारू जोर से डोल गया, पर उठा नहीं। वह जानता था—पैदल चल रहा होता तो भी ऐसे धक्के खाने पडते। बुढियाल जानती थी, कि बाघारू उसकी पीठ पर सवार होकर गोठ में घूमता है। यही बुढियाल के लिए सबसे बडी बात है। इसी से बुढियाल उसे ठीक से सँभाल लगी।

थोडा रुक गयी थी बुढ़ियाल। पीछे शायद एक छोटी-सी भैस थी। वह जब पास से गुजरी तो बाघारू के पैर से घसीटा लग गया। बाघारू बाये हाथ को बढाकर उस भैंस को छूना चाहता था, पर छू नहीं पाया।

तब तक बुढ़ियाल ने पीछे के दोनों पैर हटा लिये। सामने के बाये पैर को भी उठाकर फिर सीधी खड़ी हो गयी थी। आकाश तक फैले जंगल को ताकते हुए इस तरह की एक बात बाघारू के मन में आयी थी, खुद उसी को लेकर, जिसकी भाषा उसकी समझ के परे है। नहीं पता, नहीं जानता बाघारू उस भाषा को। फिर भी उसे इस तरह सोचना पड़ता है—यह बुढ़ियाल गयानाथ की है। यह बाघारू भी गयानाथ का है। यह जंगल गयानाथ का है। बुढ़ियाल की पीठ पर बाघारू सोया रहा। पेड़ों को देखता रहा। आकाश देखता रहा और डोलता रहा। डोलता रहा। बुढ़ियाल की जैसी चौड़ी पीठ थी वैसी और किसकी थी ? किसी की नहीं ? किसी की भी नहीं। बाघारू आकाश की ओर ताकते हुए जंगल के पेड़ों को देखता रहा और पहचानने की कोशिश करता रहा—"इहाँ से हरड़े का जंगल शुरू हो गया था। जंगल भर में सिर्फ कहीं-कहीं कोई पच्चीस-तीस हरड़े के पेड़ होंगे। और कहीं नहीं। कोने विहीन पत्ते और गुठली जैसे फल। हरड़े के पत्ते नुकीले नहीं थे। पेड़ों के घने झुरमुट के बीच उसके फल साफ दिखायी

पड़ रहे थे। वहाँ से गुज़रते हुए बाघारू नीचे से ही पत्तों को देख रहा था, पत्तों के तल्ले, कैसे तो रोयेंदार थे।"

बाघारू जानता था कि अगर वह नीचे उतर कर ढूँढ़े तो इतने हरड़े मिलेंगे कि उसे रखने के लिए कोई जगह नहीं मिलेगी। शहर में कविराज़ के दुकान पर बिकती है। हाट में लेकर बैठने से भी बिक्री होती है—कत्थई रंग बनाने के लिए। पर बाघारू को तो उसकी कोई आवश्यकता नहीं है। बाघारू इस जगह का नाम रखा है, 'कौशल बाड़ी' (हरड़े वृक्षों का जंगल)।

"ऐ हो गयानाथ, हमको इहाँ भेज दिया है अनजान विदेस में। और मैंने इहाँ एक घर बना लिया है—बाड़ी। बाघारूबाड़ी। कहाँ जा रहे हो ? नहीं, कौशलबाड़ी। कौन-सा कौशलबाड़ी ? नहीं, इस पोरालीबाड़ी जले हुए जंगल के दक्षिण में और वो जो बड़ा 'गर्जाली बाड़ी' (बरसात का घास जंगल) इसके पश्चिम की ओर—नदी का नाम डायना, थाना का नाम नागराकाटा, गाँव का नाम—बाघारूबाड़ी।"

बाघारू मन ही मन फिक्-फिक् करके हँसने लगा था। और हँसी की मस्ती में दायें पैर से बुढ़ियाल के पेट में हल्का-सा लात जड़ देता था और बुढ़ियाल जवाब में उसी पैर में पूँछ फटकारती थी।

"साला गयानाथ को जाकर कहना, हे देउनिया, तुम्हारा गोठ तो है, पर कहाँ—डायना नदी के दाहिने में जो घास का जंगल है, उसके पश्चिम ओर की पहाड़ी पर से होकर ऊपर चढ़कर, दाहिनी ओर मुड़ते जाना। उसके बाद देखना जंगल है। उसके बाद बाघारूबाड़ी का पहाड़। उसके बीच कौशलबाड़ी, उसके बाद ।"

बाघारू अबकी हँस उठा। हँसते हुए बुढ़ियाल के ऊपर पीठ पर नाचने लगा। गयानाथ का चेहरा उसकी आँखों के आगे नाच उठा। यह जंगल गयानाथ का है, गोठ गयानाथ का है, बाघारू गयानाथ का है। पर गयानाथ अगर अभी, इसी पल इस जंगल में, इस गोठ में, इस बाघारू को ढूंढ़ लेना चाहे तो ? खिलखिलाकर, कमर नचाकर इस तरह से हँस पड़ा बाघारू। "साला कहाँ ढूंढ़ेगा मेरा देउनिया हमको ? और इस गोठ को ?"

यह ख्याल एक बार आते ही हँसी जैसे रुकने का नाम न लेती थी। सियार चिल्लाने जैसा खाँक-खाँक करता हँसता जा रहा था बाघारू। बाघारू तो ऐसा कुछ कह नहीं सकता जो देख न पाता हो। बाघारू तो ऐसा कुछ सोच ही नहीं सकता, जो वह अपने शरीर से कर नहीं पाता इसी से बाघारू की हँसी इस तरह फूट रही थी, जो रुकने से रही। क्योंकि उस समय वह देख रहा था गया-देउनिया को; "वो डाइना ब्रिज के ऊपर, इधर देख रहा—जंगल, इधर देखता है—नदी, उधर देखता है—पत्थर, उस रास्ते की ओर देखता है—बालूरबाड़ी।

गया-जोतदार जानता है यहीं पर उसका गोठ रहता है। पर ब्रिज से उतरने का रास्ता नहीं मिल रहा उसे। तो ढूँढ़ क्यों नहीं रहा, ढूँढ़। ब्रिज के ऊपर, रास्ते पर अपने गोठ को ढूँढ़।"

इस दृश्य से बाघारू की हँसी और रुकना नहीं चाहती, गोठ के साथ बाघारू जैसे चक्कर काट रहा था और गयानाथ खुद अपना। जंगल गोठ और बाघारू भैंसों वाला को ढूँढ़ नहीं पाता, ढूँढ़ नहीं पाता है।"

"ढूँढ़ता क्यों नहीं। ढूँढ़-ढूँढ़। ढूँढ़ कर देख, कहाँ गया है तेरा भैंसों वाला और गोठ।"

बाघारू ने देखा कि तभी वह जंगल के भीतर से होकर जा रहा था। 'अरे र रे, र, र, र, र, र' आवाज़ करते-करते बाघारू उठ बैठा। बुढ़ियाल की पीठ पर दोनों ओर पैर लटका कर बैठा नहीं जा सकता। उसका पेट काफ़ी चौड़ा था। बाघारू भैंस की उल्टी दिशा में मुँह करके उसे बायाँ पैर उठा लिया था। तब तक बुढ़ियाल रुक गयी थी। बाघारू बुढ़ियाल के ऊपर उठकर खड़ा हो गया था। और इधर-उधर नजर घुमाकर जंगली फल ढूँढने लगा था। ऊपर की डाल पकड़ कर 'टर्र, र, र, र,' आवाज़ करते ही बुढ़ियाल खूब धीरे-धीरे चलने लगती है। बाघारू तीन-चार क़दम चलने पर बुढ़ियाल की पीठ पर अबकी मुंह सीधा करके बैठ गया। टर्र, र, र, र,' आवाज करते ही बुढियाल फिर से चलने लगी थी। हाथ बढ़ाकर बुढ़ियाल के दाहिने सींग के आगे मारकर एक जंगली फल तोड़ लिया, फिर उसके बाद हाथ से छीलने लगा। पके हुए फल की महक से उसके मुँह में पानी भर आया था। दाहिना पैर मोड़कर रखने पर भैंस की पीठ में जो फॉक बन जाता है उसके अंदर बाक़ी फलों को रखकर बाघारू दोनों हाथों से पका गूदा मुँह में ठूँस लिया था और उसके रस से मुंह भर गया था। उसके स्वाद और गंध से बाघारू को अचानक याद आया कि इस जंगल में हाथी का झुंड आता है। याद आते ही नजर उठाकर वह इधर-उधर देखने लगा।

79
गोठ में घमासान

बाघारू ने अपनी गर्दन सीधी कर ली। तभी अचानक उसी पाखी की आवाज़ गूँज उठी—अ-अ-अ, क-क-क-अ-अ-क। वह आवाज़ असली आवाज़ थी पर बाघारू को लगा कि जैसे कोई नकल निकाल रहा हो. शायद बाघारू ऐसी आवाज़ निकालता है इसी से उसे ऐसा लग रहा हो। पर क्या बाघारू इस पाखी की तरह कॉप उठता है—शरीर की गरमी से तो फिर बाघारू की आवाज़ में वह कँपकँपी आये तो कहाँ से आये ? बाघारू ने और एक बार उस पाखी की आवाज़

की नकल की—क-अ-अ-अ-क, क-अ-अ-क। आख़िरी 'क' जैसे सुनायी नहीं दिया, इस तरह वह भीतर-ही-भीतर गहरे उतर आया। तभी लगा जैसे पाखी का शरीर काँप उठा है। किन्तु बाघारू एक बार भी पाखी को नहीं देख पाया—शायद पायेगा भी नहीं।

"हेऽएएइ, हेऽएएइ, हे हे हे" करते हुए बाघारू सीधा होकर बैठ गया था और बुढ़ियाल के पेट में पैर से टटोका मारा। बुढ़ियाल ने हनहनाते हुए चलना शुरू कर दिया था और बाघारू इस चाल से फिर से डोलने लगा था। "हे... ए...ऐइ, हे .ई, हे...हे" बाघारू ने बुढ़ियाल के पेट पर ज़ोर से ठोकर मारी। कई बार ज़ोर-ज़ोर से। तभी सांड़ भैंसों को इस ओर जंगल में ऐसे खदेड़ रहा था कि भैंसें गिर जायेंगी। और गिरी नहीं कि एकदम खत्म।

"हे ए भुक्खड़।" बाघारू बुढ़ियाल की दोनों सींग पकड़ कर तब तक खड़ा हो चुका था। बुढ़ियाल की पीठ पर खड़े बाघारू के माथे पर एक-दो डाल-पात झूल रहे थे। बाघारू कभी बायें हाथ से तो कभी दायें हाथ से उन्हें हटाता जा रहा था। कभी सींग को पकड़े रहता, कभी छोड़ देता। भुक्खड बिल्कुल सामने ही कहीं था। बाघारू की आवाज़ सुनते ही इधर भाग आ रहा था कि बीच में अचानक उसकी नजर उस भैंस पर पड़ गयी। साँड उसे जंगल के भीतर इस तरह से टक्कर मार कर खदेड़े जा रहा था कि भैंसें अब गिरीं कि तब गिरी। बाघारू ने दूर से ही भुक्खड़ को आवाज़ दी—"सिओ-सिओ।" भुक्खड़ दौड़ते हुए पल भर के लिए रुक गया। फिर बायी ओर मुडकर जरा पीछे से उस साँड़ की ओर झपट पड़ा। भुक्खड तेज़ गति से उछलते हुए साँड़ और भैंसो के बीच घुस आया था—भौंकते हुए। पर साँड़ के सींग हिलाते ही भैस तो दूसरी ओर से झपट्टा मारने को भुक्खड़ तैयार हो जाता था। भौंकते हुए साड़ को रोकना चाहता था। साँड़ ने भुक्खड़ को भगाने के लिए दो बार सींग झटकी। इस बीच भैंस को संभलने का मौक़ा मिल गया था।

तब तक बाघारू को पीठ पर लिये-दिये बुढ़ियाल वहां पहुँच गयी थी। जंगल के भीतर किसी एक रास्ते से तो पूरा-का-पूरा गोठ जा नहीं रहा था। पूरा गोठ इधर-उधर बिखर कर घूम रहा था -चर रहा था। इसी से बाघारू की नज़र इस भैंस पर पड़ी। साँड इस भैस के साथ क्या करने वाला है। बाघारू इसी से फ़ौरन इधर चला आया पर एक जगह तक पहुँचने के लिए कुछ तो समय चाहिये ही।

बाघारू की चीख़-पुकार, भुक्खड़ की दौड़ धूप और भौंकना व आख़िर में बाघारू को लेकर बुढ़ियाल का दौड़ना, इन सबसे आसपास की भैंसें गरदन उठा-उठा कर देखने लगी थीं। जो भैंस दूर या आड़ में चली गयी थी, वह देख न पाने पर भी सुन पा रही थी और दूर से "ऑ-ऑ-ऑ" करना शुरू कर देती थी। इसके चलते बुढ़ियाल की पीठ पर सवार बाघारू के पहुँचने के पहले ही

वहाँ एक हो-हल्ला, चीख़-पुकार शुरू हो गयी थी। बुढ़ियाल ने अपना कर्तव्य काफ़ी पहले से ही समझ लिया था। और वह कर्तव्य अपने इतने दिनों के अनुभव और शक्ति के ज़ोर से ठीक कर लेती थी—ऐसा भी नहीं था। उसकी चोड़ी पीठ पर जो सवार दोनों सींगों के बीच खड़ा था शाल वृक्ष-सा उसकी हिम्मत, शरीर और ताक़त के ज़ोर से साबित होता था। बुढ़ियाल की इतनी चौड़ी पीठ, इस तरह के खड़े सींग, और यह पुख्ता छाती वाला सवार उसे जवानी में मिला नहीं था। उसके चारों ओर की दुनिया, हिम्मत, शरीर और ताकत—नाप-नाप कर ही तो पशु को उसके जन्म से स्वेच्छा मृत्यु तक पहुँचना होता है।

इतनी दूर से भागते आने से उसके इतने बड़े शरीर में जो गति आ गयी थी उसे बगैर कम किये ही बुढ़ियाल बाघारू को पीठ पर लेकर उस सांड और भैंस के बीच में धड़धड़ाती हुई घुस गयी थी। बाघारू चीख़ता जा रहा था पूरे ज़ोर से—"हे...इ, हे...ई...ई, हे...ए...हट, हट। हे, इ।" बुढ़ियाल और बाघारू को पहुँचा हुआ देख भुक्खड़ को भी बल मिल गया था और वह उछल-उछलकर प्रायः सॉड़ के गले के नीचे तक पहुँचने लगना था—भौंकते हुए। एक साथ इतने सारे हमलों मे घबरा कर सॉड़ अपनी सींग हवा में उठाकर गर्दन घुमा लेता था भैंस को छोड़कर।

बुढ़ियाल इस तरह दोनों भैंसों के बीच एकबारगी घुस जायेगी—बाघारू ने यह सोचा तक नहीं था। उसने सोचा था कि वहाँ पहुंच कर बुढ़ियाल उसे पीठ पर से उतार देगी। पर निकट पहुँच कर बुढ़ियाल ने जब अपनी गति कम नहीं की, और बढ़ा दी थी तो बाघारू उसकी पीठ से नहीं उतरा। बाघारू समझ गया, बुढ़ियाल अपने गठन और सींग से, और शरीर के ज़ोर से दौड़ते हुए अगर दोनों के बीच में जा पहुँचे तो इस सॉड़ को पीछे हटना होगा। एक बार अगर पीछे हट गया तो फिर आगे बढ़ नहीं पायेगा। इतनी सारी बातें सोचने पर भी बाघारू बुढ़ियाल की पीठ पर उसकी सींग पकड़ कर दायीं ओर झुका रहा, जिससे सांड़ अगर बुढ़ियाल पर धावा भी बोले तो बाघारू दाहिनी ओर कूद सके।

सॉंड़ के सींग उठाकर गर्दन घुमाते ही बुढ़ियाल उन दोनों के बीच से निकल गयी थी और ठीक उसी मौक़े का फ़ायदा उठाकर बाघारू नीचे कूद गया। मिट्टी पर गिरते ही हाथ बढ़ाकर जो डाल हाथ में आयी थी उसे खींचकर दोनों हाथों में उठा लिया था और 'साला' कहकर एकबारगी सॉंड़ को मारने लगा। डाल टूट गयी थी। अपने हाथ से डाल के टुकड़े को फेंक कर बाघारू दौड़ पड़ा और एक डाल तोड़ लिया। बाघारू के इस हाथ का एक भरपूर वार सहन कर पाना भी सॉंड़ के लिए असंभव था। उसने अपना मुँह और बायीं ओर घुमा लिया। तब तक बाघारू के हाथ की डाल ज़ोर से बरसने लगी थी। पर उसका जबड़ा खुला रहने से मार इस बार सीधे मुँह पर पड़ती थी। सामने के दोनों पैरों को

थोड़ा उठाकर, गला उठाये, मुँह को बचाने के लिए साँड़ दो क़दम पीछे हट गया था। दूसरी बार मार खाने पर सर झुकाये ही जहाँ तक मुड़ना संभव था, मुड़कर भागने लगा था। बाघारू भी उसके पीछे-पीछे कई क़दम भागता रहा खदेड़ते हुए, फिर गाली देते हुए खड़ा हो गया था—"जा साला, भाग इहाँ से।" साँड़ सरपट दौड़ने लगा था। भुक्खड़ भी साँड़ के पीछे-पीछे लगा हुआ था।

फिर बाघारू उस भैंस के निकट आ गया था। भैंस एक ही जगह पर खड़ी थी। कहीं कोई ज़ख़्म तो नहीं देखने के लिए बाघारू सींग पकड़ कर घुमा-घुमाकर मुँह देखने लगा, दोनों आँखों को देखता। उसके पैरों को दायें-बायें घुमाकर थूथन और गले के नरम भाग का अच्छी तरह मुआयना कर रहा था। भैंस के शरीर पर दूसरा कहीं कुछ हो तो कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता।

बाघारू के हाथ का स्पर्श पाते ही भैंस खुश हो उठी थी। उसने गले को और ऊपर उठा लिया था धीरे-धीरे। छोटी भैंस थी। गला इतना ऊपर उठाने से बाघारू के माथे को छूती थी। बाघारू उसकी थूथन में धीरे-धीरे हाथ फेरने लगा—"हाँ-हाँ।"

पीछे के भैंसें समझ गयी कि निबटारा हो चुका है। तब तक कोई-कोई भैंस बैठ चुकी थी। जैसे यहां पर कुछ देर रुकना है। कोई चुपचाप खड़ी थी। कोई-कोई मिट्टी की गंध सूँघ-सूंघ कर घास पर मुंह डाल रही थी।

गोठ फिर गोठ जैसा हो गया था।

बाघारू थोड़ा-सा चलने के लिए आगे बढ़ गया था।

80

गोठ के ज़रिये समाज-सेवा

आवाज सुनकर बाघारू समझ गया था कि कहीं ज़ोरों से कटाई चल रही है। जंगल में आवाज सुनकर दिशा का सही ज्ञान कर पाना असंभव होता है। पर बाघारू जानता था, लकड़ी या पेड़ काटना हो तो बायीं ओर के जंगल से ही काटना होता है। वहाँ एक रास्ता है। जंगल का रास्ता जैसा होता है। पत्थर बिछा हुआ। पर उस पर पत्ते गिरते-गिरते ऊपरी भाग नरम हो चुका था। इस रास्ते से ट्रक जंगल के भीतर तक आ-जा सकते थे। बाघारू उधर ही कुछ दूर तक बढ़ गया था, देखने के लिए।

जंगल के जिस-जिस जगह पर काफ़ी दिनों तक पेड़ काटे जाते हैं, वहाँ पहले से ही नीचे के झाड़-झंखाड़ काट कर साफ़ कर दिये जाते हैं। यह जगह काफ़ी दूर से ही नज़र आती है। बाघारू देख रहा था कि उसके सामने के जंगल के पार बहुत-से लोग मिलकर पेड़ काट रहे थे या कटे हुए वृक्षों के डाल-पत्ते

साफ कर रहे थे। यहाँ से ही कुल्हाड़ी चलाने की हांई-टांई आवाज़ सुनायी दे रही थी। बाघारू वहीं खड़े-खड़े देखता रहा।

खड़ा था इसी से देख पा रहा था, सिर्फ़ डाल-पत्ते छाँटे नहीं जा रहे थे, छाँटने के बाद तनों को रस्सी से बाँधकर खींचकर लाये जा रहे थे। बाघारू ने एक तने को खींचते हुए देखा था। किस तरह से खींचकर लाया जा रहा था, वह कौन सी नयी बात है कि बाघारू देखेगा। उधर शायद कहीं ट्रक खड़ा था।

पर इतने सारे लोग मिलकर बाघारू को देख रहे थे। पहले तो वे अपनी मर्ज़ी के मुताबिक उसे देख रहे थे, अब बार-बार घूम-फिरकर देख रहे थे। देखने की ही तो बात थी। इस तरह के जंगल में बाघारू की तरह अकेला आदमी। बाघारू की कोई भैंस भी तो उसके आस-पास नहीं थी। अगर होती, तो वे लोग इतने दूर से भी समझ जाते कि बाघारू कौन है।

आख़िर तक इतने अधिक लोग देखने लगे कि बाघारू और खड़ा रह नहीं पाया। पर लौटने के लिए उसके घूमते ही वहाँ शोर-शराबा शुरू हो गया, "ओ सुनो, ओए हो सुनो, ओए सुनो।" इस पुकार में एक तरह से खदेड़ने का भाव था कि बाघारू वहाँ खड़ा रहना उचित नहीं समझता। बाघारू के ज़रा-सा जल्दी-जल्दी चलना शुरू करते ही उसके पीछे किसी के दौड़ने की आहट सुनायी पड़ी थी। बाघारू ने दौड़ने के पहले एक बार गर्दन घुमाकर देख लिया था—ख़ाकी पोशाक पहने फॉरिस्ट गार्ड। वह खड़ा हो गया था।

उसे खड़ा हुआ देखकर फॉरिस्ट गार्ड ने भी दौड़ना बंद कर दिया था। चलता हुआ आया। संभवतया जिस समय वह बाघारू को पूरी तरह से देख पाता, तभी वह दौड़ना बंद कर दिया। फिर खड़ा होकर वहीं से हाथ हिलाकर बाघारू को बुलाया।

जहाँ पेड़ की कटाई का काम चल रहा था, वहाँ से लोग मुड़-मुड़कर बाघारू को देख रहे थे। बाघारू फॉरिस्ट गार्ड की ओर बढ़ गया। डायना के इस जंगल में आने के बाद, इस तरह बाघारू को अकेले-अकेले प्रायः किसी भी समय किसी अपरिचित व्यक्ति से मिलना नहीं हुआ था। अजनबी के सामने विदेशी की तरह खड़ा होना नहीं पड़ा था। साथ में तो उसका गोठ रहता ही था। सभी तो उसे देखकर पहचान लेते हैं कि भैंस वाला है। बाघारू को खुद को अचरज होता था कि ये लोग उसे कैसे पहचान नहीं पा रहे। पर इन कुछ दिनों में ही यह परिचय उसके खुद के लिए काफ़ी परिचित हो गया था। बाघारू अपने काम के परिचय से खुद इतना अभ्यस्त हो गया था कि उस परिचय के अलावा इस एक आदमी के सामने होने से उसको इतना संकोच हो रहा था ?

बाघारू उसके जितने क़रीब आता, फॉरिस्ट गार्ड उसे उतना ही क़रीब से

देख पाता। और बाघारू जब जाकर उसके सामने खड़ा हो गया तो देखने को और कुछ बाकी नहीं रहता। फॉरिस्ट गार्ड ने उसे खड़ा ही रहने दिया, थोड़ी देर बाद पूछा, "तुम यहाँ कहाँ से आये हो ?

"यहाँ हमरा गोठ है।"

"गोठ ? किसका गोठ ?"

"गयानाथ जोतदार का।"

"अच्छा, अभी तुम्हारा गोठ कहाँ है ?"

"वो, उधर।" बाघारू ने हाथ से एक ओर इशारा किया।

"यहाँ क्या कर रहे हो ?"

"कुछ नहीं।"

"गोठ वहाँ। तुम यहाँ। ओर कुछ नही कर रहे ?"

"नहीं। इधर पेड काटने का आवाज सुना, उसी से "

"इसी से क्या ?"

"देखने को आया, कौन काट रहा है, क्या काट रहा है।"

"रात में कहाँ रहते हो ?"

"यही, डायना नदी के चर मे।"

"हाँ-हाँ, ठीक है।" गार्ड जैसे आश्वस्त हो गया, "आज यहाँ से जल्दी चले जाना।"

"चला जाऊँगा। अभी इसी बखत।"

फॉरिस्ट गार्ड आकाश की ओर ताकने लगा—"जल्दी चले जाना आज गरहन लगेगा।"

"गिरहन ? आज ? अभी ?"

"हाँ ! बस यही, दोपहर के बाद।"

"दुपहरिया तो हो गया न ?"

फॉरिस्ट गार्ड फिर से आकाश की ओर ताकने लगा—"नही, अभी कुछ देर बाकी है।"

"नही। मै अभी जाता हूँ। हमरे उतरने में टेम लगेगा। गिरहन लगेगा। आज ?"

फॉरिस्ट गार्ड के साथ बाघारू की बातचीत जब चल रही थी, तभी लकड़ी काटने वालो मे से एक आदमी इधर आया। उसके कपडे से लगता था कि वह लकड़ी काटने वालों मे से नहीं है। बल्कि उसके आदमी ही लकड़ी काट रहे हैं। यानी कि कट्राक्टर। वह बातचीत सुनकर गार्ड से बोला, "इसके पास तो भैंसें हैं ?"

"हाँ, भैंसों का गोठ है।"

"हमारे पेड़ों को थोड़ा खिंचवा दो न ? पैसा जो लगेगा देंगे। काम जल्दी हो जायेगा।" गार्ड ने यह बात सुनकर बाघारू से पूछा—"क्यो ? करेगा ?"

"क्या ?"

"अपना दो-चार टो भैंसा ले आ। इन लकड़ियों को यहाँ से टान लेंगे।"

"पइसा मिलेगा, पइसा।"

"आपने तो कहा कि गिरहन लगेगा। हमको तो गोठ लेकर उतरना पड़ेगा डाइना के चर मे। नीचे।"

"अरे साले की हड़बड़ी तो देखो। ये आदमी गरहन के आगे जंगल छोड़ कर चला जाना चाहता है। कटे हुए पेड़ को क्या फेंक कर चले जायेंगे ? यहां लकड़ी चोर चुरा नहीं ले जायेंगे ? तू लकड़ी चोर है क्या ?"

"मैं लकड़ीचोर नहीं हूं। तो लेकर आऊँ, भैंसे ?"

गार्ड ने अबकी बार कंट्राक्टर से पूछा, "क्या ले आये ?"

कंट्राक्टर ने बाघारू मे पूछा, "कितनी दूर हैं तुम्हारे भैंसें ?"

"यहीं पास में हैं, उहाँ।"

"ला सकेगा ? जल्दी मे ?"

"अभी जाकर ले आता हूं। आपको कितने चाहियें बाबू ?"

"अरे दो-चार ले आने मे बन जायेगा। हमारे तो और अधिक पेड़ बाकी नहीं हैं। टान कर इधर की नाली मे फेंक देंगे। फिर हम ढाक-ढुककर चले जायेंगे। कल सुबह तो फिर आना ही है। आज रातभर के लिए ही थोड़ा सावधान रहना है।"

"ओह, यहीं से खींच के इहाँ डालना है ? ट्रक मे तो नही लादना ? मे आता हूँ, आप यहीं रहिये।" बाघारू के निकलते ही फरिस्ट गार्ड बोला, "तू आज रात यहीं रह क्यों नहीं जाता गोठ के साथ। लकड़ी की पहरेदारी करेगा। पइसा मिलेगा। पइसा।"

बाघारू को थोड़ा-सा सोचना पड़ा था। "नाहीं बाबू मैं कर नहीं सकता।"

"अरे क्यों नहीं ? पैसा मिलेगा।"

"नहीं बाबू। गिरहन लगेगा। जंगल में हमरे भैसों का पता नहीं क्या हो।"

"अरे होगा क्या। रुक जा, रुक जा। कुछ नहीं होगा।"

बाघारू को जैसे राज़ी हो जाना पड़ा था। पर ठीक तभी अचानक उसे याद आ गया कि सुबह दूध की गाड़ी आयेगी।

"नहीं बाबू, मैं नहीं रह सकता। सुबह दूधगाड़ी आयेगा। दूध दुह कर देना होगा। मैं अपनी भैंस लाता हूँ। आपका लकड़ी खींच दूँगा। आप यहीं खड़े रहो। लाता हूँ।" बाघारू फिर खड़ा नहीं रहा। मुड़कर फ़ौरन अपने गोठ की ओर चल दिया था। ये लोग बाघारू को देखते रहे कि कैसे जल्दी-जल्दी क़दम बढ़ाता हुआ

वह चला जा रहा था। आकर पहले जहाँ खड़ा था, उस जगह को पार करके और एक जगल की आड म छिप गया। उसके बाद उन्हे बाघारू की आवाज सुन पडी थी—"ऐ, ट-र-र-र-र-ए, ट-र-र र र-ए।"

यह आवाज कई बार कई तरह से सुनायी पड रही थी। आवाज उठती थी, गिरती थी, फिर उठती, फिर गिरती थी। उसके बाद नही उठती। पर कुछ समय बाद देखा गया कि बाघारू भैस पर बैठकर चला आ रहा है और उसके पीछे-पीछे और तीन-चार भैसे चली आ रही है। बाघारू ने एक बार जाकर और आकर जो रास्ता बनाया था वह रास्ता जैसे उसका काफी परिचित हो गया था। चार भैसो को साथ लेकर बाघारू उसी रास्ते स गाठ मे निकल आया था और एकबारगी लकडी काटने वालो के बीच म आ खडा हुआ था।

लकडी काटने वालो की सख्या कोई कम नही थी। एक दल कटे वृक्षो को साफ कर रहा था और एक दल उन साफ किये गये पेडो के तनो को खीच-खीचकर ले जा रहा था। पर चार चार भैसो के साथ बाघारू के यहाँ पहुँच जाने पर लगता था जैसे बाघारू ने ही इस जगह को भर दिया हो। इतने लोगो को तुच्छ बनाते हुए बोला। और सबने काम रोक कर बाघारू का काम देखना शुरू कर दिया।

बाघारू उस साड को भी लाया था दोनो बूढी भैसो को लेकर आया था और एक तगडी भैस भी लाया था। बाघारू ने रस्से का एक छोर गिरे हुए वृक्ष पर बाध दी। किसी उचित जगह पर और दूसरा छोर दो भैसो के सीने मे बॉध दी पॉवो के ऊपर। अधिक दूर तो जाना नही था। थोडी दूर मे जो लबी-सी नाली थी इसी म डालना था। उसके पास ले जाने पर लोग वहा से ठेलकर लकडी को नीचे गिरा देगे। यहा तो कोई जुवाली नही है। छाती के पास बॉध देने से ही गले मे झुलाने जैसा खीचकर ले जायगे। दो भैसो के बीच लकडी को थोडा सा ऊचा उठा देना होता था मिट्टी से।

बाघारू उस सॉड के साथ एक बूढा भैसा और भैस के साथ और एक बूढी भैस की जोडी बनाया। दोनो जोडे के गले मे लकडी को बाध दिया। और टर्र-र-र करता हुआ पीछे मे हॉकने लगा। जगली जमीन पर कुछ खीच कर लाना आसान नही होता। ऊँची-नीची, कटे पेडो के खूँट, गड्ढे, इन सबमे फॅस कर रुक जाता था। बाघारू इनके पीछे चलते हुए आने वाली बाधाओ को एक एक करके हटाता जाता था।

इस तरह से रुकते-रुकते जाने पर भी, रस्से के फॉस मे झुलाकर जो लकड़ी लेने के लिए कम-से-कम छ आठ आदमियो को आधा घटा, पैतालिस मिनट लग जाता, बाघारू ने अपने भैसो की जोडी से उससे आधे समय मे वह काम कर दिया। वह भी एक साथ एक के बदले दो-दो लकडियाँ। दो बार मे चार लकडियाँ

ले जाने पर ऐसा ही लगता था जैसे सबकुछ बाघारू के नेतृत्व में ही चल रहा हो।

अब तक बगैर बाघारू और उसके भैंसों के यह काम कैसे चल रहा था ?

81
गोठ की वापसी

बाघारू अपना पूरा-का-पूरा गोठ लेकर जंगल की चढ़ाई छोड़ नदी में उतर रहा था तेज़ी से। बुढ़ियाल की पीठ पर सबके आख़िर में बैठा हुआ था वह। बुढ़ियाल पर वह घुटने मोड़ कर एक बार दायें, एक बार बायें और एक बार सामने की ओर सिर्फ़ जीभ को चटखारते हुए चला जा रहा था—टर्र-र-र-र, टर्र-र-र-र, टर्र-र-र-र करता हुआ। और उस आवाज़ के निर्देश पर पूरा गोठ जैसे संगठित सेना वाहिनी की तरह वनजंगल, गाछ-पात को तोड़ते हुए ढलान में सीधा उतरता चला जा रहा था। वे पहाड़ के बायीं ओर से जंगल में घुसे थे और अब पहाड़ के दायीं ओर की ढलान से होते हुए उतर रहे थे। बुढ़ियाल समझ गयी थी कि गोठ को जल्दी-से-जल्दी ले चलना है। वह बीच-बीच में गर्दन ऊपर उठाकर चिल्ला रही थी—"आँ-आँ-आँ-क, ऑ-ऑ-ऑ," भुक्खड़ बुढ़ियाल के आस-पास दुलकी चाल से चल रहा था। चारों बछड़े बीच-बीच में पीछे की ओर रह जा रहे थे। वे क़रीब-क़रीब हर समय बाघारू और बुढ़ियाल के सामने रहते थे। और बाघारू दोनों हाथों को दोनों ओर करके बुढ़ियाल की पीठ पर से पूरे गोठ को हाँके जा रहा था—"टर्र-र-र-र-ता, टर-र-र-ता। जल्दी-जल्दी चलो, जल्दी चलो, गिरहन आया है, गिरहन। आकाश में अँधेरा छा जायेगा। पाखी के झुंड साँझ के पहिले बसेरे में वापस आ जायेंगे। बाघ, हाथी, गैंडा, रात से पहिले बाहर निकल आयेंगे। दिन ढलने के पहिले जंगल में हाथी उतर आयेंगे, टर्र-र-र-र-अ, टर-र-र-अ।"

बुढ़ियाल बढ़ नहीं पा रही थी। सामने की भैंसें खड़ी हो गयी थीं। गर्दन उठाकर बुढ़ियाली ने देखा कि बात क्या है। उसकी सींग को पकड़ बाघारू उठ कर खड़ा हो गया। रुकना पड़ा देखकर भुक्खड़ ज़ोर-ज़ोर से भौंकने लगा था। फिर उसके बाद सबने एक-एक क़दम बढ़ाना शुरू कर दिया। गति कम हो गयी थी। बाघारू बुढ़ियाल की पीठ पर से कूद कर गोठ के सामने की ओर दौड़ने लगा। भुक्खड़ भी उसके पीछे बेतहाशा भागने लगा था। पूरे के पूरे गोठ के सिकुड़कर एक जगह एकत्रित हो जाने से बीच में से होकर आगे बढ़ना दूभर हो गया था। बाघारू को बाहर निकल कर दौड़ना पड़ रहा था।

गोठ के सामने पहुँचकर देखा, ढलान के जिस ओर से होकर गोठ दायीं ओर घूमकर इस जंगल और नीचे नदी के बीच के जंगल में घुसेंगे, यहाँ एक

बड़ा-सा गड्ढा था। पर उसके चलते कोई भैंस रुकी नहीं थी। उसके पास से जो संकरी जगह थी, उसके बीच में पैर रख बायीं ओर मिट्टी-पत्थर की दीवार में शरीर को रगड़ते हुए धीरे-धीरे पार हो रही थी एक-एक भैंस। इससे जितनी जल्दी-जल्दी वे उतर रहे थे, अब उसी गति से बढ़ नहीं पा रहे थे। बहुत-सी भैंसें पार हो चुकी थीं। बाघारू ने पीछे मुड़कर एक बार देखा कि और कितनी बाक़ी हैं। पर जो भैंसें पार हो चुकी थीं, वे अगर अलग निकल जायें तो ? फिर इस बीच अगर गिरहन का अँधेरा छा जाये तो ये सब डर के मारे इधर-उधर हो जायेंगी। गिरहन का डर, बड़ा डर होता है। बाघारू भुक्खड़ को सामने के रास्ते की ओर ऊँगली से इशारा करता हुआ बोला, "सिओ, सिओ।" भुक्खड़ कूदकर उस गड्ढे को पार करते हुए सामने की ओर दौड़ा। भुक्खड़ को देखकर भैंसों को पता चल जायेगा कि बाघारू है साथ में। बाघारू गड्ढे के दोनों ओर पैर देकर खड़ा हो गया था। फिर जो भैंसें पार हो रही थीं, उनके शरीर को थोड़ा ठेलकर रखता। उससे ही भैंसों का डर दूर हो जाता था—शायद बाघारू के स्पर्श से या फिर इस गड्ढे के निकट सामान्यतम मदद से ही उनका पार होना सहज हो जाता था। फलस्वरूप वे जल्दी-जल्दी पार होने लगती थीं। पीछे से बुढ़ियाल की हुंकार सुनायी देती—"ऑ-ऑ-ऑ-क।" बाघारू गर्दन घुमाकर आवाज़ देता, "रुई रह, अ-अ।"

उस साँड़ को बाघारू ने रोक रखा था। गोठ के भीतर अगर कोई गड़बड़ी कर बैठे इस समय, इस सँकरे रास्ते में ? बल्कि उसे आँखे के सामने रखना ही बेहतर है।

पर वह साँड़ और उसके बाद बुढ़ियाल को पार करना कठिन हो गया था। साँड़, अगर चाहे तो छूट कर चला जा सकता है—बाघारू उसे दूसरे ओर की चढ़ाई के साथ ठेलता हुआ पकड़े रख सकता है। पर बुढ़ियाल का नहीं रख पाता। उसके लिए असंभव था। बाघारू ने एक बार कोशिश की कि दोनों हाथों से बुढ़ियाल को एक ही तरफ से निकाल दे लेकिन नहीं। पर बुढ़ियाल का वज़न पहाड़ से भी अधिक था।

सभी भैंसें पार हो चुकी थीं। उस मोड़ वाले गर्त के सामने अब सिर्फ़ बुढ़ियाल और बाघारू खड़े थे। बुढ़ियाल उसके इतने दिनों के अनुभव से समझ गयी थी कि पीछे किसी-न-किसी खतरे का अंदेशा निश्चित रूप से है, जिससे वे जल्दी निकल जाना चाहते हैं। बाघारू के मन में एक हिसाब कौंध गया था—बुढ़ियाल का तो गोठ में ऐसा कोई काम भी नहीं है। और वह यहाँ अकेली ऐसी रह भी जाये तो कोई नुकसान की बात नहीं। कल सुबह आकर बुढ़ियाल को ढूँढ़ कर ले जाने से भी चलेगा। बाघारू ने बुढ़ियाल की पीठ पर इस तरह ठंडे भाव से हाथ रखा जैसे वह हिसाब उसे मालूम हो चुका हो। बुढ़ियाल आकाश की

ओर मुँह उठाकर रँभाई—ऑं-ऑं-ऑंक। बुढ़ियाल आकाश की ओर जब मुँह उठाती थी तो लगता था कि समूचा आकाश ही जैसे लहरा कर गिर पड़ेगा।

इधर गोठ नीचे उतरता चला जा रहा था। बाघारू ने आकाश की ओर देखा। क्या गिरहन शुरू हो चुका है ? वह छलांग लगाकर उस पार चला और भागने लगा कि कहीं दो-चार मोटे डाल मिल सकते हैं या नहीं। बुढ़ियाल अस्थिर पैर से आकाश की ओर मुँह किये बाघारू की ओर मुड़ गयी थी।

बाघारू हाथ के पास जो कुछ डाल-चाल पाया उसे लेकर दौड़ा-दौड़ा आया। गर्त के ऊपर फैला दिया और प्रायः सो गया। दोनों हाथों से उन डालों को दबोच कर पकड़ लिया। कलवर्ट सा बनाकर टकलाया। आवाज़ की—"टर-र-र-अ, टर-र-र-अ।"

बुढ़ियाल ने उस पर सामने का दायाँ पैर पहले रखा। रखकर थोड़ी देर रुकी। फिर दाये पैर को और थोड़ा आगे बढ़ाया। फिर थोड़ा-सा रुकी। उसके पीछे का दायाँ पैर तब तक गर्त के क़रीब-क़रीब और सामने का बायाँ पैर मिट्टी में दृढ़ता के साथ खडा था। पीछे का बायाँ पैर शून्य में, और थोड़ा आगे की ओर। बुढ़ियाल ने जैसे बाघारू को और थोड़ा समय दिया। डालों को और ज़ोर से सटाकर बाघारू ने इस बार आख़िरी संकेत किया—"टर-र-र-र, टर-र-र-र-अ।" संकेत ख़त्म होने-न-होते बुढ़ियाल के सामने दायाँ पैर जैसे फिसल कर पार हो गया था और पीछे का दायाँ पैर जैसे डालों को छूते-न-छूते निकल गया था।

बाघारू कूद कर उठ बैठा। बुढ़ियाल इंतज़ार करती रही। उसकी पीठ पर दोनों हाथ रखकर बाघारू के झूलते ही उसने चलना शुरू कर दिया। बाघारू बाद में उचक कर चढ बैठा। बुढ़ियाल जहाँ तक संभव था उस गति से भागने लगी थी। गोठ को अधिक दूर तक जाना नहीं चाहिये। बाघारू ने एक बार ज़ोर से आवाज़ दी, "अरे, हो भुक्खड़।" उसकी पुकार ख़त्म होने के पहले ही बुढ़ियाल ने आकाश में गर्दन उठाकर हुँकार भरी—"ऑं-ऑं-ऑं-ऑं"। जवाब में भुक्खड का भौंकना सुनायी दिया निकट से। शायद एक-दो मोड़ के नीचे। अभी तो जंगल में उतर गये थे। पत्तों-पेड़ों के फाँक-फोकर से नदी का कुछ भाग रह-रह कर दिखायी दे रहा था। बाघारू आकाश की ओर ताकता था। उसके सामने पश्चिम के पहाड़ के ऊपर सूरज अब गोलाकार नज़र नहीं आ रहा था—चाँद-सा नज़र आ रहा था गिरहन के लगने से। "गिरहन लग गया, गिरहन लग गया, टर-र-र-अ, टर-र-र-अ", बुढ़ियाल जहाँ तक संभव हुआ, अपनी गति तेज़ कर दी।

सूरज की ओर ताकने से बाघारू की आँखों के सामने अँधेरा छा गया था। पर दरअस्ल वह देख नहीं पाता। आँखें बंद कर लिया था। अंदाज से बुढ़ियाल की सींगों को ढूँढ़ने लगा। पर फ़ौरन उसे लगा कि इस समय अगर वह बुढ़ियाल की सींग पकड़ता है तो उसे उतरने में कठिनाई होगी। बुढ़ियाल कान से झपट्टा

मारकर उसे आश्वस्त करना चाहती थी, और अपनी दुलकी चाल बढ़ा देती थी।

आँखे बद रखे-रखे ही बाघारू "आँ-आँ-आँ" की पुकार सुन पा रहा था। उसने आँखे खोली। कुछ-कुछ अस्पष्ट होने पर भी दिखायी दे रहा था। एक भैंस बुला रही थी। एक ही ? या फिर बारी बारी से ? भुक्खड ? भुक्खड की आवाज आ नही रही ? तो क्या उन्हे भी सूरज का गिरहन दीख गया है ? बाघारू जानता था कि वह असभव है। फिर वही "आँ आ-आँ" की पुकार। यह किसकी है ? क्या कोई अकेली भैंस पुकार रही है ? गिर तो नही गयी है ? बाघारू ने सामने देखा कि भुक्खड खडा है और गर्दन ऊपर उठाये पूँछ हिला रहा है। डर हुआ नही है। पर कुछ-न कुछ हुआ है जरूर, उसी से भुक्खड मूक बन गया है। तो ? अचानक बाघारू को सदेह हुआ कि कही गाभिन को तो बच्चा नही हो रहा है अभी ?

82
गोट में जन्म

मोड घूमते ही बाघारू ने देखा कि उसका सदेह सही था। वही भैंस पिछली टाँगो को फैलाकर खडी थी और उस बीच मे रखकर दोना और दूसरी भैंस पहरदारी कर रही थी। कई भैंस शायद आगे उतर गयी थी। यहा से नदी साफ दिखायी दे रही थी। ब्रिज, बाघारू का वह पत्थर भी नजर आ रहा था। और एक-दो मोड पार करते ही वे नदी मे पहुँच जायगे।

बुढियाल की पीठ से कूद कर उतरते-उतरते बाघारू ने एक बार देख लिया कि बाहर धूप का रग मद्धिम पड रहा है कि नही। सूरज मे तो 'गिरहन' लगना शुरू हो गया था। वह तो बाघारू ने देख लिया था। और थोडे समय के बाद उजाला पूरा गुम हो जायेगा। माया लबी होते-होते एक बार कही खो जायेगी। पर अब तक सियार या जगली मुर्गा बोला नही था। किसी तरह से किया क्या उसे और एक-दो मोड ठेल ठालकर ले जाया नही जा सकता ? कम-से-कम नदी तक ?

बाघारू दोड़कर भैंस के पास पहुच गया। वह गर्दन घुमाकर वैसे ही चिल्लाये जा रही थी। बाघारू ने उसके शरीर, गला, मुँह पर हाथ फेर कर पीछे आकर देखा, "आ, आ, आ," करते समय पीछे से बछडे का माथा, चाँदी-सा दिखायी दे रहा था। बाघारू दोडकर कुछ डाल-पात तोड कर लाया और नीचे बिछा दिया। बुढियाल ने बढ़कर ऊँचे से अपने मस्त गले को पश्चिम पहाड के शिखर की ओर बढ़ा दिया। जैसे पत्थर की बनी हो। उसके नीचे वह भैंस मिट्टी मे पीछे की टाँगो को पटक कर "आँ-आँ-आँ" करती चीख़ रही थी। चीख़ से मानो

आकाश फटा जा रहा था। बाघारू ने अपने उन दो हाथों से भैंस की दोनों टाँगों को और फैला दिया, उसके पिछाड़ी को दोनों हाथों से दोनों ओर से ठेलता हुआ पकड़े रहा। बछड़े का छोटा-सा गोल माथा उसे फाँक मे पूरा नज़र आता था। भैंस ने फिर से दिल दहलाने वाली चीख़ मारी—"ऑउ"। और सामने के दोनों पैरों से भार देकर मुड जाना चाहा। पर बाघारू के चलते घूम नहीं पा रही थी। फॉक को और थोड़ा बड़ा कर देने पर बछड़े का सिर और थोड़ा बाहर निकल आया था। पर अभी अगर बाघारू छोड़ देगा तो निकला हुआ माथा फिर भीतर चला जायेगा। बाघारू ने अपना पूरा बल लगाकर बछड़े के निकलने के रास्ते को और चोड़ा कर देना चाहा, जिससे कम-से-कम बछड़े का माथा तो और थोड़ा बाहर निकल सके। और थोड़ा भी बाहर आ जाये तो बाघारू उसे हाथ में पकड़ कर खींच लायेगा बाहर।

उस समय भैंस की दोनों टाँगों से होता हुआ खून, पानी, श्लेष्मा बहा जा रहा था। बाघारू की दोनो हथेलियों से होता हुआ वह खून पानी कोहनी तक जाकर चू रहा था—टपू-टपू मिट्टी पर। बाघारू हाथों मे ज़ोर देने के लिए जमीन पर दोनों टॉगों को कुछ फैलाये खड़ा था। उसने फिर सामने की ओर देखा कि नदी और जंगल के ऊपर बिखरे उजास धूमिल पड चुके है या नही। फिर चकित होकर बाघारू ने एक बार सोचा कि गोठ को ठेलठाल कर नीचे भेज दे या नहीं। दिखायी तो दे रहा था कि यहाँ से काफ़ी भैंसें चली जा चुकी थी। साथ में भुक्खड भी जाये तो ठीक रहेगा। दोनों हाथों से भैंस की पिछाड़ी को फाडने सा पकड़े-पकड़े बाघारू दोनों ओर देखा--भुक्खड़ तक चुपचाप पूँछ हिला रहा था, बुढ़ियाल भी चुपचाप खड़ी थी, पूरा गोठ सीधा गर्दन उठाये चुपचाप खडा था। घास को दख तक नहीं रहे, हुंकार भी नहीं कर रहे। अभी तो गोठ जैसा होने लगा था। एक पोखती भैंस बछड़ा देने लगी है। यहाँ तो एक ख़रीदा हुआ गोठ है जिसे गयानाथ ने ख़रीदा है। इस हाट, उस हाट में घूम-घूमकर ख़रीदा है। बुढियाल भी खरीदी हुई है। बूढ़ा सॉड़ भी ख़रीदा हुआ। जवान भी ख़रीदे हुए। उसके बाद तो गोठ में बछड़े होने लगे। बछड़े होने लगे तो गोठ बढ़ेगा। गोठ चालू रहेगा। बछड़े होने लगे हैं—बछडे। गोठ में बछड़ा।

तभी भैंस का पीछे वाला भाग बछड़े के माथे से पूरा-का-पूरा भर गया था। अब बाघारू के छोड़ देने पर भी माथा फिर से अंदर जा नहीं पायेगा। बाघारू ने अपने बायें पैर से भैंस के निचले पेट में हल्का-सा दबाव डाला। "कील, ज़ोर से कील, जोर से, ज़रा कौंख तो।"

उस दबाव में भैंस आर्तनाद कर उठी—"ऑं-ऑं-ऑ,।" सामने के दोनों पैरों को झटकाने लगी। भैंस जितनी ज़ोर से चीख़ती थी, उसके गले की आवाज़ उतनी लंबी होती जाती थी। दूसरी भैंसें चीख नहीं रही थीं, पर उनकी भी गरदन तनकर

लंबी होती जा रही थी। अब इस जंगल के भीतर बायीं ओर बुढ़ियाल की विराट गर्दन और दायें में क़तार से खड़े भैंसों की क़तार। और सामने नीचे उस नदी का गर्भ—बाघारू को लगता था, "अभी लग जायेगा, गिरहन, अभी लग जायेगा।" लग जायें तो लगे, अब उतना ख़तरा नहीं है। क्योंकि जंगल के अंदर से तो वह बाहर निकल ही चुका है—पर अगर जगह में भैंसों का झुंड तितर-बितर हो जाये।

बछड़े का माथा और थोड़ा बाहर निकल आया था, पर अब भी बाघारू दोनों हाथों से उसका माथा पकड़ नहीं सकेगा। बाघारू अपने दायें हाथ की तर्जनी से भैंस के पिछाड़ी की चमड़ी को थोड़ा-सा दोनों ओर खींच कर देखा। फिर दोनों हाथों की तर्जनी और मध्यमा को फाँक के अन्दर घुसाने की कोशिश करने लगा। चमड़े के नीचे की ओर से अंगुलियों को घुसाकर दबाते हुए मोड़ रहा था। भैंस की चमड़ी फट सकती थी। फटे तो फटे। अभी उसे उन सबका पता नहीं चलेगा। दोनों हाथों की चार अंगुलियाँ एक बार अंदर जाते ही बाघारू बाहर के दोनों अगूठा से बछड़े के माथे को प्लाम जैसे पकड़ लिया था।

वैसे ही पकड़े रहा--खींचा नहीं। एक बार फिसल कर अंगुलियाँ बाहर निकल आयीं तो फिर से घुसाना मुश्किल हो जायेगा। बाघारू ने धीरे-धीरे अंदाजा लगाया कि पकड़ मज़बूत है कि नहीं, पकड़ने से फिसलेगा कि नहीं ?

निश्चिंत होकर बाघारू ने अबकी धीरे-धीरे खींचना शुरू कर दिया। धीरे-धीरे खिंचाव बढ़ता गया। धीरे-धीरे। अब बाघारू ने दोनों हथेलियों में माथा को पकड़ लिया था। फिर उसे यह भी देखना पड़ा कि हाथ फिसलता है कि नहीं। अबकी अगर हाथ एकबार फिसल गया तो सिर पर हाथ रखकर बैठ जाना होगा। जब निकलना है तब बछड़ा निकलेगा ही। बाघारू जब निश्चिंत हो गया कि उसके हाथ की सही पकड़ में बछड़े का सिर आ गया है, तो वह पूरा बल लगाकर बछड़े को धीरे-धीरे खींचने लगा। बाघारू को जैसे मालूम था कि कितने धीरे और कब, कितने ज़ोर से खींचने से पेट के अंदर का बच्चा खून-पानी से सना हुआ बाहर जायेगा और दो टाँगों पर खड़ा हो जायेगा। उस पल आकाश में लाखों-लाख ग्रह-नक्षत्रों के अनगिनत आकर्षण-विकर्षण में बने अगणित कक्षपथ की सापेक्षता में सूर्य पर जो अँधेरा होता जा रहा था, एक सेकेण्ड के भग्नांश के निर्भूल नाप से, बाघारू का नाप था और अधिक निर्भूल।

माथे का बहुत-सा हिस्सा बाहर आ चुका था। बाघारू अब दोनों हाथों से बछड़े के सिर को पकड़ सकता था आसानी से। बछड़े के शरीर का और इस भैंस के पेट का प्रत्येक भाग बाघारू इस खूबी से जानता था कि उसने बायें हाथ से बछड़े का कंधा पकड़ कर थोड़ा-सा कोना कर लिया और दायें हाथ से माथे को थोड़ा बायीं ओर मोड़ते ही सिर को पा गया। माथे का मतलब तो

कंधा, गरदन या कपाल होता है। बाघारू ने बायें हाथ से गर्दन पकड़ कर दायें हाथ से कपाल पकड़ कर एक बार नीचे की ओर झटका दिया, बाद के झटके से ऊपर ठेलने से माथे की हड्डी थोड़ी-सी बाहर आ गयी। बाघारू तो अब और शरीर को थोड़ा पीछे की ओर झुकाया दोनों हाथों से गर्दन और माथा पकड़ लिया और बछड़े के माथे को धीरे-धीरे झटका देकर बाहर निकालने लगा। पहले आँखों के ऊपर का हाड़, सामने का हाड़ निकालने लगा। यही मुँह की आखिरी बाधा थी। झटके से सड़ाक से बाकी सारा पतला मुंह गला तक निकल आया। और भैंस के पीछे बछड़े का माथा झूलता रहा। भैस शायद थोड़ा-सा हल्का महसूस करने लगी—वह अपना एक पिछला पेर थोड़ा-सा हटाना चाहती थी—और फैलाये नहीं रख सकती थी। बाघारू ने पलभर का भी समय नहीं दिया। बायें हाथ से बछड़े का माथा पकड़े दायॉ हाथ उसके गले की फॉक से अंदर डाल दिया। अंगुलियों से टटोलकर देख लिया कि पेट में बछड़े का सामने के पैर की मुद्रा सही है कि नहीं। फिर दायें हाथ से दोनों पैरों को अंदर से दबा कर फिर से ज़ोर लगाकर खींचने लगा था धीरे-धीरे। पर वह निश्‍िचत था कि पूरे शरीर को झूलता हुआ उसे बाहर खींच लायेगा।

बछड़ा नर हो तो सामने का पेर और कंधा सबसे अधिक चोड़ा होगा और मादा हो तो पिछला पैर और कमर चौड़ी होगी। बाघारू ने बछड़े का माथा छोड़कर बायाँ हाथ भी अंदर घुसा दिया था। पर उसे ज़्यादा अंदर लेना नहीं पड़ा। थोड़ा घुसाते ही उसे कंधा मिल गया था। बछडे का माथा बाहर झूल रहा था। और बाघारू दाहिने हाथ से भैंस के पेट के भीतर सामने का पैर सटे छाती और बाहर बायें हाथ से गर्दन पकड़कर मिट्टी में दोनों पैरों को ज़ोर से जमाकर, झूल गया। भैंस गों-गों करने लगी। बाघारू के बायें हाथ की अंगुलियों की गाँठें भैंस की फॉक में रुक जाते ही वह फ़ौरन बायाँ हाथ गर्दन से खोलकर अंगुलियों को सीधा कर और खींचकर बाहर ले आया। और दायें हाथ से पूरा दम लगा दी खींचने में। सड़ाक् से गरदन बाहर आ गयी और बछडे का माथा और आगे झूल गया। सड़सड़ाता हुआ बछड़े की गर्दन, कंधा, छाती और पैर नीचे आ गया और भैंस के घुटने तक झूल गया। पर सामने का पैर पूरा निकलने से पहले ही बाघारू ने बायें हाथ से गर्दन को पकड़ ली और रोक लिया। जिस तरह से फिसलता हुआ बाहर निकल रहा था, पीछे का पैर अगर वहीं फँस जाये तो मुश्किल होगी। फिर बाघारू दायें हाथ को फिर से अंदर डाल दिया। तब तक बछड़े का शरीर नीचे की ओर झूलने लगा था, हरहराते नीचे झुकता जा रहा था। बायेँ हाथ से उसे थोड़ा ऊपर उठाकर बाघारू ने दायें हाथ से पिछली टाँगों को एकबारगी मुट्ठी में पकड़ लिया। फिर उसे पकड़ कर खींचने लगा। कमर का हाड़ रुक गया था। पर तब तक पिछले पैरों के खुर निकल चुके थे। एक झटका देते ही बछड़े का

पूरा पिछला भाग निकलकर उस थैली के साथ घास के ऊपर झूलने लगा था। बाघारू ने हाथ देकर बछड़े को सुला दिया था। भैंस के पेट से झिल्ली की थैली जल, रक्त निकलता रहा।

83
रेवड़ में एक और आदमी

भैंस अभी थर-थर काँप रही थी और मुँह को बार-बार पीछे की ओर ले जाना चाहती थी। पर पता नहीं, क्यों नहीं लाती। बाघारू ने अबकी सामने की ओर देखा—क्या धूप में परछाई पड़ रही है ? बाघारू ने पश्चिमी पहाड़ की ओर देखा। पहाड़ की परछाई विचित्र नजर आ रही थी। वैसा बाघारू ने कभी नहीं देखा था। गोठ भी ऐसा कुछ समझते हैं कि नही, पता नहीं। अचानक बहुत-सी भैंसें एक साथ बोलने लगी थीं। मिट्टी को खुरचने लगी थीं। भुक्खड़ इतने समय के बाद आकाश की ओर मुँह उठाये जोर-जोर से भौंक उठा। बुढ़ियाल ने अपने बड़े-बडे कानों से एक बार बायें तो एक बार दायें पीठ झाडी। गिरहन लग गया रे, हमरे गोठ में भी गिरहन लग गया।।

बाघारू ने और पल भर भी देर नही की। उसने दोनों हाथों से भैंसे के पेट के अदर से खून-पानी से लथपथ फूल का बाक़ी हिस्सा खींचकर बाहर निकाल लिया। फूल गिर गया ? उसके बाद नाल तोड़कर एक गट्ठी बाँधकर बाघारू ने बछड़े को अलग कर दिया। उस समय बछड़ा चारों पैर फैलाकर गर्दन उठाने की कोशिश कर रहा था। बाघारू ने टटकारी दी, टर र-र-र, टर-र र-र अ । सामने की भैंसें चलना शुरू कर दी। पर उनके सींग उठे हुए और पूँछ सख्त और ऊपर को उठी हुयी थीं। "डर गये हैं ? डर ? हमरे गोठ में गिरहन आ गिया है रे, आ गिया हे।" बाघारू टटकारता रहा, "टर-र-र-र-अ, टर-र-र-र-अ !" और आवाज़ देता, "जल्दी, जल्दी चलो, चलो, चलो, टर-र-र-अ।"

यह सब करते-करते बाघारू बुढ़ियाल के गले को सिर्फ़ एक बार छू भर पाया था। इससे बुढ़ियाल समझ गयी थी कि उसको कुछ करना है। वह कई कदम आगे आ गयी। बियाई भैस बछड़े को न देखकर "ऑ,-ऑ-ओ-ऑँ" कर रो उठी थी। "अरी रह। बाद में रोना।" बाघारू ने दोनों हाथों से कुछ घास-पात तोड़ कर बछडे के शरीर से आँवल पोछ दिया, सिर्फ एक बार। जितना पोंछ पाया। उसका गोठ रवाना हो चुका था। बाघारू दोनों हाथों से बछड़े को गोद में उठा लिया था। बछडा गर्भ में जैसे था ठीक उसी रूप में चारों पैर एक कर, गर्दन झुकाकर गोल हो गया था। बीच-बीच मे एक-दो बार सिर्फ सिर उठाता भर था। वह बाघारू के दोनों हाथ में बाघारू की छाती के भीतर वह उसी तरह

से था, जैसे कि बाघारू की छाती उसका दूसरा गर्भ हो। बाघारू ने कभी गोद में, कभी छाती पर उठाता, कभी दोनों हाथों से ऊपर उठाता हुआ बछड़े को पकड़ रखा था। और बुढ़ियाल को पैर के धक्के से टटकरा। बुढ़ियाल चलना शुरू कर दी। बाघारू बछड़े को छाती पर उठाये बुढ़ियाल के बाजू में चलने लगा था। तब तक बियाई भैंसों को छोड़ कर बुढ़ियाल आगे बढ़ गयी थी। और बियाई भैंस बुढ़ियाल के पास-पास पीछे-पीछे भागती-भागती जीभ निकाल कर बाघारू की गोद से बछड़े को जितना हो पाता, चाटती जा रही थी। इससे बाघारू के हाथ के बहुत-से हिस्से की भी चटाई कर जाती थी।

"टर्र-र-र-र-र-अ, टर्र-र-र-र-र-अ" करता हुआ बाघारू बुढ़ियाल के दाहिनी ओर लपक कर चल रहा था। "पूरा गोठ उतर गया था अब तो, चल, चल, गिरहन लगा है, गिरहन लगा है, गिरहन लग गया है।" "ची-ई-री ची-ई-री" आवाज़ करता पक्षियों का एक झुंड जंगल के भीतर से उड़कर आ गया था और सामने की किसी अनिर्दिष्ट आश्रय की ओर उड़ते-उड़ते इन झुंडों को देखकर अचानक घूम गये थे और बाघारू की गोद में उस नये बछड़े की ओर नीचे आते थे, फिर ऊपर उठते थे, बुढ़ियाल के ऊपर थोड़ा झुककर नदी के ऊपर उड़ते चले जाते थे।

"गिरहन, गिरहन, पंछी भी बाहर हो गये हैं। बछड़े को चोंच मार सकते हैं, भुक्खड़, भुक्खड़।" भुक्खड़ पीछे-पीछे था। उसने बाघारू के लपकते पैरों के बीच मुँह घुसा दिया। बाघारू लपकते-लपकते बुढ़ियाल की पीठ की ओर गर्दन घुमाकर भुक्खड़ को बोला। "उठ, उठ।" कहते-कहते वह थोड़ा नीचे झुक गया। घुटनों को मोड़ा। भागते-भागते ही भुक्खड़ बाघारू के झुके पीठ के ऊपर सामने के दोनों पैरों का भार देकर उठ गया और बाघारू के सीधा होते-होते भुक्खड़ फौरन बुढ़ियाल की पीठ पर चढ़ गया था। अपने पीछे के दोनों पैर जमाकर बैठ गया था और मुँह उठाकर ज़ोर-ज़ोर से भौंकता हुआ पक्षियों को खदेड़ने लगा था। "टर-र-र-र-रअ, टर-र-र-र-अ," बाघारू एकदम से रेवड़ के पीछे था—"गिरहन लग गिया रे, गिरहन लग गिया है, उतर चलो, उतर चलो, जल्दी, फ़ौरन, टर-र-र-र-र-अ, टर-र-र-र-अ,।"

बाघारू जैसे पहुँच ही गया हो। सीधा उतरने से तो बस कुछ क़दम की दूरी थी। फिर नदी से चलकर गोठ तक पहुँच जायेगा। पर बाघारू और नदी के बीच अभी वही "खोप" (घने घासवाला जंगल) था। "इन्हें इस हालत में लेकर उतरा नहीं जा सकता" शायद अंदर कहीं, कोई पत्थर अलग हो गया हो, पैर देते ही फिसल जायेगा या फिर घास से ढके गड्ढे में पैर फँस जायेगा। उससे तो सीधा चलना बेहतर है, कौन बाँका घूमे। "टर-र-र-र-अ, टर-र-र-र-अ !"

सूरज को कितना गिरहन लगा है उसे नापने के लिए बाघारू भागते-भागते

ऊपर की ओर ताकता जा रहा था। अकाल-झुटपुटे मे पश्चिमी पहाड़ की एक अनजानी छाया ने डायना नदी के चर को एक कोने से ढँक दिया था। वह दूध-गाडी दक्षिण-पश्चिम की उस जगल से होकर आती थी। जो थोड़ी-सी ऊँचाई पर से देखी जा सकती थी, उस जगल के माथे से होते हुए मीलो तक फैली हुई थी वह छाया। उजाले मे कालिख लग गया है, लग गया है, अँधेरा, अँधेरा, गिरहन, गिरहन ।''

बाघारू आखिरी मोड घूम गया।

निकट मे ही बुढियाल थी। बाघारू की गोद म नया बछडा– खून-पानी, श्लेष्मा से सराबोर। एक बार घासपात से बछडे को पोछा था, इसी से घासपात बछडा के शरीर मे लगा हुआ था अब भी। जेसे कि वह जन्म-चिह्न हो। छीटदार भैस। बुढ़ियाल की पीठ पर बैठा भुक्खड जोर स भाके जा रहा था। बुढियाल के बायी ओर वही बियाई भैस-बच्चे वाली। बुढियाल के थोडा पीछे बदन घसीटती हुई भागती आ रही थी, गले को बढाकर जहाँ तक हो सकता है बछडे को चाटती हुई, भैस के पीछे, पिछले दोना पैर भीतर की ओर खून पानी से थकथक कर रहा था। बुढियाल क दायी ओर बाघारू था। लपकत-लपकते कभी बुढियाल के शरीर से धक्का खा जाता। बुढियाल जैसे नय बछडे के साथ बाघारू के चलते चलते ढकी हुई थी। कुछ ऊपर से और कुछ पदार्थ से नए बछडे पर दबाव पडता था। बाघारू का गला, छाती, पेट ओर बगल से अगुली तक दोनो हाथ खून और पानी स लद लद कर रहा था। इस तरह से भागते हुए वे नदी की पथरीली छाती पर घुस गये थे।

84
पाखी सर्ग : और एक वृत्तांत

सूरज का प्रकाश धीरे-धीरे कम होता जा रहा था। जगल, पहाड पत्थरो के साये बदलने लगे थे। डायना के सीने पर अनगिनत छोटे-छोटे पत्थरो के अनगिनत रगो का साया लबे से लबा हो चला गया था। किसी सूर्योदय या सूर्यास्त मे रगो का ऐसा प्रपात नही होता। डायना के सीने पर छोटे-छोटे पत्थरो के इन रगीन सायो के ऊपर विराट छायाकार पत्थरो की काली छाया पडती थी।

गोठ अब अपनी जगह पर पहुँच चुका था पर कोई भी भैस बैठी नहीं थी। बदन से बदन सटाये, गर्दन बढाये सभी धमकते हुए खडी थीं। उनमें जैसे निश्चितता नही थी कि वे असल मे वापस आ भी गयी है या नही। जैसे किसी भी पल उन्हे वहाँ से हटना पड सकता है।

बछडा इस गोठ के बीच मे लडखडाते पैरो पर खडा होने की कोशिश कर

रहा था और पैरों के मुड़-मुड़ जाने पर गिर जा रहा था।

प्रकाश और कम होता जा रहा था। प्रकाश के कम होने पर अँधेरा-सा छाता जा रहा था। बड़े-बड़े पेड़ों के पत्ते मुड़ गये थे। अस्पष्ट दिखते पेड़ अचानक लंबे-लंबे नज़र आने लगे थे। सूरज के प्रकाश के अभाव में बाघारू को ठंड लगने लगी थी। वह सूरज की ओर देख रहा था। प्रायः पूरा-का-पूरा सूरज अस्त हो चुका था। सिर्फ़ धागा जैसा एक ही हिस्सा बचा हुआ था। "गिरहन, गिरहन।"

पूर्णग्रास गिरहन लगते ही भैंस गला उठाकर "ऑ-ऑ-ऑ" करके चिल्लाने लगती थी। पूँछ और माथा दोनों ही मिट्टी की ओर झुकाकर भुक्खड़ रोने लगता था ज़ोर से--"उउउ उउउ उउउ"

सिर्फ़ वह बियाई भैंस अपने बछड़े को चाट रही थी और बछड़ा लड़खड़ाते हुए उठकर खड़ा हो जाता था। फिर पैर-गर्दन मुड़ जाने पर गिर पड़ता था। फिर सीधा होना शुरू करता था। जैसे इस पल गर्दन उठाकर दो-चार कदम न बढ़ने से उसका जन्म पूरा नहीं होगा।

जंगल के भीतर पक्षियों के उड़ने की फड़फड़ाहट सुनायी दे रही थी। घास के जंगल में एक जोड़ी जुगनू चमकते हुए पानी की तरह चक्कर काटते चले जाते थे। जंगल के भीतर से हिरन जैसे एक झुंड के भागने की आवाज़ आ रही थी। गिरहन लगे आकाश के अंधकार से उतर आये थे चमगादड़। फिर उड़ते हुए चले भी गये थे। सियार और जंगली मुर्गों ने एक साथ प्रहर की घोषणा कर दी थी। इससे भुक्खड़ फिर से ज़मीन की ओर सिर झुकाये रोने लगता--उ-उ-उ-आउ-उ-उ-उ ।

आवाज़ जैसे मिट्टी को फोड़कर भीतर चली जायेगी। 'गिरहन, गिरहन, गिरहन पूरा लगा गया, पूरा हो गया—बाघारू अपने पत्थर के नीचे, गोठ के बीच में दूसरा सूर्योदय कब होगा इसी की प्रतीक्षा में खड़ा था।

पहली बार तो बाघारू को खयाल नहीं आया। दूसरी बार, इतनी सारी आवाज़ों के बीच साफ़ सुनायी नहीं दे रहा था। पर उसके बाद एकदम से स्पष्ट, जैसे बाघारू को सुनाने के लिए ही आवाज़ इतनी तेज़ थी। पाखी पूरे तन-मन से चीख़ रहे थे—"क-अ-क-अ, क-अ-क-अ।" आख़िरी भाग जैसे सुनायी नहीं दे रहा था। गला बंद हो जाता था। पाखी जंगल के बहुत ही भीतर कहीं थे। और इस गिरहन के अंधेरे को देखकर घबराकर तेज़ तेज़ उड़ते आ रहे थे। उसका शरीर भय से धुकर-धुकर हो रहा था। बाघारू पाखी के शरीर के उस हिस्से को देख पा रहा था। पाखी फिर से प्रगाढ़ और स्पंदित स्वर में बोल उठा था—"क-अ-अ-क।"

तबतक बाघारू की साँस स्वाभाविक नहीं हुई थी। पसीना सूखा नहीं था।

हाथ-पॉव में लगा खून-पानी धोया नहीं गया था। खून सने दोनो हाथो को मुँह के क़रीब ले जाकर बाघारू खूब दवी आवाज़ मे, गर्दन उठाये बिना पाखी की आवाज़ की जवाब में बोल उठा—सिर्फ़ एक बार।

पर अब पाखी कोई जवाव नही देता। "ये तो चुपा गया अब। चुपचाप बैठा होगा।" बाघारू ने और एक बार आवाज़ दी। उमी तरह दवी हुई आवाज़। उसके थकी हुई सॉसों की वह दवी आवाज कॉप-कॉप जाती थी। सिर्फ गले से ही नही। पूरे तन से बाघारू पुकार रहा था, शरीर के पसीने ओर सॉसों से पुकार रहा था। पाखी इम बार भी चुप लगा जायेगा।

बाघारू पहले तो मुन नहीं पाया। पर उसके बाद ही सुना चारो ओर गिरहन की उन आवाजो के भीतर ही पाखी की वह नरम जवाबी पुकार उभरती आ रही थी—क-अ-क-अ-क, क-अ-क-अ-क।" अबकी बार जैसे वह आवाज को पूरा नही कर पा रहा था। आवाज लगाते ही जेसे गला किसी गहराई मे खोता चला जा रहा था। ··घारू को जेसे नजर आया हो, पाखी उस डाल के ऊपर दोनों पेरों के बीच शरीर को छिपाये बैठा था और गर्दन के भीतर गले को छिपाये अपने साथी की प्रतीक्षा कर रहा था। कहॉ पर है वह अनजान, अजाना साथी, सिर्फ उसका संकेत भर पाने के लिए गले से आवाज देता जा रहा था। मानो इस अंधकार के बीच वह संकेत जैसे उडता चला जायेगा।

बाघारू ने दोनों हाथ मुँह के क़रीब लाकर दबी आवाज मे डूबता हुआ वह आवाज करता ठीक बुलबुला बनाने जेसा। बाघारू फिर से पुकार उठता। बाघारू फिर से पुकारता जाता।

दोनो हाथ मुँह में दबाये, पुकारते-पुकारते, बाघारू थोड़ा आगे बढ जाता था डायना की ओर। गिरहन के अंधकार में डायना का फेन, पत्थर से छिटक कर उठ रहे थे। बाघारू पानी में पैर डाले पुकारते-पुकारते और थोड़ा आगे बढ़ जाता था।

जिस मोड़ पर नदी जंगल के अंधकार के बीच खो गयी थी—वहीं स्रोत के विपरीत दिशा में बाघारू खड़ा हो गया था। डायना के जल के साथ मिलकर, डायना के ऊपर से उस पाखी की पुकार तैरती चली आ रही थी। पाखी का पूरा शरीर ही जैसे पुकार रहा था, ऐसी गहन थी वह पुकार। बाघारू अपने सूखे और खून से सने दोनों हाथ मुँह की ओर लाकर गहराई से पुकार उठा। उस आवाज़ में हॉफने जैसी थर्राहट थी। बाघारू जैसे पाखी की तरह पूरी तरह से पुकार नहीं पाता था। पाखी और बाघारू की इन पुकारों से गिरहन के अकाल का अंधकार वन जंगल की आवाज़ों से जैसे भर-भर उठता था। अब तो गिरहन के ख़त्म होने पर फिर से सूर्योदय होगा।

85
वन-सर्ग का आख़िरी अध्याय

उस दिन सुबह बाघारू अपना गोठ लिए पहाड़ पर गया था, पश्चिम की चढ़ाई से होता हुआ। अब दोपहर को या शाम को पूरब की ढलान से होता हुआ उतर आया था। सूरज में अचानक गिरहन लग जाने से दोपहर या शाम दो-दो बार हुई थी, बस यही। नदी से गोठ लेकर निकल कर बाघारू फिर से नदी में लौट आया था—इस बीच उसके गोठ में एक भैंस की बढ़ोत्तरी हुई थी। यह सब मिल-मिलाकर एक पूर्णता का भान होता था।

बाघारू की कोई एक भी ऐसी घटना नहीं, जो कहीं से शुरू होकर कहीं ख़त्म होती हो। प्राकृतिक तौर से कुछ भी तो कभी वैसा होता-हवाता नहीं।

बाघारू की तमाम घटनाएँ उसके सामने, पहले ही घटित होती आयी थीं और बाद में भी घटित होती चली जायेंगी। तमाम मानविक घटनायें तो इस तरह से व्यक्ति-निरपेक्ष हुआ करती हैं।

बाघारू का सब दिन तो हू-ब-हू एक-सा होता। वह तो कोई अलग दिन नहीं बिताता कि एक के बाद एक दिन मिलकर उसका जीवन तैयार हो। बाघारू जीवन बिताता, पूरा का पूरा भरपूर जीवन। उसकी हरेक भंगिमा तो वीरता की भंगिमा है—वह चाहे नदी में तैरना हो, पत्थर पर सोना हो, चाहे भुक्खड़ के साथ खेलना हो या फिर बुढ़ियाल की पीठ पर खड़ा होना हो। चाहे भैंस का बच्चा निकालना हो या पाखी की बोली बोलना हो।

भाषा का कोई-न-कोई अर्थ तो होता ही है। बाघारू का तो कोई अर्थ नहीं। बाघारू का तो सिर्फ़ जीना और जीना ही है। वह तो पूरा-का-पूरा सिर्फ़ जीवन।

भाषा में कुछ-न-कुछ अलंकार हुआ करता है। सिर के बाल से लेकर पैर के नख तक बाघारू के तमाम शरीर में वह भी बीच में एक लँगोटी के अलावा कुछ भी ढँका हुआ नहीं है। बाघारू जैसी नग्न भाषा ढूँढ़ने पर भी मिलेगी कहाँ ?

भाषा माने ही तो नाम है। बाघारू का तो कोई नाम नहीं है। वह तो सिर्फ़ काम से बदलता रहता है—कुल्हाड़ीवाला, बाघारू, पत्थर-वाला, भैंसेंवाला, और इस तरह से होते हुए जाने का तो अंत नहीं।

चर-सर्ग

निताई आदि का गृह-त्याग और सीमांत वाहिनी का सीमा त्याग

86
भला ब्रिज पर रोशनी क्यों ?

नरेश ने अपनी लाल टॉर्च जलाकर हाथ की घडी देखी। टॉर्च का प्रकाश गोल और चीकट मिट्टी पर गोलाई मे फैल गया था। उस प्रकाश के वृत्त से सिर्फ़ पैर-माथा और धड़ को छोड़ पैर, घुटने तक ओर पजे तक खाली पैर। कीचड व पानी से अधिकाश भाग घुटने तक सराबोर था।

नरेश ने टॉर्च बुझा दी। इससे मिट्टी के ऊपर अँधेरा हो गया। पर जहाँ टॉर्च का प्रकाश नहीं पड रहा था, उसी अस्पष्ट कोहरे-सी उज्ज्वलता के बीच नरेश तिस्ता ब्रिज की ओर अपने बुझे टॉर्च को उठाकर दिखाया। बुझे टॉर्च के साथ-साथ उसका हाथ भी तन गया था, मानो हाथ मे टॉर्च नही, बदूक पकड़े हो। या कम से कम एक रिवॉल्वर का खयाल एक बार आते ही नरेश मानो टॉर्च को सचमुच रिवॉल्वर की तरह देखने लगा। फिल्मो मे देखे रिवॉल्वर के साथ मिला कर कल्पना मे एक बार देखत ही मन मे आया कि नरेश का टॉर्च उल्टे रिवॉल्वर जैसा दिखायी देता है, जिसकी नाल नरेश के सीने की ओर तनी है, टॉर्च का हेडल और घोड़ा है कॉच मे ढॅके हुए बॉक्स। किंतु उस उल्टे टॉर्च से अब अँधेरा ही छोडे जा रहा था तिस्ता ब्रिज की ओर।

नरेश ने कहा, "रात के दस बज गये, अब तक तिस्ता पुल का लाइट बुझाया नही गया ?"

तभी सब मुडकर तिस्ता ब्रिज की ओर ताकने लगे।

नरेश के टॉर्च के इशारे से ये सभी तिस्ता ब्रिज की ओर घूमकर खडे हो गये। वैसे घूमकर खडे होने की कोई खास जरूरत भी न थी, सिर्फ़ गर्दन घुमा लेते तो भी दिख जाता। और देखने के लिये गर्दन घुमाने की भी कोई जरूरत न थी, एक बार उल्टी दिशा में देखने पर ही पता चल जाता कि पीछे तिस्ता पर बत्ती जल रही है। पर अब नरेश की बात मे, फिर एक बार रिवॉल्वर जैसे तने नरेश के बुझे हुए टॉर्च के निर्देश से ही वे घूमकर खड़े हो गये और देखा कि, तिस्ता ब्रिज का प्रकाश बुझा नही है। घड़ी देखने के लिये पल भर पहले नरेश ने जब टार्च जलायी थी, तब गीली मिट्टी पर इतने सारे सबूत खुद गये थे और उन पैरों के लंबे, टेढ़े-मेढे, छोटे साये एक-दूसरे को काटते हुए मिट्टी पर ऐसे जुट बनाती गयी थी या फिर शरीर से उठते हुए, ऊपर के अंधकार में इस तरह से खो गये थे कि नरेश के टॉर्च की चौहद्दी में अगर इंसानी जंगल न हुआ तो भी कम-से-कम दिगत आकाश पर मनुष्य की भीड़ लग गयी-सी लगती तो थी ही। पर अब इस नदी से आकाश तक कोहरे में देखा गया कि ये सिर्फ़ गिनती के ही लोग थे। आकाश से मिट्टी तक फैले इस कोहरे में रास्ता भटक गये थे और जहाँ वे खडे थे वहाँ कोई मिट्टी नहीं, चर नहीं,

बल्कि एक नाव थी, मुहाने में रास्ता भटकी हुई नाव। एक नाव के मुसाफिर, माँझी जैसे एक लकड़ी के छोटे-से टुकड़े पर किसी तरह से खड़े होकर नज़रें घुमा-घुमाकर तट की तलाश कर रहे थे—सिर्फ़ आँखों से ही। और उस पानी के विस्तार में उनका बहते रहना ही सबसे अधिक अप्रासंगिक था। ये, इस चर के गिनती के कई लोग उसी तरह से सामने तिस्ता ब्रिज के प्रकाश की ओर ताके जा रहे थे—ये चर बहते-बहते इस ब्रिज से टकरा कर जैसे टूट जायेंगे, इसी तरह की एक आशंका से। तभी उनके इस चर के उत्तरी पाट में तिस्ता का पानी आकर टकराया था, दायीं ओर घूम गया था और शहर की ओर के किनारे पर जाकर पछाड़ खा गया। पर अब जैसे उनके कान में ये आवाज़ें आ नहीं रहीं थी—जल में वह लोहातोड़ आवाज। क्योंकि तीन दिनों से यह आवाज़ उनकी आदत बन चुकी थी। अब उन्हें ऊँची आवाज़ मे बातचीत करनी पड़ती थी वर्ना सुनायी नहीं पड़ती। हवा तो उड़ा ले जाती ही थी, फिर पानी की ऊँची आवाज़ भी दबा देती थी। बात करते समय आवाज़ को ऊँची करके वे नदी की बाढ़ की आवाज़ को दबा देना चाहते थे—इधर कई दिनों से।

किसी ने कहा, "भूल गया है।"

"रोज शाम को तो भूल जाता है, और आज एकबारगी आधी रात तक भूल गया है ?"

"सिनेमा देखने गया है, लौटा नही है।," लहजे से पता चलता था कि वह रावण ही है।

"ससुराल गया है साला, तीन रात से पत्नी के आँचल मे सोया है। कहता है कि सिनेमा गया है ?" जगदीश बारू बोला। एक मामूली-सी हँसी की आँच सबको महसूस हुई। रावण ने जगदीश को चिढ़ाने के लिये ही फिकरा कसा। जगदीश भी चिढ़ उठा था, "आँखें अच्छी तरह से फाड़-फाड़कर देख, ब्रिज पर कोई गाड़ी-वाड़ी तो खड़ी नहीं है ?" नरेश बोला और दाये पैर की अगुली के ऊपर भार देकर सीधा होने से जैसे आँख की रोशनी बढ़ जायेगी, इस तरह से उसने ब्रिज की ओर देखा।

"आवाज़ सुन नहीं रहे ट्रक की ?" जगदीश अबकी बार मिट्टी पर ऊकडूँ बैठकर बीड़ी सुलगाने लगा। उसकी आँखों में मोतियाबिंद था, दिन में भी यहाँ से उसे इतना बड़ा ब्रिज नज़र नहीं आता। ऐसा लगता था जैसे ब्रिज न हो उस पार का झाड़-झंखाड़ हो। जब देख ही नहीं पा रहा तो झूठमूठ खड़े रहकर भी क्या फ़ायदा ? बल्कि इस भीड़ के बीच बैठ जाने पर ही जैसे तिस्ता ब्रिज की बत्ती जलाने का कुछ हद तक ख़तरा टल जायेगा।

उस भीड़ के बीच से जगदीश चिल्लाया, "क्या ? कुछ नजर आ रहा है ? कुछ चलता फिरता ?" कुछ समय गुज़र गया। जैसे जगदीश के निर्देश के मुताबिक वे गौर से देख रहे थे कि सचमुच कुछ नज़र आ रहा है या नहीं। फिर चीखकर

बोले, "हॉ, हाँ, दिखायी दे रहा है। दिखायी पडा।" और कुछ समय गुज़र गया। तर्जनी और मध्यमा के बीच बीड़ी सुलगाता हुआ आख़िरी सिरे की ओर बढ़ता गया। मुट्ठी मे पकड़े रहने पर भी जगदीश नही पी गया। फिर क्रोधित हो उठा था, "साला. सुअर का बच्चा, दिखायी देता है तो कहता क्यों नही ?"

सभी हॅस पड़े थे। जगदीश को चिढाने के लिये ही गजेन ने कहा था, और फिर जगदीश चिढ भी गया था काफ़ी।

"ऐ जगदीश, तू ओर बइठे-बइठे इहॉ क्या कर रहा है, देख तो, जरा ठीक से देख। ब्रिज हे कि नहीं, मुझे तो लगता है कि ब्रिज हैई नही।" जगदीश के हमउम्र गवण की आवाज़ सुनायी दी। पर जगदीश के मोतियाबिंद को लेकर किये गये इस मजाक से चिढा नही। मन-ही मन कुढने पर भी मुँह से कुछ नही बोला। कुछ समय व्यतीत हो जाने पर नरेश ने टॉर्च को फिर सिर के ऊपर उठा लिया। ब्रिज की ओर करके जलाया जैसे वह अब तक हिसाब ही लगा रहा था कि टॉर्च जलाने पर प्रकाश कितनी दूर तक जायेगा।

नरेश को सदेह हुआ। टॉर्च शायद जला नही है। उसने स्विच ऑफ करके फिर से जलायी। पर फिर मे उसे ऑफ़ करना पडा। अबकी टॉर्च को नीचे कर दिया, एक बार जोर से झटका दिया, फिर उसे अपने चेहरे की ओर कर ऑन किया और फौरन ऑखे बद कर लीं। गेशनी मे उसकी ऑखं चौधिया गयी।

"अरे, नरेसवा को देखकर उसका टॉच भी सरमा गया है।," रावण की इस बात पर सब हॅस पडे थे। भीड के बीच से जगदीश बारूई जो अचानक खॉसने लगा था मिट्टी की ओर मॅुह किए, उसका कारण यह था कि, पहले तो वह भी हॅस पड़ा था, या फिर बीडी का धुऑ खॉसी का कारण था। न हो तो फिर इतनी हॅसी के बीच थोडा-सा हंसकर वह जतला दिया था कि वह भी वहॉ मौजूद है। पर वह खड़ा नही, बैठा हुआ था।

नरेश ने फिर से टॉर्च को सिर से ऊपर उठाकर ब्रिज की ओर करके जलायी। अबकी समझ में आया कि, उसका टॉर्च जल रहा है कि नही। क्योंकि कोहरा और हवा इतना घना था कि उसे भेदकर प्रकाश जा नहीं पा रहा था आगे। जैसे हवा ने पल भर के लिये टॉर्च के प्रकाश को पोंछ दिया हो। उसके टॉर्च का प्रकाश इस हवा, तूफान, पानी को भेद कर बिल्कुल आगे नहीं जा पा रहा था। इससे नरेश का थोड़ा अपमान हो गया। अपने काम से अपना ही अपमान। थोड़ी-सी आशंका भी होती है। क्योंकि बस यही एक टॉर्च ही था, जिसने पिछले कई दिनों से उसे एक स्वतंत्र मर्यादा दी थी। कम-से-कम रात में तो उसे छोड़ नहीं सकता। पर अब आँखों के सामने तिस्ता ब्रिज के क़तार में लगी लाइटों के बावजूद यहाँ वह टॉर्च लेकर थोड़ा भी बिंध नहीं पाया। चारों ओर के पानी मिले हवा को, इससे तो इसके ऊपर जो निर्भरता थी, वह घट जायेगी। इज्ज़त भी कम हो सकती है। निताई चीख़कर बोला,

"अरे कौन है रे, जा तो जल्दी। फटाक् से देउनिया का रेडियो लेकर आ।'

जगदीश 'रे-रे' करता हुआ खडा हो गया, "अरे, अरे, बरसात का पानी से बैटरी डाऊन हो जायेगा। बैटरी डाऊन हो जायेगा। एक तो रेडियो का ही सहारा है। कनकट्टू मास्टर का तो पहिले से ही कल्याण हो चुका है। रेडियो लाना नही। रेडियो लाना नही बिल्कुल।"

फिर जगदीश उसके बाद दोनो हाथ सामने झुलाकर बोला, "क्यो, नही कोई जाते ? ऑय, बात क्यो नही कहते, अरे कोई मुँह तो खोलो।"

निताई चीखकर बोला, "अरे और क्या बोलेगे ? तुम्हारे सब तो उर्मी मे लथपथ हो चुके हे। ब्रिज के ऊपर इतनी रात गये बत्ती जलती है, तो क्या इस तरह निश्चित होकर रेडियो पर 'पाला' सुनना होगा न ? या फिर काकी के साथ सिनेमा का गीत सुनना होगा रे ?"

"चुप रह हरामजादा," जगदीश चिल्लाया, "सुनना हे तो घर पर जाकर सुन आ, तो फिर यहाँ रेडियो लाने का जरूरत ही क्या हे। अभी तो शायद पतिघातिनी सती' पाला होने वाला हे न ? जीत्तो सब "

जगदीश खडा हो गया था। वह तकरीबन कुछ भी देख नही पा रहा था, इसी से खडा होकर एक ओर मुँह किये चिल्लाता रहा। उसके गर्दन फिराने के अदाज मे एक अनिश्चितता थी कि जिसके उद्देश्य से यह कहा जा रहा था, वह उसके सामने है भी या नही। बात खत्म करते ही जगदीश ने हाथ की मुट्ठी बनाकर खूब जोर से झटका। पर वह यह समझ गया कि आग बुझ गयी है। उसने हाथ झटक कर बीडी फेक दी। पर बीडी गिरी नही, उसके हाथ मे ही लगी रही। जगदीश के सिर पर हाथ रखने से बीडी सिर के बालो मे फँस गयी थी। "तो जा न नकु, रेडियो सुन आ, बाढ का सिगनल सुनकर ही चले आना।" जगदीश बोला।

नकु बोला, "इहाँ खडे-खडे गाऊँ या वही। चलो फिर सभी चलते है। अभी तो सिगनल देने लगा है, मेरे आने के बाद अगर फिर देने लगे तो ?"

"अगर ऐसा हुआ तो तेरा जेठा (ताऊ) आदमी भेजेगा, ऐसी बात है। जा बाबा, हम इहाँ खड़े-खडे ब्रिज के लाइट का मामला देखेगे।" जगदीश ने कहा।

"अए-अए, जगदीश का ऑख तो फोकसिग लाइट है।" रावण ने धीरे से कहा। नकु चला गया। जगदीश ने अपनी धोती के ढेके से दो बीडी और दियासलाई निकाली। एक बीड़ी बढाते हुए कहा, "कौन लेगा ? ले।"

रावण बीडी लेकर बोला, "बाप के भाई का ससुर (चाचा का ससुर) बैठा है, दिखायी नही देता क्या ?"

जगदीश ने दियासलाई बारूद पर ठोंकी पर जला नहीं पाया। उसके बाद वह उसी भीड़ मे बैठ गया। अबकी बार अँजुरी मे आग को आड देकर बीडी सुलगाने में सफल हो गया। रावण ने भी उकड़ूँ बैठकर अपने हाथ के स्पर्श से बताया कि

उसे भी आग चाहिये। जगदीश न आग बढायी नही, पर अँजुरी के ऊपर से अपना मुँह हटाकर जगह कर दी। जलती तीली की आग से जगदीश को झुर्रीदार आँखें, नाक के दोनो पार्श्व ओर गले पर भी प्रकाश पडा। उस पाछते हुए रावण ने अपना मुँह बढा दिया।

87

जगदीश का गुस्सा

बीडी को मुट्ठी मे भरकर वे सुटक रहे थे। इस बीच आर एक-दो लोग जगदीश और रावण के आस-पास बेठ गये थे। उनम स दो एक आदमी बीडी सुलगा रहे थे। जब तक ये सब खड थे तिस्ता ब्रिज की लाइट की आर ताकते हुए, तब तक तूफान ओर पानी की बोछारो का खयाल नही आया था उन्हे। पर मिट्टी पर उकडूँ बैठने के बाद ?? ??नी से बचने के लिये माथे को छाती पर झुका लिया था। जेस कि गर्दन ओर पीठ शरीर का काइ हिस्सा नही हो। जेस कि कंधे आर पीठ पर बोझा ढोते-ढोते वहा एक प्रतिराध क्षमता ने स्वत ही जन्म न लिया हा।

नरेश के टार्च के प्रकश म स्तभ की स्थापत्य कला नजर आती थी। तिस्ता ब्रिज की ओर उनक एक साथ देखने से पृष्ठभूमि के साथ यह मिलता हुआ नजर आता था किसी मूर्ति के ध्वशावशेष की तरह– वहाँ हवा की तेजी इतनी थी कि मूर्ति की मुद्रा बदल बदल जाती थी। नकु जब जगदीश के घर रेडियो पर खबर सुनने के लिये गया है, तो उन्हे तो प्रतीक्षा करनी ही पडेगी। रात दस बजे के बाद भी तिस्ता ब्रिज की लाइट जलती रहती है। एक बार यह देख लेने पर ?? रेडियो सुने रहा केसे जा सकता है। पर सिलीगुडी से आखिरी समाचार मे कोइ न?? बात नही कहे जाने से मन म थोडी राहत महसूस होती हे– वह यह कि शायद कोई नया खतरा नही। पर नये खतरे की आवश्यकता भी क्या हे ? पुराना खतरा भी अगर दो चार कदम बढ आये ता वही इनके लिये एक जोरदार ओर नया खतरा बन बैठने मे कितना समय लगेगा।

"अरे हो निताई, तुमलोगन का पार्टी क्या बोला ? बाढ आयेगा कि नही आयेगा ?" निताई अपनी पार्टी की ओर से इस चर के ग्रामसभा का सदस्य था। इस चर को उधर के दोमोहानी ग्रामसभा के साथ जोड दिया गया था। यह चर एक गाँव था और बाकी के सब उधर डाँगर मे थे पचायन का ऑफिस भी वही था।

"कामरेड ने कहा तो, बाढ आने से पर आयेगा नही, न आए तो किसी तरह से भी आने का नही।" गजेन धीरे-धीरे बोला। यहाँ पर इतने धीरे से कही बात सुनाई नही देती। पर वे सब माथा झुकाकर बैठे थे इसी से शायद उन्हे सुनायी दे गयी थी। जेसे अगर वे इस तरह से सिर को छाती पर झुकाए चुपचाप बातें करे

तो, एक-दूसरे की बात को अच्छी तरह से सुन पायेंगे। गजेन की बात का जवाब दिये बिना निताई बोला, "पार्टी और कहेगा क्या, आँय, पार्टी कहेगा क्या ? पंद्रह दिनों से पानी बरसे जा रहा है लगातार, साथ में हवा-तूफ़ान, पहाड़ से बाढ़ उतरा है तो यहाँ क्या कहना है, बोलो, देखते हैं।"

"यह तो एक बात हुआ रे निताई। इतना बड़ा एक पार्टी है तेरा और तुझसे पूछे बगैर ही पहाड़ से बाढ़ आकर इहाँ ठेला मारेगा उसका इतना हिम्मत ? अरे, बदली कर दे बाढ़ का, टानेसफर कर दे।"

निताई चुप थोड़ी देर रहा, जैसे बात का कोई तोड़ का जवाब ढूँढ़ रहा हो। फिर बोला, "मैं कह कर आया हूँ। मैंने पार्टी से कह दिया है।"

"क्या ? क्या कह आया है ?"

"कह आया हूँ कि हमारे चर को अगर वह जाता देखें तो हमारे लिये मिलिटरी न भेजें, कैंप न बनायें, रिलिफ़ मत भिजवायें, इनकी कोई ज़रूरत नहीं है। कह आया हूँ।"

"गुस्सा क्यों कर रहा है बुद्धू ? चुप हो जा।" जगदीश जैसे मशविरा देता है।

"अरे मैं तो चुप ही हूँ। देख नहीं रहा, मुँह बंद करके रहने से सभी पीछे से बोले जा रहे हैं।" निताई ने जवाब दिया।

"पीछे की बात से तो दुर्गंध बढ़ता है, इन बातों को क्या सुनना।" जगदीश मिट्टी की ओर देखते हुए चिल्लाकर बोला, ताकि सभी सुन पायें। फिर कुछ समय तक प्रतीक्षा करता रहा सबकी हँसी सुनने के लिये। पर कोई नहीं हँसा। यहाँ तक कि निताई भी नही। जगदीश के खुद के हँसने का समय भी पार हो गया। तो फिर दुबारा बोल कर हँसना पड़ेगा। साला निताई, सबका लात-जूता खाता है, वही उसके लिये अच्छा है। उसके पक्ष में बोला तो साला चुप मार गया।

जगदीश ने गुस्से से अचानक गर्दन घुमाकर थूका–किसी के बदन पर लगने से वह खुश हुआ। उसे रात में कुछ दिखायी नहीं देता, यह बात सभी को पता थी, और इसी से अब तक उसका मज़ाक़ उड़ाया जा रहा था। अब वह मौक़े का फ़ायदा उठा सकता था–वह तो देख नहीं पाता। किसके ऊपर गिरता है–वह कैसे देखेगा ?

पर फिर भी किसी ने कुछ आवाज़ नहीं की। जगदीश का मन हुआ कि उठकर एक लाठी से मार कर देखे कि कोई है या नहीं वहाँ ? एक ज़ोरदार लाठी।

जगदीश के मन में यह इच्छा जागते ही सब अचानक उठकर हँस पड़े। निताई हँसते-हँसते चीख़कर बोला, "अरे नरेश, हथौड़े से कोंचा क्यों मारता है ?"

नरेश भी हँसते-हँसते चीख़ कर बोला, "मुझे गजेन ने धकियाया है।" पर हँसी के मारे आगे वह बोल नहीं पाया। बोलने की जैसे कोई आवश्यकता भी नहीं थी। उसके साथ ही गजेन चिल्लाया, "मुझे आसाद् ने धकियाया है।" गजेन की बात ख़त्म

होने के पहले ही और कोई बोल उठता, "अरे सॉड़ गरम हो गया है, फोस-फोंस करने लगा हे। थूक छिड़कने लगा है।"

कई लोग मिलकर चिल्लाये, "गाय को लाओ, गाय को लाओ।"

और जगदीश उठकर खड़ा हो गया, "साले आओ इसके बाद। कोन माई का लाल है ? देख लेता हूँ।" कहता हुआ भीड से निकल कर चला गया। बाहर निकल कर भी खड़ा नहीं हुआ, दनदनाते हुए चला गया। तेज हवा का धक्का लगने से थोड़ा लड़खडाते हुए पीछे को हट गया। पर फिर पैर बढाकर चलता गया। उसके कदम बढ़ाने से भी ज़ोरदार थी—तूफानी हवा। इस हवा के धक्के को सँभालते हुए, झेलते हुए वह आगे बढ़ता गया। बाक़ी सब लोग मिट्टी पर उकडूं हो, सिर को छाती पर झुकाए—कधा पीठ को हवा और पानी की बौछार के लिय खुला छोडकर ऐसे बैठे थे, जैसे पत्थर के बने हों। उनमे से जगदीश का छिटक क॰ चला जाना ऐसा लगा मानो इस पत्थर के पडे हुए चंगेरी से निकलक‹ एक मानुष निस्ता के स्रोत से भी प्रक॰ वेग से चला जा रहा हो। तिस्ता के स्रोत का धक्का भी ठीक इसी तरह का होता है। उस धक्के को ठेलते-ठेलते आगे की आ॰ बढना पडता है, जैसे सिर पर बीस मन का पत्थर हो, उसे सिर पर उठाए-उटाए ही चलते जाना पडता है या फिर इस पत्थर से दबकर बेठ जाना होना है। अ॰॰ यह बारिश, जैसे पत्थर बरस रहे हो हवा मे—कहाँ लगेगा, उसका अदाज। भी नही लगाया जा सकता।

रावण इस दगल के भीतर उठ खडा हुआ, फिर जगदीश की ओर चलना शुरू कर दिया। वह एक बार चिल्लाया भी, "हे जगदीश, जगदीश हो।" पर उसकी पुकार उल्टी दिशा मे टकरा जाती। रावण ने फिर नही पुकारा। पर जल्दी-जल्दी चलकर जगदीश को पकडना चाहता था। हवा के झकोरे और ठेलते धक्क मे वे एक-दूसरे के समान दूरी पर रह गये थे। जगदीश को बुलाने के लिये ही शाय॰ रावण ने एक बार एक हाथ ऊपर उठाया था। पर हवा के धक्के से उसका हाथ टूटकर झूल गया था। जिस तरह से तूफ़ानी हवा चल रही हो, और हवा मे पानी के छींटे मिले हुए हों, उससे जगदीश और रावण को देख पाना सभव नही लगता। उन्हे तो पानी और कोहरे की आड मे छुप जाना चाहिये। पर फिर भी वे नजर आ रहे है, जैसे दो वृक्षों के समान वे खडे हो, और हवा उन्हें जड से उखाड फेकना चाहती हो, इससे समझ में आता था कि वे अधिक दूर जा नही पाये हे। और हवा के चलते दोनो के बीच की दूरी भी अपरिवर्तित है। रावण ने फिर से हाथ से हाथ उठाया। जैसे हवा कभी पीछे से उसके हाथ को धकेल कर ऊपर उठा देती हो तो कभी ठेल कर फिर से नीचे गिरा देती हो। रावण ने हाथ उठाया, पर पुकारा नही। उसकी आवाज हवा में उल्टी दिशा मे उड़ जायेगी। पर हाथ उठाया क्यो ? जगदीश तो उसे देख नही पा रहा था। शायद पानी में डूब जाने पर आदमी जैसे हाथ उठाकर बच जाना चाहता हो, उसी तरह इस तूफ़ानी हवा से बचने के लिये बीच-बीच में हाथ उठाता जा रहा

था रावण।

यहाँ से किसी ने पूछा, "क्या ? खड़े हैं या जा रहे हैं ?"

"जाने दो, जाने दो, तभी बोला, तुम्हारे इस रात के बखत घूमने की क्या ज़रूरत, घर पर बैठे रहो, रेडियो सुनो, कुछ ख़बर बोलता है कि नहीं, वह तो नहीं। बोला, क्यों, मैं भी चलूँगा, चल। अब तो उसे दिखायी भी नहीं देता है कुछ। पर सब जानने को आतुर। जाने दे, जाने दे।"

"यह रावण क्यों उसके पीछे पडा है ?"

"रावण कहाँ जायेगा। नही, गया है। जगदीश को समझा-बुझाकर वापस बुला लायेगा ?"

"लाने दो, लाने दो, बुरा तूफान चल रहा हे। सबका एक साथ रहना बेहतर है। अच्छा भी लगता है।"

बारिश काफी ज़ोरों से हो रही थी तब। काफ़ी जोरों मे। हवा न होती तो पूरा शरीर ही भीग जाता। पर हवा के झोंके से पानी अब सीधा नहीं, तिरछा गिर रहा था। उस पानी का तीर इस दगल की पीठ पर, कधों पर बरस रहा था।

88
एक नदी के भीतर ढेर सारी नदियाँ

इस हवा-तूफान, बारिश और इस बाढ़ के बीच भी आकाश से थाडा उजाला छिटक रहा था। ऐसा उजाला कि नज़र नही आ रहा था। पर काफी देर तक इस आकाश के नीचे, नदी के पाट मे घूम-फिर करने पर उस उजाले को समझा जा सकता था। वह उजाला ऐसा नहीं था कि काफ़ी दूर तक देखा जा सके। बल्कि ठीक उसका उल्टा था। वह उजाला ऐसा था, जो आँखों के सामने एक ओट बना देता था। एक ऐसा घेरा जिसे किसी भी तरह से भेदा नहीं जा सकता। वह उजाला ऐसा था, जिससे कुछ भी स्पष्ट नहीं होता, पर हरेक चीज़ की बाह्य रेखा दिखायी देती थी। हरेक चीज का मतलब, एक निर्दिष्ट दृष्टि-सीमा के भीतर सब कुछ था। उस उजाले मे जमीन दिखायी नहीं देती, पर मिट्टी के अस्तित्व को समझा जा सकता था। पैर के नीचे की ज़मीन के अस्तित्व को, ज़्यादा से ज़्यादा सामने पेर बढ़ाने की जगह भर, उस उजाले में आँखों के सामने ले जाने पर भी मनुष्य के चेहरे की रेखायें स्पष्ट नहीं दिखती, पर बारिश के चाबुक आकर कंधों और पीठ पर बिंधते ही वह जलबिंदु एक मद्धिम उजाले में पीठ, कंधों को एक धुँधला पर साफ़ दिखायी देता है। अब पीठ कंधों के जुड़े धुँधले उजाले में यह दंगल काफ़ी स्पष्ट नजर आ रहा था। पानी में घुल-घुलकर जैसे पत्थर को साफ़ किया जाता है। पर उसके बीच भी, जो लोग बारिश के कोड़े की ओर पीठ फेर कर बैठे थे–पूरब और दक्षिण के उन लोगों की

पीठ काफ़ी भींग गयी थी। पर उसके उल्टी दिशा मे जो लोग थे उनकी पीठ क़रीबन सूखी थी।

वह उजाला आकाश मे ही आ रहा था, विगत तीन दिनों से संपूर्ण लुंठित आकाश से। पहले-पहल तो हवा-तूफान से शुरुआत हुई, फिर बाद में बारिश। जैसे कि तीन दिन पहले बुधवार को हवा-तूफान यहाँ के आकाश में कहीं से मेघों को खदेड़ लाया हो। फिर उसके बाद हवा-तूफान ने ही उन्हे तितर-बितर कर, घुमा-फिरा कर आकाश और तिस्ता के बीच के फॉक को मेघो से बिल्कुल ढँक दिया था। दिन के समय सूरज नज़र नहीं आ रहा था—कभी-कभी उजाला इतना कम हो जाता था कि लगता, असमय ही साँझ घिरने लगी है। ओर ऊपर मेघ, नीचे नदी के बीच का आकाश लिये हवा एकबारगी झकझोरे जा रही थी। इस हवा में पानी बढ़ जाता था। यह हवा यहाँ के बाढ़ की हवा नहीं। ऊपर पहाड़ पर कहीं बारिश शुरू हो गयी थी। यह बारिश, जो मिट्टी की तह में घुस जाती थी, उसके बाद मिट्टी को फोड़ कर, पेड़ों का उखाड़ कर, पत्थरों को ढहा कर, नदी को एकबारगी दुगुना-तीन गुना चौड़ा करते-करते उतर आती थी। अब तो तिस्ता का रुख माथे से आख़िरी छोर तक बॉध से मुडा हुआ था। पर बांध तो मिट्टी को गहरा कर नहीं सकता। गर्त के बिना जल उफन कर बॉध की दीवार पर धक्का मारना चाहता था। फिर विपरीत आघात के साथ लौटकर कुछ मिट्टी खरांच लेता था। इसी से बांध पर से लंबे-लंबे स्पार नदी तक चले गये थे, जिससे जल सीधा जाकर पाट से टकरा न सके और उसे धो न सके।

बरसात में तिस्ता में इस तरह कहीं-न-कहीं तो होगा ही। कहाँ पर होगा व पहाड़ में कहाँ बारिश हो रही है, उस पर निर्भर करता है। यहाँ ता बस इस एक नदी को ही तिस्ता कहा जाता था। यहाँ, इस समतल इलाके में। पर ऊपर पहाड़ों में तिस्ता तो सिर्फ़ एक ही नदी नहीं थी। जहाँ-तहाँ से कितने झरने, कितनी छोटी-छोटी नदियाँ आकर तिस्ता में मिल गयी थीं।

इतने सारे जगह, इतने सारे स्रोत तिस्ता से मिलकर जाते थे, शायद तिस्ता ने इसी से अपने-आपको इस तरह फैला रखा था। यहाँ तक कि इस समतल में, जहाँ तिस्ता सिर्फ़ तिस्ता ही थी, वहाँ पर भी पश्चिम पार मे बोदागज, रंधामाली, जलपाइगुड़ी, हल्दीबाड़ी और पूरब पार में माल, लाटागुड़ी, दोमोहनी, मयनाबाड़ी, बार्नेसघाट, बक्खाली, मेखलीगंज और उन दो पाटो के बीच तिस्ता मीलों तक फैली हुई थी। जिसे तिस्ता कहा जाता था, वहाँ तो तिर ', तिस्ता के ही रूप मे हर समय नज़र आती थी। तिस्ता कोई नदी नहीं, एक भूखंड था। सर्दी के दिनों में इस भूखंड के बीच पत्थरों का टीला बन जाता और उसे घेर कर सूत जैसी पतली पर स्थायी जलरेखा सुनहरे रंग के रेत को हर समय भिगो कर रखती थी, और गीले रेत पर उस टीले की जीवंत छाया सुबह से शाम तक घूमती रहती थी। इस भूखंड के किसी

भाग में नरम हरी, कच्ची घास का मीलों लंबा विस्तार था, जहाँ गाय-भैंसों के गोठ घूमते रहते थे और खुले आकाश के नीचे खड़े-खड़े ही क्षितिज की ओर देखते हुए पागुर करते। इस भूखंड के किसी-किसी भाग में जंगल उग आया था। काँश फूल के मीलों लंबे विस्तार दूर से शारदीय धूप में जल होने का आभास जगाते थे।

फिर बरसात में यह सब नष्ट हो जाता था। तिस्ता का किस स्रोत से होकर कब पानी बहेगा वह किसी को पता नहीं। किसी बरसात में दाहिनी ओर का पश्चिम पाट टूटता था तो अगले बरसात में बायें पूरब की ओर का पाट। सिर्फ़ इतना ही नहीं बरसात के बीच में स्रोत भी बदल जाता था। बरसात में पानी के नीचे जो बदलाव होता था, उसके बाद फिर शरत्काल से धीरे-धीरे तिस्ता भूखंड का एक नया चेहरा देखा जाता था। जहाँ पानी नहीं था, वहाँ स्थायी स्रोत गीले रेत पर बहने लगता था। जहाँ काफ़ी दिनों तक नदी बह रही थी, वहाँ का पानी अचानक हरा होना शुरू हो जाता। कहीं मूल नदी के स्रोत का संयोग रुक जाता, अचानक फिर वहाँ पत्थर का टीला जाग उठता, माथे पर जंगल का एक छोटा टुकड़ा लिये। उस टुकड़े के ऊपर प्रायः पंचवटी जैसे छोटे पेड़-पौधे उग आते। कहीं मिट्टी में चरी उग आयी थी—हल, बैल, केले के वृक्ष और पटसन के घर, वहाँ देखने-देखते एक बस्ती बन जाती थी। तिस्ता किसी बड़े गर्त से होकर, मर्त होते हुए बहना शुरू कर देती थी। नावें चर पर रुक जातीं। फिर नदी अपने आप को बदल लेती। नदी के भीतर नदी बन जाती। तिस्ता तो एक नदी नहीं है—एक नदी के भीतर बहुत सारी नदियाँ हैं।

साल में तकरीबन छः माह इस भूखंड से जुड़े अनेकानेक नदियों का मिलन-विछोह होता रहता है।

कोई नदी या सोता, अपने काफ़ी दिन पुराने खाई से निकल आता है, जैसे मिट्टी के साथ लिपटा हाथी अचानक अपने सूँड़ को पहले आकाश में नचाकर, बाद में दो-तीन धक्के से एक अंधड़ की तरह उठकर जाग उठता है। अपने क्षणभर के नींद के नुकसान की भरपाई करने के लिये, जिधर ऑख गयी उधर ही, थोड़ी दूर जाकर फिर लौट आता है। उसके क़दमों से धूल का अंधड़ उठता। उसके शरीर से रेत का अंधड़ झरता है। उसके सूँड़ के झपट्टे से सूखी मिट्टी आकाश में बिखर जाती है अचानक। उसके बाद, ऐसा हो सकता है, वह फिर से अपने पुराने गर्त में लौट जाये, अत्यंत पुराने गर्त में। फिर ऐसा भी हो सकता है, भागते-भागते, खेलते-खेलते, घूमते-घूमते, अपने उठाए रेत के अंधड़ में उसकी खुद की ही आँखों में धूल पड़ती है। वह अपने पुराने गर्त को पहचान नहीं सकता।

कोई नदी या सोता अपनी मूल धारा से छिटक कर चला जाता है, एक बड़े हाथियों के झुंड या चलते हुए भैंसों के गोठ से जैसे कोई बछड़ा थोड़ा ज़्यादा आज़ादी के चलते इधर-उधर होते-होते दल से छूटकर अलग हो गया हो। दल से छूट जाने की पहली खुशी में वह जैसे अपने स्वतंत्रता का स्वाद पाता है। मिट्टी कितने किस्म

की होती है, कौन सी मिट्टी मे किस तरह से चला जाता है, वह सब भी, जो दल से सीखा नही गया है, वह अपने शरीर से ही मिट्टी को पहचान लेता है। छोटा सूँड या लाल लाल नाक उठाकर हवा मे अनजान मेघो को सूंघ लेना सीखता है। जैसे कि उसे पता है, इस तरह से झुड मे या गोठ मे लौटा जा सकता है। पर उसके बाद वह तरुण हाथी या भैसा अचानक खडा हो जाता है, अदृढ गर्दन को एक बार पीछे की ओर लौटाता है। तब तक उस गर्दन मे, दूर दूर तक रास्ता देखने के अनुभव का दाग पडा नही होता। तब भी वह छोटे-से सूड मे हवा को सूँघने की कोशिश करता हुआ रास्ता पहचानता है। एकबार, सिर्फ एकबार अपने खोये पदचिह्नों के लिये तीखी दर्दभरी चीख मारता है। फिर प्रतिध्वनि को प्रत्युत्तर मानकर झुड या गोठ मे लौटने के लिये डरते हुए भागता है। वह तरुण पशु तब तक ध्वनि प्रतिध्वनि का नियम सीखा नही था। वह नदी या सोता सदा के लिये अपने मूल स्रोत गर्त से छिन्न हो जाता है लौटने का सब रास्ता मिटा देता है।

या फिर तब तक नदी की मूल धारा अविच्छिन्न गति से अपना विराट विस्तार लिये प्राकृतिक नियम से बहती चलती है, कही कुछ फैल जाता है। जैसे उसका स्वभाव। यह तो उस झुड का या गोठ का नियमित घूमना फिरना, जानी-पहचानी जगह पर, अपने अभ्यस्त पावो के छाप पकडे, अपने ही जाने पहचान परिवेश के पेड-पौधे, लता-पत्तो की गध सूघते सूँघते अपने ही उखाडे हुए या खोदे गये पेड या मिट्टी को और तोडफोड करने या खोदने का अभ्यास हो। पर अचानक उस रास्ते मे चलने वालो के दोनो कान खडे हो जाते है, आकाश मे पेड की तरह उठ जाता है विशाल माथा, या फिर दोनो दाँत जैसे हवा मे चमक उठते है। तब भी सूँड एक अनिश्चितता मे मिट्टी के ऊपर डोलता रहता है और उसी धारा को पकडकर मिट्टी पर साँस छोड़ता है। इससे घास हिलने लगती है, धूल उडती है या फिर नाक की गरम साँसो से कीडे-मकोडे उड जाते है। धीरे-धीरे सूँड का हिलाना और तेज होता है। दाहिने ओर का पैर थोडा-थोडा आगे बढता है। इस विशाल काया मे एक सिहरन जगता है। फिर अचानक वह गजपति हवा मे सूँड उठाकर चिघाडता है। पूरा वन काँप जाता है। आर्त आह्वान को हवा मे प्रतिध्वनित कर अपने दोनो कानो को दोनो ओर फैलाकर दौडने लगता है। इस वृद्ध के कानो तक पहुँचती है। किसी बच्चे के राह भूलने का संकेत। अगले ही क्षण पूरा रेवड़ या दल तैयार हो जाता है। आसमान मे रह-रहकर समवेत आह्वान का सकेत देते हुए उस बछडे की खोज मे पूरा-का-पूरा रेवड़ दौड़ पड़ता है—उस सँकरे रास्ते पर जितने भी लता पत्ता, झाड झखाड़ थे सब कुछ को मिट्टी में मिलाते हुए। हवा मे कुचले हुए पत्तों की गध व्याप्त हो गयी। उनका झुंड या रेवड़ अपने बच्चे को शायद कभी ढूँढ़ नही पाता है। लेकिन उसकी खोज में पूरे रास्ते को रौंद डालता है। यह झुंड या रेवड अपने पुराने जगह में नहीं लौटता है।

लेकिन सिर्फ नदी ही अपनी धारा बदलती है ऐसा नहीं है। पूरा भूखंड ही

बदल जाता है—साल के छह महीने में। इससे नदी भी बदलती है। नदियाँ भी बदलती हैं। पानी की तलहटी में अदृश्य बालू के टीले पर मिट्टी की परत जम जाती है—वह भी सात-आठ इंच मोटी परत। सदी के मौसम में धूप में सख्त होकर बाद में बरसात मे वह खेती लायक ज़मीन हो सकती है। फिर उसी तरह दो-तीन, यहाँ तक कि दस-पंद्रह साल पुराने खेती ज़मीन या बस्ती में केले का पेड़ या बेर का पेड़ और बालू का पहाड़ बन जायेगा। जैसे नदी की तलहटी में कहीं लगातार रेतीला तूफ़ान चल रहा हो। पानी हट जाने पर ठंडी में दो-एक पत्तेविहीन सूखे पेड़ नजर आते हैं; जिनके सूखने का कोई अंत नही। दो-एक बॉस भी दिखते हैं। जैसे इन्हे बालू होने के संकेत के तौर पर गाड़ा गया हो। लेकिन दरअसल, मिट्टी मे बालू के निचले स्तर पर ही उन्हें गाड़ा गया है ओर उस बालू मे किसी मकान का छप्पर आ गिरा हो। तब लगता है पानी में नहीं, तूफ़ान में उड़कर छत मुह के बल गिर गया है।

इन दिनों बारिश के छह महीने तिस्ता में कितनी ही नदियो का वेग और अनिश्चितता से योग-संयोग-संगम हो रहा होगा। पानी की तलहटी मे तिस्ता के भूखंड में वह गति सचरित हो गयी है—नाटकीयता के साथ। लेकिन उस दृढता मे कही कोई नारकीय परिकल्पना नहीं है।

89

भूगोल के भीतर इतिहास

ऊपर, उस मालबाज़ार-उदलाबाड़ी के पास मोयामारी के चर से शुरू होकर नीचे हल्दीबाड़ी के काशियाबाड़ी तक तिस्ता का, यानी तिस्ता कहने से जिस भूखंड को समझा जाता है, उसके ऐन बीच में आबादी बसती गयी है—काफ़ी समय से। पर उन दिनों का भी एक इतिहास है।

राजवंशी लोग तिस्ता के चर पर आमतौर पर बस्ती नहीं बसाते, बसाया भी नहीं। बल्कि तिस्ता के पार-जंगल के बीच में बसने के आदी थे। वही जंगल उन्हे खेती के लिये ज़मीन देता, आवश्यक उर्वरक मुहैया कराता, घर बनाने के लिये डाल-पात देता था।

नदी के साथ उनका संपर्क था ठीक नदी के स्वभाव जैसा। जिस समय जैसा, उस समय वैसा। जो नदी इस तरह से बार-बार बदलती रहे, जो नदी, नदी के तौर पर पहचान बनाते-बनाते डाँगर बन जाये, और डाँगर नदी की गोद में समा जाये, उस नदी को नदी की जगह छोड़ राजवंशी लोग वनांतराल से ही नदी का उपयोग किया करते। पर उपयोग का मतलब शोषण नहीं। ईमानदारी के साथ इसका उपयोग था—जलपाईगुड़ी का यह अंचल, जहाँ गहनतम जंगल नदी के जल को अपने में छिपाए रखती है, जहाँ पहाड़ उस जंगल को अपने घेरे में बाँधे रखता है। ऐसा लगता है,

जैसे इस अचल को पहाड-जंगल नदी से घिरे, पहाड-जगल नदी से बने एक स्वर्ग के रूप में देखा जा सकता है। इस तरह से भी देखा जा सकता है कि घेरे में रखे पहाड़ से कदम-दर-कदम उतरती चली आयी है यह नदी, जगल, पहाड; जैसे यहाँ इस घेरे में रहने के लिये ही है। यह तो मानसरोवर नहीं है। यहाँ, इस सीमा के दक्षिण मे कोई पहाड़ नहीं, तिस्ता को उसी मे मुक्ति मिल गयी है। पर तीनों ओर तो है ही। उसी तीनों दिशाओ से घिरे इस देश मे पहाड जंगल-नदी का यह अस्तित्व भूगोल के कारण ही इतिहास हो गया है। राजवशी लोग भी उस नदी के साथ उस सह-अस्तित्व की नीति मे चले आ रहे है। वहाँ कोई हमला नही, कोई दूसरा पक्ष, प्रतिपक्ष नही, कोई घात-प्रतिघात नही। उस लिहाज से राजवंशियों के साथ तिस्ता का भी कोई सपर्क नही। क्योकि सपर्क का मतलब होता है–दो अलग-अलग चीज़ों का आतरिक सयोग। राजवंशी समाज ओर तिस्ता तो कोई दो अलग-अलग चीज नही हे कि वहाँ एक संयोग की आवश्यकता हो।

पर उस सयोग की आवश्यकता हुई। जब देश आजाद हुआ तो भटियारा लोग यहाँ इतनी अधिक संख्या मे आने लगे कि आबादी का पुराना आँकडा टिक नही पाया। इन भटियारो के बीच जो दूसरे भटियार थे, व अपने शरीर मे पद्मा-मेघना के जल की गध लिये हुए थ। उनके साथ नदी का सपर्क है आक्रमण का, सघात का, जय पराजय का, दखल बेदखली का। इस नदी को व पहचानने न थे। उसका तल दिखायी नही देता, और यह नदी जैसे अपने भीतर के रगीन पत्थरो को ढँके रखने के लिये ही बह रही हो। वे जिस नदी को पहचानने हे, उसके जल का रंग काला हे, मिट्टी का रग काला है। ओर इस नदी का जल धूप की तरह चमकता हे, ज्यादा-से ज़्यादा हुआ तो कीचड मिट्टी से घुला, मटमैला। वे जिस नदी को पहचानते थे उसकी चौहद्दी अत्यंत जानी-पहचानी थी। उस चौहद्दी के बीच मनुष्य के साथ नदी के जीने-मरने की लड़ाई। और, इस नदी की कोई चौहद्दी ही नहीं–कभी पेड़ों के शिखर पर चढ़ती है तो कभी पेड़ नदी में माथा डुबोकर स्नान करते हैं। पर कितना भी फ़र्क़ क्यों न रहा हो–नदी तो आख़िर नदी ही है। और वे भी, इतने उत्तर को आने के बावजूद, इस नदी के भीतर, इस अनजानी नदी के भीतर ही, अपने अभ्यस्त जीवन-यात्रा की कडी ढूंढ पाते हें। जल में, जल की पहचानी गध पाते हैं।।

पूर्वी बगाल मे ही मुख्यतः तिस्ता के चर में पहले बस्ती बसायी थी–दलबद्ध भाव से। इसके पहले, तिस्ता के चर के जंगल के भीतर बाँस गाडकर, उस बाँस के ऊपर घर बनाकर जो दो-चार लोग कभी-कभार रहा करते थे, उन लोगो ने कभी कोई बस्ती नही बसायी। बस्ती बनाने के बारे में कभी सोचा तक नहीं था। पर इन नमशूद्र लोगो ने इन चरो पर ईजाद कर लिया था वह जमीन, जिसे दखल करने के लिये उन्हे किसी के साथ दंगा-फ़साद करने की कोई आवश्यकता न थी। चर के ज़मीन को वे पहचानते थे–अपनी पसंद के मुताबिक उन लोगों ने जमीन चुन

लिया था। फिर वे वन काट कर अपने बसने की ज़मीन और आबाद करने, खेती-बाड़ी की ज़मीन तैयार करने में लग गये। उन लोगों ने राजवंशियों की तरह बाँस के सिरे पर घर नहीं बनाये, बल्कि तिस्ता के चर के सन और जंगल से बाँस लाकर भाटिया लोगों ने बंगले जैसा चार चालवाला घर बनाया। तिस्ता के चर में इतने झाड़-झंखाड़ और तिस्ता के पार में इतने बाँस थे इसलिये इस तरह की घरबाड़ी एकमात्र यहीं संभव थी। उन लोगों ने एक सेनावाहिनी की तरह चरों को दख़ल में ले लिया। ऊपर मैयामारी से लेकर नीचे काशियाबाड़ी तक तिस्ता के बीचोंबीच इन चरों का दख़ल उन लोगों ने इस तरह से कर लिया था मानो वे बराबर यहां के ही बाशिंदे रहे हों। सेनावाहिनी के लिये किसी भी जगह विदेश नहीं होता। युद्ध न कर रहे हों तब भी, एक अनजान जगह पर भी, वे अपनी बंधी रूटीन से जीवन बिताते थे, ये लोग भी ठीक उसी तरह से रह रहे थे।

डर तो था ही—तिस्ता का डर। वहाँ भी एक आश्वासन था फिर से नई बस्ती और आबादी बसाने का। कहीं-न-कहीं तो डाँगर बनेगा ही, सब बह जाने से रहा। और तभी उस समय किसी भी एक जगह खूँटा गाड़कर बसना ही था। सबसे बड़ी दुश्चिंता थी तिस्ता जैसी नदी के स्वभाव से डर कर चर में न जाने से भी प्रबल था, उस भयंकर स्वभाव का सामना करने की आशंका के बावजूद कहीं एक जगह घर बनाना और आबादी बसाने की ज़रूरत तो थी ही।

ठीक जैसे पोथी-पत्री को मानकर ही 1950 में तिस्ता में जो बाढ़ आयी थी, उसके साथ इतिहास की कोई तुलना नहीं की जा सकती। तिस्ता का घर बर कहां उड़ गया। पार के जंगल के जंगल स्रोत के साथ न जाने कहाँ गायब हो गये। वही पहली बार जलपाईगुड़ी शहर के भीतर तिस्ता का पानी घुसा था।

अभी अगर तिस्ता की चर की इस जनबस्ती की बात सोची जाये, तो लगता है कि 1950 को में बाढ़ आयी, वह सभी तरह से बेहतर थी। अच्छा ही हुआ था।

तब तो सभी चरों पर बस्ती नहीं थी। तब सब लोग मौयामारी के चर का कुछ हिस्सा हासिल करके रहने-बसने लगे थे, बल्कि शुरूआत ही थी वह। कुछ-कुछ खेती-बाड़ी का सिलसिला भी शुरू हुआ था। ठीक उसी समय ही वहाँ के, ये मौयामारी के नमशुद्र लोग, समझ गये थे कि तिस्ता की अनिश्चितता ठीक किस प्रकार की अनिश्चतता है। पानी इस तरह से अचानक आ जाता है, वह भी ऐसे वेग से—ऐसा उन्होंने सोचा भी नहीं था। वहाँ सिर्फ़ एक ही नाव थी। उस्ताद माँझी के अभ्यस्त हाथ पतवार तो सँभाल सकते थे, पर पानी के नीचे बड़े-बड़े पत्थरों का जो चंगेरी था उससे टकरा कर नाव का तल्ला टूट भी सकता है—वह किसी को पता न था। बाढ़ का पानी रिस जाने के बाद इस चर में फिर से घर बनाने और खेती-बाड़ी का काम शुरू हो गया था।

और तभी पहली बार तिस्ता को थोड़ा-सा सँभालने की व्यवस्था की गयी। सब

ओर से खुली तिस्ता बरसात मे आस-पास के पहाड की तलहटी से हल्दीबाडी-मेखलीगज तक बिल्कुल आजाद थी। वहाँ से वह खुशी-खुशी अपनी इच्छानुसार बहती जाती थी। पचास साल की बाढ के बाद शहर को घेर कर बाध वनवाया गया। फिर तिस्ता के दोनो पार बाँध बनता चला गया। यह बाध लबा होते-होते उदलाबाडी से काशियाबाडी तक तिस्ता के दोना ओर बन गया।

इसी दौरान तिस्ता के ऊपर दो ब्रिज भी बन गये। एक रोड ब्रिज और दूसरा रेलवे ब्रिज। 1968 में तिस्ता की बाढ इस ब्रिज के पास बाध तोडकर शहर मे घुस गयी थी। उससे पहले बदलाबाडी का जगल बह गया था। नेउडा और धरला के बीच वाली त्रिकोण भूमि को मिट्टी से खुरच लिया था। मौयामारी के चर से बायालमारी के चर तक सभी जगह तिस्ता अपने पुराने नहर को बहा ले गयी थी। '68 की बाढ क्यो आयी, इसके कारण को लेकर बहुत सारे वक्तव्य मिलते है जिनका वेचित्र्य बाढ से साथ जुडे सरकारी विभाग की सख्या पर निर्भर करता है। इसमे कम-से-कम यह तो पता चल जाता है कि प्रत्येक विभाग के पास बाढ के बहुत-से कारण थे। यहाँ '68 की बाढ आलोचना का विषय नही है। आलोचना का विषय है '68 की बाढ से कम से-कम यह प्रमाण तो मिला कि तिस्ता, बाध बाँधने के फलस्वरूप और अनिश्चित हो गया था। पर यह भी सच है कि '68 तक तो सोलह साल मे तिस्ता के बाढ को तो बहुत हद तक सँभाला जा सका है 50 के बाद उस जैसी तबाही या फिर उससे अधिक के लिये '68 तक प्रतीक्षा करनी पडी थी। '68 के बाद निश्चय ही और बीस साल बीतने के पहले तिस्ता के बारे मे ओर अधिक वैज्ञानिक और सगठित व्यवस्था ग्रहण की जायगी। तिस्ता बेरेज के पहले चरण का काम खत्म हो चुका है। हालांकि यहा यह बात इतनी निश्चितता के साथ कही नही जा सकती और इस समय भी बाढ का डर हर समय बना हुआ है, फिर भी तिस्ता का जल जिससे अचानक पहाड से उतरकर समतल को बहाकर ले न जा सके, उसके लिये तिस्ता का बीचो बीच तो बेरेज बाँधा गया है।

तिस्ता के चर मे स्थायी रूप से बसा जा सकता है, खेती बाडी की जा सकती है। वह सन् '50 मे मुमकिन नही था। शरणार्थी नमशूद्र उस समय चर मे आश्रय ले चुके थे। सिर्फ एक बाढ उन्हे वहा से उखाड फेकने के लिये पर्याप्त नही थी। यहाँ तक कि '52 की बाढ मे भी वे लोग मरते-बहते फिर से चर मे वापस आ गये थे, जबकि चर मे तब तक उन लोगो ने डेरा डट ।ही डाला था।

पर '88 की बाढ चर की मिट्टी सिर्फ बह जाने पर भी, उन लोगो के लिये चर वापस लौटने के सिवा और कोई चारा नहीं था। क्योकि तब तक, करीब दो दशको मे तिस्ता का चर, मेयामारी से काशियाबाडी पूरा-का पूरा बस्ती मे बदल चुका था। इस बीच चर के किसानो को लेकर को-आपरेटिव बना। उसी तरह चर के किसानो के निजी उद्योग से, सरकारी सहायता विहीन निजी उद्योगो से, धान और सब्जी के

उत्पादन से ज़िले के कृषि-अर्थनीति और बाजार का चेहरा बदल गया है। '68 की बाढ़ के समय, चर के किसान जलपाईगुड़ी के जनबस्ती के एक प्रमुख भाग मे बस चुके थे। चर की फसल और दूसरे उत्पाद आर्थिक जीवन का एक अपरिहार्य भाग बन चुके थे।

इसी से '68 की बाढ के बाद चर के लोगो का चर मे फिर से वापसी के सिवा कोई चारा न था। बाढ मे तिस्ता का भूखड बदल गया था। बाढ के बाद उस बदले हुए भूखंड में ये लोग अपने तई फिर से अपने पुनर्वास मे जुट गये थे। इससे शायद देखा जा सकता है कि पुराना कोई चर नही, फिर से नया चर बन गया है। उससे शायद यह भी देखा जा सकता है कि तिस्ता की सीमा के बीच तिस्ता ने अपने को जैसे बदल डाला है, ये किसान जैसे अपने आपको बदल डाले है। पर '68 की बाढ मे ही तिस्ता के इलाके से जिन्हे उच्छेद किया नही जा सका है, वे अब उच्छेद होने से रहे। '68 की बाढ ने ही जैसे तिस्ता के चर को और उस चर के किसानो को मुख्य भू-भाग का हिस्सा बना दिया है।

देश के बॅटवारे के बाद पूर्वी बगाल के शरणार्थी नमशूद्र किसान ने उत्तरी बगाल के पहाडो ओर इस नदी को एक तरह से जीत लिया है। भूगोल पर इतिहास की विजय हुई।

90
चर के भीतर चरवाहा

तिस्ता के इस चर को मुख्यत पूर्वी बगाल के नमशूद्र किसानो ने ही हासिल किया है, आबाद किया है। सरकारी कानून के अनुसार चर जमीन पर सामान्य कानून लागू नही होता। क्योंकि नदी के चर को (अनिश्चित चर को) जनबस्ती के जगह के रूप मे सरकार ग्रहण कर नही सकती। पर इससे अवश्य किसी अधिकार से ये वचित नहीं होते। प्रत्येक चुनाव में वोट देते है। अबकी बार तो पचायत मे सदस्य भी भेजा है। सरकारी क़ानून से कानूनन मुक्त रहने के फलस्वरूप प्राय सभी जोतदार है, कोई भी, सिर्फ़ हलवाहा नही है। या फिर इस बात को उल्टा करके कहा जा सकता है, चर मे सभी हलवाहा है, कोई भी सिर्फ जोतदार नहीं। जमीन के मालिकाने से लेकर जमीन, खेतीबाडी, फ़सल के ऊपर वशगत और क़ानूनी अधिकार होता है। चर मे तो और वैसे किसी क़िस्म का अधिकार भोगने का अवसर नहीं है। तो देऊनिया-जोतदारी का कोई व्यापार चर मे जैसे रह नही सकता।

रह नही सकता, पर और एक तरह से रहता भी है। सबकी आर्थिक क्षमता एक-सी नही है। सभी घर में काम करने वाले लोग समान नही है। कभी-कभी बहुतो का रुपया-पैसा उधार लेना पडता है। किसी को कम समय के लिये तो किसी को

अधिक समय के लिये। उस समय रुपय-पैसे उधार देन के लिये देऊनिया या साहूकार की आवश्यकता होती है। चर मे सभी उधारी का भुगतान आमतौर पर नगदी से किया जाता हे। जिसकी खुद की क्षमता है, वह ब्याज के साथ उधारी का भुगनान कर देता है। पर इनमे से भी कुछ ऐसे होते हे जा फसल के रूप म भुगतान करने को अधिक सुविधाजनक समझते है। शायद उनका रुपये-पैसे का जोर, अर्थ-बल कुछ कम हे। तभी, जेसे कि जोतदारी मे, उसी तरह चर मे, जब भुगतान किया जाता हे तो उस समय के सस्ते दर से नही, बल्कि उधारी के समय का चढे दर स भुगतान किया जाता है। कुछ-कुछ जमीनाम मे किसान खुद खेती नही कर पाते, क्योकि जमीन अधिक हाती हे, इसी से कही कही काम करने के लिये लोगो को रखना होता है। ओर काम करने वाले लोग सहज ही उपलब्ध हाने है। राजवशी लोग हल चलाते समय, बुआई, निराई, कटाइ के समय आकर धान के खेतो मे काम कर जाते हे। आमतौर पर चर की अथनीति मे अधियारी या बटाईगिरी नही चलती। पर मजूरी जमा कर-करके फसल के भाग से मजूरी लेन का नियम भी प्रचलित रहा है। इसी से राजवशी हलवाहो को बटाइगीर होने की मर्यादा मिल जाती है।

इन चरो मे एक तरह का जनतन्त्र है। उत्पादन की भूमिका मे बना जनतन्त्र। राजवशी लोग कभी भी दलबद्ध रूप से चर म बस्ती नही बसाते। इसी से नमशूद्र लोगो के चर को रहने योग्य बनाने पर भी राजवशी वहा अधिकार का दावा नही करते। इस मामले मे कभी कोइ गोलमाल नही हुआ, अब तक। बल्कि जिसे कायम इलाका कहा जाता है अथात जिस जमीन की सरकार सटलमेट के मार्फत नापजोख कर सकती हे, उस कानूनी जमीन पर नमशूद्र बस्ती बसाते हे। वहाँ कभी कभार पुराने राजवशी बस्ती के साथ दगा हगामा हुआ है। इस तरह की सबसे ताजा एक घटना आज से करीब चौदह पद्रह साल पहले घटी थी तिस्ता पार क्रांति थाने के झाडमाझगाम इलाके म। वहा आगजनी, आग मे जलाकर मारना, मारकाट सब कुछ हुआ था। परतु चर मे अब तक इस तरह की कोइ घटना नही घटी। साम्प्रदायिक हुज्जत-हगामा की भी कोई घटना नही। ओर पहले की बातो को लेकर अगर यह कहे कि नमशूद्र लोग चर मे अपने लोगो के सिवा ओर किसी को बसने नही देते। तो वसे भी वहाँ कौन बसना चाहा था—पर बाद मे जब चर रहने योग्य और खेती योग्य जगह के रूप मे स्वीकृत हो गयी। तभी मुख्यत नमशूद्र होने पर भी, राजवशियो का कुछ भाग भी एक साथ चर मे आकर बस गया था और खेती करने लगा था।

उस समय मामला कुछ इस तरह का हो चला था कि चर म सिर्फ नमशूद्र ही जायेंगे ऐसा नही। जब चर है तो वहा सबको मिलकर जाना चाहिये। इस तरह का एक माहौल बन गया था। मुख्यत तिस्ता के दानो पार ही तो राजवशियो की बस्ती बसी है। उन सब गावो के भीतर से होकर ही चर के लोगो का आना-जाना होता हे। एक तरह की जान पहचान इससे हो ही जाती है। स्वतत्रता के बाद के

उस पहले धक्के से जो होना था वह तो हो चुका, पर उसके बाद तिस्ता के चरों में नमशूद्र और राजवंशियों की मिली-जुली बस्ती बस गयी। उनमे लोग भी बडी तादाद में बसने लगे।

सामाजिक रूप से, कम-से-कम बाहरी तौर पर या यूँ कहना अच्छा होगा कि इन सभी चरों के जनसंगठन की तरफ़ से नमशूद्र और राजवंशियों के मिश्रित जीवन-यापन की प्रधानता या बहुसंख्यक और लघुसंख्यक होने का प्रश्न ही यहाँ नहीं है। जगदीश बारुई जैसे नमशूद्र महाजन हर एक चर में अवश्य रहे है। पर चर क किसान लोग भी अब और पैतृक लेनदार नहीं रहे। तो वह बारुइयों से उधार ले सकता है, पर उसका गुलाम नहीं, नमक नहीं खाना उसका। जनसगठन के इस लोकतंत्र से ही शायद चर के किसानों की भाषा में पूर्वी बंगाल और राजवंशी भाषा का एक सम्मिश्रण हुआ है। अँधेरे में भाषा सुनकर समझ पाना मुश्किल होता है कि भीड़ के मुख्य कौन लोग हैं—'भाटिया' या 'देसिया'। यही जैसे जगदीश बारुई जिस भाषा में खिसिया कर उठ गया था, रावण रायवर्मन अक्सर उसे उसी भाषा मे समझा बुझाकर वापस लाने गया था।

91
बाढ़ आते कितना समय लगता है : चार घंटा या छह घंटा

पर इस अंधड़ को ठेलकर जगदीश भी आगे बढ़ नहीं पाया, रावण भी जगदीश के पास पहुँच नहीं पाया। और ये लोग यहाँ गोलाई में बैठ अधड़ के झकोरे से नुकीले तीरों को पीठ-कंधा-माथा में झेलते रहे कि उनके यहां से उठकर चले जाने पर जगदीश या रावण यहाँ नहीं आ पायगे।

पानी और अंधड़ के कोहरे के भीतर उधर से हवा की अनुकूलता में नकू दौड़ता हुआ पास आया। जगदीश को इस तरह से दल के बाहर अकेला देखेगा उसने सोचा तक न था। सोचा नहीं था इसी से जैसे जगदीश को देखकर भी बिना देखे भाग आया था। जगदीश नकू को पहचान नहीं पाया। पर उसे लगा कि विपरीत दिशा से जमा हुआ कोहरा डगमगाते हुए इस ओर आ रहा था। अब उधर से नकू आयेगा। पर वह उसके पहुँचने पर भी कोहरे के और भीतर चला गया। यह देखकर जगदीश ने ज़ोर से आवाज़ लगाई, "ए नकू !" उस आवाज़ में आस्वान के साथ-साथ धमकी भी थी, या शायद वही जगदीश के आवाज़ का तेवर हो—वह जब भी कुछ कहता ऊंची आवाज़ में कहता है। पर आवाज़ इस समय उसकी स्वाभाविक ऊँचाई से और अधिक थी—वरना इस अंधड़-तूफान में वह आवाज़ रावण के पास और उसके पीछे इस गोष्ठी के पास ठोकर खाते ही पहुँच नहीं पायी—"हे.. ए.. ए.. नकू।"

नकू खड़ा हो गया था। जगदीश ने चीख़ते हुए कहा, "क्या कहा गेड़ियो ?"

अब, इस चर मे कोहरे मे तीन मूर्तियाँ खडी थीं—रावण, नकू और जगदीश। थोड़ी दूर पर वह दल गोलाई मे बैठा था सिर झुकाकर। नकू को जगदीश के बुलाते ही उस दल के दो एक जने खड़ हो गये। नकू जगदीश की ओर मुडकर गले का पूरा जोर लगाकर चीख कर बोला, "लाल सिगनल दे दिया है, लाल सिगनल।" नकू की चीख इस अधड तूफान मे टूट गयी थी और आवाज पूरब स पश्चिम मे चली गयी थी। आवाजे इस तरह म टुकडे टुकडे होकर उड जाती थी कि उन्हे छोड दूसरे किसी के लिये उनके भीतर कोई सयोग या ताल-मेल बिठा पाना असभव था—वह सब तूफान की आवाज लगती।

तीन तीन आदमी के खडे रहने से हवा उन्हे घेरकर और उजाला हो सकता था। जगदीश पीछे मुड गया और इस दल की ओर लौटना शुरू कर दिया। अब तक जगदीश अधड ठेलकर आग बढ नहीं पा रहा था, और इस पल हवा अचानक उस पीछे से धकिया धकिया कर सामने ठेल देती थी। इसमे उसका शरीर कैसा हल्का लगने लगता था। स्रोत के विपरीत तैर कर अचानक स्रोत के मुह मे शरीर को ढीला छोड़ने जैसा।

नकुल की बात इस दल को पल भर के लिय तोड देती थी। सभी जैसे एक साथ गोल होकर गर्दन झुकाये बारिश और पानी से बच रहे थे नकुल की चीख से वह कोशिश जैसे तुच्छ हो गयी थी। सभी खडे हो गये थे और तितर-बितर होकर इधर उधर छिटक कर खडे हो गये थे। हवा अब तक एक तरह से जल के स्रोत के ढलान की तरह बह रही थी। यह जैसे किसी तरह उस ढलान के नीचे माथा बचाकर बैठे थे। और अब उनके खडे होने ही हवा उनके शरीर के ऊपर से टकराकर चलने लगी थी। इससे हवा की आवाज जैसे अचानक कई गुना बढ गयी थी। इस आवाज के बीच वे गोते खाने लगे थे।

इस दल के सभी अधड तूफान को ठेल कर नकू, जगदीश और रावण की ओर बढना चाहते थे। पर उससे पहले ही हवा के धक्के से वे इनके पास आकर पहुँच गये थे।

नकू ही इस पुनर्गठित दल के बीच मे पड गया था— 'कहा कि लाल सिगनल दिया है। सब रेडी रहे। बॉध को छोडकर, नदी के पार जो है, सब छोड़कर चले जाये, चले जाये। जो लोग नही जायेंगे, सालो की जिम्मेवारी सरकार नहीं लेगी। चर मे जो लोग है, वो साले इसी रात मे डॉगर पर चले जाये, डॉगर पर चले जायें। पहाड़ से बाढ उतरने लगी है, शिवक पहाड़ के नीचे रेल का ब्रिज टूट सकता है। उसी के चलते आसाम की सभी ट्रेने कैसिल, कैसिल"—नकुल की साँस फूलने लगी थी। वह थोडा रुककर बाकी बात कह पाया। उसकी बात खत्म होते ही जैसे हवा अचानक गरज उठी। नकू की बात इस तरह अचानक खत्म हो जायेगी, यह किसी ने भी सोचा नही था। इसी से नकुल की बात ख़त्म होने पर भी कोई कुछ कह

नहीं पाता। ज़मीन से आकाश तक हवा दहाड़ मार रही थी, दहाड़ते हुए लपक रही थी।

नरेश ब्रिज की ओर मुंह करके बोला, "सिगनल पहले से ही आया है, इसलिये ब्रिज की बत्ती सारी रात जलाए रखा है।"

निताई बोल उठा, "इस ब्रिज के बारे मे कुछ कहा ?"

नकू फिर से अपने पुराने अंदाज में चीख़कर बोला, "इस ब्रिज के बारे मे कुछ नहीं कहा, चरवाहे लोग डॉगर में जाओ, डॉगर में जाओ, कोई भी नदी किनारे ना रहे, कोई भी ना रहे।"

गजेन ने पूछा, "बाढ पहाड से उतरेगा कहा है, या उतरने लगा है कहा है नकू ?"

जैसे नकू उस पहाड मे अभी ही उतरा हो और वे उससे आखो देखा हाल जान लेना चाहते थे। इसका जवाब फ़ौरन दे नही पाया नकू। वह हवा के दहाड के बीच एक निस्तब्ध चुप्पी मन मे लाना चाहता था, कोशिश की, बस थोड़ी ही देर पहले रेडियो मे जो सुना था, उसको उसी तरह कहने की।

मन तो कहता—उतरने लगी है कहा है। उतरने लगा है, शिवक पहाड का रल ब्रिज बद कर दिया गया है। हा, हॉ, उतरने लगी है कहा है, उतरने लगी है, उतरने लगी है बाढ़। नकू ने पुनरावृत्ति करके अपनी बात की सच्चाइ का परख लिया।

रावण ने ऊंचाई से नीचे पूछा, "रात मे क्या फिर से समाचार देगा ?"

"नहीं देगा। बोल दिया—खबर खत्म हुआ। इसके बाद और कोइ नियूज नही, और कहा है साइरन बजा दिया गया है।"

"साइरन ? बजा दिया गया है ? सुना नही रे ? कोन सुना है ?" गजेन बोल उठा।

जगदीश ने धमकी दी, "चुप हो जाओ बेलो। तूफान क्या साइरन बजाता है, सुना नहीं ? सादी के बाद सहनाई बजाने लगे हो सालो। अपना आवाज खुद को सुनाई नहीं दे रहा, साइरन सुनेगा ? करें क्या, जल्दी-जल्दी बोलो, जल्दी जल्दी।" जगदीश चुप हो गया। फिर अचानक बोल उठा, "हे नकू, नकू, नकू कहाँ है रे ?" जगदीश ने मोतियाबिंद ढंकी आँखों को इधर-उधर घुमाया।

"बोल न ? इहाँ हूँ।"

"तेरा जेठा (ताऊ) रेडियो को खुला रखा है न ? बंद तो नहीं ?"

"कह क्या रहा है ? क्या जेठा अभी गाना सुनने को बैठा है ?"

"चुप बे सुअर। अगर फिर से नियूज देगा ?"

"जयहिंद कह दिया है, और नियूज देगा ?"

"जयहिंद कह दिया ? तो फिर, क्या होगा नियूज का, ए निताई।" किसी ने जवाब नहीं दिया।

जगदीश ने फिर से हुंकार भरी "ऐ निताई, निताई नही है इहाँ ?"

निताई ने धमकी दी, "अरे, चुप हो जा ना, बेकार मे चिल्ला रहा है। ऐ नरेश, देख तो, कितना बजा ?"

नरेश के टॉर्च के प्रकाश मे इतने लोगो के शरीर पर समय चमकने लगा था।

"ग्यारह बजकर बाईस मिनट।"

"हे ए, ग्यारह बाइस ? साला आकाशवाणी सिलीगुडी का टाईम देखके बता।" गजेन ने कहा।

"तो टाइम, टाइम है सिलीगुडी का टाइम क्या बेटाइम है ?"

"हइ, चुप हो जा, चुप हो जा।" निताई इस भीड के बीच मे खडा था। निताई बाबुरी बाल रखे हुआ था। हवा मे उसके सारे बाल चेहरे पर आ गए थे, और बीच-बीच मे फन उठाते। उस मद्धिम प्रकाश मे निताइ के चर्बीरहित शरीर पर नसो की रेखाये जैसे खुद आयी थी। इतनी देर से ये सब यहाँ इकट्ठे थे जैसे दगल मे थे सब। अब तक इस हवा, इस पानी, इस प्रकाश ने इन्हे ढँक रखा था। अब क्या वह स्पष्ट होने लगेगा ? निताई ने दोनो हाथ ऊपर उठा लिया—"खबर हो। अबकी बार चिल्लाना नही। सुनो।"

भीड थोडा करीब आकर घनी हो गयी।

निताई बोला, "सुनो, अभी रात के साढे ग्यारह बजे है। मान लो, तिस्ता बाजार से इहा तक आने मे फ्लड को कितना समय लगता है, एई नरेशिया, छह घटा ?"

"हॉ, हा। छह घटा।"

"तो फिर मान लो, अभी साढे ग्यारह "

"साढे ग्यारह ना अभी बजा है, नियूज हो गया है वही पौने ग्यारह को।"

"हा, पौने ग्यारह को।"

"पौने ग्यारह बजे ?" निताइ ने पूछा।

"हॉ, पौने ग्यारह बजे।"

"वो ना फिर ठीक है गा, तेरा पौने ग्यारह हुआ तो उसमे फिर छह घटा मिला दे –कितना हुआ ? पौने ग्यारह और छह घटा ?"

"तो यही ग्यारह पकड ले, हिसाब मे सुविधा के खातिर।" गजेन बोला।

"साले, तेरी सुविधा के लिये फ्लड लेट करके आयेगा। जगदीश ने धमकी दी।

"तो ठीक है, तुम बोलो, मै चुप रहता हूँ।" निताइ ने ठडी आवाज में जगदीश से कहा।

"भूल हो गया निताई, तू बोल, यह साला गजेन सब उल्टा-पुल्टा बात करता है।" निताई फिर जोर से बोला, "सुनो, जो भी हिसाब कर लो। इहाँ फ्लड कल सुबह चार बजे से पहले आयेगा नहीं।"

निताई का यह हिसाब काफी तात्पयपूर्ण था। सुबह चार का मतलब है वे आज रात भर के लिये खतरे से बाहर। यहॉ तक कि सुबह चार बजे भी उन्हे अगर चर छोडकर डॉंगर मे जाना पडा तो भी उस समय सुबह का उजाला फूट चुका होगा। निताई सबकी ओर से मुँह खोलकर समय की बात बोला। अब सभी समय का हिसाब करके देख रहे थे। कुछ समय बाद रावण कह उठा, "कहा कि आसाम का रेलगाडी बद कर दिया है। साला तो फ्लड शिवक तक तो आ गया है।"

रावण की बात के जवाब मे निताइ और दूसरे कुछ नही बाले। वे सब हिसाब जोडने मे लगे थे। फ्लड का वार्निंग देने का उत्स-पहाड के भीतर, कालिम्पोग के रास्ते मे तिस्ता बाजार एक जगह है। वहॉ से पानी का हिसाब मिलने स, उसी के मुताबिक अदाजा लगाया जा सकता है—तिस्ता बाजार से हल्दीबाडी के काशियाबाडी तक तिस्ता को गर्भ से होकर करीबन साठ मील रास्ता तय करना पडेगा। यहा तक आते आते पानी को कितना समय लगेगा ? शिवक ब्रिज तक नदी पहाड के बीच से उतरती है। तिस्ता बाजार से शिवक तक जितनी जल्दी उतरेगी, शिवक से जलपाईगुडी तक उससे अधिक समय लगेगा। यहॉ तिस्ता सिफ समतल है इतना ही नही बल्कि तिस्ता के उस भूखड की भी शुरुआत हुई है—जहा से तरह तरह की नहर, तरह तरह के पथ।

नरेश बोला, "अब तो सब कोई जाग रहे है, रात ढाई बजे या तीन बजे अगर चर छोडना पडे, तो आधे स भी अधिक लोग बह जायगे र ।

92

अड़सठ के बाढ़ की याद

नरेश ने जैसे यह बात किसी का सुनाने के लिये नही कही थी, पर इस तेज हवा में उसकी आवाज की गोपनीयता नही रहती, टूट जाती है। उसके बात खत्म होने के बाद उसकी बात को याद करके सबको लगा कि नरेश ने सबको सतर्क कर दिया है। उसके बाद भी, उनकी चुप्पी से उस सतर्क वाणी का अथ समझ मे आ जाता है। उस अधकार और रात के आखिरी पहर म पानी चर पर चढने लगा था। जल के उस तेवर का देखकर ही लोग पल भर म उन्ह क्या करना है ठीक कर लेग। ओर तभी सब कुछ छोड-छाडकर उन्हे घाट की ओर चले जाना होगा। कोई के साथ करने तक का मौका न पा सकेगा। सब मिलकर जलपाईगुड़ी शहर की ओर भागने लगेगे। कौन पीछे छूट गया, कौन आ पाया, कौन आ न सका, कोन बह गया, कौन गिरा, कौन उठा—यह सब हिसाब-किताब पाट पर चढने के बाद होगा। खोजबीन के बाद होगा, जिदा रहने के बाद होगा। अकेले-अकले जिदा रहने के बाद सब मिलकर जिदा बचे कि नही, उसका हिसाब होगा।

यहाँ पर जो लोग रह रहे है उनमे से प्राय सभी ने अट्ठासठ की बाढ मे तिस्ता को देखा था। सभी लोग यही पर थे ऐसा नही है। पर हर कोई अपने-अपने तरीके से जानता है कि किस तरह से बाढ म बह जाने वाले लोगो का हिसाब किया जाता है, पांच-सात दिन के अदर धान के लहलहाते खेत कैसे घुटने घुटने भर कीचड से पट जाते है, बालूचर बन जाता है। शायद हर कोई एक ही तरीके से उन दिनों को याद नही कर रहा था। पर वह याद उन्हे इन सबका हिसाब-किताब लगाने मे सहायक की भूमिका निभा रही थी। आने वाले चार छह घटे के हिसाब के साथ मिला हुआ था प्राय पद्रह-सोलह साल पहले का अनुभव।

पर पद्रह-सोलह वर्ष पहले का अनुभव अब इनमे कितना सक्रिय रह सकता है ? निताइ की उम्र अब क्या होगी ? तीस पैतीस ? तो फिर पन्द्रह वर्ष पहले वह यहाँ कोई पद्रह-बीस वर्ष रहा होगा। पर निताई तो तब पच्चीस छब्बीस का लगता था। तो निताई की उम्र क्या चालीस साल होगी ? या चालीस पार कर चुका ? जगदीश की उम्र क्या है ? पद्रह सोलह साल पहले भी जगदीश पतालीस-पचास का लगता था। तो क्या अब जगदीश साठ का हो गया, और तब तीस का था।

ठीक उसी पल तिस्ता के इस चर पर झखाड के भीतर अधड और पानी से बिधते-बिधते दगा बाँधे ये लोग एक अपरिवर्तित व्यक्तित्व न यादो के साए मे पहुच चुके थे। हर कोइ अपने-अपने तरीके से आखिरी रात के बर्फानी जल की पहाडतोड बाढ मे सुरक्षा की खोज मे सपरिवार बढ रहे थे। वह स्रोत हाथ मे कुछ भी रहने न देता था। वह स्रोत शरीर के भीतर से शरीर को बाहर निकाल लाता था। वह स्रोत सिर्फ अतल मे खिचता था। अब वही स्रोत रवाना हुआ तो दस घटे की दूरी पर है या चार घटे की दूरी पर, किसे पता ?

उस पल वे जैसे इस नदी के चर का आदमी रह नही जाते। नदी के चर में उनका रहन-सहन इतना ही स्वाभाविक था कि वे चर को चर के बतौर भूल ही चुके थे, और नदी को नदी के रूप में पहचानते भी न थे। डॉगर पर ऐसे चलते जैसे पानी मे चला करते है। पर तभी इस अधड-तूफान मे उन्हे भय ने जकड लिया। अपने-अपने गुप्त और एकात भय ने गहरी चॉदनी मे किसी अपरिचित चर के रेत पर मीलो पैदल चलते हुए ऐसे लगता था कि कोई पास-पास चल रहा है, ठीक उसी तरह का भय यह चर जलपाईगुडी शहर के निकट, गन्धपुर चायबागान के निकट, तिस्ता ब्रिज और रेलवे ब्रिज के उत्तर में है। बायी ओर दोमोहानी। यहाँ से तिस्ता ब्रिज की बत्ती दिखायी दे रही थी, सिर्फ इतना ही न. ., इतने समय तक देखते-देखते महसूस हो रहा था कि वे भी इस प्रकाश में घुल-मिल गये है। सुरक्षा इतनी नज़दीक थी। इलैक्ट्रिक लाइट, बॉध, पक्के घर, लोहे का ब्रिज, कंकरीट का ब्रिज—इन सबको मिलाकर एक सुरक्षा उसके दायें-बायें, उनके सामने—यह सब इतना प्रत्यक्ष है कि छह घंटे या चार घंटे बाद मर भी सकते हैं। इस तरह जीने से अब डर लग रहा था।

पिछले बुधवार से ही पानी बढ़ने लगा था। मगलवार रात से बारिश शुरू हो गयी थी। पर मंगलवार रात की बारिश से तो यह नदी और बढने से रही। बल्कि यहाँ बारिश रुक जाने के बाद ही इस नदी का जल-स्तर बढना शुरू किया था। तब से हवा चल रही है—यही तूफ़ानी हवा। जैसे यह अधड नदी के बीच से ही पानी को उठाये ले आ रही है और फिर नदी के आकाश पर उस जल को छिडके जा रही है। हवा मे तैरते कण मे आकाश से धरती तक पानी का कोहरा टग गया हे स्थिर होकर। हवा चलने पर तो हिम कोहरा पल भर मे गुम हो जाता है। पर यह पानी का कुहासा हवा के साथ-साथ घना होने लगा था। हवा जितनी तेज चलती थी, कुहासा उतना ही घना होता जाता था। बाहर से या ऊपर से देखने से इस चर को अलग करके देखा नहीं जा सकता, ऐसा लगता था जैस नदी-आकाश को जोडता क्षितिज जैसे चर को नदी के बीच मे खीच लाया है।

पर इसके बावजूद ये लोग पानी देखकर समझ गये थे कि खतरे की कोई बात नहीं।

हवा मे ख़तरे की गंध आयी शुक्रवार को, यानी आज सुबह से या बृहस्पतिवार, कल रात के आख़िरी पहर से। वह भी रेडियो के जरिये और पाट मे जाकर बहुत-से लोग किस्म-किस्म की ख़बर लेकर आते। पहाड मे भयानक ताड-फोड चल रही है। पहाड टूटकर धँस रहा है। बाढ-विभाग से सिगनल मिलना शुरू हो गया हे।

इसके बावजूद आज की यह शुक्रवार की रात (अभी रात के करीब बारह बजे हैं), जिस तरह से खतरनाक हो उठी थी, वैसा नही भी हो सकता था। हवा तूफान कम हो सकता था। पानी और नही बढ सकता था। उस तरह का एक हिसाब था, इसी के चलते आज दोपहर तक सभी ने देखा है। और, देखने के बाद आज रात मे दल बनाकर चर में घूमने निकले थे, नदी के जल का रवैया समझने के लिये। तिस्ता ब्रिज के ऊपर अगर रात दस बजे भी प्रकाश नजर न आया होता, तो शायद पानी-वानी देख, सुबह तक आसमान साफ हो जायेगा—इस तरह का एक अदाजा लगाते हुए वापस जाकर अपने घर पर सो रहते। उसके बाद, उसी रात ढाई या तीन बजे उनके सोये रहने के बीच बाढ घुस आती, ठीक अडसठ की तरह। परतु अभी, यहाँ से उस पंद्रह-सोलह साल पहले का समय कही सहज था। जैसे, उस समय उस बाढ का तेवर सँभाला गया था, अब की उस तरह सँभाला नहीं जा सकता। तिस्ता ब्रिज की बत्ती से लेकर रेडियो न्यूज और सिगनल तक वह बाढ़ इतनी अधिक जानी जा चुकी थी कि चार या छः घंटे के बाद गहरी नींद से पल भर को पूरी तरह जाग कर प्रायः अनिवारणीय मृत्यु से बच जाने के लिये आवश्यक बिजली की चमक और शरीर मे नही खेलती। बल्कि उसके बदले पूरे शरीर में भय फैल जाता है। पता तो चल गया, पर उस मालूमात से कोई भी उपाय हाथ में नहीं आया। इस तरह की एक विवशता के बीच उस आधी रात को बारिश-तूफ़ान में वे खडे रहे थे। जैसे

कि यह ख़बर, इस ख़बर को जानने का एक अनुसंग था—ऐसी कुछ नावें जो रात भर इस चर के लोगों के संसार को डॉगर मे ले जाकर पहुँचा पातीं। पर इतने बड़े चर पर अभी नाव के नाम पर दो-तीन डोंगा, डेंगी और एक पतवार वाली नौका थी। इस पतवार वाली नाव से ही सारा दिन मुख्य स्रोत को पार किया जाता है। उसके बाद चलकर, तैर कर पाट मे पहुँचा जाता है।

तिस्ता ब्रिज पर बत्ती जल रही थी। इसका मतलब ब्रिज को बचाने का काम शुरू हो गया है। अड़सठ की बाढ़ के समय तो बाढ की ख़बर तक मिल नहीं पायी थी। और अब बाढ की ख़बर आते ही सिगनल तो दिया ही गया है, सायरन भी शायद बजा दिया गया है। यहाँ तक कि तिस्ता ब्रिज टूट न पाये, इसके लिये गाड़ी-गाड़ी बोल्डर लिये क़तार-दर-क़तार ट्रको का ताँता भी लगा दिया गया है।

पर अब अगर इस दल के भीतर अडसठ के बाढ मे बह गये इतने सारे लोग अड़सठ से पद्रह-सोलह साल के बाद बाढ़ की निश्चितता के बारे में संपूर्ण ज्ञान रखते हुए भी एक ही उसी विवशता में खड़े हुए थे। प्रतीक्षा करते हुए अडसठ में जानकारी नहीं थी। प्रतीक्षा भी नही थी। तभी लगा था कि पहले से पता होता तो बच पाते। पर अब इतने पहले से जानकारी होने पर भी बचने की कोई सुरक्षा-व्यवस्था ये लोग नही कर पाये थे इस पल।

93
हिंदी सिनेमा का जोकर

"बाढ की ख़बर तो इस तिस्ता बाजार से ही दी जाती थी, यही से तो सिगनल दिया जाता था। फिर इस बीच मे शिवक कहाँ से आ गया", नरेश बोला। यह समझे बिना ही वह यहीं कुछ देर पहले ठीक उल्टी बात कह गया था।

"सुना, कहा है कि आसाम का गाड़ी बंद कर दिया है, तो क्या रेलगाड़ी तिस्ता बाजार होकर जाती है ?" निताई ने ठंडी आवाज मे कहा।

"सुना है, ऊपर से बाढ़ उतरने लगी है, इसी से बद हो गया है।" जगदीश बोला।

"ये बात तो रेडियो से अच्छी तरह से सुनता था, रेल ब्रिज पर गाड़ी बंद हो गयी है या फिर आगे बंद हो गयी है।" रावण ने कहा।

"अब तो बड़ी-बड़ी बात झाड़ रहा है मर्द जैसा, तभी तो रेडियो ठीक से सुन सकता था," रावण की बात से जगदीश झुँझला उठा और रावण की ओर दखे बिना ही ज़वाब दिया। इससे लगता था जैसे वह नरेश को ही कह रहा था।

"क्या इधर-उधर की हाँक रहा है ? ढाई बजे की गाड़ी तो इस पुल पर से पार हुई है।," अचानक गजेन को याद आ गया था और उसने फ़ौरन सबको याद दिलाया।

"हाँ" बात सबको याद आ जाती है। याद आता है एकांत में। यह ऐसे याद आना नहीं है, जिसको लेकर आपस में छीना-छपटी की जा सके। गजेन ने यह एक अच्छा काम किया था कि उसको याद आ गया और उसने सबको याद दिलाया। अब वे इस ट्रेन के हिसाब से पीछे-पीछे हिसाब जोड़ने लगे थे, तो निश्चित रूप से इस आख़िरी सिगनल के बाद ब्रिज पर से गाड़ियों का गुजरना बंद कर दिया गया है। इसका मतलब है कल से कोई गाड़ी नहीं चलेगी। इसका अर्थ यह हुआ कि सिगनल बाज़ार से ही आया है। यहाँ बाढ़ पहुँचते-पहुँचते सुबह हो जायेगी। तो फिर आज रात चर छोड़कर जाने से भी नहीं चलेगा।

निताई ने कहा, "ठीक है ट्रेन गयी तो गयी, पर सिगनल दिया है कहाँ ? स्थानीय समाचार सुना है कोई ?"

"मैंने सुना है, बाजार भाव सुना है। नहीं, तभी तो कुछ नहीं कहा, कुछ भी नहीं कहा।" जगदीश ने फ़ौरन जवाब दिया। थोड़ा-सा चुप रहकर निताई ने कहा, "ठीक से, ठीक से सोचकर कह कि कुछ कहा तो नहीं ?"

जगदीश थोड़ा चुप रहा। उसके लिये आधी रात को उस शाम की बातें याद करना इतना सरल नहीं था। पर फिर भी उसने एक बार याद करने की कोशिश की कि किस हालत में, किस भाव से वह समाचार सुन रहा था। बाजार भाव सुनते तो वह हाथ का काम छोड़कर कान खड़ा कर लिया था। पर तीन दिनो से चलते इस तूफान और बारिश में क्या जगदीश बाढ़ का समाचार सुनने के लिये कान खड़ा नहीं किया था ? अचानक जगदीश को याद आया, "नही, कहा नही, तेरी काकी चाकू के बारे में पूछ रही थी, क्या पकाने-वकाने का बात कुछ। मैंने कहा, चिक्कू के बारे में। नहीं, कहा नहीं, कहा नहीं, कहा नहीं है।

"तो क्या तू अब तक सोया पड़ा था ?" निताई खीझ उठा, "मान लो रात आठ बजे के अंदर सिगनल नहीं दिया, सिगनल उसके बाद, यही कोई दस बजे मान लो, रात चार बजे से पहले पानी नहीं आयेगा, फिर मान लो, अगर एक घंटा भी मान लो तो भी रात तीन बजे के पहले पानी नहीं आयेगा।"

"तो तीन बजे भी आए तो क्या कर लेगा ? साला तब तो अँधेरा होगा, चाँद डूब गया होगा।" रावण ने कहा।

आकाश की ओर बग़ैर देखे उन्होंने उस छायाहीन मरियल उजाले में चाँद के हिसाब-किताब को समझ लिया। अभी शुक्लपक्ष चल रहा है। चाँद का उजाला इस जल-कुहासा को भेदकर मिट्टी पर पहुँच नहीं पा रहा था। फिर उस पर बादलों से घिरा आसमान। आकाश की ओर देख पूरा चाँद कहाँ है, वह भी जाना नहीं जा सकता। सिर्फ़ चारों ओर के इस अस्पष्ट उजास से समझा जा सकता था कि कहीं से उजाला आ रहा है, निश्चित रूप से आ रहा है। रात तीन बजे यह उजाला भी नहीं रहेगा। पर अब अगर सभी लोगों को मिलकर सामान पत्तर लेकर

पार की ओर जाना पड़े तब क्या होगा ? चार बजे, चार ही क्यों, पौने चार बजे भी यह समस्या नहीं रहेगी। पर फ्लड का यह पानी तो एक घंटा-पैंतालीस मिनट देर करके नहीं आयेगा। तो फिर ?

घूम-फिरकर आख़िर मे वे उसी समस्या पर आकर उलझ गये। ट्रेन इस ब्रिज पर से आख़िरी बार कब गुज़री है, वह गजेन को याद आने के बावजूद बाढ़ आने का समय तय हो नहीं पा रहा था।

गजेन अचानक बोल उठा, "क्यों रे निताई, फ़्लड चार बजे आने से क्या तेरे हाथ में पर फूटेंगे जो चिरइया की तरह उड़ जायेगा उस पार को ?"

"अरे क्या हुआ है, बोल न ! साला, पाला गाने लगा है", निताई ने धमकी दी।

"नहीं, क्या कह रहा था कि सुबह तो जाना ही पड़ेगा पार मे, पर स्साला जायेगा कैसे ?"

"तैर कर जायेगा दिन के उजाले मे, और क्या, सब कोई तो देख पायेंगे।

"मान ले, सुखरंजन की माँ, कानकाट की माँ और तालई की सास बुड्ढी—सब तैरकर जा सकेंगे ? या फिर उन्हें विसर्जन देना पड़ेगा", गजेन को जैसे कोई पेचीदा तर्क मिल गया।

"दे दे, विसर्जन कर दे, इन बूढ़ियों को लेने के लिये ही फ़्लड आया है। ये ऐसे सड़ी हवा छोड़ती है कि घर पर रहना दूभर हो जाता है।" जगदीश बारुई ने हाथ उठाकर कहा। उसकी सास बीमार है अब मृत्यु शय्या पर पहुँच चुकी है।"

"तो कहना क्या चाहता है, कहता नहीं।" निताई ने धमका कर भी जैसे गजेन से विनती की। समस्या का समाधान अभी ही चाहिये।"

"अरे एक काम में क्यों पड़े हो, सिगनल होने लगा है, फ्लड का जल रिसने लगा है क्या ? कहो, रिसने लगा है या नहीं ?" गजेन ने प्रश्नोत्तर में अपनी बात को पटरी पर लाना चाहा।

"हाँ, हाँ, लगा है, लगा है।"किसी आदमी ने समर्थन किया—काफ़ी नीची आवाज़ में, जैसे उसे पता हो कि इस मामूली समर्थन से गजेन अपनी बात को कहता चला जायेगा। जगदीश ने माथा झटक कर सम्मति जतायी, जैसे कि गजेन की बातों से वह पहले से ही सहमत हो।

"वही तुम्हारा रात तीन घड़ी में आये या फिर मान लो कि कल फजीर को आये ?" गजेन ने फिर से सवाल किया।

"हाँ, आने दो", वही आवाज़ जो प्रायः सुनी नहीं जाती, गले में आते ही जैसे धुआँ बन जाती है। जगदीश ने माथा हिलाया।

"पहाड़ से बाढ़ उतरने लगा है, साला तो और हार मान नहीं सकता ?"

"नहीं सकता।"

"यहाँ भी उतरता चला जायेगा, यहाँ, यहीं तुम्हारे चर में आकर धक्का मारने लगेगा।"

"मारने लगेगा।"

"साला हमकू रिस्कू (रेस्क्यू) होना पड़ेगा ?"

"पड़ेगा।"

"ये रिस्कू होने के लिये क्या लगेगा ? नाव लगेगा ?"

"लगेगा।"

"नाव तो नहीं है।"

"नहीं है।"

"एक है, रंधामाली बाजार का टूटा नाव—वह किसी काम का नहीं है।

"नहीं है।"

"हमलोग जब रिस्कू होंगे उसके बाद मिलिटरी नाव उतरेगा।"

"उतरेगा।"

"इनका कुछ और तरीक़ा है, नाव नहीं।"

"नहीं।"

"सालों का नाव हे, रिस्कू नहीं।"

"नहीं।"

निताई ने दोनों हाथों से अपने निकट के आदमी को थोड़ा हटा दिया और खुद दो क़दम पीछे चला गया। उसके बाद गजेन उल्टी तरफ़ रावण के शरीर में मुँह के बल गिर पड़ा। रावण के हट जाते ही वह गीले रेत पर जाकर गिरा। निताई फिर से उसकी तरफ़ दौड़ गया, "साला हिंदी सिनेमा देखते-देखते जोकरी करना सीखा है। तेरा तो बात कहने का ढंग नहीं। यह होता है, नहीं होता है। ये नहीं होता है, होता है।" निताई दौड़ा, पर मारा नहीं। तब तक गजेन सीधा हो चुका था। पर उठकर खड़ा नहीं हुआ। एक कोहनी से धरती पर टेक लगा, और एक हाथ उठाकर गजेन बोला, "छोड़ दे, छोड़ दे, कह रहा हूँ, कह रहा हूँ, चलो अभी दो-चार बेड़ा बना लें।"

गजेन की बात से निताई ने सीधा होकर सवाल किया, "और ?"

गजेन अबकी उठकर बैठने का मौका पा गया, "फिर कहता हूँ, दो-चार ठो मशाल बनाकर रख लो पाट से, जरूरत पड़ जाये तो।"

समस्या के इस तरह सहज समाधान से निताई खुशी से चीख़-सा उठा—"तो उठो, जल्दी।"

94
कौन है बालू के टीले पर

इतनी देर तक जैसे कोई आलोचना वालोचना हुई ही नही थी—इस तरह से निताई रवाना हो गया, जैसे कि यह बहुत पहले से ही तय हुआ था कि वह आज रात को बेड़ा बनायेगा। निताई के दो-एक क़दम चलते ही बाक़ी सब उसके पीछे पीछे चलने लगे।

सब मिलकर जितने समय तब बातचीत करते रहे थे, तब तक हवा-तूफान आड में जा छिपा था। या फिर ये लोग गोलाई से खडे होकर हवा को एक तरह से रोक रखे थे—अपनी बातचीत ख़त्म करने के लिये। बातची‌त करते समय वे अपना सिर इस तरह झुकाए हुए थे कि माथे के ऊपर आकाश और ऊपर आकाश और ऊपर उठ सकता है। प्रलय के भीतर आत्मरक्षा की कोशिश में जो एक तरह का विच्छन्न घेरा अपने चारो ओर बना लिया जाता है, उसी तरह का अस्थायी घेरा खुद ही तोडकर ये जब चलने लगे तो तिस्ता से आकाश तक फैला जलकुहासा ओर हवातूफान पल भर मे ही इनको घेरे मे ले लिया। ओर इन पर झपट्टा मारने लगा। दो-चार क़दम चलते ही ऐसा लगता था जैसे ये इतने समय तक किसी अन्य भूमडल मे थे। बस अभी-अभी यहाँ पाँव धरा है। आकाश एकबारगी माथे के ऊपर झुक आया था। दोनो हाथो से आकाश को हटाते हटाते उन्हे रास्ता बनाना पडा। पर हवा के धक्के मे फिर पीछे हट आना पडता था या फिर खडा हो जाना पडता था। हवा जैसे इतनी देर मे इतने सारे लोगों के शरीर को पाकर इन पर झपट्टा मारती थी। इन शरीरो के प्रत्येक को घेर कर जैसे अलग-अलग घिरनी चल रही थी। इनके चलने के साथ-साथ हवा भी चल रही थी। इन शरीरो को छोडकर तूफान का और कोई सहारा नहीं था यहाँ।

चारेक मिल लंबे तीनेक मील चोड़े इस चर की यह दक्षिणी सीमा ढालू होकर नदी मे मिल गयी थी। यह जगह चर के बीच के ऊँचे डागर से नीचे होते-होते नदी में मिल गयी थी। ऐसा हो सकता है कि यहीं से ही चर सबसे पहले नदी से निकल कर सीढ़ी-दर सीढी धीरे-धीरे उठती चली गयी हो। नदी भीतर का रेत, पत्थर साथ में ले आयी। उसके बाद यहाँ बस्ती बसी, खेतीबन्दी हुई, पर इसके रेत वापस नहीं लौटे।

वे यहाँ आये थे पश्चिम पाट के रास्ते से चलते-चलते। अब उन्हें वापस जाना पड़ रहा है पूरब पाट के रास्ते से। वे पैदल ही लौट रहे थे। लौटना पड़ रहा था पहले, हवा के बाधा को साथ मे लेकर। दूजे, पैर तले के गीले रेत में पैर धँसते जा रहे थे और उठाते समय फिसल भी रहे थे। तीसरे, यह

जगह थोड़ी-सी चढ़ाई थी—उस चढ़ाई पर उन्हें अपने आपको ठेलना पड़ रहा था।

नितार्ई अचानक घूमकर खड़ा हो गया और चीख़कर बोला—"नरशुआ और नकू तुम लोग टॉर्च लेकर यहाँ रुको। कुछ देखो तो दौड़कर ख़बर करना।"

"यहाँ दौड़ेंगे किस तरह ?" गजेन चिल्लाकर बोला और हँस पड़ा। "पानी से होकर कहाँ जा रहे हो, तैरने ?"

नरेश और नकू पीछे रुककर खड़े हो गये, फिर वापस चलने लगे।

थोड़ी दूर से या ऊपर से अगर इन कई लोगों को देखा जाता तो किसी अनुभवी को ऐसा लग सकता था कि रेत के कुछ खंबे हवा के ज़ोर से बढ़ते जा रहे हैं। जल-कुहासा की अस्पष्टता और रेत की अस्पष्टता मिलकर ऐसे एकाकार हो गये थे कि तमाम दृश्य मिल-मिलाकर एक ही दृश्य नज़र आ रहा था। पर क़दम-क़दम के थपेड़े से उस दृश्य की विचित्रता का अंधों जैसे राह चलते हुए भी अंदेशा मिल रहा था।

बारिश से तमाम रेत भींग जाने से पहले ही हवा के थेपेड़ों में रेत का भूगोल बदल गया था।

किसी तूफान से रेत आकाश में उठकर झुरझुराता हुआ जमा हो गया था। थोड़ा-सा ऊपर या आकाश के भीतर से चील की तरह हवा से ऊपर उतर आता किसी स्तूप के शिखर-सा झुरझुराता हुआ टूटकर बिखर गया था। चारों और बालू के डाँगर के बीच थोड़ा-सा.काला जल टलटला रहा था—जैसे बच्चे तैर सकें। इन दिनों के तूफान में वह पोखर-सा भर गया था। इसके फलस्वरूप यह जगह फुटबाल के मैदान जैसा समतल हो गया था। इस परिवर्तन के बाद बारिश के आने से बाद के कई दिन तक एक स्थायित्व देता था।

फलस्वरूप ये लोग जैसे इनके पाँव के अपरिचित एक भूखंड से होकर चल रहे थे। आमतौर पर इन्हें आँखें बंद करके चले जाना चाहिये। इस चर का हरेक भाग पाँव के नीचे जाना-पहचाना था। पर विगत दो-तीन दिनों में ही एकबारगी इस पार का यह रेतीला क्षेत्र अपरिचित हो गया था कि अगर अंधड़ न होता, अगर उजास उस तरह छायाहीन मटमैला न होता, तो उनके लिये सीधा चलते जाना भी संभव न होता।

कौन, पता नहीं, पर कोई एक जन उनसे थोड़ा अधिक लंबा हो जाता। पीछे के सभी देख पाते थे कि वह धीरे-धीरे ऊपर जा रहा है। और थोड़ा-सा ऊपर जा सकता है इसी से शायद हवा से चेहरे को थोड़ा हटा पाया है। रेतीले क्षेत्र की चढ़ाई डाँगर के नीचे से ऐसी लग रही थी जैसे पूरा का पूरा रेतीला क्षेत्र चल रहा हो। रेत और मनुष्य जैसे मिलकर एक हो गये हैं। सिर्फ़ आदमी के सिर का बाल, उसके क़दमों का अंदाज़, शरीर का विन्यास जता देता था कि वहाँ एक

शारीरिक आलोड़न है। बाधा के सामने मनुष्य के शरीर का आलोड़न।

इस रेतीले क्षेत्र में जो ऊपर को उठा था, वह बेअंदाज़ा ही चढ़ गया था। हर जगह तो हवा धक्का दे रही थी, हर जगह तो पाँव डूबा जा रहा था। सामने के पैर पर भार देकर पीछे का पाँव उठाते समय सामने का पाँव डूब जाता था। पाँव रखते हुए दोनों पाँवों की समता की रक्षा न कर पाने से गिर जाना पड़ रहा था। और गिरने से दिशा भी बदल जा रही थी। इस तरह से इस आच्छन्नता के बीच रास्ता चलने से क्या कोई अपना क़दम-दर-क़दम अंदाज़ा लगा सकता है कि चढ़ाई पर चढ़ रहा है या ढलान पर उतर रहा है। वह भी ऐसे रेतीले क्षेत्र में जहाँ फिसलन भरी चढ़ाई हो ? उसे पता नहीं चलता। उसे इस पूरी चढ़ाई को तोड़ना पड़ता है।

पर नीचे जो लोग थे वे तो इस चलते हुए रेतीले क्षेत्र को देखकर समझ जाते थे कि कोई एक आदमी रेतीले क्षेत्र को पार कर रहा है। फिर अचानक वहाँ से उन्होंने बायें घूमने की कोशिश की—जहाँ तक बायें घूमना संभव था। जहाँ तक कोशिश करना संभव था। बायीं ओर घूमते हुए और एक चढ़ाई पर वे न निकल जायें इसका भी कोई ठिकाना नहीं। पर सामने एक आदमी को आते देख उसके बढ़ते क़दमों के बीच जब जता देता था कि वहाँ रेतीले पहाड़ की चढ़ाई है, तब बाक़ी सभी लोगों को ज़रा बायें-दायें हट जाना पड़ता—रेतीली चढ़ाई को पार किये विना सिर्फ़ उसके चारों ओर चक्कर काटे जाने पर ही उस पार जाया जा सकता था। दायीं ओर जाने का तो सवाल ही नहीं उठता—अंधड़-तूफ़ान तो उधर से ही आ रहा था। बल्कि बायीं ओर घूमने से इस चढ़ाई में तूफ़ान से कुछ हद तक बचा जा सकता था।

जिस चर को खुद हासिल करके आबादी के लिये जगह बनायी थी, रहने योग्य बनाया था, उस जगह से होते हुए आँखें बंद किये चलने में भी एक पराजय थी। उस पराजय को स्वीकारते हुए उन्हें चलते चले जाना था। तूफ़ान के थपेड़ों में खुद के चलने की गति का भी अंदाज़ा नहीं लगता। कितनी देर में कहाँ तक पहुँचा जा सकता है, समझ में नहीं आता था। रेत के चर में अपने चलने की गति का अंदाज़ा भी नहीं लगता कि कितना चलने पर कहाँ पहुँचा जा सकता है। कुहासा से गति का अंदाज़ा भी नहीं मिलता—कहाँ तक आये और कितना चलना है उसका भी कोई हिसाब नहीं मिलता।

जो लोग नीचे थे उनमें से एक आदमी चीख़ा, "सब मिलकर लौटने लगे हैं, और यह कौन-से आसमान पर चढ़ने लगे हो।"

आवाज़ से पहचाना गया कि यह स्वर रावण का है। कोई जिज्ञासा नहीं, सिर्फ़ एक मंतव्य, एक आदमी आकाश पर चढ़ा जा रहा था।

"आकाश यहाँ रेत से मिल गया है, क्या पता।" यह निताई ने बोला।

"क्या यहाँ पर भी बाढ़ है हो ?" रावण मज़ाकिये अंदाज़ में कहता है। पिछले छोर से निताई की हँसी सुनायी दी—"यहीं पर ब्रिज मे लगा लाइट चलता है।"

"देखकर भला क्या फायदा होगा ? अब तक तो गाड़ी लाइट देख चुके हैं ?" गजेन बोला, ऐसा लगता है कि निताई और एक धाप ऊपर चला गया है।

रावण वहाँ से सिर ऊपर उठाकर बोला,—"यही उजाला देखकर तो पता चला कि बाढ़ आने वाला है। नहीं तो नींद के बीच ही बाढ में बह जाना होना।" रावण शायद भीड़ की थोड़ी आड़ में चला गया था, पर उसकी बातें स्पष्ट सुनायी दे रही थीं।

"वह तो ठीक बात है।" जगदीश बारुई के मोतियाबिंद की अवलंबनहीनता उसके आवाज़ से पहचानी जा सकती थी। पर समझा नहीं जा सकना। और जो कई लोग तेज़ हवा के मौक़े से डर कर आगे बढ रहे थे- उनके बीच जगदीश कौन था ?

"सभी तो जानते हैं कि हम सब यहीं हैं। नाव भी आ सकता है।" गजेन बोला।

किसी ने आवाज़ नहीं दी इसी मे वह फिर बोला, "मिलीटरी आ सकना है, नाव आ सकता है, रिस्कू करने के लिये।"

"रिस्कू आने से क्या लौट नहीं जायेगा या पुकार-पुकार कर तलाश करेगा ?" रावण बोला।

"मिलीटरी आदमी कैसे समझ पायेगा कि कहाँ-कहाँ आबादी है। धाकिन्ना पत्थर के पीछे एक घर भी है। वहाँ भी लोग रहते है। नाव से सबको कैसे निकालेंगे ?"

"मिलीटरी नाव तो भटभटी नाव है। सो घर तक आ जाता है।" निताई बोला।

"भटभटी नाव चल नहीं सकता। कीचड धुस जाता है।" जगदीश हो-हो करता खुशी से हँस पड़ा। अचानक जैसे इस जल में मोटरबोट चल नही पाने से उसको कोई खुशी मिल गयी थी। निताई झुंड के छोर के भीतर अचानक डूब गया। उसे और देखा नहीं जाता। उसके बाद संपूर्ण नीरवता से उस झुंड का माथा रेत के अंदर डूबकर नीचे से निकल आया था। निताई जब खड़ा हुआ था उसके भीगे शरीर और सिर से पाँव तक रेत अंटे थे।

"साला," निताई उठकर खड़ा हो गया और दोनों हाथों से रेत झाड़ने लगा। फिर आँखों के दोनों पलकों से रेत झाड़ा।

तभी सामने से दो आदमी आ गये। निताई कहता है—"साला, सीधा

चलते-चलते यहाँ तक चढा हूँ। अभी और ऊपर चढ़ना है।"

निताई ने फिर से चलना शुरू कर दिया।

95

बाढ़ : जागरण और नींद

"अरे, देखना, जगदीश तिस्ता के भीतर न समा जाये।" रावण ने आगे बढते-बढ़ते गर्दन घुमाकर कहा।

"तू चल ना साला, पहाड जैसा कुहास को हटा-हटाकर चलने लगा है।" रावण के ठीक पीछे जगदीश था, यह रावण जान नही पाया था।

बालू के टीले को पार करते ही इनकी एक लाइन बन गयी थी। पैरों मे मेढ की मिट्टी लग गयी थी, पर अगुलिया मिट्टी को कुरेद कर पकड लेती। परिचित मिट्टी को कुरेद कर पकडने मे जैसे ये अगुनियाँ अभ्यस्त थी। इन सब मेडों पर उनके पाँवो के निशान रह गये थे। अपने उन प्राचीन पदचिह्नो पर वे कदम रखते कुहास के अदाज के मुताबिक। इस कुहासे मे पेर तले की मिट्टी साफ़ नजर नही आती था। पर पाव से मिट्टी को अनुभव किया जा सकता था। चर का ऊँचा डाँगर शुरू हो गया था। अब सामने धान के खेत नजर आ रहे थे। उसमे अश्विनी राय ने पाँचेक बीघा जमीन मे भादोई धान की खेती की थी। धान पक गया था, अबकी फसल अच्छी हुई थी। आज रात के आखिरी पहर में पके हुए धान पानी मे तैरते बह जायेंगे।

अश्विनी राय के खेतो के पतल-पतले टुकडे ऊपर को सीढ़ी जैसे उठते चले गये है। धान की नयी खेती। अभी धान के पौधे जमीन से मेड तक ऊँचे नही हुये। हवा विगत तीन दिनो से पानी की तरह लहरा रहा थी, डोल रही थी। ओर जलकुहासा के भार से दबकर करीबन मिट्टी से लग गयी थी। ये तूफ़ान और बारिश दोनो ही इस फ़सल के लिये बेहतर थे। अगर इस तरह से यह बारिश तूफान और दो-चार दिन तक भी चले तो कोई बुराई नही। उसके बाद एक दिन की धूप मे ही मिट्टी मे सोये धान की खेती चगी हो जायेगी। चंगा होकर आकाश मे, नीले आकाश के तले कम-से कम सिर उठायेगा और कम-से-कम आदमी की लबाई के क़रीब लंबा हो जायेगा। धान के खेत का यह लबा होना तो समझा जा सकता था, फिर इस तरह के लगातार हवा-पानी के बाद और ही समझा जा सकता था। बच्चे जैसे हाथ-पैर छोड़ देने से कैसे लंबे और बीमार हो जाते हैं, धान का खेत भी देखने से उस तरह का लगता था। इसके बाद जब धान बालियों के भार से झुक जायेंगे तो मोटे नज़र आयेंगे। पर यह धान के पौधे लंबे नहीं होंगे, मोटे भी नहीं होगे। आज आख़िरी रात में कच्चा

खेत ही बह जायेगा।

इधर से पहले आयेगा—दो नंबर मिस्त्रीपाड़ा। यहीं से चर की बस्ती शुरू होती है। बीच में रास्ता और दोनों ओर खेत। उस बस्ती के पीछे ही आबादी थी। मन-ही-मन सोचने पर पहाड़ जैसा लगता था। नीचे रेतीला क्षेत्र, बाद में खेत और सबसे ऊपर बस्ती। पर वही अगर होता, पहाड़ जैसा ऊँचा होता, तो अपने घर पर बैठे-बैठे ही पके धान, कच्चे खेत—हर जगह पानी का घुसना, बाढ़ से बहना सब कुछ देखा जा सकता था। पर तिस्ता के बाढ़ के सामने यह ऊँच-नीच, उतराई-चढ़ाई कोई अर्थ नहीं रखती।

मिस्त्रीपाड़ा में घुसकर कुछ दूर आगे बढ़ते ही कुहासा हल्का हो गया था। दोनों ओर घर होने से हवा और कुहासा अंदर घुस नहीं पाता था। पर घरों के ऊपर तो कुहासा लगा ही हुआ था। आकाश का प्रकाश तो उसे भेदकर और नीचे आ नहीं पाता। फिर भी, मिस्त्रीपाड़ा के अंदर से होते हुए इस आधी रात को ये सब जैसे एक-दूसरे को देख पाते थे—लेकिन, क़रीब-क़रीब भोर के प्रकाश में। निताई खड़ा हो गया था। निताई का कच्छामारा कपड़ा उसकी जाँघों से सटा हुआ था, उसके शरीर पर जल और बालू तो कैसे चमक रहे थे। निताई अपने बाबुरी बालों के गुच्छे को सामने लाया। फिर एक झटके से पीछे कर दिया। बाल का पानी रेत में झड़ गया। रावण खड़ा हो गया। रावण सबसे वयस्क और सबसे लंबा था। उसके सिर पर बाल नहीं थे—एकबारगी टकला सिर था। इस अस्वच्छता में एक पेड़ जैसा लगता था। उसके शरीर के चारों ओर, लंबाई तक जलबिंदु चमक उठते थे। उसके बदन में सिर्फ़ एक लँगोटी भर थी। सिर से पाँव तक रावण को देखने पर लगता था कि इस जल में प्रतिबिंबित उजाले से ही यह अस्वच्छता बनी है। उसने अपने दोनों चौड़े हाथों, मुँह, शरीर और हाथ के प्रतिबिंब को पोंछ डाला।

जगदीश सबसे छोटा और ठिगना था। रावण के बाद वह, और उसके बाद गजेन के कतार में खड़े होने से यह बात समझ में आ गयी थी। वह धोती पहने था। कमर में धोती के सिरे को खोंसे हुए था। उसके ऊपर कमर से माथे तक का भाग थाक-थाक बिठाया हुआ। छोटी-सी गर्दन पर बड़ा-सा माथा—जैसे अलग से रखा गया हो और उस माथे को जगह देने के लिये ही जैसे दोनों ओर ऊँचे हो गये थे। हल जोतने जैसा ऊँचा। पसीने की बूँदें उन सबके शरीर की मांसपेशियों पर, चौड़ी-चकली छाती, छाती के पंजेर, छोटे-से भेदविहीन पेट पर छाई हुई थी। जगदीश के शरीर का सब कुछ स्पष्ट दिखायी नहीं देता था। पर जल में उजास की बदरंग चौंध से ही पता चलता था कि उसके शरीर की लंबाई की कमी को मोटाई ने ढँक लिया है—वह भी पेशीबहुल स्तरों से। जगदीश ने खूँटी से बहुत सारे कपड़े निकाल लिये, वह सब भीतर ही भीतर

ठूँसे थे। उसी सूखे कपड़े से उसने माथा, कधा, चेहरा पोंछ लिया। उसके मुँह से एक तृप्तिकर आवाज़ निकल रही थी, जैसे वह अभी-अभी स्नान करके उठा हो।

गजेन एक पाँव पर भार देकर उठ खड़ा हुआ, जैसे इस छोटे-से पतले शरीर का वज़न एक ही पैर के लिये ही नाकाफ़ी हो। वह इस तरह से खड़ा हुआ जैसे इतना लंबा रास्ता हवा को ठेलते हुए, रेत को ठेलते हुए नहीं आया, बल्कि इतना रास्ता तय करने के लिये उसके समूचे शरीर की पेशियों को दलित होना पड़ा है—फिर भी वह अभी काफ़ी रास्ता चल सकता था। गजेन सिर से पाँव तक नंगा था, सिर्फ़ कमर में छोटी-सी लँगोटी भर ही थी। उसने अपने शरीर से पानी को पोंछा नहीं, जैसे ये जलबिंदु न हों, बल्कि उसक शरीर से फूटे हुए कोई जरूरी अंग हों। उन जलकणों के अस्वच्छ प्रतिफलन में गजेन ने अपने शरीर में खुद।ई क' लिया था। वह खड़ा था किशोरों की तरह।

"सबको आने पर कहें या चिल्लाकर बता दें ?" निताई ने पूछा।

गजेन ने हँस दिया, "निताई चंद सरकार अभी भाषण देने जा रहे हैं। आप लोग इसमें बड़ी तादाद में योगदान करें।"

गजेन थोडा ज़ोर से बोला। निकट के घर के अंदर से किसी ने उनींदे गले से पूछा, "कौन है रे ? कौन है ?"

जगदीश चीख़कर बोला, "सालो, उठकर देखो, तुम्हारा बाप आया है बाप। आदमी की आवाज़ सुनकर भी उठने का नाम नहीं ?" यह घर रमणी सरकार का था।

रास्ते से ही उस आवाज़ से समझा जा सकता था कि अंद' रमणी सरकार उठ गया था।

रावण बोला, "साला क्या हमरी माँ का सादी रचाया जा रहा है कि तमाम कुटुंब को न्योता देने चले हो ?"

"रमणी को तो उठने में आधा घंटा लग जायेगा। उसके बाद बीड़ी सुलगायेगा, लालटेन जलायेगा। फिर दरवाज़ा खोलेगा। चिल्ला क' कह क्यों नहीं देते ?"

निताई चिल्लाया, "हो, लाल सिगनल दे दिया है। रात के आख़िर में बाढ़ आयेगा। बेड़ा बनाकर रखो। हम हरिसभा में हैं। उठकर तुम भी चलो फिर।"

चलना शुरू करते ही घर के भीतर से रमणी चीख़ उठा, "अरे ठहरो, ठहरो।"

गजेन ने पीछे से गर्दन घुमाकर कहा, "और रुकेंगे क्यों, तुम लोग आओ।"

रावण बोला, "यही तुम्हारा लाल सिगनल है, आदमी सब सो रहे हैं।"

जगदीश ठठाकर हँस पड़ा। फिर बोला, "साले समधी के बाप लोग तभी

समझेंगे जब नींद में ही फ़्लड घुस आयेगा।" कहता हुआ जगदीश फिर से 'हो-हो' करता हँस पड़ा, जैसे वह एक मज़ा देखने की प्रतीक्षा में हो।

जगदीश काफ़ी व्यस्त दिखायी दे रहा था। नदी के पाट पर उसे बेचैनी लग रही थी। जो होना चाहिये वह हो नहीं रहा था। जबसे मालूम हो गया है कि लाल सिगनल दिया जा चुका है, और पहाड़ से बाढ़ उतर रही है, रात के आख़िरी पहर में बाढ़ यहाँ पहुँच जायेगी, और उसके लिये अभी से बेड़े बनाये जायेंगे—तभी से जगदीश स्थिर हो गया था। और उसी स्थिरता से, वह उनमें से उम्र में सबसे बड़ा होने पर भी प्रायः बच्चों जैसे उछाह से भर गया था। रात के आख़िर में नींद के बीच तिस्ता के ठीक बीचोबीच जाग कर रमणी का क्या होगा, वह सोचकर मन-ही-मन हँसी से लोट-पोट होने लगा। हँसता था और दौड़-दौड़कर चलता था। उसे दौड़-दौड़ कर ही चलना पड रहा था क्योंकि निताइ और रावण बड़े लंबे-लंबे डग भर रहे थे।

मिस्त्रीपाड़ा मूल बस्ती इलाके से बाहर था। धान खेतो के बीचोबीच बस यही एक पाड़ा था। उसके बाद फिर से खेतों का सिलसिला और उसके अंत में नावापाड़ा। यहीं से बस्ती घनी होती गयी थी। मिस्त्रीपाडा से नावापाडा, बीच में दोनों ओर धान के खेत, फिर एक बड़ा-सा बाँस का जंगल। इस जंगल के बीचोंबीच रास्ता चला गया था। यह रास्ता समकोण बनाते हुए पश्चिम की ओर मुड़ गया था। इसके बाद नावापाड़ा।

नावापाड़ा के बाद एक छोटा-सा ढबरा। तिस्ता के पुराने बाढ का पानी इस ढबरा में रुक गया था। अब पानी का रंग बिल्कुल हरा हो चुका था। उस ढबरे के उस पार महिंदरपाड़ा, उसके दायें में और एक बाँस का जंगल। उसके बाद सरकारपाड़ा दो नंबर। इस तरह से चर जैसे और चर न रहा हो, धीरे-धीरे भरपूर गाँवों में बदल गया था। काली सख़्त मिट्टी का गाँव। बड़े-बड़े वृक्षो की आड़ में छाया के नीचे बसा हुआ गाँव। उन गाँवों के अंदर जाने पर किसी को ख्याल तक नहीं आयेगा कि और सिर्फ़ दो-तीन घंटे के बाद इन सबके ऊपर से तिस्ता का मटमैला जल तीव्रता के साथ बहने लगेगा। और उस जल से गाँव का कोई पेड़ या और कुछ गाँव का निशानदेही करेगा। हवा यहाँ कम थी। पर फिर भी हवा के झकोरे से बाँस-वन के अनगिनत बाँस मिट्टी के क़रीब डोलते हुए झुक आते थे और टूटे-फूटे धनुष जैसे ऊपर को उठ जाते थे। इस हवा में बाँस के पत्ते इतने साँय-साँय कर रहे थे कि लगता था जैसे इस जंगल के पास ही कहीं आड़ में कोई प्रखर जलस्रोत बह रहा है। बाँस सब काँप-काँप उठते और वह आवाज़ चारों ओर फैल जाती थी।

नावापाड़ा के मोड़ से उन्होंने देखा कि दीनानाथ के बंगलेनुमा घर में एक पेट्रोमेक्स जला दिया गया है और उसके सामने के छोटे-से मैदान में लाश जैसे

कटे हुए केले के पेडों का अंबार लगा है और पास ही में पत्तों का ढेर लगा था। उजाले मे कम-कम-से छह-सात लोग काम में जुटे हुए नजर आ रहे थे। दूर से देखकर निताई बोला, "अरे इन्हें भी रेडियो से पता चल गया है, जो भी हो बच गये—ऐ हे अमूल्य।"

उनकी आवाज़ सुनकर सब इस ओर देखने लगे थे। पर कोई भी कुछ देख नही पाया। उजाला उनकी आँखों को चौंधिया देता था। किसी-न-किसी के हाथ में हँसिया था और दूसरे हाथ मे केले का पेड़ पकड़े हुए थे। कोई-कोई खाली हाथ भी था। किसी के हाथ में सिर्फ लाठी। सब इस बॉस-वन की ओर देख रहे थे।

उसके बाद भीड़ में से कोई चिल्लाया, "कौन है ?"

तब तक प्रकाश के वृत्त के भीतर वे पहुँच चुके थे। सबसे आगे निताई था, हँसता हुआ।

96

दक्खिन में, पच्छिम में—जागो, आ गया

फिर भी कोई निताई को पहचान नही पाया। यह देखकर वह चीख उठा था, "अरे सब भूत देख रहे हो क्या ?"

"अरे निताई ? जगदीश माहा ? अरे, तुम सब कहाँ गये थे ?" केले के तने को फेक कर सब आगे बढने लगे। इस उजाले मे इनका चेहरा देखने पर लगता था जैसे काफ़ी दूर से आये है। सबके घुटने तक बालू चिपका था। निताई के तो सिर के बाल से पैर के नाखून तक बालू से सना हुआ। भीगने से वह बालू शरीर पर चिपक गया था। वह ऐसा लग रहा था जैसे बालू के नीचे, बहुत नीचे से बालू फोड़ कर निकल आया हो। गवण के इतने लंबे शरीर में जैसे बारिश और हवा की मार अधिक पडी थी। बारिश और हवा की तेज-तर्रार मार से मानो वह कुबडा हो गया था। जगदीश पीछे से लपक कर सामने आ गया—"उत्तर पार से दक्खिन पार तक पानी नापकर आ रहा हूँ, तिस्ता ब्रिज पर सारी रात बत्ती जलाकर रखी गयी है।"

"अरे, बैठो तो सही पहले। कहो, क्या बात है ?"

"तुम सब बेड़ा क्यों बना रहे हो ?" निताई हँसा।

"रेडियो तो कहा, सुना तो सोचा, जो हो, सो हो, बेडा तो बनाकर रखें।"

"अपने बारे में तो काफी सोचा, पर चर की बात भला क्यों सोचोगे ?" जगदीश ने कहा।

"जो लोग सोचकर घूम आये, वे ही सोचेंगे। तो हमारा काम क्या है—यह

ठीक से सोचो और कहो। और क्या-क्या देखा, कहो।''

''घोड़े की सींग और गधे का अंडा। चुप करो। इधर के मुहल्ले में ख़बर कर रहे हैं, क्या दिखता नहीं है। ?'' निताई ने सामने वाले आदमी को जैसे धमका कर कहा। निताई की यह धमकी ही उसका सामाजिक संभाषण था। सब के सब एकबारगी हँस पड़े।

जिसे कहा गया था, वह बोला, ''अरे तमाम चर घूम आये अब क्या तुम फिर से खबर देने दौड़ोगे ? भोलापान है किसलिये ? तुम लोग बैठो। अरे ओ भोला, दो-तीन साइकिल निकाल फ़ौरन...''

निताई दुकान के बरामदे में जाकर बैठ गया। फिर हँसकर बोला, ''अरे अमूल्य, तेरे माथे में क्या है, एक बार एक्सरे करके देख तो ले !''

अमूल्य हाथ में दाँ (चापर) पकड़े हुए था। वह उसे हाथ में घुमाते-घुमाते हुए बोला, ''क्यों, क्या कहा ?''

''क्या कहा, मतलब ? अरे बाढ़ आयेगा, तू तो सुना है न आखिरी नियूज में ?''

''हाँ।''

''तो अब रात बिताना बाक़ी है ? एकबार सबको बोल-बुला देता नहीं ?''

''यहाँ बेड़ा बन रहा है और अभी रमणी साहा ऐसे सोया है कि धेला मार कर भी उसे जगाया नहीं जा सकता। बाढ़ में बह जाने पर भी उसे पता नहीं लगेगा।''

''ऐ... नीलमोहन, जा तो रमणी काका को बुलाकर ला।'' अमूल्य ने कहा।

''और बुलाने की कोई ज़रूरत नहीं है, वो अब दौड़ा आ रहा होगा।'' जगदीश एक घर के दरवाज़े पर बैठा था, वहीं से बोला।

साइकिल लाने के लिये जिसे कहा गया था, वह, और दो आदमी साइकिल लिये वहाँ आकर खड़े हो गये। अमूल्य बोला, ''दादा, भोला लोग आ गये। कह दो, कहाँ क्या खबर देना है।''

निताई थोड़ा-सा रुककर बोला, ''एक काम करो, एक बार सीधा घूम आओ। अगर देखा कि और सब मुहल्ले में सब लोग जाग गये हैं तो कह देना, हम सब यहाँ हैं। और अगर देखो कि कोई ख़बर नहीं है तो उन्हें जगा देना।''

जगदीश ने पुकारा, ''ऐ भोला सुन।''

''बोलो।''

''अपनी जेठी से कह देना, मैं यहाँ हूँ।''

''तो फिर तुम्हारा फिर रहने का क्या काम है यहाँ, भोला की साइकिल के पीछे बैठकर चले जाओ। भोला वगैरह के घूमकर आने के बाद हमलोग भी

चले जायेंगे।'' निताई कहता है।

''तो जाऊँ ?'' जगदीश कुछ सोचने लगा।

''जाओगे नहीं क्यों ? क्या तू रात का बहरा है ? जाने से तो पाड़ा का कुछ बिलाबंदोबस्त देख पाओगे ?'' निताई बोला।

''तो जाता हूँ फिर, क्या कह रहे हो ?'' जगदीश भोला की तरफ बढ़ गया। भोला ने साइकिल को सीधा करके पकड़ लिया। जगदीश साइकिल के पीछे कैरियर पर दोनों ओर पैर झुलाकर बैठ गया। उसके चढ़ने के अंदाज़ में इतनी स्वच्छंदता थी कि जिससे समझा जा सकता था कि वह इसी तरह से बैठने का अभ्यस्त है। भोला मज़बूती से साइकिल को पकड़ कर बोला, ''क्या तीनों एक ही तरफ जायेंगे ?''

''एक ही तरफ जाओ। जरूरत पड़ने पर एक आदमी आकर खबर दे सकता हे, क्यो ?'' निताई बोला।

यहाँ एक पेट्रोमैक्स जलाया गया था इसी से आलोक का एक केंद्र नज़र आ रहा था। पेट्रोमैक्स का उजाला चारों ओर फैला हुआ नहीं था—गोल होकर स्थिर था। जैसे पेट्रोमैक्स को दिखाने के लिये ही पेट्रोमैक्स जलाया गया हो। उस उजाले के बीच आकर सबलोग कामकाज कर रहे थे। उसके बाहर कुछ नज़र नही आ रहा था। जैसे पेट्रोमैक्स का प्रकाश ही उजाले के पीछे की ओर आड कर रखा है। उस आड की ओर देखकर निताई ने सवाल किया, ''अमूल्य, कितने बेड़े बन गये ?''

''यही तीन ठो बनाया हूँ। पर मवेशियो के लिये, एक ठो बड़ा करके बना रहा हू।''

''धत् तेरे की। बुद्धू कहीं का। मवेशी बेडे पर खड़ा नहीं हो पायेंगे। सो जायेंगे। एक-एक बेड़े में एक-एक मवेशी रह सकेंगे।''

''अमूल्य तेरे गाय-बैलों को तैरा देना और साला तू उनके पीछू-पीछू जाकर पकड़ना कि वे किस चर पर पहुँचे हैं।'' गजेन ने कहा।

''तुम लोग क्या देखे, बाढ़ आयेगा ही ? अरे निताई, कितना बड़ा बाढ़ ?'' अमूल्य अचानक कातर हो उठा।

''रेडियो तो सुना है तू, हम तो उस समय ब्रिज की तरफ़ जा रहे थे—तो बीच में, तू ही बोल ना। क्या कहा है, कितना बड़ा बाढ़ ?''

''वो साला इतना गला कँपा-कँपा कर बोलता है कि लगता है कि पहाड़ सब उस तरफ चलने लगे हैं, क्या तो कितना पानी, कितना क्यूसेक, वह सब तो बोला ही नहीं !''

''सबको हट जाने को कहा है—नदी पाट पर ?'' रावण ठंडे स्वर में बोला।

''हे रावण काका, तुम भी एक ठो गाड़ी में जाओ न, कितना घूमोगे ?

घर के समान बस्ती तो समेटना ही पडेगा न ?" निताई बोला।

"क्या वह मेरे लिये फैलाये बैठी होगी ?" जैसे रावण को यह बात पहले से ही पता हो और समेटने की बात पहले से ही तय हो गयी हो।

"अरे काकी को खबर मिली है कि नहीं ?" निताई ने कहा।

"सारा चर जाग रहा है और तेरी काकी को अगर बेहोशी का नीद है तो फिर होने दो।"

"ऐ अमूल्य", कहता हुआ निताई उठ खडा हुआ, "चल तो पच्छिम घाट पर देखकर आयें, अभी पानी कितना बढा है—कम हो तो मवेशियों को पार कर दें।"

निताई फोरन रवाना हो गया। गजेन और रावण उसके पीछे पीछे भागे।

यहाँ से सीधा रास्ता पकडकर कुछ दूर चलने पर बायीं ओर पच्छिम घाट पर जाने का रास्ता है। निताई जाते-जाते 'अमूल्य' कहकर पुकार कर बढ गया आगे। यहाँ बैठे-बैठे पेट्रोमैक्स का उजाला कैसा तो आड-सा लग रहा था। पेट्रोमैक्स के प्रकाश को पीछे छोड आगे बढ जाने से लगता था कि यह उजाला कुछ दूर तक फैला हुआ भी है। उस फैले उजाले मे निताई का साया क्रमश: लंबोतरा होता जाता था, मिट्टी मे सो जाता था, कुछ बडा होता था, कुछ झुककर खडा होता था, छाया का घनत्व कम होने लगता था, फिर आकाश की ओर उठकर छाया विलीन हो जाती थी। रावण की छाया को निताई का शरीर आड मे कर देता था, और फिर गजेन की परछाई लबे रावण पर चढ जाती थी। बार बार तीनो छाया एक-दूसरे से सटकर रहती थीं। उसके बाद अँधेरे से निताई की चीख तैरती हुई आयी, "अमूल्य, रे अमूल्य।"

पेट्रोमैक्स लाइट के निकट से ही अमूल्य चीखकर बोला, "आया, आया, चलते रहो ।"

निताई अधकार में से हॉक लगाता हुआ बोला, "गाय, बैल, बछडो का लाइन से घाट पर लाने के लिये कह दे सबको।"

अमूल्य ने पूछा, "अभी ?"

निताई इतनी जोर से बोल रहा था कि उसकी धमकी भी खास नही सुनायी दे रही थी, पर उसकी बात जिन्हे पता था, उन्होंने समझ लिया था कि निताई ने धमकी दी है, "हॉ, हॉ, अभी। अभी।"

यह रास्ता चर के भीतर का रास्ता था। सख्त मेड बारिश से भीगी और फिसलन भरी थी, पर कीचड़ नहीं था। इसके चलते वे प्रायः दौड़कर नही जा पा रहे थे। हवा अब पीछे थी। बीच-बीच में धक्का मार रही थी। पर तभी वे घर-बाडी, पेड-पौधों, बन-जंगल के बीच में से भागे जा रहे थे। इससे तूफ़ानी ह 'म रही थी पर उनके शरीर पर लग नहीं रही थी। पश्चिम घाट पर पहुँचने

में अधिक समय नही लगेगा। पर उसके लिये वे इतनी जल्दी भाग-दौड कर नहीं रहे थे। दक्षिण की ओर से जो हवा और रेत ठेलकर वे जिस गाँव मे आये थे, उसकी तुलना मे नावापाडा से पश्चिमी घाट मे पहुँचना जैसे काफी आरामदायक रहा था।

पीछे से गजेन ने कहा, "रुको, क्या निताई, एक ठो बीडी पी।"

गजेन और रावण ने आकर देखा निताई खडा था। वे तीनो मिलकर गोलाकार मे खडे हो गये। निताई ने अपने कपडो के भीतर से माचिस निकाल ली। तीनो जैसे ही आग पर झुके कि पीछे से सुनायी दिया, "निताई, रुको, आ रहा हूँ।"

97

नदी अभी पुरानी है

निताई, रावण, गजेन और अमूल्य पास पास खडे अब नदी की ओर देख रहे थे। उस पार एकदम सामने ही गधामाली गयपुर का बाध था। अब देखने पर लगता था कि बाढ अगर आयेगी तो भी बस छोटे-से गड्ढे जैसी तिस्ता को पार कर उस पार पहुचने मे कितना समय लगेगा ? यह, अभी तो जो हाल है दो डुबकी लगाते ही उस पार। पर उन्हे पता था कि बाढ का पानी अगर एक बार यहाँ घुस आया तो फिर इस डबरे को पार करना इतना सहज नही होगा। पर पार तो करना ही था। इधर से पार हुए बिना तो कोई गति नही। पर अब तो यहाँ नदी पार करने के लिये कई कदम चलना होगा। तब जाकर नी बॉध का बोल्डर मिलेगा। पर एक बार अगर इस डबरे मे बाढ का पानी प्रवेश कर जाये तो इस बाँध से निकले हुए लबी-लबी धारा धक्का दे-देकर स्रोत को इस चर की ओर ठेल देगी, जिससे कि बाँध से स्रोत की टक्कर न हो जाये। तभी, यहाँ से उस पार जाने का मतलब होगा इतने जोर से आते बाढ के स्रोत के विपरीत जाना, स्रोत को ठेल कर बढना। स्रोत पर अगर शरीर को छोड दिया जाये तो सिर्फ़ एक ही धक्के से उस दक्षिण पाट मे ले पटकेगा -ब्रिज की ओर। अनुभव से ही इन्हे एक बात अच्छी तरह से पता थी कि—धारा के धक्के से स्रोत में इस ओर सब आ जायेंगे, इसी मे स्रोत मे बह जाने पर भी इस चर के इस ओर कही रुक जायेंगे। पर वह भी कितने समय के लिये ? जब तक यह डबरा चौड़ाई में सिर्फ उतना ही रहेगा, जिससे धारा के धक्के से स्रोत उलट कर इस पार तक आ सके। पर यह डबरे मे तो बाढ का पानी घुसते ही इस तरह से चौड़ी हो जायगी कि यही, जहाँ अब निताई खड़ा हुआ है, वह सब पहले धक्के में ही डूब जायेगा और पानी खेतो तक फैल जायेगा। उसी से स्रोत का उल्टा

धक्का पानी में कहाँ मिल जायेगा। तब तो सब कुछ ही तिस्ता होगा। तब पानी का एक ही स्रोत, एक ही बहाव होगा। अगर कोई उस स्रोत में पड़ जाये तो फिर वह अपने को बचा नहीं पायेगा।

निताई, रावण, गजेन और अमूल्य ने पास-पास खड़े होकर नदी को नजरों से नापा। थोड़ा-सा कोने की ओर से। अब अगर मवेशियों को यहाँ छोड़ दिया जाये तो कुलाँचें मार कर उस पार पहुँच सकते हैं। पर, अभी, इस अस्वच्छ उजास में उनके इस हिसाब-किताब में कोई ग़लती तो हो नहीं रही ?

"कितना बज गया रे अमूल्य ?" निताई ने धीरे-से सवाल किया।

"घड़ी देखा नहीं।" अमूल्य ने कहा।

निताई ने आकाश की ओर देखा। यहाँ आकाश जैसे कुछ अधिक ऊँचाई पर था। उस कुहासा का भाव जैसे यहाँ कुछ कम हो गया था। बारिश भी शायद कुछ कम हो गयी थी। पर यहाँ हवा तो आ रही थी - काफी बाधायें झेलते हुए। जो कुछ ज़ोर बाक़ी था, वह ज़ोर लगाकर हवा उस पार के बाँध पर हमला करने लगी थी। इससे ऐसा लगता था कि जैसे हवा इनके सिर के ऊपर से ही गुज़र रही हो।

सामने बाँध के ऊपर से होकर उस ओर रायपुर रंधामाली के आकाश की ओर देखने से थोड़ा-सा उजाला लगता था। वहाँ इलेक्ट्रिक लाइट थी।

निताई ने आगे बढ़कर कहा, "गजेन, उतरना नहीं है।" निताई पानी में पैर डाल दिया। उसके पैरों में स्रोत लगता था। पानी थोड़ा गरम था। "अब तक बाढ़ का जल घुसा नहीं है, पानी गरम है।"

निताई के पीछे-पीछे वे लोग थोड़ा आगे बढ़ आये थे। "तेज़ी कैसी है ?" अमूल्य ने भी पानी में पैर छुआ-छुआ पूछा।

निताई घुटने भर पानी में उतर कर बोला, "सुबह भी तो ऐसा ही था। जल के ऊपर झुककर निताई पैर का रेत साफ करने लगा था। पानी में हाथ क़रीब कोहनी तक डुबाना पड़ता था। मुँह जल के करीब झुक आता था। जल की गंध नाक में लगती थी। निताई ने गंध सूँघने के लिये नाक नीचे नहीं की। पर नाक में जल की गंध लगते ही उसे महसूस हुआ कि यह बाढ़ के पानी की गंध नहीं है। यह और दिन की गंध है। इस जगह जल को पार करने के लिये ताव लगता है, ठीक है, पर एक ओर बाँध और एक ओर चर के बीचोंबीच इस जल में कैसी तो मानुस शरीर की गंध लगी रहती है। जल के अंदर आदमी की कामकाजी गंध। इस तरह की यह गंध रात में बहुत हद तक पतली होती है, क्योंकि निताई आदि के सिर के ऊपर से होते हुए वह तूफ़ान वहा आ रहा था—उस पार की ओर। क्योंकि विगत कई दिनों की बारिश से इस डबरे की तरह तिस्ता का पानी भी कुछ बढ़ा था। फलतः वह गंध तरल हो गयी थी।

पर फिर भी निताई गंध को महसूस करता था। बाढ़ की गंध उसे नहीं लगती थी। रात अभी बाढ़ की ओर काफ़ी अग्रसर हो गयी थी। और एक-दो घंटे में पहाड़ से उतरते ही बाढ़ से यह डबरा एकबारगी रमाकांत के खेत तक चढ़ जायेगा। पर रमाकांत के खेत तक ही क्यों ? यह पूरा का पूरा जल के नीचे चला जा सकता है। पूरा का पूरा ? यह पूरा चर ?

नदी के भीतर से निताई ने इस चर की ओर मुँह करके देखा। दायीं ओर मुँह घुमाया—दक्षिण के मोड तक दिखायी दे रहा था। बायीं ओर चेहरा घुमा लिया—अधिक दूर तक नज़र नहीं आता। इस ओर मिट्टी काफ़ी दूर तक पानी मे चली आयी थी। निताई ने इस डबरे के मोड़ की ओर देखा, काफ़ी बड़ा मोड़ लेकर घूम गया था। वहाँ उजास और थोड़ा स्पष्ट नजर आता था। निताई अँजुरी भर पानी उठाकर होंठों के सामने ले गया। फिर भीगे हाथ को तमाम चेहरे पर फेरते हुए बोला—इसमे बालू किचकिच कर रहा है।

निताई ने सिर में भी हाथ लगाया, "ऐहें, बालू किचकिचा रहा है।"

पानी के भीतर से निताई ने बुलाया, "गजेन !"

"बोल, क्या कह रहा है ?"

"उतरूँ ? पानी में ?"

"तू तो उतरा ही है।"

"मैं तो यहीं खडा हूँ, अमूल्य, मवेशियो को लाने को कह दिया है ?"

"अब तक तो रवाना हो चुके होंगे।"

"तो देख, कहाँ से पार करेगा ? देख।" थोड़ा रुककर निताई ने कहा, "अभी भी पुरानी नदी है। इसमें बाढ़ का पानी है।"

"हाँ।"

गजेन ने पूछा।

"हाँ, अभी भी पुरानी नदी।" थोड़ा-सा पानी उठाकर छाती में, पेट में लगाया निताई, जैसे बालू साफ़ कर रहा हो।

"नया पानी घुसा नहीं ?"

"देखकर समझ नहीं पा रहा ?" रावण इस तरह से पैर पर बैठ गया जैसे बाढ़ के स्रोत के धक्के से अभी-अभी एक वृक्ष ने उखड़ कर आकाश को खाली कर दिया हो। रावण ने नदी की ओर देखा, और, और समझ गया।

निताई घुटने भर पानी में था। थोड़ा ऊपर आ गया। बायें हाथ से पीछे का कच्छा खोला और खूब सावधानी के साथ दोनों पैरों के भीतर घुसा कर दायें हाथ में पकड़ लिया। फिर बायें हाथ में पकड़कर कंधे पर रखा लिया। उसके बाद दोनों हाथों से धोती की चुन्नट खोली। खोलने के बाद पहले दोनों हाथों से दोनों ओर से समेट कर दायें कंधे पर रख लिया, हाथ झुकाकर कमर की

गाँठ भी खोल ली। दोनों हाथों से कपड़े को माथे पर रखकर पोटली बनाया। पोटली को दोनों हाथों से छाती के पास रख लिया। थोड़ी देर बाद पता चला कि निताई हिसाब लगा रहा था कि वहाँ से कपड़े को छोड़ देने से पाट में पहुँचेगा कि नहीं। या हवा के धक्के से पानी में गिर जायेगा। निताई ने छाती के पास अपना कपड़ा पकड़े हुए था, और कई क़दम लौटकर भींगे बालूचर में धोती फेंक दिया। मिट्टी पर गिरने के पहले धोती थोड़ी-सी खुल गयी। किनारे पर ऐसे पड़ा रहा।

तब तक निताई लौट कर जल के भीतर चलने लगा था।

सामने ही उस पार बाँध की पृष्ठभूमि थी, या फिर जलकुहासा यहाँ नहीं था, या फिर उजाला कुछ हल्का था। शायद इसी से पानी में चलते-चलते निताई जब और अंदर चला गया था, तब ठीक नदी के बीचोंबीच नहीं, नदी और आकाश के बीच—उसके शरीर की बाह्यरेखा परछाईं बन गयी थी, उसके माथे पर बाबुरी बाल की सामान्य लहर और कंधे के दोनों ओर उन बालों का फूल उठता था। उसकी गर्दन बाबुरी से ढँकी थी, उस ढँकी गर्दन के दोनों ओर कंधे का तरंगित होते जाना, बाँहों की मछलियाँ, बाँहों से कोहनी तक की तरंग, कोहनी की चौड़ाई धीरे-धीरे पतली होकर अंगुलियों के अलगाव से जल के ऊपर डोल रही थीं। निताई चलता ही जा रहा था। और यह पतली रेखा नीचे से पानी में डूब जाती थी।

निताई चलते-चलते पानी के भीतर से और भीतर चला गया।

अब चलते जाने का कोई उद्देश्य तो था ही निताई के लिये। मवेशी रवाना हो चुके थे। बाढ़ आने से पहले उन्हें उस पार पहुँचा दिया जा सका तो काफ़ी हद तक निश्चिंत हो जाना पड़ेगा। अब इस पल यहां वही पुरानी नदी है, पुराना जल है। मवेशियों को उनके जाने-पहचाने पथ से उस पार कर लिया जायेगा। पर रास्ता पहले से तय कर लेना बेहतर होगा। गजेन को इसी से पानी में उतरने को कहा था निताई ने। पानी में उतर कर निताई भी जैसे उस रास्ते को पक्के तौर पर ठीक कर लेना चाहता था। और कर भी रहा था।

निताई अब गले तक पानी में डूबा हुआ था। पाट से लग रहा था कि वह बीचोंबीच पहुँच चुका है। लेकिन जानकारी से मालूम होता था कि यह ठीक नदी का बीच नहीं था, नदी के बीच का स्थान वहाँ से दूर हटकर था। पर इतनी दूर अगर वह चलकर आ सकता था, तो फिर मवेशियों को अभी आराम से पार किया जा सकता था।

अमूल्य ने पूछा, "अरे ओ रावण साहा, सुनायी दे रहा है ? मवेशी बाहर निकल आये हैं ?"

रावण मिट्टी पर अपना क़रीब-क़रीब नंगा शरीर लिये बैठा था नदी की

ओर मुँह किये। उसका बायाँ घुटना मिट्टी में लगा सोया हुआ पड़ा था, और दायाँ घुटना खड़ा हुआ। दोनों हाथों से उस घुटने को पकड़े हुए था रावण। मुँह पैर के बीचोंबीच था। जैसे कि वह उसका घुटना न हो, कोई पेड़-वेड़ हो। वह नदी की ओर मुँह करके बैठा था पर उसके गर्दन के बीच सिर घुसा हुआ था और उसकी बाँहों की दोनों हड्डियाँ लंबी होकर उसके कान तक इस तरह से उठी हुई थीं कि समझ में ही नहीं आ रहा था कि वह निताई की ओर देख रहा था या निताई को छोड़ बाँध की ओर या फिर सामने कुछ दूरी पर मिट्टी की ओर।

"हाँ, निकल गये। ऐसा तो लगता है।" रावण धीरे से बोला।

हवा पूरब से पश्चिम की ओर बह रही थी। रावण अभी इस रात गये यहाँ नदी के तट पर इस तरह स्थिर होकर बैठा था कि वह शायद हवा में निहित आवाज़ सुन पा रहा था। सुन पा रहा था—तिस्ता का भूखंड को बदलने के लिये जो बाढ़ पहाड़ पर से उतर रही थी, यह चर और इस तरह के बहुत सारे चर या गाँव, जंगल बहाकर नये किस्म से भूखंड को सजाने के लिये वह बाढ़ पहुँचने के पहले चर के शरणार्थियों का दल इस समय चार पैरों से उतर कर प्रायः अंधों जैसे इस नदी के तट की ओर भागे आ रहे थे। इस रास्ते पर वे रात में चलने के अभ्यस्त नहीं थे। उनके अभ्यस्त पथ पर वे और शायद कभी और इस चर पर वापस न आ सकें। निताई अपने डूब जाने वाले गहरे पानी में पहुँच कर बहने लगा था। वह अपने बाबुरी बालों को कंधे के एक-एक दोलन से एक-एक ओर झटक रहा था। भींगे बाबुरी बाल उसके माथे पर चमक रहे थे।

"नया-नया पानी घुसने लगा है क्या ? यहाँ पास में ?" रावण ने अपना अंदाज़ बदले बिना कहा। निताई से कहा। निताई को जैसे एक झिड़क देने की ज़रूरत थी—कैसे वह इतनी दूर, इतने पानी में, इतनी तृप्ति पा रहा है ? वहाँ से ही उसने कहा, "सारा माथा-शरीर बालू से किचकिचा रहा है।"

मवेशियों के झुंड को किधर से पार ले जाया जाये, यह तय करना निताई के इस जलावतरण का कारण था।

यह 'लेगून' जैसा डबरा तिस्ता के किसी बाढ़ से ही बना था। तिस्ता के मूल स्रोत से बीच विच्छिन्न सामान्य बालूचर, उसके पास जल की पतली धार कहीं-कहीं बहती रहती थी। इस डबरा जैसे तिस्ता को पार करके ही इस चर की जीवन-यात्रा को शहर, बाज़ारों, पंचायत, वोट और सरकार के जीवन-यात्रा के साथ जुड़ा हुआ रहना पड़ता था। वही सामान्य बालूचर और कुछ क्षणों में हज़ार-हज़ार क्यूसेक जल के आघात से कहाँ गायब हो जायेगा और शायद यह डबरा 'लेगून' जैसा डबरा जैसा तिस्ता उस प्रबल क्षणों में रोजाना के इतिहास से उपकथा में चला जायेगा। यह चर, ये लोग, यह गाय-बैल, यह आबादी, बालूचर

में बैठा यह बूढ़ा—जो सिर्फ अपने शरीर के माध्यम से ही जानता और समझता था, शरीर के बाहर जिसका और कहीं मन नहीं—इन सबके साथ, इन सबके साथ ही।

"पुराना-पुराना, यहाँ सबकुछ पुराना" बीच नदी में से निताई की आवाज़ हुई तैरती आयी। रावण के कुछ क्षण पहले किये गये प्रश्न के जवाब में। निताई अब स्रोत में अपने को बहाता हुआ दक्षिण की ओर जा रहा था। कुछ दूर जाकर ही निताई थोड़ा-सा हटकर खड़ा हो गया, "अरे, रे, रे, मिस्त्रीपाड़ा के दक्षिण पाट में इतने सारे मशाल जल रहे हैं ?" कहते-कहते रुक गया था निताई। उसने पहचान लिया था, इस डबरे का तिस्ता के अंदर से यह दक्षिणपाड़ा नज़र आ रहा था, ये तिस्ता ब्रिज भी नज़र आ रहा था—लाईट जल रही थी, वहाँ नरेश और नकू हवा-तूफ़ान और जल-कुहासे के बीच पहरा दे रहे थे. तिस्ता ब्रिज की ओर देखते हुए निताई चिल्लाया, "अश्विनी राय के ज़मीन से पका भादोई धान काटा जा रहा है।"

इस चर में तिस्ता के बाढ़ की छुअन लग गयी थी। अब बस बाढ़ का आना भर ही बाक़ी रह गया था। खेत में खड़े, पके धान की फ़सल में से जितना संभव हो, काट लेना चाहिये।

निताई ने उस पानी के भीतर से देखा—इस चर के ऊपर से तिस्ता बहती जा रही थी। निताई ने उस पानी के अंदर से देखा—और कोई एक नया चर उसे तलाशना था। निताई उस पानी के भीतर से एक बार गर्दन घुमाकर देखा, और थोड़ा-सा बह जाने से उस'पार रंधामाली-रायपुर के बाँध में पहुँच जायेगा और वहाँ बैठ जाये तो थोड़ी ही देर में वहाँ से इस चर को डूबते, डबरे जैसे तिस्ता को बहते, नये जल की बाढ़ को देख पायेगा।

निताई उस मशाल के उजाले से आख़िरी बार जैसे आँखें फेरकर उत्तर की दिशा में तैरने लगता था। इस डबरे के स्रोत की विपरीत दिशा में, पहाड़ का फ्लड तो इस ओर से ही आयेगा। अभी इस पुराने पानी में, इस प्रतिदिन के जल में, इस जीवन यात्रा के जल के भीतर से होते हुए, तैरते-तैरते निताई ने हाँक लगायी, "गजेन, अमूल्य, आओ, फ्लड देखकर आयें, कहाँ तक आया है, आओ…।"

इतनी देर में ही निताई संपूर्ण उद्देश्यहीन होकर आत्मसमर्पण कर पाया था। इस चर के आसन्न संभाव्य विध्वंस के मुँह में वह चर के साथ एक आसंग में लिप्त हो जाना चाहता था।

उसे यह चर और जल जन्म-सूत्र से नहीं मिला था। प्रवासी था, शायद इसी से जल का आकर्षण इतना अधिक था, इतना प्रगाढ़ था। यही जल-ध्वंस होने से पहले निताई समझ गया था कि यह जल उसके शरीर का एक भाग

है। इस शरीर और जल में तब तक आख़िरी यादगार है--बाढ़ के पहले की आख़िरी यादगार।

गजेन और अमूल्य दौड़ते हुए पानी में कूद गये। अपनी धोती और लँगोटी खोलकर पाट में रख दिया। वे तैरते हुए कोने से निताई की ओर चलते गये, स्रोत के प्रतिकूल, जहाँ से बाढ़ आ सकती थी, उस संभाव्य मुहाने की ओर। यहाँ जलकुहासा न था। आकाश का प्रकाश थोड़ा हल्का था। वे पानी में मछली की तरह तैरते चले जा रहे थे इस पुराने जल में, रोज़मर्रा और जीवन-यात्रा के जल में। तभी पाट पर अल्हड़ रावण ने सुना—परंपरा के मुताबिक नदी से होकर बाढ़ धारावाहिकता के साथ आ ही रही थी। लेकिन अभी दूर तक पहुँची बाढ़ के सामने, चर की धरती को तेज़ कर पहले शरणार्थियों का खेप, रात के आख़िरी पहर या पहली सुबह को 'हंबा' रव से चकित करते हुए भागा आ रहा था।

98
गोहाल में भगदड़

बाँध पर मवेशियों के चढ़ाने का मतलब था बाढ़ का स्वीकार कर लेना। गोहाल से मवेशियों को निकालकर, पूरा चर पार करके स्रोत की ओर कुछ चलकर, कुछ तैर कर, बाँध की ढलान से होते हुए ऊपर को चढ़ते जाने का मतलब था घर का बह जाना। मुँह से चाहे कितना ही क्यों न कहा जाये, तो फिर उन्हें ले आने से ही चलेगा। पर मवेशियों को एक बार अगर घर से निकाल दिया जाये तो उस घर में वे फिर टिक नहीं सकते। इस तरह के मवेशी आस-पास चर रहे थे या झुंड बनाकर पशुओं को मैदान में लिवा ले गये थे—वह एक ही बात है। वह तो पता ही था कि कब वह गोरू लौटेगा जैसे कि घर का सबसे छोटा लड़का अगर सुबह इस घर, उस घर में घुसे तो भी घर भरा-पूरा लगता रहता है। पर गोहाल को सूना करके, मवेशियों के झुंड को पाड़ा, चर, नदी छोड़कर एकबारगी बाँध के ऊपर ले आना और फिर उन्हीं घरों में रहना—यह असंभव था। गोहाल घर के गाय-बैलों का पगहा, कहाँ गाय-बैलों के मुँह से गिरे पुआल और घास, गोबर, पेशाब की गंध से फिर घर में रहा नहीं जाता। कैसे तो सूना-सूना लगता है ! जैसे कि तमाम पाड़े भर में किसी गहरी शोक की छाया उतर आयी हो या फिर किसी एक घर का शोक पाड़े भर में मुर्दा नी ले आयी हो।

हिसाब के मुताबिक पहाड़ की बाढ़ यहाँ और दो-एक घंटे के बीच जब आ ही रही थी तो मवेशियों के साथ-साथ उन्हें हाँकते-खदेड़ते घर के और पाड़े के बच्चे-बच्चे तो जायेंगे ही। आख़िरी रात की बाढ़ तूफान और बारिश के झोंकों से बिंधे इस चर में मवेशियों के एक साथ हंबा-हंबा करना जैसे चर के भीतर

से जाग उठा था। मनुष्य के स्थिर और मिलते-जुलते हंबारव में जैसे एक तरह की स्वस्ति रहती है। पर मनुष्य के स्वर का समर्थनहीन इस रात को ख़त्म करने वाले 'हंबा' से जनबस्ती जैसे सूनी हो गयी थी नदी के पथ पर धीरे-धीरे स्पष्ट होते हुए झुंड बाँधे मवेशी भागे आ रहे थे। अथवा शायद स्पष्ट हो नहीं रहा था। यह जल-कुहासा धीरे-धीरे हटता जा रहा था और उसी मौक़े पर दौड़ते हुए मवेशियों की छायामूर्ति स्पष्ट हो उठती थी। जब गाँव से और दूर निकल जाता था तभी नज़र आता था कि गोठ के अंदर गायों के शरीर से शरीर सटाये, पीछे-पीछे, उनके साथ-साथ गाँव के बच्चे भी भागे आ रहे थे। उनका एक-एक हाथ ऊपर को उठा हुआ था। किसी-किसी हाथ में डंडा या लाठी थी। पर वह डंडा या लाठी किसी गोरू की पीठ पर बरसता नहीं। मवेशियों के झुंड पंक्तिबद्ध होकर इतने ज़ोर से दौड़ रहे थे, पर क़तार से बाहर नहीं निकलते थे।

गाँव का यह रास्ता इन मवेशियों का पहचाना हुआ था। इस रास्ते से इतने बड़े झुंड से न जाने पर भी, छोटे-छोटे झुंड में ये रोज़ ही घर वापस आते थे। आते-जाते रहते थे। कभी-कभी तो कोई-कोई गाय भी बँधे हुए बछड़े की 'हंबा' सुनकर भाग आती थी। इतने बड़े गाँव में, एक-एक इतने बड़े पाड़े में कोई-न-कोई गाय का तो दूधमुँहा बछड़ा रहता ही है—मवेशियों में जो अब तक परिवार-नियोजन की कोई योजना नहीं बनी। दूध पीते बछड़ों की पुकार सुनकर किसी-किसी गाय को तो भागकर आना ही पड़ता है। पर उसके लिये भला इस तरह का भागना .. वह भी यह रात ख़त्म होने के पहले ? वह भी इतनी जल्दी अंगुलियों से खोले गये गले की आवाज़ से।

यह रास्ता तो मनुष्य और मवेशियों के क़दम-से-क़दम मिलाकर इस तरह झुंड बनाकर भागने के लिये नहीं बना था। इसी से इतने गोरुओं के साथ गोरू के पेट को धक्का लग जाता था। एक गोरू के ज़रा-सा हट जाने पर उसके पीछे के गोरू के कंधे पर धक्का लगता। वह ज़रा पीछे हट जाये तो उसके पीछे वाली गाय का गला आकर आगे वाले के कमर की हड्डी के ऊपर टिक जाता। जो बछड़े थोड़ा जवान हो गये थे, वे इस अवसर का लाभ उठाकर किसी को धक्का देते थे, तो किसी को हटाकर सामने बढ़ जाना चाहते थे और उनकी माएँ उन्हें पकड़ने के लिये और थोड़ा ज़ोर से भागते हुए धक्के खाती थीं। जो बछड़े अब तक दूध नहीं छोड़े थे वे इस मौक़े पर पीछे से माँ के रात भर के भरे थन में मुँह घुसाकर दूध पीने लगते थे और उस खिंचाव से माँओं के गले आगे की ओर लंबे होने और चारों ओर शिथिल होते-न-होते पीछे की गाय के धक्के से बछड़े छिटक जाते। और माँ के थन में मुँह मारने के लिये उनकी गर्दन झुकी रहती थी और झुकी गर्दन के भार से सामने के दोनों पैर पसर जाते थे। दोनों घुटने भी लचक जाते थे। इसी से पीछे की गाय का धक्का खाकर वह

बछड़ा पहले दाहिनी ओर छिटक जाता था। छिटकते-छिटकते उसके सामने के दोनों पाँव लचक जाते थे, वह मुँह के बल गिर पड़ता था, चित्त होकर। पीछे के गाय-बैलों के धक्के से उसकी माँ आगे बढ़ जाती थी। उसके थन से पहले पतले धार में, फिर बूँद-बूँद दूध मिट्टी पर टपकने लगता था—काफ़ी देर तक। बछड़े के पीछे के मवेशी उसके ऊपर गिरते नहीं। उसके पास से बायीं ओर हट के चले जाते थे। इसके चलते सबसे बायीं वाली गाय रास्ते पर से गिरते-गिरते सिर नीचे झुका कर पेट को रास्ते के ऊपर लगा लेती थी। इस बीच पीछे की गाय उसकी जगह ले लेती थी। वह अबकी बार सिर उठाकर गले को भीड़ के बीच घुसा लेती थी, फिर पेट को। तब तक बछडा सामने के दोनों पाँवों पर भार देकर सीधा हो जाता था, फिर पिछले पैरों पर भार देकर खड़ा हो जाता था। फिर दौड़ने लगता था। 'हवा' करते हुए झुंड के भीतर से बहुत सारी गायों के रँभाने की आवाज़ एक साथ उठती थी। किसके बछड़े का जवाब कौन देता था, पता नहीं। समझ में नहीं आता। प्रफुल्ल पाल की गाय बूढ़ी हो गयी थी, मोटी भी हो गयी थी। वह तेज़ी से भाग नहीं सकती। पर झुंड के बीच में होने पर उसे तेज़ी से भागना ही पड़ता था। उसके बड़े से पेट के डोलने से वह खुद हाँफने लगती थी। उसकी नाक से फेन निकलने लगता था। गजेन की गाय ने दो दिन हुए बच्चा जना था। उसका बछड़ा दौड़ नहीं पा रहा था। उसे जगदीश की भैंस की पीठ पर लाद दिया गया था। बछड़े को लेकर भैंस बीच में डोलते हुए चल रही थी। उसके शरीर के धक्के से दूसरे बैल-गाय दोनों ओर हटते जा रहे थे। पर बछड़ा बार-बार पीठ पर उठ खड़े होने के लिये सामने के दोनों पैरों को गोद से बाहर निकालना चाहता था और भैंस के चलने और डोलने की गति से साथ-ही-साथ उसकी गर्दन भी झुक-झुक जाती थी। वह फिर से दोनों पैरों को समेट लेता, गर्दन सीधी करता। उसकी माँ भैंस के पीछे-पीछे भागती रहती। बछड़े को पीछे की ओर मुँह करके बिठा दिया गया था। उसकी माँ जीभ निकालकर, गला उठाकर बछड़े को चाटती जाती। पर भैंस की इतनी ऊँची पीठ तक उसकी जीभ नही पहुँचती। उसका चाटना अब तक बंद नहीं हुआ था।

गाँव की बस्ती की सीमा को छोड़कर झुंड अब खेतों की सीमा में पहुँच गया था। यह भी ठीक रास्ता नहीं था। एक बड़ा-सा मेड़, दोनों ओर मोटी-मोटी घास, बीच में फिसलन भरी काली मिट्टी का रास्ता। रास्ते पर से दोनों ओर की ज़मीन कहीं ढालू तो कहीं रास्ते से भी ऊँची। फिसल जाने से इस मैदान में गिर जाना होगा। झुंड की गति थोड़ी कम हो गयी थी। भाग तो रहे थे, पर क़दम थोड़े छोटे-छोटे हो गये थे, जिससे गिर जाने पर अपने-आपको सँभाला जा सके। और होड़ भी कुछ कम हो गयी थी। साथ में चलने वाले कच्ची लाठी उठाकर दोनों ओर के खेतों में उतर गये थे। उस ढलान से ही वे रास्ते पर लकड़ी

या लाठी पटक रहे थे 'हो-हो' चिल्ला रहे थे कि मवेशियों का पैर जैसे फिसल न जायें। मवेशियों का झुंड भाग रहा था और खेतों, मैदानों से होकर बच्चे भाग रहे थे। अब दोनों ओर पेड़ या घरों की पंक्ति नहीं थी, जैसे कि अब तक उस पंक्ति ने इस प्रायः भोर की सनसनाती हवा में, इस बारिश में कुछ सहारा दिया था। पर यह खेती की ज़मीन तो जानी-पहचानी थी। यह मिट्टी और घासपात की भींगी गंध भी तो उनकी पहचानी हुई थी। इन दोनों ओर के फाँक से नदी और नदी का मोड़ देखना उनकी आदत बन चुकी थी। पर उसका भी तो एक समय था। अभी तो धूप नहीं, घास पर चेहरा देखना नहीं, अभी काली मिट्टी के ऊपर पेट सटाकर सोना नहीं, अब गला उठाकर भीतर के घास को मुँह मे लाकर चबाना नहीं, पागुर नहीं। अब तो भागना था, सिर्फ़ भागते जाना था।

99
मवेशियों के झुंड का पाट से पानी में उतरना

पानी में एक गंध थी—मवेशी उस गंध को पहचानते थे। पर इस वक्त उन्हें पानी की कोई गंध मिल नहीं रही थी। हवा इधर-उधर झपटती हुई बह रही थी, और इस तूफानी हवा में सूई जैसा तेज़ जलबिंदु मिला हुआ था। धीरे-धीरे मवेशियों के बायीं ओर की पीठ भींग गयी थी। हवा का थपेड़ा इधर से ही आ रहा था। हवा के थपेड़े से पीठ के भींगे रोम चिपक रहे थे। और बीच से होते हुए जल की धारा बहती जाती थी। उनके मुँह के बायीं ओर के भाग का भी वही हाल था। बायीं दिशा से आते तूफान और जल के झोके से मुँह को बचाने की कोशिश कर रहा था। उनके पैर सीधे चल रहे हैं, उनका शरीर सीधा था, पर उनके मुँह थोड़ी दायीं ओर हो गये थे। इसके चलते इन खेतीबाड़ी के रास्ते पर उनकी गति काफ़ी कम हो गयी थी। और उनकी नाक से जल की गंध धीरे-धीरे कम होने लगी थी। वे लोग नदी के जितने निकट पहुँच रहे थे, वैसे ही उनकी बायीं आँख, मुँह और नाक का बायाँ हिस्सा पानी में भींग उठता था। वैसे ही वे पानी के गंध से दूर हटते जाते थे—जैसे वे पानी की विपरीत दिशा में भाग रहे थे।

खेत ख़त्म हो गये थे—झुंड के खूर नदी के रेत पर पड़ने लगे थे। अब और गिरने का कोई भय नहीं था, अब और फिसल जाने का भी भय नहीं था। बालू पर पैर रखते ही झुंड जैसे बिखर जाना चाहता था। पूरे के पूरे झुंड के बीच जो एक उद्वेग काम करता था, बालू में पहुँचते ही जैसे अचानक वह उद्वेग आतंकित रूप से ख़त्म हो गया। मानो जैसे बस फूलबाड़ी में ही पहुँचना था। रेत के ऊपर से चला नहीं जा रहा था, पैर की फाँक में रेत घुस जाता था।

उसके चलते ही झुड की गति कम हो जाती थी। यही नहीं, रेत पर चलने के लिये पूरा का पूरा झुड बिखर जाना चाहता था, मवेशी अपनी-अपनी मर्जी के मुताबिक चलना चाहते थे, इससे भी उनकी गति में कमी आ जाती थी। पर वे बच्चे अब अपने-अपने डंडे और लाठी ऊपर उठाए सामने आकर खड़े हो गये थे। दोनों ओर से उन पर डडे और लाठी तन जाने पर मवेशी खड़े हो जाते थे और मुँह हटाकर धीरे-धीरे क़दम बढ़ाते हुए अपनी पुरानी लाइन पर आ जाते थे। वे बच्चे और आगे नही बढते, वहीं पर खडे-खडे ही पशुओं को कतार में रखते थे। उसके बाद रेत पर से होते हुए वह झुड जब धीरे-धीरे डगमगाते हुए नदी की ओर बढ़ने लगा था, तो वे लडके और पीछे जाकर 'चल-चल' करके उन्हे हाँकने लगे थे। तमाम झुड जैसे इस बालू पर एक क़तार में खड़ा था। दोनों ओर नदी की ढलान से होकर सारी रात तूफान दक्षिण से पूरब, पूरब से उत्तर और पश्चिम में साँय-साँय चलता रहा था और नदी के गर्त मे ये पशु जैसे एक क़तार म खड़े थे। निताई, गजेन और अमूल्य पाट के निकट पानी में ही थे। रावण उस पाट पर बैठा हुआ था। मवेशियों को देखकर जल से बाहर निकलकर निताई, गजेन, अमूल्य लपक कर चलने लगे थे। जल से निकलते ही उन्होने पाट पर रखी धोती, लंगोटी फौरन पहन ली। एक तो रेत, ऊपर से भींगा हुआ। हवा के विपरीत दिशा मे वे चल नही सकते। निताई ने कुछ चिल्लाकर कहा, उसकी आवाज हवा के विपरीत दिशा मे उड़ जाती थी। निताई थोडा आगे निकल गया था, पर अमूल्य तब तक पानी से पूरी तरह बाहर निकल नहीं पाया था। अचानक अमूल्य पानी से निकलने के बदले फिर पानी में चला गया था। फिर सिर तक पानी में पहुँच कर तैरने लगा। निताई ने पुकारा–"ऐ गजेन !" उसने लौटकर देखा कि अमूल्य फिर से पानी मे तैरने लगा है। निताई खडा हो गया। और कमर पर हाथ रख चिल्लाया, "ई तेरे तैरने का समय है ?" पानी में तब तक बाढ नहीं घुसी थी। अमूल्य ने चित्त होकर हाथ को माथे की ओर उठाकर इशारा किया कि वह उस पार जा रहा है।

निताई समझ गया। अच्छा ही तो कर रहा है अमूल्य। मवेशियों को नदी पार कराते समय किसी को तो उस पार रहना चाहिये। पर अमूल्य क्या अकेला कर पायेगा यह सब ? उसने गजेन को कहा–"जा तू भी जा उस पार–देख आ, कहाँ से पार कराया जा सकता है ?"

निताई की बात सुनकर गजेन पानी में लौट तो आया पर वह अमूल्य की तरफ़ नही गया। पाट के किनारे के पानी में 'छप्-छप्' करता हुआ डगमग पाँव से वह चलता रहा। रेत से होकर चलने में काफ़ी सुविधा थी। पर जल का तल तो समतल नही था। गजेन के छप्-छप् करते हुए चले जाने के बाद ही उसका एक पैर गड्ढे में पड़ गया। वह लंबा चित्त होकर पानी में गिर पड़ा, फिर उठकर

हाथ के बल, सीधा होकर चलने लगा। अबकी वह किनारा छोडकर थोड़ी गहराई में गया था। वहाँ घुटने भर पानी था। गजेन को पता लग गया था कि वहाँ की मिट्टी कुछ सख़्त है। पर थोड़ा-सा अंदाजा लगाने की कोशिश की कि सख़्त मिट्टी की ढलान किस ओर चली गयी है। कम-से-कम चलने का कुछ आराम मिला उसे। पर यही तय करने में वह दुबारा गिर पड़ा। गिर जाने के बाद वह फिर उठा नहीं—डुबकी लगायी। नीचे कम-से-कम पानी के नीचे तो इस बारिश और तूफ़ान का कोई प्रभाव नहीं था। फिर भस्स मे सिर निकाल कर गजेन एक बार इस पार-उस पार देख लेता। बाल से पानी झटका। हाथ से आँख, मुँह का पानी पोंछा। गजेन ने देखा अमूल्य उस पार पहुँच कर चलते-चलते इधर आ रहा है। मवेशी जहाँ खड़े है अभी, उसकी सीध में पश्चिम पाट की ओर एक जगह तय करके गजेन ने फिर से पानी में डुबकी लगायी। तब तक मवेशी बालूबाड़ी तक पहुँच चुके थे। पीछे से दो-एक गाय अलग से जा रही थीं। निताई सामने खड़ा होकर चिल्लाया, "हे बालिस, सालिस—तुम दोनों, दोनों किनारों पर खड़े रहना और इस बलराम के छोकरे से कह दे पीछे जाने के लिये, पीछे। डरने की बात नहीं है। बाढ़ का पानी अभी नहीं आया। कोई इधर उधर होने से नहीं चलेगा। चिल्ला-चिल्ली भी न करो।"

उस मवेशियों के झुड के बीच, सबसे ऊपर काली-कलूटी पीठ पर बादामी बछड़ा फिर से पैर पर खड़े होने की कोशिश कर रहा था और उसकी गर्दन फिर से मुड़ गयी थी। भैंस ने उसकी गर्दन उठायी। दोनो घुमावदार सींगे इतनी मुड़ी हुई थीं कि नीचे का हिस्सा भींगकर क़ाला हो गया था पर उसके घुमावदार छोर के नीचे पानी लग नहीं पा रहा था। वह मटमैला ही था। चाहे जो भी कारण रहा हो, भैंस अस्थिर हो गयी थी। शायद वह समझ गयी थी कि उसका एक ख़ास दायित्व है। शायद अपने मालिक की कोई ख़बर न पाकर थोड़ी-सी बेसब्र हो उठी थी वह। उसने अपनी पूँछ फटकारी। जिसका बछड़ा था उस गाय ने उसके खड़े होने के मौक़े का फ़ायदा उठाकर जीभ बढ़ाकर बछडे को चाटने की कोशिश की। भैंस की पूँछ उसके मुँह पर लग गयी। शायद आँख में भी। गाय ने आँखें मिचमिचाकर सिर झुकाकर बायीं ओर घुमा ली। मवेशियों का झुंड बस अभी-अभी खड़ा हुआ था, उसके बीच ही एक साँड़ सामने गाय के ऊपर दोनो पैर उठाकर चढ़ बैठा और गाय सामने एक बछड़े पर मुँह के बल गिरने को हो आयी। साँड़ गिर पड़ा। पर बछड़ा एक-दूसरे बछड़े के ऊपर गिर गया। उस बछड़े ने सोचा कि आगे वाले बछड़े ने उसे धकियाया है। वह सींग झुकाकर उस पर झपट पड़ा। झुंड के इस स्थान पर एक धक्का-मुक्की आरभ हो गयी थी।

निताई अचानक लपक कर सालिस के हाथ से लाठी छीनकर साँड़ की

ओर दौड़ पड़ा। साँड़ समझ गया था। वह पहले दायी ओर मुँह घुमाया, फिर सिर घुसाकर थोड़ा-सा फाँक बना लिया। और उसी मे से घुसकर विपरीत दिशा मे चपत हो गया। निताई झुंड के बायीं ओर था, और साँड़ दायी ओर दौड़ने लगा था। इससे निताई उसके पीछे दौड नही पाया। वह लाठी उठाकर चिल्लाया, "छोड दे साले को। उसे लेने का काम नहीं। साला गरमा गया है। बाढ़ की समझ नहीं है उसमें। साला बैल कहीं का।"

पर साँड रेत में दौड नहीं पा रहा था। उधर से बाल्मि ने दौड़कर उसे पकड़ लिया।

निताई झुंड के सामने जाकर खडा हो गया नदी की ओर पीठ किये। जैसे देख लेना चाहता था कि कोई नया इंतजाम किया जा सकता है या नही। वह एक बार दायी ओर देखा—नदी के ऊपर का भाग काफी दूर तक साफ था पर पाट पर अस्वच्छ अँधेरा अभी भी था। निताई आकाश की ओर देखने लगा - आकाश एकबारगी धरती पर झुक आया था। पार का यह अँधेरा अब आज छँटने वाला नही था। कितने दिन बाद छँटेगा यह भी कहना कठिन था। बाढ जैसे उत्तर से, निताई के बायी ओर की पहाडी से नही आ रही थी- बल्कि समूचा आकाश ही जैसे बाढ बनकर इस चर की धरती पर आ रहा था। एकबारगी सबको मार-पीट कर रख देगा। निताई ने फिर दायी ओर देखा, पूरब में--उसके लबे बाबुरी बाल सिर पर समकोण से उड रहे थे। उसने बायें हाथ से बालों को मुट्ठी मे पकड लिया, पर गर्दन नहीं घुमायी। उसके आँख, मुँह में पानी की सुई आ आकर चुभती थी—निताई गर्दन नही घुमाता था। उधर से बाढ नहीं आयेगी। पर उधर से ही तो तूफान आ रहा था। बारिश आ रही थी और चर की धरती को ढँककर नीचे उतर आये ये जो बादल थे उसके ऊपर से, उसके अंदर से, और भी बहुत सारे मेघ हू-हू करते इधर बढे आ रहे थे। बढ़ते जा रहे थे और उत्तर की ओर। और बारिश होगी, और बाढ आयेगी। निताई ने उसी आने वाली बारिश और बाढ़ का अदाज़ा लगाने, सामने मवेशियों के झुंड को भूलकर अपनी गर्दन दाहिनी ओर घुमायी। आकाश की ओर उठाया, फिर झुकाया। निताई की धोती जैसे उसे पेच लगा-लगाकर चर में फेंक देगी, इस तरह से उसके बदन में सट जाती थी और खिसक जाती थी।

निताई ने एक बार मवेशियो के झुड पर आँखें गडा दीं—झुंड के पीछे, उसी खेतबाडी के रास्ते में, और उससे भी पीछे गाँव के रास्ते पर। इतने निकट थे गाँव के पेड-पौधे ? पर यहाँ से ऐसा दीख रहा था जैसे यह आकाश ही झुक कर गाँव का बाड़ा बन गया था।

निताई को लगता था कि वह जैसे गाँव को आख़िरी बार देख रहा हो। यह जो गाँव अभी उसकी आँखों के अंतराल में चला गया था, बारिश और

हवा-तूफान में वह जिसे अच्छी तरह से देख भी नहीं पा रहा था—उस गाँव के पेड़-पौधे, घर-द्वार, खेत-खलिहान सब कुछ, सब नदी के मटमैले पानी में डूब जायेंगे ! या फिर वह सब डूबना शुरू हो गया है ! अभी तो यह चर डाँगर ही है, जहाँ अभी बाढ़ का पानी घुसना शुरू नहीं हुआ था नदी में। पर आकाश और हवा-तूफ़ान का जो तेवर था उसे बस इतना ही सिर्फ़ बचा हुआ था, बाक़ी सब तो घेरे में आ गया था। निताई के जीवन में नदी का जो पहला स्वाद मिला, उसकी प्रकृति ही कुछ अलग थी। पानी ही अलग था। और यह नदी तो निताई के पूरी उम्र की नदी थी। जल की भाषा निताई जल से बने शरीर के जरिए समझता था।

निताई ने मवेशियों के झुंड की ओर देखा। पूरा-का-पूरा झुंड जैसे उसकी प्रतीक्षा में खड़ा था। बाढ़ के डर से मवेशियों को बाँध पर लिवा ले जाने पर भी कई बार शायद बाढ़ नहीं आयी। पर मवेशियों को हटाने का मतलब था घर तोड़ना। इन मवेशियों के झुंड को पार पहुँचा कर ही गाँव के लोगों को बाँध पर पहुँचाना होगा। पर निताई उन्हें कैसे और कब पहुँचाये ? सभी तो आकाश को देख रहे थे। हवा-तूफान देख रहे थे। नहीं। निताई ने किसी को बुलाने के पहले ही कि गाँव के कुछ-कुछ लोग यहाँ आकर जमा हो गये थे। होने दो। ऐसा ही होगा। अपने मवेशियों की गंध छोड़कर और कब तक वे इस चर के घरों में बैठे रह सकेंगे ?

निताई ने देखा—मवेशी पैर बदल रहे हैं। नहीं, और देर नहीं किया जा सकता। वह सामने वाली गाय के गले की रस्सी पकड़ कर नदी की ओर बढ़ते-बढ़ते खड़ा हो गया। गाय को छोड़ दिया। फिर चीख़कर बोला, "हे सालीस, भैंस को ले आ यहाँ।"

बालिस और सालिस दोनों ही झुंड के बीच घुस गये, हाथ की लाठी और डंडा ऊपर उठा इस गाय को हटाते, उस गाय के निकट होते हुए भैंस के पास पहुँच गये। उसके बाद बालिस भैंस के गले का पगहा पकड़ कर उसे झुंड से बाहर लाना चाहता था। भैंस ने सिर हिलाकर बालिस का हाथ हटा दिया। बालिस ने खड़ा होकर भैंस की नाक को छुआ भर। हाथ उसके माथे पर ले जाकर सहलाया। फिर उसका पगहा पकड़कर खींचता हुआ पतली आवाज़ में हाँकता ले चला, "चल, चल, आगे चल।"

अबकी बार भैंस ने माथा नहीं झटका। सिर हिलाकर बालिस को हटाया नहीं। बालिस "चल, च--ल" कहते हुए खींचते-खींचते पगहा पकड़ा कर प्रायः लटक जाता। पर भैंस के गले की मांसपेशी में पगहा सिर्फ़ धँस भर जाता। भैंस गर्दन को और थोड़ा ऊपर उठा लेती—बालीस के पहुँच के बाहर। बालिस पगहा को छोड़ देता। भैंस अपनी पूँछ फटकारने लगती।

सालिस अचानक उचक कर पगहा पकडकर झूलते हुए चिल्लाया, "है हे बालिस, पीछे से मार धक्का, हे—ट्, हे—ट्, चल, चल।"

ठीक उसी समय निताई ने सामने से जीभ से टटकारी दी, "टर्र-र-र-र-र, टर्-र-र-र।" दो-चार बार चिल्लाया भी, "हेएएए, आ, आ, एएए" हवा के झकोरे से वह आवाज़ कुछ-कुछ उड़ जाती थी पर जितनी भी आवाज पहुँच पाती थी, उससे भैंस समझ जाती थी कि उसे बुलाया जा रहा है। वह धीरे-धीरे सालिस के पीछे-पीछे चलने और मवेशियो की पक्ति से बाहर निकलने के लिये गर्दन घुमाती थी।

भैस खूब धीरे-धीरे पॉव बढाते हुए चल रही थी, उसकी पीठ पर बछडा फिर से खडा होने की कोशिश करते हुए पैर मुडा लेता था और भैस के पीछे-पीछे गाय भी बछडे की ओर गर्दन उठाकर क़तार के बाहर आ जाती थी। उस पक्ति के पास होते हुए आकर वह निताई के सामने खडा हो जाता था। निताई भैस के गले का पगहा पकडकर उन्हे कहता है, "जाओ, धीरे-धीरे पार हो जाना, हल्ला गुल्ला नही करना। निताइ फिर खडा नही रहता—भैस का पगहा पकडकर नदी की ओर चलने लगता। अब तक बाढ का जल नदी म घुसा नही था, पर विगत कई दिनो के बारिश के पानी से इस पहचानी नदी म भी अनजानी गध लग गयी थी। फिर पानी भी ठडा था। सारी रात गोहाल की गर्मी मे बिताकर पानी मे पैर डालते ही अगर गाय या भैस डर जाये तो फिर पूरा-का-पूरा झुड तितर-बितर हो जायेगा। इधर-उधर भागना शुरू कर देगा, कोई-कोई पानी मे गिर भी सकता था। पेट मे पानी लगते ही डर जायेगे—सोच सकते थे कि उन्हे कहॉ हॉके लिया जा रहा है।

निताई पानी मे उतर गया, हाथ से भैस के पगह को पकडे हुए था, भैस भी पानी मे उतर कर कुछ क़दम आगे बढी कि निताई एक गड्ढे म गिर गया, गिरने के पहले उसने भैस का पगहा छोड दिया—वर्ना उसके साथ-साथ भैस भी गिर जाती। निताई 'धुत् साला' कहकर पीछे की ओर पाट पर लौट आया। पाट से एक लाठी लेकर वह फिर से भैस के पास पहुँच गया। भैस का पैर अगर अचानक गड्ढे मे पड जाये, तो उसके पीठ का बछडा भी गिर सकता है नदी मे। अब लाठी लेकर पानी मे टटोलता हुआ निताई आगे-आगे चलता रहा। और भैंस को खीचता जाता। निताई के बाये हाथ मे लाठी थी और दायॉ हाथ भैस के पगहे पर।

भैंस जैसे समझ गयी थी कि उसे खूब धीरे-धीरे समझ-बूझकर क़दम धरना है। निताई लाठी से टटोल कर देखता था, फिर क़दम बढ़ाता था, उसके बाद ही भैंस आगे क़दम बढ़ाती थी। तैरने लायक पानी तक पहुँचने पर ही भैंस तैर कर जा सकती थी। क्या पानी अब थोड़ा अधिक ठडा लग रहा है ? बाढ़ का

पानी क्या भीतर-ही-भीतर घुस आया है। भैंस अचानक खड़ी हो गयी और 'आँ-आँ-आँ-आँ' आवाज़ करने लगी। भैंस पानी से नहीं डरती, बल्कि उन्हें आराम मिलता है पानी से। इसी से भैंस के साथ इस झुंड को पार कराने में अधिक सुविधा थी। "हे, टर-र-र-र-र" तालू से टटकारी दी निताई ने। पर भैंस आगे बढ़ ही नहीं रही थी। निताई पीछे लौट आया। भैंस की पीठ पर चढ़े बछड़े को देखा—बेटा, एक पैर को पीठ से बाहर निकाल दिया था। इसलिये उसका शरीर भी एक ओर को झुक आया था और उसके ठीक पीछे वह गाय थी। उसके पीछे रहने से ही तमाम गड़बड़ी हो रही थी। निताई ने लाठी से गाय के मुँह पर मारा, "साली, चाटने का धंधा करती है।"

गाय ने गला झुकाकर मुँह दूसरी ओर कर लिया। निताई ने पानी में ही खड़े होकर बछड़े को उसके पैर के साथ ऊपर ठेल दिया और भैंस फौरन चलना शुरू कर दी, फिर रुक गयी। निताई फिर से सामने जाकर बायें हाथ से भैंस का पगहा पकड़ लिया, टटकारने लगा, "टर्र-टर्र-टर्र-र-र-।" भैंस फिर क़दम बढ़ा दी।

पर लाठी लिये-लिये ही निताई फिर एक बार हुड़मुड़ा कर गिर गया। गिर जाने पर पाया कि अब पानी काफ़ी गहरा हो गया है। लाठी छोड़कर जल में हाथ मारते ही वह स्रोत के वेग में बह गया, "आ गया है रे, बाढ़ घुस गया है।" पर एकबार डुबकी लगाते ही निताई ने अपने शरीर पर नियंत्रण पा लिया। वह चिल्लाया नहीं—सब डर जायेंगे। अब तो झुंड का आधा-आधी पानी में था। अब भैंसें गहरे पानी में उतरेंगी। स्रोत घुस आया था पर पानी कोई ख़ास बढ़ा नहीं था। निताई ने पाँव से अंदाज़ा लगाने की कोशिश की कि जहाँ वह गिर गया था, वह जगह कौन-सी है। पर उसे मिली नहीं थी। भैंस गहरे पानी के एकदम किनारे घुटने भर पानी में खड़ी थी। निताई उसे कैसे समझाये कि एक क़दम की दूरी पर ही गहरा पानी है। स्रोत का खिंचता हुआ पानी। अगर समझा सकता तो भैंस उसी तरह अपने को बहा देती। पर समझाये तो आख़िर किस तरह निताई ? भैंस सोचने लगी थी कि उसे अब आहिस्ते-आहिस्ते तैरते जाना है। गजेन को आवाज़ देगा ? पर कुछ ठीक न कर पाकर और स्रोत के धक्के से खुद को बह जाने से बचाने के लिये निताई अचानक भैंस के बायें पैर को घुटने के नीचे से कसकर पकड़ लिया, जैसे कि वह एक खूँटा हो । भैंस ने उससे कुछ समझ लिया। वह 'आँ, आँ-आँ-आँ' करके एक बार चिल्लायी और निताई के हाथ के साथ बायाँ पैर उठा दी। निताई समझ गया कि पैर को गहरे जल की ओर बढ़ा दिया है। उससे निताई समझ गया कि भैंस को समझ में आ गया है कि एक क़दम की दूरी पर ही गहरा पानी है। वह भैंस के गले के नीचे से ही टटकारने लगा था, "टर्र-टर्र-टर्र-टर्र।" टटकारते हुए निताई ने देखा

कि माथे पर झुक आये आकाश पर मेघ-सा गर्दन को बढ़ाकर भैंस ने उसके दायें पैर को भी उठा ली थी और पल भर मे चौड़े कंधे को पानी के भीतर ओर फैला कर गले को ऊपर उठा लिया। सामन के पैरों को वह पानी में थोड़ा ऊँचा करके तैरने लगी, इससे उसके पीछे के दानों पैर कुछ अधिक लंबे हो गये, पीठ की ऊँचाई कम हो गयी। और पानी के बीच वह पीठ के ऊपर बादामी-भूरा बछड़ा भी बहते-बहते चला, उसे जरा-सा भी धक्का नहीं लगा। निताई भैंस की गर्दन पकड़ कर बहने लगा, फिर उसके पास-पास तरने लगा टटकारते हुए, "टर्र-टर्र-टर्र-टर्र-र-र-र-अ ।"

100
मवेशियों का पाट और बाँध पर जाना

बीच का यह गहरा गड्ढा अधिक चौडा न था। भैंस के पास-पास तरते-तैरते निताई समझ गया कि बाढ का जल आने लगा है। सामन की भैंस को इस तरह बेड़े के रूप में तैरने देखकर पीछे के गाय-बैल भी शरीर को ढील देकर बहने लगे थे। पर निताई जैसे अपने शरीर के जरिए समझ गया था, सारे जानवर भी उनके शरीर के माध्यम से निश्चय ही उसके जैसे, बल्कि उससे भी कहीं ज्यादा समझ गये थे कि वे घुटने भर पानी मे से चलते हुए आकर जिस गहरे जल में पहुँचे है उसकी प्रकृति, प्रकार कुछ अलग ही है। पर वह समझते-समझते ही बीच का स्रोत खत्म हो गया था। भैंस के पैर के नीचे मिट्टी आ गयी थी। मिट्टी पड़ते ही वह खड़ी हो गयी। पर पाट में उठने के लिये पैर नहीं बढ़ायी। निताई थोड़ा आगे बढ़कर खडा हो गया। खडा होकर पैर से महसूस किया कि यहाँ भी पाट टूटा है पानी के नीचे। उसने खड़े होकर देखा कि इन मवेशियों के शरीर से टकराकर स्रोत का जल थोडा आवर्तित हो रहा है और फेन उठा रहा है। मवेशियों के शरीर के फाँक से होकर पानी बायें से दाये की ओर बहे जा रहा है। थोड़ा फेन बनाता हुआ।

निताई पाट का अंदाजा लेकर झुंड से उत्तर दिशा की ओर एक-एक क़दम बढ़ गया। वहाँ उसे जगह मिल जाती है। निताई ने वहाँ खड़ा होकर बुलाया, "आओ, आओ, इधर आओ," और मुँह से टिटकारी दी, "टर-टर-टर, टर-र-र-र-र-र।"

भैंस ने पहले उधर देखा—गर्दन घुमाकर देखा, फिर आहिस्ते से दायीं ओर घूम गयी। उसके पीछे-पीछे सभी मवेशी क़दम बढाते चले गये। थोड़ा फाँक होते ही खलखलाते हुए स्रोत का जल आवाज के साथ बह जाता। इतना बड़ा स्रोत इस बहाव में कहीं नहीं होता। पानी के बहाव को देख निताई ने अंदाज़ा लगाया

कि कितने वेग से पानी यहाँ प्रवेश कर रहा है। बाढ़ आ गयी है।

निताई थोड़ा अन्यमनस्क हो गया। भैंस के निकट आकर खड़े होते ही वह उसी अनमने भाव से उसके पगहे पर हाथ दिया और फिर से स्रोत की दिशा में ताकने लगा। झुंड के पशुओं के शरीर पर स्रोत कितने ज़ोर से धक्का लगा रहा है देखने के लिये वह शायद उधर देख रहा था। भैंस अपना माथा मोड़कर शायद निताई को याद दिलाना चाहती थी कि उन्हें अब पाट पर उठना चाहिये। निताई फ़ौरन भैंस के निकट एक कोने पर खड़ा हो गया, दोनों हाथों से ऊपर के बछड़े को पकड़े हुए पुकारा—"हे··ए··गजेन, अमूल्या, धर, इधर आओ।"

नरेश ने हल्के स्वर में जवाब दिया—"अरे निकला नहीं तू, यहाँ हूँ।"

नरेश पता नहीं कब उस दक्षिण पाट से यह इतना रास्ता तय करके इस पार में चला आया था ? तो क्या तिस्ता ब्रिज पर बाढ़ का धक्का लगते देखकर नरेश यहाँ आ गया था ? निताई सोचता रहा पर पूछ नहीं पाया।

भैंस ने धीरे-धीरे अपने सामने के पैरों को उठाया। थोड़े समय बाद उसने दायाँ पैर भी पाट में रख दिया। उसके बाद थोड़ा रुककर या फिर बछड़े को सँभालने के लिये निताई को थोड़ा-सा समय देकर इतने बड़े शरीर को एक झटके से पाट के ऊपर उठाने के लिये पीछे के पैरों को फ़ौरन खींच कर बोल्डर और पानी के बीच के सँकरे जगह पर खड़ी हो गयी।

जल का स्रोत या नदी के पाट को पार करने से कहीं मवेशियों के लिये कठिन होता है नदी के पाट से बाँध पर चढ़ आना। बाँध की मिट्टी बारिश से बह न जाये और बाँध तथा नदी के बीच का पाट स्रोत के धक्के से टूट न जाये इसलिये बोल्डर देकर पूरा का पूरा पक्का कर दिया गया था। फिर उन बोल्डरों पर तार को जाली बिछा दी गयी थी। पाट के बोल्डर और जल सीमा पर एक ऊँची ज़मीन। बहुत सी जगह पर वह ज़मीन टूट-फूट गयी थी। बहुत-सी जगह बोल्डर एकबारगी पानी के भीतर चला गया था। इस सँकरी जगह से होकर मवेशियों का झुंड चल नहीं सकता। फिर बोल्डर पर पैर रखकर मवेशी ऊपर जा भी नहीं पायेंगे। उनका खुर बोल्डर पर फिसल जायेगा। फिर तार जाली के ऊपर चलते चलना और भी दूभर था। उसमें पैर फँस जायेगा।

गजेन और नरेश ने पहले से ही एक डाँगर के निकट दो समतल बोल्डर को पास-पास में रख सीढ़ी-सा बना दिया था। उससे ऊपर जाकर तार के जल से अटकाये बोल्डरों को दो क़तार पार कर जाने पर एक बोल्डरविहीन नाली मिलती थी। नाली के ऊपर बोल्डर और तारों की जाली। केवल इसी रास्ते से ही मवेशियों को ऊपर लिया जा सकता था। गजेन और नरेश भैंस को उस ओर ले गये। गजेन ने मिट्टी पर खड़ा होकर भैंस का पगहा पकड़ लिया और नरेश बोल्डर के ऊपर खड़ा होकर देखता रहा कि भैंस कहीं पाड़ को तोड़कर गिर न जाये।

जगह इतनी सँकरी थी कि वैसे देखने पर नहीं लगता था कि उधर से होकर किसी भी मवेशी के लिये जाना संभव होगा। पर मवेशी पैर घसीटते-घसीटते—वह भी ऐसे कि एक-दूसरे के पाँव से पाँव भी सट जाते हैं, पर इतने धीरे-धीरे बढ़ने लगे कि किसी को ठोकर न लगे। वे बोल्डर पर घिसटते चल रहे थे। पेट बोल्डर पर घिस जाता था। बस इतना ही। नरेश झुककर मवेशियों के पीठ को थोड़ा-थोड़ा छू भर लेता था।

पानी पर से निताई ने चिल्लाकर कहा, "ऐ नरेश, यहाँ पर एक बोल्डर लगा दो, मिट्टी टूट गयी है।" नरेश ने देखा, निताई प्रफुल्ल पाल की बूढ़ी और बादामी गाय को पाट पर चढ़ाने की कोशिश कर रहा था। वह गाय के सामने था, बालिस और सालिस दोनों ओर थे और बलराम का छोकरा पीछे था। सब मिल-जुलकर उसे ऊपर चढ़ाने की कोशिश कर रहे थे। बाक़ी मवेशी पानी में खड़े थे।

"अरे, अरे, जरा सँभाल के। इस बूढ़ी को चढ़ाये तो इस तरफ़ से एक क़दम भी आगे बढ़ाया नहीं जा सकेगा, हे-हे-हे" कहते-कहते नरेश ने बोल्डर से एक टुकड़ा नीचे उतरा और झुककर चिल्लाया, "अये निताई, अरे बुढ़िया को अपने पास रख, आख़िर में चढ़ायेंगे।" चिल्लाते-चिल्लाते नरेश मवेशियों के पीठ पर अपना हाथ भी छुआता जाता और गर्दन को नदी की ओर घुमाये रखता था।

निताई ने नरेश की बातों का कोई जवाब नहीं दिया। दोनों बच्चों से बोला, "हटा ले, हटा ले।" पानी में खड़े-खड़े बालिस और सालिस दोनों ओर खींचते थे। बूढ़ी गाय शायद निर्देश को समझ गयी थी—वह सालिस की ओर दो क़दम बढ़ जाती थी। निताई बलराम के छोकरे से बोला, "ले आ, उन्हें ले आ।" बलराम का छोकरा पीछे के मवेशियों को आगे ले आया। इस बीच निताई ने देखा कि मवेशियों के पैरों से पाट इतना टूट-फूट गया है और भींग गया है कि कोई भी पशु फिसल कर गिर सकता है। उसने बालिस से कहा—"आगे बढ़, और थोड़ा आगे बढ़।" सालिस ने रस्सी पकड़कर खींचते हुए दो क़दम चलते-न-चलते ही 'खप्' करके गहरे पानी में गिर गया। बालिस अपने ज़ोर से चीख उठा, "ऐ साहा, सालिस गिर गया है, बढूँ कैसे ?"

निताई खड़ा होने को बोला पर उधर देखा ही नहीं। प्रफुल्ल पाल की बूढ़ी गाय भी खड़ी हो गयी थी। सालिस पानी से उठ आया था। निताई ने दो क़दम परे हटकर एक जगह गायों को फिर से पाट पर चढ़ाने की कोशिश करते हुए देखा कि पाट के पशु आगे बढ़ नहीं रहे। एक जगह खड़े हो गये हैं। अब अगर किसी को ऊपर चढ़ा दिया जाये तो उसको खड़ा होने की भी जगह नहीं मिलेगी।

निताई अपने बाबुरी बालों को बायें से दायें की ओर झटक कर चिल्लाया,

"अरे ओ नरेशुआ, तू क्या वहां गाजा पीने बैठ गया है रे ।"

नरेश ने आधी गर्दन घुमाकर बाया हाथ उठाकर निताई को रुकने के लिये कहा। नरेश ने गर्दन उठाकर देखा कि, पीठ पर बछड़े को लिये भैंस इस नाली से ऊपर को उठ नहीं पा रही थी, "अरे ऐ साला गजेन, तेरा सिर है या शालकाठ है रे " कहते हुए नरेश एक छलांग से बोल्डर के ऊपर चढ़ गया और उधर दौड़ने लगा, "साला, सुना नहीं है क्या। अरे, बछड़े को उतार कर बोल्डर पर रख दे।"

नरेश की पुकार सुन गजेन पीछे की ओर ताकते हुए खड़ा था। नरेश के जाते ही मिट्टी पर झुक गया। अपने लंबे हाथ से बछड़े को खींचकर भैंस की पीठ के किनारे लाया। गजेन से बोला, "पकड़ इसका माथा।"

"अरे हाथ से पकड़ नहीं पाता क्या ?" गजेन कहता है।

"अरे साला, पकड़े ही तो हूं। नरेश ने हंस दिया, "अरे खींच बोल्डर के पास खींच, खींच ला ।"

गजेन ने भैंस का पगहा पकड़ कर खींचा। खींचते हुए उसे बोल्डर के निकट ले आया। नरेश और गजेन बोल्डर के ऊपर चढ़ गये और भैंस की पीठ से एकबारगी बछड़े को खींचते हुए समझ गये कि यह फिसल सकता है। पीछे वह माँ-गाय अचानक 'हंबा' कर उठी। नरेश ने भैंस की पीठ पर दाया पैर रखकर दो बार दबाव डाला और समझ गया कि हल्के दबाव से भैंस भी खड़ी हो गयी है, तो तभी 'वान-टू-थ्री' कहकर एक ही झटके से बछड़े को बोल्डर पर उठा लाया और आहिस्ते से रख दिया। पीछे से बछड़े की मां ने हमला कर दिया--इतने समय बाद वह बछड़े को जीभ के पहुंच में पायी थी। गजेन भैंस का पगहा पकड़ कर नाली से होता हुआ बाँध पर चढ़ गया। नरेश निताई की ओर भागा।

यह नाली एक अद्‌भुत कारण से बनायी गयी थी। आमतौर पर बाँध के ऊपर से किसी जल को नीचे स्रोत के रूप में उतरने देना मना था। अगर कहीं किसी कारण से वैसा स्रोत बन भी जाये तो उसे तुरंत वहीं बंद किया जाना चाहिये। वरना बाँध की मिट्टी कट जायेगी। बाँध के नीचे की मिट्टी अलग हो जायेगी। पर यह नाली वैसे किसी स्रोत के लिये बनी नहीं थी--बल्कि यहां बाँध को तार जाली से अटा बोल्डर देकर ही बाँधा गया था।

बाढ़ के समय नदी का स्रोत जैसे सीधा बाँध पर न टकराये, उसके लिये खास-खास जगहों पर शाल-खूंटों का लंबा खाँचा नदी के भीतर तक लिया गया था, जिसे 'स्पार' कहा जाता है। उन स्पारों का भीतरी भाग बड़े-बड़े बोल्डरों से भरा गया था। जल का स्रोत वहां से टकरा-टकरा कर लौट जाता था। लौटते समय कुछ रेत और मिट्टी भी छोड़ जाता था उससे पाट और भी चौड़ा हो जाता था और नदी थोड़ी दूर हट जाती थी। जब नदी में बाढ़ आती थी तब इन सब

व्यवस्था का सुफल नजर आता था--अनेक [illegible] में नदी का स्रोत उल्टी दिशा की चर पर यानी [illegible] था।

पर '58 में बाँध बनने के बाद [illegible] जगहों में पानी उतर जाने पर भी इस जगह पर [illegible] बन जाता था। उसे लेकर किसी को कोइ दुश्चिता [illegible] जाने पर इस तरह का एक तीस पतीस हाथ का [illegible] कथा पर उसके बाद के साल व बाद में पानी इस गड्ढे [illegible] आकर बांध पर सीधे धक्का मारने लगता। उस [illegible] नहीं हुई थी। उसी सर्दी के मौसम में बोल्डर देकर नदी के पाट [illegible] गया था जिससे गड्ढे के भीतर जल प्रवेश कर न करने पाये। और वह गड्ढा [illegible] नाली के रूप में रह गया था। धीरे धीरे व नाली [illegible] गयी। पर पूरा बंद नहीं हो पायी थी।

अबकी जगदीश की भैंस अपनी [illegible] नाली के पास से धीरे-धीरे क़दम बढ़ाती हुई ऊपर [illegible] लगी। [illegible] पगहा पकड़ कर आगे-आगे चल रहा था। पगहा का खिंचाव [illegible] था। मतलब भैंस अपनी मर्जी से धीरे-से चढ़ाइ चढ़ रही थी। गजेन पगहा [illegible] भी दे सकता था।

पर उसने पगहा छोड़ा नहीं था। तार जाली से घिरा बोल्डर और पाट की सीमावर्ती जगह पर यानी जिस जगह से होकर झुंड ऊपर जाता, वह [illegible] चौड़ा नहीं था। यद्यपि नदी के पाट पर और बोल्डरों के बीच जिस थोड़े से [illegible] को वे पार करके आये थे, उससे बस थोड़ा-सा चौड़ा था। उस पर फिर चढ़ाई का रास्ता। कोई गाय या बछड़ा अगर यहाँ से इस गर्त मे गिर जाये तो उसे इस गर्त से निकालना काफ़ी कठिन हो जायेगा। अगर गर्दन के बल न गिरे तो मरेगा नहीं, पर शायद टाग-वाग तो टूटेगी ही। गर्दन अगर मोच न खाये, टाग भी अगर न टूटे तो शायद वहाँ रह जाने में किसी मवेशी को कोइ आपत्ति न होगी। झाड़-झखाड़ तो है ही। पानी भी नहीं आयेगा। पर, अभी, चर को खाली करने के इस प्रारंभिक दौर में ही इस तरह की कोइ गड़बड़ी होना ठीक नहीं।

जब गजेन ने भैंस के साथ आधा-आधी चढ़ाई पार कर लिया तो मुड़कर देखा कि मवेशियों का झुड धीमी गति से पीछे-पीछे आ रहा, पर उनके शरीर से इतना पानी झर रहा था कि पूरी चढ़ाई भीग गयी थी। यहां देखने से पता चलता था कि फिसलन है। "अरे-रे-रे-रे, ये तो गड्ढे में गिरने को हो रहे हैं।" गजेन ने भैंस को रोक दिया। फिर नदी की ओर मुँह करके खड़ा हो गया। निताई और नरेश अभी नदी के पाट पर थे। गजेन और भैंस से लेकर उस पाट तक

गाय और बछड़े एक ही लाइन में फैले थे। नदी में भी झुंड के कुछ गाय और बछड़े थे। यह पूरी-की-पूरी क़तार आगे बढ़ने के साथ-साथ एक-एक करके ऊपर को चढ़ रही थी।

"हे ऐ निताई" गजेन ने पुकारा। वह पुकार बाँध के ऊपर से होते हुए उल्टी दिशा में चली जाती थी। तो क्या भैंस को वहीं खड़ा करके जाकर कह आये ? "साला अमूल्य भी कहाँ चला गया ?" गजेन इधर-उधर ताकने लगा— बालिस, सालिस, बलराम का छोकरा और कोई तिनेक छोकरे बाँध के ऊपर मवेशियों के लिये खूँटे गाड़ने में लगे थे। और, बोल्डर के ऊपर से सिर पर घास-पुआल के बोरे लादे दो रखवाले-चरवाहे बाँध पर चढ़ रहे थे। गजेन ने उन्हें पहचान लिया—वे अश्विनी राय और अमूल्य के आदमी थे। गजेन ने वहीं से आवाज़ दी—"हे··· ए, सुन तो, इधर आ।" वे दोनों गजेन की आवाज़ सुन नहीं पाये पर उसकी मुद्रा को देख पा रहे थे। वे बोल्डरों पर से होते हुए बाँध पर चढ़ रहे थे। गजेन की बात सुनकर सीधा दायीं ओर घूमकर गजेन की ओर आने लगे। बाँध की उतराई से होकर तिरछे चलना कठिन होता है। उनका दायाँ पैर नीचे और बायाँ पैर ऊपर को था।

पर भैंस के खड़े होते ही गायों की कतार भी खड़ी हो गयी। इसके चलते पाट पर और किसी दूसरे गोरू को ऊपर चढ़ाने की कोई जगह न पाकर नरेश ने घूमकर देखा। निताई का बाल नदी के भीतर से ऊपर उठता दिखा। वे देखकर कुछ समझना चाहते थे। गजेन ने हाथ उठाकर प्रतीक्षा करने के लिये कहा। दोनों आदमी आगे बढ़ गये। नरेश ने झल्लाते हुए हाथ को हवा के साथ ऊपर को उठाकर कहा, "वहाँ खड़े-खड़े क्या मूतने लगा है ?"

गजेन ने उसका कोई जवाब नहीं दिया। वह उन दोनों से बोला, "यहाँ फिसलन है। सँभल-सँभलकर चल नहीं तो··।" वे दोनों आदमी वहाँ से उतराई की ओर एक बार देखते ही समझ गये कि समस्या क्या है। गजेन की बात ख़त्म होने के पहले ही दोनों बोल्डर से होकर सरसराते नीचे उतर गये। अश्विनी राय का आदमी आसारू उतर ही गया पर अमूल्य का आदमी फिर ऊपर को चला आया था। उसने बाँध के ऊपर पहुँच कर सिर का बोरा उतारा था और फिर बोल्डर से होता हुआ नदी की ओर भाग गया।

आसारू के नरेश से जाकर कहते ही नरेश ने हाथ के इशारे से जताया कि—ठीक है। अब गजेन भैंस को लेकर ऊपर जाये। आसारू और अमूल्य का आदमी फिर बोल्डर से होते हुए मवेशियों के क़तार की ओर चले गये। आसारू ने अमूल्य के आदमी से कुछ कहा, वह फ़ौरन धरती पर झुककर पाट में खड़े पशुओं के पैरों पर पानी का छींटा फेंकना शुरू कर दिया। और आसारू बोल्डर के ऊपर, बाँध की ढलान पर जो घास-फूस उगी थी उन्हें नोच-नोच कर ढलान

में छोड़, दूसरी बार उन्हें लाने के लिये पीछे मुड़ गया। तभी गजेन की 'हो-हो' कर हंसी की आवाज़ से गर्दन घुमाकर देखा कि मवेशी उन घास-पातों को चबा रहे थे। वह फिर से मुड़ा और चल पड़ा, इस लाइन की ओर बढ़ता गया—गजेन की ओर जिज्ञासा भरी नज़रों से देखा। गजेन ने हाथ के इशारे से उसे बॉध पर जाने के लिये कहा। भैंस का पगहा पकड़कर खुद क़दम बढ़ाता गया।

बॉंध के ऊपर से खूँटे गाड़े जाने की आवाज़ हल्की-हल्की आ रही थी—आवाज़ का बाक़ी हिस्सा नो हवा में रंधामाली की ओर उड़ा जा रहा था। अब तो गाय-बछड़े सब बॉध के ऊपर आ चुके थे। अब सब अपने-अपने गाय-बछड़े अलग कर लेंगे। अलग-अलग खूँटा गाड़ेंगे। जिनके बहुत-से मवेशी हैं, तरह-तरह के और क़िस्म-क़िस्म के गाय-गोरु हैं—वे उसी हिसाब से उन्हें बॉट कर खूँटा गाड़ेंगे। अमूल्य और अश्विनी राय ने तो अपने 'आदमी' भेज दिये थे। जगदीश बारूई इस तरह आदमी नहीं भेजा करता, वह जानता था कि उसके मवेशियों की देखरेख करने के लिये आदमियों की कमी नहीं रहेगी। पर इस चर पर रोजमर्रे के काम-काज में जिनके साथ भेंट नहीं होती, वे बाढ़ के कगार पर इस बॉध में गाय-बछड़े, परिवार के साथ आ पहुँचने पर भी एकबारगी तो सबसे घुल-मिल नहीं सकते। आख़िर मे देखा जायेगा—पाड़ा के अनुसार, यहाँ भी विभाजन हो गया था। पर मवेशियो के झमेले में पाड़ा का बँटवारा नहीं होता। जिसके मवेशी हैं, वे अलग-अलग कर लेंगे। पहले आते हैं मवेशी। फिर आता है उनका खाना और देखरेख करने के लिये आदमी—जिसके आदमी हैं, उसके आदमी आ जाते हें। जिसके बच्चे-कच्चे हैं, उसके बच्चे-कच्चे। जिसके मवेशी हैं, उसके मुताबिक वे भी अलग-अलग हो जायेंगे।

टूट-टूट पड़ता दिगंत से तूफ़ानी हवा और लौटते आकाश से बारिश के तीरों से बिंधते-बिंधते अब तक जिन गाय, भैंस, बछड़ों का झुंड प्राणरक्षा की कोशिश में मिल-जुल कर, एक होकर, इस बॉध तक चला आया—भागते हुए। उन पर मालिकाने की भागीदारी क़ायम करने के लिये बॉध पर खूँटे गोड़े जा रहे थे। खूँटे गाड़ने की आवाज़ बाढ़ की तूफ़ानी हवा में बहती चली जा रही थी।

गजेन के हाथ में जगदीश की भैंस थी। उसके मुड़ी हुई सींगें आकाश के मटमैले मेघ से मेल खा रही थीं।

101

घर नंबर दो

निताई के घर से नदी के होते हुए आठ और जलपाईगुड़ी शहर से होते हुए प्रायः

बारह मील दूरी पर एक और चर है—जो लोगों के मुताबिक से दो नंबर चर के नाम से जाना जाता है। असल में तिस्ता का यह भाग साल में आठ महीने सूखा रहता है। अगर तिस्ता किसी दूसरी तरफ से बहने लगे तो बाक़ी चारों महीने भी सूखा रहता है। उसी तरह लगातार तीन साल तक तिस्ता दूसरी ओर बहने पर यहाँ नांगर चलाकर खेतीबाड़ी हुई, लोगबाग बसने लगे, फिर घर द्वार बने, केले के पेड़ भी हवा में सरसराने लगे और सुपारी के पेड़ भी एक कतार में साय-सांय करने बढ़ने लगे। पर उसके बाद ही फिर एक बार तिस्ता बाक़ी सभी हिस्सों को छोड़कर इसी हिस्से की ओर भागी। इस तरह पिछले दसेक बरस में अब इस निचले चर की कोई-कोई जगह ऊंची हो गयी है। कोई जगह डबरा बन गया है। और इन दस वर्षों में जमीन का बंटवारा भी साफ़ हो गया है। सर्दी के मौसम में पूरी ज़मीन में ही रबी की फ़सल होती है। गेहूँ की पैदावार भी इन दिनों काफ़ी अच्छी हो रही है। अगर इस तरह अच्छा होता रहा तो दूसरी रबी की फ़सल उगाही के बदले सभी गेहूँ की खेती करने लगेंगे। ऊँचाई पर खरीफ अच्छी होती है। ऊंचे, यानी इस चर की निचली ज़मीन से ऊँचाई पर, नदी के पाट से काफ़ी नीचे।

नदी की जमीन पर जब खेती है तो वहां सोलह आने पर अठारह आना फायदा होता है। क्योंकि इन ज़मीनों के कोई मालिक नहीं होते। जब जमीन भीगी होती है तो पांव रखते ही दब जाता है। तब वहाँ रहने के लिये बांस का मचान बनाया जाता है। तब बांस को गाड़ने की जरूरत नहीं। मिट्टी में सिर्फ़ घुसा भर दो। पानी सूखता नहीं है। हाथ से थोड़ी मिट्टी को हटाते ही पानी निकल आता है। तब जाकर जमीन में जो पहले उतरता है उसकी आँखों और मन के माफ़िक घर बना लेता है। कोई पागल-वागल भी वहाँ जा सकता है। जो चार पुश्तों से ज़मीन-जायदाद खोते-खोते अब अपना मस्तिष्क संतुलन खो चुके हैं, जिसका अपना कोई साया नहीं है, वह इस ज़मीन को अपनी जमीन समझ सकता है। उसके पागलपन के साथ ही ज़मीन का एक कार्यकारण मेल रहा है, इस ऐतिहासिक मेल से ही यह संभव हो सकता है, होता भी है कई बार।

और, नहीं तो फिर इसका एकदम उल्टा ही होता है। तिस्ता कितने साल बाद रास्ता बदलती है उसका एक अंदाजन हिसाब लगता है। जो बाप, दादा, पुरखों से पता है या फिर कितने वर्ष इस रास्ते में कितना पानी आया है और कितना पहले निकल गया है—यह हिसाब जिन्हें याद है उनके जरिए। उस तरह के हिसाबी पैसेवाले लोग इस जगह का दखल अपने हाथ में रखने के लिये किसी अधपागल को दो-चार रुपये दे-दिलाकर यहाँ बिठा सकते हैं।

चर ज़मीन का तो कोई मालिक नहीं होता—इसी से वह ईश्वर की ज़मीन है। जो पहले अपने कब्जे में ले ले, जमीन उसकी। जो जितना दखल कर सके

उतनी ज़मीन का मालिकाना उसका। मंडलघाट और का बीच म ? दो नम्बर चर। फ़िलहाल मंडलघाट तक तिस्ता का बड़ा बाँध बना है -बिल्कुल पुराना 'पाथरझोड़ा' के बीच मे होकर। मंडलघाट चारसीमाना म यह बाँध एक 'गोल' आकार लेता है। यह बाँध जैसे चौहद्दी का ही एक भाग हो। बाँध पर चढ़ना, चौहद्दी पर चढ़ना भी वह। बीच म थोड़ी-सी ख़ाली जगह। बाढ़ को छोड़ इस बाँध पर कोई कभी नहीं आता। और बाढ़ में आते हैं तो सिर्फ़ दो नंबर चर के ही लोग। बाँध ख़ाली है इसी से अगल-बगल साफ़ करके यहीं कैंप लगाया जाता है। इस चर पर दख़ल कर लेने से यह मंडलघाट का ही एक भाग हो जा सकता है। और कचुया के पश्चिम से होकर आर एक बाँध गया है उस बाघाम्भारी की ओर। मतलब यह दो नंबर दोनों बाँध के बीच में ही है।

दो बाँधों के बीच तो सिर्फ़ एक नदी ही रह सकती है। तो क्या इंजीनियर लोगों ने दोनों ओर बाँध बनाने का सोचकर ही इस जगह को सूखा रख छोड़ा है, जिससे जलस्तम्भ बाढ़ के समय या जब बाढ़ तोड़ती हुई नीचे कूदेगी, जब पहाड़ के माथे पर पानी घुसकर नीचे से बाहर निकल आयेगा, जंगल के जंगल उखड़ जायेंगे, जब बड़े-बड़े पत्थर पहाड़ से गड़गड़ाते हुए नीचे उतरेंगे और भूकम्प का माहौल बना देंगे, जब रेडियो पर कम-से-कम सात-आठ रेड सिगनल दिया जायगा और स्थानीय समाचार के मुताबिक हेलिकॉप्टर उड़ेगा और मिलीटरी वाले उतरेंगे, तब नदी को निकलने का एक रास्ता मिल जायेगा।

ऐसा एक बार हुआ भी सन् अड़सठ में। पर फिर कब ऐसा होगा किसी को पता नहीं। तब तक के लिये नदी के इस खुले रास्ते को रोक कर आबाद किया जायेगा। जहाँ ज़मीन है, जहाँ खेती आबादी है, वहीं मालिकाना, दख़ल, बाँट-बटायी। नदी को लेकर भी वही मालिकाना, वही दख़ल, वही बाँट-बँटायी चलती है। सूखी होने पर भी आख़िर है तो नदी ही।

पर नदी होने पर भी यह है तो मिट्टी ही। मिट्टी तो नदी नहीं होती कि बह जायेगी। मिट्टी माने तो पेड़। वह भी कोई छोटे-मोटे फूल-बेल-पात नहीं। काँटे का पेड नही, झाड झंखाड़ भी नहीं। मिट्टी के माने बड़े-बड़े, विशाल पेड जहाँ है तहाँ है, छाल पर छाल जमता हुआ। वही डाल से पाल झूलता हुआ, जहाँ डाल-डाल पर परांगभोजी पौधे उगते है, मिट्टी के ऊपर मिट्टी पडती है, जहाँ मिट्टी ऊँची से और ऊँची होती जाती है, लोग जिसे मिट्टी की छाती कहते हैं, वहीं पर ऊँची-नीची ज़मीन पर तरह-तरह के बसेर बनाये जाते है, खेतीबाड़ी की जाती है—मिट्टी को लेकर मनुष्य के कामकाज का कोई अंत नहीं होता। उसके बाद किसी एक समय किसी को खयाल तक नही रहता कि यह मिट्टी दरअसल कोई मिट्टी नही एक नदी है। या फिर नदी के लिये खुला रखा गया एक रास्ता—जहाँ नदी कभी घूमकर नहीं आती। तब धीरे-धीरे यह नदी जनपद की एक पुरानी

उपकथा में बदल जाती है, जनपदवासियों की जुबानी, पुश्त-दर-पुश्त की एक कहानी। धीरे-धीरे उस तरह के लोग कम होते जाते हैं। ऐसे लोग जो अपने अतीत को गौरवान्वित कराने के लिये एक नदी का क्रमविस्तार कराते हैं—"वह क्या नदी है ?" धीरे-धीरे ऐसे लोग कम होते जाते हैं, ऐसे लोग जिनकी स्मृति में नदी बहती रहती है। धीरे-धीरे ऐसे लोग कम होते जाते हैं जो नदी को उसके नाम से ही पुकारते हैं। किसी समय इस जगह को पहचाना भी नहीं जायेगा कि इसके दोनों ओर बाँध बँधे हुए हैं। और तब नदी के जलप्रवाह के लिये शायद कहीं किसी दूसरे बाँध की ज़रूरत भी आ पड़े।

यह जगह, यह दो नंबर चर, अभी तक उस रास्ते तक पहुँचा नहीं है। जैसे कि अब तक उस रास्ते तक पहुँच गया है पहाड़ की तलहटी की मंजुली, उसके नीचे प्रेमगंज या वासु सुबा का चर, दोमोहनी या पदमतीर चर, या फिर उसके नीचे कूचविहार के पूरब में मेखलीगंज, पश्चिम में हल्दीबाड़ी के बीच नयापाड़ा से दहग्राम का काफ़ी पुराना चर। या फिर उसके आगे काशियाबाड़ी, बोयालमारी, यहाँ तक कि कचुया भी। इसी के चलते अभी इस नदी के साथ निकासी को लेकर कुछ-कुछ दखल की लड़ाई चल रही है। लोग अब तक खेतीबाड़ी के जरिये इस नदी पथ को नदी के लिये दुर्गम नहीं बना पाये हैं। नदी भी अबतक पानी की मार से इस मिट्टी को खेतीबाड़ी के लिये अयोग्य नहीं कर पायी है। इसी से अभी साल में कई बार या दो-एक बरस में एक बार आदमी और नदी के बीच दखल की लड़ाई चलती रहती है।

इस लड़ाई में मज़ा भी है। अचानक पानी के धक्के से मिट्टी का बँटवारा बंद हो जाता है। तिस्ता का पानी घुसकर मेड़ों को ढँक देते ही, मेड़ों पर विभाजित हुआ मालिकाना भी ढँक जाता है। तब पानी सबका दुश्मन बन जाता है। जैसे कि पानी के उतर जाने पर मिट्टी दिखायी देने पर इन लोगों की पुरानी दखल की लड़ाई फिर से शुरू हो सके। उसके पहले तक जब तक पानी ऊँचा-नीचा रहता है, तट सूखा है, चढ़ायी-उतरायी ज़मीन का भेद मिटा चुका होता है, तब तक इन ज़मीन के दखलदार, किसान मालिक भूल गये होते हैं, पानी के नीचे ज़मीन की असमतलता को या इस मिट्टी की परत-दर-परत रेत, चूना-पत्थर आदि के मिश्रण के वैचित्र्य को।

इस असमतलता, इस मिश्रण के आकार-प्रकार के चलते ज़मीन का मूल्य घटता-बढ़ता रहता है, दख़ल क़ायम होता है, मालिकाने की बदली होती है। संपत्ति का मामला तो मनुष्य के साथ मनुष्य का होता है। पर अभी इस तरह के प्राकृतिक आपदा में, जबकि पहाड़ पर से जल उतर कर नदी को क्रमशः किसी भी आयतन से काफ़ी बड़ा बना देता है, जब जल का जाना-पहचाना रंग बदल जाता है, जल के ऊपर मुँह के बल गिरा एकबारगी घुमड़ते मेघ जैसा मटमैला सफ़ेद रंग, फेन

और काट कर जाने पर अचानक कीचड़ सने जल को पहचाना जाता है, जब पानी नदी से बहकर नहीं नदीमय पाताल से फूट पड़ती है, तभी बाँध के ठीक नीचे ही नदी की गहरायी के भीतर से भादई ने चीख़कर बाँध के ऊपर महेश्वर जोतदार को धमकाया, "बाबा, अरे ओ बाबा, बाँस फेंक दो, बाँस फेंक दो।"

भादई अपने तमाम जीवन में महेश्वर को किसी भी कारण से बुलाने के बारे में नहीं सोचता। जब भी बुलाया है, बिल्कुल बिन बात। और कभी-कभार अगर कोई वजह रही भी हो, तो भी 'साहूकार' संबोधन न जाने कितने श्लेष्मा जड़ित उसके कंठ से निकलता है। पर तिस्ता के बाढ़ में खड़े हो 'साहूकार' एक काफ़ी लंबा शब्द होता है। और इस समय का सबसे बड़े जोतदारों में से एक है—महेश्वर देउनिया। भादई के हुक्म के मुताबिक बाँध पर जमा कर रखे ढेर में से एक बाँस खींच कर बाँध की ढलान से धीरे-धीरे उतार कर पानी में भादई की ओर छोड़ दिया। भादई उस बाँस को पकड़ कर फिर चीख़ा, "अरे और दो, देते क्यों नहीं ?" जैसे कि अभी-अभी तिस्ता की बाढ़ में मानव इतिहास में वर्ग-संघर्ष का चरम किनारा मिल गया हो।

102
बाढ़ के मुँह पर बिछौना

पानी आया था उस बुधवार को ही। पर यहाँ कम-से-कम उस दिन तो बारिश हो नहीं रही थी। तो ऐसा लगता था कि जिस तरह आयी है उसी तरह चली भी जायेगी। पर आज शनिवार है। कल गया शुक्रवार। उसके एक दिन पहले वृहस्पतिवार से ही यहाँ हवा, तूफ़ान और बारिश शुरू हो गयी थी। वृहस्पतिवार को सुबह दस-ग्यारह बजे के क़रीब कुछ थमी थी। रास्ता-घाट थोड़ा सूख भी गया था। धूप नहीं दिखी। पर आकाश के धूप ढँके मेघ में पानी भी अधिक न था। इसी से धूप की आभा चारों ओर बिखरी हुई थी। दो नबर नदी का पानी भी थोड़ा-बहुत बढ़ा था, जैसा कि बढ़ता है इस तरह के हवा-तूफ़ान से।

पर उसी दिन शाम से हवा-तूफान और बारिश दुगुना हो गयी थी। वृहस्पतिवार रात को दस बजे पहली बार, उसके बाद शुक्रवार की सुबह से रेडियो पर बार-बार 'नारंगी' संकेत की बात कही जाने लगी। जो लोग नदी के चर पर बाँध के इस ओर बसते थे उन्हें 'सुरक्षित जगह' पर चले जाने के लिये बार-बार सतर्क किया जाने लगा था। सिक्किम में कहीं बड़े भू-स्खलन की ख़बर मिली थी, पर उसका विस्तृत विवरण अब तक नहीं मिला था। हैलिकॉप्टर और सेनावाहिनी की बात रेडियो में शुक्रवार रात दस बजे के पहले तक नहीं कही गयी थी। इसका मतलब तब तक कहीं भी बाढ़ शुरू नहीं हुई थी।

पर शुक्रवार रात को दस बजे कहा गया। सिक्किम से कुछ-कुछ खबर मिली है। कई जगहों पर प्रबल भू-स्खलन के चलते नदी का मुह बद होने पर कृत्रिम झील बन गयी है। ये झील फट जाने पर नदियो के निचले इलाको मे 'आकस्मिक' और 'प्रबल' बाढ की आशका है। जलपाईगुड़ी और कूचविहार का ज़िला प्रशासन 'सनर्कतामूलक' व्यवस्था के लिये हर कहीं 'नारंगी संकेत' दे रहा है। नदी के चर और बांध के इस पार के क्षेत्र में रहने वाले लोगो का फ़ौरन सुरक्षित स्थानों पर चले जाने का निर्देश दे दिया गया है। इसके अलावा सबको सतर्क रहने के लिये भी कहा गया है।

रेडियो की इस घोषणा के बाद से ही जैसे तिस्ता के ऊपर की शून्यता से तूफ़ानी हवा पाट पर पिल पड़ी थी। जैसे जलस्रोत पाट को तोड़कर, झपट कर आ नहीं पा रहा हो, और इसी से हवा, जल को लेकर ऊपर-ऊपर ही दौड़ आया—एक साथ, एक आकस्मिक हमले के रूप मे। जो कुछ खड़ा था उसे मिट्टी मे मिला देने के लिये। और निश्चय ही मिला भी दिया। काफ़ी कुछ उड़ भी गया। बारिश तो थी ही, पर हवा के जोर से वह मिट्टी पर पड़ नही पा रही थी। मिट्टी के समानांतराल तेज़ी से छूटती जाती।

शुक्रवार की रात तो जैसे-तैसे कट ही गयी। शनिवार की भोर को, यानी बिल्कुल अलस्सुबह जब पो तक नहीं फटी थी, ठीक उसी समय मटमैला आकाश नदी पर झुक आया था और नदी बाँध पर चढ गयी थी। नदी के भीतर उस ऊँचे डाँगर में पानी अब तक नही पहुँचा था, पर कल शाम की तुलना मे रात भर में करीब डेढ गुना बढ गया था। अधड़ इस तरह से चल रहा था कि लगता था कि जहाँ पहाड़ों मे पत्थर खिसकने लगे हैं वहाँ और चट्टान खिसकेंगे। पर उस स्खलन के चलते कहीं किसी पहाड़ पर नयी-नयी झील गुप्त रूप से तैयार हो चुकी थी, अगर वे एक साथ फट जायें तो बाँध क्या, बांध के ऊपर से भी लोगों को हट जाना पड़ेगा--मंडलघाट के स्कूल की तरफ। अगर उन झीलो का पानी एक साथ न निकल कर, एक-एक करके निकले या ज़मीन चीरकर निकले तो यहाँ बाढ़ नहीं आयेगी।

देखते-देखते बाँध के ऊपर कुछ लोगबाग आकर जमा होने लगे थे।

सबसे पहले आया था अब्दुल—इस दो नंबर के बांध पर।

उसकी सजधज देखकर लगता था कि वह सगाई की दावत खाने आया है। आकाश का मेघ, हवा-तूफ़ान या बारिश का ज़ोर या उसके सामने तिस्ता के बढ़ते जल के क्रम-विस्तार से अब्दुल को जैसे कुछ लेना-देना नही। वह साथ में साफ़-सुथरा एक बिछौना लेकर आया था। बिस्तर के साथ में एक टूटी छतरी भी थी। साथ में एक एल्यूमिनियम का मग और एक देगची भी लाया था। वह आकर गीली घास पर बैठ गया था। कहाँ उसे बैठना चाहिये इस बारे में उसे

शायद कुछ देर सोचना भी पड़ा था। उसने एक बार इस दो नंबर के गोल बाँध का चक्कर लगाया था। पूरा चक्कर तो लगा नहीं सकता, उत्तरी दिशा में इतने सारे झाड़-झंखाड़ थे कि अब्दुल को वापस आना होता था। फिर बाँध में बैठने से भी तो नदी की तरफ़ मुँह करके बैठना होता। आखिरकार अब्दुल ने एक छतनार-से घने पेड़ की निचली डाल चुन ली। टाँगने के लिये वह बिस्तर को पहले खोलता था। उस समय बाँध पर जो लोग थे वे नदी की ओर पीठ फेर कर अब्दुल की तरफ़ देखने लगे थे। अब्दुल का बिस्तर दरअसल एक कपास का कंबल था, जो किसी बाढ़ में रिलीफ़ में मिला था। उसके रोयें कई जगह से उड़ चुके थे। उधड़ा हुआ था। कहीं-कहीं से तो फट गया था, पर इस तरह से अब्दुल ने उसे तहा कर लपेटा था कि बाहर से कुछ पता भी नहीं चलता। वह कंबल खोलकर अंदर से एक पटसन की रस्सी निकालता था। रस्सी को निकाल कर पास ही रखता था फिर कंबल को तहाता था। जितना कंबल खोलता था उससे अधिक तहाता था। उन तहों पर दाग बैठ गया था—काफ़ी मोटा दाग। इन दागों को छोड़ और किसी नये तरीक़े से कंबल को तहाया नहीं जा सकता। पर अब्दुल एक बार लंबाई से तहा कर फिर खोल लेता था। पूरे कंबल को दो भाग करके वह उठ खड़ा होता था। कंबल को सामने फैलाता था। कंबल के ऊपर से उसका सिर नज़र आता था। फिर कंबल को झटकता था। फिर उसे धीरे-से नीचे झुकाता था—मिट्टी की ओर। और उसे आहिस्ते-आहिस्ते तहाते हुए झुकता था। उसे मिट्टी पर छुआते हुए और झुकता था, आगे बढ़ता था और पूरे कंबल को मिट्टी पर फैला देता था। फिर जहाँ से शुरू किया था, वहीं लौट आता था। जैसे लंबा तान कर बिछाये गये कंबल का भी सिर-पैर हो। पानी देखने के लिये आयी जो भीड़ उसे देख रही थी, उसमें से किसी ने अब्दुल से कहा, "अब्दुल, अब सो जा, रात में बाढ़ आने पर तो जागना ही होगा।"

अब्दुल ने उसका कोई जवाब नहीं दिया। यहाँ तक कि मुड़कर देखा तक नहीं। वह अबकी बार कंबल के दोनों सिरों को पकड़ कर नीचे झुककर फिर से धीरे-धीरे आगे बढ़ने लगा था। कंबल को नीचे बिछाकर वह मिट्टी पर उकडूँ होकर दोनों हाथों से कंबल को तहाने लगा। फिर दायें से कबल को उठाकर बायीं ओर रख दिया। फिर उठाकर ऊपर से तहाने लगा। फिर दोनों हाथों से कंबल को झाड़ कर दबाया और उठ खड़ा हुआ—कबल को वहीं रखकर। वह एक खाकी फुल पैंट, थोड़ा छोटा, पर काफ़ी ढीली शर्ट अंदर डालकर पहने था। शर्ट के ऊपर एक स्वेटर। जिस तरह रास्ते के नुक्कड़ पर लोग गोलाई में खड़े होकर मदारी का तमाशा देखते हैं, मदारी बीच में होता है या इस तरह के तमाशे के समय माँ या बाप भीड़ की गोलाई के एक प्रांत से दूसरे प्रांत तक पेशादारी निश्चिंतता के साथ चलते जाते हैं, अब्दुल ने भी ठीक उसी तरह से चलकर पटसन

की रस्सी खींच ली थी। उसने तहाये हुए कंबल को वहाँ नहीं लाया, वहाँ से आकर रस्सी को लेकर कंबल के पास गया। उसी से समझा गया कि कंबल खोलना, तह करना और बाँधना—इन कामों से बढ़कर उसकी प्रक्रिया उसके लिये बड़ी थी। फिर उसके चेहरे पर एक मुस्कान खिल ही रही थी। सभी उसे देख रहे थे, इस घटना का वह काफ़ी अभ्यस्त था।

अब्दुल आगे बढ़ आया। कंबल के पास जाकर एक घुटना मोड़ा और दूसरा घुटना ऊपर उठाया। फिर रस्सी को बंडल के नीचे लंबाई में फैला दिया। दोनों ओर से खींचकर रस्सी को सीधा कर दिया। एक बार बंडल को उठाकर फिर उसे रस्सी के बीचोंबीच रख दिया। फिर उठकर दायीं ओर की रस्सी को खींचकर सीधा किया। फिर बायीं ओर की रस्सी को भी खींचकर उसने ठीक की। फिर बंडल के आगे पहले वाली मुद्रा में बैठ कर दोनों सिरों को दोनों हाथों से पकड़ लिया और एक झटके-से कस कर बीच में एक गाँठ डाल दी। घुटने से उस गाँठ पर दबाव डाला। फिर रस्सी की लंबाई की ओर से घुमा कर बंडल को उलट दिया। रस्सी को बंडल के दूसरे तरफ से घुमा कर फिर बंडल को उलट दिया। अबकी बार रस्सी के दोनों सिरों को पहली गाँठ के अंदर से निकाल कर घुसाया और एक गाँठ मार दी। फिर उसके ऊपर एक ऐसा फाँस बनाया जिससे वह बंडल को हाथ या लाठी से झुला कर पकड़ सके। फिर वह उठ खड़ा हुआ। खड़े-खड़े बंडल को देखा। यानी वह जैसे देखने का ही एक समय हो। वह समय बीत जाने पर वह नीचे झुक कर बंडल को उठाया और पेड़ के नीचे फिर से चला आया। एक बार टूटी डाल की जड़ को देखा। उसके बाद रोज़ ही जैसे वह इस पेड़ पर बंडल को झुलाता था, ठीक उसी तरह से बंडल से फाँस को टूटी डाल पर टाँग दिया। बंडल थोड़ा हिला। उसके हिलना बद होने के पहले ही अब्दुल अपने देगची के अंदर मग को घुसा कर पेड़ में, जहाँ से डाल पत्ते फूटने लगे थे, वहाँ घुसा दिया। देगची के सामने ही दो डालों पर अपनी लाठी को टिका कर अब्दुल दोनों हाथ मलने लगा। उसका काम ख़त्म हो चुका था।

103

बाढ़ के मुहाने पर जीपगाड़ी

अब्दुल इस इलाके का परिचित पागल है। पागल भी नहीं है शायद। ऐसे भी उसका कोई पागलपन नहीं है। बातचीत प्रायः करता नहीं। पोशाक-वोशाक भी उसका होमगार्डो जैसा ही है। उसका कारण यह है कि वह अपने नियमित चक्कर में नगर बेरूबाड़ी के बॉर्डर कैंप पर एक बार जाता है, कम-से-कम महीने में एक बार। वहाँ जाने से वह कम-से-कम सात दिन या पंद्रह दिन रहता है। वहाँ जाकर

जैसे उसके लिये काम पहले से ही बँधा-बँधाया है, उसी तरह दुविधाहीन भाव से सब्जी के बागान में काम करने लगता है। कैंप के किचन में खाना खाता है और एक बरामदे में सो रहता है। बरामदे के एक सिरे पर उसका बिस्तर और देगची बँधा रहता है। किसी को आपत्ति नहीं होती। उसके बाद फिर एक दिन कैंप छोड़कर चल देता है। वह भी पहले से पता नहीं चलता। कुएँ पर जाता है, हाथ-मुँह धोता है फिर बरामदे में आकर लाठी के सिरे में बंडल को फँसाता है, और एक रस्सी के फंदे से देगची को भी लाठी के सिरे में फँसा कर चलने लगता है। जैसे सब्ज़ी बागान के काम के लिये ही वह आया था या वह यहाँ रोज़ काम करता है और अभी शाम को घर जा रहा है।

फिर इस तरह के चक्कर मारते-मारते ही मंडलघाट के बाज़ार, घुघुडांगा के हाट में और कादोवाड़ी के हाट में जाता है। पर कभी किसी के घर में या किसी पाड़ा में नहीं जाता। अब्दुल की गंध इतनी जानी-पहचानी है कि रात बिरात उसके कहीं घुसने पर कुत्ते भौंका नहीं करते, पास आते हैं, बस एक बार सूँघ कर चले जाते हैं। जहाँ जाता वहीं उसका खाना जुट जाता। पर अब्दुल कभी किसी से खाना नहीं माँगता। बल्कि जहाँ जाता है वहाँ दिन भर वह इतना काम करता है कि अगर मज़दूरी पकड़ा लेता तो उसकी काफ़ी आय हो जाती। पर बोआई-गोड़ाई हो चाहे धान-कटाई हो अब्दुल कभी किसी के खेत पर काम नहीं करता। ऐसा लगता है कि वह मनुष्यों के साथ रहना तो चाहता है, बहुत से लोगों के साथ, लोगों की भीड़ में, पर किसी एक या दो आदमी के साथ रहना उसे पसंद नहीं। इसी से अब्दुल हाट में, चौपाटी में कैंप में घूमता रहता है—किसी के घर-वर में नहीं जाता है।

अब्दुल आकर बांध के किनारे खड़ा हो गया था। कमर पर हाथ रखकर नदी की ओर देख रहा था। तिस्ता में बाढ़ आयेगी, चर के सभी लोग आकर बाँध पर पनाह लेंगे। यहाँ कैंप लगेगा, तिरपाल टॉगा जायेगा, साधु-संन्यासी, ऑफ़िसर लोग आना-जाना करेंगे—आने वाले कई दिनों में ढेरों कामकाज है यहाँ अब्दुल का। बेर के पेड की डाल पर बिस्तर, देगची और लाठी रखकर वह अब सब काम के लिये तैयार खड़ा था।

एक ओर से आवाज़ उभरी थी और बॉध पर की भीड़ उधर ही भागने लगी थी। बच्चे चिल्लाने लगे थे, "आ गयी, आ गयी जीप गाड़ी आ गयी।" अब्दुल प्रायः अकेला ही खड़ा था। अब्दुल को छोड़कर और खड़ा था इस इलाके का सबसे बड़ा जोतदार महेश्वर राय। और प्रायः बीस-तीसेक मवेशी दो नंबर में खड़े थे। वह गाय-बैलों की खोज-खबर लेने आया था।

जो भीड़ उधर भागी थी वही भीड़ अब चुपचाप चलते हुए लौट आयी थी। मोइनुद्दीन डीलर, गम-बूट पहने, दरोगा जैसे दिखने वाले एक आदमी और

एक आदमी ऑफ़िसर के पीछे-पीछे चलने लगा था। वे तीनों सबसे आगे-आगे चल रहे थे। पीछे की भीड़ में भी शहर से आये और एक-दो आदमी थे। मोइनुद्दीन डीलर लुंगी और कुर्ता पहने था। वह इनमें से सबसे अधिक लंबा था और ऑफ़िसर सबसे नाटा था। अब्दुल जहाँ खड़ा था वे आकर वहीं खड़े हो गये थे। इसका कारण यह हो सकता था कि अब्दुल के अकेले खड़े रहने से शायद ऑफ़िसर को लगा था कि यहीं खड़े होने की जगह है। अब्दुल की ख़ाकी पैंट देखकर उसे शायद यह भी लगा हो कि वह कोई सरकारी काम कर रहा है। इतनी बड़ी भीड़ और ऑफिसरों को देखकर तो अब्दुल को हट जाना चाहिये पर वह हटा नहीं और फिर एक बार देखकर नदी की ओर ताकने लगा—शायद यही उसका पागलपन हो।

मोइनुद्दीन डीलर सबसे ऊपर गर्दन उठाकर और हाथ बढ़ाकर महेश्वर जोतदार को बुलाया, "एई महेश्वर बाबू ! यहाँ आइये।" हवा में मोइनुद्दीन की आवाज़ सुनायी नहीं दी, पर महेश्वर उसके आह्वान को समझ गया। वह आगे बढ़ आया था। भीड़ ने उसके लिये जगह छोड़ दी। वह ऑफिसर के निकट आ खड़ा हुआ।

"डीसी साहब आये हैं। कहिये, यहां का क्या हाल-चाल है ?"

महेश्वर ने नमस्कार किया। फिर दोनों हाथ दोनों ओर फैलाकर बोला, "हाल-चाल तो सभी ने देखा है।" जैसे कि महेश्वर के दोनों ही हाथ में बाढ़ रही हो।

"इस चर में जितने लोग थे, सब बाँध पर आ गये थे न ?" डिप्टी कमिश्नर ने सवाल किया।

"और कौन आयेगा ? मवेशी अब यहाँ पहुंच गये हैं।" महेश्वर ने अपनी एक ही मुद्रा में कहा।

"मतलब ? रेडियो पर इतनी बार एनाउसमेंट करने के बावजूद भी आप लोगों ने लोगों को हटाया नहीं ? इसके बाद कैज्युएलटी हो तो उसकी ज़िम्मेवारी कौन लेगा ? यहाँ पंचायत का कोई आदमी नहीं है ?" डिप्टी कमिश्नर ने मुड़कर भीड़ से पूछा।

"पंचायत और क्या करेगी, कहिये। यह तो मास्टर रहे, मेम्बर।" महेश्वर ने कहा।

"कहाँ ? कौन हैं मेम्बर ?" डीसी ने पूछा।

"मास्टर, मास्टर" एक शोर उठा। डीसी ने मुड़कर देखा। लुंगी और बनियान पहने एक युवक नमस्कार करते हुए आगे बढ़ आया था।

"क्यों ? आप लोगों ने रेडियो पर इतना एनाउंसमेंट सुनकर भी चर के लोगों को बाँध पर लाने का कोई बंदोबस्त नहीं किये ?" डीसी थोड़ा चिल्लाकर

बोले। पर हवा का वेग इतना अधिक था कि कुछ समझ में नहीं आया कि वे गुस्से से ज़ोर से बोले हैं या फिर इस हवा के चलते उन्हें जोर से बोलना पड़ा है।

मास्टर ने नरमी के साथ कहा, "सर, हमने सोचा था कि पानी उतर जायेगा, इससे कुछ कर नहीं पाये।"

डीसी ने अपने हिसाब से समझ लिया कि यह मेम्बर पंचायत का सदस्य अवश्य है, पर यहां का नेता नहीं है। नेता होना तो जीप गाड़ी में उनके साथ आता। पर पंचायत के इजाजत बिना कुछ करना उचित नहीं होगा। अबकी बार कमिश्नर ने नदी की ओर देखते हुए नीची आवाज में बुलाया, "सान्याल।"

मोइनुद्दीन डीलर ने समझा कि कमिश्नर उससे कुछ कहना चाहते हैं। वह कमिश्नर के नजदीक मुंह ले जाकर पूछा, "आपने मुझसे कुछ कहा सर?"

कमिश्नर ने पीछे की ओर मुड़कर कहा, "नहीं, हमारे डिस्ट्रीक्ट पंचायत ऑफिसर मिस्टर सान्याल।"

बात खत्म होने से पहले ही मिस्टर सान्याल पीछे से आगे बढ़कर बोले, "हाँ, सर।"

"यहाँ ग्रामलेवल पंचायत मेम्बरों से मिले पंचायत आफिस में मिलाए। मैं आ रहा हूं। और उसके पहले नाव भेजिये। अभी।" आखिरी बात कमिश्नर ने मोबाइल सिविल इमरजेंसी ऑफिसर से कहा था।

मिस्टर सान्याल और इमरजेंसी ऑफिसर बाँध छोड़कर दूसरी ओर चले गये। उनके साथ भीड़ का कुछ भाग भी चला गया। बाकी भीड़ के साथ कमिश्नर खड़े थे। उस भीड़ के भीतर भी भीड़ से बाहर खड़ा था अब्दुल। वह पहले जहां खड़ा था वहां से एक कदम भी नहीं हटा था। उसके आसपास, प्रायः शरीर से शरीर सटाये, इस भीड़ में जो थे, सब डीसी की ओर ताक रहे थे। डीसी के पीछे जो लोग थे, उनका मुंह नदी की ओर था, पर वे डीसी की ओर ही देख रहे थे। अब्दुल जहां खड़ा था, वहाँ से उसे डीसी की ओर देखना चाहिये था।

104

बाढ़ ऐलान हुआ कि नहीं

अभी अब्दुल के खड़ा होने का एक मतलब जरूर समझ आया था—कारण, डिप्टी कमिश्नर भी नदी की ओर ताक रहे थे। जल का रंग मटमैला से भी मैला, स्रोत के वेग से उस विराट विस्तार पर कहीं एक भी शिकन तक नहीं थी। मीलों तक विस्तृत वह जल धातु के चादर-सा पड़ा था—स्रोत का भ्रम जगाते हुए। वह

उदास फीके आकाश से नदी और डॉगर में फुकार रहा था। समझ में आता था, कहीं कुछ घट गया है या अभी घटने वाला है।

"तो फिर आप चलिये सर, वहाँ बैठकर सब बातचीत हो जाये।" मोइनुद्दीन डीलर ने अपने मुँह को डिप्टी कमिश्नर के कान के पास ले जाकर कहा।

"वहाँ जब चलने को होगा चलेंगे। आप एक काम करिये—क्या यहाँ चीउड़ा और गुड़ मिल सकता है ?"

"यहाँ नहीं मिलेगा सर, तो घुघुडांगा को रिक्शा भेजूं ?"

"हाँ, अभी भेज दीजिये।"

"हाँ सर !" कहते हुए मोइनदुद्दीन डीलर के भीड़ से निकल कर जाते-जाते डिप्टी कमिश्नर ने कहा, "सुनिये, अभी रिक्शा भाड़ा को लेकर मोल-तोल मत कीजियेगा, जो चाहे वही देकर भेज दीजिये।"

मोइनुद्दीन निकलते-निकलते फिर से मुड़कर खड़ा हो गया, पूछा, "सर, तो क्या कैंप आज से ही शुरू हो जायेगा ?"

"नहीं-नहीं, कैंप नहीं। पर लोगबाग तो घर से आयेंगे, फिर सब तो पका-वका नहीं सकते। उनके लिये स्टाक कीजिये। वेदर फोरकास्ट खराब है। पहाड़ पर भयानक बारिश हो रही है। पानी और बढेगा।"

"और बढ़ेगा सर ?" महेश्वर के सवाल में जरा कोई उद्वेग नहीं था।

"बढ़ेगा नहीं ? पहाड़ पर तो लैंड स्लाइड हो रहा है। आप लोगों के पास तो आजकल रेडियो भी है। तीन दिनों से सुन नहीं रहे ?"

"सुन रहे हैं सर।" महेश्वर ने स्वीकार किया।

"सुना है तो। फिर लोगों को हटाये क्यों नहीं ?"

तिनके की तरह दक्षिण की ओर बहा जा रहा था—पर पांच आदमी बाँस लिये नाव से उल्टी दिशा में ठेल रहे थे। अब्दुल अपने जूते-कपड़े-स्वेटर समेत पानी में छलाँग लगाकर बहाव से पल भर में ही नाव के पास पहुँच गया।

डिप्टी कमिश्नर पंचायत की मीटिंग के लिये पीछे लौट पड़े। कम-से-कम अब तो वे कह सकते थे—"फ़र्स्ट रेसक्यू बोट रवाना कर चुके हैं।"

कमिश्नर के पीछे-पीछे इमरजेंसी ऑफिसर भी चलते-चलते बाहर आ गये। अब तक उनके साथ जो भीड़ थी, वह खिसक गयी। किसी-किसी को डिप्टी-कमिश्नर ने काम पर रवाना कर दिया था और बाक़ी के सब नदी के पाट पर खड़े होकर नाव को देख रहे थे।

दो दुकानों की फाँक से निकल कर वे समतल में आ गये थे। उनकी जीप उल्टी दिशा में खड़ी थी। उन्हें देखकर ड्राइवर थोड़ा आगे बढ़ आया। पर ड्राइवर के डिप्टी कमिश्नर के पास पहुँचने के ऐन पहले दोनों ओर की दुकानों से बहुत-से लोग बाहर निकल आये थे। आसामी सिल्क चादर ओढ़े, लुंगी पहने एक आदमी

ने आकर डिप्टी कमिश्नर को नमस्कार करते हुए कहा, "आइये सर, थोड़ा-सा बैठकर जाइयेगा।"

हालाँकि डिप्टी कमिश्नर बोले, "नहीं, अब और क्या बैठना ? ज़रा पंचायत में चलकर देखना है..." पर दोनों हाथ सिर के पीछे ले जाकर खड़े हो गये, जैसे कुछ बात करना चाहते हों।

"आप खुद चले आये सर ?" वही सिल्क चादर वाले सज्जन ने फिर से पूछा।

"आये बिना और उपाय क्या था ?" डिप्टी कमिश्नर हँसकर बोले, "हमें पता है कि आप लोगों को जितनी भी नोटिस दी जाये, रेडियो पर जितना एनाउंस किया जाये, आप लोग घर छोड़कर डाँगर पर आयेंगे नहीं। इतना सारा फ़्लड काटा है आप लोगों के साथ—और इतना भी नहीं जानता क्या ?"

डिप्टी कमिश्नर के साथ जितने भी थे सब हँस पड़े। एक बच्चा एक कप-डिश लेकर खड़ा था। वह समझ नहीं पाया कि किसे देना है। एक आदमी ने उसके हाथ से कप-डिश लेकर कमिश्नर की ओर बढ़ा दिया। कमिश्नर कप हाथ में लेकर चुस्की लेने लगे। इस बीच कोई बोला, "सर, अपने घर-बाड़ी को छोड़कर आने का मन नहीं करता, क्या करें ? मन तो कहता है, आज रात भर देख लें, दिन भर देख लें। रेडियो की बात पर तो हर समय विश्वास नहीं किया जा सकता, इसी से सर...।"

"सर !" सिविल मोबाइल इमरजेंसी का ऑफिसर आकर पीछे से बोला, "यहाँ तो केवल एक ही नाव मिल पाया सर।"

"एक नाव से क्या होगा ?" डिप्टी कमिश्नर ने सवाल किया। फिर बोले, "क्या यहाँ और भी नाव हैं ? अगर हैं तो उन्हें ले आना बेहतर है। ज़रूरत के समय फिर कहाँ से मिलेगा ?"

ऑफ़िसर महेश्वर को दिखाकर बोला, "उनका एक नाव है सर, पर वो देंगे नहीं।"

महेश्वर चुपचाप खड़ा था। डिप्टी कमिश्नर एक बार महेश्वर की ओर और एक बार ऑफिसर की ओर ताक कर बोले, "वह तो तभी से यहाँ पर खड़े हैं। फ़िर नाव देने से मना कब किया ?"

"सर, नाव तो राइस मिल के सामने है। वहाँ से ही इधर आयेगा। उनके आदमी भी हैं। उन्होंने कहा कि—उन्होंने किसी को भी नाव देने से मना कर दिया है।" डिप्टी कमिश्नर समझ गये, फिर बोले—"क्यों ? आप नाव नहीं देंगे क्या ?"

"नहीं सर।"

डिप्टी कमिश्नर अवाक् रह गये। पर अनुभव से समझ गये कि क्रोध से

काम नहीं चलेगा बल्कि बिगड़ जायेगा। अगर इनकी नाव होगी तो पंचायत के लोग नाव ले ही लेंगे।

"अरे क्या कह रहे हो, लोगों का रेसक्यू नही करना है ?"

"हमारे लोगो, गाय-बैलों का भी तो रेसक्यू लगेगा, सर ! आप मिलीटरी बुला लीजिये सर।"

डिप्टी कमिश्नर ने हँसते हुए कहा, 'अच्छा, फिर एक काम करो। जो नाव मिला है, उसे फ़ौरन घर की ओर रवाना कर दो। फिर उनका तो है ही। यहाँ से किसी को साथ में ले लो।" ऑफ़िसर चला गया।

अब्दुल बाँध से उतर कर पानी के किनारे चला गया—"वह नाव मे जायेगा।" उसकी ओर अँगुली से इशारा करते हुए डिप्टी कमिश्नर ने पूछा, "वह जायेगा क्या ?" जो भीड़ वहाँ खडी थी उसमें से समवेत हँसी फूट पड़ी। महेश्वर ने भी हँसकर कहा, "पागल है।"

"तो फिर उसे जाने क्यो दे रहे है ?"

"नहीं, नही, वह काफ़ी अच्छी तरह से मदद कर सकता है, सर !"

उन्हें फिर से प्रतीक्षा करनी पड़ी। बस, काफी समय बाद देखा गया कि एक नाव उनके बायीं ओर से निकलकर एक किनारे लग गयी।

"वह तो आप लोगों ने देख ही लिया, उसके बाद फिर पानी मे वह जाय तो सब सरकार का दोष होगा। आप लोगो की पंचायत तो कुछ भी नही करती। पंचायत ऑफ़िस किधर है ?"

"यह जो दिख रहा है सर, यह सामने" एक आदमी ने थोड़ा हट कर कमिश्नर के लिये रास्ता कर दिया।

डिप्टी कमिश्नर के चाय की आखिरी चुस्की लेकर कप रखने को तैयार होते ही किसी ने हाथ बढ़ाकर कप ले लिया।

"देखें थोड़ा पंचायत में जाकर"—कहते हुए डिप्टी कमिश्नर आगे बढ़ गये।

105

बाढ़ के आगे पंचायत

डिप्टी कमिश्नर के कुछ क़दम चलते ही पीछे से उनका ड्राइवर दौड़ा-दौड़ा आया, "सर, गाडी ले आऊँ ?"

कमिश्नर खड़े हो गये। ड्राइवर की ओर घूमकर बोले, "नहीं, नहीं, तुम यहीं रुको। चाय पी ?"

ड्राइवर ने खड़े होकर गर्दन हिलायी। कमिश्नर पैदल चलते-चलते दुकान, घर पार कर गये। बायीं ओर फैले रेत के मैदान की ओर अंगुली से इशारा करके

बोले, 'यह सब बेहतर धान का खेत रहा था। अडसठ की बाढ में सब नष्ट हो गया। इधर धान काफी अच्छा होता था।"

जो साथ मे आ रहे थे, उनमे से एक ने कहा "आप सर, तब थे यहाँ ?"

चलते चलते थोडा-सा मुडकर कमिश्नर न कहा, "तब मे प्रोबेशन पर था और उसी साल फ्लड आया था। जलपाईगुडी आने ही लगा था फ्लड होगा। आप लोग तब थे यहाँ ?"

इस सवाल का कोइ एक जवाब हो नही सकता -कोइ कोई था पर तब काफी छोटा था। पर सबको कुछ-न कुछ थोडा बहुत पता था। सब मिलकर जवाब देने को उद्यत हुए—डिप्टी कमिश्नर एक बार बाये, एक बार दाये गर्दन घुमाकर जैसे सबकी बात सुनना चाहते थे। आखिर तक उनके निकट जा ?। वही बात जारी रख सका, "अडसठ की बाढ के बाद तो सर मडलघाट का चेहरा ही बदल गया। कहा वह पहाड का हाट कहाँ वह सरकारपाडा ?"

पचायत ऑफिस आ गया था। डिप्टी कमिश्नर का "सर, हाँ पर सर" कहता हुआ निकट वाला आदमी दौडकर पचायत ऑफिस के अदर चला गया। पर उसके घुसने से पहले ही पचायत ऑफिस से बहुत से लोग बाहर निकल आये थे बरामदे मे। जो उनके साथ आये थे उनकी ओर देख, गर्दन हिलाकर डिप्टी कमिश्नर बोले, "ठीक है। अब जरा इन लोगो के साथ बैठू। और आप सब भी सतर्क रहे। जलपाईगुडी की बाढ सुनते ही भय लगता है।' सब थोडा हँस पडे। और कमिश्नर पचायत ऑफिस के बरामदे मे चढ गये।

क्यो ? आप लोग कितने मेम्बर है यहा " पूछते हुए बरामदे से ऑफिस के अदर दाखिल हो गये।

अंदर वह खडे हो गये। खडे खडे ऑफिस के चारो ओर निहारने लगे। दरवाजे के एन सामने बास के फ्रेम मे लेनिन की एक रगीन तस्वीर टॅगी थी। दायी ओर सेक्रेटेरियट टेबिल। पास ही स्टील की आलमारी। टेबिल के पीछे की दीवार पर एक पोस्टर 'वामफ्रट सरकार जिदाबाद' लिखा हुआ। डिप्टी कमिश्नर जहाँ खडे थे उसके बाया ओर रवीन्द्रनाथ का एक रगीन फोटो—सभव है किसी केलेडर से काटा हुआ। उस तस्वीर पर एक सूखी माला लटक रही है।

"सर, बैठिये सर !" सेक्रेटेरियट टेबिल के उल्टी तरफ के चेयर को थोडा आगे बढा दिया किसी ने।

कुर्सी पर बैठते बैठते डिप्टी कमिश्नर ने पूछा, 'क्यो, आपके कौन-कौन मेम्बर हैं यहाँ ?'

दरवाजे के पास की भीड मे से एक आदमी आगे बढ आया, "सर, हममे से बस कुछ लोग ही है यहाँ। और दो मेम्बरो के घर पर साइकिल से आदमी बुलाने के लिये भेजे गये है। पर वे यहा है या टाउन गये हुए हैं, पता नही।"

मेम्बर बात नहीं ख़त्म कर पाया।

इस बीच और दो आदमी आगे बढ़ आये थे। डिप्टी कमिश्नर ने कहा, "आप लोग बैठ जाइये।"

सेक्रेटरियट टेबिल के सामने वाली चेयर के बायी ओर की दीवार से लगा एक बेंच पड़ा था। मेम्बर लोग उस बेंच पर बैठ गये। निकट वाले घर से एक आदमी ने एक कुर्सी लाकर रख दी, यह देखकर कमिश्नर ने पूछा, "उधर कोई कमरा भी है क्या ?"

"हाँ, सर एक छोटा-सा कमरा है। एक कमरा है न। भीड़ हो जाती है तो ऑफ़िस के कामकाज में विघ्न पड़ता है। सालो का यहीं काम चलता है।"

डिप्टी कमिश्नर कमरे की दीवारो पर फिर एक बार नजर घुमाकर बोले, "पचायत ऑफिसों में आजकल नये घरों का गध पाया जाता है। यही न ?" सब मुस्करा उठे। डिप्टी कमिश्नर फिर से बोले, "घर-बार मैला-वैला होने न दे। और काग़ज़ात भी जमा होने न दे। जो वाहियात, बेकार चीजे है उस फौरन नष्ट कर दें। एक बार अगर मैला, कूड़ा जमना शुरू हो गया, तो फिर आप उसे कभी साफ नही कर पायेग। हमारा कचहरी देखा है न ? अभी नक हाइट वाशिग नही की गयी है। हा नो करिहेंगे। आपके यहाँ ता देख रह है कि आप लोगों ने किसी भी वार्निंग का परवाह नही किया है। इसके बाद अगर कोइ एक बडा हादसा हो जाये तो फिर कैफियत कौन देगा ?"

"सर, शायद इसी विषय पर बातचीत करने के लिय आज आपके पास कुछ मेम्बर गये है।" एक मेम्बर, न कहा।

"इस समय अगर आप लोग हमारे पास दौडे तो फिर पचायत बनाने का क्या फायदा हुआ ? आपके इलाके मे बाढ़ हो तो आप लोगो को ही व्यवस्था करनी पड़ेगी।"

"नही सर, हम लोग तो नही जानते कि कितना पेसा खर्च किया जा सकता है, कितना खर्च नही किया जा सकता।"

"अरे, पहले ही फंड की बात कहाँ से आती है ? वह सब तो बाद मे पचायत ऑफिसर आकर आप लोगों के साथ डिस्कस करेगा। उससे पहले तो बाँध के उस पार, नदी की ओर जो लोग है, उन्हे तो ले आना पडेगा। वह तो आप लोग देख ही रहे हैं कि वे सोचते है फ्लड नही आयेगा। आख़िर मे आधी रात को जब लोगों को हटाना पड़ेगा, तब क्या करोगे ? बाँध पर हमारे इमरजेंसी ऑफिसर ने एक सज्जन की नाव लेनी चाही, उन्होंने हमसे सीधा कह दिया कि नाव अभी उनके काम में लगेगा, वह नही दे सकते।"

"कौन है सर ?"

"वह मैं कैसे कह सकता हूँ। देखिये, हमारे सिविल इमरजेंसी ऑफिसर

बाहर हैं या नहीं ?"

एक मेम्बर उठकर दरवाज़े तक गया। दरवाज़े पर से ही पुकारा, "यहाँ आइये, आपको सर बुला रहे हैं।"

"इमरजेंसी ऑफिसर के आते ही डिप्टी कमिश्नर ने कहा, "आप अब तक यहाँ खड़े हैं ? वहाँ जाइये, देखिये नाव ठीक तरह से फ़ंक्शन कर रही है कि नहीं ?"

"हाँ सर !" कहते हुए वह सज्जन चले गये।

"महेश्वर जोतदार की बात कह रहे हैं, सर ? उन्होंने नाव नहीं दिया ?"

"कौन नहीं दिया उसका नाम मुझे पता नहीं। मैंने एक रेसक्यू नाव चालू कर दिया है। अब आप लोग ही देखिये कि किस-किस प्वाइंट पर लोग हो सकते हैं। अगर आवश्यक हुआ तो और एक नाव साथ ले लें। कम-से-कम आज शाम तक नदी की तरफ कोई नहीं होना चाहिये। बस यही बात कहने के लिये आप से भेंट करने चला आया था। आप लोगों से मिलना चाहा था।" डिप्टी कमिश्नर कुर्सी से उठ खड़े हुए। दरवाज़े की ओर बढ़ते-बढ़ते खड़ा होकर फिर से बोले, "आप लोगों का कोई लीडर नहीं है यहाँ, इसकी वज़ह से देर न लगायें। वे आ जायें तो कहियेगा कि मैंने आप लोगों से कहा है। हाँ, और घुघुडांगा से चिउड़ा-गुड़ मंगाया गया है, वह आ जाने पर जो करना हो करियेगा।" डिप्टी कमिश्नर बरामदे में आकर खड़े हो गये। वहां काफ़ी लोग इस समय खड़े थे, कुछ बैठे हुए भी थे। रास्ते की ओर देखकर डिप्टी कमिश्नर ने कहा, "गाड़ी को थोड़ा आगे के लिये कह दीजिये न ।"

106

बाढ़ के कार्यकारण का वह पल

ऑफ़िसरों के बांध को ख़ाली करके चले जाने के बाद जानी हुई बातें फिर से एक बार जान ली गयीं। नाव लेकर हटाने जैसी और कुछ विशेष बात दो नंबर में नहीं थी। औरतें और बच्चे लोग तो पहुंच ही गये थे। समतल में घूम-फिर रहे थे। पुरुष लोग भी आ-जा रहे थे। अब धीरेन साहा की नाव एक बार जा रही थी, जिससे किसी-किसी घर से कुछ सामान वग़ैरह लाया जा सके। पर उसके बाद नाव को कहीं लिवा ले गया था, शायद बांध-बूँध कर तैयार रखने के लिये सिविल इमरजेंसी ऑफ़िसर की अनुमति से। जब तक पानी रहेगा, लोगों को आना-जाना करना पड़ेगा, तब तक नाव को सरकार की ओर से भाड़ा मिलेगा। ऑफ़िसर भाड़े की नाव के लिए पंचायत को तो ख़ारिज नहीं कर सकता।

पर इन ऑफ़िसरों का आना, सिविल इमरजेंसी की लाल गाड़ी, नाव भाड़े

पर लेना, घुघुडांगा से चिउड़ा और गुड़ लाने के लिये रिक्शा भेजना—इन सबके चलते जैसे बाढ़ की घोषणा हो गयी। इन कई दिनों की बारिश-तूफ़ान से घुटने से कमर तक के पानी के बढ़ जाने पर भी उतनी बाढ़ नहीं थी। अब तो यह सरकारी बाढ़ साबित हो चुकी थी। फिर यह बाढ़ अगर और बढ़ती तो फिर हैलीकॉप्टर और मिलीटरी की बात भी आती। इससे पहले बाढ़ में किसी ने कभी हैलीकॉप्टर नहीं देखा था। मिलीटरी भी नहीं देखी। पर आमतौर पर यह एक तयशुदा बात थी—इन दोनों को लेकर बाढ़ की एक और अवस्था को समझा जाता था।

ऑफ़िसरों के आने-जाने से नदी और आकाश का चेहरा जैसे और साफ हो उठा था। नदी के किसी पार में तूफ़ान का लपकते आना देखा नहीं गया, इतने प्रबल तूफ़ान से आकाश के तमाम मेघ नष्ट-भ्रष्ट हो जाने चाहिये थे। पर जैसे मेघों से न बना हो—वैसे ही था यह आकाश। और आकाश से उतर कर यह तूफ़ान इस बाँध पर खड़े लोगों के शरीर को नोंचे जा रहा था।

तूफ़ान के विपरीत दिशा में बांध पर अकेला खड़ा महेश्वर तानदार चीख उठा—"अरे ओ भादई, यहाँ गाय-बेलों को ले आ रे।" जबकि उसे पता नहीं था कि भादई कहाँ है।

महेश्वर ने एसी घोषणा की थी—यह बात सच है। पर विपरीत हवा में यह बातें भादई की तरफ़ न जाकर पश्चिम की ओर उड़ती चली गयी थीं—यह बात भी सच है। उसी समय भादई, कांदुरा और कानकट्टू बांध के ढलान से होते हुए पानी में उतर गये थे—यह घटना भी सच है। इन तीनों के बीच कार्य-कारण का कोई संबंध नहीं भी हो सकता है और हो भी सकता है।

अब तो यहाँ रिलीफ कैंप प्रायः हो ही चुका था। चिउडा आ रहा था, मवेशियों का खाना भी ज़रूर आयेगा, तो मवेशियों को ले आना ही बेहतर है। या फिर शनिवार की इस दोपहर की बेला, महेश्वर, भादई-कांदुरा-कानकट्टू ने एक साथ ही समझ लिया था कि यह समय तो आत्मरक्षा का आख़िरी समय है, जैसे कि उन्होंने उस अदृश्य पहाड़ की तमाम अज्ञात नयी झीलों के फटने का आसार देख लिया था, पानी के रंग में जैसे उन्हें अचानक मृत्यु दिखायी दे गयी हो अथवा अंतर्दृष्टि नदी पार से उठते तूफ़ान की आवाज़ में उन्हें विद्वेष की ध्वनि सुनायी पड़ गयी हो। ऑफ़िसरों के आने से लेकर भादई आदि के पानी में उतरने के भीतर शायद कोई कार्य-कारण संपर्क न था। कितने ऊल-जलूल संबंधों को हम कार्य-कारण समझने की ग़लती कर बैठते हैं। अथवा कितने कार्य-कारण को हम ऊल-जलूल समझ बैठते हैं।

भादई, कांदुरा और कानकट्टू पानी में उतर गये थे। जल की बाधा को छोड़कर उनके चलने में कोई अनिश्चयता नहीं थी। पैर, अभ्यास के मुताबिक

पैर तले की धरती को पहचान लेता था। कही ऊँची, कहीं नीची, कहीं किसी खड्ड के भीतर अचानक कमर तक डूब जाते, फिर उनका घुटना नज़र आ जाता। वे तीनों एक ही जगह पर उतरे थे—पर अब तीन अलग-अलग दिशाओं में बँट गये थे। चलते-चलते। भीतर-भीतर के ऊँचे टापू में मवेशी इधर-उधर बँधे हुए थे। उन सब जगहों से उनका लंबा 'हंबा' रव कोरस में तरता आ रहा था। जैसे इन तीनों के आने का पता उन्हें चल गया था। उस कोरस के रुक जाने के बाद फिर कोई अकेली गाय की आवाज मग के दब स्वर के मानिंद नदी के पार की ओर चली जाती थी। बाढ़ में बहने वाले मवेशी समझ चुके थे कि अब उन्हें वहा से हटाया जायेगा। वे रस्सी में सींग खुजला कर धरती को पैर से खुराने लग जाते थे।

गुच्छे भर पटसन की रस्सियाँ गले में लपेट कर भादई दुबारा लौट पड़ा। जल के भीतर भादई जैसे उतना हट्टा-कट्टा दिखायी नहीं देता था। सिर्फ उसके मोटे शरीर का कंधा और हाथ की पेशियाँ फूल-फूल उठती थीं। पानी काटने के लिये तो भादई को अपने दोनों हाथ चलाने पड रहे थे। भादई कैसे और किधर तरता है—यह सब तो समझ में नहीं आता था। पानी में एक बार उधर जाना, एक बार इधर आना, जैसे वह पानी में लागर चला रहा हो।

बांध के नीचे आकर भादई ने जैसे महेश्वर जोतदार का ही हुक्म चलाया, 'बास फेंको, बांस।'

महेश्वर ने बास के बोझा से एक बास निकालकर बाध की ढलान से उतार कर जल के किनारे भादई की ओर छोड़ दिया। उसके पानी में गिरते ही भादई फिर से चीखा, "अरे और दो, और।"

महेश्वर को फिर से उठना पड़ा। और एक बांस लेकर वह नीचे उतर आया। पर बांस जल के किनारे तक नहीं पहुँचा। उसने वहीं से छोड दिया। पानी में गिरने से भादई उठा लेगा। पर बॉस तो कांटे के पौधों में इस तरह से फँस गया कि महेश्वर को और थोड़ा-सा नीचे उतरकर पाव से ठेल कर उसे नीचे गिराना पड़ा था।

उस बॉस को पकड़ने के लिये भादई को काफी आगे बढ़ना पड़ा था। उसकी कमर से पानी धीरे-धीरे बह जाता था, और बांध को एकदम क़रीब आकर भादई महेश्वर की ओर देखकर चिल्लाया, "क्या एक-एक तो करके बॉस दे रहे हो, फेंकों और बांस फेंकों।" जल के भीतर से भादई ने एक हाथ बढ़ा दिया। भादई हवा के रुख़ की ओर पीठ करके खड़ा था, इसी से उसकी बातें हवा के ज़ोर से आकर बांध से ज़ोर से टकराती। महेश्वर ने इस भाव से अपने कपड़े घुटने के ऊपर उठाकर बाँधा और बाँध की ओर उठाया कि लगता था भादई का हुकुम ख़ारिज़ करना फ़िलहाल उसके लिये संभव नहीं था।

महेश्वर जब एक-दो बार बाँध से दूर से अपनी नज़र घुमाता था और किसी को तलाशता था, जो नीचे जाकर भादई के पास कुछ बाँस पहुँचा सके। तभी नीचे, पानी के काफ़ी नीचे से कांदुरा ने पुकारा, "अरे ओ भादई—" भादई ने बाँध के नीचे पानी में जाँघ तक डूबे अचानक गर्दन घुमाकर जवाब दिया, "हे-ए-ए-ए।"

"छोड़ूँ कि न छोड़ूँ ?"

"अरे मत छोड़, मत छोड़।"

भादई की 'मत छोड़' यह आवाज़ ख़त्म हो जाने के बाद भी इतनी ही तीव्र ध्वनि उठी वह शायद प्रतिध्वनि ही थी। पर इतनी विपरीत हवा में गूज नहीं हुआ करती। तो फिर ऐसा हो सकता है कि कांदुरा ने बात को और थोड़ी दूर खड़े कानकट्टू के पास पहुँचा दिया हो–"अभी मवेशियों को छोड़ो मत।"

बाढ़ जब आती है, तब उसका आना दिखायी नहीं देता। आती है तो पहलेवाले पानी के साथ या स्रोत के साथ मिलकर आती है। पानी सिर्फ़ उफनता हुआ ऊपर को उभर आता है। कोई आवाज़ नहीं, कोई नग्ग नहीं। पाताल का जल जैसे उबल पड़ता है। पर तूफ़ान तो वैसे चुपचाप, बेआवाज़ नहीं आता। एक तो अभी तिस्ता के इस पार-उस पार नज़र नहीं आता था सचमुच जगमगाते धूप के दिन में भी नज़र नहीं आता था। पानी या रेत की जगमगाहट में नज़र रुक जाती थी। अभी तो और भी नज़र नहीं आता--स्लेटी रंग का आकाश एकबारगी नदी के ऊपर झुककर बीचों बीच जैसे एक दीवार खड़ी हो गयी हो। और उस अदृश्य दीवार के पीछे से जैसे हवा तिस्ता के इतने बड़े विस्तार को पार कर जाती थी--चुपचाप ! अथवा या फिर पानी का जो शब्द तब अलग से पहचाना नहीं जाता था, उस शब्द के साथ मिलकर आत्मगोपन करता था। उसके बाद बाँध के ऊपर तमाम शक्ति के साथ हमला कर बैठती थी।

पर अब भादई-कांदुरा कानकट्टू जहाँ पर थे, नदी का वह सूखा गर्त, असल में, वृहत्तर तिस्ता की छाती से भी नीचा था। वहाँ यह तूफ़ान नहीं था, यह आवाज़ नहीं थी। वहाँ पानी की आवाज़ मिट्टी के भीतर से उठकर आ रही थी, फिर इस पानी के ऊपर फैलती जा रही थी। पर हवा के साथ मिल नहीं रही थी।

महेश्वर उस तूफ़ान से तितर-बितर हो गया था। वह किसी को देख नहीं पाया। बाँध पर कोई नहीं था, सब समतल में चले गये थे। अथवा इस तूफान से सर के बाल, कपड़े-लत्ते—सब कुछ इस तरह से बिखर गये थे कि एक बार आँखें घुमाकर पहचाना नहीं जाता था। सिर के ऊपर हवा और पैरों तले पानी न होता तो महेश्वर जोतदार को एकबारगी आँख उठाकर हुकुम देने के लिये आदमी की कमी न होती। पर नीचे पानी में भादई हाथ बढ़ाये खड़ा था बाँस के लिये, कि मवेशियों को ऊपर लाना है, उनमें महेश्वर के मवेशियों की तादाद

अधिक थी। फ़सल का भाग पाने के लिये इन्हें दिया था। फसल का भाग मिल जाने से ज़मीन का भाग क़ायम होता।

पर महेश्वर फ़िलहाल किसी को नहीं खोज पाया, जिसके हाथ से बाँध पर से बाँस नीचे भादई के निकट पहुँचा दे। भादई हाथ बढ़ाये खड़ा था। आख़िरकार उसे दोनों हाथ में दो बांस लेकर बढ़ना पड़ता था। बाँध के किनारे आकर ढलान में छोड़ देता था। कहाँ गिरा देखे बगैर ही लौट आता था। और दो बाँस लाकर फिर छोड देता था। फिर वापस जाता था बाँस लेने, बगैर देखे कि कहाँ गिरा।

महेश्वर को जब समझ में आया कि अब उसे ही हाथ से बाँस लेकर भादई के हाथ में देना है, तो उसने तभी तय कर लिया कि एक एक करके बाँस देने के बदले सब बाँस नीचे डाल देगा। फिर पैर से उन्हें खिसका देगा। पर बाँध के ऊपर से गम बूट और खाकी का मोबाइल सिविल इमरजेंसी चीखकर हाथ उठाया। हवा में आवाज़ तो सुनायी नहीं पड़ती, सिर्फ हाथ उठाया भर ही दिखायी देता था। महेश्वर खड़ा हो गया। फिर दो कदम बढ़कर बाँध के एकदम सिरे पर जो बाँस पड़ा था, उसे पाँव से ढलान में गिरा दिया। फिर देखा कि एक भी बाँस पानी में नहीं गिरा है।

पानी के अंदर से भादई चिल्लाया, 'अरे, क्या कर रहे हो ? जल्दी-जल्दी बाँस क्यों नहीं देते ? जल्दी फेंको।'

आख़िरकार महेश्वर को ढलान से होकर उतरना पड़ा पानी की ओर। उतरते हुए फँसे बाँस को पैर से ठेलता जाता था। बाँस जैसे मिट्टी में नहीं, पानी में थे, उसी तरह से रुककर काटे जा रहे थे। महेश्वर को एक बार दायें, एक बार बायें जाकर बाँसों को ठेलना पड़ता था। शायद, महेश्वर मन-ही-मन कुछ क्रोधित सा हो उठा था। वह बाँसों को जोर-ज़ोर से लतियाता जाता था। और इससे एक-दो बाँस भादई के हाथ की पहुँच तक पहुँच गये थे। भादई दो लंबे बाँसों को अपने सामने बहाकर खुद उनके पीछे तैरने लगा था।

ठीक उसी समय मोबाइल इमरजेंसी बाँध से चिल्लाया, "अरे, आप यह क्या कर रहे हैं ? बांस की हमें ज़रूरत होगी- काऊशेड बनाने के लिये।"

महेश्वर बाँध के ढलान से सिर ऊपर उठाकर चीख़ा, "कुछ कह रहा है ?"

पर शायद सुनायी नहीं दिया, या फिर समझ में नहीं आया, इसी से मोबाइल इमरजेंसी ने कान में हाथ लगाकर पूछा, "क्या कहा ?"

एक बाँस हाथ में उठाकर इमरजेंसी को मारने-सा दिखाकर पीछे फेंक दिया महेश्वर ने। बाँस पानी में गिरा कि नहीं कोई आवाज नहीं आयी। महेश्वर इमरजेंसी की ओर अंगुली उठाकर बोला, "तेरा बाप लाया है ये बाँस ? बोल, लाया है तेरा बाप ?" जैसे इमरजेंसी का बाप बाँध पर उसके निकट ही खड़ा हो।

इमरजेंसी ने तभी अपने कान के पीछे हथेली रखकर पूछा, "क्या कहा ?"

एक गुस्सा दो बार से अधिक तीन बार नहीं किया जाता। महेश्वर ने हाथ के इशारे से इमरजेंसी को बाँस दिखाकर, नदी के भीतर भादई को भी दिखाया। उसके बाद फिर बासों को लतिया कर ठेल दिया।

बाँध पर खड़ा इमरजेंसी भी इसे देखता रहा। उसके बाद, बाध के ऊपर से दो बाँस लेकर ढलान की ओर उतर आया। दो-एक क़दम उतर कर बायें हाथ के बाँस को मिट्टी पर रख दिया और दायें हाथ के बाँस को सिर के ऊपर उठाया। दोनों हाथों से पकड़ लिया--जैसे कि उसके सामने कोई लक्ष्य रहा हो। और उस लक्ष्य को वह इस ऊपर से ही भेदेगा, इस तरह से ताकता था। अच्छी तरह से ताकने के लिये बायें पेर को थोड़ा पीछे हटा लेता था। समझ गया था कि इस ढलान पर वह इससे अच्छी तरह से पेर नहीं जमा सकता। मजबूती के साथ मोटे शरीर को थोड़ा डुलाकर वह पानी की ओर बाँस को छोड़ देता। बाँस काफ़ी ऊंचाई से बाँध के ढलान पर से गुजर जाता था, पर लंबाई में जा गिरता था इसी से कुछ कलाबाजियाँ खाता था। बाँस भादई के बायीं ओर, पास गिरता था। बांस कहीं नदी में बह न जाये इसी भय से भादई लपक कर इधर आ जाता था थोड़ा तेर कर।

107

जल गोधूलि

अब इस निर्जन बाँध में, निर्जन बाढ और निर्जन तूफान मे--पानी के अंदर खड़ा होकर, चलकर, तैरकर भादई एक बाँस के साथ और एक बांस को जोड़ जोड़ कर लंबा बना रहा था। और बाँध पर से महेश्वर जोतदार और इमरजेंसी ऑफिसर ठेल-ठेल कर उसे बाँस पहुँचा रहे थे। बाँध के इस ढलान से, कभी पाँव से ठेलकर, बाँस खिसका कर, कभी हाथ से नीचे छोड़कर, कभी पानी के निकट जाकर बहा देते। भादई एक-के-बाद एक बाँस को जोड़े जा रहा था और पटसन की रस्सी से गाँठ लगा रहा था। बाँस हाथ मे आने के बाद जोड़कर गांठ लगाने मे उसे अधिक समय नहीं लग रहा था। पीठ के पीछे जो हँसिया खोंसा था वह कादरा या कानकट्टू का था—भादई वह ले आया था, गाँठ लगाने के बाद जब भादई उससे रस्सी काटता तब पता चलता था। इस तरह से बाँसों को बांधकर भादई ले जायेगा—किसी निकट के ऊँचे स्थान पर। दो पंक्ति में बँधे बाँस बाढ़ के जल के साथ-साथ पानी के ऊपर रहेंगे। अब मवेशियों को इनके बीच छोड़ देने पर सब सीधे तैरकर बाँध पर जा पहुँचेंगे। वरना इस तरह जल से भरी हुई जगह उनके लिये इतनी अपरिचित थी कि वे एक साथ पूरी उल्टी दिशा में चले जा

सकते थे- बड़ी धार की ओर। और वैसा हो जाय तो मवेशियों को बचा पाना फिर कादुरा, भादई और कानकट्टू के वश की बात नहीं थी। दोनों ओर बाँस का निशाना लगा हो तो मवेशी भूल नहीं कर सकते। इसके अलावा पानी अगर और अधिक बढ़े, सब कुछ डूब जाये तो कम-से-कम इस बाँस का निशान तो बचा ही रहेगा- सब डूब जाने के पहले इस निशान को पकड़ कर आने-जाने की जरूरत भी हो सकती है जिसमें दिशा चूक न हो।

भादई सामने के ऊँचे किनारे पर बाँस की लाइन को खींचकर ले आया था। उसके ऊपर भी अब पानी चढ़ने लगा था। वहाँ एक पतले बाँस को कीचड़ में इस तरह से गाड़ दिया था कि बहाव से वह थोड़ा झुक जाता था। झुक जाने पर उखड़ेगा नहीं। और अगर उखड़ भी गया तो भी बाँस लाइन का अगला सिरा बाँध की ढलान में बाँधा जाएगा। पानी बढ़ने पर उस बंधन को भी ऊपर ढीला किया जा सकेगा। और अगर जरूरत पड़ी और पानी के अंदर का यह पतला बाँस भी अगर उखड़ जाय तो भी बाँध से इस बाँस लाइन से कम से कम नदी के किनारे तक तो पहुँचा जा सकता है।

पर तब आने-जाने की आवश्यकता भी क्या है? अभी न हुआ गायों को बाँध से ले जाने के लिये लाइन की आवश्यकता है। तब सारा अंचल पानी में डूब जायेगा, यहाँ तक कि बाँध पर से भी लोगों को हटाने की जरूरत पड़ सकती है, तब इस बाँस के लाइन से होकर पानी के अंदर घरबार में लौटने की क्या आवश्यकता होगी?

चाहे आवश्यकता हो या न हो बाँस के इस निशान से तो सब समझ पायेंगे कि यहाँ इस पानी के नीचे उनका घर-बार जमीन जायदाद है।

अभी उन सबके ऊपर से नदी बह रही थी। ऊँचे-ऊँचे टापू पर घर की छाजन दिखायी दे रही थी, बढ़ी भी। निचली जमीन के घरों के पास कोई ऊँचा बाँस या खंभा दिख रहा था। जल का चेहरा अच्छा नहीं था। आज रात भर यह तूफान चलेगा, बारिश होगी, इससे पानी में उफान उठेगा। सुबह देखा जायेगा- घर-द्वार के नाम पर कुछ भी नहीं है, सिर्फ नदी ही नदी। उस पर अब भू-स्खलन जारी पर था। पहाड़ों के गुफा गह्वरों में पानी जम-जमकर जो झील बन गयी थी, वह सब एक साथ फट जाने पर पहाड़ों के पानी से यहाँ नई नदी बनेगी। भादई, कादुरा, कानकट्टू उस नयी नदी के लिये तैयारी में लगे थे।

पास वाले एक चर में घुटने से ऊपर तक पानी में खड़ा होकर भादई ने बायें से दायें मुँह घुमाकर जोर से आवाज लगायी, 'हे-ए-ए का-न-न्दु-रा-आ-आ--का-आ न-का-आ-ट्टू-ऊ ऊ-ऊ।' नदी के उस ओर की हवा उसकी पुकार को इस पार पहुँचा देती थी, तितर बितर करके, जैसे कि भादई की पुकार इधर ही थी। पर नदी के भीतर शून्यता थी, फाँक थी, इसके चलते भादई की तूफ़ान के विपरीत

दिशा की पुकार कांदुरा-कानकट्टू के पास पहुँच गयी ठीक-ठाक।

पुकार कर भादई उधर पानी में उतर गया। यहाँ काफ़ी गहरा पानी था, बहाव भी तेज़ था। भादई पानी में अपने गोल-मटोल शरीर को एक लकड़ी की तरह छोड़ दिया था और दूर के चरों में से किसी एक पर चला गया, कांदुरा और कानकट्टू की तरह।

दो रात के बासी तूफ़ान और बाढ़ में आज के इस आख़िरी बेला में वे जैसे आख़िरी बार के लिये हिसाब-किताब कर रहे थे। इस बस्ती की सीमा सरहद, मनुष्य के दख़ल से जिस ज़मीन को नदी ने दोबारा दख़ल कर लिया था। उस सीमा के हर तरफ़ तो नहीं पर यहाँ-वहाँ वे तीनों जन अभी पानी में तैर रहे थे, चल रहे थे या खड़े हुए थे।

उसके बाद, उन ऊँची जगहों पर बाँधे हुए मवेशियों को लेकर वे एक साथ पानी में उतर गये। बढ़ आये थे उस ऊँचे चर की ओर, जहाँ भादई ने बांस बाँध कर रखा था।

वे तीन दिशाओं से आ रहे थे। कांदुरा था दक्षिण के चर पर और भादई उत्तर के चर पर था। कानकट्टू ने बीच के चर से मवेशियों को पानी में उतार दिया। तीनों ओर से पानी मे उतरने से यही एक राहत थी कि मवेशियों के झुंड को कम-से-कम सँभाला तो जा सकता था। अचानक कोई एक झुंड इधर-उधर जा नहीं सकता था। अगर उत्तर की ओर चला जाये तो ख़तरा है। इधर से जाने पर तो बाँध में पहुचा जा सकता है।

इन तीन-तीन झुंडों को एक तरफ ले जाने के लिये हाँकने की कोई आवश्यकता न थी। फिर भी भादुई, कांदुरा और कानकट्टू सर के ऊपर छड़ी जैसा कुछ घुमाने जा रहे थे और टटकार रहे थे, मानो वे किसी रास्ते से उन्हें ले जा रहे हों। चाहे उस आवाज़ से हो या फिर सामने के बाँध पर इन घरेलू पशुओं को मिट्टी का इशारा मिल जाने से हो, जहाँ तक सम्भव था, उतनी द्रुत गति से वे जानवर बाँध की ओर भागे जा रहे थे।

पर इस भागम-भाग मे एक ही दिक्कत थी। मवेशियों का यह झुंड नदी को इस तरह से पार करने का आदी नहीं था। इसके अलावा कहीं-कहीं उनमें से किसी-किसी की छाती तक पानी चढ़ जाता था तो कहीं-कहीं कोई बछड़ा डूब जाता, कहीं किसी गाभिन के घुटने के नीचे तक पानी आ जाता था और उस जल-स्रोत के बीच जल-थल का फ़र्क समझे बिना बछड़ा माँ के थन पर हमला करता था। बाद में बछड़े के साथ वही गाय क़रीब पीठ तक पानी में चली जाती।

कोई एक गाय नहीं रँभाती। जैसे कि इन गायों को पता था कि उनके समवेत रँभाने से आकाश और जल को जोड़ती बारिश, तूफ़ान और उस दूर पहाड़

की तमाम गुप्त झीलों का संकेत मिल जायेगा। जितनी तेज़ी से हो सके वे इस नई नदी को पार करके पुरानी मिट्टी में पैर धरना चाहते थे।

पर भादई, कांदुरा और कानकट्टू को शायद कुछ हिम्मत की ज़रूरत थी, कुछ अतिरिक्त साहस की। अकेले-अकेले इस पहाड़-तोड़ते जल को पार करने के लिये उस साहस की कोई आवश्यकता नहीं थी, पर इतने सारे मवेशियों को साथ लेकर इतनी दिशाओं से इस अपरिचित अथाह जल का पार करते हुए शायद उन्हें उस साहस की आवश्यकता थी। वे अब नदी के इस निरंतर बढ़ते हुए विस्तार के बीच में थे। पांवों में, कमर में, छाती में, पीठ में और कभी समूचे शरीर में इस अथाह जल के आवर्तन के बीच ऐसे देखता था जैसे आकाश नदी में चिपका हुआ था। इसके बाद जैसे नदी और आकाश के बीच कोई रेखा तक नहीं रहेगी। भादई हकलाने लगा। पर इस हकलाने में थोड़ा फ़र्क था। फ़र्क बस इतना कि जैसे वह अपने आपको समझा रहा हो, "हे इ, हट-हट, चल, खबरदार, ख़बरदार।" कांदुरा चिल्लाया, "कानकट्टू, बायीं ओर मार, बायीं मार।"

जिस जलमग्न चर पर भादई घास बांध कर रखा था, मवेशी वहाँ पहुंच कर पल भर भी देर किए बिना हूं हूं करते बांस के उस लाइन के बीच में घुस गये थे। अब तक जिस तरह आ रहे थे, उस तरह से अलग-अलग होकर नहीं, बल्कि दोनों बांसों के बीच जो जगह थी, उसमें बदन से बदन सटाकर इतने सारे मवेशी जैसे एक बड़े झांके में बदल गये थे, बीच-बीच में जरा दूर-दूर कांदुरा, भादई और कानकट्टू थे। आच्छन्न आकाश पर भी जैसे एक अदृश्य सूर्यास्त हो रहा था। उस अभ्यस्त झुटपुटे में उस दोपहर, इस प्रबल झंझावात में यह भयाक्रांत अथाह पानी भेदकर भादई कांदुरा और कानकट्टू का गोठ लेकर अक्सर लौट आते थे।

108

'सीमांत वाहिनी' के दो अर्थ

तिस्ता के बीच नवापाड़ा, मेचियापाड़ा, सैयदपाड़ा और दहग्राम--ये चार चर या छिटमहल (गलियारे) थे। इसको लेकर भारत के सुप्रीम कोर्ट तक में मामला-मुक़दमा चला था। क्योंकि ये चारों जगहें पहले के पूर्वी पाकिस्तान (बांग्लादेश) को किसी एक संधि के तहत दे दी गयी थीं। अंग्रेजी-राज में पाटग्राम थाना जलपाईगुड़ी ज़िले में था। यहां तिस्ता की बराबर 'सीमांत वाहिनी' की भूमिका रही थी। मंडलघाट के बाद तिस्ता के पूर्वी पार में मेखलीगंज और पश्चिमी पार में हल्दीबाड़ी–इन दोनों जगहों से होते हुए तत्कालीन कूचविहार राज एस्टेट, और अब का कूचविहार ज़िला पार होकर पाटग्राम के पश्चिम सीमा से होकर रंपुर

की ओर चला गया था। तब पाटग्राम के पश्चिम की यह नदी ही रपुर और जलपाईगुड़ी के बीच का सीमांत था। इन नदी के एकदम बीचोंबीच पाटग्राम के एकदम भीतर नयापाडा, मेचियापाड़ा, सेयदपाड़ा, दहग्राम और बहुत से बे नाम चर, दरअसल कूचविहार राज्य का छिटमहल (गलियारा) था और उसी के चलते कूचविहार के भारत में मिल जाने के बाद भारतीय संघ और पश्चिम बंग का अंशविशेष बन गया था। पर वह तो नक्शे का ही एक भाग था। एक-दूसरे राष्ट्र के एकदम भीतर इन कई चरो जैसे छिटमहल (गलियारा) में भारतीय संघ या पश्चिम-बंग अपना दखल कायम रखे तो आखिर किस तरह ? रख सकता भी है तो कैसे ? जो सब स्थायी जगह थी, नदी के रास्ता बदलने से वह सब काफी दिनों से नदी का चर बन गया था पर सेटलमेंट मे वह सब जगह मूल भूखंड का भाग ही रहा। उनके 'जूरीसडिक्शन लिस्ट' नंबर थे, वही सब जगह तो छिटमहल थे। ये सब गलियारे तो नदी के ही उपजाये हुए थे। एक नंबर और पाँच नंबर शायद भारत का, तो दो-तीन-चार नंबर बांग्लादेश का। फिर कहीं आठ नंबर और नौ नंबर बांग्लादेश का तो छ, सात और दस नंबर भारत का। इस तरह एक-एक चर एक-एक राष्ट्र का होना राष्ट्र के लिये सुविधाजनक है। इसी के चलते दोनों राष्ट्रो के बीच कुछ लेन-देन करके जहां तक संभव हो पाया था छिटमहलों को सजा कर रखा गया था, तरतीवी दे दी गयी थी। पर चाहे जितनी तरतीब दो, नदी तो आख़िरकार नदी ही होती है। चर चर ही रहता है। और नदी नदी रहे, चर चर रहे तो वहाँ राष्ट्र भी रहता है। राष्ट्र की सीमा भी रहती है। सीमा में बॉर्डर आउटपोस्ट होता है। कस्टम के कर्मचारी रहते हैं। सीमांत-वाहिनी रहती है। बॉर्डर सिक्योरिटी फोर्स का कैंप रहता है। उस कैंप का अपना अस्त्रों का भण्डार रहता है। जैसे ही पहले जैसे पाकिस्तान का था, अभी उस तरह बांग्लादेश का बॉर्डर आउटपोस्ट रहता है, कस्टम्स कर्मचारी रहते हैं, बांग्लादेश राइफल्स का कैंप है, उस कैंप का अपने अस्त्र-शस्त्रो का भण्डार है।

पर जिस सीमांत की रक्षा करने के लिये इतना कुछ सरंजाम है, दरअसल वह सीमांत ही वहाँ नहीं है। दोनों देशों के क़ानूनी या गैरक़ानूनी यात्री कोई भी इतने बॉर्डर के रहते इस चर या नदी के बॉर्डर को पार करना नहीं चाहते। पर इस बॉर्डर या नदी के चर पर जो लोग रहते है, वे अपने हाट-बाज़ार के लिये या खाने-पीने के लिये आस-पास के पोर्ट इलाके में या बाजार में तो जाते ही हैं। जायें बिना चारा नहीं, इसी से जाते हैं। यहाँ तक कि भारतीय बॉर्डर आउटपोस्ट के खाने-पीने के लिये इतवार और वृहस्पतिवार को, सेयद बाजार में नाव लिये जाये बिना काम नहीं चलता। सेयदों का हाट भी लगता है इस पुरी में। वह तो बिल्कुल पटग्राम है कह लें। पर ठीक हाट के मैदान में ही नदी के

साथ जुड़ा एक भाग है भारतीय संघ का, क्योंकि देश के बँटवारे के समय यह भाग कूचबिहार के छिटमहल के बीच ही था और जलपाईगुड़ी ज़िले के छिटमहल में भी था। सैयदपाड़ा का हाट इसी सीमांत पर ही लगता था। इसी से बाज़ार में ख़रीददारी करते-करते ही भारतीय संघ का बॉर्डर आउटपोस्ट और बॉर्डर सिक्यूरिटी फोर्स के लोग बांग्लादेश में चले जाते हैं; और बांग्लादेश के बॉर्डर के लोग भारतीय संघ में चले आते हैं। यह बाज़ार तो ख़ासकर दोनों बॉर्डर के लोगों के जरिये ही चलता है—वरना इस हाट में क्या इतने खस्सी, पाठे या मुर्गे मिल पाते ?

हाट मैदान का पश्चिमी सिरा बांग्लादेश का और पूर्वी सिरा भारत का है। ठीक आधा-आधी नहीं--बांग्लादेश का ही भाग अधिक है। पर भारत की ओर राजकिशोरी पाड़े में मुर्गी बाजार लगता है। उधर ही पाठे-मुर्गे, यहाँ तक कि दो-चार गाय-बछड़ों की भी बिक्री होती है। एकाध बार गाय-बछड़ों को लेकर कुछ गोलमाल भी हो जाता है—बॉर्डर से चुराये गये मवेशी पकड में आ जाते हैं। बांग्लादेश के चोर, भारत से गाय चुराकर यहाँ लाकर बेचते हैं। भारत के बॉर्डर के लोगों ने बाजार में उन्हें रंगे हाथों पकड़ा भी है। फिर बाज़ार में भारतीय इलाके में लाकर काफ़ी मार-पीटा भी है। बांग्लादेश बॉर्डर के लोगों ने भी आकर उस मार पीट में हाथ बटाया है। और एक बार एक चोर को बांग्लादेश के ही बॉर्डर के लोगों ने पकड़ा था। पर एक ही दौड में वह भारतीय सीमा में पहुँचकर अपने को भारतीय होने की घोषणा कर दी। एक देश की नागरिकता को त्याग एक-दूसरे देश की नागरिकता को ग्रहण करने जैसी नाटकीय घटना हँसी का विषय कैसे हो सकता है, यह उसका जीवंत उदाहरण है। वे तो कचलीहाट के चोर कहलाते हैं। चोर कहलाना भी संभवतः स्वनाम ख्यात होना है, इसी से आत्मरक्षा के लिये इस तरह का एक उपाय भी सोचा जा सकती है। पर इस घटना में भारतीय सीमा के प्रहरियों में से एक जवान ने चोर कहलाने को स्वीकार करते हुए, उस चोर को भारतीय नागरिक की स्वीकृति देकर गर्दन पकड़कर खींच लाया था और उसके चूतड़ में एक लाठी कस दिया था। वह लाठी इतनी झन्नाटेदार थी कि वह बाजार के एक सब्ज़ी वाले पर जा गिरा था। इससे उसके कुम्हड़े चारों ओर बिखर गये थे। कुम्हड़े का कुछ हिस्सा बांग्लादेश में चला गया था और कुछ भारत की भूमि पर दूर-दूर तक जा पड़ा था। सब्ज़ी वाला उनके पीछे-पीछे दोनों देशों के भीतर भाग-दौड़ करने लगा था। वह चोर आकर उस पर गिर पड़ा था--यह साबित करते-न-करते ही भारतीय सीमांत-वाहिनी ने चोर को बाल पकड़ कर खड़ा कर दिया था। इधर बांग्लादेश बॉर्डर फ़ोर्स के लोग जब उसे लेने आये तो भारतीय लोग बोले, "दादा, इसे कुछ दिन के लिये उधार दीजिये, हमारे ठाकुर का असिस्टेंट भाग गया है।"

बांग्लादेश बॉर्डर के लोग बोले, "ले जाओगे कैसे दादा, आपके कैंप में तो फाटक बंद कर दिया गया।" चोर के माथे पर झुक कर हाट वाली बड़ी-सी टोकरी रख दी गयी, जिसे अब तक एक जवान रस्सी बाँधकर घसीट रहा था। पर इतना कुछ होने के बावजूद एक सावधानी बरती जाती है। सीमांत के पास कोई भी बाज़ार शाम तक नहीं चल सकता, उसके दो-तीन घंटे पहले ही ख़त्म हो जाता है, जिससे हाट के लोग शाम होने से पहले ही अपने-अपने घरों में वापस जा सकें। भारतीय बॉर्डर का यह नियम यहाँ इस हाट में भी माना जाता है। जबकि इसे क़ानूनन बांग्लादेश का हाट कहा जाना अधिक उचित होगा। पर इस नियम को मानकर दोनों बॉर्डर के सरकारी लोग जैसे अपने नाव से उस सैयदपाड़ा-दहग्राम के छिटमहल-चरमहलों (गलियारों) में सीमा की पहरेदारी के लिये वापस चले जाते हैं, वैसे ही इस बड़े चर इलाके के लोगवाग भी अपने-अपने घरो मे लौट जाते हैं। हाट में तो सिर्फ़ चर के लोग ही नही आते, आस-पास के गाँव के लोग भी आते हैं—वे भी हाट के बाद अपने घर लौट जाते है। सैयदहाट के मैदान के लोगबाग, दोनो बॉर्डरों के सिपाही-जवान, गाय, पाठा, मुर्गे, यहाँ तक कि चोर तक भी दोनों राष्ट्र की इस सीमा को मानकर भी सीमा का उल्लघन करते है। तिस्ता को यहाँ सही माने में समतल का विस्तार मिला है। उस समतल मे, और उसी विस्तार में अलग-थलग पडे जंगलों मे, सीमात तो एकदम अनतिक्रमित और सुनिर्दिष्ट है। तिस्ता उस अनतिक्रमणता और निर्दिष्टता को दूसरे समय एक आकार भी देता है। तब तिस्ता के चर के बीच टीन का लाल रग देखकर भारतीय बॉर्डर कैंप और टीन का सब्ज़ रंग देखकर बाग्लादेश बॉर्डर कैप को पहचान लिया जाता है। तब चर के ऊपर कँटीले तार का जो बाड़ा है, वह सीमात का सकेत करता है, उसे मानकर तिस्ता भी जैसे अपने भीतर एक अर्थापित कँटीले तार का घेरा बना लेती है।

पर अब बाढ़ ने तिस्ता के उन सब सीमांत चिह्नो को धराशायी कर दिया। जिस तरह सूर्य की किरणें या रात का अँधेरा सीमांत को मानकर नहीं चला करता, तिस्ता भी ठीक उसी तरह की है। शनिवार की दोपहर थी। चारों ओर से तिस्ता इन चरों के ऊपर चढ़ आयी थी। किसी एक चर पर नही, सभी चर के ऊपर। इस नवापाड़ा से लेकर तलहट्टी के इस छह नबर दहग्राम तक सभी चरों के ऊपर से होते हुए तिस्ता बही जा रही थी। यह मानो छिटमहल, चरमहल की अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं को दूर कर देगी। बुधवार से ही पानी बढने लगा था। पर अभी की बारिश तो थम भी गयी थी। वृहस्पतिवार की शेष रात्रि से अचानक आकाश धीरे-धीरे उदास होने लगा था। हवा जैसे मिट्टी को उखाड़ कर फेंक देना चाहती थी। अभी शनिवार की इस दोपहर को मैला आकाश और मैली तिस्ता मिलकर जैसे एक सुरंग-सा बनाने लगे थे।

109
भारत में बांग्लादेश का दूत

भारतीय सीमात चौकी मे रेडियो-टेलिफोन घनघना उठा था। एक्सचेंज मे कोई न था। अभी ड्यूटी किशोरी चद की थी। पर वह कमाडर के घर के सामने दूसरो के साथ खड़ा था। एक एल-पेटर्न बैरक के सिर पर कमाडर का घर और उसके समकोण म, शेष प्रात पर 'एक्सचेज'—इमस फान की घटी सुनायी देनी ही चाहिये। पर हवा उल्टी दिशा मे बह रही थी, और कमाडर के घर पर ये लोग अपने मे जोर-जोर से बतिया रहे थे--इसी से फान की घटी उन्हे सुनायी न दी थी। ऊपर मुरक्षा बेरक की छत और पास ही बाम के बाड मे घिरा यह एक बेरक है। बेरक क दक्षिण और पूरब दिशा म आफिस, पश्चिम और उत्तर दिशा 'प्राइवेट' है। दरअसल बैरक का एक ही कमरा है। कमरे को दो भागो म बाटा गया था। बॉम के पार्टिशन मे। और इस 'प्राइवेट' की ओर एक काफी लबा-सा कमरा भी था, जहाँ जवान लोग रहत थ। आफिम की ओर का मैदान काफी साफ मुथरा था -एक तरफ फुटबाल और वॉलीवाल का मदान, फिर उसके बाद हरी घामा से भरपूर मैदान काफी दूर तक फैला हुआ। वहा की घास सब बडी बडी थी लेकिन कई दिना की लगातार बारिश स झुकी हुइ थी। उसके बाद फिर कँटील तारा का घेरा। प्राइवट की ओर एक छोटा सा अलग-थलग कमरा खाना बनाने के लिय। फिर एक और अलग-सा घर -इट की दीवार, चूने से पुती हुइ, लाल टीन, एक बरामदा, एक कोलेप्सिबल गेट, उसके पीछे एक लकडी का दरवाजा -इस घर म ही बदूक और शायद कुछ और हथियार थ। बरामदे मे दो सतरी यूनिफार्म पहने पहरा दे रहे थे।

इस छोट से घर मे सतरी को छोडकर और कही राष्ट्रीय व्यवस्था का कोई चिह्न नजर नही आ रहा था। यहाँ तक कि कमाडर-ऑफिस के सामने लोहे का जो फ्लैगस्टाफ था वहाँ भारत का राष्ट्रीय ध्वज रोज सुबह से शाम तक लहराता रहता था, वह फ्लैगस्टाफ भी भीग गया था और उसकी रस्सी भीगकर लथपथ हो गयी थी। पानी से खभे का रग भी काफी हद तक धुल गया था। सफेद रग के बीच-बीच मे जग लगे लोहे का रग साफ नजर आ रहा था। खभा एक सीमेंट की बेदी पर था। बेदी को घेर कर ईट की क्यारी थी। एक तरफ थोड़ा-सा फॉक था। 26 जनवरी और 15 अगस्त को जहाँ से कमाडर ध्वज फहराता है। बाकी दिन रात की ड्यूटी वाला सतरी ध्वज लगाकर ड्यूटी ऑफ करता है। विगत कई दिनो की बरसात से फ्लैगस्टाफ़ की क्यारी कीचड से ढँक गयी थी। कई दिनो से ध्वज भी नही लगाया गया था। पहले दिन की बारिश से ही इतना भीग गया था कि कमाडर के ऑफिस के बेडे म सूखने के लिये लटका दिया

गया था। बुधवार को भी नहीं सूखा। वृहस्पतिवार को दिन तक सूखने की आशा थी। पर उसके बाद ही तो यह हवा-पानी शुरू हो गया। अभी फ़्लैग को सूखने के लिये फैला दिया गया था—पर एक छोटी-सी लाठी में फ़्लैग को झुलाकर लाठी को बेड़ा में खोंस दिया गया था। झंडा भींगे हुए चीथड़े जैसा लगा रहा था। रंग भी उतर कर इधर-उधर फैल गया था। भगवे रंग पर हरा या हरे पर गेरूए रंग का धब्बा इतना तो आँखों में नहीं खटकता, पर सफ़ेद रंग में गेरूआ और हरे रंग का धब्बा ख़राब लगेगा ही। कैंप में और कोई 'स्पेयर' झंडा नहीं था। नये झंडे की आवश्यकता थी।

फिलहाल चर जैसा हो जाने पर भी दरअसल ये छिटमहल ही थे। इसी से यहाँ की मिट्टी काफ़ी पुरानी और सख़्त थी, तिस्ता के चर की मिट्टी की तरह अलग नहीं था। पूरा का पूरा गाँव झाड़-झंखाड से घिरा हुआ था। सिर्फ़ घिरा ही नहीं, भरपूर भी था। सीमांत के नियम के मुताबिक इस आउटपोस्ट के भीतर के प्रायः सभी पेड़ काट दिये गये थे और इधर-उधर जो दो एक पेड़ थे, वह भी कैंप की ज़रूरत के लिये ही रख छोड़े गये थे। एक विशाल आम का पेड़—कमांडर के 'प्राइवेट' के सीधा पश्चिम में, प्रायः नदी के निकट ही। वहा चाँदमारी होती थी। वहाँ एक बड़ा-सा शीशम का पेड़ था, इस पक्के शास्त्रागार के पीछे सीधे उत्तर में। वह क्यों रख छोड़ा गया था, उसका अनुमान अब कर पाना मुश्किल था। पर इस तरह के दो-एक पेड़ों के बाद कैंप के चारों ओर कम-से-कम मील भर की जगह बिल्कुल खुली एवं सपाट थी। उस घासवन की सीमा में कँटीले तार का घेरा। उससे लगे हुए खूँटों पर गार्डरूम। एक पूरब में, एक पश्चिम में। वहाँ दो संतरियों के रात-दिन दूरबीन लिये पहरा देने की बात थी। किसी भी दिन वहाँ कोई अकेला-दुकेला बैठा नहीं रहता। जिसकी नाइट ड्यूटी रहती थी वह किसी को साथ लेकर रात को वहाँ सोता था। अब तो कोई बात नहीं—कैंप तो बहने-बहने को आ गया था। अब और गार्डरूम क्या ?

भारत की सीमांत चौकी का यहाँ होना बड़ा अटपटा और अजीब लगता है, क्योंकि यह इलाका देश नही, सिर्फ़ सीमांत कहलाता है। तिस्ता का मटमैला स्रोत इस सीमांत के ऊपर टकराता है, हमला करता है और बायें-दायें बँटता जाता। अगर उसे देश मान लिया जाये, तो फिर देश ही है। पर सर्दी के मौसम में जब पतला, सूखा हुआ रेत, बीच-बीच में निकला हुआ दिखता है तो नदी देश नहीं लगती, पर अब तो लगता है इस नदी के मुहाने से अंदर जितना बढ़ते जाओगे, उतना ही सुरक्षित रहोगे—मानो उसके अंदर ही जैसे देश हो। पर इस टापू जैसे छिटमहल का भी एक ही भाग इंडिया है, बाकी सब तो बांग्लादेश है।

फलतः बांग्लादेश की सीमांत चौकी की महत्ता सबसे अधिक है। वे तो अपने देश के अंदर बैठे-बैठे ही अपने सीमांत पर पहरा दे रहे हैं। कभी नहीं

लगता कि उन्हें देश के बाहर जाकर देश की पहरेदारी करनी पड़ती है। यहाँ तक कि अभी तो तिस्ता की बाढ़ इंडिया से इतना पानी लेकर बांग्लादेश की ओर दौड़ी आ रही है कि आज इस शनिवार की दोपहर में यह भरोसा नहीं कि रात के कुछ घंटे निरापद कट जायेंगे और अभी फौरन शाम होने से पहले ही कोई-न-कोई उपाय सोचकर रखना होगा। इस पर भारत और बांग्लादेश के सीमांत चौकी की समस्या एक नहीं है। बांग्लादेश के वे सब तो शायद अब तक नाव में दायें-बायें किधर भी पार हो चुके होंगे। पर इंडिया के लिये तो पार होने की जगह ही नहीं। पार होना हो तो भी बांग्लादेश को कहीं-न-कहीं आना होगा। सप्ताह में एक दिन या दो दिन कई लोगों का मिलकर हाट बाज़ार कर लाना अलग बात है। फिर वहाँ भी तो क़ानूनी छूट के कारण आधा हाट भारत में लगता है तो आधा बाग्लादेश में। ग़ैरक़ानूनी चालान बंद करने के लिये अफ़सर राउंड में जाते हैं। इसका मतलब यह तो नहीं कि पूरा-का पूरा कैंप लेकर बांग्लादेश के किसी जगह में आश्रय लिया जा सकता है। पर, आश्रय लेने के सिवाय उपाय भी क्या है ?

कमांडेंट ने कहा, "एक काम करो। तुम लोग अभी नाव लेकर उस पार जाओ। कई सिफ्टों में जितने आदमी जा सकते हों, जाओ। मैं बाक़ी लोगों के साथ यहाँ रहता हूँ। अगर रात में पानी घर में घुस आये तो बाकी लोगों के साथ नाव पर हम भी आ जायेंगे।"

विभूति घोष उम्र में सबसे बड़ा था। वह बोला, 'आपने तो सही कहा है। तो फिर रात में क्यों, अभी ही चले चलिये न।'

"कहाँ चलोगे ?" कमांडेंट ने पूछा।

"रात के इस अँधेरे में पूरा फ्लड ही फ्लड है, जहाँ भी बहकर आ सकें।"

कमांडेंट अपनी चेयर पर हँसी से दुहरा हो गया, "लो, घोष जी की बात और सुनो।"

"तो फिर इतनी मीटिंग-वीटिंग की कोई ज़रूरत नहीं है, जो होने की है वही होगा।" बटुक वर्मन ने कहा।

"क्या होगा वह तो समझ में आ गया है। क्यों नित्यानंद, बताओ फिर, गाँव वाले क्या कर रहे हैं ?"

"नदी तो दक्षिण के गाँव में तभी घुस चुकी थी—मैं तो सुबह ही देख आया हूँ।"

उसके बाद तो पानी और बढ़ा है। दक्षिण के लोग कहते थे--उनके मवेशियों को कैंप के मैदान में लाकर रखेंगे।"

"वह तो लाये नहीं अब तक—मतलब पानी कम होने लगा है।"

कमांडेंट ने कहा, "क्या कर रहे हो विभूति घोष ?"

"आपने तो देख ही लिया है। काफ़ी मज़े की बात है। अभी इलिस मछली और खिचड़ी हो तो और मजा आ जाये।"

"अरे फ़्लड में अगर मरना है तो हिलसामाछ खाकर मरना ही बेहतर है।" कमांडेंट फिर से हँस पड़ा।

ठीक तभी 'वाटरप्रूफ' में लिपटा एक आदमी साइकिल से हड़बड़ाते हुए वहाँ पहुँचा। सर से पाँव तक वाटरप्रूफ में लिपटा। साइकिल को सीढ़ी पर रखकर वह आदमी बरामदे में आ गया। बरामदे में उसके टोपी उतारने के बाद भी उसे कोई पहचान नहीं पाया। फिर वाटरप्रूफ का बटन खोलते ही बटुक वमन बोला, "अरे अजीज़, तुम ?"

"क्या करें, अज़ीज़, रेडियो-टेलिफोन बजाते-बजाते हलकान हो गया। माला साइकिल लेकर रवाना हुआ हूँ। बाप रे, क्या बला का तूफ़ान है। उस पर भी कमांडेंट भेजा है।"

110
भारत–बाङ्लादेश वार्ता

"अरे यह क्या ? तुमने फ़ोन किया था क्या ?" कमांडेंट ने चेयर से पैर उतार कर पूछा। अज़ीज़ तब अपना भींगा वाटरप्रूफ रखने के लिये जगह तलाश रहा था, पर जगह न मिल पाने से वापस जाकर साइकिल की सीट पर टाँग आया। इस तरह से अजीज ने बरसाती को तहाकर रखा, जिससे बाहर का भाग बाहर को ही रहे।

अजीज़ लुंगी, सैंडो बनियान और गमबूट पहने हुए था। लुंगी को मोड़ कर कमर में खोंसे हुए। अज़ीज कमांडेंट की ओर देखकर बोला, "तुम लोगों ने क्या टेलिफोन ऑफ कर रखा है ?"

"क्यों ? ऑफ क्यों ? किसकी ड्यूटी थी ?" कमांडेंट ने कुर्सी का दोनों हत्था पकड़ कर ऊँची आवाज़ में पूछा। किशोरीचन्द भीड़ में से एक्सचेंज की ओर खिसक गया। पर वह लपकते या दौड़ते हुए नहीं गया। वैसे में तो पकड़ में ही आ जाता कि ड्यूटी उसकी थी। इसके अलावा बांग्लादेश के कैंप से इस दुर्योग में मैसेंजर क्यों आया है, वह भी वह जान लेना चाहता था। ऐसे में कैंप में कौन, कहाँ, कब ड्यूटी बजा रहा है उसके लिये कोई सिर-दर्द नहीं रखता—रूटीन का काम भर हो जाना ही काफ़ी है। पर बाङ्लादेश के कैंप से फोन करके बात न कर पाना एक मामूली बात नहीं है। उस पर फिर फ़ोन न पाकर साइकिल से मैसेंजर का आना ?

अजीज़ तब बता रहा था, "सर, कमांडेंट साहब जानना चाहते हैं कि आप

लोगों को कोई फ़्लड वार्निंग मिला है कि नही ?"

"क्यो ? तुम्हारे पास कुछ आया है क्या ?" कमांडेंट ने झुककर पूछा।

"वह तो मुझे पता नही। मुझे बस यही पूछने के लिये भेजा गया है कि आपको कोई वार्निंग मिला है कि नही ?" अजीज बोला।

कमांडेंट ने थोड़ा सोचा, फिर अचानक पूछा, "अरे, एक्सचेंज में कौन है ? कोई वेदर मेसेज आया है कि नहीं ?"

तब तक किशोरीचन्द एक्सचेज के निकट पहुँच गया था। वहाँ से उसने जवाब दिया, "नही, नहीं आया सर।"

"तुम तो फोन के पास नही थे, फिर जाना कैसे ?" कमांडेंट के स्वर में नाराजगी स्पष्ट थी।

"म तो वहाँ था सर।" किशोरीचन्द ने एक्सचेंज के दरवाज़े से आवाज दी।

"थे तो थे। अभी देखो, कहीं से फ्लड की कोई खबर मिलती है या नही - कूचविहार देखो, जलपाईगुडी हेडक्वार्टर देखो। अजीज, तुम लोगों को कोई खबर नही ?" कमांडेंट ने सवाल किया।

"खबर और कहाँ से मिलेगा। अभी तो दो नबर बह गया है।"

"दो नबर ? डूब गया है ?" कमांडेंट खडा हो गया "वहाँ तो तुम्हारे काफी लोग थे ?"

"हाँ, सभी आकर कैंप मे भीड जमाने लगे है।"

"तुम्हारे कैंप मे दो नंबर के लोग पहुँच गये है ? पहुँच चुके हैं ? तो फिर अब इस कैंप में भी आने लग जायेंगे।" कमांडेंट अबकी कुर्सी छोड़ उठकर खड़ा हो गया और चीख़कर बोला, "अरे, देखो तो, दक्षिणपाड़ा का क्या हाल है।" यहाँ जो भीड़ लगी थी वह धीरे-धीरे कम होती गयी। सिर्फ विभूति घोष खडा रहा। कमांडेंड के बरामदे में जाकर खडे होते ही अचानक पानी की बौछार हवा में इधर उड आयी थी। कमांडेंट फौरन लौट आया। अजीज दीवार की ओर मुँह किये खड़ा रहा और घोष घर में घुस गया।

"सर, कमांडेंट ने कहा है कि वह आपके साथ फोन पर बात करना चाहते हैं। वे फोन के पास ही बैठे है। आपके फोन करते ही बात कर सकेंगे।"

"अरे, ऐसा है तो पहले क्यों नहीं बताया ! रुको, मैं बात करता हूँ उनसे।" कमांडेंट के फ़ोन की तरफ़ हाथ बढ़ाते ही अज़ीज से कहा, "सर, एक और मैसेज है, वह सुनकर फ़ोन-वोन करें।"

"कहो, कहो।"

"सर, कमांडेंट ने कहा है, अभी रात भर पानी बढ़ेगा। अब तो तूफ़ान भी शुरू हो गया है। आपके कैंप के सभी लोगों की आज रात हमारे कैंप पर

आम दावत है। शादी का भोज।"

"हें ? शादी का भोज दे रहा है तुम्हारा कमांडर ?" कमांडेंट 'हो हो' करते हुए हँस पड़ा।

"हॉं सर, सभी आज हमारे कैंप पर चलें। वहॉं रात भर रहे। कल सुबह हवा-पानी के कम हो जाने पर यहॉं आ जायेंगे।" अजीज़ ने अपना मैसेज ख़त्म किया।

"अरे सुन रहे हो विभूति घोष। सारा कैंप उठाकर ले जाना होगा। काम देख नहीं रहे ?" कहता हुआ कमांडेंट फिर से ठठाकर हंस पड़ा था। उसकी हँसी से लग रहा था, जैसे यह कोई दुर्योग की बात नही, मस्ती का मामला था।

"आप तो बोले ही जा रहे हैं, उन्हें आपसे एक फोन करने को कहा है।" विभूति घोष ने कमांडेंट को याद दिलाया।

"हॉं-हॉं, कनेक्शन देने को कहो।" कमांडेंट ने फ़ोन की ओर इशारा किया। विभूति घोष रिसीवर उठाकर बोला, "बाड्लादेश को कनेक्ट करो' फिर कमाडेंट से कहा, "लीजिए।" कमांडेंट तभी अज़ीज से कह रहा था--"तुम क्या पाठा वाठा काटकर दावत देने निकले थे ? अपनी बात खत्म करते-करते विभूति घोष ने हाथ बढ़ाकर रिसीवर पकड लिया।

रिसीवर पकड़ कर थोड़ा रुककर कमांडेंट ने चिल्लाकर कहा, "हॉं, हा।" फिर आवाज़ नीची हो गयी थी, "यस इंडिया स्पीकिंग, इंडिया स्पीकिंग, इंडिया स्पीकिंग। हलो, कमांडेंट, इंडिया स्पीकिंग, इंडिया स्पीकिंग, इंडिया स्पीकिंग। हलो, कमांडेंट, इंडियन बॉर्डर आउटपोस्ट, दहग्राम स्पीकिंग।" उसके बाद अचानक कमांडेंट की आवाज़ ऊँची हो उठी, जैसे वह भीड़ के बीच ढूंढ़ते हुए, जिसे तलाश रहा था उसे पा गया हो, "अरे हॉं, हॉं, मोतहर भाई ? अरे, अज़ीज आया है तो, कहता है कि शादी के भोज में चलना है, हा हा-हा।" कमांडेंट हंसता रहा। विभूति घोष ने धीमी आवाज़ में कहा, "वह क्या कहना चाहते हैं, पहले सुन लीजिये, फिर हँसते रहियेगा।" यह सुनकर कमांडेंट ने हँसी रोककर कहा, "हॉं, तो कहिये, क्या हुआ ?" उसके बाद रिसीवर में सिर्फ़ 'हूँ, हूँ' करता गया। टेलिफ़ोन से सिर्फ़ एक 'गों-गों' आवाज़ घर भर में फैलती गयी। बाहर की हवा अचानक कोई प्रतिरोध पाकर बिफर उठी थी, फिर कहीं आवश्यकता से भी अधिक चौड़ा रास्ता पाकर ठहरा उठती थी। फ़ोन पर बाड्लादेश के कमांडर की आवाज़ बाहर से भी समझ में आ रही थी, घोष कान लगाकर सुन रहा था।

'गों-गों' आवाज़ रुक गयी। अब भारत के कमांडेंट को जवाब देना है। पर कमांडेंट को जैसे फ़ौरन कोई जवाब नहीं सूझा। थोड़ा चुप रहा, फिर बोला, "हल्लो, मोतहर भाई ?" उधर से फिर वही 'गों-गों'' आवाज़ सुनायी दी। कुछ ही पल। कमांडेंट ने फिर थोड़ा समय लिया, फिर बोला, "हल्लो, मोतहर भाई,

हेडक्वार्टर्स के तो फोन की कोई लाइन ही नहीं मिल रही, आप कह रहे हैं कि कैंप, यानी हमारा कैंप डूब जायेगा।" फिर वही 'गां-गां' आवाज़। कमांडेंट को जैसे अचानक ही जवाब सूझ गया।

"हल्लो, मोतहर भाई। मैंने अब तक सबके साथ कंटेक्ट नहीं किया है। देखता हूं जलपाईगुड़ी या कूचविहार के साथ कोई कंटेक्टन हो पाता है या नहीं। फिर आपको फोन करता हूं।"

बाड्लादेश से फिर गां-गा की आवाज़ आयी।

"नहीं नहीं, हाफ़ ऐन ऑवर नहीं, फिफ्टीन मिनट के बाद आपका फ़ोन करता हूं। नहीं। समझ रहा हूँ, देर होने से हर तरफ़ से नुक़सान है। पर, हमारा एक रिक्वेस्ट है आपसे। अगर हमें आपके यहां शिफ्ट करना पड़े तो हम साथ अपना राशन लेकर आयेंगे।"

बाड्लादेश ने एक संक्षिप्त 'गा गां' की आवाज़ के बाद कमांडेंट फिर से उठाकर हंसने लगा, पर ख़त्म कर नहीं पाया, "अच्छा रखता हूं।' रिसीवर रखकर उस पर हाथ रखे-रखे ही कमांडेंट ने घोष से कहा, "सबको बुलाओ। वे शिफ्ट करने को कह रहे हैं। फ्लड जोर पकड़ने लगा है। बढ़ता जा रहा है। रात में शायद कैंप में पानी घुस आयेगा।'

111

इंडिया की गुप्त आलोचना

कमांडेंट टेबिल के सामने अपनी कुर्सी छोड़कर टेबल के दूसरी तरफ बैठ गया था। दरवाज़े से बाहर ताकने लगा था। विभूति घोष के सबको ख़बर करने जाने के बाद अभी कमांडेंट के सामने सिर्फ कैंप का मैदान, उसके आख़िरी छोर पर घासवन के पीछे के पेड़-पौधे नज़र आ रहे थे। पेड़-पोधे दूर से सीमा जैसे लग रहे थे—इस हवा-पानी की बौछार में। यहां तक कि सामने यह घास का जंगल भी अदृश्य होता जा रहा था। कभी-कभी। कैंप के इस मैदान में घास या पेड़ के नहीं होने से ही हवा और पानी साफ़ नज़र आ रहा था। हवा इतनी ज़ोर से चल रही थी और इतनी ज़ोर से हवा में घुरनी थी कि बारिश का पानी कुहासे जैसा जमकर हवा के धक्के से फिर बिखरता जा रहा था। कमांडेट, जैसे पहली बार बारिश को समझना चाह रहा था।

दरवाज़े पर से अजीज़ ने कहा, "सर, अब मै चलता हूं।' वह बरसाती पहन चुका था। टोपी भी।

"आँ, हाँ, हां। अपने साहब से सलाम बोलना अज़ीज़।"

"हाँ सर, ज़रूर कह दूंगा।"

कमांडेंट ने देखा, अज़ीज़ साइकिल को ठेलते हुए चला जा रहा था। हवा जैसे साईकिल के हैंडल को मोड़े जा रही थी। जाये तो कैसे, आते समय तो हवा पीछे से धक्का दे रही थी, अब तो सामने छाती पर ही धक्का दे रही है।

कमांडेंट के देखते-देखते ही अज़ीज़ उनकी नज़रों से दूर चला गया। शायद सारा रास्ता अज़ीज को पैदल ही तय करना पड़े। शायद ऐसा न भी हो, चलकर ही जाना होगा। साइकिल यहाँ रखकर भी जा सकता था, इससे वह जल्दी जल्दी चल सकता।

विभूति घोष घर में आकर कमांडेंट के पीछे चला गया। फिर कोने से एक स्टूल खींचकर बैठते हुए कहा, "उन्होंने क्या कहा ? फ्लड आयेगा ?"

"हूँ।"

"हमारे रेडियो पर भी तो वही कहा गया है।"

"हूँ।"

"तो फिर शिफ़्ट करने के सिवा कोई उपाय नहीं।"

"हूँ।"

"तो फिर सबको बुलाया ही क्यों ?"

कमांडेंट ने कोई जवाब नहीं दिया। दरअसल, वह एक दुविधा में पड़ गया था। अगर कैंप हटाकर उन्हें उनके यहाँ शरण लेनी पड़ी, तो वह उसका ही सिद्धांत होगा। कैंप के दूसरे सब कहेंगे कि कमांडेंट के हुक्म से गये थे। पर अगर गये तो उस कई घंटे के लिये या फिर रात के लिये इंडिया की सीमा पर कोई पहरा नहीं रहेगा।

कैंप के दूसरे लोग भी एक-एक करके आ गये थे। दूसरे लोग मतलब दस-बारह आदमी। उनमें कस्टम्स का भी एक था। कोई-कोई घर के भीतर आकर खड़ा हो गया था, कोई-कोई दरवाज़े के बाहर। जो लोग दरवाज़े के बाहर थे, वे चिल्ला कर बोले, "क्या कहना है सर, कहिये। बारिश से यहाँ खड़ा नहीं हुआ जा रहा है।"

"तो वहाँ बारिश से भीगते-भीगते क्या बात करेंगे। भीतर आ जाओ।" कहते हुए कमांडेंट कुर्सी से उठकर अपनी कुर्सी पर जा बैठा था। कमांडेंट अब तक जिस कुर्सी पर बैठा था, उसे खींच कर विभूति घोष पीछे की ओर ले गया। कस्टम्स वाले सज्जन अंदर आकर उस कुर्सी पर बैठ गये थे। उसके पीछे-पीछे और सब भी घर के अंदर चले आये थे। कमांडेंट ने कहा, "दरवाज़ा बंद कर दो।"

दरवाज़े के निकट जो था उसने दरवाज़ा उढ़का दिया।

"सुन तो लिया है सब, तो फिर तुम लोग कहो कि क्या किया जाये।"

"इसमें हमारे कहने-न-कहने का क्या है सर ? फ़्लड आने पर तो सामने

के चर पर जाना ही होगा।"

"तुम सबने सुन लिया है न, बाङ्लादेश के कमांडर ने हमसे अपने कैंप में रात बिताने का अनुरोध किया है।"

"तो फिर चलिये। जाना हो तो अभी ही जाना ठीक होगा। वरना शाम होने पर जाने से तो और ही खतरा है।"

"पूरे कैंप में ताला लगाकर चले जायेंगे सब ?" कमांडेंट ने सवाल किया। "दरअसल जलपाईगुड़ी के साथ एक कनेक्शन हो जाता तो कोई दिक्क़त ही न थी। परन्तु हेडक्वार्टर के परमिशन के बगैर कैंप को इस तरह बंद कर दें ?" कमांडेंट चुप हो गया। दूसरे लोग भी समस्या को लेकर विचार करने लगे।

"अरे कौन था एक्सचेंज में ?" कमांडेंट ने एक की ओर देखा।

"मैं था," किशोरीचन्द ने कहा। हवा के झोंके से दरवाजा इतनी ज़ोर से खुला कि दरवाज़े के जवाबी धक्के से फिर खुद-ब-खुद बंद भी हो गया। किसी ने दरवाज़े को जोर से बंद करके साँकल चढ़ा दी। फलस्वरूप हवा की आवाज कम हो गयी।

"क्या · कोई मैसेज मिला ?"

"नहीं, नहीं। ऑल डेड।"

"कूचविहार भी डेड ?"

"कूचविहार भी डेड।"

"जैसा कूचविहार वैसा जलपाईगुड़ी। सर, इस तरह के फ्लड में हमें कब मैसेज मिलता है ? हर कहीं तो पानी है।"

"हाँ, और याद भी किसे है कि यहाँ तिस्ता के मुहाने पर एक इंडिया भी है ?" कमांडेंट की आवाज में जैसे विषाद घुल गया था। इस विषाद में वह एक बार दरवाज़े से बाहर देखना चाहा था। दरवाजा बंद होने से बाहर तो दिखायी नहीं दिया, पर वह उधर ही ताकता रहा।

"तो फिर क्या किया जाये ? यह तो आप लोगों को ही तय करना है। वक्त भी तो और नहीं है हमारे पास।" विभूति ने स्टूल पर बैठे-बैठे ही कहा।

"अच्छा, तो इस बारे में इतना सोच-विचार करने का क्या है ? यहाँ बाढ़ का पानी आ रहा है। आप लोग क्या बाढ़ में बह जाना चाहते हैं ? अगर बह जाना चाहते हैं तो बह जायें, और अगर बह जाना नहीं चाहते तो फिर बाङ्लादेश के कैंप पर चलिये।" कस्टम्स का आदमी बोला।

कमांडेंट उसकी ओर देखता रहता। उसकी नजर से मालूम होता था कि वह कुछ और ही सोच रहा था।

"आप तो सोच रहे हैं कि इंडिया छोड़कर बाङ्लादेश जायें या न जायें ? तो आपके यहाँ बाङ्लादेश को छोड़ और कोई देश नहीं है। जायेंगे तो कहाँ ?"

कस्टम वाला सज्जन फिर से बोला।

कमांडेंट तो उसकी ओर देखता ही रहा था। अबकी उसके होंठों पर मुस्कान नज़र आयी।

"फिर कैंप कहाँ छोड़ रहे है ? बाङ्‌लादेश के केंप से टार्च डालते ही तो नज़र आयेगा। न हो तो रात में आकर कोई एक बार देख जायेगा।" कस्टम वाले का कहना जारी था, "बात तो रात के सिर्फ कुछ घंटों की है। इसे लेकर इतना सोच-विचार करने का क्या है ?"

"अगर हेडक्वार्टर्स से कोई मैसेज आ जाये ?" कमाडेंट ने पूछा।

"नो रिप्लाई होगा। समझ जायेगे कि बाढ़ में सब नष्ट हो गया है।" बटुक वर्मन ने जवाब दिया।

कमांडेंट सीधा होकर बैठ गया था, "तो सुनिए, फिर अभी ही मूव करिये। सब कोई फुल यूनिफार्म के साथ।"

"यूनिफार्म तो भीग कर बोझ हो जायेगा," बटुक वर्मन ने कहा।

"क्यों ? तुम्हारा वाटरप्रूफ़ नही है क्या ? नहीं। यूनिफाम के बगैर बाङ्‌लादेश के कैंप पर नही जाया जा सकता। फुल यूनिफार्म विद आर्म्स।"

"आर्म्स लेकर करेगे क्या ?"

"इतने सारे आर्म्स क्या हम यहाँ ऐसे ही छोड़कर चले जायेगे ? तो फिर जाने की कोई जरूरत ही नहीं।" कमांडेंट ने अपना फैसला सुनाया।

"हमारे लेने के बाद भी तो कुछ रहेगा ही यहां।"

"वह सब में ऑर्डर कर दे रहा हूं। तीन एक्स्ट्रा सन्तरी ड्यूटी पर रहेंगे, आर्मरी की छत पर। वहां ट्रिपाल फिट करेंगे। क्विक। और सब—इन फुल यूनिफ़ार्म विद आर्म्स टु बाङ्‌लादेश कैंप," कहकर कमांडेंट उठकर खड़ा हो गया।

112
'टु बाङ्‌लादेश विद आर्म्स' : प्रस्तुति

कई दिनों की इस बारिश और तूफान से पूरा-का-पूरा कैंप जैसे धीरे-धीरे धँसता ही चला गया था। कैंप की चहल-पहल और शोरगुल मंद पड़ता जा रहा था। बुधवार की बात छोड़ भी दें तो भी वृहस्पतिवार दोपहर से यह बारिश जैसे कैंप को निगल ही गयी थी। शायद इसके भीतर कोई नियम सबके अज्ञान में ही काम करता था। आमतौर पर रात भर बारिश होने बाद सुबह धूप निकल आती है। उससे किसी का कुछ आता-जाता नहीं है, बल्कि रात भर की बारिश के बाद थोड़ा आराम से घूमना-फिरना हो जाता है। तमाम बरसात में दो-चार बार ही रात की बारिश सुबह तक नहीं छूटती। सारा दिन होने के बाद भी शाम

को बारिश होती रहती है। कभी-कभी रात को भी। और अगले दिन प्रायः आकाश साफ हो जाता है। उस पर भी किसी का कोई कामकाज रुकना नहीं है– बरसात के मौसम मे अगर दो-चार बार इस तरह की बारिश न हो तो फिर कैसे चलेगा ? पर दो रात होने पर भी बारिश रुकी नहीं, तीसरी रात को और बढ़ती ही चली गयी और उस रात के बीत जाने पर भी देखा गया कि आकाश जमीन पर ही झुक आया है और बारिश का जोर बढ़ता ही जा रहा है, हवा के झोंके से बारिश का पानी शून्य में इधर उधर बिखरे जा रहा है–वह बारिश धीरे-धीरे समूचे कैंप को अपनी गिरफ्त में जकड़ लेती है। ऐसे मे तो कामकाज भी कुछ नहीं है। फिर भी सुबह पी टी, हफ्ता में एक दिन रूट मार्च, सब्ज़ी की बागवानी, ड्यूटी शिफ्ट, दिन रात एक एक ग्रुप का सीमांत इलाके में चौकी देना–इन सब कामों के बीच दिन तो एक तरह की व्यस्तता में बीत जाता है। पर इस तरह के हवा पानी मे वह सब काम भी एक-एक करके बंद हो गया था। पी टी सबसे पहले बंद हुई। रूट मार्च का तो सवाल ही नहीं उठता ड्यूटी शिफ्ट नियमानुसार चलता रहा, पर आमरी के बरामदे के अलावा दूसरा कहीं वह समझ मे ही नहीं आता। दो-एक ग्रुप वाटरप्रूफ से लिपटी हुई छोटी चौकी पर जाते थे, पर वह भी शरीर का आलस तोड़ने के लिये। खाना-पीना भी एक मात्र हो जाता था। रात-दिन सो, बैठकर या ताश खेलकर, ही समय किसी तरह से फिर नहीं कटता। कभी-कभी तो ऐसा लगता था जैसे इस कैंप मे लोग-बाग रहते ही नहीं। आलस मिटाने के लिये अचानक किसी किसी की चीख जो होती, उसके सिवा मनुष्यों का कोई स्वाभाविक स्वर नहीं सुनायी पड़ता था।

कमांडेंट के हुक्म देते ही अचानक तमाम कैंप जैसे जाग उठा था। हवा के झकोरे के बीच भी सुनायी देने वाली तेज आवाज मे एक-दूसरे को बुलाने की, चीख पुकार तक शुरू हो गयी थी। जो मैदान पिछले कई दिनों से खाली पड़ा था, उसमें वाटरप्रूफ से सर ढँककर कोई दौड़ा चला गया। फिर कोई पीठ पर वाटरप्रूफ़ रख पानी की बौछार को रोकता हुआ बरामदे मे कोई काम ख़त्म करने लगा। पीछे की ओर से तरह-तरह की चीख-पुकार सुनायी देने लगी। आवाज उठने लगी। बांग्लादेश कैंप के न्यौते ने पूरे कैंप को ही जगा दिया था।

उपेन, रामाशीष और आसिंदर आमरी की छत पर चढ़कर तिरपाल बाँध रहे थे। हाथ के ऊपर लोहे की पाइप थी। उस पाइप को फिट करने के लिये छत के बीच बड़ा-सा नल लगा हुआ था। उन नलों में पाइप घुसा-घुसाकर नट-बोल्ट लगाना था। उपेन नट-बोल्ट लगा रहा था और कस रहा था। और रामाशीष और आसिंदर नीचे से लकड़ी के जरिये तिरपाल को खींचकर फैलाकर पकड़े हुए थे। तिरपाल काफी भारी था –बीच मे एक छोटा बाँस डाल कंधे से दोनों ओर ढोकर चलते हुए वे उसे उठाकर सीधा कर रहे थे। रामाशीष ऊपर

था और आसिंदर नीचे। बॉस के बीचोंबीच पहुँचते ही रामाशीष की ओर से खिसककर तिरपाल आसिंदिर की ओर चला गया था। तिरपाल का पूरा ही वज़न आसिंदर पर जा गिरा था।

"अरे, खड़े क्यों हो, खड़े क्यों हो गये." कहते-कहते आसिंदर दायें हाथ से बॉस को ऊँचा करते हुए चिल्लाया, "तिरपाल को खींच ले रामाशीष, खींच ले।"

रामाशीष ने बॉस को एक तरफ़ से उचका कर दायें हाथ से बॉस को पकड़े रखा और बायें हाथ से तिरपाल को खींचा, पर उसे हिला नहीं सका। फिर एक बार ज़ोर से खींचा, फिर भी तिरपाल नहीं हिला।

"क्यों, तिरपाल तो ठीक है न रे ?" रामाशीष ने पूछा।

"अरे ठीक है कि नहीं, वह तो टॉगने के बाद ही पता चलेगा। अभी बॉस को झुका क्यों रहा है ?" आसिंदर की बात सुनकर रामाशीष अपनी ओर के बॉस को ऊपर रखकर फिर से झकझोरने लगा और तिरपाल को दोनों हाथों में खींचा। पहले काफ़ी सावधानी से खींचा। उसके शरीर पर वाटरप्रूफ था, पर पैर ख़ाली। ज़ोर से खींचने पर अगर फिसल गया तो बांस से निकलकर तिरपाल आसिंदिर को लिये-दिये एकबारगी ज़मीन पर जा गिरेगा। पहले थोड़ा सा खींच कर परख लेने के बाद उसने दोनों हाथों से दूसरी बार ज़ोर लगाकर खींचा। खींचते ही तिरपाल सड़ाक् से आ गया।

"ठहरो, ठहरो" कहता हुआ रामाशीष अबकी बार आने पर बॉस को ओर ऊपर उठाकर तिरपाल के पास में होते हुए दो क़दम उतर आया, फिर तिरपाल के नीचे से बाँस को पकड़ लिया।

"हाँ, थोड़ा-सा ज़ोर लगाओ" कहता हुआ वह बॉस को पीछे की ओर से खींचा, आसिंदर भी बॉस को पकड़े रहा।

इस तरह से रामाशीष के तीन सीढ़ियां चढ़ते ही बॉस का सिरा हाथ के ऊपर उठ गया। रामाशीष चिल्लाया, "रे उपेन, पकड़ो भाई जल्दी से।" उपेन आकर बाँस के सिरे में पैर रखकर खड़ा हो गया, उसके हाथ में रेंच और प्लायर्स था। आसिंदर और रामाशीष अबकी बॉस को ऊँचा करते-करते बाँस की बनी सीढ़ी पर चढ़ने लगे। इससे उसके हाथ का बाँस भी ऊँचा उठ गया। तिरपाल को लुढ़काते ही वह हाथ के ऊपर आ गया। उपेन ने बॉस को पकड़ लिया। बॉस को हाथ के ऊपर फेंक कर वह फिर से नट-बोल्ट टाइट करने लगा था।

छत के पूरब और पश्चिम में तीन—और तीन छह ट्यूब लगे थे। बीच का ट्यूब ऊँचा था, दोनों ओर बराबर नीचे झुका हुआ। इन छहों ट्यूबों के लग जाने के बाद आड़ा-आड़ी में तीन और ट्यूब फिट करने थे। फिर उस पर तिरपाल फैलाया जायेगा। उपेन सब खड़े ट्यूब लगा चुका था। रामाशीष उन्हें

हिला-हिलाकर परख रहा था। फिर पूरब वाले दो ट्यूबों को टाइट किया। तब तक आसिंदर और उपेन आड़े ट्यूब लेकर पहले लाइन के खड़े ट्यूब के साथ लगाने लगे। इसके लिये ट्यूबों के सिरों में बीच कटा था और दोनों ओर सुराख़ थे। नट, बोल्ट सब उपेन के पॉकेट में थे। वह पॉकेट में हाथ डालकर एक नट निकालता और ट्यूबों के बीच घुसा कर हाथ से बोल्ट कसता था। उसके लिये आसिंदर को विपरीत दिशा से ट्यूब को उठाकर पकड़े रखना होता था।

एक ओर का बोल्ट लगाकर, आसिंदर की तरफ़ आकर उस ओर के नट-बोल्ट लगाना उपेन के शुरू करते ही रामाशीष आकर उपेन का लगाये नट-बोल्ट को टाइट करने लगा। आसिंदिर जाकर तिरपाल का तह लंबाई में खोलने लगा। खोलने के लिये उसे तिरपाल को दोनों हाथों से खींचना पड़ा--फिर तहों को खोलते हुए आगे बढ़ना पड़ा। तहों को खोलने के बाद आसिंदर ने देखा कि रस्सी नहीं है। अब तिरपाल के दोनों सिरे और बीच में रस्सी बाँधकर, ट्यूब के ऊपर फैलाकर उधर से खींचना होगा। आसिंदिर बाँस की ओर बढ़ते हुए बोला, "जरा रुक जाओ, मैं रस्सा लेकर आता हूँ।"

आसिंदर के नायलॉन की रस्सी लेकर आते-आते ही रामाशीष और उपेन का ट्यूब फिट करना हो गया था। उसके बाद रस्सी बाँधकर खींचकर तिरपाल को उठाने समय वह फँस गया। आसिंदर के रस्सी को बाद के ट्यूब में बाँधकर तिरपाल को बाँस से ठेलते ही वह ट्यूब के ऊपर चला जाता है। उसके बाद फिर से बाद वाले ट्यूब में, जो थोड़ा ऊँचा था, उस पर उठाया गया।

आमरी की छत पर छावनी बन गयी थी।

113

बाङ्लादेश की ओर रवानगी

इस बीच उस झंडेवाले या पीटी मैदान में एक-एक होकर सभी लोग जमा हो गये थे। अब और बारिश के भय से कोई बरामदे में नहीं खड़ा था। सभी को बरामदा छोड़कर धरती पर उतरने का उतावलापन था। हर कोई यूनिफ़ॉर्म, गमबूट और सिर और बदन पर वाटरप्रूफ़ पहन चुका था। विभूति घोष खड़ा खड़ा ह्विसिल बजा रहा था।

बटुक वर्मन, पारसमणि सुंदास, आसादू और पंचानन खींचते-खींचते और ठेलते-ठेलते एक ठेलागाड़ी लिये आ रहे थे पीछे से। यह गाड़ी देखने में बहुत कुछ जीप की ट्राली जैसी थी। बड़े-बड़े टायर का पहिया, सामने लकड़ी के दो ऊँचे-ऊँचे दंड, ठीक जुआली की तरह। उसे घर में खींचा जाता है या फिर गाड़ी के पीछे फिट कर दिया जाता है। उन्होंने गाड़ी को खींच कर लाकर वहाँ रख

दिया और फिर लौट गये।

अबकी बार वे एक-एक चीज़ को कंधे पर उठाकर ठेला पर रख रहे थे—दो पाठे, दो बंडल केले का पत्ता, पॉलीथिन की चादर से मुड़े छोटे-छोटे कुछ पैकेट। दोनों पाठे ठेले में पहले इधर-उधर देखते रहे, फिर पास के ढक्कन को पैर से पार करना चाहते थे। पर कई बार पीछे जाते ही उनकी समझ में आ गया कि उस पर चढ़ा नहीं जा सकता। तब वे ठेले के बीच में खड़े होकर कई बार चिल्लाने के बाद चुप हो गये थे। शायद इतने समय में उनकी हालत में किसी तरह का बदलाव न होने से ख़तरे की आशंका शायद कट गयी थी। फिर भी दबे गले से एक बार हल्का-सा 'में-में' करने लगते हैं। एक साथ मिलकर नहीं, एक के बाद एक।

बहुत से जवान तब तक बारिश मे आकर खड़े हो चुके थे। हवा उनके ऊपर टूट पड रही थी. पानी की बौछार उनके चेहरे पर जैसे सुई चुभो रही हो। पर इन सबके बावजूद भी उन्हे जैसे इस हवा-पानी में खड़े होने में मजा आ रहा था। इतने सारे लोगों का आकर इस मैदान में, इस तरह खड़े होने पर ही जैसे बारिश और हवा को अस्वीकार कर दिया गया था।

कमांडेंट अपने घर से नीचे उतर आया था सीढ़ी पर से धीरे धीरे। उसके सिर और शरीर पर कोई वाटरप्रूफ़ नहीं था। सीढ़ी पर पैर रखते ही वह हवा और बारिश की चपेट में आ गया था। एक जवान दौड़ कर कमांडेंट के घर से वाटरप्रूफ ले आया। तब तक हवा और बारिश से भीगते हुए कमांडेंट ठेले की ओर कुछ क़दम बढ़ चुके थे। उस जवान ने पीछे से वाटरप्रूफ फैलाकर बुलाया, "सर।" कमांडेंट ने खड़े होकर दोनों हाथ पीछे की ओर बढ़ा दिया। बोला, "यह बारिश क्या इस कोट से संभलेगा ?" कहते-कहते बारिश में खड़े-खड़े कमांडेंट ने कोट पहनता ली, पर बटन नहीं लगाया। उसके बाद टोपी लेकर, गीले सिर पर रखने ही जा रहा था कि जवान ने कहा, "सर, माथा पोंछ लीजिये।"

कमांडेंट ने हाथ बढ़ाया। जवान दौड़ा-दौड़ा ठेले के पास गया और एक पोलीथिन बैग में से तोलिया लेकर दौड़ा आया। तब तक कमांडेंट दो क़दम और बढ़ चुका था। खड़ा होकर सिर पोंछने के बाद टोपी सिर पर पहन लिया।

"क्यों घोष। चलो स्टॉर्ट करो। तुमने सब तैयारी-वैयारी कर ली है न ?"

"आर्मरी में कितने जन की पहरेदारी होगी, तीन या छह आदमी ? आर्मरी के ऊपर तिरपाल भी तान दिया गया है। पानी अगर आर्मरी में भी घुसे, तो आर्म्स-एम्युनेशन को हाथ में उठा रखेंगे। यही तो व्यवस्था है न। बाक़ी सब चल रहे हैं !'

"तो फिर चलो। देर करने से क्या लाभ ?"

गाड़ी के अंदर से एक पाठा दबे स्वर में चिल्लाया—"में में"। दूसरे पाठे जैसे उस आवाज़ के साथ ताल मिलाने के लिये थोडी नीची आवाज़ में बोले, "में ।"

"क्यों, फॉल इन कराया क्या ?" घोष ने पूछा।

"करो, मार्च करते हुए चलना होगा।" कमांडेंट ने कहा।

"फॉल इन करते हुए इस गाड़ी को कैसे लिया जा सकता है ?" बटुक ने सवाल किया।

कमांडेंट ने घोष की ओर देखा। कमांडेंट फिर बोला, "तो फिर ऐसे ही चलो।"

घोष ने मुंह में सीटी लगाकर फिर निकाल लिया। "नहीं। फॉल इन करना ही होगा ? फॉल इन करते हुए आर्मरी में जाकर आर्म्स लेना होगा। उसके बाद फिर से फॉल इन। उसके बाद डिसपर्स।"

कमांडेंट के गर्दन हिलाते ही घोष ने चिल्लाकर हुक्म दिया, 'फा-अ-ल-इन।"

जो खड़े थे, वे दो दो की कतार में खडे हो गये। जो कमरे में या बरामदे में थे, उनमें तब हड़बड़ी मच गयी। कोई कोई बरामदे से कूदकर मैदान में आ गये थे, और आते ही दौड लगायी। गमबूट से कीचड पर दौडने की आवाज हवा की आवाज से भी ऊपर सुनायी देती थी। उस आवाज के बीच ही फिर से घोष का हुक्म सुनायी दिया, "अटेन्शन"।

तभी भीतर से किसी के दौड़कर आने की आवाज बरामदे से सुनायी दी। फिर अचानक रुक गयी। बरामदे से मैदान में कूद कर वे लाइन के पीछे जाकर खड़े हो गये। घोष के हुकुम से लाइन बढ़नी शुरू हो गयी। घोष पास-पास चलता हुआ "लेफ्ट-लेफ्ट" करता हुआ आर्मरी की ओर बढ गया था। लाइन जब आर्मरी के पास पहुँची तभी एक आदमी एक हाथ में एक जोड़ा गमबूट झुलाये नंगे पैर बरसात में दौड़ता हुआ लाइन के आख़िर में आ खडा हुआ।

आर्मरी से वे अपनी-अपनी राइफल लेकर निकल आये थे। और फिर से लाइन में खड़े होने लगे। आर्मरी के अंदर भी क़तार बाँध कर सब एक-एक कर के घुसते थे। जहाँ जिसकी राइफल थी, वहाँ से उसे लेकर कंधे में झुला फिर से लाइन में खड़ा होते न-होते कई बार उचका कर राइफल को कंधे में फिट कर लेते थे। यहाँ तक कि लाइन में खड़े हो जाने के बाद भी कंधा उचका कर राइफल को ठीक कर लेने की प्रक्रिया जारी थी।

इस लाइन के सभी के कंधों पर बंदूक़ हो जाने के बाद पूरे-के-पूरे लाइन का चेहरा जैसे बदल गया था। अब तक थी वाटरप्रूफ़, गमबूट और टोपी की लाइन। देखते ही बादल बरसात की बात याद आ जाती थी। पर बंदूक़ के कंधे

पर आते ही बादल-बरसात बेमानी हो जाता है। यहाँ तक कि यह जो हवा इस बँधी हुई क़तार को झकझोर रही थी, और टोपी को भेद कर भी बारिश छुरी चुभो रही थी यह सब जैसे धूप की तरह स्वाभाविक हो जाती थी। उस स्वाभाविकता को मान कर ही यह पूरी की पूरी लाइन ने कंधे पर राइफल उठा लिया था और राइफल उठाते ही इस वाहिनी का पेशागत परिचय ही जैसे मुख्य हो उठा था—भारत की सीमा की रक्षा का काम।

कमांडेंट ने घोष को बोला, "मार्च कराके थोड़ी दूर ले चलो। फिर छोड़ दो।"

एक जवान आकर कमांडेंट के सामने खड़ा हो गया और बेल्ट के साथ उसका रिवॉल्वर बढ़ा दिया। कमांडेंट के वाटरप्रूफ़ को थोड़ा हटाते ही उसकी कमर में बेल्ट को बाँध दिया। घोष ने निर्देश दिया, "हाँ, तुम चार लोग गाड़ी को ले आओ। अ-टे-न-स-न !"

उनके पाँवों में बूट न होने से 'खट्' की आवाज़ नहीं होती। पर इस ओर अगली बार जैसे कोई भागदौड़ नहीं थी। सभी अपनी-अपनी जगह खड़े थे। घोष का आदेश पाते ही पूरी की पूरी लाइन एक छंद में चलना शुरू कर देती थी। उनके दायें कंधे के ऊपर की शून्यता में माथे के पास राइफल की नाल डोल उठी थी, ग्रुप के चलने के छंद के मुताबिक ही डोल उठा।

पूरी लाइन घासवन की दिशा में बढ़ती चली गयी। घासवन के भीतर उनका पहला क़दम पड़ते ही बरसात से झुके घास से ढँका रास्ता क़दम-दर-क़दम साफ़ होता जा रहा था।

114

बाढ़, तूफ़ान के मुँह में दो पाठे

घासवन के अंदर पूरी क़तार के प्रवेश करते ही घोष ने आदेश देना बंद कर दिया। लाइन पर चलता रहा उसी क़ायदे से, जैसे उन्हें पहले से ही ऑर्डर दे दिया गया हो। इस पथ में लाइन तोड़कर चलने की जगह भी नहीं थी। बस इस समय ताल से ताल, क़दम से क़दम मिलाकर चलने का अभ्यास भर था। पर धीरे-धीरे हवा के धक्के से वाटरप्रूफ के कॉलर और दामन के फड़फड़ाने की आवाज़ बढ़ती जा रही थी। फिर उनके चलने का एक समवेत स्वर सुनायी पड़ता था। और फिर धीरे से इस लाइन के साँस की आवाज़ भी इस हवा-तूफ़ान में अलग से सुनायी देने लगी थी।

जो रास्ता अब घास से ढँका हुआ था वह पगडंडी नहीं थी। बॉर्डर कैंप से पत्थर और ईंट के टुकड़े लाकर पीट-कूट कर यह रास्ता बनाया गया था।

साल में एक बार रास्ते की मरम्मत की जाती थी, इससे रास्ते की टूट-फूट ठीक हो जाती थी। लाइन के पीछे की गाड़ी को दो आदमी ठेलते आ रहे थे। और दो आदमी खींच रहे थे। उनकी बंदूक़ें गाड़ी के भीतर रखी हुई थीं। गाड़ी के ऊपर तिरपाल से ढँका गया था। वह हवा के झकोरे से फूल उठने पर भी उड़ता नहीं था। एक-एक ओर तीन-तीन बार तहाए हुए तिरपाल के किनारे के छेद में स्क्रू के डंडे डालकर तहाया गया था। हवा के झोंके से तिरपाल के थोड़ा-सा ऊँचा उठ जाने पर अंदर से हवा घुस जाती थी—उसके बाद कुछ पल के लिये दोनों पाठे चुप हो जाते थे।

पानी में भींगी घास जो झुककर रास्ते को ढँक लेती थी, उसके ख़त्म होने के पहले ही तिस्ता की आवाज़ कानों में पड़ने लगी थी। कमांडेंट लाइन के पीछे-पीछे जा रहा था। लाइन के बीच से घोष अलग हटकर खड़ा हो गया था, फिर कमांडेंट की ओर घूमकर बोला, "नदी की आवाज़ सुन रहे हैं ?"

कमांडेंट वहा नदी के शोर को साफ़-साफ़ अलग से पहचान नहीं पा रहा था। उसने पूछने के भाव से गर्दन घुमायी। तब तक लाइन कुछ और आगे बढ़ गयी थी। घोष ने तभी चिल्लाकर कहा, "नदी की आवाज़।" अबकी कमांडेंट ने स्वीकृति में सिर हिलाया।

घासवन के अंत में वही लकड़ी के खूँटों पर ऊपर में बना संतरी बाक्स। सही मायने में कहें तो एक ही कमरा था, दरवाज़े भी थे। हवा से दरवाज़ा खुल, बंद हो रहा था। कमांडेंट एकबार देखकर चिल्लाया, "अरे, इस दरवाज़े को बंद करके आओ।" कहते हुए वह रुक गया। फिर बोला, "लास्ट ड्यूटी में कौन था ? दरवाज़ा खुला छोड़कर ही सब चले आये ?" लाइन में सबसे पीछे कमांडेंट के सामने जो दो आदमी थे, उनकी बायीं ओर का जवान लाइन से निकल कर लकड़ी की सीढ़ी से ऊपर चला गया था उसके पहुँचते-न-पहुँचते ही दरवाज़ा दो बार खुला-बंद हुआ। पर ये संतरी बॉक्स बड़े-बड़े लकड़ी और खूँटे, बड़े-बड़े कील और नट बोल्ट से इस तरह से बने हुए थे कि कमरा आड़ा-तिरछा हो जाता था। इसी वजह से दरवाज़ा ज़ोर-ज़ोर से धक्का नहीं मारता था।

संतरी बॉक्स के नीचे कँटीले तार के बेड़े के भीतर गेट था—जहाँ दो आदमी सामने थे, उन्होंने गेट की खूँटी में मुड़े तार को खोल कर गेट को धक्का दिया। उस फाँक से ही पूरे दस्ते को ज़रा बायें घूमकर बाहर निकलना पड़ा। इस तरह से निकलते हुए लाइन टूट गयी थी। बाहर निकल कर फिर कोई क़तार में नहीं आया। गेट से निकलते ही कोई-कोई घूमकर खड़ा हो गया था, तो कोई-कोई दोनों हाथ ऊपर उठाकर अँगड़ाई लेने लगा था और कोई-कोई दायीं ओर घूमकर चलता चला गया बग़ैर रुके।

यहाँ चारों ओर हरी-हरी घास और घास के बीच कीचड़ भरा हुआ था।

दायें मुड़े बगैर सीधा जाने पर नदी थी। घास वन के अंदर से जाते समय हवा की जो आवाज़ उठ रही थी, गेट पार होते ही वह आवाज़ काफ़ी हद तक बदल गयी थी। पर बदलने की तो कोई बात न थी—एक कँटीले तार के बेड़े से हवा की आवाज़ फिर क्योंकर बदलने लगी। हवा तो जस की तस, उसी प्रकार से बह रही थी, बारिश का तीर भी ठीक उसी तरह से ही बरस रहा था, पर इनके चलने का ढंग ही कुछ बदल गया था। अब तक पंक्तिबद्ध हो चलने की एक अलग ही आवाज़ थी, पर वह आवाज़ अब नहीं थी। घास से ढँके पथ में काफ़ी सावधानी से देख-देख कर क़दम रखना पड़ रहा था। पर अभी वैसा नहीं था। फलतः नदी और हवा की आवाज़ मिलकर जो झंकार तैयार हो रही थी, वह सुनायी दे रही थी। और एक बार कान में सुनायी पड़ते कोई दूसरी आवाज सुनायी नहीं पड़ती।

गाड़ी आकर गेट पर रुक गयी। जो चार व्यक्ति गाड़ी को लेकर आ रहे थे, उनमें से एक ने आगे बढ़कर गेट को ठेल कर खोल दिया। पर गेट अधिक नहीं खुला। और एक बार ज़ोर से धक्का देने पर गेट के ऊपर का हिस्सा तो हिला, पर नीचे का भाग सरका नहीं। यह गेट तो इस तरह से ही बना था, फिर कभी गेट को पूरा खोलने की आवश्यकता ही नही पड़ती थी। उपेन ने जाकर मिट्टी देखी और चिल्लाया, "अरे ठेलने से खुलेगा कैसे ? देखते नही, यहाँ मिट्टी ऊँची कर दी गयी है।

"मिट्टी को काट दो," कमांडेंट के कहते ही उपन गेट को पकड़ कर खड़ा हो गया और पैर से मिट्टी के ढेर को लात मारने लगा। नरम मिट्टी में पैर धँसने से गड्ढा हो जाता था। गेट पर ज़ोर लगाते ही कुछ खुल गया, साथ ही पीछे के जवानों ने धक्का देकर गाड़ी को गेट के भीतर घुसा दिया, थोड़ा-सा आगे बढ़कर गाड़ी फिर से रुक गयी। उपेन के पास तब बटुक वर्मन जाकर खड़ा था। वह देखकर चिल्लाया, "अरे गेट को उठाकर क्यों नहीं पकड़ते ? उठाकर पकड़ो।" कहते-कहते वह खुद गेट को पकड़ कर खींचने लगा। उपेन ने भी हाथ लगा दिया। उपेन की बंदूक़ डोल कर सामने आ गयी थी। उसने उसे पीछे की ओर ठेल दिया। और दो आदमियों के आकर हाथ लगाते ही गेट थोड़ा ऊँचा उठ गया। पीछे के जवानों के गाड़ी को धक्का लगाते ही गाड़ी आगे बढ़ आयी पर पहिया अटक गया था। उपेन गेट को उठाये-उठाये चिल्लाया—इधर से खींचो और उधर से ठेलो। गाड़ी के बायें भाग को भीतर घुसाने के लिये दो जवान खींचने लगे पर गाड़ी सीधी नहीं होती थी। कमांडेंट जाकर उल्टी ओर से ठेलने लगा। कमांडेंट के साथ और दो आदमियों के हाथ लगाते ही गाड़ी की जुआली फट कर बायीं घोर घूम गयी—किसी के सिर पर भी लग सकती थी, पर गाड़ी का दायाँ पहिया गेट के बाहर निकल आया था। अबकी बार सबके मिलकर

जुआल को पकड़ कर खींचते ही गाडी बायीं ओर मुँह किये गेट पार हो गयी।

कमांडेंट ने कहा, "गेट बंद कर दो !"

घोष बोला, "हां, नही तो फ़्लड का पानी घुस जायेगा।"

कमांडेंट ने कहा, "सब बात का जो जवाब है घोष। पर यह जो गेट है, यह रोज खुलना बद होना चाहिये। वह होता क्यो नहीं है ?"

तब तक गाडी को मोड़ा जा चुका था। फिर से चलना शुरू हो गया था। जो आगे बढ गये थे, वे इन्हें यहाँ खडा देख फिर से इधर आने लगे थे। पर गाड़ी को देख फिर से खड़े हो गये थे। फिर से मुड़कर सीधा चलना शुरू कर दिया था।

"घोष सबसे कह दो कि बाड़्लादेश कैंप के सामने सब फिर से पंक्तिबद्ध हो जायें। वहाँ मार्च करते हुए ही जाना होगा।" कमाडेंट ने कहा। घोष ने एक जवान के जरिये खबर आगे पहुँचवा दी। वह जवान दौडना शुरू कर दिया, पर वाटरप्रूफ़ और हवा के धक्के से अपेक्षित गति पकड़ नहीं पाया।

"घोष, चलो नदी को देखते-देखते ही चलते हैं," कहता हुआ कमांडेट एक कोण से नदी की ओर बढना शुरू कर दिया था।

अब तक पूरा-का पूरा ग्रुप चार हिस्सों में बँट चुका था। सबसे पहले एक हिस्सा बढ गया था। और जो गाडी को निकालने के लिये गेट को खोलने में व्यस्त थे, वे भी एक दल बनाकर आगे बढ़ रहे थे। कमाडेंट घोष और दो जवान नदी की ओर जा रहे थे। और गाडी लेकर अब छह आदमी चल रहे थे। जिस जवान को घोष ने भेजा था आगे ग्रुप को ख़बर देने के लिये, वही ग्रुप दल से अलग होकर बढता जा रहा था।

भारत के इस सीमा सुरक्षा बल में स्थानीय लोगो के साथ पश्चिम-बंग के विभिन्न ज़िलो के लोग भी थे। नदिया के सबसे अधिक थे। कमांडेंट भी जैसे पश्चिम बंग के न होकर बांग्लादेश के थे। कुछ नेपाली थे, कुछ बिहारी भी थे। तिनेक पंजाबी भी थे, उनका ट्रासफ़र हो गया था। दहग्राम जैसे एक 'इंडिया' ही हो, जिसे फ़्लड के समय इंडिया ने ही भुला दिया था—साफ़ हो गया है कि 'इंडिया' एक काफ़ी बड़ा देश है।

115
देश के लिये दुःख

नदी के निकट तक कमांडेंट को जाना नहीं पड़ा, उससे पहले ही कहीं-कहीं नदी उनके निकट चली आयी थी। यह मैदान तो सभी ओर समतल नहीं था, कहीं काफ़ी नीचा, तो कहीं ऊँचा। उन सब निचली जगहों में नदी का पानी घुस आया था।

और उन जगहों पर पानी जिस तेज़ी से घुस रहा था, उससे लगता था कि और कुछ देर में यह किनारा बिल्कुल ही डूब जायेगा। कमांडेंट ऐसी ही एक जगह पर खड़ा-खड़ा देख रहा था कि नदी का पानी आकर इन सब निचली ज़मीन के किनारे पर टकरा-टकरा कर वापस जा रहा था, फिर नयी लहर आकर टकरा रही थी।

"घोष, देख रहे हो यह तमाशा ?"

"हाँ, यहाँ इस तरह का पानी, मतलब हमारे कैंप के उत्तर वाला दक्षिणपाड़ा तो अब तक बह गया होगा ?"

"कहाँ ? वे तो कैंप में आकर रहने की बात कर रहे थे, आये तो नहीं ?"

"समझ लिया होगा कि कैंप तो डूबेगा ही, इसी से शायद कहीं और चले गये होंगे।"

"और कहाँ जायेंगे ? बाक़ी तो सब फॉरेन लैंड हैं ?"

"फॉरेन लैंड में ही गये होंगे ? जाये बिना क्या-क्या बह जायेगा यहाँ ?"

वे नदी के और करीब जाने के लिये दो-चार कदम बढ़ते ही रुक गये। नदी का इस पार-उस पार तो दरकिनार, सामने थोड़ी दूर पर ही और नदी नज़र नहीं आ रही थी। नदी की खुली छाती के ऊपर आकाश और नदी को अब अलग करके देखा नहीं जा सकता था—उस शून्यता में हवा जैसे हहराते नदी की तरह बहे जा रही थी। परंतु विपरीत दिशा में। उस हवा में बारिश की बूँदें और पत्ते और मिट्टी पर पड़ नहीं पा रही थीं—हवा में सीधी होती जा रही थी, उड़ी जा रही थी, आकाश में ही आवर्त बना रही थी। और उससे नदी की छाती पर इस तरह का कुहासा बन गया था कि कुछ भी नज़र नहीं आ रहा था। मिट्टी की ढलान के मुताबिक नदी का स्रोत चल रहा था। इतना सारा जल इतनी सारे ढलानों से जब बह रहा था तो उसकी एक अलग आवाज़ निकल रही थी। आकाश में गूँजता हुआ। विपरीत दिशा की हवा के झकोरे से अब यह आवाज़ कई गुना ज़्यादा बढ़ गयी थी। हवा के झोंके और जल के स्रोत के टकराने से जो आवाज़ उठ रही थी उससे लगता था कि नदी अपने पाट से उठकर नया पाट बना लेगी।

दूर से ही एक चीख़ सुनायी पड़ी। कमांडेंट ने पूछा, "यह कैसी चीख़ है ?" घोष ने थोड़ा-सा ध्यान लगाकर सुना। फिर बोला, "चीख़ नहीं है, हमारे लड़के गीत गा रहे हैं।"

"तो फिर जल्दी-जल्दी चलो। वर्ना अँधेरा हो जायेगा। तुमने साथ में टॉर्च ले लिया है न ?" कमांडेंट ने पूछा।

"हाँ सर, टॉर्च है।" एक जवान के वाटरप्रूफ़ का बटन खोल कर टॉर्च दिखाने को उद्यत होते ही कमांडेंट ने कहा, "रहने दो, रहने दो, है यही काफ़ी है।"

वे नदी के किनारे-किनारे थोड़ा जल्दी-जल्दी चलने लगे थे। जल्दी-जल्दी

चलने से ही हवा का झोंका ज़ोर से लगता था, पॉव पीछे को हो जाता था, छाती और गर्दन आगे हो जाती थी। वे गर्दन नीचे करके चलने लगते—ताकि बरसात की मार चेहरे पर कम पड़े। कमांडेंट ने हाथ से एक बार चेहरा पोंछ लिया। इस हवा और बारिश के विपरीत इनकी यह चाल देखकर समझा जा सकता था कि इन सबकी सेहत कैसी है। वह सेहत सॉस की आवाज से प्रमाणित हो जाती थी--चार आदमियों के सॉसों की आवाज़ इस हवा, नदी की आवाज़ के भीतर भी सुनायी देती थी। कभी-कभी उन्हें छोटा-मोटा नाला पार होना पड़ रहा था- जहाँ नदी का जल छोटी-छोटी नालियों मे घुस आया था।

और थोड़ा बढ़ने पर वे गाडी के निकट पहुँच जाते थे।

दोनों पाठे अपनी रौ में चिल्लाये जा रहे थे। उनके और गाडी के बीच काफी जगह थी। चिल्लाने मे सुनायी नहीं देता था। घोष ने कहा, "दोनों पाठों को शायद तिरपाल से दाब कर ही मार दिया। सुनो, उन्हे जाकर तिरपाल खोल देने को कह दो।"

एक जवान के भागते ही कमांडेंट ने बुलाया, "घोष।"

घोष ने कोई जवाब नहीं दिया। पर कमांडेंट जब कुछ नही बोला तो घोष ने पूछा, "कुछ कह रहे थे सर ?"

कमांडेट ने चलते चलते घोष की ओर देखा। पर कुछ बोला नहीं। वे लोग काफी जल्दी-जल्दी चल रहे थे। सॉस जोर-ज़ोर से चलने लगी थी। कमांडेंट किसी सोच में था।

कमांडेंट फिर बोला, "घोष।"

घोष ने कहा, "कहिए।"

"आज तो पाठा-वाठा काट कर पिकनिक होगा न ?"

"हॉ, वह तो होगा ही। उन्होने तो न्यौता दिया है। हमारे पाठों को क्या हमें ही खिलायेंगे ?"

वह जवान जो आगे चला गया था, वह अब गाड़ी की ओर से वापस आ रहा था।

"हां, आज न हुआ कल तो उनका ही पाठा खाना पड़ेगा। उनके यहाँ पाठों की खेती तो है नहीं।"

"सो तो है ही। कह रहे हैं कि कल दोपहर तक भी यह बारिश खत्म होने का नहीं।"

"न हो ख़त्म तो न सही। बाङ्लादेश के कैंप में ही रह जायेंगे। छोड़ देने पर जायेंगे कहाँ ? पानी तो देख लिया न ? रात भर में सब कुछ बह जायेगा।"

"हाँ, वैसा तो लग रहा है। इधर की नदियाँ काफ़ी गड़बड़ी पैदा करने वाली हैं। हमारे उस ओर की नदियों को देखकर आप कुछ समझ सकते हैं, थोड़ा वक्त

पा सकते हैं। पर ये तो बिल्कुल ट्राचरेस हैं। कोई अंदाज़ा ही नहीं लगा सकते।"

"अरे हमारे यहाँ डीवीसी का पानी है।"

"यहाँ तो डीवीसी भी नहीं, सिर्फ़ बारिश।"

उन्होंने दूसरे दल को पार कराया। कमांडेंट तथा घोष—दोनों ही नदी के पाट से होकर जा रहे थे और उपेन का दल उसके कुछ भीतर होकर। कमांडेंट के चलने की गति देखकर उन्होंने भी जल्दी-जल्दी चलना शुरू कर दिया।

"यहाँ पहाड़ है। पहाड़ तोड़ कर पानी यहाँ उतरता है। सुनो, बात क्या है कि इस गाड़ी को फिर से वापस भेज दो। चावल, दाल और आलू लेकर आ जायें। इनके कैंप में कितने दिन ठहरना होगा किसे पता ? फिर हमारे कैंप में पानी के घुस आने पर तो सब कुछ नष्ट हो जायेगा न ?"

"सारा चावल लाने के लिये कह दूँ ?"

"हो सके तो सब। वर्ना, जितना लाया जा सके।"

घोष ने एक बार पीछे मुड़कर देखने लगा, फिर सामने देखने लगा। इससे कीचड़ मिट्टी में इतना बोझ लाद कर क्या यह गाड़ी आ सकेगी ? फँस जायेगी।"

कमांडेंट कोई जवाब दिये बिना बढ़ता चला गया। फिर बोला, "गाड़ी में जितने हो सकते है उतने बोरे लायें और न हो तो जवान कंधे पर ढो कर लायें।"

"इतनी दूर तक ?"

"जितना हो सकता है उतना लायें तो सही ?"

वे सामने वाले ग्रुप के निकट पहुँच गये थे। वे खड़े ही थे। थोड़ी दूर पर बाङ्लादेश के कैंप का हरे टीन का घर नज़र आ रहा था, संतरी बॉक्स। यहीं से पंक्तिबद्ध होना पड़ेगा। सब रुककर पीछे रह गये लोगों की प्रतीक्षा करने लगे। प्रतीक्षा के साथ-साथ बाङ्लादेश के कैंप की ओर देख रहे थ। भारत की सीमा सुरक्षा वाहिनी बस इतनी दूर आकर जैसे कुछ असहाय-सी अनुभव करने लगी। जबकि सचमुच उन्हें अपना देश छोड़कर जाना पड़ रहा था। ये जेसे सामने, बांग्लादेश के कैंप की ओर देखते थे, वैसे ही पीछे, जिस रास्ते पर से होकर वे आये थे उसे भी देखते थे। इस रास्ते पर तो भारत है—उनका देश।

116

बाङ्लादेश में भारत की सीमा सुरक्षा वाहिनी

लगभग सभी के वाटरप्रूफ़ और टोपी के सामने का भाग भींगा हुआ था। पिछला भाग उसकी तुलना में सूखा हुआ था। बंदूक़ अब कंधे पर नहीं, हाथ में थी। गर्दन तनी हुई, चेहरा सख़्त। सबसे आगे कमांडेंट था। और सबसे पीछे घोष। उसके पीछे गाड़ी थी। घोष के 'लेफ़्ट-राइट-लेफ़्ट' के ताल पर भारतीय सुरक्षा

वाहिनी बाड्लादेश के कैंप में जा पहुँची।

उन्हें देखते ही बाड्लादेश का कमांडर लुंगी पहने, खाली बदन, बारिश में भीगता हुआ निकल आया था। पर भारतीय वाहिनी की सजधज देखकर वह फौरन अंदर जाकर एक ख़ाकी शर्ट पहनकर आ गया। कमीज़ पहनते-पहनते ही पैंट की ओर हाथ गया था। पर पैंट का मतलब जूता भी पहनना पड़ेगा। उसमें तो काफ़ी समय लग जायेगा। सो कमांडर लुंगी के ऊपर कमीज़ पहनकर फिर से निकल आया था। एक आदमी भी उसके ऊपर छाता तानकर साथ-साथ चलता हुआ आया। पर थोड़ी दूर चलते न चलते हवा में छाता उलट गया। वह फ़ौरन एक और छाता लेने के लिये लपका।

इस बीच घोष के निर्देश पर भारतीय वाहिनी 'अटेन्शन' में खड़े होकर 'स्टेड-एट-इज' होते ही भारतीय कमांडेंट ने जाकर बाड्लादेश के कमांडर को सीने से लगा लिया। बाड्लादेश का कमांडर भारतीय कमांडेंट का आलिंगन करते हुए बोला, "अरे दादा, आपने तो हमको डरा ही दिया था। कंधे पर राइफल लेकर मिलीटरी मार्च करते हुए चल आये। सीमांत में गोली ही चल जाती। चलिये, चलिये" कहता हुआ कमांडर की बाँह पकड़े बरामदे की ओर बढ़ गया। कमांडर ने हाथ से इशारा किया बरामदे पर चढ़ने के पहले कमांडेंट अचानक खड़ा होकर सबको आने के लिये बोला, "अरे भई रुको। घोष!"

घोष के आते ही बोला, "यह सब किचन में भेज दो।"

"अरे यह क्या ? किचन में आख़िर क्यों ?" कमांडर ने पूछा।

"अरे दो पाठा थे। उन्हें वहाँ छोड़ आते तो सर्दी-जुकाम से मर जाते। उससे तो भारत-बाड्लादेश मैत्री-भोज में लगना बेहतर है। चलो, चलो।" अबकी बार कमांडेंट ने ही आगे क़दम बढ़ाया।

कमांडर और कमांडेंट के बरामदे में आते-न-आते ही बाड्लादेश कैंप के सभी जवान खुशी से चिल्लाते हुए मैदान में उतर आये थे। भारतीय जवानों का हाथ पकड़ कर उन्हें आदर के साथ बरामदे में ले आये थे। बरामदे में आते ही भारतीय जवानों ने पहले टोपी खोला, फिर वाटरप्रूफ़। बाड्लादेश के प्रायः सभी जवान लुंगी पहने हुए थे। किसी-किसी के बदन पर बनियान भी थी। तो इस समय सचमुच ही ऐसा लग रहा था जैसे भारतीय वाहिनी इस कैंप में दावत खाने आयी है।

भींगे वाटरप्रूफ़ बरामदे में एक सिरे पर टाँग दिये गये, गमबूट खोलकर एक ओर को रख दिये गये—इन कामों में कई मिनट बीत गये। इस बीच गाड़ी में से अपनी-अपनी लुंगी, पाजामा, गमछा आदि का पैकेट जवान लोग ले आये थे। एक जवान जाकर कमांडेंट का पैकेट दे आया—कमांडर के घर पर। इन तमाम व्यस्तताओं के बाद जब भारतीय जवान कुछ समय बाद लुंगी या पायज़ामे

के ऊपर बनियान पहनकर बातें करने या ताश खेलने बैठ गये तो दोनों देशों के सीमांत रक्षा वाहिनी के बीच और कोई भेद नहीं रह गया। बाङ्ला भाषा के उच्चारण का वैचित्र्य बाङ्लादेश के सुरक्षा वाहिनी के बीच जितना था, भारतीय वाहिनी के बीच भी उतना ही था। रामाशीष और पारसमणि कुछ अलग हटकर थे इनमें। बाङ्लादेश के कैंप में कोई हिंदीभाषी न था, नेपाली तो थे ही नहीं। रामाशीष और पारसमणि इस बीच किचन में जाकर पता कर आये कि मांस-भात के अलावा कुछ और बन रहा है कि नहीं।

किचन में बाङ्लादेश के सीमांत रक्षी लोग ही खाना बना रहे थे। उन्होंने कहा, "क्यों दादा, दाल बनेगा, छोला का दाल ?"

रामाशीष ने कहा, "बस-बस, हम लोग 'वेज़' खायेगा। दो आलू या बैंगन का भुरता बना देना बस।"

किचन के लोग पहले 'वेज़' का मतलब समझ नहीं पाये। समझने के लिये उन्हें थोड़ा सोचना पड़ा—निरामिष खायेंगे ? मांस नहीं चलेगा क्या ?

पारसमणि ने कहा, "नहीं, हम तो खाते नहीं। ऐसे ही 'वेज' खायेंगे।"

बाङ्लादेश के एक जवान को अचानक समझ में आ गया, "अरे दादा" कहते हुए वह रामाशीष को बाँहों में भर कर 'हो-हो' करके हँसने लगा। फिर अपने दूसरे सहकर्मियों की ओर देखकर हँसते हुए बोला, "सुना आपने, दादा लोग को डर है कि हम कहीं उन्हें 'बड़ा' गोश्त न खिला दे, हो-हो-हो-हो "

इतनी बड़ी ख़बर को तो अकेले ही पचाया नहीं जा सकता। रामाशीष और पारसमणि को लेकर किचन के लोग बरामदे में जा पहुँचे। उसके बाद सब मिलकर जिस हॉल में मौज-मस्ती कर रहे थे, उसके दरवाज़े पर खड़ा होकर एक आदमी ज़ोर से बोला, "अरे भाई, सब कोई सुनो एक मज़े की बात।"

इतने सारे लोगों के दरवाज़े पर इकट्ठे होकर ऊँची आवाज मे बातचीत करने से सबकी नज़र उन पर जा पड़ी। तभी किचन का वह कर्मचारी रामाशीष और पारसमणि को दिखाकर बोला, "ये दादा लोग किचेन में जाकर क्या क्या बोला, पता है ?" वह 'वेज' शब्द को याद नहीं कर पाया इसी से थोड़ा रुक गया, फिर बोला, "निरामिष खाना खायेंगे। दादाओं को डर है कि कहीं हम इन्हे बड़ा गोश्त न खिला दें।"

यह सुनते ही सब खिल-खिलाकर हँस पड़े। रामाशीष ने दोनों हाथ उठाकर कहा, "अरे नहीं, नहीं। हमने सोचा क्या पकता है देख आयें।" पारसमणि और रामाशीष बैठ गये। किचन के लोग जाने के लिये मुड़ गये। एक नौजवान ने मुँह बढ़ाकर कहा, "दादा के लिए मुर्गे की चार टाँग रख देना भाई।"

भीतर से एक आदमी ने आवाज़ लगायी, "पूँछ और सींग भी रख देना भाई, दादा के लिये।"

पारसमणि और रामाशीष फ़ौरन एक ताश खेलते हुए ग्रुप के साथ भिड़ गये।

अब अगर इस घर के चारों ओर नज़र डाली जाये तो फ़ौरन कौन भारतीय और कौन बाङ्लादेशी है पहचानना मुश्किल था। वे इस तरह से घुल-मिल गये थे कि उन्हें अलग नहीं किया जा सकता था। लोगों के मिल जाने पर भी उनकी वेशभूषा और दूसरी चीज़ों का मेल बैठ नहीं रहा था। घर की दीवार पर दोनों वाहिनियों की बंदूक़ें क़तार से रखी थीं। पर बंदूक़ें देखने में एक जैसी नहीं थीं। घर में टँगी रस्सी पर दोनों वाहिनियों के यूनिफार्म टँगे थे। उसका भी रंग अलग-अलग था। दीवार, खिड़की, किवाड़ पर सिनेमा के हीरो-हीरोइनों की तस्वीरें चिपकी हुई थीं—उनकी भाव-भंगिमा और चेहरा-मोहरा—भारतीयों के लिये परिचित न था। ताश खेलते-खेलते या फिर सोये-सोये ही कोई जवान हिंदी गीत गुनगुना रहा था। बाङ्लादेश का कोई कहता, "अरे दादा, ज़ोर से गाओ न, हम भी सुनें।" दोनों देशों के सिगरेट के पैकेट भी अलग-अलग।

दोनों कैंपों के लोग एक दूसरे के साथ भली-भाँति परिचित थे। बहुत से जवान एक-दूसरे का नाम लेकर पुकारते थे, हाट में मिलते थे। ड्यूटी करते हुए आपस में भेंट होती थी। चौकी में भेंट होती थी। अगर वह अन्तरगता न होती तो बाङ्लादेश के सीमांत कैंप के कमांडर के लिये क्या बाढ़ के समय उन्हें न्यौता देकर बुला लाना संभव होता ?

पर अन्तरगता के चलते कभी इस तरह से एक जगह पर रहना हो नहीं पाया था। रहना, खाना पीना। इसी से जो कुछ भी आनन्द मिल रहा था—वह पिकनिक-सा ही था। इस खुशी को सभी थोड़ा-सा बढ़ा लेना चाह रहे थे।

बाङ्लादेश के कमांडर ने भारत के कमांडेंट से पूछा, "दादा, आपके लिये एक स्कॉच रख छोड़ा है। निकालूँ ?"

कमांडेंट अधलेटा होकर बोला, "निकालो।"

117
दोनों सेनापतियों की बातचीत

कमांडर के घर में दो कैंप-खाट बिछे थे—दोनों के बीच दीवार से सटी एक टेबिल। टेबिल पर एक लालटेन। पैताने की तरफ दो दरवाज़े—दोनों ओर के बरामदे में जाने के लिये। घर में दो खाट ही लगे रहते थे। और एक जवान जो यहाँ रहता था, वह शायद आज कहीं और सोयेगा। या फिर दो खाटों के रहने पर भी शायद एक ही खाट का व्यवहार किया जायेगा।

कमांडेंट लुंगी और सैंडो पहनकर उत्तर दिशा की खाट पर बैठ गया।

रिवॉल्वर के साथ खुली हुई बैल्ट तकिये के पास रखी थी। कमांडर ने टेबिल पर दो गिलास रख दिये, फिर कुर्सी के नीचे से एक टीन का बॉक्स खींचकर निकाला। फिर उठकर टेबिल की दराज़ से एक गुच्छा चाभी निकाल कर झुककर ताला खोला। ताला पूरा खोलना नहीं पड़ा। बायें हाथ से पल्ले को थोड़ा उठाकर दायाँ हाथ घुसाकर एकबारगी बोतल को बाहर निकाल लाया। फिर हाथ बढ़ाकर टेबिल पर रख दिया। फिर ताला बंद करके कमांडर सीधा खड़ा हो गया। फिर चाभियों को दराज़ में डाल कर पैर से सूटकेश को खाट के नीचे ठेल दिया।

"आप लोगों को भाई यही एक बड़ी सहूलियत है—सिगरेट, पान फर्स्ट किलास, शराब और पान भी फ़र्स्ट किलास," बेनसन एण्ड हेजेस का पेकेट हाथ में लेकर कमांडेंट ने कहा।

"अरे दादा, आप लोगों का भी कौन कम है ? जिन्हें स्कॉच लेना हो वे स्कॉच ही लेते हैं।" कमांडर टेबिल के पास खड़े होकर बोतल को खोलते हुए बोला।

"अरे, जिन्हें लेना है, वे तो लेंगे ही। पर आपके यहाँ तो जिन्हें नहीं लेना है, वो भी ले सकते हैं मन हो तो।"

"इसका उल्टा भी तो है दादा ?"

"और उल्टा भला क्या ?"

"पर यह स्कॉच नहीं चाहता, देशी चाहता है, वो साला पियेगा क्या ?"

"ओ, फॉरिन लीकर नहीं बनता ?"

"अब होता है एक डिस्टीलरी में। पर दरअसल हम लोगों को बहुत-सा ही एकबारगी खाँटी फॉरिन मिलता है।"

"आप कुछ कहिये, लेना चाहें तो ले सकते हैं ? और यह सिगरेट—यह तो आप लोगों के इहाँ सभी दुकानों में पाया जाता है।"

"अरे इंडिया में जैसे कैप्सटन-वैप्सटन, यहाँ वैसे ही यह सब सिगरेट मिलता है।"

"पर यह जो कहा खाँटी फ़ॉरिन। हमारा तो अपना ही फैक्ट्री है, फ़ॉरिन मिलेगा कहाँ से ?"

"हमारा एक स्टेट एक्सप्रेस की फैक्ट्री है, पर वह तो पूरा फॉरिन।"

कमांडेंट के सामने गिलास को बढ़ाकर कमांडर एक गिलास लेकर कुर्सी पर बैठ गया।

कमांडर की उम्र अधिक नहीं थी। रंगपुर का राजवंशी लड़का था। उसकी भाषा में राजवंशी भाषा से बाहर निकल आने की कोशिश साफ़-साफ़ झलकती थी। पर रंगपुर के ही इस बॉर्डर में काम करने पर वह सहूलियत उसे ज़्यादा मिल नहीं रही थी। भविष्य में अगर जशोहर की ओर तबादला हो, तो वह प्रभाव से काफ़ी हद तक छुटकारा पा सकता है। कमांडेंट की उम्र काफ़ी थी—इसी के

चलते ही दोनों में दादा-भाई का सम्पर्क बन गया था। अगर वह सम्पर्क न भी होता तो भी कमांडेंट को ही बड़ा होने की स्वीकृति मिलती। कमांडेंट यहाँ लुंगी, बनियान पहने बैठा था तो वह भी इतने बड़े एक देश भारत का निवासी होने के नाते। बाङ्लादेश के लिये तो वह एक महादेश के बराबर है। गिलास पकड़ कर कमांडेंट ने पूछा, "क्यों, टोस्ट नहीं करेंगे क्या ? क्या कहते हैं ? भारत-बाङ्लादेश मैत्री ?"

कमांडर थोड़ा-सा हँसा, "वह जिन्हें करना है, करने दीजिये। यह फ्लड अगर न होता तो आप लोग आते ही नहीं। फ्लड के नाम पर टेस्ट कीजिये।"

कमांडेंट ठठाकर हँस पड़ा, "अरे, आप तो कमाल के बुद्धिमान निकले। तो फिर किस फ्लड के नाम से किया जाये—जिस फ़्लड के ड॰ से यहाँ आये हैं या जिस फ्लड के चलते यहाँ दो दिन और रुकेंगे ?"

कमांडर भी 'हो-हो' करते हँस पडा, "कौन-सा फ़्लड क्या पता।" वह गिलास उठाकर आगे बढ़ाया, कमांडेंट ने गिलास से गिलास टकराया। कमांडर बोला "थ्री चियर्स फॉर फ्लड।"

कमांडेंट एक चुस्की लेकर गिलास रखकर बोला, "आपके यहाँ भी फ्लड के लोग आ बसे हैं क्या ? कहाँ है ?"

कमांडर अपने सिरहाने वाले बेड की ओर इशारा करके बोला, "इधर। किचन के पीछे तिरपाल की दो छावनी बना दी गयी है। दोपहर को तो सुना कि सौ लोग होंगे करीब। अब तक तो और भी बढ़ गये होंगे। सुना है कि इंडिया के लोग भी आये हैं। दोपहर को तो इंडिया से ही अधिक लोग आये थे। अभी।"

"तो इंडिया का कैंप जब आया है तो लोग भाग जायेंगे क्यों ? आप लोगों ने क्या कैंप खोल रखा है ?"

"अरे नही, नही, तिरपाल की थोडी छावनी बना दी गयी है। बस सिर कुछ बच जायेगा। फिर पानी कम होने पर चले जायेंगे। यह टापू तो काफी ऊँचाई पर है।"

"यहाँ टीवी नहीं है ?"

"हाँ, है तो। देखियेगा ? अभी तो भाषण चल रहा है। छोड़िये। फ़िल्म के समय चलेंगे। अभी कितना बजा है ?"

कमांडर ने तकिये के नीचे से घडी निकाल कर देखा और बोला, "सात।" कमांडेंट अपनी घड़ी देखकर टाइम मिलाते हुए पूछा, "साढ़े सात, तुम्हारी घड़ी स्लो तो नहीं ?"

"अरे नहीं, मैं घड़ी रोज़ मिलाता हूँ।"

"मेरी घड़ी तो भाई फास्ट नहीं होती।"

थोड़ी देर बाद कमांडर 'हो-हो' करता हुआ हँस पड़ा, "अरे आपका तो इंडियन

टाइम है, हमारा तो बाङ्लादेश का टाइम है। यहाँ नौ बजे फिल्म देगा। देखेंगे।"

"हमारे यहाँ नार्थ बेंगाल में तो बहुत सारे बाङ्लादेश का ही टी.वी. प्रोग्राम देखते हैं। तुम्हारा और दिल्ली का। कलकत्ता तो पकड़ता ही नहीं है।"

"हमारे साउथ बेंगाल में कलकत्ता पकड़ता है, जाड़े के दिनों में।"

"टीवी एक, नदी एक, फ्लड एक, सिर्फ़ टाइम ही अलग ?"

"क्यों ? आपने तो कहा कि सिगरेट अलग, शराब अलग "

"नदी भी अलग होगी ?"

"कौन-सी नदी ? तिस्ता बूढ़ी ?"

"बूढ़ी या छूड़ी, किसे पता। हमारे इंडिया में तो पहाड़ के नीचे विराट तिस्ता बैरेज बाँधा गया है।"

"तिस्ता का बाँध ?"

"बाँध ? स्लूइस गेट। फ़्लड हो नहीं सकेगा। जल को रोका जायेगा। सर्दियों में छोड़ा जायेगा। अरे काफ़ी बड़ा बैरेज है–तिस्ता के ठीक बीचोंबीच।"

"साला हम पानी पायेंगे कहाँ से ?"

"पानी की क्या कमी हो गयी तुम्हारे पास ? हर साल तो बाढ़ मिलती है।"

"फ्लड होने से ही तो रंगपुर से यहाँ आये हैं, पाटग्राम में। यहाँ फ़सल भी अच्छी होती है। इस फ़्लड से आपके लोग मारे जाते हैं और हमारी फ़सल बढ़ती है।"

"उसी के लिये तो बैरेज बन रहा है, तिस्ता बैरेज। फ़्लड भी नहीं होगा, लोग भी नहीं मरेंगे।"

"पर नदी का तो बँटवारा होगा ही। आप लोगों के हाथ में चाभी है। पानी देंगे तो पानी मिलेगा वर्ना सूखा।"

"सूखा तो सूखा। तभी एक टीवी ही रहेगा–तुम कलकत्ता देखना, हम रंगपुर देखा करेंगे। और सब अलग-अलग–नदी अलग, फ़्लड अलग, टाइम अलग।"

"यह अलगाव इतना अच्छा नहीं है।" कमांडर ने फिर से कमांडेंट का गिलास भर दिया और साथ में अपना भी।

118

घोष का एक बार इंडिया में लौटना

घोष एकबारगी अकेला हो गया था।

बाङ्लादेश के कैंप में जवान लोग जवान के साथ मिल गये थे, कस्टम्स

के लोग कस्टम्स वालों के कमरे में रह रहे थे। फ़ोन वाला फ़ोन वाले के घर। पर घोष के जैसा कोई घर नहीं था।

दरअसल है तो ज़रूर, बाङ्लादेश के कैंप में क्या कमांडर और जवानों के बीच में और कोई नहीं है ? पर घोष के साथ उसका परिचय होने का मौक़ा ही नहीं मिला था। बाङ्लादेश के कैंप में पहुँच कर, किसी तरह एक कप चाय पीकर वह छह जवानों के साथ दुबारा गाड़ी लेकर निकल पड़ा था। चावल-दाल जितना भी बोरा हो सके ले आना है—कमांडेंट ने कहा था।

घोष और उसके लोग हवा के साथ ही जा रहे थे। उनके वाटरप्रूफ की पीठ भींग रही थी—छाती सूखी थी। पीठ की ओर से हवा हो तो चलने में सुविधा रहती है। फिर हड़बड़ी भी तो थी ही। अब अगर वे जल्दी-जल्दी जा सकें तो लौटते समय की देरी मेकअप हो जायेगी। गाड़ी ज़्यादा भारी होने पर खींचना मुश्किल हो जायेगा।

चावल, दाल अगर बर्बाद हो जाता तो उसमें उनका कोई नुक़सान न था। हेडक्वार्टर्स से नया राशन आ जाता। इसे सस्ते में बेचकर कमांडेंट बँटवारा कर सकते थे। फ्लड के बाद इन चीज़ों की आवश्यकता रहती है। पर नया राशन आने में देर भी लग सकती है। देर तो लगेगी ही। कम-से-कम उन दिनों के लिये, राशन बचाकर ही रखना होगा। घोष मन-ही-मन हिसाब लगाते-लगाते चलता रहा—कितना बोरा चावल बचाने से नया राशन आने तक चल सकता है और बेचने लायक कई बोरा भींगा चावल भी रह सकता है। नदी में पानी का जो रुख है, आज ज़रूर कैंप में पानी घुसेगा। पानी कितने दिनों तक रहेगा, वह बात तो अब समझ में ही नहीं आती। घोष बीच-बीच में नदी की ओर टॉर्च फेंकता था, पर टॉर्च का प्रकाश पानी के कुहासे में अधिक दूरी तक नहीं जा पाया।

जवान गाड़ी को खींचते-खींचते प्रायः दौड़ते हुए काफ़ी आगे चले जा रहे थे। घोष को अकेले-अकेले ही चलना पड़ रहा था। वे पहले पहुँच कर भी प्रतीक्षा करते खड़े रहेंगे--क्योंकि गोदाम की चाभी घोष के पास है।

घोष ने पैर के नीचे और आसपास दो-एक बार टॉर्च जलाकर समझने की कोशिश की कि जाते समय वह कमांडेंट के साथ जिन टापुओं में पानी घुसते देखा था वह सब कहाँ गया। वह और कमांडेंट तो उस तरह की निचली ज़मीन को कई बार पार करके गये थे।

टॉर्च बुझाकर उसने बायीं ओर देखा और आकाश को देखकर अंदाज़ा लगाने की कोशिश की कि उन सब छोटे-छोटे कगारों को वह पार करके आ चुका है या नहीं। वह और कमांडेंट तो उनके कैंप से निकल कर नदी के किनारे गया था, फिर नदी के पाट से होते हुए आगे बढ़े थे। तो क्या ये दरअसल कगार नहीं थे ? नदी के पाट ही थे ? तभी वह नज़र आ नहीं पाया था ? उसने

और कमांडेंट ने तो इन कगारों के पानी को कुछ पल खड़े होकर देखा था।

घोष खड़ा हो गया। उसका रास्ता भूल जाना संभव नहीं था। वह तो सीधा ही चल रहा था।

पर और कई क़दम चलने के बाद उसे याद आया—वे अगर कगार थे तो फिर वहाँ गाड़ी को उतार कर कैसे ले जाया जा सका ? मतलब वे कगार पर नहीं थे। किनारा ही टूटकर थोड़ा अंदर चला आया था। पर वह और कमांडेंट तो उस पर चल कर गये थे। तो फिर गाड़ी तो ख़ाली थी और उन्हें कुछ पता नहीं चला। कहीं रास्ता तो नहीं भूल गया ? घोष फिर खड़ा हो गया।

खड़े होने के बाद पीछे से हमला करती हवा की आवाज़ उस दोनों कानों में सुनाई पड़ी। पर पानी नहीं गिरता था उस पर। उसके वाटरप्रूफ पर बारिश की बौछार चाबुक सी साँ-साँ कर के पड़ती थी। बारिश को महसूस करने के लिये वह घूमकर खड़ा हो गया। चेहरे पर बूँदों की चुनचुनाती मार वह अनुभव करता था। और, कुछ क़दम चलते ही जैसे उसे जानी-पहचानी जगह का आभास मिल गया। वह खड़ा हो गया। टॉर्च जलाकर बायीं ओर कुछ क़दम फिर दायीं ओर कुछ क़दम बढ़ाया था। हाँ, उनके कैंप के कँटीले तारों का घेरा शुरू हो गया था। तो फिर वह रास्ता भूला नहीं। पर वह कगार सब कहाँ चले गये ?

संतरी बॉक्स का दरवाज़ा खुला था—गाड़ी गयी है। गेट पार होते ही छपाक् से पानी में पैर पड़ा। घोष ने पैर के नीचे टॉर्च जलायी, गमबूट के नीचे गंदला पानी, टॉर्च के प्रकाश से पतला नज़र आ रहा था। मतलब फ्लड का पानी कैंप में घुस ही चुका है। टॉर्च बुझाकर घोष छप्-छप् करते हुए कई क़दम बढ़ता गया है। आकाश में खुली चाँदनी बिखरी थी। जिससे मेघ नज़र नहीं आ रहा था, बल्कि मेघ का आभास भर ही नज़र आता था। अब मिट्टी की ओर देखने पर जल में उसी मेघ का बिंब नज़र आता था। घोष फिर से टॉर्च जलाकर खड़ा हो गया। उसके टॉर्च के घेरे में जल की सरल रेखाएँ परस्पर साथ मिले बिना बायें से दायें जा रही थीं और बारिश की मार से झुक गयी घास पानी के ज़ोर से फिर सीधी हो गयी थी।

टॉर्च को हवा में हिलाते हुए घोष ने आवाज़ लगायी, "अरे ओ आ गये तुम लोग ?"

कैंप के बरामदे में टॉर्च जल उठा—एक साथ दो-तीन टॉर्च का प्रकाश। वे चिल्लाकर कुछ बोले—सुनायी तो पड़ा, पर समझ में कुछ नहीं आया। बरामदे के नीचे ही गाड़ी को खड़ा कर दिया गया था।

सीढ़ी से बरामदे में आते-आते ने घोष कहा, "पानी तो घुस गया है।"

जवानों में से कोई बोला, "हाँ सर, वे तो कोई उतरे नहीं, आर्मरी के बरामदे

"टॉर्च को पकड़ो तो," गोदाम का ताला खोलते-खोलते घोष ने पूछा, "क्या पानी बरामदे के ऊपर भी आ जायेगा ?"

"यह तो आ ही सकता है सर, जाते वक़्त तो पानी नहीं था और आते समय तो चपचपा रहा है।"

गोदाम का दरवाज़ा खोलते ही हवा के धक्के से किवाड़ पूरा खुलकर फिर उसी गति से बंद हो गया। गोदाम के अंदर कोई ख़ाली टीन था शायद—वह खूँटी से टकरा कर झनझना उठा। एक साथ बहुत सारे टॉर्च जल उठे। वे दरवाज़ा ठेलकर अंदर घुस आये।

"सुनो, तुम जितना खींच सकते हो, उतना ही लो। कहीं रास्ते में फेंकना न पड़े।"

"सर, अब तो लेना मुश्किल हो जायेगा। एक बोरा चावल और एक बोरा आटा ले सकते हैं।"

"तो फिर उतना ही लो। और दाल का एक छोटा बोरा भी उठा लो साथ में।"

"दो-दो जवानों ने मिलकर एक-एक बोरा पल भर में उठा लिया। एक जवान दरवाज़े को पकड़े रहा। दोनों बोरे ले जाकर बरामदे पर रख दिया। ऐन किनारे। कमरे से उन लोगों के चले जाने के बाद घोष ने टॉर्च जला कर देखा - मिट्टी के तेल का एक सीलबंद टीन नीचे था। एक बार सोचा कि जवानों को रवाना करने के बाद टीन को लेकर अपने कमरे में रख दे। फिर सोचा--ख़ैर, बाद में देखा जायेगा।

"अरे सुनो," घोष ने दरवाज़े की ओर टॉर्च जलायी। एक जवान आगे बढ़ आया।

"इस टीन को इन बोरों के ऊपर रख दो।" घोष ने जवान को टॉर्च का प्रकाश दिखाया। उसने टीन को उठाकर चावल के बोरों के ऊपर रखकर ठेल दिया।

सभी जवान नीचे उतर गये थे। घोष के गोदाम का दरवाज़ा बंद करने के लिये खींचते ही हवा के धक्के से एक पल्ला उसके हाथ से फिसल गया था।

"अरे, थोड़ा पकड़ो तो।"

एक जवान बरामदे के ऊपर भार देकर आ गया। उसने दरवाज़े के दोनों कुंडों को खींच कर पकड़ लिया, तभी घोष ताला लगा पाया। जवान फिर कूदकर नीचे चला गया। गाड़ी के जुआली को तब तक दो जवान ऊपर उठा चुके थे और दो जवान पीछे हाथ लगा चुके थे।

"तुम्हारे बोरे लादने के बाद गोदाम में कितने बोरे बाक़ी रहे ?" घोष के बरामदे से सीढ़ी की ओर बढ़ते-बढ़ते सवाल करने से वे रुक गये। पर किसी

ने कुछ जवाब नहीं दिया। कुछ पल बाद एक जवान हँसते हुए बोला, "कुछ तो देखा नहीं, खप् से पकड़ा और धप् से बाहर हो गये।" कह कर वह 'हो-हो 'करके हँसने लगा, दो-एक अस्पष्ट हँसी के साथ अपनी आवाज़ मिलाते हुए।

"अच्छा, अच्छा, जाओ, मैं ज़रा आर्मरी को देख आऊँ।"

वे एक धक्के से गाड़ी को लेकर निकल गये और उनकी तरफ से मुड़कर घोष आर्मरी की ओर बढ़ गया। उसको एक बार बरामदे और पंक्तिबद्ध कमरों के दरवाज़ों पर से आवाज़ उठती-सी लगी। पर कोई भी आदमी नहीं था। बस, कुछ पल पहले ही की तो बात है कि उनका कैंप किस तरह गनगना रहा था, भरा-पूरा था। है न ?

सामने के मैदान में खड़ा होते ही घोष ने आर्मरी की ओर टॉर्च जलायी, "तुम लोग ठीक-ठाक हो न ?"

बरामदे से टॉर्च जल उठा। घोष ने सुना, "हाँ, सर, ठीक हैं।"

घोष टॉर्च को जलाये-जलाये ही कई क़दम बढ़ गया। फिर ज़ोर से पूछा, "कल सुबह अपनी बदली आने पर बाङ्लादेश के कैंप में चले जाना।"

"पानी तो बढ़ने लगा है। पानी के बढ़ने से बदली कैसे आयेंगे सर ?"

घोष ने थोड़ा सोचा। फिर आर्मरी की ओर कुछ क़दम बढ़कर टॉर्च जलायी। पीछे से एक आवाज़ आयी, "गाड़ी शायद बाक्स के पार हो गयी।"

"सुनो, पानी के बढ़ने पर भी कोई-न-कोई ज़रूर आयेगा। और बरामदे पर पानी आ जाये तो तुम लोग छत पर चले जाना। घोष ने हाथ का टॉर्च जलाया—भींगा हुआ तिरपाल अंधकार जैसा नज़र आ रहा था।

"हम ठीक हैं सर, चिंता की कोई बात नहीं।" बरामदे से जवाब आया। घोष ने अबकी बार मुड़कर जल्दी-जल्दी गेट की ओर क़दम बढ़ा दिया।

119
बाढ़ से गीली ज़मीन पर बलात्कार के साथ चर-सर्ग का अंतिम अध्याय

घास के जंगल में पैर रखते ही पानी पर टॉर्च की रोशनी डाल घोष ने देखा कि अब पानी के नीचे पूरा रास्ता नज़र आ रहा है—घासें सब खड़ी हो गयी हैं। इस बीच क्या पानी और बढ़ गया है ? घोष छप्-छप् करता हुआ गेट के पास पहुँचा। वे गेट को खुला ही छोड़कर चले गये थे। बाहर जाकर गेट बंद करने के लिये उसके मुड़ते ही संतरी बाक्स के नीचे से कोई बाहर निकल कर बोला, "बाबू ?"

घोष चौंका। टॉर्च जलाते ही एक लड़की गेट से बाहर निकल आयी। गेट को ठेलकर बंद किये बिना टॉर्च को जलाये-जलाये ही घोष ने पूछा, "क्या बात

है ?"

"बाबू, मैं कैंप में जाऊँगी तुम्हारे जोरे ?"

"कैंप ? काहे का कैंप ?"

"बाढ़ का कैंप में बाबू। मेरा गाँव डूब गया है।"

"ओह," घोष-गेट को ठेलकर चलने लगा। लड़की भी उसके पीछे-पीछे चलने लगी। तब तक गाड़ी काफ़ी आगे निकल चुकी थी। हवा में दूर से आवाज़ आ रही थी। अब तक हवा को पछाड़ आहिस्ते-आहिस्ते, जल्दी-जल्दी चलने का अभ्यास हो गया था। उसी तरह से पैर बढ़ाने को तैयार होते ही हवा के पहले धक्के से थोडा-सा पीछे हट जाता था घोष। फिर छाती को थोड़ा-सा झुका कर चलना शुरू करता है। बीच-बीच में टॉर्च चलाता था।

कई क़दम बढ जाने पर उसे संदेह हुआ कि वह लड़की आ रही है या नहीं। गर्दन घुमाकर टॉर्च जलाकर देखा, लडकी तो आ ही रही है। साथ में एक कुत्ता भी है।

चलते-चलते घोष ने पूछा, "तू कौन-से गाँव की है ?"

"दक्षिणपाड़ा, बाबू।"

"तू अकेली ही इस रात में क्यों जा रही है ? तुम्हारे घर के बाक़ी लोग कहाँ है ?"

"मेरा तो कोई घरबार नहीं, बाबू। मेरे लोग बाग भी नहीं। मई सोई थी। ओर सब लोग पानी देख कही चले गये हैं।"

लड़की की बातें घोष सुन नहीं पाया। वह थोड़ा धीरे-धीरे चलने लगा। लड़की प्राय. उसकी बराबरी में आ गयी थी। और उसकी बराबरी मे कुत्ता।

"तू गाँव के लोगों के साथ क्यों नहीं गयी ?"

"मुझे तो बुला रहे थे। पर मई जब गयी तो देखी कि नाव नहीं है।"

"ओह ! तुम्हारे लोग नाव से कैंप मे गये हैं ?" अकेले-अकेले जाने के बनिस्बत किसी के साथ बात करते-करते चलने में घोष को बुरा नहीं लग रहा था।

"सब नाव में चले गये। उसके बाद मई पैदल निकली हूँ।"

"जो गाड़ी लेकर गये तू उनके साथ क्यों नहीं चली गयी ?" घोष ने हाथ के इशारे से सामने की ओर दिखाया।

"डर गई बाबू ! इतने लोग चिल्ला रहे थे। सोचा कि वे लोग आगे-आगे जायें तो मई उनके पीछे-पीछे चलूँगी। तो देखी कि तुम अकेला आ रहे हो। तो सोचा कि चलो साला इस बाबू के साथ जाऊँ।"

"तू क्या इंडिया की है ?"

"नहीं बाबू, मई किसी की नहीं हूँ।"

"अरे नहीं, तुम्हारा गाँव इंडिया में है कि बाड्लादेश में है ?"

"नहीं बाबू, मई किसी की नहीं हूँ।"

"तुमरा घर नहीं है ?"

"नहीं रे बाबू, घर नहीं।"

"तुमरा कोई अपना आदमी ?"

"नहीं बाबू, मेरा कोई नहीं है।"

"तुमरा इंडिया, बाड्लादेश भी नहीं ?"

"नहीं बाबू, मईं किसी की नहीं हूँ।"

इस छिटमहल (गलियारे) का कितना हिस्सा भारत और कितना बाड्लादेश में है, समझना मुश्किल है। लड़की इंडिया की है या नहीं, यह निश्चित करने के लिये थोड़ा सोचकर घोष ने पूछा, "तुमने किसका नाम सुना है—राजीव गाँधी या इरशाद का ?"

"नहीं बाबू, मईं सुनी नहीं हूँ रे। मई नाम सुनी नहीं हूँ।"

"तुमरे इहाँ वोट होता है ? पंचायत है ?"

"हो सकता है बाबू। वोट हो सकता है। हो सकता है।"

घोष ने बायीं ओर देखा—गंदली चाँदनी तिस्ता के पानी के ऊपर ऐसी छितरी हुई थी, लगता था कि तिस्ता एक दीवार की तरह आकाश तक उठती चली गयी है। घोष ने दायीं ओर देखा—दोनों सीमांत के बीच में मालिकाना विहीन मैदान पानी में डूबा हुआ था। बाड्लादेश की ओर से बाढ़ रपटती आ रही थी। घोष ने लड़की पर टॉर्च का प्रकाश डाला और खड़ा हो गया। लड़की भी खड़ी हो गयी। वह पहले टॉर्च की ओर देखती रही, फिर आँखें सिकोड़ ली। कुत्ता भी लड़की के पाँव के पास टॉर्च की रोशनी के घेरे के बीचोंबीच आकर खड़ा हो गया।

"क्या देखा बाबू ? हमुको देखा ?"

टॉर्च बुझाकर घोष फिर से चलने लगा। लड़की बुरी तरह भींगकर लथपथ हो गयी थी। देखने पर कुछ भी पता नहीं चलता था। हवा के रुख़ को ठेलकर जाना पड़ रहा था, इससे हो या फिर अन्य किसी कारण से, घोष की गति थोड़ी कम हो जाती थी। कैंप में अपने कमरे में ले जा सकता तो लड़की को थोड़ा सुखा कर देख ले सकता। कैंप तो अभी सुनसान है। चला जाये। पर आर्मरी के बरामदे से वे लोग टॉर्च डालें तो ? घोष आगे जाकर लड़की को पीछे से आने के लिये कह सकता है। पर लड़की तब अगर न आये तो ? संतरी बाक्स में अवश्य चला जा सकता है।

घोष ने एक बार थूक निगल कर पूछा, "कैंप में तुमरे कौन लोग हैं ?"

"कोई न कोई तो होगा बाबू।"

"तुमने तो कहा था कि घर में कोई नहीं ?"

"नहीं बाबू, मेरा तो घर भी नहीं है रे।"

"नहीं। घर में कोई लोग नहीं है यह भी तो कहा ?"

"नहीं बाबू, मेरा आदमी कोई नहीं है रे।"

"इंडिया-बाङ्लादेश भी नहीं ?"

"नहीं बाबू, हमरा यह सब भी कुछ नहीं है।"

"तुमरा कोई देश नहीं ? एक भी ?"

"नहीं बाबू। हमरा कोई देश भी नहीं है।"

"तो फिर कैंप में तुम्हारा और कौन होगा ?"

"लोग तो होंगे बाबू, बाढ़ से आये लोग।"

गाड़ी खींचकर ले जाते जवानों का आर्तार्कित चीत्कार घोष सुन नहीं पा रहा था। वे काफ़ी दूर निकल गये थे। या फिर तिस्ता की आवाज़ ही अब तेज़ हो गयी थी। तो क्या वे क़दम-क़दम चलते तिस्ता के पास ही चले आये हैं, किनारे पर। घोष ने बायीं ओर टॉर्च जलायी—धरती पर गंदला पानी, फिर उसके बाद तिस्ता के ऊपर मटमैला, गंदला कुहासा। उसने टॉर्च को घुमाकर फिर से लड़की पर डाला। सिर के बाद से लेकर पूरा शरीर चिपचिपा रहा था, निचोड़ देने से पानी बह जायेगा। लड़की ने अबकी बार सिर उठाकर फिर से पूछा, "किया देख रहा है बाबू ? नदी में बाढ़ आया है।"

टॉर्च को जलाये-जलाये ही घोष लडकी के दोनों कंधों पर हाथ रखकर उसके सामने खड़ा हो गया। लड़की की गर्दन के पीछे से टॉर्च का प्रकाश सीमांत-अंतर्वती इलाके में अकारथ ही फैला रहा था। उससे दिखता था कि कुत्ता दूसरी ओर मुँह करके खड़ा था। इतने दिन हुए अनेक सीमांतों पर काम करता आ रहा है घोष—वह निश्चित रूप से समझ गया कि यह लड़की भी बॉर्डर की है, बॉर्डर की दूसरी बहुत लड़कियों की तरह, जिनका घर-वर नहीं, लोग-बाग नहीं। यहाँ तक कि देश-वेश भी नहीं।

घोष ने सिर से पाँव तक भींगी उस लड़की को नदी के स्रोत जैसी हवा में भीतर गीली मिट्टी पर सुला दिया।

चर पर्व यहाँ समाप्त किया जाता है। इसके बाद तो यह लड़की कैंप में जायेगी। वहां और दूसरे बाढ़ के शरणार्थियों के साथ रहेगी। उन लोगों में अधिकांश का परिवार है, अपने स्वजन हैं, घरबार हैं। बाङ्लादेश-इंडिया तो है ही। फिर इस लड़की की तरह दो-चार लड़कियाँ और भी हैं। वहाँ लड़की फिर से सो सकती है। घोष ने तो उसे इस भीगे शरीर में भींगी मिट्टी पर ही सुलाया—वैसा तो उसके जीवन में इतनी बार हो चुका है कि कहने की कोई बात नहीं।

पर्व के आख़िरी अध्याय के मुताबिक ठीक बलात्कार नहीं हुआ। जो कुछ हुआ, एक-दूसरे की सहमति से ही हुआ। फिर भी यह तो एक बलात्कार ही है।

असहमति का कोई मौका ही यहाँ नहीं। कैंप के बाढ़ के शरणार्थी लोग तो थोड़ा-बहुत परिचित हैं—वहाँ फिर से लौट जाने की ज़रूरत नहीं है।

बल्कि बेहतर हो कि चर- पर्व यहीं ख़त्म हो।

पहाड़ की तलहटी में बाङ्लादेश से अन्तर्राष्ट्रीय सीमा बहुत ज़्यादा दूरी पर नहीं है। इस सीमा के क़रीब चर डाँगर से अधिक स्थायी है। पर डाँगर जैसे डूब सकता है, ये सब चर भी वैसे ही डूब सकते हैं। लेकिन हर साल की बाढ़ के दौरान इन चर के लोगों को घर-द्वार छोड़ने का डर रहता है।

चर में जो लोग बसते हैं वे पानी मिट्टी से मैत्री संबंध को बड़ा करके देखते हैं। किसी तरह की चिंता या सोच के तहत नहीं देखते। शरीर के सामान्य और प्राकृतिक अभ्यासवश देखते हैं। मिट्टी अगर उपजाऊ है तो मेहनत करने से अच्छी फसल और पैदावार मिल सकती है। फिर हरेक ज़मीन की अपनी ही फसल हुआ करती है। यह समझ लेना पड़ता है कि कौन-सी ज़मीन में क्या फलेगा। पहले कभी किसी ने सोचा या सुना नहीं था कि तिस्ता के बालूबाड़ी में इतना तरबूज होगा।

जल के साथ भी वहाँ मैत्री संपर्क काफ़ी रहता है। तुम, डॉगर पर फ़सल उपजा रहे—अरे, पानी ने अपनी जगह छोड़ दी है तभी न तुम यहाँ फ़सल उगा रहे हो ?

पर साल के इन कुछ महीनों तक पानी के साथ वह मैत्री संपर्क टूट जाता है। पानी हर साल अपनी खो गयी उस जगह पर दखलकर लेना चाहता है, ऐसा नहीं है। लेकिन ऐसे में पानी की ताक़त आदमी की ताक़त की तुलना में कई गुना बढ़ जाती है। इस समय पानी के साथ मैत्री का मतलब मौत होता है। दुश्मनी भी मौत को बुलावा देती है। सीधे-सीधे पानी का रास्ता छोड़ देना पडता है। कई बार देखा जाता है कि पानी के उतर जाने पर लोग फिर से अपने घर वापस पा जाते हैं। पर एक-दो चर, चर नहीं रहते। ऐसे में कुछ अनिश्चितता रह ही जाती है। इससे बचा नहीं जा सकता। पार पाना मुश्किल होता है। चर के लोग चर छोड़कर भी छोड़ नहीं पाते। पानी, आकाश—इनमें से कोई भी राष्ट्रीय सीमांत के तहत नहीं। हवा और प्रकाश की कोई सीमा नहीं होती। बाक़ी चीज़ों की एक सीमा होती ही है। और उन चीज़ों की सीमा का जब लोप हो जाता है तो उसके निर्धारक शासन का लोप हो जाता है। हरेक सीमा में ज़मीन का बँटवारा होने के बावजूद कितने सारे लोग हैं जिनका अपना कोई घर नहीं। किसी सीमा के तहत वे नहीं आते। सीमा-रेखा सिर्फ़ उनकी घिसटती ज़िंदगी को विडंबित करती है। इस विडंबना से तिस्ता पार के लोगों को मुक्ति नहीं है।

जब मुक्ति ही नहीं है, तब चर-पर्व की कहानी यहीं ख़त्म हो जानी चाहिये। ठीक उसी तरह जिस तरह नदी की तरल मिट्टी अपनी सीमा तोड़कर सो जाती है।

वृक्ष-सर्ग

बाघारू की वापसी

120
आपलचाँद फ़ॉरेस्ट में रात के तीन बजे

शनिवार, रात के तीन बजे आपलचांद फॉरेस्ट के भीतर तिस्ता के किनारे खड़े होकर गयानाथ और आसिंदर बाढ़ देख रहे थे। ठीक रात के तीन बजे। आसिंदर के एक हाथ में एक पांच सेल का टॉर्च था, दूसरे हाथ की कलाई में बँधी सीको घड़ी ढुलढुला रही थी। हवा, बारिश और बाढ़ के बीच भी आसिंदर की कलाई में नीला समय टिमटिमा रहा था। अगर उस समय आकाश में तारे रहे होते तो वे तारे भी आसिंदर की सीको घड़ी की तरह ही टिमटिमा रहे होते। बाघारू बाढ़ नहीं देख रहा था। वह गयानाथ और आसिंदर के पीछे थोड़ा हट कर खड़ा था। तिस्ता के ऊपर मटमैला आकाश और गंदला प्रकाश फैला था। पर नदी के कगार पर बहुत से झाड़-झंखाड़ होने की वजह से अँधेरा था। उस अंधकार में बाघारू एक पेड़ की तरह खड़ा था।

आपलचांद फारेस्ट के अंदर जहाँ गाजोलडोबा है, वहाँ शनिवार से ही तिस्ता का किनारा टूट रहा था। और टूटते-टूटते रात बारह बजे तक एक छोटा-सा स्रोत निकल गया था। पर यह स्रोत इतना बड़ा तो नहीं था कि तिस्ता का जल आपलचांद फॉरेस्ट के अंदर से लहराता निकल जाये। पर इस तरह का एक सोता होने पर भी उससे तिस्ता के बाढ़ का जल आकर वहाँ धक्का मारेगा और मिट्टी का क्षय करेगा यह निश्चित है। बाद में तिस्ता के बाढ का पानी जब कम हो जायेगा—तो यह सोता भी सूख जायेगा। देखते-देखते झाड़-झंखाड़, पेड़-पौधों से या जंगल से यह खाई पट जायेगी। एक वर्ष बाद यह पता भी नहीं चलेगा कि तिस्ता का एक सोता यहाँ पर पाट तोड़कर घुसा था।

आसिंदर के हाथ में पाँच सेल का टॉर्च था, पर वह उसे जला नहीं रहा था। गयानाथ और आसिंदर कगार पर खड़े हो तिस्ता की ओर देख रहे थे—जैसे कि तिस्ता से निकल कर कोई आने वाला हो।

गयानाथ बोला, "कितना पेड़ गिरा हुआ है देख रहे हो न ?"

आसिंदर ने कहा, "कय बार देखना पड़ेगा ? साला चार ठो तो गिरा है आउर गिरा नहीं है।"

गयानाथ ने पूछा, "तुमरा मन क्या कहता है ? अर्जुन का पेड़ गिरेगा कि नहीं ?"

आसिंदर ने जवाबी सवाल किया, "तुमरा मन क्या कहता है बापू ? पानी आउर धक्का मारने लगा है या कम हो गिया है ?"

इसके जवाब में गयानाथ ने तिस्ता के स्रोत की ओर अधिक ध्यान से देखा। इस समय तिस्ता का पानी और आकाश एक जैसे मटमैले नज़र आ रहे

थे। उससे तिस्ता के पानी की गति को अलग से समझना कठिन था। पर गयानाथ और आसिंदर उस रात के बारह बजे से उसे लगातार देखते आ रहे थे। इतनी देर तक देखते-देखते वे अब समझ गये थे कि किसी एक जगह से स्रोत मोटा होकर बायीं ओर मुड़ता हुआ इस पाट की ओर चला आ रहा है। उसी मोड़ पर यह मुर्दानी उजास भी थोड़ी झिलमिला रही थी। स्रोत के भँवर में जब थोड़ा जल घुस जाता है तभी वहाँ उजास और तेज चमकने लगती है।

उसी तरह एक भँवर को देखकर गयानाथ ने पुकारा, "हे ए बाघारू, देख तो पानी बढ़ा है कि नहीं ?" बाघारू कगार पर से छपाक् कर के नये सोते में कूद पड़ा पानी नापने के लिये। बाघारू ने वहाँ एक डाल गाड रखा था। जल में कूदने की आवाज़ सुनते ही आसिंदर ने घूमकर टॉर्च जलायी। टॉर्च के प्रकाश में बरसते पानी की बूँदें दिवाली के कीड़ों की तरह कुलबुलाती नजर आती थीं। हवा में वह आलोकमय बारिश ऊपर-नीचे डोलती थी—टॉर्च के थोडे प्रकाश के साथ। बाघारू ने नीचे आकर देखा कि उसका पहले वाला निशान पानी में डूबा कि नहीं। पर इसके लिये उसे पानी की स्थिरता के लौटने तक इतजार करना पड़ा। जल में जो थोड़ी हलचल थी, क्या वह नयी धार के टकराने से हुई थी या बाघारू के कूदने से ? आसिंदर ने टॉर्च एक बार बुझाकर फिर से जलाया। बाघारू टॉर्च के प्रकाश में अपने कंधे को झुका कर नीचे देखा, फिर बोला, "नहीं, जल बढ़ा नहीं।" उसके बाद खडा हो गया। टॉर्च बुझ गया। बाघारू, अर्जुन गाछ शायद कभी नहीं गिरेगा। इसकी जड़ें दूर-दूर तक फैली है। गयानाथ और आसिंदर प्रतीक्षा कर रहे थे कि अर्जुन गाछ कब गिरे। पर अर्जुन गाछ के जड़ की मिट्टी आधा-आधी कट जाने के बावजूद पेड सीधा होकर खडा था। बीच में गयानाथ ने एक बार बाघारू से पेंड़ पर धक्का भी लगवाया था। बाघारू ने जाकर ठेला भी था, पर वह गिरा नहीं। बाघारू को मालूम था कि यहाँ सोता का जितना ज़ोर है उससे शायद वह पेड कभी भी नहीं गिर सकता। इसकी जड़ें बहुत फैली हुई हैं। यहाँ सोते का ज़ोर बहुत ही कम था—इतना कि उससे पेड गिर नहीं सकता। बल्कि उल्टा इस पेड़ के कारण ही शायद पानी का सोता यहाँ पर रुका रहेगा या दायीं ओर नर्म मिट्टी को खोखला बनाते हुए मुड़ जायेगा।

आसिंदर ने कहा, "अरे देर करने की कोई ज़रूरत नहीं। बहा दो, बापू बहा दो।" गयानाथ ने फिर से उस पानी के मोड़ की ओर आँखें गड़ाकर बोला, "वैसा है तो फिर देर क्यों बहा दो। बाघारू को बोल, कुल्हाड़ी लेकर इहाँ आ जाये।"

आसिंदर ने बाघारू को नहीं बुलाया। मुड गया। टॉर्च एक बार और जलाकर बाघारू की ओर देखा। वह एक लुंगी पहने हुए था। पैरों में गमबूट। थोड़ा-सा आगे बढ़ते ही उसकी आँखों में कैसा तो कुछ चौंधिया गया। पर उस चौंधियाहट

को दूर करने के लिये टॉर्च बिना जलाये ही वह पेड़ों का मरोड़ते हुए अँधेरे में ही पुकारने लगा, "हे- ए बाघारू।" जैसे कि उसने चौंक कर ही पुकारा हो। बाघारू आसिंदर से गर्दन पर साँस छोड़ने वाली निकटता से ही बोला, "कहो, क्या है ?" आसिंदर ने टॉर्च जलायी। टॉर्च जलाकर बाघारू के ऊपर एक बार सिर से पाँव तक रोशनी डाला। उसी प्रक्रिया में हवा में पेड़-पौधों का डोलना और भींगे जंगल को चकित होकर निहारने लगा। आसिंदर ने तिस्ता की ओर टॉर्च जलाकर अपने ससुर को भी देख लिया। बस यही कुछ क़दम आते ही उसे लगा था कि वह कहीं खो गया है—हाथ में एक पाँच सेल के टॉर्च के रहते हुए भी। बाघारू को स्पष्ट रूप से देख लेने के बाद बोला, "कुल्हाड़ी लईके जा, बुढ़ऊ बुलाया है।"

बाघारू अँधेरे में दो क़दम बढ़ गया, फिर सधे हाथों से पेड़ के तने में मारी गयी कुल्हाड़ी को एक झटके से निकाल लिया। छपू कर के झाड़ियों में कुछ गिर गया। बाघारू भूल गया था कि कुल्हाड़ी के हत्थे पर नाइलॉन की रस्सी के दो बंडल भी फँसे हुए हैं। उन्हें झाड़ी से निकाल कर वह गयानाथ की तरफ बढा। गयानाथ नदी के कगार पर खड़ा था। आसिंदर थोडा भीतर की ओर था। बाघारू को कुल्हाड़ी हाथ में लिये गयानाथ की ओर बढ़ता देखकर आसिंदर कुछ डर गया। उसने अपने नॉयलान की शर्ट की जेब से सिगरेट और लाइटर निकाल ली।

गयानाथ को ख़बर तक नहीं लगी कि बाघारू आकर उसके पीछे खड़ा है। वह तब सोते के उसी मोड़ की तरफ़ देख रहा था। बाघारू ने बुलाया, "देउनिया !"

"हाँ। आ गिया ? ले, बहा दे, बहा दे।"

बाघारू नदी की कगार पर खड़ा हो गया। फिर पानी में जाल डालते समय जाल को सिर के ऊपर घुमाकर फेंकने से पहले माँझी लोग जैसे घुटने को थोड़ा झुका लेते हैं, ठीक उसी तरह बाघारू नदी की ओर देखा। नदी के विस्तार की ओर नहीं वह नदी जो अब वन्यवाहिनी तिस्ता है उस रात के जल की ओर भी नहीं, बाघारू ताक रहा था कि ठीक अपने पैर तले के जल को, जैसे यह पानी बिल्कुल ही बाघारू के मछली ढबरा का जल हो, उसके साथ जैसे जल की इस प्रबलता का कोई संपर्क ही नहीं, या फिर हो भी अगर तो उससे बाघारू को कुछ अता-पता नहीं।

121

बाघारू का पेड़ काटना

बाघारू दाहिने घूम कर किनारे-किनारे जगल के और अंदर चला गया। वहाँ एक

मझोले कद का शालवृक्ष पानी के अंदर गिर गया था पर उसकी जड़ अभी भी मिट्टी में धँसी हुई थीं। बाघारू ने बायें हाथ से कुल्हाड़ी को अपनी लंगोटी के पीछे खोंस लिया था। कुल्हाड़ी की बेंट उसके मेरूदंड की सीध में लग गयी। और कुल्हाड़ी का फाल थोड़ा बाहर की ओर हो गया। नाइलॉन की रस्सियों के बंडल के बीच से हाथ घुसाकर उसने बंडल को बायें कंधे पर टाँग लिया। कंधे पर तो पूरा नहीं जा पाया, उसका कुछ भाग बाँह पर झूलता रहा था। फिर उसने शाल वृक्ष के उखड़ी जड़ को पकड़ कर खींच कर अंदाज़ा लगाने के लिये तने पर पैर रख लिया—उस तने के नीचे तिस्ता का जल था। बाघारू ने बायाँ पैर तने पर रख लिया पर दायाँ पैर मिट्टी पर से उठाने की कोशिश करते ही समझ गया कि शरीर का पूरा वज़न वह एक ही झटके में बायें पैर से उठा भी नहीं सकता है। उसने बायें पैर को झुका लिया। जड़ को छोड़कर फिर से सीधा होकर खड़ा हो गया। अबकी बार वह घूम कर पेड़ के दूसरी तरफ़ चला गया। बायें हाथ से उसे इस एक ही जड़ को पकड़ना पड़ा। अबकी दायाँ पैर तना के ऊपर उठाते ही बाघारू समझ गया कि नदी में पड़े हुए पेड़ की स्थिति और उसके कूद कर डाल पत्तों के पास चले जाने के बीच एक संगति आ गयी है। बाघारू यह पहले समझा, उसके बाद दायें पैर पर शरीर का बोझ डाल नदी के अंदर पुल की तरह इस पेड़ पर चढ़ गया। सिर्फ़ इतना ही नहीं उसने बायें हाथ की मुट्ठी से जड़ को पकड़ दायाँ पॉव तने के ऊपर लेकर एक बार सिर्फ़ पैर से एक झटका दिया, फिर पेड़ के तने पर चढकर दायें हाथ से नीचे की डाल को पकड़ लिया। इन कुछ पलों में बाघारू जैसे पानी के ऊपर से ही चलता गया, चील के पंख की तरह दोनों बाँहें फैलाये। नीचे की उन दोनों डालों तक पहुँचते ही बाघारू दोनों ओर पैर रखकर पेड़ के बीच बैठ गया। नाइलॉन रस्सी के दोनों बंडल को बाँधकर एक बंडल बनाया गया था। उसने बंडल नहीं निकाला, पर उसका सिरा जहाँ घुसा था, वहाँ एक झटका मारकर उसका सिरा निकाल दिया और दोनों डालों की दो शाखों पर डालकर 8-जैसी एक गाँठ डाला दिया। रस्सी को काटने के लिये बायाँ हाथ घुमाकर कुल्हाडी में हाथ लगाकर भी वह वापस ले आया। फिर अपने शरीर को तानकर उसने पेड़ के डाल-पातों के भीतर सिर को घुसेड़ दिया। पत्तों के अंदर दोनों हाथ की दसों अंगुलियों से टटोल कर और एक डाल ढूँढ़ निकाला, पर वहाँ गाँठ लगाते हुए देखा कि उसके सिरे को तो वह पहले गाँठ-सा बाँध चुका था। बाघारू तब बायें बाँह से रस्सी को फिसला कर हाथ के अंगुलियों में लाने के लिये लेटे-लेटे बायें हाथ को आहिस्ता-आहिस्ता झुलाया, कलाई को मोड़े ही रहा, ताकि बंडल छपाक् से पानी में गिर न जाये। कलाई के पास बंडल के आते ही बाघारू हाथ को नचाकर बंडल को अंगुलियों में ले आया, अबकि बार बंडल को पेड़ के नीचे से ले जाकर हाथ पर लाया

और ऊपर से होकर बायें हाथ पर ले आया। पेंच तो पड़ गया था। अब तो गाँठ लगानी होगी। पर पूरा बंडल लेकर तो गाँठ लगायी नहीं जा सकती। बाघारू ने दायाँ हाथ पीठ की ओर ले जाकर झुक कर कुल्हाड़ी निकाल ली। रस्सी तना के ऊपर उसकी आँख के ठीक नीचे थी। उसके कुल्हाड़ी को पकड़ 'कच्च' कर एक हल्की चोट देते ही रस्सी कट गयी—अब उसके दायें हाथ में कुल्हाड़ी और बायें हाथ में बंडल था। उसने पहले कुल्हाड़ी को पीठ पर खोंस लिया, दायें हाथ से बडल के सिर को अलग किया। फिर बंडलवाली रस्सी के सिरे और गाँठ लगे सिरे को अलग-अलग पकड़ लिया। बंडल बायें हाथ की अंगुली से कोहनी की ओर ले आया। फिर दसों अँगुलियों में गाँठ लगायी। पेड़ पर चींटियाँ थीं। गाँठ देते समय लाल चींटियाँ उसे इतना काट रही थीं कि गाँठ लगाते ही उसे पहले दोनों हाथ झाड़कर फिर सीधा खड़ा होना पड़ा। कगार पर लौटने के लिये बाघारू दोनों ओर की डाल पकड़ कर खड़ा हो गया और उसके बाद एक पैर आगे बढ़ाकर मिट्टी पर लगी जड़ पर कूद पड़ा। साथ ही नॉयलान की रस्सी को पेड़ के शिखर से कगार तक डुलाया। उसे और थोड़ा हिलाकर बाघारू जंगल की ओर थोड़ा भीतर चला गया। वहाँ एक पेड़ में रस्सी को कई बार लपेट कर बंडल को पेड़ के नीचे रख दिया और दायें हाथ से पीठ से कुल्हाड़ी को निकालकर पानी में पड़े शालवृक्ष के पास आकर नीचे झुका दिया और उखड़े जड़ का जो बाक़ी भाग उसे रोक रखा था, उस पर झुक आया। बाघारू कुछ देख नहीं पाया। वह दायें हाथ से अंदाज़ा लगाने की कोशिश करने लगा। पर उसे कुछ अंदाज़ा भी नहीं लगा पाया। तब वह सीधा खड़ा हो गया। कुल्हाड़ी को सिर के ऊपर उठाकर उसने उसे जड़ पर मारा। चोट पड़ते ही बाघारू समझ गया कि सही जगह पर चोट लगी है। बाद की चोटें भी उस निश्चितता के साथ सही जगह पर पड़ती जाती थीं। पेड़ के अंदर से एक तरह की आवाज़ धीरे-धीरे उठती थी और तमाम पेड़ों मे फैल जाती थी। फिर पेड़ के शिखर पर से पानी की आवाज़ बदल जाती थी। बाघारू समझ गया था कि पेड़ और झूल गया है। और दो चोट लगाते ही पेड़ एक संक्षिप्त पर तीव्र आवाज़ के साथ पानी के अंदर गिर गया। पानी की आवाज़ अचानक बढ़ गयी और फिर कम हो गयी। झुरझुरा कर कुछ मिट्टी गिरने की आवाज़ हुई। पेड़ की जड़ नॉयलान की रस्सी को तान कर तिस्ता के जल में उफनने लगी थी। बाघारू फौरन कुल्हाड़ी को पीठ में खोंस लिया। उसी पेड़ के नीचे से रस्सी पकड़ कर खींचने ही समझ गया कि गाछ को स्रोत टान रहा है। उसने जल्दी से बंडल का एक-एक पेंच खोल दिया। पेंच खुलते ही जैसे वह बहा जा रहा हो स्रोत के ज़ोर से। बाघारू ने आखिरी पेंच नहीं खोला—अगर वैसा करेगा तो पानी उसे भी बहा ले जा सकता है। वह पेड़ पर एक पेंच को छोड़ कर रस्सी को धीरे-धीरे ढील देने लगा। काफ़ी रस्सी छोड़ने

के बाद बाघारू समझ गया कि वह अथाह पानी का ज़ोर सँभाल पायेगा। तब वह पेड़ से आख़िरी पेंच को निकाल कर पानी में बहते पेड़ के समान वेग से किनारे-किनारे दौड़ने लगा। उसके हाथ में रस्सी थी। गयानाथ और आसिंदर जिधर खड़े थे, वह उधर ही भागता गया। पर कुछ क़दम दौड़ते ही और एक पेड़ में रस्सी को फँसा दिया। थोड़ा रुका, फिर आगे भागने लगा। इस पहले पेड़ को बहाने से पहले उसे थोड़ा सोचना पड़ा—उसे हवा का वेग, स्रोत की धार और अपनी ताकत को तौलना पड़ा। उसे बहाने के लिये और तीन पेड़ों को इसी तरह से लाना है, उसके बाद चारों को एक साथ बाँधकर बहाना पड़ेगा।

यहाँ, इस ऊँचे कगार पर, जंगल के भीतर, हवा और पानी का रुख़ अलग था। नदी के ऊपर हवा और पानी का रुख़ अलग था। नदी के ऊपर हवा और पानी का यह धुँधला उजास नदी के स्रोत के वेग के उसके विपरीत पहाड़ की ओर भागता जा रहा था। बारिश की बूँदें धरती पर पड़ नहीं पा रही थीं। पर हवा हहराते हुए फिर फॉरेस्ट में घुसी जा रही थी। इस अँधेरी रात में, या फिर कहना चाहिये कि आकाशविहीन रात में जबकि एक भी तारे नज़र नहीं आ रहे थे, वहाँ अचानक बाँध तोड़े हुए बाढ़ के जल-सी हवा नदी के भीतर से फॉरेस्ट में घुस रही थी और बाहर आ नहीं पा रही थी। वृक्षों के पत्तों से आकाश इस तरह से ढँका हुआ था कि हवा ऊपर की ओर निकल नहीं पा रही थी। पेड़ों के नीचे, धरती के ऊपर इतने अधिक घास और झाड़-झंखाड़ फैले थे कि हवा वहाँ घुसकर भी ठीक से चल नहीं पा रही थी, बाहर निकल नहीं पा रही थी। फलस्वरूप, नदी से 'हू-हू' करती हुई पेड़ों के तने डाल-पात में घुसकर, गाछ से लगे अन्य वृक्षों के डाल-पात से होते हुए फॉरेस्ट भर में फैले स्रोत के साथ मिल जाती थी और दूसरे तने से होती हुई फिर से नीचे चली आ रही थी। धरती पर फैले जंगलों के अंदर छिपकर पशुओं के झुंड-सी वह हवा भागती हुई धँसती है पर निकलते समय राह खो जाती थी। उस तूफ़ानी हवा के झकोरों से जंगल नीचे से ऊपर तक तोड़-फोड़ का शिकार हो जाता था।

122

गयानाथ का मिट्टी, पेड़ और जल के स्वर में बात करना

गयानाथ बोला, "ऐ आसिंदर, देख तो जरा, अर्जुन पेड़ की मिट्टी अभी कटी कि नहीं ?"

आसिंदर ने टॉर्च जलायी। फिर बोला, "लगता है इस अरजुन पेड़ के लिये तुमें शालवाल सबको छोड़ देना पड़ेगा।" कहता हुआ उसने टॉर्च बुझा दिया। फिर कुछ पल दोनों चुप रहे थे। अबकी दोनों बैठे हुए थे एक पेड़ के तने पर।

गयानाथ तिस्ता की ओर मुँह किये हुए था। आसिंदर फॉरेस्ट के अंदर देख रहा था। जंगल के उस भीतरी भाग से आवाज़ आ रही थी। बाघारू आख़िरी पेड़ को रस्सी से बाँध कर पानी में बहा देने के बाद, बाक़ी जो तीन पेड़ गयानाथ के सामने वाले पाट के नीचे तिस्ता में रखा था, उनके साथ बाँधने के लिये खींच कर लायेगा। इतने बड़े-बड़े वृक्षों के डाल-पत्ते पानी के भीतर से पाट के ऊपर चले आये थे। एकबारगी गयानाथ के पैर के पास ही। धुंधले उजास में डाल-पात की परछाई काफ़ी बड़ी नज़र आ रही थी। यहीं से ही गयानाथ तिस्ता के भीतर जल का जो उजला रूप देखकर उसके वेग का अंदाज़ा लगा रहा था, वह जगह अब और नज़र नहीं आ रही थी। तीन-तीन पेड़ों के डाल-पात तिस्ता को तक़रीबन ढंक ही रखे थे। आड़ में चले जाने के बाद भी तिस्ता की आवाज़ गयानाथ और आसिंदर के कान में पड़ रही थी। गुम-गुम आवाज़ करता तिस्ता का जल बहा जा रहा था—आवाज से ही पता चलता था जैसे पीछे से नदी के उफनते पानी को ठेलते चले जा रहे थे। तिस्ता की बाढ़ के साथ जिनका थोड़ा-बहुत परिचय रहा है, उन्हें पता है कि तिस्ता का जल जिस समय जल की तरह कलकल-छलछल आवाज़ नहीं करता, बड़े-बडे बोल्डरों के साथ टकराकर आवाज़ करता है, तब पाताल से ही तिस्ता का जल निकल रहा होता है। और वह पानी सब कुछ बहा डालेगा—गाँव, घर-द्वार सबकुछ। रात के इस आख़िरी पहर में तिस्ता के कगार के टूटने से जंगल के गिरे वृक्षों को बाँध-छाँद कर तिस्ता में बहा देते हैं, फिर कई दिनों के बाद पानी उतर जाने पर, भाटे में जहाँ वृक्ष रुके होते हैं, वहाँ जाकर इसे अपने क़ब्जे में करते हैं फिर शॉ फेक्ट्री को बेच देते हैं। इस तरह हजारों रुपये का फ़ायदा करने वाले व्यापारी बन बैठे हैं अभी ससुर-दामाद। पर अभी, पेड़ों को बहा देने के ठीक पहले ही इन वृक्षों से भी बढ़कर तिस्ता की बाढ़ उनके निकट अधिक सच हो उठी है अचानक—जो बाढ़ जंगल के इतने बड़े-बड़े आकाश को चूमते पेड़ों को उनके पचास-अस्सी-सौ वर्ष के मजबूत जड़ों से उखाड़ने में समर्थ है, वही बाढ़ पलक झपकते ही आसिंदर और गयानाथ को बहा भी ले जा सकती है। उखड़े हुए पेड़ों के डाल-पत्तों की आड़ से वे उस सर्वनाश की आवाज़ को सुन रहे थे।

पर इन पेड़ों पर गयानाथ का एक तरह का अधिकार भी तो बनता है।

गाजोलडोवा के पास तिस्ता ने शनिवार से ही आपलचाँद का कगार तोड़ना शुरू कर दिया था, सुबह से ही। कभी वहाँ जंगल में ही गयानाथ का एक पैतृक खतियान रहा था। आख़िरी सेटलमेंट में हालाँकि यह साबित हो चुका था कि वहाँ जंगल में गयानाथ की कोई ज़मीन-वमीन नहीं है। समूची ज़मीन को जंगल के खतियान में दर्ज़ कर दिया गया था। गयानाथ ने उस सेंटलमेंट के ख़िलाफ़ अपील कर दिया था। सेटलमेंट की सभी अपील पर राय बहाल

हुई। तभी गयानाथ ने जलपाईगुड़ी कोर्ट में सिविल मामला दायर कर दिया और फौजदारी कोर्ट में दरख़्वास्त किया कि मामले पर विचार न होने तक पूर्वावस्था बहाल रहे। अदालत ने भी कुछ समय तक इसे प्रभावी रखने के लिये आदेश दे दी। पर वह समय बीत जाने पर गयानाथ ने फिर से दरख़ास्त किया। इस बार अदालत ने मामले को थोड़ी गंभीरता से लेकर तहक़ीकात करके पता लगाया कि वहाँ पूर्वावस्था बहाल रखे जाने पर भी गयानाथ या सरकार का कोई नुकसान तो नहीं हो रहा है। नहीं हो रहा है तो फिर आप पूर्वावस्था की बहाली क्यों चाहते हैं ? अदालत के इस सवाल के जवाब में गयानाथ के वकील ने कहा था कि उन्हें भय है कि फॉरेस्ट डिपार्टमेंट वहाँ के सारे पेड़ काट लेगा। बात में क़ानूनी दाँव-पेंच था। जिस संपत्ति का मालिकाना अब तक अदालत में साबित नहीं हुआ है, उस सम्पत्ति को भोगे या उस पर दखल प्रतिपक्ष करे तो वादी की सामूहिक रूप से आर्थिक क्षति होगी। ख़ासकर, जिस ज़मीन के मालिकाना को लेकर विवाद चल रहा हो, उस ज़मीन के प्रधान आर्थिक सम्पदा थे–ये पेड़। अदालत ने व्यंग्य करते हुए गयानाथ के वकील से कहा था कि, "अगे न हो तो गयानाथ इस थोड़ी-सी ज़मीन को सरकार को ख़ैरात में दे दें।" अदालत का सम्मान रखने के लिये वकील बाबू ने यह बात गयानाथ के कान में कही भी थी। गयानाथ बाबू की बातों के मुताबिक वकील बाबू ने अदालत को बताया कि–"सर, अगर हुकुम करें तो गयानाथ बाबू अपने खतियान की किसी भी ज़मीन में से विवादित ज़मीन जितनी ज़मीन सरकार को ख़ैरात में देने के लिये तैयार हैं, पर यहाँ तो मालिकाना का मामला उठा है, वह मालिकाना तय न होने तक गयानाथ खैरात करने वाला कौन होता है। तो फिर सर, यह राय ही दे दें कि इस ज़मीन पर गयानाथ का अधिकार है, उसके बाद गयानाथ बाबू वह ज़मीन सरकार को खैरात कर देंगे। हाकिम से भी बढ़-चढ़कर क़ानूनी दाँवपेंच में माहिर था गयानाथ बाबू का वकील। वह ज़िले का एक नंबरवन वकील था। पर वकील से भी ज्यादा माहिर थे ख़ुद गयानाथ बाबू। उन्होंने अपने बाप-दादा-पुरखों से ही ज़मीन-जायदाद का क़ानून सीखा था। सरकारी पक्ष का वकील एक बार कह भी गया था, "सर, यहाँ यह ऑर्डर देने पर तिस्ता बैरेज बनाने में कठिनाई आयेगी।" अदालत ने थोड़ा-सा ख़ुश होकर कहा था, "तो फिर तिस्ता बैरेज का प्लान दिखाइये और वे इस ज़मीन के एलाइनमेंट का क्या करेंगे, वह भी बताइये।" पर सरकारी वकील के पास यह सबकुछ नहीं था। आपस में बातचीत करके अदालत से कहा गया, "सर ठीक है, अबकी बार अगर आप ऑर्डर देना चाहें तो दे दीजिये, हम अगली पेशी में तिस्ता बैरेज का मास्टर प्लान, और इस ज़मीन के बारे में इंजीनियरों की रिपोर्ट अदालत में पेश करेंगे। सरकारी वकील की बातों से जैसे गयानाथ की मुराद पूरी हो

गयी। जिस तारीख में इस दरख़ास्त की बात दुबारा उठी थी, उसी तारीख को गयानाथ के वकील ने कहा, "सर, सरकार ने अपने वायदे के मुताबिक डाक्यूमेंट्स नहीं जमा किया, सो पूर्वावस्था बहाल रखने के आदेश को फिर बहाल रखा जाये। सरकारी वकील के हाथ में और बहुत-से ज़रूरी मामले थे। अब इस बील्लस भर ज़मीन के लिये कौन मास्टर प्लान और इंजीनियरों की रिपोर्ट का जुगाड़ करता फिरे ? फलस्वरूप सिविल कोर्ट में जमीन के मालिकाने का मामला चलता रहा और इस ज़मीन के व्यापार में पूर्वावस्था भी बहाल रही।"

सोमवार-मंगलवार से क्रांतिहाट-गाजोलडोवा-आपलचाँद का आकाश भी बोझिल होकर नीचे झुक आया था। हवा और पानी तो जारी ही था। पर बारिश की फुहार और हवा के झोके में ऊपर आसमान की प्रकृति अलग हो गयी थी। फुहार में हवा आकाश से या आकाश के सीमांत से बिना आधार के गिरी थी। और इस फॉरेस्ट के पास हवा मिट्टी के भीतर से उमड़ कर आती थी। पगलाये हाथियों का तो कोई झुंड नहीं होता। होता तो कहा जाता कि यह तूफानी हवा पगलाये हाथियों के झुंड की तरह थी।

ऐसी हवा और बारिश के चलते तिस्ता का जल तो बढ़ेगा ही। पर कितना बढ़ेगा, कितने दिन चलेगा—उसका तो अंदाजा नहीं लगाया जा सकता। गयानाथ-जोतदार की जमीन-जायदाद चारों ओर फैली है। वह इसके मालिकाने को लेकर सिविल कोर्ट में मामला कर सकता है, वह इस ज़मीन की पूर्वावस्था बहाल रखने के लिये फौजदारी भी कर सकता है, पर इसका मतलब तो यह नहीं निकलता कि वह अपना सब कामकाज छोड़कर इस ज़मीन पर पहरेदारी करता फिरे।

पहरेदारी चाहे करे या न करे, शुक्रवार दोपहर से ही उसके पास खबर पहुँचने लगी थी कि काफी ऊपर में तिस्ता का किनारा टूट रहा है। उससे भी गयानाथ को कोई फर्क नहीं पड़ा। क्योंकि उधर गयानाथ की कोई जमीन नहीं है। और गयानाथ का घर-द्वार भी तिस्ता से काफी दूर है। पर ठीक शनिवार की दोपहर को गयानाथ को जब खबर मिली कि तिस्ता का पाट गाजोलडोवा में भी टूटने लगा है, तो उसने अपने दामाद को बुलाकर कहा, "फटफटिया निकाल लो। जमीनिया को एक बार देख आयें, चलो।"

आसिंदर के पीछे बैठकर गयानाथ अपने पूर्वावस्था बहाल ज़मीन की हालत तिस्ता बदल सकती है कि नहीं, देखने चला गया। जरूर देखा—जंगल के इतने अंदर, घर-द्वार से इतनी दूर तिस्ता फरिस्ट के बीच भी पानी घुस गया है। एक जगह तो ज़मीन का इतना कटाव हुआ था कि वहाँ अलग से डबरा बन गया था।

"बाघारू को ले आ, आउर टॉर्च भी।" गयानाथ उसी स्वर में बारिश में

बोला। जो स्वर यहाँ की मिट्टी, गाछ-पात, जल में मिला हुआ था। गयानाथ अगर इसी हवा ओर जल की आवाज़ समझता है, तो यह जल और हवा भी गयानाथ के गले की आवाज़ समझती है। उस जवान शाल के पेड़ की जड़ पर हाथ रखकर जँवाई को आदेश दिया, "फटफटी ले जा, टॉर्च लाना, अपना बड़ा वाला टॉर्च, बाघारू को भी लाना, एक अच्छी-सी कुल्हाड़ी भी साथ लाना, नाइलॉन की रस्सी भी एक-दो बंडल, मोटा नाइलोन का।" तिस्ता की ओर देखकर गयानाथ अपने छोटे-छोटे हाथों की बीमार अंगुलियों के सिर को अँगूठे के साथ मिलाकर कितना मोटा होना चाहिये बताया। आसिंदर के पीछे मुड़ने पर गयानाथ फिर से बोला, "चूड़ा गुड़ भी ले आना, सारी रात रहना पड़ सकता है।"

आसिंदर चला गया और गयानाथ अकेला ही कुछ पल, कई घंटे तिस्ता के जल की ओर देखते-देखते उन लाखों क्यूसेक जल के नीचे मिट्टी को भी जैसे देख लिया—देख लिया कि मिट्टी किधर कितनी ढलवाँ है, उस ढलान में रेत और पत्थर जमे हुए हैं कि नहीं। कई क्षण, कई घंटे इस हवा की ओर देखते-देखते गयानाथ ने हवा की गति को भी नाप लिया। नाप लिया कि आकाश की जिस शून्यता को भरने के लिये यह हवा पूरब से भागी आ रही है, वह शून्यता और कितनी गहरी है। इस वायुनिहित जलराशि के भीतर और कितने मेघ हैं, मेघों में और कितना जल है। तिस्ता, हवा, बारिश और फॉरेस्ट मिलकर गयानाथ ने इस नदी की धारा से आने वाले कई दिन के आबोहवा का कार्यक्रम ठीक कर लिया।

इस बाढ़ ने काफ़ी हद तक गयानाथ के निर्देश को भी माना—जहाँ से कगार टूटने लगा था, उधर से तिस्ता का जल सचमुच घुस आया, उस स्रोत की धारा में और दो पेड़ पानी में गिर गये।

आसिंदर बाघारू को मोटरसाइकिल के पीछे प्रायः बाँधने जैसा ही कर के ले आया। क्योंकि गाड़ी चलने के साथ-साथ ही बाघारू गिर जाता है। बाघारू के साथ कुल्हाड़ी भी आयी, नायलॉन की रस्सी का बंडल भी आया। और एक पेड़ गिरा। पर वह अर्जुन पेड़ नहीं गिरा।

बाघारू चतुर्थ पेड़ को बहाकर पहले गिरे तीनों पेड़ों के पास ले आया।

123

बाघारू, तू भस जा

बाघारू नदी की पाट पर खड़ा हो गया उसके बायें बाँह में नाइलॉन की रस्सी का एक बंडल था और बायें हाथ की मुट्ठी में एक रस्सी। रस्सी से वह पेड़ों को खींचकर पकड़े हुए था। दायें हाथ में कुल्हाड़ी झूल रही थी। बाघारू जिस

रस्सी को पकड़े हुए था, वह गयानाथ और आसिंदर जिस पेड़ पर बैठे थे, उससे बँधी हुई थी। गयानाथ के कहने पर ही वह हाथ की रस्सी को छोड़ देता। तब बहाव में वे पेड़ कुछ दूर तक चले जाते। बाघारू खड़ा था, गयानाथ कब 'छोड़ दे' कहेगा, इसी की प्रतीक्षा में।

गयानाथ ने आसिंदर से पूछा, "कितना बज गया, हो ?"

आसिंदर ने चकित होकर घड़ी देखी, "चार।"

"चार !" गयानाथ मन-ही-मन बोला।

नदी के ऊपर जो धुँधला प्रकाश था वह अचानक दूर हो गया था। अथवा दूर होता जा रहा था, जो अब उनको नजर में आ रहा था। दशमी-एकादशी के चाँद के अचानक काले मेघ से ढंक जाने से जिस तरह अचानक अँधियारा गहराने लगता है, अभी का प्रकाश ठीक उसी तरह नजर आ रहा था। बाघारू ने आकाश की ओर नहीं देखा। गयानाथ और आसिंदर ने आकाश पर नज़र डाली। देखकर समझ गये कि चाँद डूब गया है। अब अंधकार और बढ़ता ही जायेगा। पर सूरज कब निकलता है, कई दिनों से यह समझ ही नहीं आ रहा था। क्योंकि सूरज न निकलने तक अंधकार बढ़ना ही जायेगा। समझ में न आने पर भी आकाश इसी तरह के धुंधले प्रकाश से भर जायेगा, पर वह प्रकाश रात से थोड़ा कम ही धुंधला होगा।

अब तक यह धुंधला प्रकाश नदी के ऊपर छाया हुआ था। लेकिन जंगल और नदी के पाट पर थोड़ा कम ही था। पर जंगल के और थोड़ा अंदर जाते ही यह अँधेरा और गहराने लगा था। अब नदी के ऊपर का प्रकाश हट कर वहाँ अँधेरा फैलने लगा था। जंगल के भीतर अब और अंधकार छा गया था। नदी के ऊपर से अँधेरा थोड़ा छंटते ही नदी का जल भी जैसे कुछ बदल गया था। अब तक आकाश और नदी को एक ही गंदला स्रोत जोड़े हुए था। जल की लहर से यह गंदला स्रोत बस बीच-बीच में सिर्फ हिल जो रहा था, बस इतना ही। अब तो आकाश का अँधेरा नदी पर भी अपनी छाया डाल रहा था। पर उस अंधकार के चलते ही जैसे गंदला भाव कम हो जाने का भ्रम बना हुआ था। नदी का पानी मटमैलेपन से जैसे अचानक साफ हो गया हो, जैसे जल के बीच रुपहला रंग भर आया हो। फिर नदी के आर-पार भी जैसे नज़र आ रहा था। सब भ्रम, सब कुछ विभ्रम।

आसिंदर अधैर्य हो उठा, "अभी भी अगर नहीं छोड़ा तो फिर रात भर जागने का भला क्या काम था ?"

"हाँ-हाँ, छोड़ देंगे, छोड़ देंगे।" कहता हुआ गयानाथ ने पूछा, "बाढ़ का क्या हाल है, बहाव कितना तेज़ है, कहाँ जाकर रुकेगा अंदाज़ा लगाना होगा।"

"इसमें अंदाज़ा लगाने की भला क्या बात है ? कल मोटरसाइकिल से

जाकर देखना पड़ेगा। नाइलॉन की रस्सी से बँधा हुआ है, सभी समझेंगे किसी की सम्पत्ति है। फिर रुकेगा तो किसी चर में ही। लोग तो चर छोड़ कर चले गये हैं। इसमें डरने की क्या बात है ? डरो मत, कोई तुमरा दौलत तो नहीं ले जायेगा बापू। न हो तो उन पेड़ों पर लिख दो—"गयानाथ एण्ड कम्पनी।"

गयानाथ ने आसिंदर की बात का कोई जवाब नहीं दिया। वह तिस्ता के ऊपर के अंधकार की ओर ताकता रहा। अभी तिस्ता की बाढ़ का अंदाज़ा लगाने के लिये इस अंधकार के सिवा कोई और अवलम्बन नहीं। यहाँ खड़े-खड़े वे हवा-पानी का जो धक्का झेल रहे थे, नौ-दस घंटों में वह उनके शरीर का ही एक भाग बन चुका था। "इस तरह से तो पेड़ों को बाँध दिया गया है। अब भगवान का नाम लेकर बाढ़ के मुँह में छोड़ दें। फिर कहीं-न-कही इसे ढूँढ़ निकालेंगे।" गयानाथ काफ़ी जोर से बोला। पर उसकी आवाज़ में जिस तरह का भाव था वह स्वगतोक्ति जैसा था। आसिंदर शायद गयानाथ की बातें पूरी तरह से सुन नहीं पाया—वह तो पीछे की ओर खडा था, पर बाघारू ने सुन लिया। क्योंकि गयानाथ ने बाघारू और तिस्ता की ओर देखकर ही यह सब कहा था।

"अभी जाकर ई गाछ रुकेगा। शायद साला कोई भी नही होगा। उनके पूरब-पश्चिम होकर बाढ बहा जा रहा है। कौन ओर देखेगा ?"

ये पेड़ जैसे बेड़ा हों और इस प्रलय में गयानाथ जैसे उस पर अपने किसी प्रियतम को बहा रहा हो। कहा जाकर यह बेड़ा बाढ में रुकेगा ? अगर पूरब-पश्चिम सब पार को बहा ले जायेगी यह बाढ़ तो फिर गयानाथ कहाँ जाकर इन्हें ढूँढ़ेगा ? चार-चार पेड़ों से न जाने कितने हज़ार रुपयों का नुकसान होगा ? जैसे इन हज़ारों रुपयों को गयानाथ अपने कच्छे की गाँठ से खोलकर बाढ़ में बहा रहा हो। बाढ़ वाली इस रात में यह चार-चार पेड़ जैसे उसके अपने बन गये थे—बिल्कुल अपने।

मौनामारी के चर में चरवाहा लोग हैं, प्रेमगंज के चर में भाटिया लोग हैं, बाकाली के चर पर मुसलमानों का घर है, काशियाबाड़ी पार करके क्या ये पेड़ पाकिस्तान चले जायेंगे ?

हवा की आवाज़ के साथ गयानाथ का हाहाकार मिल गया था। ये पेड़ जैसे उसके मोरपंखी हों। अब खाने के उद्देश्य से उस मोरपंखी को बहा दे रहा है, क्या पता, फिर कभी इन्हें देख पायेगा भी या नहीं ? जल के वेग से पेड़ों के डाल-पात गयानाथ का स्पर्श करते हैं। पर हवा के ज़ोर से वह छुअन मालूम नहीं पड़ती थी।

गयानाथ अबकी बार चीख़कर बोला, "ऐ हे बाघारू," जैसे कि बाघारू उसके सामने खड़ा न हो, नदी के उस पार ठीक उसके सामने खड़ा हो। गयानाथ

फिर से चीख़कर बोला, "ऐ हे बाघारू !"

बाघारू ने सामने खड़े होने पर भी कोई जवाब नहीं दिया। देउनिया के पुकारने पर बाघारू सामने आकर हाज़िर हो सकता है, पर जवाब तो दे नहीं सकता। फिर वह तो उसके सामने ही खडा था। थोड़ा तिस्ता की ओर और थोड़ा गयानाथ की ओर देखता हुआ। वह गयानाथ की तरफ और थोड़ा घूम गया–इससे उसके हाथ की मुट्ठी में गाछ से बँधा हुआ रस्सा तन गया। बहाव गाछ के बेड़े को बहा ले जाने के लिये खींच रहा था।

"बाघारू, तू ही पेड़ों के साथ चला जा। इतना कीमती गाछ है, पता नहीं कहाँ बह जाये। किसी के पल्ले पड़ जाये। तू तो चला जा गाछ के साथ, गाछ का पहरा देने के लिये जा।"

गयानाथ की चीख़ के बाद की नीरवता को भरते हुए हवा का ज़ोरों का हमला शुरू हो गया। गिरे हुए पेड़ों के डाल-पत्तों पर बहाव का तेज झटका लगा जो कि बाघारू के पंजे से रस्सी के जरिये टकराया–पंजे, कलाई और घुटने में। कुल्हाड़ी को धरती पर पटक कर बाघारू नरम मिट्टी पर पेरा को गाड़ कर पेड़ों को जोर से खींचे रखा।

"बाघारू, गाछ पर चढ़ जा। जहाँ पर रुक जाये वहीं पर रहना। हम गाछ को और तुमको ढूँढ लेंगे।"

गयानाथ ने उसी पल गाछ पर चढ़ने के मतलब को पूरी तरह से बदल दिया। बाघारू ने हाथ की रस्सी को धीरे-धीरे छोड़ा। उसकी ढील का आभास होते ही स्रोत जैसे एक ही झटके मे उन पेडों को बहा ले जाना चाहता था। बाघारू ने बहुत धीरे-धीरे और थोडी ढील दी। फिर थोड़ा पीछे हटते हुए, उस पेड के तने के पास गया। वहाँ वह तने से घुटना सटाकर रस्सी को और थोड़ा खींचा, फिर शरीर का पूरा ज़ोर लगाकर धीरे-धीरे तने में रस्सी का दो-तीन बार घुमाकर कसा है। इससे वे बँधे पेड़ कगार के ओर निकट आ गये। खाली हाथ बाघारू सीधा होकर खड़ा हो गया। फिर दो क़दम बढ़कर कुल्हाडी उठायी। उसे लंगोटी में खोंसा। अब कगार पर खड़े-खड़े एक मजबूत डाल वह तलाशने लगा। उसकी बाँहों से नायलॉन की रस्सी बार-बार डोलती थी। बाघारू को एक डाल मिल गयी। पक्षी जिस तरह से डाल पर पेर रखते हैं, बाघारू ने उसी तरह डाल पर दोनों हाथ रख लिया और आकाश को छूती बाढ़ मे छलाँग लगा दिया। पहले पेड़ का शिखर जैसे इस अतिरिक्त तूफ़ान से काँप उठा।

"खोल दे, खोल दे, रस्सी को खोल दे" कहता हुआ गयानाथ पेड़ के तने की ओर भागा फिर वापस आ गया। नदी के पाट पर तब नायलॉन की रस्सी झूल रही थी। पेड़ के बहते शिखर के भीतर से जिस तने में रस्सी कसी गयी थी, उसी तने तक रस्सी झूल रही थी। उस रस्से के अंतिम छोर पर बाघारू

किसी डाल के भीतर घुस गया था। गयानाथ जोतदार ज़ोर से चीख़कर बोला, "ऐ बाघारू, अरजुन गाछ पीछे से बह जाये तो उसे भी बाँधकर रखना। बाघारू, अरजुन गाछ को बाँध के रखना।"

आसिंदर समझ नहीं पाया कि बाघारू भी पेड़ों के साथ बह जायेगा। उसने बाघारू को तने पर कुछ और पेंच देते देखा, रस्सी को फँसाते हुए देखा, रस्सी को हिलते हुए पाट पर जाते देखा, फिर पाट से नदी में बहते पेड़ों तक भी जाते हुए देखा। तब वह समझ भी गया हो या न भी गया हो। गयानाथ ने जब चीख़कर उसे तने से रस्सी को छोड़ देने के लिये कहा तब आसिंदर ने टॉर्च जलायी। बाये हाथ में टॉर्च लेकर, दायें हाथ से रस्सी पकड कर खींचते ही ऊपर का पेंच खुल गया। दुबारा खींचने पर भी बाद का पेच नहीं खुला, पर टॉर्च को जमीन पर रखकर दोनों हाथों से खीचते ही खुल गया। बहाव के जोर से पेड पाट से सरक गये। बाघारू ने और दो पेच आख़िर में डाले थे। पाट से निकल जाने के बाद वे वृक्ष जैसे अलग तरह की हरकत में आ गये थे। कहा जा सकता है कि तब बाघारू डाल-डाल पर अपने लिये सुरक्षित जगह की तलाश कर रहा था। या फिर बहाव के वेग से भी वृक्ष आंदोलित हो सकते थे। आखिरी पेंचो को आसिंदर दोनों हाथों से खींचकर भी खोल नही पाया। गयानाथ ने भी दायाँ हाथ लगाया। पर पेड़ की छाल के किसी फाँक में रस्सी फँस गयी थी। रस्सी छोड़कर गयानाथ बोला, "चीकट मिट्टी लाकर डाल।" अबकी गयानाथ ने टॉर्च पकड़ ली—आसिंदर उस अर्जुन पेड के नीचे गया। "जड के नीचे हाथ डाल।"

गयानाथ ने टॉर्च दिखायी। दोनों हाथो से पाट की गीली मिट्टी लेकर आते समय आसिंदर के सीको घड़ी का नीला डॉयल चमक उठा है। उस मिट्टी को लगाते ही पेड का तना फिसलन भरा हो गया। उसी कीचड़ सने हाथ से आसिंदर ने रस्सी को पकड़ कर झटका लगाया। झटका लगाते ही रस्सी कुछ लंबाई तक बाहर निकल आयी। आसिंदर समझ गया कि और एक झटका लगाते ही वह धरती पर मुँह के बल गिरेगा। आँखो के सामने का पहाड़ जैसे पल भर में ओट में चला गया, पेड़ों का बेड़ा और बाघारू पलक झपकते ही आँखों से ओझल हो गये और तिस्ता का उफनता पानी फिर से बाधा विहीन पाट में धक्का देने लगा।

124

अंधकार और जलस्रोत के बीच

नदी के किनारे से डाल पर झूलकर बहते हुए चार पेड़ों के झुरमुट में घुस जाने के साथ ही बाघारू समझ गया कि वह डाल के साथ ही पानी में डूबता जा

रहा है। इस तरह अचानक डूब जाने पर फौरन ऊपर की डाल पकड़ कर ऊपर आ जाना चाहिये या फौरन डाल-पातों को रौंद कर किनारे पर आ जाना चाहिये। पर बाघारू जब समझ गया कि वह जिस डाल पर खड़ा है, उसी के साथ वह डूब रहा है, तभी वह फौरन सीधा तनकर खड़ा हो गया। जैसे वह नाप लेना चाहता था कि अचानक उसके वज़न से वह डाल कितनी डूबती है। बाघारू ने अपने को बचाने की कोई कोशिश नहीं की। फौरन किनारे चले आने का उपाय अब भी था उसके पास, यह बात जैसे वह जानता ही नहीं। या फिर वह यह बात भी खूब अच्छी तरह से जानता था कि ऊपर जाने के लिये कोई उपयुक्त डाल नहीं है उसके पास। इसका एक कारण यह भी हो सकता है कि बाघारू को पता था कि बहते गाछ पर दबाव डालने पर वह डूबता ही है। और एक कारण भी हो सकता है। दरअसल, बाघारू को पता ही नहीं था कि किस तरह से अपने को बचाया जाये। पशु-पक्षी जिस तरह अपने को बचाना चाहते हैं, उस तरह की आत्मरक्षा की स्वाभाविक शक्ति या पशु-पक्षियों जैसा अंदाज़ा नहीं लगा सकते कि उनका कालपाश कहाँ है ? उसी तरह आत्महत्या की स्वाभाविक शक्ति—इन दोनों में से किसी एक का सहारा लेकर बाघारू डाल के साथ ही पानी में डूब रहा था, यह अंदाज़ कह पाना कठिन है। तब उस समय बाघारू नज़र भी नहीं आ रहा था। दिन का समय होता तब भी देख पाना कठिन था—चार-चार पेड़ों के डाल-पात वैसे भी काफी घने होते हैं। फिर तब तो बात ही नहीं। नदी के ऊपर झुक आये मटमैले मेघों की आड में न दीख पाने वाला चाँद भी डूब गया है। इससे बारिश और तूफान अधिक अंधकारमय हो गया है। आसिदिर और गयानाथ मिलकर पेड के तने से पंच को एक के बाद एक खोल कर जब वापस चले जाते हैं तब तक बाघारू पानी की गहराई में डूब कर मर गया भी हो सकता है। उसके जैसा तैराक भी तिस्ता के इस जानलेवा बाढ़ में भले ही कसकर बांधे गये चार चार पेडों के डाल पात में दब जाने से निकल नहीं पाता। उसका बाल या उसके शरीर में लगे चमड़ेनुमा लँगोटी भी किसी डाल में फँसकर उसे पानी के नीचे श्वाँस रोककर मार सकता था।

पर बाघारू फौरन रस्सी के बंडल को गले में लटकाते हुए समझ जाता है कि डाल थोड़ा-सा डूबने के बाद और नहीं डूब पाता। पानी उसके घुटने तक आ गया है। यानी डाल को वहाँ किनारे की मिट्टी मिल गयी है। उसी मौके से वह पेड की डाल पर सीधा तानकर सो जाता है, जैसे डाल के साथ मिल जाना चाहता है। मिल पैरों से और हाथों से डाल को जकड कर पकड़ना चाहता है, जैसे कि वह भी इस पेड़ का एक डाल हो। तब हैरान बाघारू को एक बार लगा था कि नायलॉन की रस्सी से वह अपने को डाल के साथ बाँध भी सकता है। पर वह लगा भर ही था।

इस बीच आसिंदर के एक गाँठ खोलते ही ये चारों पेड़, किनारे से बीच बहाव में पहुँच गये। पल भर के लिये बाघारू वाली डाल थोड़ी झुक गयी, बाघारू की पीठ पर से तिस्ता का जल बहने लगा। अबकी पेड़ों के नीचे कोई मिट्टी नहीं थी, पेड़ों के भीतर से होकर पानी इस तेज़ी से बह रहा था कि जैसे उस धक्के से सारे पेड़ फिर से सीधे होकर खड़े हो जायेंगे। बाघारू को लगता है कि यह हालत अगर ऐसी ही रही तो वह आराम से बहता जा सकता है, क्योंकि उसके पैर से कमर तक जितना जल है, कमर से पीठ तक उतना पानी नही है। इसका मतलब यह है कि डाल के जिस ओर उसका सिर है, वह ऊँचा और मोटा है। इसका अर्थ तो यह हुआ कि पेड़ जब खड़ा था तब तना के जिस जगह से डाल निकली थी, उस मोटी जगह पर ही उसका सिर टिका हुआ था।

तब तक आसिंदर और गयानाथ ने मिलकर और एक पेंच खोल दिया और एक धक्के से पेड सब नदी के और थोड़ा भीतर चले गये। उस धक्के से हो या फिर जहाँ जाकर पेड़ सब पहुँचे, वहाँ के बहाव से सारे पेड मुड़ गये। जल के नियम के मुताबिक फ़िलहाल ये पेड़ जगल के भीतर ही चक्कर काटते रहेंगे। बाघारू डाल के नीचे आ जायेगा। तभी बाघारू के वजन से डाल और नीचा हो जायेगा। वह डाल जिस तरह मे घूम रही थी, उसके उल्टी दिशा मे और थोड़ा-सा घूमकर बाघारू ने दायाँ हाथ सिर की ओर बढ़ाकर देखा कि पकड़ने लायक कोई मोटी डाल है कि नहीं। यह जैसे एक तरह का वृक्षारोहण था जिसे पेड की डाल-पात जमीन पर और जड़ आकाश मे हो। बाघारू उल्टे रास्ते से होकर जड़ के पास ही जाना चाहता था। भविष्य के बारे मे सोचे बिना ही जाना चाहता था क्योंकि डाल से तना काफ़ी मोटा था। मोटा है इसी से उसे वहाँ अधिक सुरक्षा मिल सकती थी। पर मोटा होने के बावजूद भी अगर वह तना जल के नियम के मुताबिक घूमना शुरू कर दे तो बाघारू उस तना को सँभाल नही पायेगा। पर सँभाल न पाने पर भी वह पानी मे बहता रहेगा। इन डाल-पत्तों के बीच दब नहीं जायेगा। बाघारू इन डाल-पत्तों के दबाव से बाहर निकलना चाह रहा था। वह इस तरह की एक जगह तलाश कर रहा था जहाँ से वह नदी को देख सके।

दायें हाथ की अंगुली से उसे वह डाल मिल गयी। पर उसे पकड़ते-न-पकड़ते ही किनारे पर से और एक पेंच खोल दिया गया, और उस धक्के से बाघारू की डाल प्रायः पूरी ही घूम गयी। पल भर में बाघारू ने पानी के ऊपर पैर का एक धक्का देकर अपने को आगे बढ़ा लिया और जहाँ पर डाल का अंदाज़ा लगा था, उस जगह को पकड़कर झूल गया। वह पूरा झूल नहीं पा रहा था क्योंकि दूसरे डाल-पात मे उसके दोनों पैर फँस गये थे। उस डाल-पात पर शरीर का पूरा भार देकर बाघारू ऊपर की डाल पर उठना चाहता था। नदी के बीच

चरमराकर डाल-पत्ते टूट गये। बाघारू कोहनी तक दोनों हाथों का भार डाल पर देकर झूल गया।

इस हालत में उसे थोड़ा समय मिल गया। पेड़ के तने में नाइलॉन की रस्सी का फंदा ठहर गया था। उस चीकट मिट्टी में फिसलना कर रोक लिया था आसिदर ने। उसी मौके में अपने दोनों हाथों पर जोर देकर बाघारू इस झाड़-झखाड़ के भीतर से बाढ़ के आकाश के भीतर ऊपर उठा, उठने के बीच उसने एक गहरी साँस ली और उस सांस के जोर में ही जैसे ऊपर के उस तने के दोनों तरफ दोनों पैर लटका कर बैठने में सफल हो गया। उसे इस तरह से बैठना पड़ा कि पेड़ों के सिर उसके पीछे रह गये। और उसके सामने थी सिर्फ नदी। तब इतना अँधेरा था कि सभी पेड़ शिखर एक तरफ थे या नहीं बाघारू उसका अंदाजा भी नहीं लगा सकता था। फिर वह इस समय उसका अंदाजा करना भी नहीं चाहता था। उसने देखा कि उसके सामने नदी है और बायीं ओर बिल्कुल खुला है। वैसा अगर कोई खतरा नजर आये तो वह यहां से बायें, और सामने जल में कूद कर बहाव में बह सकता है। पेड़ के डाल-पातों के दबाव से मुक्ति पाकर बाघारू जैसे आश्वस्त हो गया।

पर ठीक उसी समय किनारे का आखिरी गाँठ भी खुल गयी और बाघारू दोनों हाथों से दोनों ओर की डालों को पकड़ कर सँभलते-सँभलते समझ गया कि हवा और पानी की दीवार को चीरता हुआ वह सामने के घने अंधकार की ओर भागता जा रहा है।

125

जलस्रोत में वृक्षवाहन

पहले के कई पल बाघारू के संभलने में ही बीत गये। जैसे वह किसी भी पल गिर सकता था, इस तरह की एक आशंका से वह दोनों हाथों से पेड़ के तने को जोर से पकड़े हुए था। उसे खुद भी पता नहीं था कि उसका पैर घुटने से मुड़कर तने के साथ कब से मिला हुआ है। नदी के इस प्रवाह को वह अपने शरीर से ही अनुभव कर रहा था–हवा के विपरीत वेग को शरीर से रोकते-रोकते। अंधकार तो था ही, पर उसके साथ इस हवा और बारिश से उसकी नजर में इतना धुंधलका छा गया था कि हर पल उसको भय था कि सामने के किसी बड़े से चट्टान के साथ वह टकरायेगा और उसका माथा चूर-चूर हो जायेगा। पर कुछ देर में इस डर ने उसे इस तरह से दबोच लिया कि अपने बाये हाथ की कोहनी से आँखें ढक लीं, सिर नीचे झुका लिया। पर इससे भी उसे लगता था कि सामने के अंधेरे को देखते रहने पर बचाव की कोई संभावना रहती है या

नही। वह फिर से बाये हाथ को झुकाकर अपनी छाती, मुँह से सामने के अधकार को तोडते-तोडते आगे बढता गया। अपनी इच्छा स नही—नीचे के बहाव क जोर से। उस प्रवाह पर बाघारू का कोई नियन्त्रण नही था। उसने उसी पल चाहा था कि किसी भी कारण मे भला क्यो न हो यह प्रवाह पल भर के लिये रुक जाये या फिर यह बहता वृक्ष ही कही रुक जाये। बस, पल भर के लिये ही सही। बाये-दाये, ऊपर-नीचे, सामने—किसी भी ओर बाघारू कोई परिचित चिह्न देख नही पा रहा था। जैसा कि वह अभ्यस्त है—जैसा कि आकाश के तारा का दिशा बदलना या धान के खेत या जगल मे हवा का अचानक मुड जाना। रात की नदी भी तो बाघारू की परिचित है, नदी का स्रोत भी तो बाघारू का जाना-पहचाना है, यह अधकार यह हवा बारिश भी तो पहचाने हुए है, पर वह तो उन सबा को नदी से इस तरह एक साथ कभी नही देखा। इसके पहले गयानाथ का पेड लेकर बाघारू को कभी बहना नही पडा।

बाघारू ने एक बार दायी ओर देखा—उसके काटे हुए अन्य पेडा को देखने से शायद उसे कुछ साहस मिले। हालाँकि वह यह समझता है कि ये पेड थोडा आगे-पीछे होकर एक ही वेग से बहते जा रहे है, पर कौन-सा पेड कहाँ है इसका सुराग नहीं मिलता था। बल्कि यूँ लगता था कि वह पेड पर बैठकर सबके आगे-आगे चल रहा है।

दोनो ओर की दो डालो को मजबूती के साथ पकडकर बाघारू ने अपने दोनो पैरा को नीचे लटका दिया। उसके पैरो मे पानी नही छुआ। पर दायी ओर के पैर को थोडा हिलाकर नीचे झुकाते ही ऐसा लगता है जैसे प्रवाह के जोर से पैर कटकर अलग हो जायेगा। बाघारू ने पैर को ऊपर कर लिया।

पर पानी की छुअन से बाघारू को जैसे कुछ साहस मिल गया। अब तक उसे जो लग रहा था कि वह आकाश के हवा और पानी से उडा जा रहा है वह भय उसका निकल गया। पैर मे पानी और प्रवाह का जो धक्का लगा वह उसका जाना-पहचाना था। पर पानी आखिर इतना नीचे गया कैसे ? बाघारू फिर से दोनो हाथो से डालो को मजबूती से पकड कर पैरो को सीधा झुका कर अँगूठो से पानी को छूना चाहा। पर छू नही पाया। हाथ पर भार देकर वह थोडा सा झुक गया। पर किसी भी पैर का अँगूठा पानी तक पहुँच नही पाया। हाथ के भार से पीछे और थोडा झुकते ही वह पेड से एक गर्त मे गिर गया। और फौरन उसके दोनो पाँव बहाव पर पहुँच गये। उसके दोनो तलवे पानी के भीतर थे। गर्त के बीच मे पडकर वह थोडा सट गया था। फिर हाथ पर भरोसा किये बिना ही वह बैठ गया। इस तरह से सट कर बाघारू पेड को पहचानना चाहता था। यह बडा-सा पेड शायद कत्थे का पेड़ है। इस पेड़ की मिट्टी थोड़ी दूर तक सीधा बढ़कर बायीं ओर झुक गयी। फिर इसके डाल-पत्ते दीखे। पेड़ काफी बड़ा था।

और अब इस मुड़े हुए भाग के ऊपर पानी से निकला हुआ था। यानी इसकी बाँक आकाश की ओर थी। अब तक बाघारू उस बाँक पर ही था। तभी तो पैर से पानी छू नहीं रहा था। अब वह ठीक बाँक के नीचे लुढ़क आया था। इसी से बहाव रुक गया था। अब अगर यह पेड़ मुड़ जाये तो बाघारू पानी के नीचे चला जायेगा। अगर वैसा हुआ तो उसकी आत्मरक्षा का उपाय क्या होगा। यह तय करने के लिये बाघारू ने हाथ से टटोल कर पेड़ को देखा—बाँक की पीठ पर तो कूबड़ होना चाहिये। पर कूबड़ है कि नहीं। बाघारू को जैसे वह मिल गया, वह जिस गर्त के अंदर सटा हुआ था, उसी के भीतर से जैसे पेड़ उल्टी दिशा में बढ़ गया था और वह भाग काफी उभरा हुआ भी था। बाघारू आश्वस्त हो गया। पेड़ उलट जाने पर वह कलाबाजी खाकर अपने को सीधा रखेगा—फिर मुड़ना बंद होते ही बैठ जायेगा। अब पेड़ का तना और जड़ उसके सामने था—कुछ कुछ नाव के आगे या पीछे वाला पतला भाग-सा। अब अगर कहीं कोई धक्का भी लगे तो कम-से-कम उसका सिर तो नहीं फटेगा। बाघारू को तो उतना आड़ मिल ही गया था। बीच बीच में दोनों पैरों को झुलाकर बाघारू स्रोत का जो अंदाज़ा पा रहा था, इसी से उसके अंदर एक गहरे आत्मविश्वास का संचार हो रहा था। किनारे का बंधन पूरी तरह टूट जाने के बाद, इस अंधकार में हवा के विपरीत दिशा में वेग से बहते-बहते बाघारू डर ही गया था। इतना भयभीत कि वह अपने को सँभाल ही नहीं पा रहा था। पर अभी थोड़ा-सा नीचे उतर आने पर या इस गर्त में सट जाने के बाद पैर से जल को छू पाने पर या पेड़ को पहचान लेने पर या फिर पेड़ के उलट जाने पर वह क्या करेगा—यह तय कर लेने के बाद बाघारू का डर कम हो गया। सिर्फ़ वह डर कम हो गया इतना ही नहीं। वह अवस्था का बहुत कुछ अंदाजा कर लेना भी चाहता था। यह बात ठीक है कि तिस्ता की बाढ़ सारे पेड़ों को मिट्टी से उखाड़ कर पानी में ले आयी थी, पर बहा तो नहीं लिया। बाघारू ने तो खुद अपने हाथ से प्रत्येक पेड़ के ठूँठ को बाँट, उन्हें रस्सी से बांध, एक जगह पर जमा करने के बाद पानी में बहाया था। सो बाघारू को तो पता ही था, इन पेड़ों के इतने सारे डाल-पात, झाड़-झंखाड़ थे कि अगर बाघारू हिसाब से उनमें घुस जाये तो यह हवा, यह पानी उसके शरीर को छू भी नहीं पायी। गयानाथ के जिस घर में वह सोता था उस घर से तो तिस्ता से उखड़े हुए इन वृक्षों का साया कहीं बहतर था। अब अभी इस अँधेरे में बाघारू उस तरह की एक जगह कहाँ से ढूँढ़ निकाले ?

अभी तो बहुत अँधेरा है। और काफ़ी समय तक भी रहेगा यह अँधेरा—कब तक रहेगा वह हिसाब वह नहीं जानता। पर वह जानता था कि इस अंधकार के जरिये ही रात ख़त्म होती है। सूरज निकलने से पहले जो उजाला फूटेगा उसी से यह अँधेरा बढ़ने लगेगा। कई दिन तो हो गये सूर्य देखने को भी नहीं मिला।

जैसे, तमाम दिन ही साँझ लग रहा है। पर सूरज के दिखायी न देने पर भी आलोक तो रहेगा ही रहेगा। देखने पर तो पता चलेगा कि कौन-सा आकाश, कौन-सी नदी, कौन-सा मेघ, कौन-सा जल, कौन-सा पेड़ और कोन-सा किनारा है। पहचाना तो जा सकेगा। तब तो बाघारू अपने हाथ से काट कर बहाये इन पेड़ों के डाल-पत्तो के बीच कहां घुस सकता है, और कहाँ घुस नही सकता—उसका एक हिसाब लगा सकता है।

उसके पहले बाघारू को इस अधकार की ओर ही ताकने रहना चाहिए।

126
दोनो आघातों के बीच

इसी तरह समय बीत गया।

पर वह समय कितना है, बाघारू उसका कोई अदाजा नही लगा सकता। समय के साथ तो बाघारू का शरीर बंधा हुआ हे। हवा की छुअन मे वह समझ पाता है कि कितना बजा है। परछाई की लबाइ से जान लेता हे कि कितना बजा, सोयी घास देखकर पैर के म्पश से उसे आखिरी रात का अदाजा हो जाता है। अदाज़ा लगा लेता है कि सूरज के निकलन मे कितनी देर हे, यहा तक कि गयानाथ का गोहाल घर या बाहर आँगन मे गहरी नीद मे सोये होने पर भी उसके शरीर को यह आभास हो जाता हे कि रात के कितने बजे हे। पर अभी इस तरह का कोई अदाजा बाघारू नही कर पाता। कितनी देर स गाजालडोबा से वह इन पेड़ो के साथ बह रहा है, क्या वह बता पायेगा ? किनारा छोड़ने के बाद से जल के स्रोत मे ये पेड़ जिस गति मे बहते जा रहे ह, उसका कही पर कोई हिसाब नहीं। नदी के इस खुले आकाश के भीतर से होकर जिस वेग मे हवा और पानी बहता आ रहा है, उसका कोई ठीक नहीं। तो फिर बाघारू समय को नापेगा काहे से ? थोडा-सा भी अगर धुँधला प्रकाश होता तो दायें-बाये देखकर किसी किनारे या किसी चर का सकेत पाने के लिये कम-से-कम बाघारू एक बार तो कोशिश कर सकता है। जब पेडो के साथ ही देउनिया ने उसे बहने के लिये कहा, तो थोड़ा पहले से भला क्यो नही कहा—मेघ के फांक में जब चाँद था, तभी उसे बहने के लिये कहा होता। देउनिया उस अर्जुन पेड़ के भरोसे ही बैठा रहा। इतना ही अगर तुम्हे अर्जुन पेड़ का शौक़ था, तो हमसे क्यौ नहीं कहा ? जिस टाइम जँवाई बाबू फटफटी से मुझे बाँधकर यहाँ लेकर आया।

बाघारू जैसे कुछ हँसने को हो आया।

"हमरा देउनिया अरजुन गाछ चाह सकता है, पर काटने नहीं देगा। काटने में तो टाइम लगेगा। काटने से तो आवाज होगा। साला किया पता कहीं से कोई

फोरेम्स्टर, गार्ड आकर खड़ा हो जायेगा। माला, अरजुन गाछ से तो कुल्हाड़ी का दाग मिटाया नही जा सकता। हमरा देउनिया रातभर बैठा रहा, पर कहा नहीं कि बाघारू—इस गाछ को काट डाल, अरजुन गाछ को काट डाल। एक अरजुन गाछ ही हमरा चाँद को डुबा दिया। इस अँधेरे म में नही जानता कि कितनी दूर बहता आया हूँ और कब तक बहता जाऊँगा। चाँद डूबन के बाद का अँधेरा तो ज्यादा देरी तक नहीं रहना चाहिये। हमको तो मालूम है कि रातभर इस अँधेरे मे बहता आया हूँ।'' बघारू ने खिक् करके हँस दिया।

''बहता जा रहा है, या हमरा फटफटी मे बेठा जा रहा है।'' बाघारू फिर से एक बार खिक् करके हस पडा। ''आसिदर जँवाई का फटफटिया डाँगर के ऊपर से जा रहा है, हमरा फटफटी पानी के ऊपर स जा रहा है।'' बाघारू मुँह से जीभ लगाकर मोटर साइकिल की तरह की एक आवाज निकालने की कोशिश की। आवाज की बात सोचकर फिर से हँसा, पर आवाज नही निकली। जीभ को फिर स्वाभाविक हालत मे ले आया। पर दोनो ओर की डाल को मोटरसाइकिल क हैडिल की तरह पकडे रहा।

थोडी देर क बाद उस तरह का उसका खेल जैसे खत्म हो गया। तब बाघारू को लगा कि उस देउनिया जो बेल कहकर बुलाता है, वह कहाँ तक सही है। वह इस गद्दे का पाकर जैसे बेठ गया है, हाथ मे डाल पाकर उसे आश्रय मिल गया है। पर वह फटफटिया चलाने जैसा डाल पर बेठा रहा ह क्यो ? इस गद्दे पर बैठे-बेठे तो वह उलट भी सकता है, या फिर बराबर की दोनो डाल छोड दे सकता है, माथा को डाल से हिला सकता है—इस तरह से तो वह सो भी सकता है एक तरह। यहाँ तक कि वह आखे भी बन्द कर सकता है फिर जब अँधेरा छटेगा तो छटेगा।

गद्दे के अदर बाघारू ने अपने का इस तरह स धँसा दिया कि अपने को घुमाने के लिये जो थोडी-बहुत दिक्कत हो रही थी, वह बस यही कि वह खुद घूमते-घूमते कही पेड को ही उलट न दे। इस स्रोत के बीच वह अगर पेड को किसी तरह का धक्का देता है तो पेड थम सकता है। इससे बाघारू को जो थाडी-बहुत जगह मिली थी वह भी हाथ से निकल सकती है।

बाघारू ने दोनो ओर की डाल छोड़कर उसके सिरे को पकड कर कमर उठाया, फिर दोनो पाँवो को धीरे से डाल के साथ लिपटा कर लबा कर दिया। माथे के ऊपर लबा किया हुआ हाथ और डाल के साथ फैला पैर—इससे उसे कुछ आराम मिला। फिर बाघारू ने सोचा कि क्या जरूरत है चित्त होने की। बल्कि इस तरह से औंधे होना उसकी आदत बन गयी है। फिर क्या जरूरत है उसे एक नये तरीके से जाने की ? बल्कि इस मुद्रा मे रहने से आवश्यकता पड़ने पर यह फौरन उठकर बैठ सकता है। वह कैसे बैठ सकता है यह दर्शाने

के लिये उसने फ़ौरन पाँवों को मोड़ लिया। हाँ, बैठ सकता है। फिर पैरों को फैला दिया और तब लँगोटी में खुँसी हुई कुल्हाड़ी उसकी पीठ पर लगने लगी।

पहले बाघारू ने उसकी परवाह नही की। पर स्रोत के आघात से जैसे ही वह दायें ओर हिलता था, वैसे ही कुल्हाड़ी की धार उसके चमडे पर लगती थी। वह समझ गया कि ज़ोर का एक धक्का लगने पर कुल्हाडी मांस को काट कर अंदर घुस जायेगी। उसने दायाँ हाथ मोड़कर पीठ की ओर कर लिया, फिर कुल्हाडी की फलक को पकड़ कर उसे खींचकर निकाला। फिर उसे आखों के सामने कर लिया। इतना अँधेरा था कि कुल्हाड़ी की धार की चमक भी नजर नहीं आती थी। फलक पर हाथ फेरा बाघारू ने। वह भीग गया था। बायें हाथ मे कुल्हाडी पकड़कर दायें हाथ मे पोंछा। फिर सोये-सोये ही दोनों पाव को फैलाया, सोये-सोये ही कुल्हाड़ी की बेट को पकडा, सोये-सोये ही कुल्हाड़ी को हवा और बारिश के झोके में उठाया और अपने दोनों पाँवों के बीच वाले डाल पर झुकाया - एक हल्की चोट के साथ ही कुल्हाडी डाल में धँस गयी—गहरे। बाघारू ने फिर से पैरो को डाल पर लबा कर लिया। उसके दोनो पांवों के बीच कुल्हाडी थी। दोनो हाथो से फिर दोनों डालों को पकड लिया। इस बार जैसे उसने थोडी आँखे मूँद ली।

जैसे इतनी देर तक आँखों के खुले रहने पर वह हवा और पानी की गरज सुन नहीं पा रहा था। आंखे बद करते ही उसके शरीर के नीचे से जल का अतर्धानी कल्लोल उठकर शरीर के ऊपर हवा के जोरदार धक्के के साथ मिल गया था। इन दो आघातो के बीच आंखे मूँद कर बाघारू बहता जा रहा था। बहते-बहते वे दोनों आवाजें भी उसके शरीर के साथ मिल गयी। वह और कोई आवाज सुन नहीं पाया।

इसके बाद, कुछ देर तक उसे समझ मे नही आया कि वह पक्षियों का कलरव सुन रहा है। अंधकार छँटता गया। वह आवाज से समझ गया।

127
पानी के बहाव में नींद का टूटना

बाघारू ने पंछियो का कलरव सुनकर भी आखें नहीं खोलीं। पक्षी का कलरव किसी आवाज़ की शक्ल में उसके पास नही पहुंचता। जैसे काफी देर से एकाध बार यह आवाज आ रही थी, उस बीच वह सुन भी पाया, और एकाध बार वह सुन भी नहीं पाया था। ऐसा रोज ही होता था। उसके बाद एक समय वह पक्षी की बोली सुन भी पाया। मतलब, भोर हो गया था। भोर होने की बात मन में आते ही बाघारू आँखें खोलना चाहता था, पर खोला नहीं। और इस न खोलने के बीच ही हवा के उल्टे झोंके मे स्रोत का कल्लोल उसके कानों में

पड़ा, ता क्या उसकी आँख थोड़ी-सी लग गयी थी ? पर आँख खोलने और हाथ बढ़ाकर कुल्हाड़ी की बेंट पकड़ने के बीच कौन सा काम पहले हुआ समझ नहीं पाया। बाघारू ने देखा कि उसके कुछ ऊपर वृक्ष की पत्तों से भरी हुई डाल, उस डाल में दो एक पक्षी बैठे हैं।

इतने समय बाद बाघारू की चेतना पूरी तरह वापस आ गयी। वह कुल्हाड़ी के बेंट पर हाथ रखे रखे माथे के ऊपर के उस डाल की तरफ या फिर डाल के पत्तों की फाँक में आकाश की ओर देखता रहा। अँधेरा छँटा नहीं था, पर अभी-अभी पौ फटने के पहले का प्रकाश फूटने लगा था। अभी बाघारू अपने सिर के ऊपर के डाल के पत्तों का रंग देख नहीं पा रहा था, सिर्फ आकाश को देख पा रहा था। पर पक्षी ? तो क्या वह पेड़ के साथ कहीं रुक गया है ? किसी पाट पर या कि चर पर ? पर नीचे से तो स्रोत की आवाज सुनायी दे रही है। वह अगर कहीं रुक भी जाये तो उसे ढूँढकर निकाला जा सकेगा। जिस डाल पर वह सोया है वह डाल भी तो डाल रही है। वह तो कहीं रुक जाने से भी डाल सकती है। बाघारू ने अपने सिर के ऊपर की डालों को देखा—वे डाल रही थीं। वह भी तो कहीं पर रुक जाने से हवा में नाच सकता है। पर कहीं अगर न रुका तो पक्षी फिर क्या चीखने लगे हैं या फिर से इस किनारे या उस के पक्षी हैं पेड़ की डाल देखकर आकर बैठ गये हैं ?

बाघारू को जैसे अपने साथ खेलने के लिए एक खेल मिल गया। अब तो करने के लिये उसके पास कोई काम नहीं है। अँधेरा छँट रहा है मतलब उसके सामने अब और कोई खतरा नहीं है। अब तो वह कुछ देख सकता है। बहते पेड़ की किस डाल पर पाँव रख सकता है, यह भी देख सकता है। अब तो वह आसानी से नाइलॉन की रस्सी से पेड़ों को नदी की खींचकर किनारे पर ले जा सकता है। वह रात भर अंदाजा भी नहीं लगा सका था कि उसके ऊपर इतनी पत्तेदार एक डाल की छत भी थी ? और अभी वह समझ भी नहीं पा रहा था कि वह कहीं टिक गया है या बहता जा रहा है।

बाघारू ने सोये सोये ही अपने दोनों पैरों को दोनों ओर झुला दिया। जल की छुअन पैरों में लगी—स्रोत पैर को खींचे ले जा रहा था। पर वैसा तो कहीं पर रुका हुआ होने पर ही हो सकता है। पक्षी फिर बोलने लगे, इस बार उनकी संख्या ज्यादा लगती थी। आवाज से ऐसा महसूस हो रहा था जैसे वे अपने परिवेश में ही हैं। पर चाहे जितना भी परिचित हो, पर यह पेड़ तो उनका पहचाना हुआ नहीं हो सकता। तो उस गाजोलडोवा जंगल से ही कत्थे के पेड़, शाल के पेड़ और बाघारू की तरह वे भी रात भर बहते आये हैं। बाघारू दोनों ओर की डाल पर थोड़ा सा भार देकर उठ बैठा। रस्सी का बंडल उसके गले में झूल रहा था। उसने देखा, उसके सामने नदी के पीछे के अंधकार से, और फिलहाल पीछे, नदी

के सामने से वह काफ़ी तेज़ी के साथ भागता जा रहा है। रात भर बाघारू इसी गति से बहता आया है, पर यह उसने देखा नहीं था। और अब अंधकार धुँधला हो जाने पर वह स्रोत की उस गति को भयानक ज़ोर का जैसे पहली बार अनुभव कर रहा था। और अनुभव करते ही बाघारू जैसे उस गति के साथ अपने को मिला देना चाहता था। वह पीछे की ओर से किसी गति के साथ अपने को शामिल नहीं कर पाया। जीप गाड़ी के पीछे से जंगल में घुसते समय जैसे उसकी दिशा-ज्ञान की क्षमता ख़त्म हो गयी थी, ठीक वैसे ही यहाँ भी स्रोत के विपरीत दिशा को मुँह किये वह बहाव की तेजी को सँभाल नहीं पाया। उसने कुल्हाड़ी को निकाल कर पीठ पर खोंस लिया। रस्सी के बंडल को पीठ की ओर ठेल दिया, फिर उस खाँचे में बैठे-बैठे ही घूम गया—स्रोत के ज़ोर से लंगरविहीन नौका की तरह पेड़ सीधा बहता जा रहा था। सामने, अधिक दूर दिखायी दे नहीं रहा था, पर जल के ऊपर का अंधकार अस्वच्छ होने लगा था, जैसे कि वह अस्वच्छ अंधकार इन पेड़ों के धक्के से ही दूर हो रहा था।

बाघारू ने देखा कि कल उसने इस डाल के ऊपर ही बहुत समय डर-सा बिताया था। पर अब उसकी समझ में आया कि जिस जगह पर वह अपने को अधिक सुरक्षित महसूस कर रहा था, वहीं खतरा सबसे अधिक था। आस पास कोई डाल नहीं—हाथ फिसल जाने पर पानी पर तो गिरता ही, साथ में इन पेड़ों के नीचे भी दब जाता। ये पेड़ जो स्रोत के ज़ोर से बहते जा रहे हैं, वह भी उसी स्रोत के ज़ोर से बह जाता, फलत पेड़ के तल्ले से निकल ही नहीं पाता। बाघारू ने कंधा घुमाकर पेड़ के झाड़-झंखाड़ों, टहनियों को एक बार देखा उस आश्वस्त होना चाहता था कि वह अगर पानी में गिर गया तो फिर इन डाल पत्ता को पकड़ कर ऊपर आ सकता है कि नहीं। पानी से सिर ऊपर उठा पाता है कि नहीं। कल रात तो वह एकबारगी मर सकता था—इस बदख़याल के मन से हटाये बिना जैसे बाघारू का जीना सार्थक हो नहीं पायेगा। तब तक पेड़ की डाल से उड़कर फिर डाल पर वापस आकर बैठने वाले और कलरव करने वाले पक्षियों की संख्या काफ़ी बढ़ गयी थी। इन पक्षियों के घोंसलों के साथ ही पेड़ पानी में गिरा था। वे घोंसले पानी में न भीगे है न बहे। इससे उन्होंने अँधेरे में भी अंधों की तरह बसेरा नहीं छोड़ा। पर स्रोत के ज़ोर से पेड़ों के साथ बहते जा रहे हैं।

बाघारू थोड़ा-सा खड़ा होकर देखना चाहता था कि वह बैठे बैठे जो कुछ देख रहा है उससे अधिक कुछ दिखायी देता है या नहीं। फिर पेड़ किस तरह से बाँधे गये हैं, कोई पेड़ फिसल कर निकल तो नहीं गया।

बाघारू जानता था, किसी पेड़ का बंधन अलग हो जाता तो उसे अवश्य पता चलता। क्योंकि पेड़ों को अच्छी तरह से बाँधा नहीं गया था, एक बंधन

के खुल जाने पर बाकी सब बधन भी ढीले हो जाते। सब बंधनों का सिरा तो उसके गले के बंडल मे है। अगर पानी के अदर कोई ज़ोरदार और विपरीत स्रोत भी रहता तो स्रोत के आड़े-तिरछे बधन ढीले हो जा सकते थे। इतना सारा जल इतनी ज़ोर से एक साथ बह रहा है कि पेड घूम भी नही रहा है। फिर भी बाघारू एक बार खड़ा होकर देखना चाहता था।

जिस खाँचे के अदर वह बैठा था, वहाँ पैर रख इस डाल से झुक कर हाथ के भार से थोडा खडा हो सकता था, पर उसे तो ठीक तरह से खड़ा होना भी कहा नही जा सकता। पर बाघारू इस तरह से खड़ा होना चाहता था, जिससे सभी पेडो को पहचान सके। अलग-अलग। अगर जरूरत पडी तो दोबारा पेड़ों को ठीक-ठाक से बाँधा जा सके। पर आसिदर की फटफटी की तरह डाल पर बैठ एक बार सामने के धुँधले अधकार की तरफ और एक बार गर्दन घुमाकर दूसरे पेड़ों की तरफ देखकर बाघारू समझया कि अधेरा अब तक उतना छँटा नहीं है कि वह खड़े होने की जगह तलाश कर सके, या फिर अगर वैसी कोई जगह मिल भी जाये तो वह वहा खड़ा होकर पेडों का या पड के बंधनो को अलग करके देख नही पायेगा। उसके लिये अधकार का और थोडा छँटने देना चाहिये। पक्षी जसे जोर-जोर से बोल रहे थे, उससे पता चलता था कि अँधेरा छटने लगा है।

128
बाघारू और पक्षियों का जागना

हवा और बरसात उसी तरह नदी के स्रोत के विपरीत दिशा में आकाश से झपट्टा मारते आ रहे थे। बाघारू स्रोत के वेग से दौड़ा जा रहा था और उसके शरीर के ऊपर हवा और बरसात का उल्टा झपट्टा आकर लगता जा रहा था। यह हालत इतनी अपरिचित थी कि बाघारू ने याद करने की कोशिश नही की कि वह कब से गाजालडोबा के इस जगल में बहता हुआ गुजर रहा है।

"ई स्साला कैइसा बैठ रहना बेला ठाकुर (सूर्य) की तरह — रात का अँधेरा थोड़ा-थोड़ा, कण-कण करके कटता जायेगा और पूरब मे बेला ठाकुर के उठने के पहले लाल, पीला रंग उभरेगा और साफ़ होता जायेगा। उन रंगों की छाह पड़ेगी पानी के ऊपर। और नदी का जल भी झिलमिलाने लगेगा रंग से। और ऐसे चलता रहेगा रंग का खेल, आकाश में, नदी मे, और मैदान, हाट, जंगल मे। फिर सब रंग क्यों मिटने लगेंगे क्या पता — मान लो कि अभी सारे रंग मिट कर सारा आकाश गोबर से लिपे-पुते आगन जैसा लगेगा। जैसे उबला धान सुखाने के लिये आँगन झाड़-बुहार कर साफ किया गया हो। तब साला बेला

ठाकुर उठेगा लाल-लाल रंग लेकर नदी के बीच से। बेला ठाकुर वहाँ निकलता है, वहाँ ठीक बीच से निकलता है। मैदान में देखो, बेला ठाकुर मैदान के बीच से निकलने लगेगा। जंगल में देखो, बेला ठाकुर जंगल के बीच से निकलने लगेगा। और यह क्या होने लगा है ? रात-दिन तो बारिश और हवा, हवा और बारिश। दिन के समय रात-सा धुंधलापन, रात के समय दिन जैसा धुंधलका। यहाँ बैठा रह, यहाँ, ऐसे ही—इस अँधेरा के पतला होने तक। बैठा रह।"

इस स्रोत, हवा, बारिश के भीतर इन पेड़ों को लेकर बहते जाने की एक निश्चित भूमिका बना लेने के लिये बाघारू जैसे अस्थिर हो उठा था। कल आख़िरी रात मे जब उसने गाजोलडोवा का तट छोड़ा, तब से हर पल जो भी डाल उसके हाथ-पाँव के पास मिलती थी उसे अंधे के मानिंद जकड़े रहना पड़ा था। उसे अंदाजा तक लग नहीं पाया था कि कहाँ, कितना पाँव सरका सकता है या हाथ हिला सकता है। अंदाज़ा से ही एक बैठने लायक जगह ढूँढकर, डाल के बराबर सो कर वह शायद कुछ ऊँघ भी गया था। पर वह सारा जमे आधी रात के अँधेरे में अचानक पानी में गिर जाने के बराबर था। बाघारू को कुछ करने का भी न था। पर बाघारू तो गयानाथ के चार-चार पेड़ काट कर बाँध कर बहाये लिये जा रहा था। अर्जुन का पेड़ गिर जाना तो पांच पेड़ होते। बाघारू का यह एक-एक पेड़ तो जैसे एक-एक जंगल के बराबर था। एक शाल है, एक कत्थ का पेड़ है। बाकी दो पेड़ों को ठीक से देख तक भी नहीं पाया था बाघारू। इन पेड़ों के साथ गयानाथ ने बाघारू को बहने का आदेश दिया था। उसे कहीं-न-कहीं जाकर रुकना था। पर कहाँ, वह न गयानाथ को पता न उसे। शायद इस नदी के फ्लड को पता हो, तो पता हो। और बाघारू का काम है इन पेड़ों को लेकर कहीं रुक जाना और रुके ही रहना। उसके बाद फिर आसिदर और गयानाथ फटफटी से उसे ढूँढ़ निकालेंगे और पेड़ का आउर हमरा जो करना है करेंगे। पर उसके लिये तो अब सुबह से, इन पेड़, बाढ़, हवा और पानी को लेकर बाघारू को सचेतन और सक्रिय हो उठना चाहिए। वह तो नहीं अब उसे इस डाल के ऊपर अंधों की तरह, बैठे रहना पड़ रहा था।

बाघारू ने आँखें खोलकर चारों ओर देखा। आकाश की ओर देखने से वही परछाई मेघ कहीं-कहीं नज़र आता है। नदी का जल भी कहीं दूर-दूर में झलकता था। पर यह जो पेड़ों के साथ वह बहता जा रहा था, उसके पत्ते भी साफ़ नजर नहीं आ रहे थे, न उनका रंग ही। इस बीच पक्षी चार सोये पेड़ों की डाल पर बैठे नदी का जल अथवा किसी अनिर्दिष्ट सुबह की ओर ताकने लगे थे। सुबह के पक्षी आमतौर पर प्रकाश की ओर मुँह किये रहते हैं। पर पेड़ इस तरह से चित पड़े हुए थे कि डाल पात के जिस विन्यास के साथ पक्षी परिचित थे, वह भी कैसा तो बदल गया था। इससे जैसे उनको ठीक से समझ

नहीं आ रहा था कि किस डाल पर बैठ कर किस दिशा में ताकने से उनका परिचित प्रकाश देखने को मिलेगा। नीचे जलस्रोत का यह वेग भी उनके प्रतिदिन के अनुभव का हिस्सा नहीं था। उनका अभ्यास यहाँ तक टूट जाने पर भी पक्षी अपने हिसाब से आदतन वापस चले आते थे—चार-चार पेड़ों के मिले-जुले डाल-पत्तों पर उड़ते हुए। चार-चार पेड़ इस तरह से मिल कर एकजुट हो गये थे कि लगता था जैसे सब मिल कर एक ही पेड़ हों, जिसकी आड़ में सूरज छिप गया था। एक पेड़ की पतली-मोटी तरह-तरह की टहनियों पर उड़ते-उड़ते पक्षी अचानक डर कर बोल उठते थे। बाघारू समझ नहीं पाया कि वे डर क्यों रहे हैं। आख़िर, इस तरह का सामूहिक भय कैसा है ?

बाघारू गाछ से थोड़ा फिसल कर नीचे आ गया। उसके पैर का तल्ला पानी में डूब गया, एड़ी के ऊपर तक पानी आ गया। अब यहाँ बाघारू को एक मोटी-सी डाल मिल गयी। वह उसे पकड कर बैठ गया। बैठे-बैठे एक डाल से दूसरी डाल को जाते हुए वह पीठ पर एक बार हाथ ले गया। कुल्हाड़ी है कि नही देखने के लिये। कुल्हाडी शरीर के साथ इतनी अधिक मिल गयी थी कि बाघारू को याद ही नहीं था। याद न रहने की बात थी। सिर्फ काम के समय हाथ बढ़ाने से ही जैसे पाया जा सकता है उसे। नयी डाल पर पैर रखते ही डाल भस्स करके पानी में डूब गयी और बाघारू फौरन पहले की डाल पर वापस आना चाहा। डाल अचानक धक्के से फिर डूब गयी और बाघारू इतना नीचे चला गया कि उसे पुरानी डाल पर पैर रखने के बदले दोनों हाथो से पकड़ना पड़ा। कमर तक भींग कर उस पुरानी डाल को दोनों पाँवों से जकड़ कर पकड़ना पड़ा बाघारू को। उसकी पीठ पर पानी की छुअन महसूस हुई। अब अगर वह एक झटके से अपने को डाल के ऊपर उठा लेना चाहे तो यह डाल घूमकर पानी के अंदर चली जाती। इसी से बाघारू को वैसे ही लटके रहना पड़ा। पर रात के आखिरी कई घंटे इसी डाल पर बिताने से डाल को थोड़ा-बहुत पहचान ही गया था बाघारू। बाघारू ने अपने आपको पानी के भीतर ढीला छोड़ दिया। इससे उसका शरीर कुछ हल्का हो गया। उस हल्के शरीर को वह जल के भीतर से ऊपर निकाल लाया—जहाँ वह बैठा हुआ था, वहाँ। झटका लगाने से भी वह तना घूम नही सकता।

भींगा शरीर लेकर बाघारू फिर से अपने पुराने खाँचे में बैठ गया। वहाँ सटकर बैठते ही बाघारू को लगा कि उसे वहाँ से हिलने की ज़रूरत भी क्या है ? जहाँ पर जाकर पेड़ रुकेगा, वहाँ उसके उतरने लायक़ जगह होगी तो वह उतर जायेगा। इसके अलावा तो कुछ करने का ही नहीं है उसके पास।

पक्षी हमेशा की तरह बाघारू के सामने से, उसे तकरीबन छूते हुए उड़ते जा रहे थे। पर आज वे और बाघारू एक ही पेड़ पर चढ़कर जा रहे थे वह

भी इन पेड़ों की ऊँची डाल, नीची डाल के अलगाव से दूर हो गया था। पक्षी निश्चय ही यह समझ नहीं पा रहे थे कि वे और बाघारू एक ही पेड़ पर बैठे जा रहे हैं।

पक्षी फिर अचानक चीख़ने लगे—एक ही साथ, डर कर।

बाघारू अब इस डाल पर से ही थोड़ा पीछे खिसक गया। पेड़ किनारे छोड़ने के पहले वह हाथ, पेट, पैर और छाती लगाकर डाल के जिस भाग से चिपका हुआ था, फिर उसी जगह पर पहुँच गया। वहाँ से देखकर समझने की कोशिश की कि—पक्षी किसी वृक्ष की किसी ख़ास जगह से डर रहे थे या सभी जगह से उन्हें भय लग रहा था। इस ऊँची डाल पर से ही बाघारू ने देख लिया कि चारों उखड़े हुए पेड़ों पर कितने सारे पक्षी थे और वे सब-के-सब पेड़ों पर कितना उड़ रहे थे। फिर-फिर से उड़ना और हवा का धक्का सँभाल न पाने से डाल-पत्तों के बीच छुप जाना।

पर इन पक्षियों का डर दूर करने का उत्तरदायित्व बाघारू को किसने दिया ?

"पेड़ सारे गयानाथ के हैं, पक्षी सारे पेड़ों के हैं पर पक्षी गयानाथ के नहीं हैं। पेड़ों की छाल की तरह पक्षियों ने पेड पर, डालों पर घोंसला बनाया है। जैसी हवा चल रही है, तूफ़ानी हवा, उससे पेड़ों के डाल पत्ते सब उलट-पुलट हो गये हैं, होने जा रहे हैं। इस तरह की उलट-पुलट से जैसे पेड़ों के शिखर मिट्टी पर झुक आना चाहते थे और जड आकाश की ओर—पर साला वृक्ष का कोई भी जीव वृक्ष नहीं छोड़ेगा। आस-पास के डाल-पातों को ज़ोर से पकड़े रहेंगे, चींटी वृक्ष के अंदर घुस जायेंगी, साँप-वाँप वृक्ष की कोटर में घुसकर आत्मरक्षा करेंगे। ओर वही वृक्ष अगर तूफ़ान से उलट जाये, गिर जाये, फिर भी साला वृक्ष का कोई प्राणी अपना आश्रय नहीं छोड़ेगा। उसके बाद हवा थम जायेगी, बारिश रुकेगी, पेड़ के पत्ते सड़-गल कर गिर जायेंगे—तो साले कीड़े मकोड़े, पक्षी, साँप, चींटी—सब नये पेड़ पर जाकर बसेरा बनायेंगे। तूफान ने गयानाथ के पेड़ों को उखाड़ दिया था। गयानाथ का बाघारू, मैं, गयानाथ के पेड़ को बहाये जा रहा हूँ। गयानाथ का बाघारू, मैं, गयानाथ का गाछ लेकर बह रहा हूँ। तिस्ता की इस बाढ़ में बह रहा हूँ। तिस्ता की बाढ़ और इस तूफान में बहा जा रहा हूँ। गयानाथ का बाघारू, मैं, गयानाथ का लकड़ी लेकर बहता जा रहा हूँ। गयानाथ का जँवाई और गयानाथ फटफटी में चढ़कर सदर रास्ते से तमाम चर और कायम ज़मीन देख-देखकर उसकी तलाश करने लगेंगे। ढूँढ़ेंगे कि कहाँ जाकर रुका है गयानाथ का पेड़ और गयानाथ का बाघारू। मुझे और क्या तकलीफ़ हो सकती है ? बैठा हूँ, खड़ा हूँ और तिस्ता की बाढ़ मुझे बहाती ले जा रही है। गयानाथ देउनिया को कष्ट होगा, आसिंदर जँवाई बाबू को भी कष्ट होगा। अभी तो बाढ़ है। कहाँ पर चर है और कहाँ मैदान है। और अभी तूफान चल रहा है। बारिश

हो रही है। कहाँ-कहाँ हमको तलाश करते फिरेंगे ? मैं चिल्ला सकता हूँ—"हे देउनिया, मई यहाँ हूँ।" पर कौन सुनेगा हमरी आवाज़ ? हमरी पुकार ? क्या आउर कर पायेगा देउनिया ? जब तुमरे गाछ ओर बाघारू को बहा ही दिये तो फिर तुम्हे तो ढूँढ़ना भी पड़ेगा न ? तुम्हें निकाल कर भी तो लेना होगा। न हो तो फिर हर जगह ही तुमरा लस होगा, पूरा लस होगा। ई चारों गाछ का लस, येह बाघारू का लस। मछुवारा जब नदी में जाल डालता है तो फिर साला उसी को तो समेटना पड़ता है। न हो तो जाल का लस होता है। तुम जब पेड़ों को ओर बाघारू को बहा दिये तो तुम्हें समेटना भी होगा। ईस हवा, तूफान, बारिश मे तुम्हे फटफटी को लेकर बाहर आना ही होगा। पर गाछ के ई पाखी तो गयानाथ देउनिया के नहीं हैं। पाखी गाछ के है। गाछ बाढ़ में बहने लगा तो पाखी भी बाढ़ मे बहने लगे हे। ई तो तूफान मे कॉपे है, बारिश में भींजे है, पर ई पाखी भी तो अँधेरे को काट चुके हे। पाखियों का कोई गयानाथ नहीं है, पर बाघारू तो है, मे हूँ। हमको तो देखना ही पडेगा कि पाखी लोग क्यों भयभीत हो रहे है। इन सब बातों के सोच-विचार के बीच ही उस बारिश और हवा तूफान से आक्रात सूर्योदय की आच्छन्नता के समय बाघारू परेशान था। उसी परशानी मे जब वह अस्थिर होता है कभी तो उसी समय न जाने कैसे पत्ते हरे नजर आने लगते है, यहाँ तक कि कन्था के पेडो के पत्तो के हरेपन क साथ शाल पत्तो के हरापन में फ़र्क नज़र आन लगता है। यहाँ तक कि एक ही वृक्ष क विभिन्न पत्तो के आकार प्रकार रगों मे भी एक तरह का फर्क नज़र आने लगता है। बाघारू के सोच की जेसी अलग-अलग परतें हैं और सभी मनुष्य के जैसे ही होता है, ठीक उसी तरह के उसके सोच की पारस्परिकताविहीन जट भी लगने लगती है। दूसरे, मनुष्य की तरह से, पर उन सब दूसरे मनुष्यों से उसका पार्थक्य है। गयानाथ की ज़मीन पर हल जोतते-जोतते हो, चाहे गयानाथ के गोठ के गाय-भैंसो को चराते-चराते हो या फिर गयानाथ के पेड़ों को लेकर बहते-बहते ही हो, आज बाघारू को दूसरे मनुष्यो की तरह अकेले ही सोच-विचार करना पड रहा है, और साथ-ही-साथ उसे अकेले में बातें भी करनी पड़ती हैं। अगर वह बात कह सकता है तो उसके सिर के ऊपर आकाश, पैर के नीचे मिट्टी या जल का होना ही पर्याप्त है। इससे पहले उसका किसी-किसी बात के दौरान कभी कहीं कोई ऑफ़िसर या कोई एमएलए सामने हो सकता है। और अब उसी तरह इस नये दिन में तिस्ता की बाढ की सीमा के किनारे-किनारे पेड़ों को ढूँढेगे वे आसिदर व गयानाथ ही शायद उसकी बातो के उपलक्ष्य हो सकते हैं। है भी तो।

है भी, पर उससे बाघारू के पाखी सधान मे कोई बाधा नहीं होगी। उसने इस मस्तूल जैसे वृक्ष के तने पर बैठकर देखा कि पाखी दरअसल इस नई परिस्थिति

के साथ अपने को अभ्यस्त न कर पाने के कारण कभी-कभी एक साथ भयभीत हो शोर मचा रहे हैं, इधर-उधर उड़ रहे हैं। वे पेड़ के डाल-पातों जैसे स्थायी और अडिग आश्रय में हैं पर बाढ़ के प्रवाह में वेग से बहे जा रहे हैं—इसमें कहाँ, किस तरह का मेल है, वे समझ नहीं पाते। फलस्वरूप, सुबह का अभ्यस्त भागमभाग करते-करते पेड़ों के पत्तों के भीतर एक बार पानी के करीब तक पहुँच जाते हैं, यहाँ तक कि पानी को भी छूते है और फिर भय से चीखते हुए ऊपर उड़े आ रहे हैं। जिस समय बाघारू इस प्रक्रिया को जानता है, तब वह समझ नहीं पाया कि कुछ पक्षी नदी के प्रवाह कहीं में बह तो नहीं गये है। अगर डैने में पानी लग गया होगा तो फिर वे उठ नही पाये होंगे, बह ही गये होंगे। पर बाघारू इन पेड़ों के डाल-पातों में जाने से पक्षियों को किस तरह से रोक पायेगा · नीचे के डाल पातों में घुस जाने पर नीचे बाढ़ में वह जाने से उन्हें रोक पायेगा कैसे बाघारू ? पक्षियों ने तो कभी नहीं देखा कि डाल से डाल पर उड़कर जाने से उन्हें पानी में गिरना पड़ेगा।

बाघारू जल के प्रवाह से पक्षियों को बचाना चाहता था। वह 'हट्-हट' कहता हुआ पेड़ के डालों को हिलाया। ऊपर के डाल की पक्षी इससे आकाश में उड़कर फिर डाल पर बैठ गये। बाघारू ने देखा, जैसे पक्षी डाल-पत्तों के भीतर से होकर पानी के पास जाना चाहते हैं। क्यों वे जाना चाहते हैं, यह बाघारू की समझ में आ गया—डाल-पत्तों के इतने भीतर चले जाने पर उन्हें इस हवा-बारिश से एक तरह की सुरक्षा मिल पायी। पाखी हवा तूफान बारिश को पहचानते हैं, पर बाढ को तो पहचानते नही, बाढ़ के प्रवाह को ना पहचानते नहीं। इसी से पानी के कितने ऊपर रहने से आत्मरक्षा की जा सकती है वे हिसाब नहीं लगा पाते।

इतने समय के बाद बाघारू के आगे यह स्पष्ट हो पाया कि—एक शाल, एक कत्था, एक शीशम का पेड़ था, और एक पेड़ को वह अब भी पहचान नहीं पा रहा था—एक-दूसरे से मिलकर गड्डमड्ड हो गये थे सारे पेड़। पर नीचे वाले जिस पेड़ को वह पहचान नहीं पा रहा था, वह पेड़ आड़े होकर इन पेड़ों के नीचे रहा था। स्रोत के धक्के से हो चाहे नाइलॉन की रस्सी से बँधा होने के कारण, वह नीचे रह गया था। जो भी हो लगा तो था। बाघारू उधर से एकबारगी बायीं ओर के पेड़ की डाल पर खड़ा हो गया। अगर वह बीच वाला शाल पेड़ के मध्य जाकर खड़ा होने के लिये एक जगह पा जाता तो वहाँ से वह सभी पेड़ों को और पेड़ों के पाखियों को देख पाता।

बाघारू ने मन-ही-मन तय कर लिया कि वह पेड़ों के ठीक बीचोंबीच जो शाल का पेड़ है, उसके बीच में जायेगा। अब चारों ओर प्रकाश फैलने लगा था। बारिश की बूँदें भी नज़र आने लगी थीं। तिस्ता का प्रवाह, जहाँ तक नज़र जाती

थी, वहाँ तक एक ही तरह गंदला पानी दिख रहा है। देखने से पता नहीं चलता था कि इस विराट जलप्रांतर का भी कोई प्रवाह है। पर अधिक देर तक ताकते रहने से प्रवाह का उस वेग से सिर चकराने लगता है।

कत्थे के पेड़ का इस टेढे तने से होकर बाघारू हड़बड़ाता हुआ नीचे उतर आया और फिर पानी में उतर गया। प्रवाह के धक्के से वह डाल के समानान्तर बहने लगा—देखें कैसा प्रवाह है। पर शाल की डाल को पकड़कर उसने हिलाया—इससे पाखी किचिर-मिचिर करते हुए ऊपर उड गये। बाघारू को लगा कि शाल के पेड़ पर पूरा भार डालने से वह पानी मे पूरा डूब सकता है। नहीं भी डूब सकता है अगर नीचे का वह अनचीन्हे पेड के डाल-पात शाल पेड़ के नीचे हों तो एक बार बायें हाथ के ऊपर अधिक भार देकर वह देख लेना चाहता था। भार देते ही उसका बायाँ हाथ कत्थे के पेड से छूट गया। दोनों हाथों से कत्थे के पेड को पकडते-पकड़ते ही शाल का पेड नीचे चला गया। बाघारू उसको ओर थोड़ा नीचे दाब कर शाल के पेड पर चले जाते-जाते पानी उसके घुटने तक आ गया।

129
मचान का निर्माण

डाल पर बैठकर बाघारू ने थोडी प्रतीक्षा की यह देखने के लिये कि उसके उचक कर बैठने के धक्के को सभाल कर डाल फिर से पानी के ऊपर आ पायेगी कि नहीं। उसके घुटने के पीछे जल प्रवाह का मामूली धक्का लगा पर प्रवाह इतना तेज था कि जल उफन भी नही पाता था। डाल थोडा ऊपर को आ गयी पर पूरा नही आ पायी। बाघारू ने अपने दायीं ओर देखा ओर इस तरह की एक डाल की तलाश करने लगा जो तने से ऊपर की ओर उठा हुई हो। उस तरह की एक डाल उसे मिल भी गयी पर वह भी थोडा पीछे की ओर। इस डाल पर से उस डाल पर जाने के लिये जो हलचल होगी, वह सभाल पायेगा कि नहीं यह तय करने के लिये बाघारू ने एक बार गर्दन घुमाकर डाल को तो देखा, उसके साथ साथ डाल के आसपास भी देखा। फिर उस डाल को पकड़ने के लिये एक ही साथ दाया हाथ और पाँव बढा दिया। इससे वह डाल जल में डूब गयी, जिससे बायाँ हाथ, बायाँ पाँव डाल से हटा लाने मे हालियत हुई। अब वह बहुत सी छोटी-मोटी डालों को पार कर गया था, फिर उन्हें पकड़ कर एक बड़ी-सी डाल पर खड़ा हो गया था और वहाँ से चारों ओर नज़र डाली। एक ऊँचो जगह पर चढकर जैसे चारों ओर देखा जा सकता है, ठीक उसी तरह से बाघारू देख रहा था। पर देखने के बावजूद भी इतनी साफ चमकीली सुबह की बेला में भी

उसकी समझ में नहीं आया कि वह कहाँ आ पहुँचा है, किस किनारे के निकट से होकर गुज़र रहा है ? बाघारू को कभी भी इस तरह तिस्ता के ऊपर से दोनों पाटों को पहचानते हुए गुज़रना नहीं पड़ा। नदी के भीतर से नदी के दोनों किनारों को पहचानना वैसे ही उसके लिये मुश्किल काम है। फिर यह नदी तो उसकी साल भर की पहचानी नदी नहीं है। साल भर में दो-चार-दस दिन यह नदी बाघारू की अपरिचित हो उठती है। और नदी जब अपरिचित हो जाती तो नदी के दोनों किनारों के घर-बार, पेड़-पौधे भी अपरिचित हो जाते हैं। साल के वे दो-चार-दस दिन अब चल रहे हैं।

बाघारू के डालों पर से होते हुए चले आने में जो आलोड़न हुआ था, उससे पाखी बीच-बीच में उड़कर दूसरी जगहों पर जा बैठे थे। बाघारू ऊपर डाल पर खड़े होकर जितनी देर तक चारों ओर देखता रहा, पाखी उसी समय के बीच चार-चार पेड़ों के डाल-पात के भीतर छिप कर बैठ गये थे। एक-एक बार के हिलाने से पाखी पेड़ पर से अधिक दूर तक उड नहीं पाते थे। क्योंकि बाहर हवा का झोंका, बारिश की बौछार होती थी। पर साथ ही वे पानी के खतरनाक किनारे तक भी चले जाते थे। बाघारू ठीक से समझ नहीं पाता था कि किस तरह पाखियों को हवा और बारिश के समान दूरी की सुरक्षित डाल पत्तों पर लौटाया जा सकता है।

पर यह डाल बाघारू को पसद आ गयी थी। सबसे अधिक ऊंचाई पर न होने पर भी यह डाल काफी ऊँची थी। यहाँ से चारों ओर देखा जा सकता था। चारों पेड़ों के मध्यभाग भी नज़र आते थे यहां से। पर यहाँ एक ही दिक्कत थी—सिर के ऊपर कोई बड़ी-सी घनी डाल न होने से पानी और हवा की मार सरासर बाघारू के शरीर पर पड़ रही थी। बाघारू फिर से अपने दायी ओर देखने लगा कि उधर कोई निचली डाल उसे मिल सकती है या नहीं, जहाँ जरूरत होने पर वह हवा और बारिश से बचने के लिये बीच-बीच में जाकर आश्रय ले सके।

पर उस तरह की कोई डाल तलाश कर पाने से पहले ही बाघारू ने पीठ से कुल्हाड़ी निकाल ली। इस डाल के ऊपर उसने एक मचान-सा बना लेना चाहा।

"हमको तो बहना पड़ेगा ही इस बाढ़ के खत्म होने तक, इन पेड़ों को लेकर बहते जाना ही है। जब तक आसिंदर जँवाई और गयानाथ देउनिया हमको ढूँढ नहीं लेते तब तक बहते ही जाना है। इस बाढ़ भरी नदी में गयानाथ हमको कहाँ तलाश कर पायेगा ? जब बाढ़ कम हो जायगा, थम जायेगा, पहाड़तोड़, जंगलतोड़ पानी सब नदी को खाली करके बह जायेगा, तो चर मैदान—सब बाढ़ में ढंक गये है, साला उन सबको जब दुबारा देख पाऊँगा, साला मैं इन पेड़ों को लिये दिये कहीं रुका रहूँगा और गयानाथ आसिंदर जँवाई तभी हमको तलाश

कर पायेंगे। उतने दिनों तक तो मुझे बहना ही पड़ेगा।''

यही सब बातें कभी-कभी सोचते हुए बाघारू अपनी कुल्हाड़ी से छोटी-छोटी डाल काटता जा रहा था। काटी गयी डालें वहीं झूल रही थीं। एक-दो डाले गिर कर नीचे की डालो पर लटक गयी थी। काटते समय बाघारू किसी डाल को चुनता नहीं था। वह कभी बायें हाथ में एक छोटी-सी डाल झुकाकर उसके मूल में कुल्हाड़ी की चोट मारता था, फिर बाया हाथ छोड़ देता था। कटी डाल लटक जाती थी। कभी बाघारू दायां हाथ बढ़ाकर दूर वाली किसी डाल को काटता था। वह एक चोट से न झुकती तो दुबारा चोट करता था। पर जिसके लिये उसे अपने दोनों हाथों की शक्ति का प्रयोग करना पड़े, वह वैसी डाल नही काटता था।

देखते देखते बाघारू ने अपने लिये जैसे आकाश को साफ कर लिया। इससे वह हवा और बारिश की अधिक चपेट में आ गया। पर चारो ओर काफ़ी साफ-सुथरा हो गया था। इस आखिरी रात के अंधकार में वह जैसे इन चार वृक्षों के साथ एक और वृक्ष होकर बहता जा रहा था- और इतने समय बाद वह पेड़ और नदी के प्रवाह के ऊपर अपनी प्रभुता दिखाने लायक एक आसन बना पाया था।

कुल्हाड़ी को फिर से पीठ में खोंस कर बाघारू कटी डालों को खींच कर लाना शुरू कर दिया। तब तक इन डालों पर उसका चलना-फिरना इतना स्वाभाविक हो चुका था कि अनेक बार दोनों हाथों में कटी डालों के लिये वह इस डाल पर आड़ा तिरछा बिछा देता था। बिछाते-बिछाते एक बार देख भी लेता था कि पर्याप्त मात्रा में छोटी-छोटी डाले कटी हैं कि नहीं।

बाघारू अबकी नीचे की एक डाल पर उतर आया। वहाँ खड़ा होकर वह दोनों हाथों से इन छोटी डालों को ऊपर की बड़ी डाल पर और आसपास की विभिन्न डालों पर आड़ा-तिरछा फैला दिया। फैलाते ही एक मचान जैसा बन गया।

अबकी बाघारू गले से नाइलान रस्सी का बंडल खोलकर सामने लाया। और थोड़ा सोचने लगा। इन छोटी-मोटी डालों को बड़ी डाल के साथ बाँध न दे तो डाल गिर ही जायेगी, पर इतने बड़े-बड़े पेडों को बाधने वाली रस्सी से इन छोटी छोटी डालों को बांधेगा कैसे ? सुतली होती तो कोई बात न थी। बाघारू ने खड़ा होकर सामने वाले पेडो की ओर देखा, जैसे वहाँ कहीं पाट की कोई सुतली उसे मिल सकती थी। कुछ दूरी पर एक सुतर-सा कुछ लटक रहा था। बाघारू के हाथ बढ़ाकर उसे पकड़ने की कोशिश करते ही वह टूट गयी। एक टुकड़ा उसके हाथ में आ गया। फिर बाघारू ने सुबह के अस्वच्छ प्रकाश में गदले आकाश और नदी पर अपनी नज़र एक बार घुमायी—कहीं कोई पाट की सुतली मिल सकती है क्या ? आखिरकार बाघारू ने हाथ मे पकडे नाइलॉन की रस्सी

के बंडल पर ही नजर डाली। इन चार-चार पेड़ों के सारे बंधन इस रस्सी के साथ ही बँटे हुए थे। किसी पेड़ के कहीं रुक जाने पर या फिसल जाने पर वह इस बंडल के खिंचाव से ही समझ पायेगा। इस बंडल से एक टुकड़ा काट कर उसके पेंच खोल-खोलकर छोटी-छोटी सुतली जैसा टुकड़ा बनाया जा सकता है। पर उसके लिये तो बंडल को ही काटना पड़ेगा। अगर काटता है तो उसे कैसे पता चल पायेगा कि पेड़ ठीक है या नहीं ? गयानाथ जैसे गोशाला बताना पड़ता है उसी तरह फॉरेस्ट भी बताना पड़ता है।

130

पाखी जल में गिर रहे थे

अंत में बाघारू को एक उपाय सूझा।

सिर्फ़ उपाय ही सूझा, इतना ही नहीं—हाथ में था एक मोटी नाइलान की रस्सी का बंडल। उसे जो कुछ करना था, इसी बंडल को लेकर करना था। ये जो छोटी-छोटी डालें बिछी हुई थी उनके ऊपर नीचे के सिरे को नाइलान की रस्सी से दोनों ओर की मोटी डालों के साथ आड़ा-तिरछा करके बाँध दी। मोटी डालों पर रस्सी कसते ही यह मचान जैसे नाइलॉन की मोटी रस्सी के जाल में फँस गया। इससे हालांकि इन छोटी-छोटी डालों को काफ़ी सख्ती से बाँधा तो नहीं जा सका, पर इस मचान के ऊपर से बाघारू के गिरने का कोई भय नहीं रहा—रस्सी के जाल से रुक जायेगा।

नाइलॉन की रस्सी के बंडल को फिर से गले में अटका कर बाघारू डाल पर पैर रखकर अपने मचान पर चढ़कर खड़ा हो गया। खड़ा होकर चारों तरफ—आगे-पीछे, बायें-दाये, ऊपर-नीचे—देखने लगा। ऐसे खड़ा होना और देखना उसे इतना अच्छा लगा कि वह एक बार मचान पर बैठ गया, फिर अधलेटा हो गया, थोड़ी देर बाद फिर से उठकर खड़ा हो गया।

खड़ा होते, बैठने या सोते समय बाघारू को मचान के बीचोंबीच हो जाना पड़ता ताकि किनारे की डाल खिसक न जाये। पर इससे उसका आनंद कुछ कम नहीं होता। अब जाकर कहीं उसे इस बाढ़, वर्षा, हवा, तूफ़ान और इन पेड़ों पर नियंत्रण मिलता था। उन छोटी-मोटी डालों को काट लेने से उसकी दृष्टि भी जैसे काफ़ी दूर तक जाती थी। वह देख पा रहा था, बहाव को ठेलकर उसका इस चार वृक्षों वाला बेड़ा थोड़ा-सा भी हिले-डुले बगैर सरोट से बढ़ा जा रहा है। स्रोत इन पेड़ों के बेड़े को जिधर लिये जा रहा था उधर ही जाना पड़ रहा था, पर इस मचान पर बैठकर चारों और देखते-देखते बाघारू के मन में एक ख्याल आया कि वह अपनी मर्ज़ी के मुताबिक इन पेड़ों को और यहां तक कि

स्रोत को भी कुछ हद तक परिचालित कर पा रहा है। अपने इस ख्याल के समर्थन के लिये बाघारू को एक लाठी की जरूरत थी—काफी लंबी और सीधी लाठी। यहाँ बैठे बैठे ही उस लाठी से पानी को छुआ जा सके। फिर जरूरत होने पर जिस लाठी को आकाश पर भी ताना जा सके। वस आकाश में तानने की कोई जरूरत है यह बाघारू महसूस नहीं कर पा रहा था। पर एक लाठी अगर हो तो उसे आकाश में उठाना ही चाहिये, ऐसा न हो तो फिर वह लाठी किस काम की? इस अभाव को बाघारू रखना नहीं चाहता।

उसने कुल्हाड़ी को फिर से पीठ पर से निकाल ली। दाये हाथ में झुलाया। बहार की ओर मुँह करके मचान पर खड़ा हो गया। अपने चारों ओर के डाल-पत्तों के कटे फाँक में खड़ा हो गया और इधर उधर गर्दन घुमाकर लाठी बनाने लायक एक डाल की तलाश करने लगा। जिस कत्थे के पेड़ पर उसने रात गुजारी थी, वह अब कितना दूर लगता था। उसके डाल पत्ते भी काफी घने नजर आते थे। शीशम का पेड़ भी तो पास में ही था। उसके पत्ते मरे हुए थे। हवा के झकोरों से सब एक ही ओर हिल रहे थे। बाघारू ने उधर देखा। फिर सोचा शीशम के पेड़ के डाल पातों के बीच उसे अपनी पसंद के मुताबिक एक लंबा पतली डाल शायद मिल सकती थी। अबकी वह बहार के उसी दिशा में देखने लगा जिस पेड़ को वह पहले पहचान नहीं पाया था उसी पेड़ को देखने के लिये। पर कुल्हाड़ी हाथ में लिये कूदने के लिये तैयार मुद्रा में वह समझ गया कि पेड़ तक पहुँचना जोखिमों से भरपूर काम है।

उसने मचान से पास वाले शीशम के पेड़ पर जाने के लिये पैर बढ़ाकर देखा कि नीचे एक डाल उल्टी हुई पड़ी थी, कटा हुआ भाग ऊपर की ओर था। पिछला भाग कहाँ जाकर पड़ा था, यह दिखायी दे रहा था। उसने कुल्हाड़ी को कमर में वापस खोंस कर डाल को ऊपर खींच ली। काफी अंदर से एक लंबी डाल ऊपर आ गयी। बाघारू ने डाल को हाथ में लेकर परखा। पिछला भाग थोड़ा अधिक पतला था पर इसका काम बन जायेगा। वह मचान में वापस आकर बैठ गया। कमर से कुल्हाड़ी को निकाल कर डाल को साफ की। सारे पत्ते-वत्ते साफ करने के बाद वह डाल ठीक एक चाबुक की तरह नजर आने लगी। बाघारू ने लाठी को सामने रखकर देखा छाल निकाल देने से अंदर का रंग बाहर फूट पड़ेगा। कच्चे शीशम की लकड़ी के अंदर का रंग सरसों के तेल जैसा चमकीला होता है। कुल्हाड़ी के बेंट को दाएँ बगल में दाब कर वह जड़ से थोड़ा थोड़ा छीलने लगा। इतनी बारिश तूफान के बावजूद जंगल की हरिआई गंध बाघारू की नाक में पहुँचती थी। डाल की छाल के अंदर से आती गंध। इस गंध से ही अनजाने में बाघारू को कुछ राहत महसूस होती थी। पेड़ पर इस तरह का एक मचान बनाया था, उसके हाथ में डाल का रस लग गया था,

नाक में जंगल की गंध—बाघारू जैसे बाढ़ में बह नहीं रहा था, जंगल के भीतर से होकर चल रहा था या चाय की बागान से होकर गुज़र रहा था।

एक हैंडल जैसा बन जाने के बाद बाघारू ने छाल छीलना बंद कर दिया। कुल्हाड़ी को पास रखकर हाथ उठाया, फिर हाथ से झट पकड़ लिया—अगर पानी में गिर गया तो। उसने उसे कमर में खोंस ली।

फिर वह खड़ा हो गया। दोनों पैर फैलाकर खड़ा हो गया और दोनों हाथो में लाठी सिर के ऊपर उठाता हुआ आकाश की ओर बढ़ाया, फिर सिर के चारों ओर हवा बारिश में घुमाने लगा। घुमाते-घुमाते उसे काफ़ी मज़ा आने लगा जैसे उसकी लाठी से हवा और बारिश के इस ज़ोर को तोड़ा जा सकता है। और तोड़ा जा रहा था। उसी मज़े में बाघारू लाठी को नीचे ले आया जैसे और वास्तविकता के साथ प्रतिरोध करते हुए उसे आनंद आयेगा और पेड के डाल-पत्तो के ऊपर मारने लगा—'हे-हे-हे-हे-हे' इस तरह की एक किलकारी भी मारी।

अचानक लाठी की चोट से डालों से और नीचे की डालों से भी पक्षियों का एक झुंड आत्मरक्षा के लिये फड़फड़ाते हुए आकाश मे उड गया। वह पाखियो को नीचे पानी के पास से ऊपर ले आना चाहता था, बाघारू को याद आ गया, "चल आ रे, पानी के पास से चले आ मन।" कहते हुए उसने लम्बी बेतनुमा लाठी को और नीचे दायें-बायें घुमायी।

इस तरह से चलाता था कि और माथा उठाकर कहीं देख नहीं सकता। नीचे से पाखी 'चीं-चाँ' करते हुए ऊपर आ जाता, फिर डाल पर से फुर्र से आकाश में उड़ जाता।

तभी बाघारू ने देखा, उसकी लाठी के भय से पाखी आवाज़ करते-करते डाल छोड़ आकाश में काफ़ी ऊपर उड़ गये थे—इतने ऊपर चले गये थे कि अब वहाँ से नीचे उतर पा नहीं रहे थे, हवा तूफ़ान के धक्के से वे प्रवाह के विपरीत जाने को बाध्य हो गये थे और चार-चार पेड़ों का बेड़ा लिये बाघारू उनके नीचे-नीचे प्रवाह के बहाव में सरकता आ रहा था। उस तूफ़ान के भीतर पाखियों के लिये नीचे पानी को छोड़ कोई आश्रय नहीं। ये पाखी हवा के विपरीत उड़ कर इस पेड़ के पास तो नहीं आ पा रहे थे। हवा इतनी ज़ोर से बह रही थी कि अनुकूल दिशा में पंख खोल भी नहीं पा रहे थे। नदी के ऊपर हवा के भीतर पाखियों के झुंड कैसे सूखे पत्तों से उलट-पुलट हुए जा रहे थे। बाघारू ने आगे बहते-बहते देखा कि दो-एक पाखी आकाश से नदी में गिर भी गये, सूखे पत्तों की तरह।

बाघारू विह्वल होकर घूमकर सामने जहाँ तक नज़र दौड़ाता उधर मटमैले पानी के ऊपर देखने लगा था। फिर मचान पर घूमकर पीछे हवा से पाखियों के गिरने की दिशा में देखता था। पर तब तक वह काफ़ी दूर चला गया था।

131
बाघारू का विषाद

थोड़ा और प्रकाश फैलते ही बाघारू ने मचान पर बैठे-बैठे देखा कि, उसके दायें हाथ, यानी तिस्ता का पश्चिमी पाट उसकी नजर में आता था। बाघारू चुपचाप बैठा था अपने मचान में। दोनों घुटनों पर दोनों हाथों को माड़े। लाठी को उसने पास में रख दिया था। कंधे पर नाइलान की रस्सी का बंडल और कमर में कुल्हाड़ी अब भी थी। पर बाघारू जिस तरह से बैठा था, उससे लगता था कि वह उन चीजों का भूलकर भी व्यवहार नहीं करेगा। बगैर सोचे-समझे इतने सारे पंछियों को पेड़ों से तूफ़ानी हवा में उड़ा कर उसने मार डाला। उसके बाद से बाघारू बिल्कुल चुपचाप हो गया था। उसकी सक्रियता खत्म हो गयी थी। पहले तो उसे लगा था कि पेड़ों के सारे पंछियों को उसने उड़ा दिया है। पाखी इस तूफान में उड़ भी नहीं पाये थे। या पेड़ों पर भी वापस आ नहीं पाये। उसके बाद बाघारू को थोड़ी बहुत सान्त्वना मिली थी—इस शाल और दूसरे वृक्ष में अब भी कुछ पाखी रह गये थे। एक झुंड में अचानक वहाँ से उड़कर चले गये थे। बाकी के सब वहीं रह गये थे। पर अब बाघारू पाखियों के साथ नहीं था। पाखी डाल-पत्तों के अंदर से होते हुए उड़ान भरते-भरते, फुदकते अगर पानी में गिर कर बह जायें तो जाने दो। उन्हें बचाने की कोशिश बाघारू और करने नहीं जा रहा। यहाँ तक कि अगर उसे इस पेड़ पर से भी यातायात करना पड़ा तो भी वह पाखियों की ओर मुड़कर नहीं देखेगा। उसके न देखने से ही पाखियों को अपनी मर्जी के मुताबिक उड़ने, फिरने, फुदकने, बोलने, चहचहाने की आजादी मिल जायेगी। वे उड़ेंगे, रहें तो रहें, बह जायें तो बह जायें, मरें तो मरें। बाघारू इसी से अपने मचान पर प्रवाह की ओर मुँह किये दोनों घुटनों को हाथ के घेरे में लिये देख रहा था कि उसके दायें हाथ की ओर तिस्ता का पश्चिमांचल, किनारे का जंगल नजर आ रहा था और बीच-बीच में बाँध और कुछ घर-बार भी नजर आने लगे थे।

बाघारू वह सब नहीं पहचानता। पर वह समझता था कि जो प्रवाह पेड़ों के साथ उसे बहाये ले जा रहा है, वह पश्चिम पाट की ओर ही भाग रहा है। प्रवाह को इस पाट में ले जाकर रोक सकता है इस बेड़े को। फिर उधर से और एक प्रवाह उसे पश्चिम पाट से खींच कर हटा भी सकता है। बाघारू के हाथ में अगर कोई पतली और लम्बी एक लग्घी रहती तो पाट के नजदीक जाते न जाते वह उसी कम पानी में लग्घी से ठेलकर पाट में भिड़ने की कोशिश कर सकता। एक पाट में रुक जाने से ही उसका काम खत्म। बाक़ी काम तो गयानाथ और आसिंदर जँवाई का है—हमको और पेड़ों को ढूँढ़ने का। ठीक ही ढूँढ़ लेंगे।

गयानाथ को गंध मिल सकती है कि कहाँ उसका पेड़ और बाघारू है।

बाघारू ने बायीं ओर, तिस्ता के पूरब के पार देखा। पर कुछ नहीं दिखायी दिया। सूरज इस दिशा में उगा था, वह तो समझ में ही आता था, गंदले आकाश में मेघ की आंचलिक उज्ज्वलता से। और दिखायी देता था रेल लाइन का एक डिस्टेंट सिगनल और अस्पष्ट कुछ पेड़-पौधे। पर इन सबको समेट कर तिस्ता का पानी बिखरा और फैलता जा रहा था जैसे। बाघारू के मचान से लगता था, तमाम बाढ़ जैसे उस पूरब दिशा की ओर भागे जा रही थी। "जल जा रहा है पूरब की ओर, मई पेड़ो को लेकर जा रहा हूं पश्चिम की तरफ"- बाघारू जैसे फेरे में पड़ गया, पर उस फेरे को लेकर और कोई दुश्चिंता या उद्वेग नहीं था। "हमको तो बहा दिया है, गयानाथ बहा दिया है हमको, जहां ले जाये, वहाँ जाऊंगा।"

पर कुछ क्षण के बाद ही बाघारू को उठकर खड़ा होना पड़ा। क्योंकि तब तिस्ता के पश्चिमी तट पर चाय बागान की फेक्ट्री का भोंपू और बाँध नजर आने लगा था, फिर थोड़ी देर बाद बाघारू की आंखों के आगे स्पष्ट हो उठे थे तिस्ता के बीचोंबीच कुछ पेड़ के शिखर और टीन के छत। वे पेड़ और छत गले तक पानी में डूबे हुए थे। "चर तो है, पर लोग चले गये है।" बाघारू के पेड़ों का बेड़ा उस चर की दिशा में भाग रहा था। बाघारू को अपने मचान पर खड़ा होकर तैयारी के साथ सोचना पड़ा था कि क्या वह इस चर के टीन की छत या पेड़ों के शिखर पर बेड़े को बांधने की कोशिश करे।

बाघारू ने जब अपनी मचान पर खड़ा होकर यह सोचना शुरू किया, उसे लगा कि प्रवाह काफ़ी तेज़ हो गया है और उस चर की ओर भाग रहा है। इन पेड़ों के साथ-साथ उसे वहाँ पटकने के लिये ही जैसे यह अथाह पानी भाग रहा है। जब तक इस तरह का कोई सिद्धांत नहीं था, तब तक इस जलप्रवाह के तीव्र वेग को बाघारू जैसे समझ नहीं पाया—एक काले अंधेरे में बहते जाने के मुहूर्त को छोड़। पर उसके बाद खासकर रात खत्म होने के बाद से, इस स्रोत के साथ बाघारू का जैसे सहावस्थान ही चल रहा था हालाँकि बाघारू प्रवाह में बहता जा रहा था—फिर भी जैसे उसका खेत में बहते जाना निरपेक्ष था। उसी तरह यह स्रोत भी बाघारू के प्रति निरपेक्ष हो बहता जा रहा था। पर अब जबकि बाघारू किसी सिद्धांत के आमने-सामने खड़ा था तभी अचानक जैसे स्पष्ट हो उठा था कि उस सिद्धांत को लेकर बाघारू को उसे कार्यरूप देने के लिये इस जलस्रोत के साथ लड़ना पड़ता था। बाघारू के प्रतिपक्ष के हिसाब से जलस्रोत की दिशा में ताकते ही जल स्रोत का वेग और शक्ति उसके पास स्पष्ट हो जाता था। फिर काफ़ी समय के बाद बाघारू पानी का कल्लोल सुन पाया। अबतक यह कल्लोल ऊपर की हवा के साथ मिलकर एक आवाज़ बन गयी थी—उसी

एक आवाज को भेदकर बाघारू अपना पेड़ लिये जा रहा था।

फिर भी कभी-कभी वह हवा की आवाज को अलग से समझ पाता था। पेड़ की डाल पर खड़े होकर तो उसे हवा के थपेड़े सहने पड़ रहे थे, सँभालना पड़ रहा था। पर स्रोत को तो उस तरह से कभी सँभालना नहीं पड़ता। फिर भी स्रोत तो है ही और उसी स्रोत के लिये तो वह इन पेड़ों को लेकर बह रहा था, इन सबके बावजूद भी स्रोत जैसे तो अजाना हो गया था।

पर अभी, जिस पल बाघारू समझ गया था कि यह तेज प्रवाह उसे सामने के इस चर के भीतर ले जाकर पटक सकता है, चर के पेड़ और टीन की छत पर वह अपने को पेड़ों के साथ रोके रख सकता है। ठीक उसी पल उसके पाँव के नीचे से पानी की प्रबल शक्ति कल्लोलित हो उठी। बाघारू पाँव के नीचे के पानी की ओर नहीं देखता था – बल्कि वह थोड़ी दूर पर ही देख रहा था। उस दूर के पानी को देखकर ही उसने अंदाजा करना चाहा था कि अगर उसे इस पानी में छलाँग लगाना पड़ा, तो प्रवाह के अनुकूल [illegible] से ही क्या उसका शरीर इस स्रोत की तीव्रता को अनुकूल पायेगा। [illegible] इस जलस्रोत की तीव्रता के निकट समर्थन या विरोधिता का कोई अलग मूल्य नहीं, बहा लेने के वेग से यह प्रवाह सब कुछ नीचे ले जा सकता है। फिर बाघारू इस नाइलॉन की रस्सी का फाँस बनाकर तैयार था, अगर उसे इन घर और पेड़ों के बीच से होकर या निकट से होकर उसको जाना पड़े, तो वह फाँस (फंदा) को फेंक देगा। अगर फंदा अटक गया तो ठीक। अगर न भी फँसा तो भी कोई बात नहीं। पर यह विकल्प सोचते सोचते ही बाघारू समझ गया कि उस तरह से रोका नहीं जा सकता बेड़े को। अगर वह इस चर में अपने को रोकना चाहता है तो इस अथाह जलप्रवाह के साथ उसे लड़ाई मोल लेना ही पड़ेगा, और कोई विकल्प नहीं। पर किस तरह की होगी वह लड़ाई बाघारू कुछ अंदाजा लगा नहीं पाता। पर उसके तैयार शरीर के आगे वे टीन के छत, पेड़ तेजी से करीब होते जा रहे थे।

132

अस्थायी लांगर

बीस-बाईस घर पहले जिस चर से निताइ-गजेन नरेश आदि मवेशियों को बाढ़ के भय से बाँध पर ले गये थे, बाघारू अपने फरिंगे को साथ लेकर उस चर की ओर बहा जा रहा था सिर्फ दो-चार पेड़ों के शिखर या टीन की छत के जरिये।

बाघारू ने तब उस चर की दिशा में बहते बहते देखा कि रायपुर-रंधामाली बाँध पर लोगों और मवेशियों की कतारें लगी हैं। वे लोग बाघारू की ओर देख

रहे हैं कि नहीं, वहाँ से बाघारू नजर आ रहा है कि नहीं—कुछ भी बाघारू की समझ में नहीं आ रहा था। पर बाढ़ में जो लोग बाँध पर अपने संसार को समेटे रह रहे हैं, वे नदी के सिवा और किस ओर भला देख सकते हैं ?

जल के भीतर पेड़ों के ये शिखर और टीन के छत बाघारू को एक आश्रय का इशारा भर दे रहे थे, पर बाँध के ऊपर लोगों और गाय-भैसों का जमघट, तिरपाल का उड़ता हुआ तंबू ओर प्लास्टिक चादरों की ओढ़नी देखकर बाघारू के भीतर उसके अनजाने में ही एक फ़ैसला हो गया कि इस चर पर ही वह पेड़ों के साथ अपने को रोकेगा। और यह स्वाभाविक भी था। यह हवा, तूफान और पानी जिस तरह प्राकृतिक नियम से कई दिनों से चल रहे हैं, जल का यह प्रवाह जैसे प्राकृतिक नियम से प्रतिदिन इतने सारे पानी लेकर बहता जा रहा है, उसी तरह बाघारू बाँध पर लोगों को और पानी के अंदर टीन के छतों को देखकर वहाँ अपने को रोकने के लिये सक्रिय हो उठा बगैर किसी कार्य-कारण के चलते। पाट पर, बाँध के ऊपर लोगबाग और गाय-गोरुओ को देखने के बाद बाघारू के निकट जल का कल्लोल तुच्छ हो गया। वह जैसे कुछ घंटे पहले गाजोल्डोबा के जंगल के अंधकार में गयानाथ की एक ही बात से बहते पेड़ों के भीतर के अँधेरे पानी में कूद पड़ा था। अब उसी तरह इतने सारे लोग और मवेशियों को देखते ही वह समझ गया कि उसे यहीं पर उतरना है। जल का प्रवाह चाहे उसे कितना ही बहा ले जाना चाहे—वह इस पेड़ के शिखर पर या टीन की छत पर किसी-न-किसी तरह से अपने को रोकेगा ही।

पर उस पल बाघारू ने यह नहीं सोचा कि अगर वह किसी तरह इस चर पर अपने को रोक भी ले तो पश्चिम पाट वाले बाँध पर पहुँच पायेगा कैसे ? पर इतने सारे लोग और मवेशियों के इतने निकट से, बाघारू इस संभाव्य आश्रय को छोड़कर चले जायें तो भी कैसे ? यह सही है कि इसके बाद उसे और निरापद स्थान मिल सकता है, काफ़ी लोग भी मिल सकते हैं, पर उस अनिश्चित आशा में बाघारू हाथ में लगे लोगों को कैसे छोड़ दे ? यहाँ पर वह अपने पेड़ों को बाँध दे तो वह बाँध को तो देख ही सकता है।

बाघारू इस तेज़ी के साथ अपने मचान पर से उतर आया और डालों पर से होते हुए इन पेड़ों के पीछे की ओर चला गया जैसे ऐसी हालत में उसे क्या करना है, यह उसे अनुभव से भली-भाँति पता हो। पशु जैसे सिर्फ अपने शारीरिक अनुभव शक्ति से जान जाता है अपने शरीर को अनाहत रखने के लिये, बाघारू भी जैसे उसी तरह से ही जान गया है कि इन पेड़ों के सामने कूद कर नहीं, बल्कि पेड़ों के पीछे, पेड़ की डाल पकड़ कर बहते रहकर ही वह हाथ के निकट कुछ-न-कुछ पाया जा सकता है। अगर कुछ न भी मिला या उसमें हाथ भी फिसल गया तो इस रस्सी के सहारे ही बहकर वह अपने

पेड़ पर वापस आ सकता है।

बाघारू जिन पेड़ों की डाल पर से होता हुआ पीछे की ओर गया था, उसमें पेड़ हिल उठे थे, पाखी फिर से चिल्लाते हुए उड़ने लगे थे। पर बाघारू इस समय पेड़ कहीं उलट तो नहीं जायेगा, डाल उसका भार सहन कर पायेगी कि नहीं—यह सब हिसाब करने नहीं बैठा। यहाँ तक कि पैर फिसल जाने पर जल में गिर जाने की आशंका भी नहीं थी उसको। क्योंकि वह इस पीछे वाले पेड़ से पानी में उतरने ही जा रहा था। जब बाघारू डाँगर छोड़कर इस पेड़ की डाल को पकड़ कर बह रहा था, तब डाल-पातों के साथ अपने शरीर का जो सामंजस्य उसने नाप तोल कर बनाया था, अब उस सामंजस्य को तोड़ते हुए ही वह इन पेड़ों के पीछे की ओर जा रहा था।

बाघारू अपने मचान पर से शालवृक्ष के ही नीचे की डाल पर उतर आया, वहाँ से हाथ बढ़ाकर शीशम की एक ऊँची डाल पकड़ कर झूल गया। फिर नीचे की एक डाल पर उतरने के बाद समझा था कि यह पास वाला पेड़ शीशम का पेड़ है। उसी डाल को पकड़ कर सिर को थोड़ा झुका कर हड़बड़ी में थोड़ा आगे बढ़ जाने पर बाघारू ने फिर से दायीं ओर की एक डाल पर पैर रख दिया। वह शाल वृक्ष की ही डाल थी। शाल वृक्ष का डाल इतनी मजबूत थी कि बाघारू के वजन से पानी में डूब तो सकती थी, पर झुकती नहीं था। बाघारू उसी डाल पर चलता हुआ नीचे उतर गया। बाघारू को सामने झुककर शीशम की डाल पर हाथ रखना पड़ा। शाल की डाल डूब गयी और बाघारू का पाँव पानी में डूब गया। बाघारू अबकी शाल डाल को छोड़ शीशम के पेड़ के नीचे की एक मोटी डाल को पकड़ कर पानी में उतर आया। वह डाल पानी से सटी हुई ही था। बाघारू के उस पर झूल जाने से वह और नीचे डूब गयी। बाघारू का शरीर स्रोत के धक्के से डाल के समानान्तर बहने लगा था। डाल को पकड़े हुए वह और नीचे उतर आया, उतर कर जो पेड़ एकबारगी नीचे पड़ा था उसके आगे पहुँच गया। इस वृक्ष को वह अब तक पहचान नहीं पाया था। अब शीशम की डाल छोड़ इस पेड़ के किसी एक डाल को पकड़ने के लिये हाथ बढ़ाते ही वह पहचान गया कि यह चंपा का वृक्ष है। जिस डाल पर उसका हाथ पड़ा था वह बहुत ही पतली थी। उसे पकड़ने न-पकड़ते ही वह पानी के नीचे डूब गया। बाघारू डूबते-डूबते हाथ बढ़ाकर और एक डाल पकड़ कर सिर ऊपर उठाता था। उसका सिर बहुत-सी छोटी-छोटी डालों में उलझ जाने पर उसने फिर से डुबकी लगायी। जल के नीचे भी उसे रोक देने के लिये भीतर भी एक डाल थी, पर बाघारू दोनों हाथों से उन्हें हटाकर, तोड़कर चंपा के पेड़ को पार करके जकड़ लिया—यह पेड़ का अगला भाग था। बाघारू स्रोत के धक्के से तब चंपा वृक्ष के साथ लिपटा हुआ था। वह पेड़ के जड़ की ओर सरकने लगा। फिर पेड़ के ऊपर उठ बैठा।

अपने मचान पर से बाघारू इस बाढ़ के बहाव के बीच से इस चंपा वृक्ष की जड़ तक चला आया, जैसे कि इधर आने का रास्ता उसका सब दिन का जाना-पहचाना था।

बाघारू ने देखा कि एक पुआल रखने वाला बाँस का मचान पार हो गया है। फ़ौरन उसकी समझ में आ गया कि वह चर के बीच पहुँच चुका है। सिर्फ़ कुछ ही घंटे पहले यहाँ लोगों की आबादी, भरी-पूरी बस्ती थी। पानी के ठीक नीचे कहाँ पर क्या उभरा हुआ है, कह पाना कठिन था। बाघारू पानी में उतरना चाहते हुए भी नहीं उतरा नहीं। पर नाइलॉन की रस्सी के बंडल को खोलकर स्रोत के विपरीत दिशा में प्रस्तुत था कि किसी पेड़ की कोई मजबूत-सी डाल मिल जाने पर वह कूद पड़ेगा। बाघारू ने देखा कि, थोड़ी-थोड़ी दूर पर दो-एक टीन की छत ऊपर को उभरी हुई नज़र आ रही हैं, पर उन छतों पर पहुँचा नही जा सकता। अचानक बहते हुए पेड़ रुक गये। पेड़ के नीचे से पानी उफनने लगा था। कहीं ज़रूर रुक गया है यह बेड़ा। बाघारू मौक़े का फ़ायदा उठाना चाहता था पर वह अगर ज्यादा हिलता-डुलता तो रुकावट दूर होने का पूरा-पूरा अंदेशा था। बाघारू किसी तरह एक पतली डाल पकड़ कर खड़ा हो गया। देखा कि दो-तीन सुपारी के पेड़ों के बीच बेड़ा फस कर रुक गया है। पर स्रोत के वेग से चंपा का पेड़ घूमकर सामने चला आ रहा है। बाघारू तैयारी के साथ खड़ा रहा। चंपे का वृक्ष और थोड़ा घूमते ही उसने देखा कि सुपारी के पेड़ों के पश्चिम में एक टीन की छत है। बाघारू ने बैठकर पानी में अपने दोनो पाँव झुला दिया। उन सुपारी के पेड़ों के आसपास पहुंचते ही वह पानी में उतर कर इस टीन की छत पर चढ़ जायेगा और एक सुपारी के पेड़ में रस्सी को कस देगा। पर चंपे का वृक्ष और घूमना नहीं था, रुक गया था। बाघारू फ़ौरन छलांग लगाकर पल भर में एक सुपारी के पेड़ के शिखर को कस कर पकड़ लिया। निताई के चर पर अपने पेड़ों के साथ रुक जाने के लिये बाघारू को जगह मिल गयी। किसी एक सुपारी के बाग में बेड़े के रुक जाने पर पानी के ऊपर उभरे हुए सुपारी के पेड़ पर बाघारू चढ़ गया। फिर एक पेड़ से दूसरे पेड़ पर होते हुए टीन की छत पर चढ़ गया। बाघारू के लिये चुनाव करना मुश्किल था कि—पेड़ों के भीतर मचान पर बैठना, सुपारी के पेड़ के ऊपर बैठना या इस टीन की छत पर बैठना—कोन-सा अधिक बेहतर है। पर यहाँ तो उसकी खुद की पसंद का कोई सवाल न था। जैसे कि यहाँ रुकने के लिये ही गयानाथ ने उसे बहा दिया था—पेड़ ठीक उसी तरह से यहाँ रुक गये थे। फिर इसमें पसंद-नापसंद का सवाल कहाँ से आता है ? टीन की छत पर बैठे-बैठे खराब लगने पर सुपारी के पेड़ पर चला जायेगा। वहाँ झूलते हुए खराब लगे तो फिर झूल कर बेड़े के मचान में चला आयेगा। नाइलॉन की रस्सी से इस तरह से पेड़ों को कसता हुआ आया

है बाघारू कि यहाँ से वे बहकर कहीं नहीं जा सकते।

बाघारू टीन की छत पर पैर लटकाये बैठा था रायपुर-रंधामाली बाँध की ओर मुंह किये। लगातार हवा, बारिश और बाढ़ में इस छत से वह बाँध कितना रंगीन नज़र आ रहा था। यहाँ तक कि लोगों का चलना-फिरना भी साफ नज़र आ रहा था। मवेशियों के रंग भी कुछ-कुछ पहचान में आ रहे थे। एक या दो भैंसे भी थी उनमें। औरतें भी पहचान में आ रही थीं। सिर्फ़ चेहरा ही पहचान में नही आ रहा था। इस टीन की छत पर बैठे-बैठे जल के अलावा ऊपर बाँध का यह दृश्य देखना तो काफ़ी मजे की बात थी।

बाघारू के लिये किसी भी दृश्य को देखकर थक जाना संभव नहीं था, क्योंकि वह हर समय दृश्य का ही एक हिस्सा हुआ करता है। इतनी बाढ़ और पानी देखकर भी वह थका नहीं। पर क्लांत न होने के बावजूद भी तो वह दृश्य के अंतर को समझता था। अब इसी टीन की छत पर से यह बाँध एक दृश्यांतर का काम तो कर ही रहा था। फिर एक काम तो खत्म ही हुआ समझो। कहीं इसी तरह से रुक जाने के लिये ही तो गयानाथ ने उसे पेड़ों के साथ बहा दिया था। रुकने के लिये ही। अब आसिदर जँवाई की फटफटिया के पीछे बैठकर गयानाथ उसे जब तलाश कर लेगा, करेगा। बाघारू को और कुछ करना नहीं था।

अब तो पानी बढ़ रहा है, हवा बढ़ रही है। बाढ़ का पानी जब कम होगा, ऐसा कहीं कोई संकेत नज़र नहीं आता। पर अब अंदाज़ा लगा नहीं पाने पर भी तो किसी दिन तो कम होगा ही आखिर। तब पानी के साथ-साथ बाघारू पेड़ों से नीचे उतरता जायेगा। वह इस पानी के नीचे किसके घर या आँगन में उतरेगा क्या पता ? पानी के उतर जाने के बाद भी बाघारू को यह। इंतज़ार करना होगा कि गयानाथ कब उसे ढूढ़ निकालेगा ?

पर तब, चारों ओर के दृश्य भी तो बदल गये होंगे। अभी तो लग रहा है कि चारों तरफ सिर्फ़ जल ही जल है। इसमें एक सहूलियत भी है—किस्म-किस्म की चीज़ों पर आँखें नहीं जातीं। और तब तो डाँगर उभर कर आ जायेगा सामने। डाँगर का मतलब तो ज़मीन होता है। ज़मीन का मतलब मेड़। मेड़ का मतलब मालिक। मालिक का मतलब घर। घर का मतलब पक्का। पक्का का मतलब गाँव-कस्बा-शहर। तब चारों ओर कितनी सारी चीज़ें। कि 'ने ऊँच-नीच। कितने मोड़-घुमाव, कितना सीधा-उल्टा। वह तो रोज जैसे रहता है, वैसे ही रहता है। अब तो रोज जैसा नहीं है बिल्कुल। उस रोज वाला दिन अब पानी में ढँका पड़ा है। जल का कोई मालिक नहीं है। इस जल का कोई मेड़ नहीं। मेड़ होने पर भी बाघारू का कुछ आता-जाता नहीं है। पर अभी इस टीन की छत के ऊपर बैठकर मेड़विहीन पानी देखना उसे काफ़ी अच्छा लग रहा है। और यह सोचना

भी काफ़ी अच्छा लग रहा है कि इस पानी मे कोई मेड़ नहीं बाँध सकता। तभी बाघारू को काफ़ी मजा आया इस भीगे टीन की छत पर बैठकर सामने थोड़ा जल के उस पार पश्चिम पाट के ऊपर बाँध पर लोगों को देखना।

पर यह भी एक टीन की छत है। यहाँ तो एक सुपारी का बागान है। और कई टीन की छतें हैं और कुछ पेड़-पौधे भी नज़र आ रहे हैं। फिर यहाँ से देखते ही पता चलता है कि इस तरह के कुछ छत, कुछ पेड-पौधो के बाद तिस्ता उसी तरह बहती जा रही थी। उसे दूर से देखने से ये दो-चार पेड़-पौधे, टीन की छत पर लगता था—ये भी जैसे तिस्ता की बाढ़ में बह रहे हैं। जिस तरह से पेड़ों को साथ लिये बाघारू बहता आया है। बाघारू जिस पल अँधेरे में, अस्वच्छ उजास में, हवा में, बारिश मे पार करता आया है और इस छत पर और सुपारी बागान में रुक न गया होता तो बेड़ा के सामने का यह जो तेज स्रोत है, उसमें बह गया होता। अब भी बहता जा रहा होता। उन दोनों के मध्य उसके पेड के बेडे को बांधकर, इस टीन की छत पर बैठकर उसने समझ लिया कि यहाँ घर-द्वार था, जैसे लोगों का होता है। यहाँ सुपारी बागान, खेत, धान के खेत, गोहाल थे, जैसे गाँव में लोगों के रहता है। यह जल, यह बाढ़, उस घर-बार, गाँव सड़क को ढंक दिया है। बाघारू का तो कोई घर नहीं, गाँव नहीं, बाघारू का कोई पेड नहीं, मेड़ नहीं। घर-बार है गयानाथ का, गाँव है गयानाथ का, जगल में पेड़ हैं गयानाथ का, गोहाल है गयानाथ का। यहाँ, जहाँ वह बैठा हुआ है, वहाँ भी पानी के नीचे गयानाथ का घर, बागान, जंगल धान का खेत, गोहाल, गाय-भैंस हैं। पानी जब कम हो जायेगा- गयानाथ उसे ढूँढ कर निकाल लेगा, उसके जंगल के चार पेड़ो का हिसाब किताब समझ लेगा, गयानाथ का बाघारू फिर से गयानाथ के पास वापस चला जायेगा। पानी जब कम हो जायेगा—यहीं, यहाँ के जल के नीचे की ज़मीन निकल आयेगी। घर-बार निकल आयेगा, जंगल निकल आयेगा। अब यहाँ इस टूटे हुए टीन की छत पर हवा और पानी के बीच बैठा बाघारू गंदले जलस्रोत के ऊपर से इस पाट के लोगबाग, गाय-भैंसों की ओर देखते-देखते बाघारू जैसे सोचना चाहता था—यह पानी रहे, सब मेड़ घर-बार, जंगल, गाय-बछड़े डुबाने वाला यह पानी बना रहे, जिस पानी से होते हुए बाघारू बहता आया है, उस तरह के पानी से बाघारू फिर से बहता जाये, और दूर, वहाँ तक बहे कि गयानाथ और आसिंदर जैसे उसे ढूँढ़ भी न पायें।

बाघारू ठीक इस तरह से सोच पाया—ऐसा नहीं है। ठीक इतनी सारी बातें इस तरह से सोचने की आदत उसकी नहीं है। वह तो सोच सकता है सिर्फ़ अपने शरीर को लेकर। उस शरीर के चलते ही बाघारू इस जल के बीच बैठकर थकावट महसूस नहीं करता, अकेलापन महसूस नहीं करता, बल्कि उसके शरीर

के भीतर कही जस भविष्य की एक कुठा है। जो कुठा पहले से ही रहकर पकने लगी है। पकने लगती है कि फिर किसी दिन उसे इस छत पर से जमीन पर उतरना होगा। अपने शरीर के भीतर ही बाघारू इस मिट्टी ढंकन वाले, घरबार, खेत-खलिहान, सुपारी बागान, पेड-पौधों को ढककर बाढ के जल के साथ आत्मीयता का बोध किया और उस आत्मीयता बोध म ही जल के नीचे की मिट्टी से एक तरह की विच्छिन्नता उसके शरीर पर आ गयी।

जल मे बहना थमने ही, और यहां आकर अपन को बॉध लेने पर ही, बाघारू क शरीर को आभास करा दिया कि उसे भूख लगी ह। बाघारू को इस तरह की भूख का अभ्यास नहीं था। गयानाथ क घर पर जब उसे खाने को दिया जाता था, तब उसकी भूख का एक भाग मिट चुका होता था। पर यहाँ तो बाघारू का कोई भान न देगा। बाघारू इन सब पड-पाधो क शिखर की ओर देखने लगा -वहा से कुछ खान को मिल सकता ह या नही—देखने क लिये। एक सुपारी के पड म पक्के सुपारी थे, दूसर पड मे कच्चे सुपारी के गुच्छे लटके थ। पर बाघारू की भूख क्या इत्ती सी सुपारी स मिटेगी

133
जल की दशा और दिशा

रविवार का भोर होन-न होने पानी रधामाली-रायपुर चायबागान के बाँध स नजर आने लगा, दूर पार तिस्ता क एक क बाद एक गाव और बदर छोड़कर करीब मैनागुड़ी के आसपास पहुँच चुका था। मतलब दोमोहानी तब तक तकरीबन तिस्ता के बीचोबीच आ गयी थी। जलपाइगुडी शहर के कचहरी बाँध से दिख रहा था -तिस्ता उस बार्नेश बदर का छोड कर लेटरल गड के पास तक चली गयी थी। फिर तिस्ता के पूर्वी पार म बाकाली-पद्मनी स दिख रहा था—बूढी तिस्ता पथ-प्रणाली म घुस गयी है।

पूर्वी पार से पश्चिमी पार का या पश्चिमी तट से पूर्वी तट के तिस्ता को देखने का, या बाढ नापने का असली पैमाना है तिस्ता के बीच का कौन-कौन चर अदृश्य हो गया है—उसका हिसाब लगाना। नदी के एक पार से दूसरे पार का दृश्य तो साल भर देखते-देखते आदमी का जाना-पहचाना बन जाता है। दोमोहानी का पुराना डिस्टेंस सिगनल, निताई वाले का कोई बड़ा-सा पेड, जलपाईगुड़ी के कमिश्नर के घर क पीछे का अर्जुन का पेड़, बार्नेश के सामने वाला भामिनी वन का चर, कांशियाबाडी के निकट नदी के त्रिमुखी धारा के बीच-बीच में चिकमिक करते बालू के तमाम चर, आमतौर पर य सब ही नदी की सीमा-सरहद ठीक करते है। रविवार की सुबह सूरज उगने न ... रखा

गया—ये सब सीमा के निशान डूब गये हैं, जहाँ तक नज़र जाती थी वहाँ तक तिस्ता का गंदला पानी फैला हुआ था।

रात के अँधेरे में पानी आया और भोर को सूरज के प्रकाश में वह सबको नज़र आया हो ऐसा तो नहीं था। अभी तो शुक्ल पक्ष ही चल रहा है, इसी से रात में इतना अँधेरा नहीं था। पर वह जो बृहस्पतिवार से आकाश के मटमैले मेघ ने जल डॉंगर और तमाम दुनिया को ढँक दिया है, और तूफानी हवा और बारिश के साथ बहता जा रहा है—उसके भीतर से कितना प्रकाश छन कर आ सकता है ? फिर भी रात के अंतिम पहर में कुछ अस्वच्छता का भाव कट-सा गया। उसी अस्वच्छता में लग रहा था कि आकाश के भीतर भी तिस्ता की बाढ़ घुस गयी है। भोर होने के पहले वह धुँधला प्रकाश मिट गया था। चाँद के डूबने और सूरज के उगने के बीच कुछ समय के लिये अंधकार दूर रहा था। सूर्योदय के साथ वह दूरी तो एकबारगी कहीं नहीं, क्योंकि इस मटमैले आकाश की किसी तलहटी में सूरज उगा है यह जान पाना दूभर था। पर वह अंधकार कटते-न-कटते ही धीरे-धीरे जैसे समझ में आने लगा कि रात भर में भी तिस्ता का जल कुछ कम नहीं हुआ। फिर उजास थोड़ा स्पष्ट होने पर लगा कि पानी तट को पार कर ऊपर आ गया है। अपने किनारे पर तिस्ता के पानी को बढ़ते हुए देखकर आशा थी कि पानी इधर ही बढ़ रहा है, दूसरा यह कि पाट अब तक डूबा नहीं था। धुंधले प्रकाश के और थोड़ा बढ़ते-न-बढ़ते देखा गया था, शनिवार की शाम को हमेशा देखा जाता है कि पेड़-पौधे, झाड़ झंखाड़, डिस्टेंस सिग्नल, रेल, मोड़ एक-एक करके अदृश्य होते-होते तिस्ता के दूसरे किनारे को इस तरह से धो देते हैं कि उनमें से कुछ भी और भोर के उजास में नजर नहीं आता। जैसे कि रात के धुँधले प्रकाश में तिस्ता के दोनों पाट बाढ़ में बहते-बहते किसी नयी जगह पर आ पहुँचे हैं। नदी के बीच से उन दोनों नये किनारों को देखना पड़ रहा था। जैसे कि कोई भी अब नदी के एक पाट पर खड़ा नहीं हो—सबके आगे और पीछे नदी का दोनों किनारा है। प्रकाश के और थोड़ा बढ़ते ही पहले वाला भ्रम टूट जाता था और आँखों के हिसाब से तभी नाप-जोख करना पड़ता था कि तिस्ता किस तट पर कहाँ तक गयी है। रात के धुंधलके में तिस्ता के इस हमले में कहीं कुछ अविश्वसनीयता रह गयी थी, या फिर अपनी अप्रस्तुति के भीतर थी असहाय आत्मसमर्पण की अनिवार्यता—पर वह भी उजास के थोड़ा बढ़ते ही कट जाती थी। तभी समझ में आता था कि बृहस्पतिवार से ही आकाश जैसा था, रविवार की सुबह भी ठीक वैसा ही है। बृहस्पतिवार को बारिश जैसी थी, आज रविवार को भी बारिश ठीक वैसी ही है। और तभी दिन के उजास में यह हिसाब कठोर सत्य हो उठा था—फिर तो पानी उस बृहस्पतिवार से ही जैसा बढ़ रहा है, उसी तरह से बढ़ता ही रहेगा। तो क्या होगा ?

इस हिसाब-किताब का भी एक स्तर रहा है। तिस्ता अगर उस बृहस्पतिवार से ही इस हवा-बारिश के साथ एक ही वेग से बढ़ी होती तो भी विगत तीन दिनों का उसका बढ़ना और अब, आज रविवार तक उसके इस बढ़ने का अर्थ एक ही नहीं होता। बृहस्पतिवार से तिस्ता अपने निकास को भरते हुए बढ़ रही थी, फिर उस प्रणाली के छोटे-मोटे बहुत से चर जमीन को बहाकर आगे के चर को डुबो दे रहे थे। फिर कभी पूरब तो कभी पश्चिम के तटों पर थोड़ा-बहुत तोड़फोड़ होती। फिर शुक्रवार की रात से ही तो पुराने कायम चरों को डुबोना शुरू हो गया था। पर उसका भी कोई हिसाब बनता था। तिस्ता के जल के नीचे ढलान वाली ज़मीनों का हिसाब। उस हिसाब का कोई सिर-पैर नहीं था। क्योंकि किसे पता है कि कई साल बाद, कहाँ पहाड़ की रेत, पत्थर, मिट्टी जमा कर तिस्ता अपने निचले हिस्से को कितना ऊंचा कर ले ? या फिर पहाड़ की सुराखों में पानी जमा रहता है उन्हें तोड़-फोड़ कर तिस्ता के बरसाती पानी के अलावा बढ़ा हुआ जल कितना घुस गया है ? पर सिर-पैर न होने पर भी सब एक अंदाज़ा लगाना चाहते थे। इस अंदाज़ा का कल शनिवार की शाम तक कोई अर्थ था। यहाँ तक कि कल रात तक भी। तब तो कोई और यह नहीं देख पा रहा था कि तिस्ता सभी अंदाज़ को किस तरह से बहाये लिये जा रही है। पर आज रविवार भोर होते न होते ही, तिस्ता का जल इस नीले आकाश के तले, दिखने-न-दिखने समझ में आ गया कि तिस्ता और किसी हिसाब-किताब के दायरे में नहीं रही। किसी तरह के अंदाजा से यह समझा नहीं जा सकता था कि पानी किस तरह बढ़ेगा और किस तरह से उतरेगा। नदी फिलहाल दोनों तटबंधों से काफ़ी नीचे थी, बोल्डर के जालों से काफी दूर। बोल्डर के जालों के नीचे, तट पर, हालाँकि पानी पहुंच गया था, फिर भी यह तो समझ में ही आता था कि वह स्रोत के धक्के से आया हुआ जल था। यह जगह अब तक खास बाढ़ के जल से भरी नहीं थी। पर बाढ़ का जल प्रवेश करने के लिये तो अभी यही जगह बाकी थी। तट की इन जगहों में अगर पानी घुस जाये तो अब बाक़ी रह जायेगा बोल्डर का जाल। इन बंधे पत्थरों के साथ अब स्रोत को धक्का लगना शुरू हो जायेगा। पर उसके पहले तो कहीं, किसी निचले तट पर बाढ़ का जल घुसकर बोल्डर के सुराखों से होकर बाँध के जड़ तक पहुँचा जा सकता है। ये इतने पानी के स्रोत कहीं अगर बाँध के किसी अंश को तोड़ दें तो फिर उस बाँध को बचा पाना किसी के वश की बात नहीं। ऐसा हुआ था सन् अड़सठ में। उस रविवार की सुबह तिस्ता के ऊपर अड़सठ की याद ताज़ा हो उठी थी।

तिस्ता के इस जलप्रांत में अब कहीं कुछ भी खड़ा नहीं था, बचा नहीं था। तिस्ता ने अपने आस-पास के निशानों को उखाड़ फेंका था, फ़िलहाल सब

तिस्ता का हिस्सा हो चुकी है। घर के छत, पेड़, सब कुछ बहे जा रहे थे। कुचडीपाना (जलकुंभी) के पेड की तरह हरियाली का आभास देकर मटमैले पानी में बह जाते थे जंगल के पेड़। तिस्ता ऊपर कहीं किसी जंगल के भीतर घुस गयी थी। तो क्या तिस्ता को कोई नया सुराख मिल गया है ? और उधर से होकर यह पानी काफ़ी बह जा सकता है ? तो फिर पानी यहाँ के तट को नहीं तोड़ सकता है ? या फिर ऊपर से तिस्ता सब उखाड़ और तहस-नहस कर आ रही थी ? कल शाम तक तो जल ने जंगल के पेड नजर नहीं आ रहे थे। रात में कब शुरू हुई—इस जंगल की तबाही ?

134

कमल में कामिनी दर्शन जैसा चलता है बाघारू दर्शन

ऐसी हालत में रायपुर-रधामाली बाँध के ऊपर से देखा गया कि निनाइयों के घर की एक टीन की छत पर एक आदमी इधर मुँह किये बैठा हुआ है। यह छत अश्विनी राय के घर की ही थी। बाघारू अपने पेडों का बेड़ा लेकर जब इस घर में घुसा था, तब उस पर किसी की नजर नहीं पड़ी थी। पड़ने की बात भी नहीं थी। सुबह से ही तो नदी के बीच में जंगल के कितने सारे पेड बहते आ रहे थे। बाघारू अपने पेडों के भीतर जिस तरह से मचान पर बैठा हुआ था, पेडों को लेकर जिस तरह से घर में घुसा, सुपारी के पेड से जिस तरह से पेड़ों को बाँधा—वह सब इस रायपुर-रधामाली के बाँध पर से दिखायी देता था। पर कोई भी तो यह सोचकर इधर देख नहीं रहा था। बल्कि तिस्ता और कितनी नयी-नयी जगहों पर फैल रही है, वह सब जांचना सबके लिये ज़रूरी था। पर वह आदमी जब अश्विनी राय के घर की छत पर बैठकर इधर ही देखने लगा, तब उसके और बाँध के बीच कोई बाधा न थी। उसे देखना ही पड़ा—इस बाँध पर रहने वाले सभी को एक ही साथ देखना पड़ा। और देखते ही कोई चिल्ला उठा, "आदमी बहा जा रहा है, आदमी बहा जा रहा है।"

यह बात भयानक थी। तिस्ता अपने पाट के जंगल को उखाड़कर ला रही थी—यह तो समझ में आता ही था। कितनी सारी जगहों पर तिस्ता और जंगल एक-दूसरे से सटे हुए हैं, आसपास रहे हैं। वहाँ जंगल के एक-दो ब्लॉक तो वैसे ही बह आ सकते थे। पर पेड नहीं, आदमी बहता आ रहा था, मतलब कल रात सबके अनजाने में तिस्ता गाँव में घुस गयी थी, बस्ती बहा ले गयी है। माने, ऊपर कहीं अड़सठ घट गया है। निश्चित रूप से ऐसा कहीं कुछ घट चुका है। जहाँ के लोगों ने ऐसा होने के बारे में सोचा तक नहीं था। न हो तो आदमी बहते कैसे ? पर आँखों के सामने तो यह नजर आ रहा था, कि आपादमस्तक

एक आदमी तिस्ता के जल में बहते हुए आकर अश्विनी राय की छत पर बैठ गया।

बाँध के लोग बाघारू की ओर से आँखें हटाकर तिस्ता के साथ उत्तर की ओर देखने लगे कि कहीं कोई और तो बहकर नहीं आ रहा है? आदमी बहने लगे तो सिर्फ एक आदमी ही नहीं बह सकता। पर इसे भी तो बहते देखा नहीं गया था, एकदम से अश्विनी राय की छत पर ही नजर आया था।
शायद वैसे ही बाक़ी लोग भी तभी नजर आयें जब वे ऐसे किसी पेड़ के शिखर पर या छत पर नजर चढ़ जायें।

पर इस बीच बच्चों में से एक चीख उठा, "वह देखो, एक ठो आउर बहता आ रहा है।"

"कहाँ, कहाँ?"

निताई चिल्ला उठा, "किया देख लिया रे? किया देखा है? दिखा।"

जगदीश बारुइ अपने सिर के ऊपर बायें हाथ की आड़ लेकर बोला, "किया देखा रे? कउन आदमी देखा, लड़का कि लड़की?"

जगदीश की बात से कई लोग हँस पड़े।- उनमें से एक बोला, "अरे, हमारे मानाबाड़ी का ऊ जनानी तो वहीं आ रही है। अब सँभालो जाकर।"

जगदीश को गुस्सा जताने का समय नहीं मिल पाया, पर उसकी मानियाबिद वाली आँख निश्चिनतता के साथ उसे देखना चाहती थी। निताई फिर से चिल्लाया, "किया देखा रे? दिखा।"

बच्चों में से कोई एक बोल उठा, "अरे ऊ देखो, ऊ देखो। बीच में दीख रहा है। इसी तरफ, इधर ही।" हाथ से उसने इशारा किया।

सभी चुपचाप उसे ढूँढ निकालना चाहते थे। एक आदमी तो बोला भी, "हाँ-हाँ। बीच में डूब-उतरा रहा है कोइ। डूब रहा है और निकल रहा है, बह रहा है।"

नरेश पीछे से बोला, "अरे, कुछ सुझायी नहीं दे रहा। आउर तू एकबारगी डूबने, निकलते, बहते, तैरते देख लिया?"

निताइ अचानक हाथ उठाकर बोला, "रुको, रुको, अरे कऊन डूबता-बहता है रे? इ जो बहा जा रहा है वही?" निताइ ने हाथ बढ़ाकर नदी के भीतर एक जगह पर दिखाकर पूछा।

एक अनिर्दिष्ट गले से अनिश्चित जवाब आया, "वो तो, वहीं।"

निताई ने और ज़ोर देकर अपने संदेह को जाहिर किया, "वही?"

अबकी किसी ने कोई जवाब नहीं दिया। निताई कुछ देर बाद बोला, "आदमी नहीं, लकड़ी है लकड़ी।" पर निताई की बातों में कोई ज़ोर न था। कहने के बावजूद भी वह एकटक देखे जा रहा था और जो देख रहा था, उसके

नज़र से परे चले जाते ही वह बोला, "लकड़ी ही तो लगा था। तुझे किया आदमी लगा रे ?"

निताई किससे कह रहा था, यह उसे ही पता नहीं था। पर उसने फिर से नदी में नज़र डाली कि कोई सचमुच बह तो नहीं रहा। निताई जहाँ था, वहीं खड़ा रहा।

नरेश पीछे था। यह कुछ देख नहीं पाया। न ही कुछ संदेह जाहिर कर पाया। वह अचानक पीछे से निताई को बुलाकर बोला, "ऐ निताई ! अश्विनी दा की छत पर जो बैठा है, वह आदमी है, या लड़की है ?"

तभी सबने बाघारू की ओर फिर से देखा। बाँध से बच्चे चिल्ला-चिल्ला कर हाथ हिलाने लगे। पर बाघारू ने इसका कोई जवाब नही दिया। बच्चे और ज़ोर से चिल्लाने लगे। इस पर भी बाघारू ने कोई जवाब नहीं दिया। हाथ भी नहीं हिलाया। अमूल्य ने धमकी दी, "चीखो मत, रुको। साला पास के आदमी की बात सुनायी नहीं देता अइसा हवा चल रहा है। और ये साले चिल्लाने लगे हैं यहाँ से।" फिर धीमे से पुकारा, "निताई दा !"

अमूल्य की आवाज़ सुनकर निताई ने पहले पीछे मुड़कर देखा, फिर वहाँ से अमूल्य नरेश के पास चला आया।

अमूल्य ने जगदीश को बुलाया, "साहा।"

"क्या कह रहे हो ?" कहता हुआ जगदीश भी आगे आ गया। "रमणी सरकार को बुलाओ।"

"अरे, रहो तो। कुछ का कुछ नहीं, इसमें बुलाने-वुलाने का क्या है ?"

"आप इधर आइए ना इधर। क्या कह रहे हो अमूल्य ?"

अमूल्य बोला, "अरे कहना क्या निताई दा, डिप्टी कमिश्नर को एक फ़ोन कर दो रायपुर बागान से।"

"क्या कहूँगा ?"

"अजीब आदमी हो, इहाँ देख रहे हो कि तिस्ता से आदमी बहकर घर की छत पर बइठा हुआ है।"

निताई थोड़ी देर सोचता रहा। नरेश बोला, "जा निताई फ़ोन कर आ, आदमी तो सचमुच ही बैठा है।"

जगदीश बारुई ने कपड़े की गाँठ से दो बीड़ी निकाल ली, एक निताई को देकर बोला, "जाकर कर ही दे फ़ोन।"

निताई बीड़ी लेकर चुपचाप पीने लगा। अमूल्य बोला, "सोच क्या रहे हो निताई दा ?"

निताई के चेहरे की ओर देखकर नरेश अंदाज़ा लगाना चाहता था कि निताई क्या सोच रहा है।

"कुछ नहीं, दरअसल बात क्या है कि मैं सोच रहा था कि अभी भोला को साथ लेकर साईकिल से"—निताई को साईकिल चलाना नहीं आता, भोला उसको बुलाकर ले जायेगा—"शहर में जाना रीलिफ़ के लिये। इतने सारे लोगों का खाना भी तो चाहिये। अभी अगर डिप्टी कमिश्नर से फ़ोन करके कहूँ कि ऊपर से लोग बहते आ रहे हैं, तो रिलीफ़ की बात वह सुनेंगे कहाँ ? सब तो तभी रेस्कू में लग जायेंगे। हमें अभी बाढ़ में बहते लोगों को ढूँढ़ना है या अपने लिये चावल-गेहूँ-दाल-चीउड़ा का बंदोबस्त करना है ?" निताई बीड़ी का कश लगाते हुए बोला।

"पर एक आदमी तो बहता ही आया है ?" जगदीश ने मन-ही-मन अपने-आप से कहा।

"वह तो एक ही आदमी है न सिर्फ़ ? पता नहीं, कहां से वह आया है ?" निताई युक्ति तलाशने लगा।

135

बाघारू का कमल से कामिनी जैसा अन्तर्धान हो जाना

आख़िर में समझ में आ गया कि समस्या इतनी कठिन नहीं है। तय हुआ कि भोला को लेकर निताई जिस तरह से सोचा था, वैसे ही रिलीफ़ की तलाश में जलपाईगुड़ी जायेगा। यहां से उसे पार्टी ऑफिस में जाना होगा। वहां से पार्टी के किसी नेता को साथ लेकर वहां जाने से रिलीफ़ की व्यवस्था होगी। उस ऑफिसर के पास जायेगा। आज रविवार है—रिलीफ़ कह देने भर से ही तो उसकी व्यवस्था हो नहीं जायेगी। चावल, दाल, चीउड़ा, गुड़ का बंदोबस्त करना होगा। बारिश और बाढ़ को देखकर व्यापारी लोग सब गोदामों में छुपा भी सकते हैं। फिर सरकार रिलीफ़ की घोषणा करती है कि नहीं वह भी देखना है। कांग्रेस की सरकार होती तो जुलूस लेकर घेराव किया जा सकता था। पर अब तो जो भी करना होगा, देखभाल कर क़दम बढ़ाना होगा। रिलीफ़ एक बार देना शुरू हो जाये तो सब जगह देना पड़ेगा। शहर में जाने से बाढ़ की ख़बर, डिटेल या ब्यौरा अवश्य मिल सकता है। तो फिर निताई शहर ही जाये—आज न हो तो कल रिलीफ़ अवश्य मिलेगा।

निताई के घर के जो लोग इस बांध पर आये थे, वे पहले से सावधानी बरतने के कारण ही यहाँ पर आ पाये थे। बाढ़ आने से पहले वे सब कुछ लेकर यहां आ गये थे—इससे हालत कोई इतनी बुरी नहीं हुई कि सरकारी रिलीफ़ के बग़ैर लोग भूखे मर जायें। जिसकी जो दुनिया थी अब बांध के ऊपर वह दुनिया बहाल थी। सुबह से ही बाँध के पश्चिमी दिशा वाले तंबू में हवा से आग को

बचाते हुए पकाने का कामकाज शुरू हो चुका था। फिर भी बाढ़ होने पर बाँध में आना पड़ता था। बाँध में आने पर रिलीफ़ की आवश्यकता थी। जितने दिन के लिये रिलीफ़ मिलता था उतने दिनों का फ़ायदा ही रहता।

पर उस अनिर्दिष्ट रिलीफ़ की बनिस्बत आँख के सामने अश्विनी राय की छत पर बैठा आदमी कहीं अधिक निकट था। उसको पहली बार देखते ही नदी के बहाव में और लोगों को ढूँढ़ने का जो काम शुरू हुआ था, अब उसे लेकर कोई व्यस्तता नहीं थी। कम-से-कम एक आदमी ही भले क्यों न हो, सारी रात बाढ़ में बहता आकर इस छत पर चढ़कर बैठा हुआ था। तो इसका मतलब तो यही हो सकता था कि ऊपर में कहीं एक बड़े किस्म का तोड़-फोड़ हुआ होगा। वह बात इस आदमी से मालूम करना जरूरी था। सो दो आदमियों को साइकिल से रायपुर बागान के मैनेजर बाबू के पास भेज दिया गया। मैनेजर बाबू जहाँ-जहाँ फ़ोन करना ज़रूरी होगा, वहाँ-वहाँ फोन करके बता देंगे कि रायपुर के सामने वाले बाँध के उल्टी दिशा वाले चर में एक आदमी, एक जीता जागता आदमी बह आया है और एक टीन की छत पर बैठा हुआ है। उसे अभी फौरन 'रेस्क्' किया जाना चाहिये। मैनेजर बाबू ही बेहतर समझ सकते हैं कि इतवार के दिन वहाँ फ़ोन करने पर क्या काम हो सकता है।

बाघारू को लेकर जिस समय बाँध पर इस तरह की बातें हो रही थीं, तब वहाँ इस बाँध के सामने एक बड़ा-सा दृश्य बन गया था। बाँध के लोगों के सामने बाढ़ को नापने के अलावा बाघारू को देखना ही एक बड़ा आकर्षण हो उठा था। तिस्ता पर से होते हुए किस तरह की बाढ़ फिर से आयेगी। तिस्ता का जल देखकर वह जितना समझा जा सकता है, उससे अधिक बाघारू को देखकर ही समझा जा सकता था।

बाँध पर से बाघारू जितना साफ़ नजर आ रहा था, नदी के भीतर छत के ऊपर से बाघारू उतनी स्पष्टता के साथ बाँध को देख नहीं पा रहा था। बाघारू के लिये बाँध एक बड़ा-सा दृश्य था—जिस तरह से तिस्ता भी एक बड़ा दृश्य था। वहाँ पर बाघारू को तो वैसे कुछ खास नज़र नहीं आ रहा था। इतने सारे लोगों की भीड़भाड़, कुछ रंग, बाघारू देख ही पा रहा था, पर उसके बदले बाँध के लोग भी बाघारू को साफतौर पर देख पा रहे थे।

इसी में बाघारू जब छत पर से उठकर सुपारी के पेड़ पर चढ़ने लगा, तभी अश्विनी राय ने अपने मन-ही-मन कहा, "गया, गया, मेरा तमाम सुपारी का बाग गया।" अश्विनी राय ने चीखकर नहीं कहा, पर यही एक बात वह घूम-घूमकर सबसे कहता जा रहा था, वह खुद अच्छी तरह से देख भी नहीं पा रहा था। बाँध के दूसरे सभी लोग तब इस वैचित्र दृश्य से उत्तेजित हो उठे थे कि जो आदमी बाढ़ की इस नदी के बीच एक टुकड़ा छत पर से सुपारी के

पेड़ के ऊपर चढ़ गया है वह और उतर नहीं रहा। इस उत्तेजना के बीच किसी ने अश्विनी राय को धमकाया, "तुम्हारा सुपारी बागान बाढ़ में बह गया है या यह आदमी खा गया है ?" इसी एक धमकी से अश्विनी राय चुप हो गया।

पर वह आदमी छत पर से सुपारी के पेड़ पर चढ़ा ही किसलिये ? और अगर चढ़ा भी तो फिर वापस क्यों नहीं आ रहा ? बाघारू छत के साथ सटे सुपारी के पेड़ से पास वाले दूसरे सुपारी के पेड़ को पकड़कर वहाँ से अपने पेड़ के मचान पर चला गया था। रविवार की भरी दोपहरी में तूफान-बारिश का अंधकार नदी के ऊपर आकाश को ढक बांध को इतने लोगों ने साफ साफ देखा कि अश्विनी राय की छत पर एक आदमी बैठा हुआ है घूम फिर रहा है, उसके बाद एक सुपारी के पेड़ पर चढ़ गया है, फिर उतरा ही नहीं। सुपारी के पेड़ के ऊपर कोई बैठा रह नहीं सकता। फिर टीन की छत पर इतनी चौड़ी जगह होने पर भी अचानक वह सुपारी के पेड़ पर चढ़ने क्यों जायेगा और अगर वह किसी कारण से चला भी गया तो फिर वापस क्यों नहीं आता ? बांध पर से देखा गया कि तीस्ता नाचता एक आदमी बहता हुआ गया था जाकर टीन की छत पर चढ़ा। वहाँ काफी देर तक बैठा रहा। फिर सुपारी के पेड़ पर जाकर गायब हो गया।

सुपारी के पेड़ से बाघारू के उतर आने के समय तक सब हिसाब से बाहर हो गया, और भारत के भाग तिस्ता का जलप्रवाह नये रंग से फैलता हुआ लगा। नर्द पिछले कई दिनों से चलती यह तूफानी हवा मिट्टी के पास समानान्तर बारिश और मटमैले आकाश के मध्य जैसे एक नये अर्थ का संचार करने लगा। यह हवा, तूफान और बारिश जिस तरह से चल रहे हैं वैसे ही चलेंगे—कहीं भी उसकी कोई विपरीत संभावना नजर नहीं आ रही। जो पानी नदी में होकर बहता आ रहा है, उसका भी कहीं रुकना नहीं। जैसे कि अनन्तकाल से ही यह जल बहता आ रहा है और बहता जायेगा। प्रतिदिन जिस नक्शे के अंदर यह नदी बहती रही थी, वह नक्शा अब इस तरह से बदल गया है कि अब किसी भी बदलाव को पहचाना नहीं जा रहा है। अब रात होने के लिये सिर्फ कुछेक घंटे बचे हैं। फिर रात होगी। उस रात भी यह तूफान चलेगा, हवा पानी बराबर रहेगा, नदी का यह पानी बढ़ता रहेगा। पर एक आदमी को सामने डूबे हुए घर में एक छत पर देखा गया। फिर सुपारी के पेड़ पर चढ़ जाने के बाद वह उतरा ही नहीं—इस तरह की एक घटना को स्वीकार कर लेना पड़ रहा है। इतने सारे लोगों को एक साथ मान लेना पड़ रहा है ? तिस्ता के इस तरह के बाढ़ में कहीं किसी पेड़ के शिखर पर अकेले ही बचते-बचाते कोई कभी इस तरह का देख ही सकता है। पर यहाँ, रात भर जागकर रेडियो सुनकर फोन करके, पहाड़ के पानी का हिसाब लगाकर, घर के लोग बाँध पर गाय-बछड़े घर-संसार लेकर आ गये हैं,

उन सबके लिये तो यह स्वीकार कर पाना कष्टदायक है, क्योंकि इस तरह की एक घटना को स्वीकार कर लेने का मतलब होगा कि यह बाढ़ स्वाभाविक बाढ नहीं है। यह तिस्ता भी रोज़ वाली तिस्ता नहीं है—कोई दैवी खेल चल रहा हे इस बाढ़ मे, इस जल में, इस हवा-तूफान में। जो आदमी ऑखों के सामने इस टीन की छत के ऊपर था, वह टीन की छत पर से गायब हो जायेगा –इस तरह की घटनाएँ देखने पर भी माना नहीं जा सकता।

बाघारू का अंतर्धान होना फिलहाल बाँध पर रहने वाले लोगों का मुख्य चर्चा का विषय था। और देखते-ही-देखते ही इस तरह के लोगों की तादाद बहुत ज़्यादा हो गयी थी जिन्होंने बाघारू को चाल पर देखा नहीं था। वे बार-बार पूछ रहे थे, "तुमने देखा तो था न ? आदमी ही था न, दूसरा कुछ तो नहीं ?"

136

फ़ोन पर बाघारू उद्धार का आह्वान

करीब दिन के ढाई बजे बांध की भीड़ एक छोटे-मोटे हाट की भीड जमी हो गयी।

रायपुर बागान के बाबू लोग, बाबुओं के घर की औरतें, चाय बागान के कुली-मज़दूर, रंधामाली हाट के दुकानदार, बाढ देखने के लिये झुंड बनाकर यहाँ पहुँचने लगे थे।

तिस्ता देखने के लिये वे इतनी दूर न भी आते तो चलता। यहा तक कि रायपुर बागान से उत्तर मे बाँध के किसी जगह पर जाकर भी तिस्ता के बाढ को देखा जा सकता था। फिर हाट वाले तो बाँध के पार ही रहते है। पर यहाँ आने से तिस्ता की बाढ़ और उस बाढ़ के शिकार चर के इन लोगो को एक साथ देखा जा सकता था—नदी के पार रहने वाले इन लोगों को यह बहुत पहले से ही पता लग चुका था कि हर साल बाढ़ मे रायपुर की उल्टी दिशा का यह चर सिर्फ़ बह जाता है इतना ही नहीं—कौन-सा चर डूबता है, कौन-सा नहीं डूबता है, वह तिस्ता का पानी किधर से होकर जाता है—इस पर निर्भर करता हे। पर अगर तिस्ता पश्चिम पाट होकर ही बहे, तो फिर यह चर डूबेगा और इस चर के लोगबाग इस बाँध पर आश्रय लेंगे यह जानी-मानी बात थी।

जानी-मानी बात होने पर भी तो हर समय जाना नहीं जा सकता।

आज सुबह बाँध पर से दो लड़के साईकिल से जाकर रायपुर बागान में ख़बर कर आये थे कि तिस्ता की बाढ़ में अब जीते-जागते आदमी भी बहकर आने लगे हैं। यहाँ आकर वे डूबे हुए चर के पेड़-पौधों और टीन की छत पर रुके हुए हैं, इनको 'रेस्कू' करने के लिये मिलीटरी की नाव लायी जाये। उसके

लिये शहर में डीसी को फ़ोन कर दिया गया। रायपुर बगान इन लोगों के लिये अपरिचित नहीं थी। रंधामाली के हाट में इन बाबुओं के साथ बहुतों की भेंट हो चुकी थी। वे कुछ-कुछ पहचान भी गये थे एक दूसरे को। इससे जब इन्होंने जाकर ख़बर दी तो कुछ बाबू लोगों ने इनसे पूछा कि उनका चर कब डूबा, वे कब बाँध पर आये, कब से वे लोगों को बहकर आते हुए देख रहे हैं ? यह घटना जान लेना चाहते थे बाबू लोग। बाढ़ की तरह यह भी एक बड़ी घटना थी। अगर उनकी आखों की आड में कुछ घटित हो जाये तो कम-से-कम इन लड़कों के मुँह से उसका कुछ प्रत्यक्षदर्शी विवरण सुन लेना चाहिये।

पर रायपुर बागान में अमूल्य के मुहल्ले के सुबल और छिदाम गये थे। जिस कारण से भी हो, उन दोनों में से कोई भी उसका विशद विवरण देना नहीं चाहता था। सुबल और छिदाम के बदले अगर और कोई होता तो बाबुओं के इतने सारे सवालों के जवाब में सविस्तार कहानी ही सुना बैठता। सुबल, छिदाम ऐसी कहानी सुना नहीं सकते, ऐसी बात नहीं थी। पर अपने चर, घर छोड़कर, खुले बाँध के ऊपर उनकी एक रात बीत चुकी थी, बस एक ही रात। आज हवा और नदी का जो चेहरा था, उससे कितनी रातें उन्हें यहाँ और बितानी पड़ेंगी, उन्हें पता नहीं। इस जल और हवा से लगातार जूझते हुए सबका शरीर टूट चुका था। जिस बाढ़ के घेरे में वे थे, उस बाढ़ के विषय में बात करते हुए उन्हें अच्छा नहीं लग रहा था। फिर सुबल और छिदाम की जो उम्र थी, [illegible] पर उनके करने के लिये और कुछ न था। बस खाली बैठे-बैठे ही समय बिताना था। रिलीफ़-विलीफ़ करने के लिये निताई काका आदि तो थे ही। गाय-बछड़े भी बँधे हुए थे। इसी से वे रायपुर बागान से ही साइकिल पर शहर जाकर नून-शो का एक पिक्चर देखकर शाम को बाँध पर वापस आ जायेंगे। डी. सी. को फोन करने की बात भर ही वह बतलाना चाहते थे—इससे अधिक बात में पड़ना वे नहीं चाहते थे। बाबुओ के प्रश्न का 'हूँ-हाँ' जवाब देकर वे साइकिल पर सवार होने की मुद्रा बनाते। पर साइकिल पर सवार होने से पहले बाबुओं को फिर से एक बार चेता देत कि, "फोन कर देंगे बाबू, मिलीटरी नाव भेजा जाये।"

फलतः सुबल, छिदाम के चले जाने के बाद बाबुओं की जुबानी यह बात बागान भर में फैल गयी। बागान के कुली-मजदूरों के पास भी कुछ-कुछ खबर पहुँच गयी थी। दोपहर में बाबू लोगों के खाना खाने जाने पर उनके घर पर भी खबर पहुँच गयी। चर के लोग बाँध पर आ गये थे। रायपुर बागान के लोगों के लिये यह अब कोई ख़बर नहीं रही। पर वही बाढ़ के शिकार लोग आकर ख़बर दे गये थे कि तिस्ता में एक आदमी बहता आया है—यह सबसे बड़ी एक ख़बर थी। कितने लोग, कहाँ से बहे, कहाँ पर रुके, मिलीटरी की नाव कब

आयेगी—इसका कुछ भी पता न होने से कौतूहल और बढ़ गया था। इनमें से अधिकांश ने तो रेडियो पर बाढ़ में मिलीटरी सहायता की बात सुनी थी। दूसरी जगहों पर बाढ़ की खबर टीवी में देखी थी पर उनके ही बांध से मिलीटरी की नाव छोड़ी जायेगी—यह जैसे उनके लिये अविश्वसनीय था। किसी-किसी के मन में यह भी आशा जगती थी कि मिलीटरी जब आयेगी तो टीवी पर वह दिखाया नहीं जायेगा ? टीवी में दिखाया न गया तो क्या मिलीटरी आयेगी ? बस सीधे उनके बाँध पर से ही मिलीटरी जायेगी और वह फिर उनके ही टी. वी. पर दिखाया जायेगा—इस तरह एक असंभव, संभव हो सकता है सोचकर दोपहर का खाना किसी प्रकार खत्म करके रायपुर बागान के बाबू लोग, मालकिन, बच्चे लोग बाँध पर आ पहुँचे।

बाँध की ओर आते-आते रघु घोष ने एक बार मेनेजर के बँगले पर हाँक लगायी, "क्यों मैनेजर बाबू, कुछ पता चला क्या, मिलीटरी की नाव कब आयेगी ?"

मैनेजर बाबू खा-पीकर सोये हुए थे। वह खिड़की के पर्दे को थोड़ा सा हटाकर गर्दन थोड़ा उठाकर बोले, "क्यों, तुम भी जा रहे हो क्या बाँध पर ?"

"और करूँ भी क्या ? सभी जा रहे हैं। तुम नहीं जाओगे ?"

"तुम चलो। मैं थोड़ा आराम करने के बाद आ रहा हूँ।"

"तो एक फ़ोन मार देना ज्योति दा को, मिलीटरी कब आयेगी, पता कर लेना।"

मैनेजर ने पर्दा छोड़ दिया। रायपुर चाय कंपनी का ऑफिस जलपाईगुड़ी शहर में था। तभी मैनेजर बाबू ने अपने सेक्रेटरी को ही फ़ोन कर दिया था खबर कर देने के लिये। उसके बाद से उन्होंने कोई खबर नहीं ली थी। फिर उनका खबर लेना भी क्या ? अभी अगर ज्योति बाबू को फ़ोन किया जाये तो पता लग सकता है कि क्या किया गया है।

मैनेजर बाबू ने पर्दा उठाकर कहा, "ऐ रघु, ज्योति बाबू ने एक फ़ोन नंबर दिया है। 'मोबाइल-सिविल इमरजेंसी का नंबर' उनसे जानना होगा कि वह कब आ रही है। तुम आकर खुद फ़ोन करके देखो भाई।"

"करो न फ़ोन।" रघु घोष रास्ते पर से ही बोला।

"यह सब मिलीटरी-विलीटरी की बात है भाई। तुम्हें करना हो तो करो, नहीं तो छोड़ो। लोग बहते हैं तो बहें।" मैनेजर बाबू खिड़की का पर्दा छोड़कर फिर से सो गये।

"आपसे और क्या हो सकता है भला, एक फ़ोन करने के लिये इतनी डर ?" कहते-कहते रघु घोष मैनेजर के बंगले के बगीचे के गेट को ठेलकर अंदर आ गया। दरवाज़ा खुला ही था। फूल के बगीचे से बरामदे में आ, पर्दा उठाकर

घर में घुस गया रघु घोष। मैनेजर बाबू जिस कुर्सी पर सोये थे, उसके पास ही टेबिल पर फोन था। मैनेजर बाबू की कुर्सी पर रघु घोष के बैठते ही मैनेजर बाबू ने कहा, "करो। देखो क्या कहता है। आज रविवार है, देखना मिलीटरी भी नहीं, पुलिस भी नहीं।"

रघु घोष को लाइन मिल गया—"हल्लो, हाँ सुनिये, मैं रायपुर के चाय बागान से बोल रहा हूँ। हाँ... और हाँ" बोलते-बोलते रघु घोष चुप हो गया। मैनेजर बाबू आँख के ऊपर हाथ रखकर देख रहे थे। रघु घोष बोला, "अच्छा तो आप लोग आधे घंटे के अंदर पहुँच जायेंगे?" रघु घोष ने और कुछ सुना, 'अच्छा' कहकर फोन रख दिया। फिर बोला "अरे उठो, उठो। आधे घंटे में मिलीटरी ही नाव पहुँच रही है। थोड़ी देर। उन्होंने तो ने फिर से फोन किया था।"
मैनेजर बाबू ने कहा "[illegible] तुम तो जा ही रहे हो।"

रघु घोष [illegible], इसको लेकर और कुछ किया नहीं जा सकता।

मैनेजर बाबू [illegible]। धोती तो पहने ही थे। उन्होंने अलगनी से सफेद कुर्ता और [illegible]। [illegible] खोलकर रबर की चप्पल पहन कर छाता हाथ में ले लिया। [illegible] निकलते-निकलते मैनेजर बाबू बोले "[illegible] रघु ये मिलीटरी आकर अगर पूछें कि किसने खबर दिया था, क्या हुआ है, यह सब भाई तुम्हीं सँभालना।"

'हाँ-हाँ' करके [illegible] रघु घोष बोला, "अरे अच्छा अच्छा ठीक है, चलिये।"

मैनेजर बाबू को लेकर रघु घोष जब बाँध पर पहुँचा तब तक बाँध पर काफी भीड़ बढ़ चुकी थी। रघु घोष बाँध पर चढ़कर अपने बागान के ग्रुप की तलाश करने लगा। उधर मैनेजर बाबू को देखकर हाट के एक-दो लोग उन्हें नमस्ते करके आगे बढ़ गये। रघु घोष ने कहा "बस आने के पहले ही फोन कर आया हूँ। आधे घंटे में मिलीटरी नाव लेकर पहुँच जायेगी। अब तक शहर से रवाना हो चुकी होगी।"

रायपुर के गोदाम बाबू पहले से ही आकर पहुँच गये थे। वे इन्हें देखकर पास आते आते बोले "अरे अब रेस्क्यू करोगे किसे? जो आदमी बहकर आया था वह कुछ समय पहले एक सुपारी के पेड़ पर चढ़कर कहीं हवा हो गया।"

"मतलब? फिर वह गया कहाँ?" रघु घोष ने पूछा।

"यह तो देख रहे हो न, यह जो टीन की छत डूबी हुई है", गोदाम बाबू ने हाथ से इशारा करके ओश्लनो राय की छत को दिखाया, "वहाँ शायद कोई बहता हुआ आकर अटका था। यह सबने देखा था" गोदाम बाबू काफी जोर-जोर

से बातें कर रहे थे, इससे उनके चारों ओर भीड़ जुट गयी थी। फिर यहाँ इस भीड़ में अब रायपुर के मैनेजर बाबू, गोदाम बाबू, फैक्ट्री बाबू (रघु घोष) सबसे ख़ास व्यक्ति थे। रायपुर के एक मज़दूर ने आकर मैनेजर बाबू के हाथ से छाता लेकर उनके सिर पर तान दिया। गोदाम बाबू ने कहा, "फिर वह आदमी एक सुपारी के पेड़ पर अचानक चढ़ गया। सबने देखा था उसे। पर सुपारी पेड़ से वह फिर उतरा नहीं। फिर उतरता भी तो कहाँ ?"

"सुपारी का पेड़ तो फिसलन से भरा है। गिर तो नहीं गया पेड़ से ?" मैनेजर बाबू ने कहा।

"गिर जाता तो कोई देखता नहीं ?" गोदाम बाबू ने सवाल किया।

"तो फिर क्या आदमी हवा हो गया ?" रघु घोष ने फिर से सवाल किया।

137

बाढ़ की उपकथा

"वाह ! मैं क्या कहूँ ? मैंने तो देखा नहीं, पर ये सब तो यहाँ एक ही बात कह रहे हैं।" गोदाम बाबू ने दायें हाथ की ओर दिखाया।

"चलिये तो देखते हैं" रघु घोष ने उधर पैर बढ़ाकर मैनेजर बाबू की ओर घूमकर देखा। मैनेजर बाबू बात कर रहे थे। हाथ के इशारे से रघु को आगे बढ़ने के लिये कहा। रघु घोष और गोदाम बाबू भी भीड़ से बढ़कर आगे निकल आये। भीड़ में से कई लोग उनके पीछे हो लिये। कोई-कोई मैनेजर बाबू को घेर कर खड़े रहे।

गोदाम बाबू के पीछे-पीछे जाकर रघु घोष जहाँ खड़ा था वहीं से बाढ़ग्रस्त लोगों का अस्थायी आवास शुरू हो गया था। इस बीच बाढ़ग्रस्त लोगों की अलग से पहचान हो गयी थी। उनमें से अधिकांश बच्चे-कच्चे लेकर एक-एक जगह पर डेरा जमाए हुए थे। चौबीस घंटे से ऊपर हो गया था उन्हें हवा पानी का सामना करते-करते, यह उन्हें देखते ही पता चल जाता था। हवा के थपेड़ों से बचने के लिये कोई ओट या उड़गन नहीं था। पर इस बीच बड़े-बड़े बोल्डरों के पास पत्थर की ओट में बहुत-से लोग अपने को हवा-पानी की मार से बचाने की कोशिश कर रहे थे। फिर और कोई-कोई अपनी चीज़ों को एक जगह जमा करके उसकी ओट में हवा और पानी से शरीर के किसी-न-किसी भाग को बचाने में लगे थे। कोई माथा बचा रहा था तो कोई और कोई भाग। पास ही मवेशी खड़े थे या बैठे थे। उनका शरीर भीगकर लथपथ हो गया था। गोबर की गंध से हवा बोझिल हो गयी थी। एक बूढ़ी तख्ते पर चित्त होकर सोई हुई थी, उसके माथे पर एक टोकरी ढकी थी—बारिश से बचाव के लिये।

रघु घोष और गोदाम बाबू जहां आकर खड़े हुए थे, वहीं से ही बाढ़ग्रस्त लोगों ने अपने को अलग करना शुरू कर दिया था, पर इस शुरुआत वाली जगह पर जो कुछ भीड़ थी। उसके बाद साजो सामान और गाय बछड़ा से बाकी सारा का सारा बांध इस तरह से ठसा पड़ा था कि जो बाढ़ देखने के लिये आये थे उनके लिये उधर बढ़ना ही दूभर हो गया था। इसी से इस प्रथम दल के ही पास भीड़ सबसे अधिक थी। सभी जैसे उचक-उचक कर देख रहे थे कि बाढ़ में अपना घरबार छोड़कर लोग कैसे नजर आते हैं।

इस देखने में कौतूहल का आलम ही था ऐसा नहीं था, कइयों के लिये यह देखना स्मृतिचारण करने जैसा था। इस भीड़ में बहुत से ऐसे लोग थे जो अड़सठ की बाढ़ में किसी न-किसी तरह जिंदा बच गये थे। फिर ऐसे भी बहुत से लोग थे जो दो-एक साल पहले की बाढ़ में बह गये थे। इसी से सब मिलकर देख रहे थे, बाढ़ग्रस्त लोगों को। उसका कारण यह था कि बाढ़ में जो बहकर आये थे सिर्फ उन्हें ही नहीं देखते, उनके भीतर से होकर गुजरने हुए बाढ़ को देखते थे। पर वह भी कब तक का देखना है ... ऐसा से लोग देख रहे थे, फिर हट भी जा रहे थे। रायपुर का दल भी यहां भीड़ करके खड़ा था। गोदाम बाबू रघु पास में आकर बोले, 'यहीं इनसे पूछ लीजिए। इन सबों ने देखा है कि वह आदमी टीन को छत के ऊपर बैठा था।'

'क्यों, तुमने नहीं देखा क्या ... सचमुच का एक आदमी बहता जा रहा था ...' रघु ने थोड़ा-सा हंसकर थोड़ा जोर से बोला। पर बाढ़ग्रस्त लोगों की जिस भीड़ से उसने पूछा था, उनमें से किसी ने जवाब नहीं दिया। यहां तक कि रघु घोष की ओर फिर कर भी नहीं देखा। शायद काफी देर से उनसे यही सवाल किया जाता रहा हो। किसी ने जवाब नहीं दिया देखकर ऑफिस बाबू की बड़ी साली रघु घोष की ओर देखकर बोली, "सचमुच एक आदमी बह आया था, फिर वह सुपारी पेड़ पर जाकर गायब हो गया है पानी के भीतर से !"

रघु घोष फिर-से थोड़ी अप्रस्तुत मुद्रा में हो-हो करके हंस पड़ा। फिर ऑफिस बाबू की बड़ी साली से बोला "चलिये, आपको भी उस छत के ऊपर छोड़ आऊं, फिर बिन पैसे के सुपारी पेड़ के प्लेन में बैठेंगी।"

ऑफिस बाबू की पत्नी प्रायः हर समय बीमार ही रहा करती थी। उनकी बड़ी साली ही निरंतर उनकी गृहस्थी की देखभाल करती आ रही थी। उसी के चलते ऑफिस बाबू का दूसरे सहकर्मियों के साथ उनका एक तरह का स्नेहपूर्ण मधुर सम्पर्क बन गया था और वह था रसिकता का सम्पर्क।

"फिर, और थोड़ी देर के बाद ही पता चल जायेगा कि किस टीन की छत पर चढ़ा है और कौन सी सुपारी के पेड़ पर", रघु घोष घोषणा करता है।

"कैसे ? मिलीटरी आयेगी क्या ..." गोदाम बाबू सवाल करता है।

"आने से पहले फोन किया था। ज्योतिदा ने फोन कर दिया था, किसी भी पल यहां आ सकती है।" रघु घोष पाय घोषणा करनेवाले लहजे में बोला।

रघु घोष की बात बांध भर में फैल गयी कि मिलीटरी टाउन से रवाना हो चुकी है किसी भी पल आ पहुंचेगी। यहां तक कि बाढ़ग्रस्त लोगों में भी थोड़ी चंचलता आ गयी थी। इनलोगों ने काफी देर से नदी की तरफ नहीं देखा था, अब कुछ लोग फिर से नदी की तरफ देखने लगे। कभी एक झलक, तो कभी लगातार देखते रहे। आंखें जरा भी नहीं फिराते। इस तरह से किसी को देखना देखकर अचानक याद आ जाता है कि इनके घरबार, खेतीबाड़ी फसल सबकुछ के ऊपर तिस्ता का जल [illegible] भाग रहा है। अपना सामर्थ्य इस पानी के [illegible] लोग [illegible] फिर से [illegible] वापस जाने की आशा में [illegible]।

रघु घोष की [illegible] और [illegible] गोपा ने पीछे से आकर [illegible]। रघु घोष ने अपनी [illegible] हंसी के साथ पूछा, "क्या है?"

गोपा ने पूछा, "क्या सचमुच मिलीटरी आयेगी [illegible]?"

"हां तो।"

लिला ने पूछा, "तुमने फोन कर दिया था?"

"हां।"

"हां, बताने का [illegible] और कोई जगह नहीं [illegible] [illegible] ही मिलीटरी आ जायेगी [illegible] पावर है?"

"आज सुबह [illegible] मैनेजर [illegible] ने ज्योति बाबू को फोन किया था। ज्योतिदा ने उनसे कह दिया है। मैंने जब फोन किया तो कहा, 'अभी आ रहे हैं।'"

"क्या करेंगे यहां आकर?"

"यह मैं कैसे कह सकता हूं? [illegible], खुद ही [illegible]।"

"वह जो कह रहे हैं कि एक आदमी किधर सुपारी पेड़ पर आकर वापस हो गया"—कहती हुई लिला खिलखिलाकर हंस पड़ी। रघु घोष ने भी हंसते हुए फौरन जवाब दिया, "अरे क्या हो रहा है, मैनेजर बाबू हैं?" तब तक गोपा भी मुंह में आंचल देकर हंसने लगी थी।

अब यह घटना सिर्फ कुछ घंटे पहले की घटना नहीं रही। तिस्ता की बाढ़ में एक आदमी बह आया था—कैसे वह आ सकता है—प्रायः हर वर्ष आते हैं। वह आदमी अश्वनी राय का छत पर चढ़कर बच गया। इस तरह बच भी सकता है। बाढ़ में इस तरह से ही जिंदा रहना पड़ता है। वह आदमी अश्विनी राय के सुपारी के पेड़ पर भी चढ़ा था—वैसे इस तरह से ऊपर चढ़ा भी जा सकता है, उसे तो कुछ-न-कुछ खाना तो होगा ही, पर और सुपारी पेड़ से वह फिर उतरा ही नहीं।

इस आख़िरी जगह पर यह घटना उसे अब कोई घटना बनकर नहीं रही। आज ही सुबह की एक घटना। आदमी का मगरों के पेट पर चढ़ना और न उतरना, तिस्ता को लेकर अनगिनत कहानियों में से एक हो जाना था। तब तिस्ता सिर्फ़ एक नदी ही नहीं रह गयी थी- जैसे इसी एक [illegible] कहानी के बदले वह अपने प्राचीन सत्ता में लौट जाना चाहती थी। तिस्ता के दोनों पारों में तटबंध बनाया गया था। उस बाँध के ऊपर सभी खड़े थे, पर [illegible] की आवाज़ भी बीच-बीच में सुनायी दे रही थी - शायद [illegible] था। पर तिस्ता अब नदी न होकर तिस्ता बुढ़ी हो गयी थी, [illegible] आगे पाट में उस तिस्ता बुढ़ी की मूर्ति बनाकर पूजा करते हैं। यही तिस्ता [illegible] अभी इस पार [illegible] पहले एक आदमी को आकाश में गायब कर दिया था।

बाद की उपकथा जन्म ले रही थी [illegible]।

138

बाघारू को ढूँढ़ने का अभियान

था। पर [illegible] को [illegible] हुयी थी।

आख़िर में तिस्ता में [illegible], [illegible] हो [illegible] भी [illegible] हो [illegible] तिस्ता [illegible], [illegible] पानी पर [illegible] था, [illegible] बाढ़ का [illegible] ही था, पर [illegible] अगर बाढ़ चली जाय, तो सबको [illegible] जाना [illegible] था।

इस बार की बाढ़ का यह [illegible] था, या फिर पूरा होने ही वाला था। आज इस परिवार के लिए [illegible] एक [illegible] रहा था। अब दोपहर हो आने पर भी हवा और पानी का वेग ज़ोर भी कम नहीं हुआ था। पर सब मन ही मन एक हिसाब लगा रहे थे कि आज दोपहर के बाद से हवा और पानी का वेग शायद कुछ कम हो गया है, पर अभी समझ में नहीं आता, रात के बीत जाने पर ही पता चलेगा। या, फिर रात के बीच ही पता चलेगा। इस तरह का सोच विचार करना भी मन ही मन अपने को दिलासा देने जैसा था। अगर इतना भी दिलासा न होता, तो सबको अभी से तैयार हो जाना पड़ता कि कल भी अगर यह हवा, पानी इस तरह चलता रहा तो फिर इस तिस्ता के बाढ़ के दायरे के बाहर चले जाना होगा। अगर जायें तो उन्हें क्या करना होगा, वह इन बाढ़ग्रस्त लोगों जिन्हें कभी बाढ़ ने बहाया था या फिर जो बसने

वाले थे, उन्हें पता नहीं। किसी स्कूल में कैंप बनेगा ? बाँध के ऊपर से भी लोगों को हटा लिया जायेगा ? ऊपर या नीचे, शायद यहाँ भी बाँध टूट सकता है ?

पर हवा-पानी पर निर्भर इस अंदाज़े की आड़ में भी जैसे फिर से सिर को बचाया नहीं जा सकता—जब सचमुच ही आँखों के सामने एक आदमी को तिस्ता मे बहकर अश्विनी राय की छत पर चढ़ते देखा गया हो। वह तो जैसे सभी हिसाब के बाहर की चीज़ थी। इस तरह हवा-पानी चलता रहता तो मंगलवार तक कोई घटना जरूर घट जाती। पर आज यह तो सभी हिसाब से परे की बात थी।

इससे बाघारू के बाद, जब किसी दूसरे आदमी को बहता देखा नही गया दोपहर तक, तब बाढ़ का हिसाब फिर से प्रत्याशित सीमा के बीच ही रहा। एक ही आदमी बह आया है—वैसा तो कभी भी हो सकता है। इस एक ही आदमी के लिये चाहे जितना टेलिफोन हो, कितने ही लोगो का जमघट हो, मिलीटरी, नाव के लिये जितना भी चिल्लपों क्यों न हो—बाढ के जल के बढ़ने-कम होने के साथ-साथ जिनका जीवन-मरण का सम्पर्क था, वे कुछ आश्वस्त ही हुए।

फिर जब वह आदमी सुपारी के पेड पर चढ़कर गायब हो गया, तो उसे लेकर चाहे जितना हो-हल्ला क्यों न हुआ हो, कितनी कथा-कहानियां क्यों न गढ़ी गयी हों—बाढ़ का हिसाब उससे और अधिक हिसाब में आ गया था। वह आदमी ही अगर नज़र नहीं आ रहा है तो उस जैसा एक आदमी बह आया था, वह भी जैसे अब उतना सच नहीं रह गया। बाढ मे तिस्ता में तो अक्सर ऐसा होता ही रहता है। किसी-किसी घर की छत की माया काट न पाने के कारण कोई छत के साथ बह आता, तो कोई घर के कटहल पेड़ की माया न छोड़ पाने से उस पेड़ के साथ ही बह जाता। यह भी शायद वैसा ही कुछ रहा हो। फिर कोई पागल-यागल भी हो सकता है—सुपारी पेड़ के ऊपर अपने आपको बांध के रखा हो। ख़ैर, वह जो भी रहा हो—बाढ़ के हिसाब के बीच उसे न लेने से ही काम हो गया।

तो इस दोपहर की बाँध के ऊपर की भीड़ लगभग पर दो भागों में बँट गयी। चर से जो लोग यहाँ आये थे, उन्होंने अपने आपको एक अलग जत्थे में रख लिया। कुछ लोगों ने हवा-पानी से थोड़ी आड़ बनाकर घर के लोगों के साथ सिर छुपाए रखा कहीं, फिर कोई इस भीड़ के बीच ही यहाँ-वहाँ छिटका रहा। हाट या बागान के लोगों में क्रमशः किस्सा-कहानी बढ़ती ही जा रही थी। होते-होते बात यहाँ तक पहुँच गयी थी कि लगता है जैसे ये लोग यहाँ क़िस्से-कहानी सुनने के लिये ही प्रतीक्षा में खड़े थे।

बाँध के ऊपर लोग-बाग, गाय-भैंसों को देखकर मोबाइल सिविल इमरजेंसी

गाड़ी कुछ दूर पर ही रुक गयी थी। दो सिपाहियों को लेकर ऑफ़िसर ने बाँध पर आकर देखता कि ये जिस सीमा पर आकर खड़े थे उनके सामने गाय-बछड़े, लोगबाग और संसार के ज़रूरत की तरह-तरह की चीज़ों के साथ बाढ़ग्रस्त लोगों का अंबार लगा था। वे गाय-बछड़ों की कतार से, कई माग बैठे लोगों की ओर होकर, इस भीड़ की ओर आने लगे। इस बीच छोटे-मोटे तिरपाल और प्लास्टिक कइयों ने तान लिये थे। इससे ऑफ़िसर को दूर से देखा भी नहीं जा रहा था। वर्ना टोपी, वाटरप्रूफ और गमबूट में उसे दूर से देखकर ही सब आगे बढ़ जाते। भीड़ की तरफ बढ़ते-बढ़ते ऑफ़िसर पूछता जाता था, "क्या, कहाँ पर आदमी बहकर आया था ? कौन बह आया था ? कहाँ ? किसने देखा ? उधर से होकर कोई आ सकता है, यह वहाँ सोये-बैठे लोगों की समझ के बाहर थी। इसी से ऑफ़िसर को उनके लोगों के साथ अचानक देखकर उन्हें अचभा हो रहा था। वे हड़बड़ाकर उठ या बैठ रहे थे। फिर ऑफ़िसर के सवाल को सुनते थे। पर सुनकर भी जैसे समझ नहीं पा रहे थे। समझने के बाद जवाब देने के लिये जब ऑफ़िसर की ओर दौड़ते, तब तक ऑफ़िसर और कुछ दूर तक बढ़ गया होता था।

इस तरह से करते-करते ऑफ़िसर जब बाढ़ देखने को आये इस भीड़ के बीच पहुंच गया, तब उसके पीछे भी एक बड़ी-सी भीड़ इकट्ठी हो चुकी थी। ऑफ़िसर को देखते ही रायपुर चाय बागान के मैनेजर बाबू थोड़ा पीछे हट गये। ऑफ़िसर के सामने पहुंचने की हड़बड़ी में लोगों ने मैनेजर बाबू को ऑफ़िसर से अलग कर दिया।

ऑफ़िसर ने पूछा, "क्यों ?" आपके यहाँ से फ़ोन किया गया था, कोई आदमी बह आया है, घर की छत पर चढ़कर बैठा है। कहाँ बह आया है ? कब ? कहिए, कहिए, देखें नदी को। देखने दीजिए, सामने से ज़रा हट जाइए।"

ऑफ़िसर की इस बात से दोनों सिपाहियों को जैसे एक काम मिल गया था। उन्होंने ऑफ़िसर के सामने से लोगों को दोनों ओर हटा दिया लाठी के सहारे। फिर उस फाक को बहाल भी रखा। अब ऑफ़िसर के सामने नदी रहती थी। नदी की ओर मुँह किये ऑफ़िसर अपना सवाल करता ही जा रहा था।

अगर ऑफ़िसर एक बार सवाल करने के बाद चुप हो जाता तो कोई-न-कोई उसका जवाब देता भी। पर जवाब के लिये बगैर रुके ही सवाल करते चले जाने पर किसी को कुछ कहने का मौका ही नहीं था।

अबकी जैसे जवाब देने लायक कोई सवाल मिला। भीड़ में से किसी ने कहा, "रायपुर चाय बागान में फ़ोन है।"

"ओह ? रायपुर ?" कहकर ऑफ़िसर जिस तरह से गर्दन घुमाकर रायपुर की ओर देखता है, उससे समझ में आता है कि वह रायपुर बागान को पहचानता

है। उसके गर्दन को घुमाने का मौका पाकर किसी ने भीड़ में से कहा, "मैनेजर बाबू तो हैं यहाँ।"

"कहाँ हैं मैनेजर बाबू ?" ऑफ़िसर ने पूछा।

"यही तो हैं मैनेजर बाबू। मैनेजर बाबू ! मैनेजर बाबू !"

मैनेजर बाबू और थोड़ा पीछे चले गये थे। बागान का मजदूर उनके सिर के ऊपर छाता ताने हुए था। वह जान-बूझकर पीछे चले गये हों ऐसा नहीं था, पर ऑफ़िसर को घेरकर ऑफ़िस के आसपास भीड़ इतनी बढ़ चुकी थी कि उन्हें पीछे हटना ही पड़ा था।

सुनकर भी मैनेजर बाबू आगे नहीं बढ़ते। ऑफ़िसर ने गर्दन घुमाकर मैनेजर बाबू कहाँ हैं, यह देखने की कोशिश की। इस कोशिश के बीच भी यही प्रतीक्षा रही थी कि मैनेजर बाबू अबकी आगे आ जायेंगे। पर मैनेजर बाबू के न आने पर उन्हें फिर से थोड़ा घूमकर मैनेजर बाबू को तलाश करना पड़ा। इसके चलते मैनेजर बाबू और ऑफ़िसर के दरम्यान भीड़ छँटकर दो भागों में बँट गयी। ऑफ़िसर नदी की ओर पीठ किए मैनेजर बाबू की ओर जब घूमकर खड़ा हो गया, तब भीड़ ऑफ़िसर के पीछे चली गया थी। ऑफ़िसर, मैनेजर बाबू किसे कहा जा रहा है, यह समझ गया। उसमें भी चौकन्ने भाव से कुछ समय बीत गया। ऑफ़िसर को प्रतीक्षा थी कि मैनेजर बाबू आगे अवश्य आयेंगे। पर मैनेजर बाबू आगे नहीं बढ़े, यह समझ लेने पर वह खुद आगे बढ़ गये।

"नमस्कार। आपके बागान से ही फोन किया गया था कि कल कोई एक आदमी बहता हुआ आकर किसी छत के ऊपर बैठा है। उसे रेस्क्यू करना है। हमें इस बारे में रिपोर्ट दीजिए।"

मैनेजर बाबू ने सीधे ऑफ़िसर के मुँह की ओर नहीं देखा। पास वाले मजदूर से कहते हैं, "रघु बाबू को बुला।" फिर रघु बाबू को ढूँढ़ते हुए भीड़ पर एक नज़र डालते हुए बोले, "मैंने तो कुछ नहीं देखा। मैं तो अभी-अभी आया हूँ। यहाँ से दो लड़के सुबह जाकर बोले कि एक आदमी बहकर आया है, "फ़ोन कर दो। लेकिन, हमारे बीच जो जानता है, उसे बुला के ला रहे हैं, वह सब बता सकेंगे।"

मैनेजर बाबू भीड़ में रघु घोष को तलाश कर रहे थे। पीछे से रघु घोष ने आकर कहा, "क्या हुआ ?"

"अरे, तुम कहाँ चले गये थे ? यह देखो, ये क्या जानना चाहते हैं तुमसे।" मैनेजर बाबू एक-आध क़दम पीछे चले गये, जैसे रघु घोष के लिये जगह छोड़ रहे हों। रघु घोष पीछे से ही बोला, " उस छत पर शायद कोई बहकर आकर रुका है।"

"कौन-सी छत ?" ऑफ़िसर फिर से नदी की ओर मुड़ गया। रघु घोष

उसके पास आकर खड़ा हो गया। ऑफ़िसर और रघु घोष कुछ क़दम आगे बढ़ गये। दोनों सिपाहियों ने सामने के लोगों को हटा दिया। पर कब, कहाँ से हट जाना है लोग इस बीच समझ चुके थे।

रघु घोष नदी की तरफ़ हाथ से इशारा करते हुए बोला, "ये तो, उन सब छतों में से किसी पर होगा।" फिर भीड़ की ओर देखकर ऊँची आवाज़ में बोला, "अरे, आप लोग कहते क्यों नहीं हो ?" आप लोगों ने देखा है। आप ही की जगह है, आप लोग कहिए। इस चर का यहा कौन-कौन है ?"

जगदीश बारुई की आवाज़ सुनायी पड़ी, "अरे निताई दा तो आया नहीं अबतक ? ए गजेन, नरेश, अमूल्य, अरे देखो बाबूलोग क्या पूछते हैं ?"

नरेश भीड़ के बीच से बोला, "अरे कहना क्या है ? यहीं तो उस छत पर एक आदमी बहता आया और चढ़ गया, "सभी ने देखा है।"

ऑफ़िसर ने हाथ से नदी को दिखाकर कहा, "उस छत के ऊपर, वह जो सुपारी पेड़ के बीच की छत है ?"

"हाँ, हाँ, वहीं।" नरेश ने जवाब दिया। नरेश आगे नहीं बढ़ा, पर चूँकि वह काफ़ी लम्बा है, इसी से भीड़ के बीच भी उसे अलग से पहचाना जा सकता है।

"क्या कोई भी नहीं है वहाँ ?" ऑफ़िसर ने पूछा।

"अरे, यही तो बात है" भीड़ की आड़ से जगदीश बारुई की आवाज़ सुनाई दी - "सबने देखा", वह कहता गया "फिर सबने देखा नहीं है।"

"नहीं का मतलब ? फिर से बह गया क्या ?" ऑफ़िसर ने थोड़ा चौंक कर पूछा। उसके आने में कुछ विलम्ब हो गया था। इस बीच अगर कोई बहता आदमी आकर फिर से बह गया हो, और इसे लेकर कोई गड़बड़ी हुई तो वह फँस सकता है।

"कौन जानता है ? बह गया, उड़ गया या कहाँ गया ? वह तो सुबह की बात है। आप लोग आये हैं अभी। तो क्या आदमी अब तक तैरता ही रहता ?"

जगदीश बारुई पीछे से बोला।

ऑफ़िसर गले को नरम करके बोला, "हमको तो फिर दसियों जगह दौड़ धूप करना पड़ रहा है भाई क्या किया जाये आप ही कहिए ? अब बताइए कि करना क्या है ?"

जगदीश बारुई की बात के लहजे से नरेश को भी कुछ साहस हो गया "हमने तो फ़ोन पर ही बता दिया था मिलीटरी नाव भेजने के वास्ते ? तो क्या आप लोग नाव लेकर आये हैं ?"

"फ़ोन करते ही तो नाव को उठाकर लाया नहीं जा सकता। आप लोग

ही कहिए हुआ क्या है ? उसके बाद नाव की आवश्यकता है या नहीं। और कुछ आवश्यकता है तो वह भी तय किया जायेगा।"

"सुबह से तो एक ही बात कहता आ रहा हूँ। एक आदमी बह आया है। छत पर चढ़ा है। अब अपनी जीप गाड़ी लेकर जाइये नदी के अदर, देख आइए आदमी है कि नहीं।"

नरेश की बात से सभी ठठाकर हँस पड़े। ऑफ़िसर बगले झाँकने लगा। उसके सामने बोल्डर पानी तक उतरता चला गया था। उस बोल्डर के बाद ही बाढ़ से उफनती तिस्ता। नरेश की बातों में नाराज़गी ओर आरोप साफ झलकता था। भीड़ में से हँसी-मज़ाक़ शुरू हो गया था। नरेश की बातो से भीड़ जिस तरह से हँस पड़ी, उससे भीड़ के मिजाज का पता चल जाता था। उसे यहाँ अब कोई काम दिखाना ही होगा। वरना ये लोग शायद उन्हें वापस जाने न देगे। ऑफ़िसर रघु घोष की ओर देख, काफ़ी नरमी से बोला, "पर अब तो छत के ऊपर कोई नजर नहीं आ रहा है ?"

रघु घोष 'हो-हो' करके हँसते हुए बोला, "अरे वही तो समस्या है साहब। आदमी आया था वहाँ, पर अब वहाँ नहीं है।" फिर थोड़ा-सा हँस कर नरेश से बोला—"क्यों ? बाक़ी लोगो को बताओ।"

"कह तो दिया सब कुछ, और क्या कहूँ ?"

"धत् तेरे की। सुना कि वह सुपारी के पेड पर चढ़ा था ?"

"सुपारी पेड पर चढ़ा था, मतलब ? उस सुपारी की पेड़ पर ?" ऑफिसर ने सवाल किया।

"मनलब यह कि वह सुपारी पेड़ पर चढ़ा या एडी के पेड़ पर चढ़ा, यही तो देखना पड़ेगा न, क्यों ?" पीछे से जगदीश बारुई बोला।

"हाँ, हाँ, क्यों नहीं ? यह तो होगा ही। आप लोग बताएँ, क्या हुआ है ? हमें तो उसी के मुताबिक कट्रोल रूम में रिपोर्ट करना पड़ेगा। उसके बाद वे मुनासिब बंदोबस्त करेंगे। हम तो और पाकीट में डालकर नाव कहीं ला सकते ?"

"जो संभव हो, वह तो भेज ही सकते थे।" नरेश ने कहा।

"अच्छा, इस सुपारी पेड़ का मतलब क्या है ?" ऑफ़िसर ने सवाल किया।

उसके सवाल का कोई जवाब नहीं मिला। रघु घोष समझ गया कि ये बाढ़ग्रस्त लोग ऑफ़िसर से यह बात बताना नहीं चाहते कि वह आदमी सुपारी पेड़ पर चढ़कर कहीं ग़ायब हो गया है। यह बात बता देने पर उनका पूरा वक्तव्य ही हल्का हो जायेगा। अगर वह आदमी इस समय भी छत पर बैठा हुआ होता तो उसे रेस्क्यू करने के लिये इन्हें उतना मायापच्ची करने की कोई आवश्यकता ही न थी। तिस्ता के इस बाढ़ में जो बहते हुए आकर एक छत पर रुक सकता है, वह अपने आपको बचा भी सकता है। पर वह अब दिखायी नहीं पड़ रहा

है, इसी से एक नाव में आकर वहाँ देख आना चाहिये, ये लोग बस इतना ही चाहते हैं।

"सुनिए।" कहता हुआ रघु घोष फिर से हँस पड़ा, "मैंने आकर सुना कि वह आदमी सुपारी पेड़ पर चढ़ा था, पर अब तक उतरा नहीं है। अब आप मिलीटरी नाव लेकर वहाँ देखिए कि वहां आदमी है भी या नहीं ?"

"हाँ।" एक साथ कई स्वर उभरे।

बाढ़ में छत पर एक आदमी को देख देखकर ही दिन काटा नहीं जा सकता। न देख-देखकर रात बितायी जा सकती। पर आदमी सुपारी के पेड़ पर चढ़कर गायब हो जाये, बाढ़ से उफनती तिस्ता में एक आदमी सुपारी पेड़ से गायब हो जाये, उनके ही चर से गायब हो जाये तो फिर वे इस बाँध पर किसके भरोसे बैठे रहें ? यह सच था कि अभी उनके घर ज़मीन के ऊपर कई एक लोगों को डुबानेवाला पानी इसी वेग से बह रहा था। फिर भी वे इस चर के आमने-सामने इस बाँध में उनके गाय-बछड़े, बाल-बच्चे लेकर तो प्रतीक्षा कर रहे थे कि पानी एक दिन उतरेगा और वे कीचड़-मिट्टी में से अपने चर को पहचान लेंगे। इसमें कुछ अनिश्चितता तो थी ही–तिस्ता इस चर का क्षय की है कि नहीं वह तो पानी उतरने के बाद ही पता चलेगा। पर अभी क्या इस जल में डूबे चर में क्या कोई ऐसी घटना घट रही है जिस पर तिस्ता के बाढ़ का कोई नियंत्रण नहीं है ? जिस आदमी को बहते उन्होंने देखा था, जिसे टीन की छत पर बैठे हुए देखा था, सुपारी पेड़ पर चढ़ते हुए भी जिसे सभी ने देखा था–फिर सुपारी के पेड़ से उसका न उतरना भी तो उनका देखा हुआ ही था; तो फिर उनके चर के ऊपर से होकर सिर्फ़ तिस्ता की ही बाढ़ में बहा था इतना ही नहीं, सुपारी पेड़ के शिखर से जिनका आना जाना होता था, क्या वे आकर चर को अपने क़ब्जे में कर रहे हैं ? वही जाँच करने के लिये मिलीटरी की आवश्यकता है, मिलीटरी नाव की ज़रूरत है। पर वैसा कोई दावा ऑफ़िसर के सामने किया नहीं जा सकता, इस बात को वे अच्छी तरह से समझते थे।

139
बाघारू अनुसंधान संबंधी बजट पर बहस

"मतलब ? आपके देखते ही वह आदमी सुपारी के पेड़ पर चढ़ा था ?" ऑफ़िसर ने भीड़ की ओर देखकर पूछा।

"हाँ।" भीड़ ने सिर हिलाया।

"फिर वह वहाँ से उतरा नहीं, ये भी आप लोगों ने देखा ?"

"हाँ।"

"पेड़ पर से कहीं गिर तो नहीं गया ?"

किसी ने कुछ जवाब नहीं दिया।

"आप लोगों ने देखा है न ठीक से, गिर तो नहीं गया ?"

फिर से वही चुप्पी। कुछ पल बाद पीछे से जगदीश बारुई ने कहा, "गिर जाता तो फिर से छत पर चढ कैसे जाता।"

सुपारी पेड़ का शिखर पानी से कोई अधिक ऊपर नहीं था। छत से गिर जाने पर वह स्रोत के खिंचाव से बह सकता था, पर बहते-बहते फिर से इस छत या उधर का कोई और सुपारी के पेड़ या दो-एक छत पर चढ़ सकता था—इन दोनों बातों में से किसकी अधिक गुंजाइश है, ऑफ़िसर ने मन ही मन उसकी जाँच-पड़ताल कर रहा था। इसी जाँच के दौरान वह जगदीश बारुई के सवाल के आगे पड़ गया—अगर वह आदमी बहते हुए किसी तरह से अपने को रोक पाता तो उसे दुबारा देखा जा सकता था। पर वहाँ जाकर जाँच किए बगैर कुछ पता नहीं चल सकता कि आदमी वहाँ है या नहीं। ऑफ़िसर मन ही मन काफ़ी सतर्कता के साथ हिसाब लगाया। वे इसमें अंदाज़ा लगाकर थोड़ा विलम्ब से आये थे कि इस बीच यहाँ के लोग अपने-अपने हिसाब से कोई व्यवस्था कर लेंगे। दोपहर के बाद दूसरा फोन पाने पर ही उन्हें तय करना पड़ा कि उन्हें आना ही है। पर यह उनके अंदाज़ा में नहीं था कि सचमुच उन्हें अभी नदी में नाव छोड़नी पड़ेगी। ऑफ़िसर यह बात समझ गया कि कुछ किए बिना यह चारों ओर खड़ी भीड़ उसे जाने नहीं देगी। एक तो यह हो सकता है कि यहाँ दोनों सिपाहियों को छोड़कर एक फ़ोन करने के बहाने से वह गाड़ी लेकर रायपुर चला जाये, और वहाँ से उधर जाया जा सकता है। अभी अगर वह सचमुच कंट्रोल रूम को फ़ोन करता है तो भी शाम से पहले कोई वैकल्पिक व्यवस्था नहीं की जा सकती। मिलीटरी नाव की व्यवस्था की जो बात है, वह हवाई किला है, लोगों को भुलाने के लिये। हाँ, उनके पास कुछ रबर की नावें हैं। उन नावों से इस स्रोत के वेग को सँभाला नहीं जा सकता। ऑफ़िसर ने घड़ी पर नज़र डाली, साढ़े तीन बज गये हैं। उसके पास ज़्यादा-से-ज़्यादा एक-डेढ़ घंटे का समय था। यहाँ से कोई नाव छोड़ने से लौटते हुए ख़तरे में पड़ सकता है, तब तक तो अँधेरा भी हो जायेगा।

ऑफ़िसर थोड़ा अनिश्चित स्वर में बोला, "आप लोग जो इस घर के लोग हैं, आप सभी तो यहाँ आ गये हैं न ?"

ऑफ़िसर का प्रश्न स्पष्ट नहीं था, इसी से किसी ने कोई जवाब नहीं दिया। थोड़ी देर प्रतीक्षा करने के उपरांत ऑफ़िसर फिर से बोला, "यानी कि आप में से कोई वहाँ नहीं है, घर पर ?"

"नहीं, नहीं है। हम तो शुक्रवार की आख़िरी रात से ही यहाँ आना शुरू

कर दिये थे।'' जगदीश बारुइ उसी आवेग में से ही बोला।

'वह तो अच्छा ही हुआ कि आप लोगों ने प्रतीक्षा नहीं की। इसी से गाय बछड़े सबको ला पाये।''

'वह तो हमने ही हिसाब लगाया। आप लोगों पर भरोसा करते तो बाँध पर हम नहीं आ पाते।'' नरेश ज़रा कड़कती आवाज में बोला।

ऑफिसर थोड़ा चुप हो गया फिर पूछा, ''आप लोग क्या चाहते हैं—यह बताइए हमें। हमें तो कंट्रोल रूम को बताना पड़ेगा। वहाँ आदमी है या नहीं रखना चाहते हैं न ?''

'इसी के लिये तो सुबह फोन किया गया'', नरेश बोला।

'ठीक,' ऑफिसर किसी निर्णायक स्वर में बोला, 'क्या आपके यहाँ किसी की नाव है ?'

'अगर नाव लेकर जाने का उपाय रहा होता तो फिर आपको क्यों फोन करने जाते ?'' नरेश ने जवाब दिया।

'कंट्रोल रूम में फोन करके नाव का बंदोबस्त करते-करते तो बाढ़ का पानी ही उतर जायेगा।' ऑफिसर ने स्पष्ट भाव से बताया।

'और आप लोग रेडियो में, टी.वी. में जो इतनी मिलीटरी दिखाते हैं ?'' तीखी आवाज में पीछे से किसी ने सवाल किया।

'कहाँ पर वे क्या दिखाते हैं यह तो मैं कह नहीं सकता। मैं आप लोगों से काम की बात कह रहा हूँ। आप लोग अगर कंट्रोल रूम में खबर करने के लिये कहें तो मैं रायपुर बागान में जाकर फोन से खबर कर सकता हूँ। पर इतना ही। इससे अधिक कुछ कर पाना मेरी क्षमता के बाहर है। वहाँ डी.सी. ही तय करेंगे। और अगर आप लोग यहाँ से कोई नाव और माझी दे सकें, तो मैं इसे अभी रिक्विज़ीशन कर सकता हूँ।''

''क्या कर सकते हैं ?'' अमूल्य ने नरेश से पूछा।

''मैं अभी भाड़े पर ले सकता हूँ।''

''पहले कहा नाव चाहिये, अभी कह रहे हैं माझी चाहिये। तो फिर आप रेस्क्यू क्या करेंगे ?''

''नहीं। मैं गवर्मेंट से नाव का भाड़ा दिलवा सकता हूँ। माझी को भेज दे सकता हूँ। मतलब माँझियों को रुपया दे सकता हूँ।''

ऑफिसर की बात के बाद सभी चुप हो गये। ठीक से समझ में ही नहीं आ रहा था कि इस चुप्पी का मतलब क्या है ? रघु घोष थोड़ी प्रतीक्षा के बाद बोला, ''क्यों ? है यहाँ नाव किसी के पास ?''

''अरे यहाँ जो नाव है, क्या वह पानी का वेग सभाल पायेगी ? फिर नाव को लेकर जायेगा कौन ? कितना पैसा देंगे जो आदमी इस बाढ़ में बहेगा ?''

जगदीश ने सवाल किया।

"इस हालत में तो पैसे को लेकर आप लोगों के साथ मोलभाव करूँगा नहीं। आप कितना चाहते हैं वही बताइए न ? नाव है यहाँ ?"

फिर से सब चुप हो गये। उस चुप्पी के बीच भीड़ जैसे कुछ अलग-थलग-सी नजर आ रही थी। अमूल्य और नरेश तकरीबन फुसफुसाते हुए बात करते-करते बाँध के किनारे की ओर आड़ में चले गये और वहाँ भी खुसर-पुसर कर रहे थे। कुछ ही पल में ऑफ़िसर जैसे अकेला पड़ गया। उसके साथ सबलोगों की बातचीत खत्म हो चुकी थी। कुछ देर प्रतीक्षा के बाद ऑफ़िसर थोड़ी ऊँची आवाज़ में बोला, "सुनिए, और देर नहीं किया जा सकता। हो सके तो नाव दीजिए। न हो तो मैं रायपुर बागान में जाकर कंट्रोल रूम को फ़ोन करता हूँ। फिर कंट्रोल रूम को जो करना है करेगा। मैनेजर बाबू !" ऑफ़िसर पीछे की ओर मुड़ा।

रघु घोष "हो-हो" कर हँसता हुआ बोला, "मैनेजर बाबू, चले गये हैं। मैं भी जा रहा हूँ। आप चल रहे हैं तो चलिये।"

"आप बागान के हैं ?"

"हाँ।"

नरेश और अमूल्य लौट आए। आकर वैसे ही खड़े हो गये। ऑफ़िसर उनकी ओर देखकर बोला, "क्यों क्या हुआ ? नाव मिलेगी ?"

"वह तो मिल जायेगी। हम चार आदमी भी जा सकते हैं। पर हरएक को ढाई सौ रूपया देना होगा। नाव का भाड़ा—सो अलग।" नरेश ने कहा।

नरेश के कहने के बाद जैसे चारों ओर के सभी फिर से चुप हो गये। सिर्फ़ हवा और बारिश की आवाज़ बढ़ गयी थी। इस भीड़ में जो बागान और हाट के थे, वे शायद अभी इस मोल-तोल की उत्तेजना में ही चुप हो गये थे। और इस चर के जो बाढ़ग्रस्त लोग थे भीड़ में, ये नरेश की बातों से अचानक समझ गये थे कि उनका खुद का चर में जाकर लौटने का मूल्य इस बीच इतना बढ़ गया है।

ऑफ़िसर ही पहले बोला, "यह भला क्या बात हुई ? तुम्हीं जैसा एक आदमी वहाँ चर में पड़ा हुआ है, तुम्हारे ही चर में, तुम्हें तो चाहिये कि अब तक नाव लेकर उसे यहाँ ले आते। हम खर्च करने को तैयार हैं, यह सुनते ही हज़ार रुपयों का मूल्य हाँक दिया ?" बात खत्म करके ऑफ़िसर इधर-उधर ताकने लगा। फिर रघु घोष पर उसकी नज़र पड़ गयी। रघु ने "हो-हो" हँसते हुए ऑफ़िसर की बातों में और बल का संचार कर दिया।

पर रघु की हँसी के बाद भी इस भीड़ की चुप्पी नहीं टूटी। मवेशियों के हाट में गाय-बैल खरीदते समय किसी गाय को लेकर दिन भर मोल-तोल चलता रहता है, अभी इस बाँध पर जैसे उस प्रकार की परिस्थिति बन गयी। नरेश और

अमूल्य भीड़ से थोड़ा हटकर मिट्टी में उकड़ूँ होकर बैठ गये थे। पर आपस में कोई बात नहीं कर रहे थे। भीड़ थोड़ी अलग-अलग हो गयी थी। कुछ लोग ऑफ़िसर को घेरकर खड़े हो गये थे। कुछ और हट कर नरेश और अमूल्य के पास खड़े हो गये थे। भीड़ थोड़ी हट जाने पर समझ में आया, ऑफ़िसर के दायीं ओर पीछे जगदीश बारुई धरती पर बैठा हुआ था।

"कह रहे हो नाव मिलेगी, पर नाव है कहाँ ?" ऑफ़िसर ने पूछा, पर उसके सवाल का किसी ने जवाब नहीं दिया। थोड़ी देर प्रतीक्षा करने के बाद ऑफ़िसर सिर उठाकर, गर्दन घुमाकर बोला, "क्यों, यहाँ किसकी नाव है ? कहाँ है ?"

ऑफ़िसर की बात का किसी ने जवाब नहीं दिया। अबकी बार थोड़ा धीरज खोकर ऑफ़िसर बोला, "वाह ! तुम्हें हजार रुपये देने को तैयार होने पर नाव मिलेगी और नहीं तो नहीं मिलेगी ? बाढ़ के समय इस तरह का रवैया बिल्कुल गैरक़ानूनी है।"

अबकी बार भी किसी ने कुछ नहीं कहा। पर बहुत से लोग नरेश और अमूल्य की ओर देखने लगे। उन नजरों को भाँप कर ही नरेश और अमूल्य सिर झुकाकर बैठे एक तिनके से मिट्टी पर लकीरें काट रहे थे। अश्विनी राय पीछे से आकर ऑफ़िसर से बोला, "सर, वह छल मरा ही है। वह आदमी मेरे सुपारी के पेड़ पर चढ़ा और उतरा ही नहीं।"

पीछे से जगदीश बारुई हँसकर हाथ नचाकर बोला, "कैसी पहेली बूझो तो जानूँ। बात चल रही है रेस्क्यू की और वह कह रहा है अपने सुपारी बाग़ की बात।" जगदीश के मंतव्य से एकाध हँसी-मज़ाक़ शुरू हो जाना चाहिये था, पर जो हँस सकते या जवाबी मज़ाक़ कर सकते, उनकी जुबान बंद थी। परिस्थिति थोड़ी और गम्भीर हो गयी थी। अश्विनी राय के बात करने से ऑफ़िसर को भी जैसे एक आधार मिल गया था। उसने अश्विनी राय से पूछा, "अरे भाई, मैं तो तभी से चीख़ रहा हूँ, यहाँ नाव किसकी है, आप लोग तो इसका कोई जवाब ही नहीं दे रहे। तो क्या मैं वहाँ तैर कर जाऊँ और उस आदमी को पकड़कर ले आऊँ ? यहाँ नाव कहाँ पर है ?" ऑफ़िसर ने रघु घोष की ओर देखकर कहा, "आपको पता नहीं नाव किसकी है ?"

"अरे मुझे कैसे पता होगा ? मैं क्या यहाँ रोज़ आता-जाता हूँ ?" रघु घोष हो-होकर के ऑफ़िसर के मुँह पर हँस पड़ा।

"आप लोगों का बाग़ान नदी के इतने पास है, आप लोग भी क्यों नहीं रखते हैं एक नाव ?" ऑफ़िसर ने अचानक रघु घोष से ही सवाल ठोंक दिया। सवाल सुनते ही रघु घोष का मुँह अचानक विस्मय से खुला-का-खुला रह गया। फिर वह देर तक हो-हो करके हँसता रहा। हँस लेने के बाद आस्तीन से मुँह

पोंछ कर बोला, "वाह साहब, आपको साल-दो-साल मे कब ज़रूरत पड़ जाये इसलिये कंपनी बागान में नाव रखेगी ?"

जगदीश बारुई पीछे से बोल पड़ा, "हाँ। आप लोग नाव रखेंगे तारकोल पोतेंगे, और वे जीप से आकर साल में एक बार नौका-विहार करेंगे।"

अश्विनी राय नरेश और अमूल्य के पास जाकर खड़ा हो गया। नरेश या अमूल्य किसी ने भी उसकी ओर नही देखा। अश्विनी राय और थोड़ी देर खड़ा रहा, फिर वहाँ उकड़ूँ होकर बैठ गया। ऐसे जैसे उसके पैरों में झुनझुनी लग रही हो, इस तरह से बैठ गया। थोड़ी देर बाद नरेश की ओर देख कर बोला, "पूछने लगा कि नाव किसकी है, तो बताता क्यों नहीं, कह दे सरकारी अफसर है।"

नरेश ने कहा, "आप ही कह दीजिये न। हमारे पास आये है क्यो ? मेरे पास नाव नहीं है।"

नरेश थोड़ा जोर से बोला सबको सुनाकर। बातों में थोड़ी कड़ुवाहट थी। वह अश्विनी राय समझ गया। इसी से इस तरह की मुख मुद्रा बनाकर बैठा रहा जैसे वह बात उससे कही न गयी हो।

जगदीश बारुई अपनी जगह से उठकर नरेश के पास जा बैठा था। फिर काफ़ी धीमी आवाज़ में बोला, "सात सौ में राजी हो जा, मैं वादा कर रहा हूँ, तुम लोग डेढ़-डेढ़ सौ लेना, और मुझे सौ रुपया देना।"

"और तुम इस बीच बताशे पर जीभ फेरोगे। डेढ़ सौ में राजी नहीं हो सकता।" नरेश इतनी धीमी आवाज़ में बोला कि कुछ सुनायी ही नहीं दिया।

"वे राजी हैं कि नहीं बता। ऑफिसर राजी होगा कि न होगा वह मैं समझ लूँगा। अरे ओ अमूल्य !"

नरेश अमूल्य की ओर गर्दन घुमाकर मिट्टी की ओर ताक कर कहता जाता था। फिर जगदीश की ओर मुड़कर बोला, "अमूल्य सौ के नीचे राजी नही है। फिर आपका कमीशन काहे का ?"

जगदीश खँखारने-से स्वर में बोला, "अरे तेरा भला हो। मुझे ही एक सौ दे देना। ओर नहीं देगा तो मैं ही ऑफिसर से कंट्रैक्ट ले लूँगा—तब मुझे दोनों हाथों की अंगुलियों को फँसाकर माथे पर ले जाकर झटका, आवाज़ के साथ एक जम्हाई भी ली।

तब तक दोपहर ढलने लगी थी। हालाँकि दोपहर ठीक से समझ में नहीं रही थी। जगदीश बारुई ने अपने डूबे हुए चर की ओर एक बार देखा। देखकर बोला, "एक आदमी आँखों के सामने ही बह आया था और सुपारी के पेड़ पर चढ़कर चला गया।"

बाघारू के उस लापता होने को लेकर यहाँ अटकलें लगायी जाने लगी थीं। वे अटकलें भी हवा, तूफान और बारिश में मिल गयी थीं। बाघारू को कैसे पता

चल सकता है कि वह सुपारी के पेड़ पर चढ़ा है या बह गया है—सिर्फ़ इतना ही देखने के लिये सरकारी ऑफ़िसरों के बीच उन अटकलों को लेकर बातचीत चल रही है। बाढ़ में बहुतों का बहुत कुछ बह जाता है, फिर बहुतों के पास बहुत कुछ बह कर आता भी है। जगदीश, नरेश और अमूल्य समझ नहीं पाये थे कि उनके पास सचमुच कुछ बहकर आ रहा है या नहीं। वे बहाकर ले आना चाहते हैं।

ऑफ़िसर ने कहा, "देखिये, मैं तो यहाँ दिन भर खड़ा नहीं रह सकता। मैंने देखा कि किसी को रेस्क्यू करना नहीं है। मैं वहाँ बात रिपोर्ट कर दूँगा और न हो तो फिर आप लोग बताइये कि नाव कहाँ है—मैं राहत का बंदोबस्त कर रहा हूँ।"

140

बाघारू की खोज को लेकर आलोचना सभा का त्याग और बाद में मतैक्य

ऑफ़िसर थोड़ी देर प्रतीक्षा करता रहा। पर हालात में कुछ सुधार नहीं हुआ। भीड़ तो अलग हो ही गयी थी, अब जैसे और भी अलग हो जायेगी। जगदीश बारुई बाँध के किनारे जाकर खड़ा था। नरेश और अमूल्य को घेरकर जो खड़े थे, वे भी थोड़ा इधर-उधर खिसक गये थे। ऑफ़िसर ने नदी की ओर से मुड़कर उत्तर की ओर मुँह कर लिया था। बाढ़ग्रस्त लोगों के दो-चार गाय-बछड़े बँधे हुए थे और उसके बाद खुला मैदान था। कुछ समय के बाद ऑफ़िसर नदी की ओर सीधा चलने लगा था।

ऑफिसर के पीछे एक छोटी-सी भीड़ थी। ऑफ़िसर ने सीधा चलना शुरू कर दिया था यह किसी को भी पता नहीं था। इसी से दो-एक लोगों को हाथ से हटाकर ऑफ़िसर के आगे बढ़ना पड़ा। उसे आगे बढ़ता देख भीड़ ने उसे रास्ता दिया और उसे ही देखने लगती है। रघु घोष अफसर के पीछे दो-एक क़दम चलकर खड़ा हो गया था।

किसी को समझ में नहीं आया कि ऑफ़िसर कहाँ जा रहा है। पहले सोचा था कि शायद खड़ा होने के लिये जगह बदल रहा था। फिर सोचा कि पेशाब करने जा रहा है। पेशाब करना होता तो बाँध के ऊपर ही उत्तर की ओर दो क़दम बढ़ जाने से जगह मिल जाती। पर शायद बाँध पर से ऑफ़िसर लोगों को पेशाब करना नहीं आता। तब तक ऑफ़िसर ने बाँध के नीचे आकर जीप की ओर चलना शुरू कर दिया था। बाँध से नीचे उतर कर ऑफ़िसर चला जा रहा था।

अश्विनी राय ने धीरे से कहा, "ऐ नरेश, अरे ऑफ़िसर चला जा रहा है, देख रे।"

सुनते ही नरेश और अमूल्य उठकर खड़े हो गये। वहीं से ही गर्दन टेककर देखा। पर समझ में नहीं आने से आँख के उपर हथेली की छाया करके देखने लगे। पीछे से जगदीश बारुई सर पर दोनों हाथ उठाकर ताली बजाते हुए बोला, "ले रे अमूल्या, तेरा हजार रुपया जीप पर सवार होकर चला गया। अब बैठे-बैठे अपना हाथ चाटता रह।"

नरेश अपना तलवा मिट्टी पर उतारकर जगदीश की ओर देखकर चीखकर बोला, "चला गया ? आप लोग क्या यहाँ बैठे-बैठे तमाशा देख रहे थे ? चलो, जीप को रोको।" नरेश जगदीश की ओर से मुड़कर हवा में हाथ लहराते हुए बोला, "ऐ चलो सब कोई, जीप रुकवाओ, जीप रुकवाओ।"

यह कहते हुए नरेश अमूल्य को पास में जो हाथ में आया, उसका हाथ पकड़ कर बाँध से हड़बड़ाते हुए नीचे उतर कर ऑफ़िसर की ओर दौड़ना शुरू कर दिया। उसके साथ-साथ और दो-एक आदमी भी उतर आए। फिर उसके पीछे-पीछे और दो-एक आदमी उतरकर बढ़ने लगे। वे चलते-चलते ही जीप की तरफ बढ़ते हैं। पर वहाँ तक ही। बाढ़ग्रस्तों में से अधिकांश बाँध पर खड़े रहे। कोई-कोई नदी की ओर से रास्ते की ओर बढ़कर कतार में खड़े हो यह सब देख रहा था। जो अपनी चीज़-बस्ती की आड़ में सोये-बैठे थे, वे वहाँ से उठे नहीं।

सुबह जब अश्विनी राय की छत पर बाघारू को पहली बार देखा गया था, तब सिर्फ़ निताई को छोड़कर बाँध के सभी लोगों में अफरा-तफरी मच गयी थी। सभी परेशान थे। पर अब, जबकि उसे ढूँढ़ने के लिये शहर से ऑफ़िसर आकर कुछ किये बग़ैर वापस जा रहा था, तो उस मामले में किसी का कोई उछाह नज़र नहीं आता। बाघारू नज़र नहीं आ रहा अब, यह वहाँ था भी या नहीं। यह भी समझ में नहीं आ रहा था। अगर वह गया था तो बह ही गया था—इस तरह की एक युक्ति भी इस बीच तैयार हो चुकी थी। आदमी सुपारी के पेड़ पर चढ़कर गायब हो गया था—इस बात का रहस्य और भय इस बीच बारिश, हवा और बातों से अस्पष्ट हो गया था। बाढ़ से उफनती तिस्ता में इस तरह का भौतिक दृश्य अब कोई मायने नहीं रखता, पर भविष्य के लिये प्रासंगिक था। बस यह एक कहानी बनकर ही रह गयी थी।

जगदीश बारुई पीछे से हँसकर दोनों हाथ हिलाते हुए बोला, "दिनभर में हवा और पानी थोड़ा-सा भी कम नहीं हुआ है। यही अब सबसे बड़े भय का कारण है इस ढलती दोपहर में। आज रात भर भी अगर यह हवा बारिश चली तो बाढ़ का चेहरा क्या होगा, यह कोई सोच नहीं पा रहा है। शायद सोचना

भी नहीं चाह रहा है। पर उस सोच न पाने के मध्य ही अपने को आनेवाले ख़तरे के लिये तैयार कर रहे हैं।''

फिर इस भीड़ के बीच एक और अनिश्चयताबोध इसी दोपहर से ही फैलने लगा था। इनके हिसाब के मुताबिक आज ही बाढ़ का सबसे ख़तरनाक दिन होना चाहिये। पर यह बाढ़ अगर और ही बढ़ती गयी, तो क्या उनके चर का कुछ बाकी बचेगा ? जैसे कि वे इस बात को जानते थे कि आज दोपहर तक जितना पानी आया है, उसके नीचे उनका चर बना रहेगा। पर इसके बाद जो पानी आयेगा, उससे उनकी ज़मीन नदी के साथ मिल सकती है। तो फिर ? फिर कौन कहाँ घर तलाशेगा ? ज़मीन की तलाश करेगा ?

ये बातें कोई मुँह खोलकर नहीं करता था, करना भी कैसे ! पर बातें अंदर ही अंदर तैयार हो चुकी थी। जब वे इस घटना का सामना करेंगे—तब शायद सभी तैयार हो जायेंगे। एक चर डूब जाने का मतलब होता है और एक चर का जगना। पर उस तैयारी के लिये भी तो कुछ समय चाहिये। जब ऑफ़िसर आकर बातें कर रहा था, फ़्लड देखने आये रायपुर—रंधामाली के लोगों की भीड़ जुटी थी, तभी से बाढ़ के शिकार लोगों के बीच बारिश, हवा और नदी के जल का हिसाब-किताब एक तरह से शुरू हो गया था। इसी से वे इन दर्शनार्थियों की ओर से थोड़ा उदासीन हो उठे थे।

फिर ऑफ़िसर भागे जा रहा है, उसे पकड़ने के लिये नरेश हांक लगाकर दौड़ रहा था। नरेश के साथ या उसके पीछे-पीछे उन्हें भी भागना चाहिये। कम-से-कम उन्हीं के चर में तो सुबह उस आदमी को देखा गया था तो उसका उद्धार करना जैसे उनके चर के ही किसी का उद्धार करने के बराबर है।

पर ऑफिसर नाव का भाड़ा और माँझियों को मज़दूरी देगा, यह सुनकर नरेश प्रति आदमी ढाई सौ की माँग कर बैठा था। यानी चार आदमियों के लिये हज़ार रुपये, नाव का भाड़ा सो अलग। तभी से जैसे अब और उनका नहीं रहा। चर का वह आदमी भी अब उनका न रहा। इस तरह की बाढ़ में, इस मुसीबत में नाव लेकर जो लोग जायेंगे, वे अपनी मर्ज़ी के मुताबिक मज़दूरी माँग सकते थे। इस बाढ़ में नाव ले जाने में भी तो कोई कम ख़तरा नहीं था। वह पैसा जो दे सकता था, दे सकता था, जो नहीं दे सकता, नहीं दे सकता। पर वह पैसा तो सरकार का पैसा था। नरेश और अमूल्य सबसे पहले राजी होकर हिम्मत करके कह पाये थे, इसी से पैसा उन्हें मिल रहा था—इससे चर के दूसरे लायक लोगों को तो ठेस पहुँच ही सकती था। सरकार अगर अपनी नाव से अपने माँझियों को लेकर 'रेस्क्यू' करती तो वह सरकारी मामला होता। पर तिस्ता की बाढ़ में एक आदमी बहा, वह कौन था, कहाँ का था, पता नहीं किसी को, फिर खुद ही तैर कर अश्विनी राय की छत पर आया, फिर खुद ही सुपारी के पेड़ पर

चढ़ा, तब उस आदमी का बहाना लेकर नरेश, अमूल्य और दो अन्य लोगों को साथ लेकर हज़ार रुपये जेब में भर लेंगे—यह किसी ने भी सोचा तक नहीं था। सुबह ज़ब इसी को लेकर शोर-शराबा हो रहा था, तब सब उस आदमी को लेकर अधीर हो उठे थे। उसी के चलते फ़ोन किया गया था। पर सुबह का यह शोरगुल दोपहर को नरेश और अमूल्य का बिज़नेस का रूप ले लेगा, वह किसे पता था ? अभी अगर नरेश और अमूल्य घेराव करके ऑफ़िसर से रुपया वसूली करते हैं तो करें। पर चर के लोग नरेश और अमूल्य के लिये क्यों घेराव करने लगे ?

शायद निताई रहता तो यह सब नहीं होता। पंचायत का आदमी होने के नाते वही ऑफ़िसर के साथ बात करता। और निताई के साथ बातचीत होती तो शायद रुपये पैसे का सवाल ही पैदा न हुआ होता। बग़ैर पैसे के ही शायद निताई ने नाव का बंदोबस्त कर लिया। या फिर इस बारे में सर ही नहीं खपाता। पर निताई तो दिनभर के लिए शहर में था—रिलीफ़ की खोज में।

ऑफ़िसर के जीप के निकट पहुँचने से पहले ही नरेश वगैरह ने उसे पकड़ लिया। मतलब उनके दौड़ने की आवाज़ सुनकर ऑफिसर मुड़कर खड़ा हो गया। वह सीधा घूमकर खड़ा नहीं हुआ, बाँध की ओर मुँह किये उनकी ओर गर्दन घुमाकर देखता रहा। ऑफ़िसर को पहले से ही नरेश की आवाज़ कानों में पड़ गयी थी। वे दौड़कर उसके निकट आ रहे थे इसका पता उसे चल गया था, पर उसे लगा था कि वह उनके पहुँचने के पहले ही जीप तक पहुँच जायेगा। थोड़ी दूर आने पर ही उसको दोनों सिपाहियों का ख्याल आया था। याद आते ही उसे एक युक्ति भी सूझ गयी कि वह दरअसल दोनों सिपाहियों को वहाँ तैनात कर आया है, यह देखने के लिये कि और कोई नदी में बहकर आता है कि नहीं—उसपर नज़र रखने के लिये। पर थोड़ा आगे आने पर उसको लगा था कि इस तरह से जीप में चले जाने पर तमाम बातें बिगड़ जायेंगी। फिर ये लोग यहाँ से डी. सी. को फ़ोन भी कर सकते हैं। फिर तो आधी रात में ही शायद उसे यहाँ भेज दिया जाये। तब तो उसके लिये यहाँ कुछ भी करवाना मुश्किल होगा। यही सोचकर वह खड़ा हो गया।

पर नरेश और अमूल्य जिस भाव से उसकी ओर भागे जा रहे थे, उससे उसे थोड़ा भय भी लगा। ज़्यादातर लोगों को बाँध पर खड़े देखकर उसे कुछ हिम्मत भी बँधी कि ये उसे कुछ करेंगे नहीं। उसका तो दोष नहीं। ये लोग करीब डेढ़-दो हज़ार रुपये चाह रहे थे, पाँच सौ से अधिक खर्च करना उसकी क्षमता से बाहर है। पर उसका इस तरह से अचानक चले आना ठीक नहीं हुआ। अब अगर वे आकर उसे पकड़कर ले जायें तो वह और भी बुरा होगा और वह यहाँ से जा भी नहीं सकेगा। ऑफ़िसर फिर से जीप की ओर चलने लगा था पर वह धीरे-धीरे चल रहा था।

जीप के सामने पहुँचने के पहले ही नरेश, अमूल्य और उसके साथ जो लोग दौड़ रहे थे, वे सब उसके पीछे पहुँच गये। ऑफ़िसर खड़ा नहीं हुआ। गर्दन भी नहीं घुमाई। नरेश और अमूल्य उसके पास पहुँच कर पीछे-पीछे चलते रहे और ज़ोर-ज़ोर से साँस ले रहे थे। पर कुछ कह नहीं पा रहे थे।

ऑफिसर ड्राइवर से बोला, "गाड़ी घुमाओ, इधर से होकर रायपुर चलना है।" कहता हुआ गाड़ी घुमाने का इंतजार करने लगा।

तभी नरेश ने कहा, "किया आप चले जायेंगे ?"

उसकी ओर मुड़ बगैर ऑफ़िसर ने कहा, "मैंने क्या कहा आप लोगों ने तो सुन ही लिया होगा ?"

"तो फिर उस आदमी के रेस्क्यू का क्या होगा ?"

"वहाँ तो किसी आदमी को देखा नहीं। तुम कह रहे हो कि आदमी है। मैंने तो कहा, आदमी दो, नाव दो, पैसा मिलेगा। तुमने मौके का नाजायज़ फ़ायदा उठाना चाहा। तो यह सब तो मैं तय नहीं कर सकता। मैं कंट्रोल रूम को बता दूँगा। वे जो करने के लिये कहें, वही किया जायेगा।"

नरेश या अमूल्य ऑफ़िसर के साथ इस विषय पर बहस करने वालों में से नहीं थे। फिर बाढ़ग्रस्त सभी लोग अगर उनके साथ होते तो वे चीख़-चिल्ला सकते थे। फिर यह बात भी ठीक था कि उन्होंने दाँव मारने वाले पैसों की माँग की थी। फलस्वरूप ऑफ़िसर को पकड़ने के लिये यहाँ तक दौड़ लगाना भी उनके लिये बेकार-सा लगता था अपने-आप में। जीप घूमकर ऑफ़िसर के सामने आकर रुक गयी थी। ऑफ़िसर के ड्राईवर के पास बैठ जाने पर नरेश ने थोड़ी ऊँची आवाज़ में कहने की कोशिश की, "आप क्या वापस जायेंगे या बागान से ही शहर वापस चले जायेंगे ?"

ऑफ़िसर ने कहा है, "देखो भाई, पाँच सौ तक ख़र्च करना मेरे अधिकार में है। तुम अगर उतने के अंदर कर पाते तो मैं अभी ही कर सकता था। अभी मैं कंट्रोल रूम को फ़ोन करूँगा। अभी तो कंट्रोल से फ़ोन करके या ख़बर भेज के सेना की नाव भेजी नहीं जा सकती। अगर हुआ भी तो कल दोपहर से पहले नहीं। फिर कोई दिखायी भी नहीं पड़ रहा। रेस्क्यू किया जायेगा किसे ? जाइये। इन बातों में अब क्या रखा है। मैं फ़ोन करके फिर यहाँ आ जाऊँगा, कंट्रोलरूम से क्या खबर मिली है वह आप लोगों को बताकर चला जाऊँगा। मुझे और कुछ करने को नहीं है। चलो।"

ड्राईवर के गाड़ी स्टार्ट करते ही नरेश ने कहा, "रुको, रुको।" ड्राईवर ने गाड़ी रोक ली। नरेश ने आगे बढ़कर कहा, "सुनिये सर, इस नदी में आपकी मिलीटरी भी उतरने का साहस नहीं कर सकती। पानी में ऐसे-ऐसे झटके लगते हैं कि नाव उलट जायेगी। आपको भी कष्ट करके फ़ोन करने की कोई

आवश्यकता नहीं है। नाव का भाड़ा मिलाकर एक हज़ार रुपया कर दीजिये। हम अभी नाव उतार देंगे।"

"तुम लोग अभी जाओगे ? नाव पास में ही है ?"

"हाँ, वह रंधामाली घाट के बगल में।"

"तो फिर सुनो—मैं तुम्हें साढ़े सात सौ रुपये दे सकता हूँ। पर अभी पाँच सौ। कल ऑफ़िस में जाकर बाक़ी के ढाई सौ रुपये लाने होंगे। हमें एक दो घटना के लिये एक बार में पाँच सौ से ऊपर ख़र्च करने का अधिकार नहीं है। ढाई सौ कल आप लोगों को दूँगा।"

नरेश ने हँसते-हँसते माथा हिलाते-हिलाते कहा, "कल जब फिर से और एक रेस्कू बनायेंगे तब न, उसका भी पाँच सौ का रेस्कू बनाइये न सर। घर-बार, ज़मीनबाड़ी—सबकुछ तो बह गया, आप तो देख रहे हैं न सर ?"

अबकी बार ऑफ़िसर ने सस्नेह धमकी दी, "चलो गाड़ी में। इसके बाद फिर नाव लेने का समय नहीं रहेगा। चलो। नाव जहां है, वहां चलते है। और किसे-किसे लेना है, ले लो। ड्राईवर, गाड़ी मोड़ो।"

नरेश ने एक बार अपने पीछे की भीड़ की ओर देखा। फिर एक लड़के को बुलाया—ऐ बालिस सुन, दौडकर आ। अश्विनी काका से बाक़ी लोगों को हाट की बगल में फ़ौरन भेजने को कहना।" नरेश जाकर जीप के पीछे बैठ गया अमूल्य जब जीप में चढ़ रहा था तो बालिस पीछे से चिल्लाया, "मुझे भी गाड़ी में ले चलो।"

नरेश ने उसे धमकी दी, "बोला न, दौड़कर जा।"

"अरे उसे भी बिठा लो न। और किसे लेना है उसे भी गाड़ी में ले चलो। चलकर जाने में तो समय लगेगा।" ऑफ़िसर ने कहा।

बालिस पीछे बैठ गया। गाड़ी बाँध के नीचे से बाढ़ग्रस्तों की अस्थायी शिविर की ओर चली जा रही थी। नरेश ने कहा है, "नहीं, नाव जहाँ है, वहाँ तक तो गाड़ी जा नहीं सकती। उस बाँध के बराबर जाने के बाद आगे जा नहीं सकती।

कहते-कहते ही गाड़ी वहाँ पहुँच गयी। बालिस पीछे से कूद कर उतर गया। बाँध के लोगबाग समझ ही नहीं पाये की क्या हुआ। ऑफ़िसर ने नरेश और अमूल्य को पकड़ लिया कि इन्होंने ऑफ़िसर को पकड़ लिया वह उनकी समझ में नहीं आया। नरेश और अमूल्य का ऑफ़िसर के पीछे भागना, फिर ऑफ़िसर के साथ गाड़ी में बैठकर वहाँ वापस आना—इसमें कहीं कोई ख़तरे की बात है या नहीं, इसे लेकर बाढ़ के लोगों में एक तरह की अनश्चितता तो थी ही।

नरेश ऑफ़िसर के पास से मुँह निकाल कर बाँध की ओर देखकर चिल्लाया है, "अश्विनी साहा, कादाखोया को भेज दो हाट की बगल में।" फिर मुँह अंदर करके बोला, "चलिये।" नरेश की गर्म साँसें ऑफ़िसर के दायें कान के पीछे

और गर्दन में लगी है। नरेश के मुँह अंदर कर लेने पर ऑफ़िसर ने रूमाल निकाल कर गर्दन पोंछ ली। गाड़ी सीधी भागी जा रही थी।

इस हवा तूफ़ान में नरेश की आवाज़ बाँध तक पहुँच पायी या नहीं समझ में नहीं आ रहा था। हाँलाकि नरेश जहाँ से आवाज़ लगा रहा था वहाँ प्रायः हवा का ज़ोर नहीं था। बाँध में रुक गया था। पर बाँध के उपर तो हवा-तूफान वैसे ही बरकरार था। तब तक बालिस बाँध के उपर ज़ाकर घोषणा कर चुका था कि नाव जायेगी। कादोखोया को भेजने को कहा है।"

कादाखोया, अश्विनी राय जोतदार का आदमी था, चर में सबसे उस्ताद माँझी।

141
कादाखोया का निद्रा-भंग

नरेश और अमूल्य को लेकर ऑफ़िसर की जीप के चले जाने के बाद अश्विनी राय ने कादाखोया को जाकर पुकारा, "हे बाऊ।," अश्विनी के गाय-बछड़े जहाँ बँधे थे, कादाखोया उसके नीचे बाँध की पश्चिमी ढलान में सोया था। उधर के बोल्डरों के बीच थोड़ी-सी समतल जगह उसने खोज निकाली थी। वह सिर्फ़ एक लँगोटी पहने हुए था और साथ में एक गमछा। गमछे को एक माथे पर ढकना-सा ढँक रखा था। बाँध के चलते हवा का इधर उतना ज़ोर नहीं था कि जिससे कादाखोया के सर से गमछा उड़ जाये। हाँलाकि कादाखोया ने गर से गले तक गमछे को इस तरह से लपेट रखा था कि गमछे का उड़ना संभव ही न था। उसका तमाम शरीर इस तरह से नंगा था कि बीच की लँगोटी भी शरीर के रंग से बिल्कुल ही मिल गयी थी। जहाँ मनुष्य के लिये कपड़े की सबसे अधिक आवश्यकता होती है, कादाखोया के वहाँ कपडा था ही नहीं। और जहाँ कपड़े की आवश्यकता ही नहीं रहती उस माथे को कादाखोया गमछा से इस तरह से लपेट रखा था कि उसे फ़ौरन देखने पर वह आदमी जैसा लगता ही नहीं था। बाढ़ के समय बाँध पर उस तरह की कितनी लकड़ियाँ, पड़ी रहती थीं।

अश्विनी राय का स्वर धीमा था। बाँध के उपर से कादाखोया उसकी आवाज़ सुन नहीं पाया। आश्विनी राय तब बो॰॰गें के ऊपर से होते हुए नीचे उतरा और पुकारा, "ए बाऊ, बाऊ रे...।" कादाखोया वह भी सुन नहीं पाया। तब तक अश्विनी राय कादाखोया के पास पहुँच चुका था। पहुँचकर देखा की कादाखोया सोया पड़ा है। गमछे से ढँके उसके मुँह से खर्राटें सुनायी दे रहे हैं। अश्विनी राय आगे बढ़ और कादाखोया के सिर को पकड़कर झिंझोड़ा, "हे, बा ...बाऊ गे।"

बाँध के उपर से जगदीश बारुई चिल्लाता है, "अरे बोल्डर को लगाओ माये पर...यह तो मुरदा जैसा सोया पड़ा है, धक्का दो, धक्का ।"

अश्विनी राय के चेहरे-मोहरे पर एक असहाय का-सा भाव तैर रहा था। उसने जगदीश की ओर देखा—जैसे जगदीश की बाते न सुनने से वह क्रोधित हो उठेगा। फिर और थोड़ा आगे बढ़कर दोनो हाथो से कादाखोया की पत्थर जैसी चौड़ी पीठ को पकडकर हिला दिया, "ऐ बाऊ, बाऊ रे ।"

कादाखोया की इतनी बडी पीठ को अश्विनी राय अपने छोटे-छोटे हाथो से हिला नही पाया। पर कादाखोया जग गया है यह समझ मे आ गया, उसने दोनों हाथों की आस्तीन को मोडकर और जरा जोर लगा कर पुकारा, "ऐ बाऊ, बाऊ रे...।"

अब कादाखोया चित हो गया। वह करवट बदल कर चित हो गया। इससे बोल्डर पर जो छोटे-छोटे पेड़-पौधे थे, वे उसकी छाती के आसपास लगे रहे, छोटे-छोटे ककड़ भी लगे रहे। अब उसका सिर बोल्डर से हटकर एक फाँक मे गिरकर पीछे की ओर चला गया—गला तन गया। दोनो पैर ऐसे फेले रहे कि देखने से कोई जीवित मनुष्य नही लगता था।

बाँध पर तब तक एक कतार-सी बन गयी थी। रघु घोष चिल्लाया, "अरे, सिर पर पानी डालो, पानी।"

रघु घोष की बहन गोपा ने पूछा, "क्यो नशा-वशा किया है क्या ?"

रघु घोष की पत्नी लिली ने कहा, "कहाँ टीवी मे नाव देखते, वह तो इस मिठुन चक्रवर्ती को देखना पड़ रहा है।" कहती हुई वह खिलखिला कर हँस पड़ी। रघु घोष ने भी हँसकर कहा, "मिठुन चक्रवर्ती भी इसी तरह की लँगोटी पहनता है क्या ?"

"वह तो लँगोटी जैसा ही टाइट पैंट पहनता है।" कहकर लिली फिर से हँस पड़ी।

"तुम्हारे कादाखोया को जागना तो कुंभकरण को जागने जैसा है। खीला दो, खीला दो, नहीं तो जागेगा ही नहीं।" जगदीश ऊपर से बोला।

उसे एक बार और बुलाने के लिये अश्विनी के हाथ बढ़ाते ही कादाखोया दोनों हाथ मुँह के पास ले गया। अश्विनी ने हाथ हटाकर बुलाया, "ऐ कादाखोया, झट से उठ जा, उठ, नाव ले जाना है।"

कादाखोया उठकर बैठ गया। गमछे को जिस तरह से उसने सिर पर लपेटा था, वह उसके चित्त होने से घूम गया था। उसे वह खोल नहीं पाता। गमछे में लिपटे सिर के साथ वह उठ बैठा था। बैठकर भी दोनों हाथों से गमछे के सिरे को ढूँढ नहीं पाया। तो उसी तरह गमछा से लिपटे सिर को लेकर ही खड़ा हो जाता है और हाथ बढ़ाकर गमछे का कोना खोजने लगा। न मिलने पर वह

बाँध पर चढ़ने के लिये उसी तरह निकल पड़ा। आख़िरकार गमछे का कोना न मिलने पर उसे गले से उपर उठा लिया। गमछे के भीतर से उसकी ठुड्डी, मुँह तना निकलता था पर नाक फँस जाती है। आख़िरकार बाँध पर उठकर ज़ोर से झटका देते ही गमछा खुल जाता है। गमछा हाथ में लेकर मुँह पोंछा। फिर अश्विनी राय को ढूँढ़ने लगा।

अश्विनी राय तब तक बाँध पर नहीं पहुँचा था। पर कादाखोया गमछा खोल चुका था यह देखकर चीख़कर बोला, "हाट की बगल में चला जा, नरेशुआ है वहाँ, नाव ले जाना है।"

कादाखोया गमछे से मुँह को मलते-मलते उस भीड़ में होते हुए बाँध की पूर्वी ढलान के बोल्डर पर लंबा डग भरते हुए कोने से जल के नीचे उतर गया, उसके बाद पानी की निकासी की नाली को एक फलांग में कूदकर जाल से घिरे बोल्डर के ऊपर से मोड़ पर अदृश्य हो गया।

ये जो इतनी भीड़ थी उसे कादाखोया ने नहीं देखा, हवा-बारिश नहीं देखा, नदी का पानी नही देखा। वह इस तरह से चल रहा था जैसे मटरगस्ती करने निकला हो। बाँध पर से नीचे छलाँग लगाते हुए उतरने से उसके शरीर से कुछ रेत-कंकड़ झर गये, पर सब नहीं।

रंधामानी हाट की नाव कहां रहती है, यह सभी को पता था। नाव का एक मालिक भी है, पर आमतौर पर चर के लोग बाज़ार में सब्ज़ी-भाजी का बोझा लाने के लिये ही नाव का व्यवहार करते थे। ठीक डोंगी जैसा नहीं पर हाट के दिन डोंगी-सा इसका इस्तेमाल ज़रूर होता था। चर के जो लोग नाव का उपयोग करते थे, वे हाट के दिन मालिक के हाथ में कुछ पैसे पकड़ा देते थे। नाव के मालिक की एक छोटी-सी मनिहारी की दुकान है। नाव की देखरेख, छोटी-मोटी मरम्मत का काम चर के लोग ही किया करते थे। कादाखोया नींद में ही 'नाव' का नाम सुनकर जाग उठा था और कहाँ जाना है वह समझ गया था।

ठीक वैसे ही बाँध के लोग भी समझ गये थे। चर के लोग तो समझते हैं ही, हाट और बागान के लोग भी समझ गये थे। उन्हें पता था कि नाव कहाँ बँधी है—यहाँ से उत्तर में बाँध जहाँ बायीं ओर घूमा है उस कोने में नाव बँधी है। ऑफ़िसर गाड़ी से नरेश और अमूल्य को इसी मोड़ पर उतार देगा और कादाखोया इधर से इस मोड़ पर जा पहुँचेगा।

पर नाव छोड़ने के पहले तैयारी में कुछ समय लग जायेगा—यह बात भी बाँध के लोगों को पता था। ऐसी ही वह एक टूटी-फूटी नाव थी—इतना-सा पानी पार करने में भी लड़खड़ा जाती थी। उस पर बैठने के लिये बाँस में कील से एक लकड़ी का तख़्ता हो भी सकता है, नहीं भी। इस बाढ़ के पानी में नाव

ले जाने के लिये चाहे कोई हथौड़ा न मिले तो न सही, कम-से-कम पत्थर से ही क्यों न हो एक-दो जगह को तो ठोंक-पीट ठीक करना ही होगा। फिर जो कई लोग जायेंगे, तीन लोग तो हो ही गये, उनमें से प्रत्येक के लिये लंबे बाँस चाहिये। बाँस के बिना इस जल के स्रोत में नाव को सँभाला नहीं जा सकता। अच्छी-भली नाव को सँभालना मुश्किल है, फिर इसकी तो बात ही क्या ?

बाँध के लोग नदी की ओर आकर खड़े थे। उल्टी दिशा में ऑफ़िसर की जीप रुकने की आवाज़ सुनायी दी। इससे कुछ लोग उधर भी चले गये तब तक ऑफिसर भी वहाँ आ गया था।

142

ऑपरेशन बाघारू

बाँध के ऊपर सीधा नदी की ओर ताकते, कमर पर हाथ रखकर, खड़े-खड़े ही ऑफ़िसर ने कहा, "अभी छोड देंगे।" फिर बायीं ओर देखा, जिधर से होकर नाव आनेवाली थी उसके देखा-देखी दूसरे लोग भी उधर ही देखने लगे थे।

अभी नाव का आना ही सबसे बड़ी बात थी। इसी से बाँध की भीड कुछ उत्तर की ओर भी फैल गयी थी। वहाँ जो दो-चार गाय-बछडे बँधे थे उनसे हटकर। जहाँ तमाम सामानों को सहेज कर चर के लोग अपना संसार बसाये हुए थे—औरतें वहीं से खड़ी-खडी निहार रही थीं।

ऑफ़िसर थोड़ा दायें-बायें ताक कर कहता है, "नाव की जो कंडीशन है, यह जा तो पायेगी न ?"

ऑफिसर शायद कोई जवाब का इंतज़ार कर रहा था। पर कोई उत्तर न मिलने पर उसने फिर से दायें-बायें देखा। फिर से उसने बायीं ओर नाव के प्रवेशपथ की ओर एक बार देखकर ऑफिसर घूमकर किसी को खोजने-सा लगा। फिर नदी की ओर पीछे मुड़ गया, "अरे, दोनों सिपाही कहाँ चले गये ?" ऑफ़िसर जब सिपाहियों की खोज में इधर-उधर देख रहा था तो बाँध के लोगों की दबी आवाज़ में बातचीत हवा के विपरीत दिशा में फैल गयी थी, "आ गया, आ गया।" जो लोग बाँध के उत्तरी दिशा में खड़े थे, वे ही सबसे पहले देख पाये थे। उनके पीछे जो थे वे देखने के लिए हड़बड़ी में आगे जाते-जाते बाँध की ढलान से नीचे उतरते जा रहे थे। तब तक नाव लकड़ी के एक टुकड़े की तरह बहाव में लोगों के सामने आ गयी थी। बाँध के बाकी अंश से भी सब हड़बड़ा कर नीचे जल के बिल्कुल किनारे पर पहुँच गये थे। बाँध के ऊपर थे ऑफ़िसर, रघु घोष, लिली, गोपा, ऑफ़िस बाबू की बड़ी साली, गोदाम बाबू और हाट के कई लोग। बाढ़ग्रस्तों में से भी दो-एक बूढ़े नीचे नहीं उतरे। पता नहीं मवेशियों ने भी न जाने कैसे

जान लिया कि नदी में कुछ होने जा रहा है। उन्होंने भी नदी की तरफ मुँह कर गर्दन बढ़ा दिया था। एक गाय के गले में रस्सी फँस गयी। बहाव की तेज़ी से नाव घूम गयी थी। पाट से ऐसा नज़र आ रहा था कि किसी भी समय उलट सकती थी। पर नरेश, अमूल्य और कादाखोया उधर देख ही नहीं पा रहे थे। नाव अब सीधी नहीं थी, मुड़ गयी थी। यही तो नाव के लिये ख़तरनाक होता है। सीधी न रहने से ही नाव डूबती है। वहाव के साथ वहते ही नरेश, अमूल्य और कादाखोया अपना जी-जान लगाकर नाव को सीधा करने के लिये पानी के ऊपर तक क्रमशः झुक गये थे। नाव पर से जितना झुकना संभव था, उस ख़तरनाक सीमा तक वे झुक गये थे। नाव के आगे की ओर थोड़ा आगे-पीछे खड़े होकर नरेश और अमूल्य बाँस से खे रहे थे। वे वहाव का उल्टी दिशा में खे रहे थे, जिससे बहाव के मुहाने पर नाव की गति प्रभावित हो सके। कादाखोया नाव के पीछे खड़ा था और स्रोत की ओर मुँह करके खेता जा रहा था। पर उसे अकेले ही दो आदमियों का काम करना पड़ रहा था—वह डंडा लेकर एक वार दायें चला रहा था तो एक बार बायें। स्रोत के विपरीत नाव को बनाये रखना ही तीनों का काम था। और उसी कोशिश से नाव स्रोत में टिकी हुई थी। वे डंड नियंत्रित भी रहे थे। पर इस तरह के स्रोत से काफ़ी दूर तक जाने पर ही वैसा नियंत्रण प्राप्त होता है। स्रोत के मुख पर नाव छोड़ देने के बाद पहला काम होता है नाव को सीधी रखना। सीधा रख पाने से कुछ ही पल में यह डंडा मारने और उठाने में एक छंद बन गया था। ओर तव स्रोत के मुख पर भी नाव और डूबी नहीं। पर यहाँ अगर वह समय लिया जाये तो नाव यह चर से दूर निकल जायेगी। और तव नाव का लौटाना असंभव हो जायेगा। बाँध से चर की दूरी पानी के रास्ते इतनी कम थी कि किसी तरह नाव को ठेलकर थोड़ा सरका लेने से ही नाव चर के किसी छत या पेड़ के पास पहुँच पाती। पर इस स्रोत के वेग को ठेलकर वही मामूली-सा खिसका पाना ही जैसे संभव हो नहीं पा रहा था।

बाँध के ऐन सामने आकर ही नाव मुड़ गयी थी। स्रोत के मुख की ओर सिर न होकर स्रोत की आड़ में आ गया था। अगर इसे किसी तरह रोका न जा सका तो नाव दो-एक चक्कर खाकर स्रोत के धक्के से डगमगा कर एक तरफ झुक जायेगी।

कादाखोया एक बार बायें और एक वार दायें डंडा मारकर भी जैसे नाव को थोड़ा भी सीधा रख नहीं पाया। उधर अश्विनी राय के सुपारी बाग को प्रायः पार कर गये। अचानक कादाखोया ने बायीं ओर का डंडा मारना बंद करके दायीं ओर लगातार तीन बार डंडा मारा। वह डंडा मारना पानी में जैसे भाला मारने और निकालने जैसा था। नाव पल भर में घूम गयी। बाँध से समवेत आवाज़

उठी—"गया। गया।" पर तब तक नरेश और अमूल्य का मुँह चर की ओर से बाँध की दिशा में घूम गया था। और कादाखोया नाव के अगले सिरे पर आ गया था। कादाखोया नाव के दोनों ओर पाँव रखकर जैसे मिट्टी खोद रहा था या कुदाल चला रहा हो, ठीक उसी मुद्रा में डंडे को दोनों हाथों से पानी में ठेल रहा था। पानी में पड़ते-न-पड़ते डंडा सीधा हुए जा रहा था। सीधा होते-न-होते उसे उठाकर उसने फिर से पानी में डाल दिया। नाव एक कोण से चर की ओर भाग रही थी, "हे एक सोता मिल गया, मिल गया है।" वहाँ कोई स्रोत चर की ओर ज़रूर था। चर की ओर से जाते हुए भी उस स्रोत का वेग कोई कम नहीं था। पर वे नदी को पार करके चर में नाव को रोक पायेंगे या नहीं, वह अलग बात थी। नाव तब अश्विनी राय के सुपारी का बाग छोड़ सीधा दक्षिण के स्रोत की ओर जा रही थी। बीच-बीच में एकाध उभरे हुए चर की आड़ में होती जा रही थी।

"वह रुक गया, रुक गया।" बाँध पर सहसा आवाज़ उठी।

"क्या हुआ, क्या हुआ" कहता हुआ ऑफ़िसर दोनों ओर देखने लगा। पर किसी ने कुछ जवाब नहीं दिया।

ऑफ़िसर फ़ौरन बाँध से नीचे उतरने लगा। उसके साथ-साथ रघु घोष, उसकी बीवी, बहन, ऑफ़िस बाबू की बड़ी साली, गोदाम बाबू, हाट के कुछ लोग भी उतरने लगे थे। उतरते-उतरते ही लिली ने सवाल किया, "क्या नाव उलट गयी ?"

गोपा बोली, "बाबा, गये ही क्यों ? अभी वापस आयेंगे या वहीं पर रहेंगे ?"

लिली ने कहा, "वहाँ क्या उनके लिये बागान का इंस्पेक्शन बँगला बना रखा है ?"

जल के किनारे पहुँच कर वे पीछे रह गये। उनकी ओर कोई देखता तक नहीं था। ऑफ़िसर पीछे से ऐसा किसी को तलाशने लगा जिसके साथ पहले से उसकी बातचीत हुई हो। पर उस तरह के किसी को न पाकर एक आदमी का कपड़ा पकड़ कर खींचा। उसने गर्दन झटक कर कपड़ा छुड़ा लेता था। पर ऑफ़िसर ने फिर उसका कपड़ा पकड़कर कहा, "सुनिये तो।" ऑफ़िसर की आवाज़ सुनकर उस आदमी के गर्दन घुमाकर उसकी ओर देखते ही ऑफ़िसर से पूछा, "क्यों ? हुआ क्या है ? नाव क्या पहुँच गयी है ?"

"हाँ, हाँ। पहुँचकर रुकी हुई है।" कहकर वह फिर से नदी की तरफ़ देखने लगा।

पीछे से जगदीश बारुई ने आकर ऑफ़िसर से कहा, "क्या देख रहे हो ? पहुँच गया है ?"

ऑफ़िसर नदी की ओर से मुड़कर जगदीश से पूछा, "बात क्या है ? नाव

कहीं उलट-पुलट तो नहीं गयी ?"

जगदीश चीखकर बोला, "उलटेगी कैसे ? कादाखोया से कहो न, वह इसी नाव से अभी काशियाबाड़ी चला जाये फिर हमारे नरेश और अमूल्य भी कम ताकतवर नहीं।" जगदीश के कहने में एक साधिकार बोध का भान होता है, जैसे कि नरेश, अमूल्य और कादाखोया की इस तरह की सफलता के पीछे उसका ही हाथ रहा हो।

ऑफ़िसर थोड़ा असहाय भाव से बोला, "तो फिर वे वापस लौटेंगे कब ?"

जगदीश काफ़ी निश्चितता के साथ बोला, "क्यों ? अब्बी। अब्बी वापस आयेंगे। देर क्यों करने लगे ?"

143

नृत्य की भाषा में संलाप

अश्विनी राय की छत या सुपारी बागान मे नाव नहीं भिड़ी। उन्हें बायें छोड़ती हुई नाव कोण बनाते हुए चर के बीच में घुसकर एक पेड़ के साथ करीब-करीब टकरा गयी। नरेश के पेड को जकड़ कर पकड़ते ही नाव अचानक घूमकर पेड़ को घेरे में लेती हुई स्रोत के मुँह पर चली आयी। नरेश को पेड़ और नाव के बीच झूलते रहना पड़ा—पर तब तक कादाखोया एक हाथ से नाव को और एक हाथ से पेड़ को पकड़ कर पानी में छलांग लगा चुका था। इसी से नाव पेड़ के साथ सट गयी थी।

पूरी घटना ही जैसे एकबारगी समय के छंद से घटित हो गयी थी। तिस्ता की बाढ़ के स्रोत में बहकर इस पेड़ में आकर, नाव का लगाना जैसे अमूल्य, नरेश और कादाखोया का, हर रोज़ फेरी चलाने-सा दैनंदिन काम था। उन्हें पता था कि स्रोत की किसी जगह एक ओर से डंडा उठा लेने से नाव चक्कर काटने पर भी डूबती नहीं है। बगैर डूबे सीधे इस चर की ओर चली आयेगी और अश्विनी राय की छत को बायीं ओर छोड़ कोण बनाकर सीधे इस पेड़ के पास पहुँच जायेगी।

असली बात तो यह थी कि इस नदी, इस बाढ़, इस स्रोत की रत्ती भर जगह भी उनकी जानी-पहचानी नहीं थी। बाढ़ का पानी कब आयेगा, उसका हिसाब-किताब लगाकर जिन्हें घर बार, खड़ी फसल छोड़-छाड़कर बाँध पर आना पड़ा था और जो पानी उनकी आँखों के सामने ही हर पल करीबन संपूर्ण अपरिचित होते हुए भी आबादी वाले घर पर उनकी वापसी को अनिश्चित कर रखा था—वहाँ उन्हें पहले से कैसे पता चल सकता था कि यह रात-दिन बहते हुए जल का स्रोत कहाँ पर, कौन-सा मोड़ ले रहा है। फिर भी वे एक टूटी-फूटी नाव लेकर

इस तरह के स्रोत में अनायास ही अपने आपको बहा दें, इसका कारण बस यही स्थिर विश्वास था कि खाली हाथ-पैर से भी अगर वे बह जायें तो कहीं-न-कहीं पार पकड़ ही लेंगे। जल में डूबकर मरेंगे नहीं। जहाँ तक हो सकता है—अपने आप पर उनका यह विश्वास स्थिर था। फिर इस नदी की अभी की अनिश्चितता भी वैसे ही स्थिर थी। जल में बह जाने पर अमूल्य, नरेश और कादाखोया तीनों के अंदर बस एक ही डर काम करता रहा कि अगर नाव उलट जाये तो वे इस पानी में बहकर फिर जीवित नहीं रह सकते। पर फिर भी मृत्यु के भय से वे विचलित नहीं थे—जैसे कि शरीर में आग लग जाने पर सब विचलित होकर इधर-उधर भाग-दौड़ शुरू कर देते—उसका कारण बस यही था कि उन्होंने तो सब कुछ देखभाल, सोच-विचार कर नाव छोड़ा था, फिर स्रोत कितना तेज़ है इसका एक हिसाब भी उनका लगाया हुआ था, और स्रोत में किस तरह का धक्का लग सकता है, उसका भी अंदाज़ा उन्हें हो चुका था। तो बस इतनी ही तैयारी उन्हें सँभाल लेती थी। कभी एक पाँव के झटके से, कभी एक हाथ के दबाव से नाव की डगमगाहट को सँभालते-सँभालते वे चर तक पहुँच चुके थे। नरेश को इस पेड़ को पकड़ना होगा, यह बात उसे उसके अगले पल तक भी पता नहीं थी। और नरेश पेड़ को जकड़ते ही कादाखोया पेड़ पकड़ कर पानी में कूद पड़ेगा, वह भी पता नहीं था। फिर ये सब तो किसी योजनाबद्ध तरीक़े से भी तय नहीं हो सकता था। हाँ, ऐसा हुआ था कि नरेश पेड़ की डाल पकड़कर झूलता गया और नाव उसके नीचे से सरक गयी। अगर ऐसा न हुआ होता तो फिर नाव को नरेश के पैर के नीचे वापस ला पाना किसी के भी वश की बात नहीं थी। ऐसी हालत में नरेश को पेड़ पर चढ़कर ही रह जाना पड़ता।

पर नदी के पेड़ को जकड़ लेते ही कादाखोया का कूद पड़ना एक अद्‌भुत रहस्य ही था—नदी का बहाव और उस बहाव के विरुद्ध खड़े होने का बहुत पुराने एक अनुभव और अभ्यास का फल था। सामूहिक अनुभव और सामूहिक अभ्यास का फल। हालाँकि इसके परवर्ती काम के समर्थन के बिना पहले का काम सम्पूर्ण अर्थहीन हो जाता था। कादाखोया के कूदने से ही नरेश के कूदने को एक अर्थ मिल गया था। वह अर्थ मिलेगा या नहीं, बग़ैर जाने ही नरेश को छलाँग लगाना पड़ा था, फिर बाद में उसका अर्थ समझना पड़ा। नरेश छलाँग लगायेगा या नहीं, यह बग़ैर जाने ही कादाखोया ने पहले छलाँग लगायी और नरेश ने पीछे से पेड़ को पकड़ा। पर यह दोनों काम किसी एक भाव से परस्पर के तालमेल से हो गया था। इस दोपहर, इस घने आकाश के नीचे, घनघोर बारिश और तूफान के बीच। रंधामाली हाट के निकट जो सड़ी-पुरानी रस्सी से नाव बँधी रहती थी, इस भरपूर बाढ़ में अमूल्य ने उसी रस्सी से पेड़ की डाल के साथ नाव को बाँध दिया। उसके बाद वे सब बाघारू को देख पाये थे।

बाघारू अपने पेड़ों के बीच, मचान पर खड़ा हुआ था। वह बैठा था, पर अचानक इस छत के उस पार लोगों का शोरगुल सुनकर वह खड़ा हो गया था। नरेश और अमूल्य उसे पहले से ही देख पाये होते, क्योंकि उसके पेड़ों से होकर ही तो कोण बनाकर उनकी नाव घुसी थी। पर उस समय तो नरेश या अमूल्य को किसी ओर देखने की फुरसत नहीं थी। बाघारू ने जब देखा कि वे उसे देख चुके हैं, तो वह अपने मचान पर बैठ गया। इनकी ओर मुँह करके घुटने में पैरों को जोड़कर बैठ गया।

अब इस नाव और बाघारू के पेड़ के बीच सिर्फ़ कुछेक हाथ जल का फासला था। अगर यह जल न होता तो अश्विनी राय के बाड़ी के बाद की खाली ज़मीन होती। उस खाली ज़मीन, बाँस के घेरे, कद्दू के मचान, मटर साग के ऊपर कई आदमी की लँबाई के समान जल के ऊपर यह नाव और यह मचान था। मिट्टी से जिस डाल को गर्दन उचका कर देखा जा सकता था, उस डाल पर हाथ लगाकर देखते हुए नरेश समझ गया था कि अश्विनी राय की छत के पास वाले सुपारी पेड़ का शिखर इस आदमी के लिये मचान पर उतरने के लिये सीढ़ी का काम करता है। वह सुपारी पेड़ पर चढ़कर उतर आया है और बाँध पर से नरेश वगैरह को लगा था कि आदमी सुपारी के पेड़ पर तो चढ़ा पर उतरा ही नहीं।

बाघारू अपने मचान पर बैठे-बैठे समझ गया था कि यहाँ और भी बहुत से लोग आ पहुँचेंगे। आना भी चाहिये। तिस्ता में डूबे इतने सारे छत और पेड़ का एक साथ मिल पाना मुश्किल है। अब तो यह जगह बिल्कुल नदी की मझधार ही मालूम पड़ी थी। बाघारू नहीं जानता था कि यह सचमुच बीचवाली जगह है या नहीं। बाघारू ने देखा कि ये तीनों आदमी एक नाव मे आये हैं, किसी पेड़ के साथ नहीं।

वे जल में डूबे घर बार, खेत-खलिहान के ऊपर खड़े थे। नरेश ने वहाँ से चिल्ला कर पूछा, "अरे, तुम इस छत के ऊपर बैठे थे ? तभी ?"

बात एक तरह से अवांतर हो गयी थी। बाघारू अपने पेड़ों के बीच मचान पर और ये तीनों एक नाव पर एक पेड़ को पकड़े हुए। बीच में सिर्फ़ कुछ हाथ का फ़ासला। पर इस फासले वाला जल भी बाक़ी के जलस्रोत जैसे काफ़ी तेज़, मटमैला, गंदला, भँवरदार और तरंगविहीन था सिर्फ़ इन कई हाथ के फ़ासले को वे दूर नहीं कर पा रहे थे। पर उस पानी में पेड़ को पकड़ कर झूलते रहने के प्राणांतक प्रयास में नरेश कातर स्वर में सामाजिक जिज्ञासा के अलावा यह और कुछ कह नहीं पाया। इस पाट पर से जब नरेश और अमूल्य नाव लेकर निकले, तो उनका उद्देश्य था कि यहाँ अगर कोई आदमी हुआ तो उसे नाव में सवार करना, और वापस ले जाना है। पर नाव के जल में छोड़ते ही वे अपने

उस उद्देश्य को भूल गये थे। तभी उनका प्राणांतक प्रयास किसी भी तरह इस सुपारी के पेड़ और टीन की छत के पास तक पहुँचना रहा। और जब वे पहुँचे तो अपने प्राथमिक उद्देश्य को ही भूल गये। बाघारू को किसी आविष्कार की तरह देख लेने पर उनका उस उद्देश्य की बात उन्हें अचानक याद आ गयी थी। तभी तो वे सब तिस्ता के उस दिगंत तक फैले स्रोत के मुहाने पर एक तिनके-सा बह रहे थे। नरेश के गले से इस अवांतर सामाजिक जिज्ञासा के अलावा और कुछ नहीं निकल पाया।

पर बाघारू समझ नहीं पाया कि बात उससे ही कही गयी है। वह इनकी ओर देखता ही रहा। ये जब एक पेड़ पकड़ पायेंगे तो कोई-न-कोई व्यवस्था अवश्य ही कर लेंगे। बाघारू अपनी कुल्हाड़ी और नाइलॉन की रस्सी के बारे में सोचने लगा, पर वह उनके किसी काम आ सकता है या नहीं यह अंदाज़ा नहीं लगा सका।

नरेश ने देखा कि उन्हें फिर से किसी बहाव को पार करना है। वह चिल्लाकर बोला, "अमूल्य, कुछ पूछ नहीं सकता ?"

अमूल्य ने नाव पर से बाघारू को पुकारा, "सुनते हो ? ऐ देऊनिया, सुन रहे हो ?" बाघारू उनकी ओर देखता है। वह देखता रहा कि उससे कुछ पूछा गया है, पर उसने कोई जवाब नहीं दिया। वह समझ ही नहीं पाया कि उसे वे लोग पुकार कर कुछ कह रहे हैं। अमूल्य अबकी एक हाथ की अंजुरी में नदी का जल भरकर बाघारू की ओर फेंका। वह पानी बारिश के साथ मिलकर उसके शरीर पर पड़ा।

"अरे गूँगा है क्या ? जायेगा या नहीं ?" नरेश ने बाघारू की ओर से गर्दन घुमाकर उस वापसी की अनिश्चितता को एक बार नापने लगा। उसे नाव में लेकर उस स्रोत के मुख पर फिर से नाव को छोड़ना पड़ेगा।

अमूल्य ने डंडा लेकर बाघारू और उसके बीच जो पानी था, उसमें मारा था। कुछ पानी के छींटे उड़े। डंडा बहाव की तेज़ी से अमूल्य के पीछे चला गया। अमूल्य ने डंडे को उठा लिया।

बाघारू समझ ही नहीं पाया कि ये तीनों कर क्या रहे हैं। ये आकर पेड़ को पकड़ने के बाद उसी हालत में ही थे। न पेड़ पर चढ़ रहे थे, न पेड़ से रस्सा बाँध रहे थे। "हाँफ गये हैं, दम ले रहे हैं।" बाघारू ने यही समझ लिया था। उसके बाद उनका पानी छींटना, पानी में डंडा मारना, इसका कोई मतलब वह निकाल नहीं पाया। पर उसके जीवन में, या रोजमर्रे की ज़िंदगी में, जिस काम के साथ उसके शरीर का कोई सम्पर्क ही नहीं बना, उस काम का कोई मतलब नहीं था। समझने की कोशिश न करने के बीच उसका कोई सिद्धांत नहीं था। शरीर के बग़ैर वह कैसे समझ सकता था ? यहाँ तक कि, जहाँ उसका

शरीर अवस्थित था, वहाँ भी बहुत कुछ उसकी समझ के परे चला गया था।

पर नरेश और अमूल्य अस्थिर हो उठे थे। उनके लिये बाँध पर वापस जाना अब और भी अनिश्चित हो उठा था। उस अनिश्चितता के सामने फिर इस आदमी का इस तरह का गूँगा और निठल्ले बैठे रहना असहनीय होता जा रहा था। आदमी को इस नाव पर लाने में भी एक समस्या थी। पर वह समस्या तो बाद की बात थी। अब तो उसके साथ कुछ बात भी हो नहीं पा रही थी।

अचानक बेचैन होकर अमूल्य और नरेश एक साथ चीख़ उठे, "क्या, सुनाई नहीं दे रहा है ? गूँगा है या बहरा ?"

कादाखोया पेड़ की डाल पकड़कर नाव पर ही बैठा था। जिस रस्सी से नाव को बाँधा जाता वह बहाव के एक ही झटके से टूट गयी थी। नरेश और अमूल्य जिस तरह से नाव के बीच डगमगाते हुए बाघारू की ओर देखकर चिल्ला रहे थे, उससे बाघारू समझ गया कि वे उससे कुछ चाह रहे हैं। वह कूद कर खड़ा हो गया, कुल्हाड़ी लेकर। उसे हाथ में उठाकर बाघारू चिल्लाया, "लगेगा ?"

नाव हिल उठी। नरेश और अमूल्य थोड़ा डोल गये। फ़ौरन गर्दन मोड़कर उस स्रोत का सोता देख लिया, पेड़ से अलग हो जाने पर जहाँ से उन्हें तैर कर जाना था।

नरेश और अमूल्य के गर्दन फिराते ही बाघारू नाइलॉन की रस्सी दिखाकर चिल्लाया, "लगेगा ? ये लगेगा ?"

अमूल्य को अक्ल आ गयी। उसने दोनों हाथों के इशारे से कहा कि उन्हें रस्सी चाहिये। अमूल्य का इशारा समझकर बाघारू फ़ौरन बंडल से रस्सी खोलने लगा। उस प्रक्रिया को उन्हें देखना पड़ा। पानी के ऊपर खड़ा होकर बाघारू ने अपने गले से खोलते हुए पेर से सुनहरी रस्सी को स्रोत में उतार दिया।

नरेश बोला, "यह कौन है रे बाबा ? एक ही बार में कुल्हाड़ी, रस्सी लेकर हमें रेस्कू करने को तैयार खड़ा है।" नरेश फिर से चिल्लाया, "हेए दादा, हेए दादा।" दोनों हाथों में रस्सी लिये बाघारू ने देखा। नरेश ने हाथ उठाकर उसे रुकने को कहा। बाघारू रुक गया। नरेश ने अमूल्य से कहा, "अरे ओ अमूल्या" समझा दो रे। रस्सी काटने का ज़रूरत नाहीं है। ऐसे ही बहा दे और सिरे को पकड़े रहे। हम रस्सी पकड़ कर खींचते हुए उसके निकट पहुँच जायेंगे। वरना हम उसे समझायेंगे कैसे कि हम उसे ही लेने आये है। अमूल्य ने ताली बजाकर बाघारू को बुलाया। फिर एक हाथ हवा में उठाये रहा और दूसरे हाथ से पानी को छुआ। जैसे पानी से कुछ निकालना चाहता हो ऐसी ही मुद्रा से। अमूल्य सीधा खड़ा होकर अपनी छाती पर दोनों हाथों को दो-तीन बार छुआया और बाघारू की तरफ फैला दिया। दो-तीन बार ऐसा करने से अमूल्य समझा कि अगर वह इस बात को समझ पाया है कि वे बाघारू के पास जाना चाहते हैं। तो

बाघारू रस्सी इधर ही फेंकेगा। इसी से उसने रस्सी फेंकने के इशारे की पुनरावृत्ति नही की। जैसे अमूल्य को खुद भी निश्चित न हो कि एक हाथ पानी में और एक हाथ शून्य में रखकर वह अपनी बात समझा भी पायेगा या नहीं। पर उससे तो यही मुद्रा काफ़ी निश्चित लग रही थी—दोनो हाथो से अपनी छाती छूकर, दोनों हाथ बाघारू की ओर बढ़ा देना। इस मुद्रा का दूसरा कोई मतलब हो ही नहीं सकता।

बाघारू दोना हाथो में नाइलॉन की रस्सी पकडकर अमूल्य की ओर ताकते हुए खड़ा था। वह इस इशारे का मतलब समझना चाहता था। बाढ से उफनती तिस्ता में कौन-सी मुद्रा का क्या मतलब है वह जैसे पहले से ही तय रहता है। इस तरह से अगर कोई पानी को भेंट हो तो वहाँ अर्थ विनिमय मे किसी तरह की भी देर नहीं होनी चाहिये। पर फिर भी देर हुई थी, उसका कारण बाघारू था। उसका आजीवन अर्थबोधहीनता थी। यहाँ तक कि दूसरो के शरीर की भाषा समझने की असमर्थता, शारीरिक भाषा की ज्ञानहीनता। बाघारू अपने शरीर के माध्यम से एक के बाद एक ऐसा काम करता जा सकता था, जिसका मतलब, एकबारगी निकटतम मतलब, हो सकता था कि उसे मालूम हो, या फिर जो देखते हैं, उनके लिये बिल्कुल ही अबोध्य लगने लगे। बाघारू को जिस समय गयानाथ ने पेड़ों के साथ बहने के लिये कहा था, तभी बाघारू के लिये उसका अर्थ था फ़्लड का पानी, बहाव और बहते हुए इन चारों पेडों के साथ अपने शरीर को जोडना और गयानाथ, आसिंदर के साथ उसका मतलब था पानी के उतर जाने के बाद पेड का निरापद होना। अभी इन चारो पेडो से बनाये गये मचान मे खडे बाघारू का अक्षर ज्ञान हो रहा था जो कि अमूल्य का इशारा समझते हुए चल रहा था। इसी से अकारण देर होनी जा रही थी।

पर शाम होने में और ज्यादा देर नहीं थी अँधेरा घिर आने पर यहाँ से वे फिर उस पार जा नहीं पायेंगे। हवा, पानी कुछ भी तो कम नहीं था। तिस्ता का पानी इस जगह इतना आ गया था कि उसे नापने जैसा कोई पैमाना भी आँखों के सामने नहीं था। आज रात यहाँ, पेड की डाल पर, या टीन की छत पर या इस नाव पर, या इस मचान में तो रहा नहीं जा सकता। रात भर में यह सब बह सकता था। नरेश और अमूल्य के लिये वह और भी कठिन है। बाढ़ के आने के पहले जो लोग सुरक्षित रूप से अपने गाय-बछड़े घर-संसार लेकर बाँध पर चले आये थे, उन्हें अब इस भरपूर फ्लड में अपने चर के छत पर या अपने चर के पेड़ की छत कितने अपने लोग थे उन्हें, और उस चर को डुबोये जल में यह पेड़ ही, उनके अपने घर का पेड कितना अपरिचित लग रहा था। तिस्ता की बाढ़ ने उन्हें सचमुच बेघर कर दिया था—यह समझने के लिये इस साँझ को कुछ सौ रुपयों के लिये नाव बहाना क्या उनके लिये ठीक हुआ ?

नरेश और अमूल्य जिस समय इस तरह घर के लिये बेचैन और अस्थिर थे उसी समय अमूल्य के भाव का मतलब बाघारू समझ गया। उसने रस्सी फेंक कर दोनो हाथ आकाश की ओर उठाकर उन्हे आश्वस्त किया—ला रहा है, ला रहा है, उन्हे यहा ला रहा है। बाघारू ने इसके बाद मचान को देखा, फिर उसके बाद छत की टीन को देखा।

144
बाघारू और बचावदल

बाघारू ने फट से एक हिसाब कर डाला। मचान मे रस्सी का पानी मे फेंकते ही वे इसे पकड पायेंगे ? फिर उस रस्सी के सहारे वे इन पेडो पर पहुँच सकते है ? पर पेडो के डाल पत्ते और यह मचान चार-चार लोगो का बोझ संभाल सकेगा ? उनके एक साथ इसमे की किसी डाल पर पैर रखते ही तो वह डूब जायेगा। इससे बेहतर है उन्हे टीन की छत पर ले जाना होगा। सुपारी पेड से होते हुए वे छत पर आराम से चढ सकते है।

बाघारू डालो से होते हुए सुपारी पेड के पास गया। वहा उसने सुपारी पेड को जकड कर पकड लिया और दो ही धक्के मे पेड के ऊपर चला गया। फिर थोड़ा झूलकर अश्विनी राय की छत पर पैर रखा। जितनी रस्सी वह खोल चुका था, वह रस्सी उसके शरीर से शून्य मे झूलती रही और उसके शरीर की गति के साथ घूमती रही।

बांध के लोगो ने देखा सुपारी पेड के ऊपर से वह आदमी फिर अश्विनी राय की छत पर उतर आया है।

"उतरा है, उतरा है।," लोग खुशी से चिल्लाने लगे थे।

"कैसे उतरेगा ? इतने टाइम तक क्या सुपारी पेड के ऊपर बैठा रहा था ? ठीक से देखो, नरेशुआ तो वहां चढ़ा नही है ? किसी के शक जाहिर करते ही सभी ने बाँध से देखने की कोशिश की कि टीन की छत पर का आदमी नरेश है या नही।"

ऑफिसर ने दोनो ओर कंधा घुमाकर पूछा, "क्या हुआ भाई ? क्या यही आदमी बहकर आया था ?" पर किसी ने उसकी बातो का कोई जवाब न देने पर वह दोनो ओर गर्दन घुमाकर बोला, "आँ ?"

लिली ने भी यही सवाल किया था रघु घोष से ? रघु घोष ने पीछे मुड़े बग़ैर जवाब दिया, "यह मै कैसे बता सकता हूं ?" फिर गर्दन घुमाकर बोला, "वह है या नही, उससे तुम्हारा क्या मतलब है ? तुम्हे तो उस छत पर एक आदमी चाहिये, चाहे वह जो भी हो ?"

ऑफ़िस बाबू ने बाँध के ऊपर से पुकारा, "ओ रघु बाबू, क्या कह रहे हो ? कौन है वहाँ ?"

रघु घोष ने हाथ उठाकर अँगुलियो को घुमा दिया।

"अरे नहीं, नहीं, कोई कहता है नरेशुआ ? नरेशुआ तो फूलपैंट पहना था। पर यह आदमी तो लँगोटी पहना है।" किसी ने एकदम निश्चित स्वर में कहा।

"इतना पानी ठेलकर जाने से फुलपैंट भी लँगोटी बन जाता है।" और एक आदमी ने उस निश्चितता को पल भर मे तोड दिया।

"तो कादाखोया हो सकता है।" एक और नया प्रस्ताव आया।

इस बार फिर से सब चुप हो गये थे। इतनी दूर से छत पर एक आदमी का घूमना-फिरना और लबाई कुछ समय मे आ रही थी। पर नरेश भी तो लबा है—जबकि इतना लबा नहीं। तो फिर कादाखोया हो सकता है। पर आदमी जिस ढग से छत के ऊपर घूम-फिर रहा है, हाथ हिला रहा है, वह कादाखोया है कि नहीं वह पहचानने जैसा गहरे भाव से कौन कहेगा, जो यहाँ कादाखोया है कि नहीं वह जाँच करते-करते ही भीड का पहचाना कादाखोया अपरिचित हो गया था।

"हो सकता है, कादाखोया हो।"

"कादाखोया हो सकता है, नरेशुआ भी हो सकता है।"

"वह आदमी भी हो सकता है। वरना रेस्क्यू करेंगे किसे ?

ऑफ़िसर दोनों ओर मुड-मुड़कर पूछता जा रहा था, "उस आदमी को पा गये हैं न ?" पर ऑफ़िसर की बातों का जवाब कोई नहीं देता। ऑफिसर फिर सवाल करता है, "वह मिल गया है न ?"

बाघारू टीन की छत के किनारे पर खड़ा हो गया था। फिर उसके पीछे नाइलॉन की जो रस्सी झूल रही थी उसे खींच कर इकट्ठा करने लगा। इस रस्सी का तो कोई अगला सिरा नहीं, पूरी रस्सी पेड से बँधी हुई है। बाघारू को हाथ में कसाव अनुभव हुआ, रस्सी और नही खिंच पाया। फिर उसने रस्सी पाँव के सहारे नीचे छोड़ दी पानी में। पानी में रस्सी का गुच्छा पड़ते ही इधर-उधर बिखर कर फिर सीधा हो गया। रस्सी के बीच का वृत्त बड़ा हो गया था। पर नरेश की नाव तक रस्सी पहुँची ही नहीं। अमूल्य ने एक डंडे से रस्सी को खींच ली।

नरेश और अमूल्य जैसे बाघारू को बचाने के लिये नहीं आये थे, बाघारू ही जैसे उनको बचाने के लिये आया था। अमूल्य ने रस्सी को खींचकर पकड़ रखा। रस्सी को खींचते ही नाव पर भी कसाव लगा। नाव छत की ओर घूम गयी थी। कादाखोया नें पूछा, "खोल दूँ ?" अमूल्य के साथ नरेश भी रस्सी में हाथ लगाकर आहिस्ते से बोला, "दे फिर।" नरेश की बात में कुछ संशय था। कादाखोया

ने रस्सी खोल दी पर पेड़ को नहीं छोड़ा।

रस्मी दूसरी ओर किस चीज से बँधी थी, वह तो उन्हें पता नहीं। इसी से वे रस्सी को ज़ोर से खींचने का साहस नही कर नहीं पाते थे। जहाँ पर रस्सी बँधी थी, इनके खींचने से वह अगर खुल गयी तो बहाव के एक ही झटके से नाव छिटक जायेगी। और वे भी छिटक कर पानी मे जा गिरेंगे। इसी डर से वे नाव पर खड़े होकर जोर-ज़ोर से खींचकर रस्मी को परखने का साहस कर नहीं पा रहे थे। छत पर से बाघारू चीखकर बोला, "खींचो, खींचो। नही टूटेगा। नहीं टूटेगा।" पर सिर्फ उतना कहकर ही बाघारू रुका नहीं। उसने रस्सी के एक और सिरे को छत पर खड़े-खड़े हाथ में ले ली। रस्सी को समान करके ज़ोर से खींच ली। उस खिंचाव से अमूल्य और नरेश समझ गये कि रस्सी नहीं टूटेगी। "खोल दे, खोल दे," नरेश ने कादाखोया से कहा।

कादाखोया के रस्सी खोलते ही नाव पेड़ के पास मे सर्र से निकल गयी। रस्सी कस गयी और जल का स्रोत आकर नाव के आगे उछाल खाने लगा। सिर्फ़ कुछेक हाथ की दूरी को पार करने के लिये उसने अपनी तमाम ताकत हाथ मे लगा दी। रस्मी को खींचा। कादाखोया ने भी हाथ लगाया। पर वे तीनों ही समझ गये थे कि स्रोत के विपरीत एक झटके मे इस दूरी को तय करने के लिये प्रयास करते ही स्रोत उछाल से नाव को उलट दे सकता है। फिर रस्सी मे हाथ लगा, शरीर झुलाकर जो खिचाई होती है, उसके लिये पैर रखने को भी जगह चाहिये। नाव में कोई जगह नहीं थी। स्रोत के मुँह में डगमगाते हुए जो नाव यहाँ तक आ गयी है, स्रोत के विपरीत उस नाव तले का तख्ता फाँक भी हो सकता है।

पर सिर्फ कुछेक हाथ दूर की ही तो बात थी। सो वे धीरे-धीरे खींचने से भी वे पेड़ों के पास पहुँच गये। बाघारू छत पर घुटने के बल झुककर नीचे हाथ देकर रस्सी को पकड़ लिया। कादाखोया बाघारू के पेड़ों की एक मोटी डाल पर रस्सी को बाँधकर भी डाल को पकड़े रहा।

सुपारी के पेड़ को पकड़ने के लिये इन पेड़ों की एक डाल पर पैर रखना ही पड़ा। अमूल्य पैर रखते ही समझ गया कि स्रोत का झोंका आते ही डाल डूब जायेगी। उसने हुमक कर डाल पर पैर रखकर सुपारी पेड़ के ऊपर छलाँग लगा दी। सुपारी पेड़ से अमूल्य के छत पर उतरते ही नरेश ने अपने लंबे हाथों से नाव के ऊपर से ही सुपारी पेड़ को पकड़ लिया। उन दोनों के उतर जाते ही नाव पानी पर और हल्की हो गयी। कादाखोया नाव पर बैठे-बैठे ही यह डाल—वह डाल पकड़कर नाव को डाल-पत्तों के और भीतर ले गया। उसके लिये उसे बंधन को खोलना ही पड़ा। नये बंधन से नाव अच्छी तरह से रुक गयी। कादाखोया ने सामने होकर सुपारी के पेड़ पर हाथ रखा है। पर न जाने क्या

सोचकर छलाँग नहीं लगायी। धक्का देकर हाथ को हटा लिया। उसका तो छत पर कोई काम नहीं है, बल्कि यहीं रहे तो बेहतर है, "मैं यहाँ रहूँगा। नाव में। यहाँ।" वह नाव के अंदर बैठ गया।

145
बाँध पर तर्क-वितर्क

बाध पर देखा गया कि और दो आदमी छत पर उतर गये हैं। अमूल्य का सब पहचान गये थे—सबस तगड़ा है इसी से। पर जो पहले छत पर खडा था वह, नरेश है या कादाखोया, इस बारे मे संदेह था। अब, अमूल्य के साथ जो उतरा, उसे अगर नरेश मान लिया जाता है, तो पहलेवाला आदमी निश्चय ही कादाखोया हो सकता है। तो फिर, जिसका बचाव करने के लिये वे यहाँ से नाव लेकर गये थे, वह आदमी कहाँ है ? सुपारी पेड़ पर चढ़कर क्या वह सचमुच गायब हो गया ?

"आँ, अरे जिस आदमी को रेस्क्यू करने के लिये गये थे, वह आदमी तो नहीं, अब उन्हें रेस्क्यू के लिये एक और नाव छोडो। आँ।"

यह बात सुनते ही ऑफ़िसर विचलित हो उठा, "यह क्या ? आदमी नहीं है ? आदमी सचमुच नहीं है क्या ? क्या ? आप लोग उसे देख नहीं पा रहे ?"

पीछे से एक आवाज़ सुनाई पड़ी, "छत पर कितने लोग नजर आ रहे हैं ?"

"तीन आदमी तो नजर आ रहे हैं।" कहता हुआ ऑफ़िसर फिर से छत की ओर देखकर गिन लिया, "हाँ, तीन आदमी तो हैं।"

"यहाँ से कितने लोग नाव लेकर गये थे ?" फिर से सवाल।

"वे तो दो आदमी थे—एक को तो यहाँ से ही जाना था, वह गया है तो ?" ऑफ़िसर थोड़ा परेशान होकर इधर-उधर घूमकर पूछा। उसकी बात से सब एकसाथ ठठाकर हँस पड़े। ऑफ़िसर कुछ समझ नहीं पाया कि हँसी का कारण क्या हैं ? पर उसकी बातों में हँसी का कोई कारण अवश्य ही छिपा है, यह अनुमान करते ही फिर इधर-उधर ताकने लगा। हँसी थम जाने के बाद जगदीश बारुई ने कहा, "यहाँ से अपनी आँखों से कितने लोगों को जाते हुए देखा आपने ?"

"तीन आदमी, तीन आदमी, तीन आदमी ही तो थे।" ऑफ़िसर ने जगदीश बारुई को ढूँढ़ते-ढूँढ़ते जवाब दिया।

"हाँ। वे तीन आदमी ही थे, और तीन आदमी ही हैं।," जगदीश बारुई ने ज़ोर से बीड़ी का सुट्टा लगाया।

"तो फिर क्या देखा आपने। आँखों में परत तो नहीं पड़ गयी ?" बहुत

धीमे स्वर में किसी ने कहा।

जगदीश हँसते हुए खाँसने लगा। खाँसी बढ़ती ही गयी। छाती से बलगम निकल जाने के बाद खाँसी बंद हो गयी। उसके बाद जगदीश बारुई को गला साफ करना पड़ा। इस बीच एक आदमी ने कहा, "वह तो कादाखोया है। कादाखोया ही सबसे पहले छत पर चढ़ा था, नरेशुआ तो पट पहना हुआ है।"

"हाँ, हाँ, नरेशुआ, अमूल्या, कादाखोया- ये तीनों ही हैं। और वह आदमी नहीं है।" यह बात इस नतीजे की घोषणा करती है।

"ओ! वह आदमी नहीं है, जिसे रेस्क्यू करने गये थे वह आदमी ही नहीं है? और आप लोगों ने यहाँ ऐसा बावेला मचाया जैसे कई लोग बाढ़ में बहते हुए यहाँ फँस गये हैं? फिर हज़ार रुपये, डेढ़ हजार रुपये को लेकर मोल-तोल करना भी शुरू कर दिया था? अब तो मुझे एक्सप्लानेशन भी देना पड़ेगा कि आदमी को देखे बग़ैर नाव क्यों भेजा?" कहते-कहते ऑफिसर सरक आया, और रघु घोष को देखकर उसके सामने खड़ा होकर चीखने लगा, "कि मोशाय? आपने ही तो बागान से फोन पर फोन किया कि आदमी बह आया है। अब कहाँ गया वह आदमी, कहिये, जवाब दीजिये, कहाँ चला गया वह?"

रघु घोष ठठाकर हँस पड़ा, "अरे, आप मुझ पर गुस्सा क्यों हो रहे हैं? मैंने किया क्या है?"

"आपने ही तो बागान से फोन किया था—सुबह एक बार, दोपहर को एक बार।"

"वह मैनेजर बाबू से जाकर कहिये आप। यहाँ से आदमी जाकर खबर किया था, उसके बाद ही आपको फोन किया गया था।" रघु ने अपने ऊपर कोई जिम्मेदारी नहीं ली।

"इसका मतलब तो यह नहीं होता कि आप बग़ैर देखे-भाले ही फ़ोन कर दें?"

ऑफ़िसर के साथ रघु बाबू की बातचीत सुनकर बागान के लोग एक-एक करके आकर इधर जमा होने लगे गोदाम बाबू, ऑफ़िस बाबू की बड़ी साली, लिली, गोपा और दो-एक आदमी। गोदाम बाबू ने सवाल किया, "क्यों, क्या हुआ है?"

रघु घोष ने थोड़ा-सा सरक कर कहा, "अरे, यहाँ आदमी नहीं मिलता है तो क्या वह मेरा दोष है? बाढ़ के समय कोई आकर अगर यह कहे कि नदी में आदमी बहा जा रहा है, फ़ोन कर दीजिये, तो हम क्या करते, फ़ोन नहीं करते?"

लिली धीरे से बोली, "इतना चिल्ला क्यों रहे हैं?"

गोदाम बाबू ने कहा, "ठीक है, ठीक है, इनको अगर कुछ कहना है तो

हेड ऑफ़िस में कहें, हमें कहने से क्या लाभ ?"

ऑफ़िस बाबू की बड़ी साली बोली,"चलिये, चलिये ! अब वापस चलिये !"

इधर बागान के बाबू और उनके घरवालों को एक जगह जमा होकर इस तरह की बातचीत करते देख बागान के जो कुली-मज़दूर इधर-उधर बिखरे हुए थे, वे भी आकर वहाँ जमा हो गये। उनमें से किसी ने थोड़ा आगे बढ़कर रघु घोष से पूछा, "क्या हो गिया आपीस बाबू ?"

रघु ने उसकी तरफ देखा हाथ हिलाकर हँस के कहा, "तू फिर कहाँ से टपक पड़ा ? जा।"

"तो तुम भी चलो", एक स्त्री पीछे से बोली, "भाभीजी, आपीस बाबू को घर ले जाओ।"

"कौन है रे ?" कहता हुआ रघु घोष ने हँसते-हँसते औरत की तरफ नज़र डाली। ऑफ़िसर तब तक भीड़ के पीछे चला गया था। वहाँ जाकर देखा कि जगदीश बारुई और अश्विनी राय बोल्डर पर उकड़ूँ बैठकर बीडी पी रहे हैं और बीच-बीच में गर्दन उठाकर भीड़ को पीछे की ओर देख भी रहे हैं। ऑफ़िसर उनके सामने खड़ा होकर बोला, "अरे लो, आप लोग यहाँ बैठे है ? तब तो कह रहे थे कि कितने सारे लोग बह आये हैं, अभी फ़ौरन नाव भेजनी होगी, मिलीटरी चाहिये। मिलीटरी आती तो आप लोगों को ही अभी पानी में बहा देती, समझ गये ?"

ऑफ़िसर खड़े-खड़े ही कह रहा था, इससे जगदीश बारुई और अश्विनी राय समझ नहीं पाये कि बातें उनको ही कही जा रही हैं। वे वैसे ही बीडी मुड़के जा रहे थे। जगदीश बारुई ने एक बार सिर उठाकर पूछा, "क्यो जी, कुछ हुआ या नहीं ?"

ऑफ़िसर बौखला उठा, "होगा क्या ? आदमी हो तभी न लायेंगे ? आदमी न हो तो कहाँ से लायेंगे ? और आप लोगों ने तो हाँक दिया था कि कितने सारे लोग हैं। कितने सारे लोग बहते आ रहे हैं।"

अश्विनी राय गर्दन घुमाकर ऑफ़िसर को देखकर उठ खड़ा हुआ। जगदीश बारुई ने अश्विनी को उठता देखकर गर्दन घुमाकर देखा, "फिर वह भी खड़ा हो गया। अश्विनी राय ने थोड़ा हटने की कोशिश की। जगदीश बारुई ने उसका हाथ पकड़कर खींचा और ऑफ़िसर से पूछा, "क्या हुआ ? क्या कह रहे हैं आप ?"

"यही कह रहा हूँ कि तब तो कह रहे थे कि काफ़ी लोग बहे जा रहे हैं। अब तो वहाँ एक भी आदमी मिल नहीं रहा ? अगर मिलीटरी आ जाती तो क्या होता ?"

"क्या होता यह आप ही समझिए। लोग न हों तो क्या लोग पैदा करके

बहा दें और छत पर रख आयेंगे क्या ? उसमें भी तो दस महीना लगता है जनाब। सुबह को जीता-जागता आदमी सभी ने देखा छत पर, वह सुपारी पेड़ पर चढ़कर कहाँ चला गया—वह तो नहीं पूछा आपने ?"

"गया कहाँ, क्या उसे ढूँढ़कर मैं निकालूँ ?" ऑफ़िसर क्रोध के मारे हट गया। नाराज़ ऑफ़िसर भीड़ से पीछे हटता जा रहा था। वह क़रीब-क़रीब बाँध के नीचे जाकर खड़ा हो गया। उसके खड़े होने के अंदाज में भी एक तरह से परेशानी का भाव था। जैसे वह बाँध पर चढ़कर उधर उतर कर जीप में बैठने का कोई उपक्रम कर रहा हो। पर वह कर नहीं पा रहा था ठीक से।

ऑफ़िसर फिर से भीड़ के बीच आ गया। दो-एक लोगों को हटाकर सामने चला गया। तब नज़र आया कि वे तीनों मिलकर छत के ऊपर बात-चीत कर रहे हैं। अमूल्य छत की एक तरफ़ बैठा हुआ था। नरेश और कादाखोया बातचीत में लगे थे। उनके खड़े होने और हाथ हिलाने के अंदाज़ से पता चलता था कि उनमें आपस में बातचीत हो रही है।

"अमून्य वहाँ बैठा-बैठा क्या कर रहा है ?"

"नरेशुआ भला कादाखोया से क्या इतनी बात कर रहा है ?"

—इन दो सवालों से इस पार की भीड़ काफ़ी चिन्तित थी।

146
शिखर सम्मेलन

छत पर जाकर नरेश बाँध की ओर देखा। बाँध पर से यह छत जितना नज़दीक लग रहा था, छत पर से बाँध तो उतना निकट लग ही नहीं रहा। बल्कि दूर नज़र आ रहा था हवा और पानी के कोहरे में और तिस्ता के जल-स्रोत से उठते जल-बिंदु इस दूरी के बीच एक चादर-सा तना था, जैसे कि भोर में हुआ करता है। इसके अलावा भी नरेश को बाँध काफ़ी दूर नज़र आ रहा था। थोड़ा-सा ग़ौर करने पर उसने भीड़ को पहचान लिया। और थोड़ा ग़ौर करने पर उसने लोगों को भी पहचान लिया। फिर भी अश्विनी राय की छत पर चढ़कर नरेश बाँध को क़रीब नहीं पा रहा था। पर, अश्विनी राय का यह घर जो पानी में डूबा था, जो सुपारी के पेड़ का सिर्फ़ ऊपरी हिस्सा पानी के ऊपर दीख रहा था, उसी घर, उसी सुपारी के पेड़ के पीछे से, नीचे से नरेश तो अपने उम्र भर के इस बाँध को देखता आया था। हालाँकि इसका जन्म यहाँ नहीं हुआ था, पर इसी घर पर तो जवान हुआ था वह। बाँध के ऊपर से इस घर की तरफ़ सारा जीवन देखता आया था नरेश। उससे कहीं अधिक समय तक घर से बाँध को निहारता आया था। पर अभी, इसी पल नरेश को लगता था कि बाँध पर ही

उसका घर बार है, कितनी जल्दी था उसे घर लौटने की। अश्विनी राय के घर के सामने के रास्त से नरेश का घर दिखायी नहीं देता था। अश्विनी राय की छत से क्या दिखायी देता ? नरेश एक बार बाँध की ओर पीठ फेर कर जल के नीचे इस चर में उसका घर जिधर होना चाहिये, उधर ही गंदला पानी दिखना था। पानी के नीचे जो मब पेड़-पौधे, घर बार, बागान, गोहाल डूबा हुआ था उसे एक बार देख लेना चाहता था। अश्विनी राय का घर और उसका घर अलग-अलग मुहल्ले में था। बीच मे एक छोटी-सी ख़ाल (चोड़ी-नाली) है। न दिखने की बात थी। पर नरेश का घर काफ़ी ऊँचा था। उसकी टीन की छत शायद नज़र आ सकती थी। नरेश देखा—चारों ओर सिर्फ उफनता, लहराता पानी ही पानी दिखा। अब अगर कोई नरेश को पानी के नीचे ले जाकर उसका घर ढूंढने को कहे तो वह ढूँढ़ नही पायेगा। बाँध पर से इस जल को देखने के बावजूद एक भरोसा रहता है कि जल के उतर जाने पर चर मे वापस जायगे। पर यहाँ, इस चर पर ही खड़े होकर नरेश को ऐसा कोई भरोसा नही, बल्कि बाँध की ओर देखकर वह लौट जाने के बारे मे सोच रहा था। थोड़ा-सा डर भी गया। नरेश ने बाघारू से पूछा, "तुम्ही सुबह इस छत पर चढे थे न ?"

"हाँ।"

"फिर सुपारी के पड पर जाकर गायब क्यो हो गये ? और उतरने का नाम नहीं लिया ?"

"पेड़ पर रह गया।"

"और हम सोचते रहे कि तुम आदमी हो या बाढ का भूत। अब चलो। चलते हैं उस पार।"

"कहाँ ?" बाघारू ने सुनहरी रस्सी को समेटते हुए पूछा।

"उधर, बाँध पर जाना होगा। हम तो तुम्हें रेस्कू करने के लिय आय है।

"मई नहीं जाना।" बाघारू ने उसकी तरफ पीछे मुड़कर कहा। नरेश क्रोधित हो उठा, "जायेगा नहीं कैसे ? तुमरा बाबा का मर्जी है ? जाना ही पडगा। साला तुम्हें रेस्कू करने के लिये नाव लेकर डूबते-उतरात हम इहाँ आये है। और कह रहा है जायेगा नहीं। जाना ही पडगा तुम्हें, चलो।" नरेश की आवाज़ मे हुकुम का लहजा था, पर उस आवाज़ में कहीं इस भाव की झलक भी मिल जाती थी कि, मिलती नहीं बल्कि पकड़ में आ जाती थी कि नरेश को पता चल गया है कि, वह जाना नहीं चाहेगा।

अमूल्य अश्विनी राय की छत पर बैठ गया था—बाँध की तरफ मुँह किये। अमूल्य का घर अश्विनी राय के घर के पश्चिम में था—बाँध के ठीक सामने। एक कोने मे, पर अलग पाड़े में। अमूल्य अपने घर की ओर ही मुँह करके बैठा था। अश्विनी राय का यह छत उभरा रहेगा, यहाँ आकर वे बैठ-उठ करेंगे, पर

अमूल्य के घर का, इतने बड़े घर की एक भी छाजन नज़र नहीं आयेगी। सबके ऊपर सिर्फ गंदला पानी उफनता हुआ बहता नज़र आयेगा—यह कितना बड़ा अन्याय है, अमूल्य के प्रति—एक खास तरह का व्यक्तिगत अन्याय। अपने घरद्वार का कोई भी निशान देख नहीं पा रहा था अमूल्य। इससे उसे ऐसा लगता था कि जैसे दूसरों की तरह ही उसका भी घर-ज़मीन जैसे डांगर बन गया है। जैसे कि औरों का कुछ भी नहीं डूबा। जो डूबना था, बस अमूल्य का ही डूबा है। अश्विनी राय की छत पर चढ़कर जिस तरह से बाँध को देख रहा था अमूल्य, उस तरह तो वह अपने छत पर बैठकर भी देख सकता था। तब शायद उसे यह अनुभव होता कि उसका घर भी है। पर जिस चर में उसका घर बार, ज़मीन-जायदाद थी, उसी चर में वह खड़ा होकर या बैठकर वह सिर्फ जल ही देख रहा था चारों तरफ, वही एकसार गंदला पानी। यहाँ तक कि आकाश से ही उस गदले पानी की बरसात हो रही थी। अमूल्य परेशान होकर चीख़ उठा, "नहीं जाता तो रहने दो उसे, चलो, मैं अब नहीं रुक सकता यहाँ।"

नरेश ने अमूल्य की ओर देखकर न जाने क्या समझ लिया। फिर धीमे गले से बोला, "अरे क्या कह रहा है ? इसे लेकर न जाने से पैसा देगा कौन ?"

"नहीं देगा। किसे पता था कि यह यहाँ है ?"

"पता नहीं था तो फिर आया क्यों ?"

"तू साला पैसा की बात चलाया था। पैसा, रुपया ? देख नहीं रहा चारों ओर। तिस्ता के नीचे तेरे खड़ी खड़ी जमीन में बालूचर होने लगा है। और तू साला पैसा का बात कर रहा है।"

नरेश ने बाघारू से कहा, "ए, देऊनिया, सुनो—"

बाघारू तब तक सुनहरी रस्सी को समेट चुका था। वह नरेश की ओर देखकर बोला, "भई देऊनिया नही। गयानाथ जोतदार हमरा देऊनिया है।"

"तुम्हारा घर कहाँ है ?"

"ऊँ"। बाघारू जितना तिस्ता पार करके आया था, उसी पूरे तिस्ता को दिखाया। नरेश ने सोचा कि वह कुछ दिखा रहा है। इसी से बाघारू के हाथ के इशारे के मुताबिक गर्दन घुमाकर वही उफनते पानी को देखकर गर्दन मोड़ कर बोला, "अरे, तेरा गाँव कहाँ है ?"

बाघारू ने उसी तिस्ता के ऊपर से हाथ घुमा दिया—"ऊहाँ।"

नरेश फिर से चुप होकर कुछ सोचने लगा—फिर बाघारू से बोला, "पानी में बह गया है तुम्हारा गाँव ?"

बाघारू ने गर्दन हिलायी, "नहीं, बहा नहीं।"

"तो फिर मेरे भइया, तुम कहाँ से बहकर आ गये ?"

"गयानाथ का फॉरेस्ट में तिस्ता घुस गया है।"

"तो ?"

"पेड़ उखड़ गया है।"

"तो ?"

"गयानाथ पेड़ों को और मुझे बहा दिया।"

"तो ?"

"तो मैं बह आया हूँ।"

'आया है तो आया है। बाबा, अब तुझे बाँध पर चलना पड़ेगा। ऑफ़िसर आया है। हमें भेजा है। चलो, चलो।" नरेश ने थोड़ा आगे बढ़कर बाघारू का हाथ पकड़ लिया। बाघारू ने विरोध नहीं किया। नरेश हाथ पकड़ कर खींचता। बाघारू हिला नहीं। नरेश ने हाथ छोड़ दिया। बाघारू का हाथ गिर गया।

"गयानाथ बोला है, बाघारू पेड़ों के साथ बहता जा। जब बाढ़ कम हो जायेगा तुझको ढूँढ़ लेंगे।"

"तो अपने पेड़ों को भी साथ ले चलो न बाबा—कौन रोकता है तुम्हें ?" वहीं तुम्हारा देऊनिया तुम्हें ढूँढ़ लेगा।"

बाघारू चुप होकर बाँध की ओर ताकने लगा। यह तर्क उसे शायद अच्छा लगा हो कि बाँध पर वहाँ से उसे ढूढ़ निकालना गयानाथ के लिये काफ़ी सुविधाजनक होगा। फिर, पश्चिम की ओर ताकते ही उसे शायद रात का घिरना समझ में आ गया। बाँध, बाँध पर के लोगबाग, कुछ चहल-पहल—शायद यह सब उसे खींच भी रहा था। .

नरेश ने कहा, "चलो, पेड़ों को लेकर ही चलो, चल अमूल्या।"

अमूल्या उठकर खड़ा हो गया। फिर नरेश ने सुपारी पेड़ की तरफ़ एक क़दम बढ़ा दिया। गर्दन घुमाकर देखा, बाघारू हिलता नहीं है।

147

कादाखोया का नाव खेना

नरेश घूमकर खड़ा हो गया, फिर खीझकर बोला, "क्या हुआ ?"

बाघारू बाँध की ओर देखते हुए बोला, "नहीं जाता, मई यहीं रहूँगा।"

नरेश थोड़ी ऊँची आवाज़ में बोला, "अरे तुमको तो तुम्हारे देऊनिया ने कहा है कि जहाँ रुकेगा, ऊहाँ पेड़ों को लेकर रुकना, तुझे हम खोज लेंगे। यही तो कहा है न ?"

"हाँ, कहा है।"

"तो तुम्हारा देऊनिया आकर अगर इस बाँध पर खड़ा हो जाये और तुम अगर इन पेड़ों के मचान पर बैठे रहो, तो तुम्हारा देऊनिया तुम्हें देखेगा कैसे ?"

बाघारू ने बाँध पर से नज़र हटाकर नरेश पर डाली। नरेश ने उसकी आँखों को देखकर अंदाज़ा लगा लिया कि यह तर्क उसके अंदर पैठता जा रहा है। वह तर्क पर और थोड़ा बल देना चाहता था।

"तुम्हारा देऊनिया तुम्हें बाँध पर ढूँढ़ेगा या जल में ढूँढ़ेगा ?"

"बाँध से ढूँढेगा।"

"तो समझते तो सब कुछ हो, पर काम के वक्त एकदम घोंचू। बाँध पर ढूँढ़ेगा तो बाँध पर चलो। यहाँ खाओगे क्या ? देऊनिया ने चिउड़ा-भूजा कुछ दिया है ?"

"नहीं दिया।"

"दिन भर मे कुछ नहीं खाया ?"

"नहीं।"

"भूख नहीं लगा ?"

"आउ।"

नरेश ने अमूल्या की ओर देखा। उसके बाद नरेश और अमूल्य दोनों ने एक साथ वाघारू की ओर देखा। वे समझ गये—यह देऊनिया पेडों को सुरक्षित रखने के लिये इस आदमी को पेडो के साथ बहा दिया है। अगर यहाँ न रुकता तो पता नहीं कहाँ तक बहता चला जाता। इस बाढ के तिस्ता से तो उसे चुल्लू भर पानी पीने को न मिलता। बाघारू को देखते हुए इतने समय बाद नरेश और अमूल्य ने उसे ढूँढ़ निकालने के आवेग को महसूस किया। पानी में बहकर आये एक भूखे-प्यासे आदमी के उद्धार करने का आवेग। ऑफ़िसर आ गया इसी से नरेश को पैसों की बात उठानी पड़ी। पर ऑफिसर अगर न आया होता तो इस आदमी को अगर वे छत पर बैठे हुए देखते, तो भी वे नाव को ले इस तरह से निकल पड़ते। अमूल्य छत पर से चलता हुआ नरेश को पार करके बाघारू के निकट गया। फिर वाघारू का हाथ पकड कर कहा, "चलो तो। यहाँ जल के बीच बैठे-बैठे सूख के मर जाने का इरादा है क्या ? चलो। रात भर रहो। खाओ, पियो, सोओ। फिर न हो तो सुबह अपने पेडों के साथ फिर बहकर चले जाना।"

"भूख तो लगी है, पर वहाँ तो ऑफिसर है।"

"अरे सुनो, हम इसी चर के रहनेवाले हैं. इस चर में ही हमारा घर-बार, खेती-खलिहान सब कुछ हैं," अमूल्य ने कहा।

"चरवासी ?"

"हाँ, हाँ, चरवासी। जिस छत पर हम खडे हैं, इसका जो मालिक है, वह भी इसी बाँध पर है। हमारा घर भी उधर है। इस घर के उस ओर। फ्लड के चलते हम सब जाकर ऊँचे, बाँध पर रह रहे हैं। हम तो कहेंगे कि तुम हमारे

ही आदमी हो। चर में फँस गये थे, हम तुम्हे ले आये, तो ऑफिसर क्या कहेगा ?"

"पेड़ सब ? गयानाथ देऊनिया का ऑफ़िसर के साथ लड़ाई झगड़ा ?"

नरेश हँस पड़ा। कुछ बनावटी और कुछ प्राकृतिक थी वह हँसी—"अरे बाढ़ में बह आया पेड़ का भी कोई ऑफिसर होता है क्या ? अरे, चलो तो सही।" नरेश ने जाकर बाघारू का वही हाथ पकड़ लिया जिसे अमूल्य ने पकड़ा था।

बाघारू का इस तरह से कोई कभी हाथ नही पकड सका था। फिर वहाँ उसको संदेह भी था। पर उसकी भूख भी एक बडी सच्चाइ बन चुकी थी। रात बिताने के लिये इस बाढ मे तो वह बाँध काफी अच्छा है। फिर वह पडो को लेकर जब मर्जी तब चला जा सकता है। बाघारू ने पैर बढा दिया।

नरेश बाघारू का हाथ छोड़कर पहले सुपारी पेड पर गया। अमूल्य बाघारू का हाथ पकड़े ही घूम गया, जैसे कि पीछे मैदान हो और हाथ छोड देने पर बाघारू दौड़ के भाग जायेगा। सुपारी पेड के सामने आकर अमूल्य ने कहा "उतरो पहले।" बाघारू ने हाथ के इशारे से अमूल्य को उतरने को कहा। अमूल्य सुपारी के पेड पर कूद पड़ा। नीचे आकर चिल्लाया, "उतरो अभी तुरन्त।" बाघारू ने सुपारी के पेड पर भार डाला। हवा में सुपारी का पेड बहुत हिल रहा था लेकिन बाघारू के भार से फिर वह नये सिरे से डोल ही नही सकता।

नीचे उतर कर फिर एक समस्या आ खड़ी हुइ थी। समस्या यह कि पेड़ो और नाव को लेकर चार आदमी जायेंगे कैसे ? नाव से वैसे चार आदमी जा तो सकते है—पेड़ो को यही छोड़कर। पर अमूल्य या नरेश यह कहने की हिम्मत कर नहीं पाये। बाघारू के गले मे वही नाइलॉन रस्सी का बंडल था। जिस रस्सी से बाघारू इन पेड़ो के साथ बँधा हुआ था। पर वक्त नहीं था। उन्हे अभी ही रवाना हो जाना चाहिये। यहाँ से तो वे सीधा उल्टी दिशा में जा नही सकते। बहाव के मुँह मे उन्हें एक कोण बनाकर चलना पड़ेगा। फिर उस पार जाकर उन्हे रुकना है। वहाँ से फिर पाट से होकर नाव को खींचते हुए बाँधने की जगह पर ले जाना पड़ेगा।

"ए कादाखोया—क्या इन पेड़ों को नाव मे बाँधा जा सकता है ?" नरेश ने पूछा।

"नहीं। नाव में पेड़ों का धक्का लगने पर वह डूब जायेगी।" कादाखोया ने कहा।

"तुम लोग नाव से जाओ फिर—मई पेड़ो से आ रहा हूँ।" कहकर बाघारू कलाबाज़ी खाकर अपने मचान पर चढ़ गया। उस पल यही एक उपाय नजर आया। नरेश और देर किये बग़ैर बोला, "तो पेड़ों को छोड़ पहले तेरा नागर कहाँ है ?" नरेश हँस पड़ा। बाघारू ने एक पेड़ की डाल से रस्सी का पेंच खोलने

के लिये हाथ बढ़ा दिया। नरेश ढूँढ़ने लगा कि गांठ और कहा है। देखा कि अश्विनी राय के छत की बीम से बँधी थी।

कादाखोया ने एक बार देखा है। उसके बाद पेड़ की डाल से होते हुए वह ऊपर चला गया। कादाखोया और बाघारू दोनों के बोझ से पेड़ हिल उठे, हिलते रहे पर डूबे नहीं। ऐसा लगता था जैसे वे दोनों ही बहते पेड़ की डाल पर चढ़ते समय अपने मध्याकर्षण की शक्ति का अतिक्रमण कर गये हैं। नीचे नाव पर खड़े नरेश और अमूल्य बाघारू और कादाखोया के शरीरगत समानताओं की खोज करते रहे। आपादमस्तक नंगे बदन से उनके हाथ डाल की तरह आकाश मे उठ रहे थे। और झुक रहे थे।

दोनों ओर के बंधन खोल देने पर भी पेड़ हिलते नहीं थे। बाघारू ने नीचे उतर कर कादाखोया से कहा, "यहाँ भी एक गाँठ है, इस नाव के पास।" कादाखोया उस गाँठ को ढूंढ़ने, पर वह मिली नहीं। बाघारू तक उल्टी दिशा का बंधन खोलना शुरू कर दिया। उसका वह बंधन ढीला होते ही पेड़ का बेड़ा लहरों के झिंकोलों में हिल उठा।

कादाखोया बोल उठा, "नहीं, नहीं। बाघारू और खड़ा रहूँ है?" कहते हुए उसका बंधन खोल दिया। पेड़ों का बेड़ा बहाव की तेजी से अश्विनी राय के घर से टकराया और उसी धक्के से नाव पेड़ों के अंदर घुस गयी। बाघारू फिर डालों से होता हुआ इधर चला आया। नरेश और अमूल्य नाव पर ही खड़े थे डंडा पकड़े। कादाखोया से बाघारू ने कहा, "नाव पर जा। इ खुलते ही सीधा सोते के मुंह में बह जायगा।" कादाखोया नाव पर चला गया। नाव पेड़ों के इतना अंदर धंस गयी थी कि यह पेड़ बह जाने के बाद नाव कैसे जा पायेगी, समझ ही नहीं आया।

अचानक कादाखोया बोल उठा, "खड़ा हो जा, खड़ा हो जा।"

बाघारू खड़ा हो गया। कादाखोया ने नाव की रस्सी खोल दी। और स्रोत के धक्के से नाव पेड़ों के अंदर घुस कर रुक गयी। ठीक एक पेड़ की तरह। नरेश थोड़ा डर गया—"ऐ कादाखोया, देख क्या रहा है, पेड़ में दब जाने पर नाव डूब जायेगी रे।"

कादाखोया ने कोई जवाब नहीं दिया। उसने नाव को और थोड़ा ठीक कर लिया और अमूल्य और नरेश से बोला, "डांड़ पकड़ो, डांड़ पकड़ो।" नरेश और अमूल्य के डांड़ पकड़ते ही कादाखोया ने बाघारू से बोला, "अरे, खोल दो।"

इधर का बंधन जहाँ था, पानी के बढ़ने से वह काफ़ी नीचे डूब गया था। बाघारू को एक डाल पकड़कर झुककर दायें हाथ से पानी के नीचे से उस बंधन को खोलना पड़ा। पहली गाँठ के खुलते ही सोत का तेज़ बहाव बेड़े को खींच ले गया। बाघारू के बायें हाथ की डाल को सख़्ती से पकड़कर एक झटका लगाते

ही पेड़ों का बेड़ा स्रोत के मुँह में बहने को होते ही फिर से रुक गया। घर के कोने में एक पेड़ की बड़ी-सी डाल रुक गयी थी। बाघारू ने उसे नही खोला। बल्कि उसी मौके से वह नाव के ऊपर चला गया। और उसी झटके से स्रोत के तेज़ी से, अश्विनी राय के सुपारी बाड़ी का नंगर छोड़ वह बेड़ा धूमिल आकाश के नीचे तिस्ता के गंदले स्रोत में बड़ी तेज गति से बहता चला गया। हवा के विपरीत धक्के से पेड के पत्ते-पत्ते में एक तूफानी अलौकिकता संचारित हो गयी।

"डॉड़ चला, डॉड़ चला" हाँक लगाते-लगाते कादाखोया अपना डॉड लेकर बाघारू को पिछली रात के अँधेरे में हाथोंहाथ मिले अनुभव को आत्मसात् कर बिल्ली जैसे क़दमों से बाघारू के मचान पर चढ़ गया और वहाँ से अपनी बायीं ओर का डॉड़ चलाने लगा। अबकी बार पहले की तरह भाले से जल को बिंधने के बदले डॉड़ मारकर ठेलता जा रहा था। कई बार डॉड़ मारने के बाद कादाखोया चिल्लाया, "ओए गाछवाला भाई, आ जाओ, यहाँ चले आओ।" बाघारू नाव से डाल पर होता हुआ अपने मचान पर चला गया। "इधर डॉड़ मार, डाड़ मार" कहता हुआ कादाखोया अपना डॉड बाघारू के हाथ में दे दिया। बाघारू डॉड़ मारने लगा, कादाखोया खड़ा होकर सामने देखा। जैसे—गयानाथ का एक बाघारू अब दो आदमी बन गया था। तिस्ता के ऊपर, इस गाछ के मचान पर उन दोनों का इतना मेल था।

दरअसल, जो हिसाब लगाकर कादाखोया अचानक नाव को पेड़ों के बीच घुसा दिया था, वह एक अद्भुत तालमेल था। इतने सारे पेड इस तरह से जोड़कर बाँधा गया था कि जल का स्रोत पेडों के अंदर पूरी तजी से धक्का नही मार पर रहा था। उन पेड़ो की आड़ में नाव पर नरेश और अमूल्य डॉड मारने का ऐसा मौका पा गये कि इससे स्रोत के भीतर भी यह बेडा स्रोत को नियंत्रित कर पाता था। लगातार बायीं ओर डॉड़ मारकर वे बहुत दूरी तय न कर पाने पर भी धीरे-धीरे तिरछे होकर बाँध की ओर बढ़ रहे थे। "और एक डॉड होता तो सीधे पार हो जाते।" कादाखोया तिस्ता के गदले स्रोत की ओर देखकर चिल्ला कर बोला।

148
संदेह और संशय

बाँध के ऊपर से दिखायी दिया—अश्विनी राय की छत पर से अमूल्य, नरेश और कादाखोया के सुपारी का पेड़ छोड़ने के कुछ क्षण बाद उस सुपारी बागान के दक्षिण से होकर नाव के बदले एक विराट पेड़ का बेड़ा नदी में बहता जा रहा था। नाव पेड़ों के इतने भीतर थी कि बाँध से नज़र नहीं आ रही थी। यहाँ

तक कि कादाखोया और बाघारू जिस मचान पर खड़े थे, वह भी पेड़ों के डाल-पत्तों की आड़ में हो गया था। बाढ़ के समय तिस्ता मे तो इस तरह का पेड़ बह सकता था, पर वे छत पर से सुपारी पेड़ में आ गये और उसके बाद ही उस सुराग से नाव के बदले पेड़ों का यह प्रकांड बेड़े के निकलते ही सबकी नज़र पड़ गयी। अगर ये पेड़ अश्विनी राय के सुपारी बागान से ही सीधे चले गये होते तो भी किसी की नज़र में न आते। पर सीधा निकलने के बावजूद इस स्रोत से तिरछा होकर ही इधर बहता आ रहा था धीरे-धीरे। कई दिनों से इस ढलुई ज़मीन को पानी से भरा हुआ देखते-देखते स्रोत की धार इनकी पहचान मे आ गयी थी। सभी पहचान गये थे। वे समझ गये थे कि यह सिर्फ़ पेड़ नहीं हो सकता, अगर होता तो नदी के स्रोत में वह कुछ दूसरे ढंग से बहता। पेड़ों के निकलने के बाद भी लोग प्रतीक्षा कर रहे थे कि नाव कब निकलती है। पर प्रतीक्षित समय के बीच भी नाव नहीं निकली। पेड़ सीधे न बहकर थोड़े तिरछे हो गये थे। तभी इन दोनों के बीच कोई संपर्क होने का संदेह हो गया उन्हें। पहले यह बात अश्विनी राय के मन मे उठी है, अरे हमारा कटहल और लीचू पेड़ को काहे को काट दिया रे, काहे को काट दिया ?" यह सुनने के बाद सब चुप हो गये थे। क्या ऐसा होना संभव था

नरेश और अमूल्य नाव के ऊपर थे। इस समय अगर कोई उन पेड़ों को काटता तो क्या वे उसे रोकते नहीं ? हाँ, ऐसा पास के चरों मे हो सकता है। बाढ़ के सुयोग से कोई-कोई नाव लेकर आते हैं और पेड़ काटकर ले जाते हैं। पर इस चर में वैसा कर पाना संभव नहीं। क्योंकि इस चर पर तय करने के लिये इस बाँध से होकर ही जाना पड़ेगा। या फिर सुबह जिस आदमी को छत पर देखा गया था, यही इन पेड़ों को काट कर वहां ले जाने के लिये प्रतीक्षा कर रहा था अमूल्य और नरेश ने जाकर उसे पकड़ लिया ? अगर यही बात है तो क्या पेड़ों को वे इस तरह से बहा देंगे ? अगर यही हुआ तो नाव को भी इसके पीछे पीछे होना चाहिये।

किसी ने कहा, "अश्विनी साहा का कटहल और लीचू का पेड़ बाढ़ के जल में बहकर शाल पेड़-से बड़ा हो गया है ? देखिए न, पेड़ न हुआ एक पूरा का पूरा जंगल हो गया।"

इतना दूर होने पर भी आँखों के अंदाज से समझ मे आ रहा था कि ये पेड़ अश्विनी राय के बागान का पेड़ नहीं है। फिर वह बात एक आदमी के कह देने पर सबके मन में आ गयी। जगदीश बारुई को पेड़ का भान हुआ, पर वह परिस्थिति को समझ नहीं पाया। वह सीधा नदी की ओर देख चीख़कर बोला, "अरे, तीन आदमी नाव से गये और तुम पेड़ों की बात कर रहे हो ? इस पेड़ की बात, साला आया कहाँ से, औ ~ पेड़ का बात आया कहाँ से ?"

जगदीश बारुई के चीखकर कहने के बावजूद, उसकी बात का किसी ने जवाब नहीं दिया। बल्कि दबे स्वर में किसी ने कह दिया, "हाँ पाट की ओर तो आ रहा है, हाँ, हाँ, पाट की ओर तो आ रहा है।"

उस दबे स्वर में विस्मय साफ़ झलक रहा था। उसके बाद भीड़ में से बहुत-से लोग निकलकर करीब दौड़ते हुए बाँध के ऊपर चले गये। फिर बाँध पर वे दक्षिण की ओर दौड़ने लगे। नाव चर में जब लौटेगी तो कटाव से जाकर ही लगेगी, फिर किनारे-किनारे यहाँ वापस आयेगी—यह सभी को पता था। पर नाव के बदले इतने बड़े-बड़े पेड़ एक साथ स्रोत में बहते हुए निकल आये—यह उनके हिसाब के बाहर की बात थी। इसी से बाँध की भीड़ टूट गयी। बहुत-से लोग बाँध के ऊपर से होकर भागने लगे थे, जहाँ पेड़ आकर टकराएगा वहाँ जाकर खड़ा होने के लिये। बाढ़ की भीड़ बिखर गयी, दौड़-धूप शुरू हो गयी। यह सब मिलकर जैसे एक रहस्य का आभास दे रहे थे। सुबह आदमी छत पर से गायब हो गया था, दोपहर को तीन-तीन आदमी नाव के साथ गायब। फिर स्रोत काटकर इतने सारे पेड़ों का एक साथ बहकर आना—सब मिलाकर परिस्थिति वाकई जटिल हो गयी थी।

कुछ लोग बाँध से होकर भाग रहे थे और कुछ लोग बाँध के ऊपर जाकर खड़े थे। इसी से पाट के बोल्डर पर भीड़ कुछ अलग हो गयी थी। ऑफिसर बाँध के ऊपर जाते-जाते बोला, "भाइयों, लगता है कि फ्लड सिर्फ आपके यहाँ ही हुआ है। एक जगह आकर इतना समय रुकना पड़े तो फिर दूसरी जगहों पर जायेंगे कब ?"

रघु घोष के पीछे आते-आते लिली ने कहा, "चलो न, इधर चलते हैं। देखते हैं क्या हुआ ?"

रघु घोष पीछे मुड़े बग़ैर ही बोला, "नहीं, वहाँ जाने की कोई ज़रूरत नहीं है। इतनी देर से इस हवा-तूफान, बारिश में भीग रही हो, सारी रात तो बैठे बैठे साँस फुलाओगी। अब बागान में चलो। हो गया काफ़ी देखना।"

गोदामबाबू पहले से ही बाँध पर चढ गये थे। बोला, "हाँ-हाँ। चलिये चलते हैं। इन सब झमेलों में पड़ने का कोई फ़ायदा नहीं।"

रघु घोष ने कहा,"अरे झमेला काहे का ? कैसा झमेला ?"

गोदाम बाबू ने कहा, "अरे भाई वाह, अजीब आदमी निकले तुम भी। थोड़ी देर पहले तो आपके ही मत्थे तमाम दोष मढ़ दिया जा रहा था। फिर देखिये, यह पेड़ है या कुछ और उसे लेकर फिर क्या झमेला उठ खड़ा होता है।"

ऑफिसर इन लोगों के साथ ही था, बोला, "अरे भाई, इनको रैस्क्यू के नाम पर एक के बाद एक झमेला बढ़ता जा रहा था। नाव आखिर गयी कहाँ ?"

उसी समय पेड़ थोड़ा-सा घूम गया। और उसी के चलते यहाँ से डाल-पत्तों

के झुरमुट के अंदर दिखायी पड़ा कि पेड़ के ऊपर कादाखोया खड़ा हुआ है। सिर्फ पल भर के लिये वह दिखा और जो उसे जानते थे वे उसे पहचान ही गये—"कादाखोया, कादाखोया, पेड़ों के ऊपर कादाखोया है। पेड़ों के ऊपर कादाखोया है। उधर पेड़ का वह बेड़ा पाट के करीब आ पहुँचा। जो उधर दौड़ कर गये थे, वे निश्चय ही साफतौर पर उसे देख पा रहे थे। इधर के लोग बाँध पर से उधर देख रहे थे।

इस बीच पेड़ो का वह बेडा और घूम गया। देखा गया कि कादाखोया सचमुच ही खडा था। बेडा फिर से घूम गया। कादाखोया के पास और एक आदमी नजर आया। वह भी कादाखोया की तरह खडा। पर नरेश और अमूल्य नहीं थे।

सब पेड़ की ओर देख रहे थे—अगर किसी फाक से नरेश और अमूल्य दिख जाय। अगर नरेश और अमूल्य चर पर रुक गये हों तो ? क्या कोई विपदा आ गयी ? अकेला कादाखोया ही वापस आ रहा है ? साथ में एक आदमी भी है, वह जरूर सुबह वाला ही होगा। या फिर नरेश और अमूल्य बाद में नाव से आयेंगे ? इस स्रोत में अकेले वे दो आदमी नाव को खे पायेंगे कैसे ?

बेडा पाट के और भी निकट आ गया था। कादाखोया और वह आदमी साफ नजर आ रहे थे। अबकी बार यह बेडा बाँध की आड में चला जायेगा। यहाँ से कैसे पता लगेगा कि पेड़ों को वहाँ छोड दिया जायेगा या खींचते-खींचते यहाँ तक लाया जायेगा।

बाँध के ऊपर जो लोग इधर-उधर खडे थे- वे तितर-बितर हो गये। कईयों ने बाँध पर से दक्षिण में, उस मोड की ओर चलना शुरू कर दिया। । बाढग्रस्त महिलाएँ अब तक बाँध की ढलान पर विभिन्न जगहों पर खडी हो नदी की ओर देख रही थी वे अब बाँध पर आकर मवेशियों के पास खडे होकर या फिर थोड़ा आगे बढकर आंखो के ऊपर हाथ ले जाकर बाँध की ओर देख रहे थे। अब धूप नही थी। हवा और पानी लगातार जारी था। पर दूर की चीजें देखने के लिये स्त्रियो का तरीका एक ही होता है। मवेशी भी अब तक नदी की ओर देख रहे थे। वे भी घूमे बगैर सिर्फ गर्दन को दायीं ओर कर लेते हैं। बीच-बीच में कुछ समय के व्यवधान से "हाम्बा, हाम्बा" करने लगते हैं। इसी के बीच हवा में, इस मोड की आड से लोगों की पुकार एक साथ सुनायी पड़ी। यहाँ के सभी जान लेना चाहते थे कि उस समवेत चीख़-पुकार मे खतरे का कोई संकेत है कि नहीं।

149
बाघारू और कादाखोया का स्वागत

चीख़-पुकार एक बार उभरकर धीमी हो गयी थी, पर बंद नहीं हुई। हवा उधर से इधर आ रही थी, इसी से उधर की चीख़-पुकार इधर भी सुनायी पड़ रही थी। समझ में आ रहा था कि कुछ ख़राब नहीं है। सब-कुछ ठीक-ठाक है। बीच-बीच में आवाज़ फिर से बढ़ती जा रही थी।

उसके बाद ही दो-तीन बच्चे बाँध के ऊपर से इधर दौड़े-दौड़े आये। और उनकी दौड़ के साथ छंद मिलाकर ही उधर की आवाज़ भी बढ़ती गयी थी, बाँध से नहीं, बाँध के थोड़ा नीचे से। नदी के पास से—बोल्डर के ऊपर से होकर। बाँध के पास जो लोग खड़े थे, वे ठीक से समझ नहीं पा रहे थे कि किधर देखें और किधर नहीं—यहां से नदी की ओर तिरछी या बांध के ऊपर से सीधा देखें। जो बच्चे दौड़कर आ रहे थे वे पीछे मुड़कर कुछ देखकर खड़े हो गये थे और फिर से दौड़ने लग गये थे।

तभी दिखायी दिया—वह पेड़ों का बेड़ा मोड़ पार करके इधर ही आ रहा था, मतलब किनारे से पेड़ों को खींचकर लाया जा रहा था। पेड़ थोड़ा आगे बढ़ते ही नज़र आता था पेड़ों के सामने नाव थी और उस पर अमूल्य और नरेश खड़े थे। किनारा काफ़ी ऊँचा होने से नाव अब तक दिखायी नहीं दे रही थी। नरेश और अमूल्य दाँत निपोर कर हंसे जा रहे थे, वह भी यहां से साफ़ नज़र आ रहा था।

नरेश और अमूल्य के सिर के ऊपर, पेड़ों की डाल पर कादाखोया और वह आदमी खड़ा था। दोनों कमर पर हाथ रखे हुए थे। पेड़ के शिखर पर से कादाखोया और उस आदमी के पास से एक सुनहरी रस्सी किनारे तक तनी हुई थी और सब लोग उस रस्सी को पकड़कर नाव और पेड़ों को खींचते-खींचते ला रहे थे। नाव पर अमूल्य और उसके सिर के ऊपर पेड़ पर कादाखोया डाँड़ लेकर ठेल रहे थे, जिससे पेड़ पाट पर रुक न जाये। उस पर भी पूरी तरह से सँभल नहीं रहा था। पेड़ के पीछे वाला डाल-पात पाट में फँसा जा रहा था इतने लोग रस्सी पकड़ कर खींच रहे थे उनमें से कोई बोल्डर के ऊपर, कोई बोल्डर और नदी के बीचवाले सँकरे रास्ते से होकर आगे-आगे आ रहे थे। जैसे वे ऐसे ही रस्सी खींच रहे थे। जैसे पेड़ों और नाव को राह दिखा रहे हों।

कितनी दूरी है और ? देखते-देखते यह सब बाँध के इस अस्थायी कैंप के निकट पहुँच गये थे। पहुँचने के पहले ही सबने देखा—उस नये आदमी के गले में नाइलॉन की रस्सी का एक बड़ा-सा बंडल पड़ा था—और वही रस्सी पाट के लोगों के हाथ में थी। वह इस रस्सी को पकड़-पकड़े ही पेड़ और नाव को

खींचते हुए लिये आ रहे थे।

बाहर आकर जहाँ रुके थ, वहाँ पहले से ही सब भीड़ लगाकर खड़े थे। नदी के भीतर नाव में, पाट के थोड़ा नीचे, नरेश और अमूल्य और पाट से काफ़ी ऊपर, नदी के काफी ऊपर कादाखोया और वह नया आदमी।

"पा लिया, पा लिया। सुपारी बागान के उस नये आदमी को पा लिया है।"

"वह जंगल से सारी रात बहता आया है।"

"सारी रात पेड़ के ऊपर बहता आया है।"

"अरे बहता आ रहा था, पेड़ों को पाकर पकड़ लिया है।"

"इतनी बड़ी रस्सी पाया कहाँ से ? पानी में बहने के पहले क्या गले में रस्सी डाला था ?"

इन सब प्रश्नोत्तरों के बीच नरेश और अमूल्य किनारे पर चले आये थे। कादाखोया और बागारू उतरे नहीं। वे ठीक से समझ नहीं पाते कि उन्हें यहाँ उतरना चाहिये या नहीं। नरेश ने पाट पर उतरते ही पूछा "कहाँ हैं सर कहाँ हैं ?"

नरेश की बातों के जवाब में ही और दो-चार आदमियों ने सवाल करना शुरू कर दिया, "कहाँ हैं ? ऑफिसर कहाँ हैं ?"

और इस बीच किसी ने नरेश से कह दिया कि ऑफ़िसर बाँध के ऊपर ही है। नरेश बाँध के ऊपर चढ़ने लगा। उसके पीछे पीछे और कई आदमियों के चढ़ने पर भी, सामने कोई नहीं रहा। उस ढलान से होकर नरेश के चढ़ने से ही वह ढलान ख़ाली हो गयी जैसे। उस ख़ाली जगह के अंत में बाँध के ऊपर ऑफ़िसर आकर खड़ा हो गया था। बाँध के ऊपर पहुँचने से पहले अचानक पीछे मुड़कर नरेश हाथ हिलाकर चिल्लाया, "इस रस्सी को बाँधकर रखो, छोड़ना नहीं, बह जायेगा।" फिर उसने बाँध पर क़दम रखते ही देखा है कि सामने ही ऑफिसर खड़ा था। एक क़दम पीछे हटकर, बायें हाथ से घुँघराले बालों को सहलाता हुआ नरेश अपने सफेद दाँतों को निपोर कर हँसा फिर "लाया हूँ सर, वह देखिये" कहता हुआ बाघारू को दिखाने के लिये बायाँ हाथ नीचे कर लिया। "चलिये सर" कहता हुआ बायाँ हाथ झुकाकर ऑफ़िसर को रास्ता बताने लगा। रास्ता बताने के लिये ही, नरेश के पीछे जो लोग थे, वे दोनों ओर हट गये। बीच में एक रास्ता सा बन गया।

चाहे नरेश के इस तरह से हाथ दिखाने से हो अथवा नरेश के पीछे वाले लोगों के हटकर रास्ता कर देने के लिये हो, ऑफ़िसर ने नरेश की पीठ पर स्नेह से हाथ रख दिया। फिर नरेश के दिखाये हुए रास्ते पर बोल्डर के नीचे उतरने के लिये पैर बढ़ाकर एक बार मुस्कराता हुआ दोनों ओर देख लिया, जैसे कि

इस समय यहाँ उसके आगे टीवी कैमरा या कम-से-कम एक प्रेस फोटोग्राफर को तो होना ही चाहिये था। न रहने पर भी, वे हैं ऐसे ही एक विश्वास के साथ ऑफ़िसर धीरे-धीरे ढलान से बोल्डर के पाट पर उतर गया। सामने नदी थी। बोल्डर का पाट पार करके नदी के किनारे पेड़ों और नाव के सामने जाकर ऑफ़िसर को खड़ा होना पड़ा। जैसे कि इस ढलान और बांध से अब तक बार-बार उसने आना-जाना नहीं किया था। और जैसे अभी-अभी वह गाड़ी से उतर कर पूर्वनिर्धारित कार्यक्रमानुसार नदी के पाट पर आकर खड़ा हुआ हो।

ऑफ़िसर और नरेश पास ही पास खड़े थे, उनके पीछे भीड़ लगी थी। सामने, क़रीब सिर के ऊपर कादाखोया और बाघारू। वे समझ नहीं पाये कि उन्हें क्या करना है। नरेश चिल्ला उठा, "अरे, तुमलोग आओ, देखते नहीं, मर आये हैं ?"

बाघारू ने मचान के ऊपर से अपनी कुल्हाड़ी लेकर लंगोटी के पीछे खोंस लिया। कादाखोया ने डाँड़ लेकर नीचे की डाल पर पैर रखा। उसके बाद बाघारू थोड़ा-सा झुककर कादाखोया को डाल पर से पाट में आने में मदद की और खुद मचान से नीचे की डाल, डाल से पाट में चढ़ने में सहायता करने लगा। बाघारू को खींच लेने के लिये पाट मे उतर कर कादाखोया को ऑफिसर की ओर पीछे मुड़ना पड़ा। उसके बाद बाघारू के उतर जाने पर दोनों एक साथ ऑफिसर के सामने खड़े हो गये। बाघारू के गले में सुनहरी रस्सी डोल रही थी। ऑफिसर ठीक से समझ नहीं पया कि उसे करना क्या है। नरेश ने उसे दिखाकर कहा, "सर, बहता आया है, उस जंगल से–पेड़-वेड़ लेकर।"

इसके बाद भी जैसे ऑफ़िसर को एक काम करना बाक़ी था। उसने बाघारू का हाथ पकड़ लिया।

ऑफ़िसर ने हाथ मिलाने के अंदाज़ मे ही हाथ बढ़ाया था। पर बाघारू के हाथ न बढ़ाने पर उसने बाघारू की कलाई पकड़कर हिलायी। फिर छोड़ दी। उसने कादाखोया की ओर हाथ नहीं बढ़ाया। एकबारगी कलाई पकड़कर हिला दिया और छोड़ दिया। ऑफ़िसर ने शायद सोचा था ये दोनो ही बहकर आये हैं। दोनों देखने में एक जैसे लगते थे। या फिर दोनों ऐसे ही पास पास खड़े थे कि उनके साथ एक जैसा व्यवहार करने के अलावा ऑफ़िसर को और कोई चारा नहीं था। पर कादाखोया को तो बाढ़ग्रस्त तमाम लोग पहचानते थे। ऑफिसर को उसका हाथ पकड़कर हिलाने पर सबको मज़ा आ गया। वे ताली बजाने लगे। ऑफ़िसर ने उन तालियों की ओर देखकर हँसते हुए सिर हिलाया।

150
स्वागत के बाद बाघारू और कादाखोया

बाघारू और कादाखोया समझ नहीं पाये कि उन्हें अब क्या करना चाहिये—नरेश या ऑफ़िसर भी समझ नहीं पाये। सबको ताली बजाते देखकर नरेश उधर देखकर हँसने लगा। इस बीच अमूल्य आकर नरेश के पास खड़ा हो गया। ऑफ़िसर फिर से मुस्कराता हुआ कादाखोया और बाघारू की तरफ, उनके पीछे नदी की तरफ़, बायें नरेश और अमूल्य की तरफ और यहाँ तक कि गर्दन घुमाकर बाँध की ओर भी देख लिया। बाँध पर जो खड़े थे वे नीचे ताली सुनकर ढलान पर से नीचे उतरना शुरू कर दिये। तभी ऑफ़िसर ने नरेश की ओर देखकर कहा, "तो फिर तुम्हारा ही रेस्क्यू हुआ। अब तुम्हारी छुट्टी। क्यों, क्या कहता है रे ?"

नरेश ने फिर से माथा हिलाकर कहा, "हाँ सर, आपको कितना कष्ट उठाना पड़ा ?"

बाँध पर चलने के लिये मुड़ते-मुड़ते ऑफिसर ने कहा, "अरे कष्ट काहे का रे भाई ? यह तो हमारा काम है। इसमें कष्ट का सवाल कहाँ से आता है ?" इस बात को खत्म करने के लिये ऑफिसर को हाथ से नरेश का कंधा थपथपाना पड़ा। पर नरेश इतना लंबा था कि उसका कंधा छूने के लिये ऑफिसर को हाथ उठाना पड़ता है। इसी से ऑफ़िसर ने उसकी पीठ पर हाथ रखकर झुका लिया। उसी मौके से नरेश ने गर्दन झुकाकर ऑफ़िसर से कहा, "सर, हमारा पेमेंट ?"

"हाँ, हाँ, चलो, अभी तुमको पाँच सौ दे देते हैं। और बाक़ी के लिए, कल हमारे ऑफिस में आना।"

"सर, आपका ऑफ़िस तो देखा नहीं है।" नरेश ने खड़ा होकर अपराधी की मुद्रा अपना ली।

"दीप्ति टॉकीज कहाँ है, देखा है न ?"

"हाँ सर।"

"और थोड़ा सीधा जाने पर फायर ब्रिगेड का ऑफिस है।"

"देखा है सर।" पीछे से अमूल्य ने कहा।

"बस उसी के पास में ही है।" ऑफिसर ने चलना शुरू किया। पर नरेश फिर से कह उठा, "सर आपको गाड़ी तक छोड़ देता हूँ, वहीं पेमेंट कर दीजियेगा।"

"जीप को तो ठीक बाँध के इस किनारे पार लाकर रखा है। ठीक है चलो।" ऑफ़िसर बाँध पर चढ़ना शुरू कर दिया। पीछे-पीछे अमूल्य और नरेश। उनके पीछे भीड़ के आदमी। बाँध के ऊपर से जो लोग नीचे उतरे थे वे भी इनके साथ मिल गये। कादाखोया और बाघारू समझ नहीं पाये कि उनको क्या करना

है ? पर जब उन्हें पेड़ पर से उतरने के लिये कहा गया है तो उन्हें अवश्य ही बाँध के ऊपर जाना ही चाहिये। इस तरह की एक सहज धारा से उन्होंने भी भीड़ के साथ बाँध पर चढ़ना शुरू कर दिया। बच्चे लोग तब तक कादाखोया और बाघारू के काम में अनाग्रही हो चुके थे, वे दोनों को ठेलते-धकियाते ही आगे बढ़ गये। बाघारू और कादाखोया पीछे रह जाते हैं। वे भीड़ के पीछे-पीछे ही ढलान पर से ऊपर चढ़ने लगे।

थोड़ी दूर चलने के उपरांत बाघारू के गले से वह रस्सी पेड़ तक डोलने लगी। जो अब तक रस्सी पकड़ कर खींचते लाये थे, वे तो रस्सी को बोल्डर पर फैलाकर बाँध के ऊपर-नीचे फैली भीड़ में शामिल हो चुके थे। और अब बाघारू जितना ऊपर चढ़ रहा था, रस्सी भी धरती पर से उतनी ही ऊपर उठती जा रही थी। और अंत में बाँध के ऊपर से नदी तक झूलने लगी।

बाँध के ऊपर आकर कादाखोया और बाघारू फिर से खड़े हो गये। ऑफ़िसर को लेकर भीड़ ढलान से बाँध के विपरीत दिशा में उतरती जा रही है। वे समझ नहीं पाये कि उन्हें उस ढलान पर से उतरना चाहिये या नहीं। क्योंकि अधिकांश लोग अब उतर नहीं रहे थे। वे बाक़ी भीड़ को उतरते हुए देख रहे थे। कादाखोया और बाघारू को उस भीड़ के बीच रुक जाना पड़ा। उन्होंने एक बार ऑफ़िसर को ढलान की ओर, और एक बार नदी के ढलान की ओर इधर-उधर देखा। इस समय अश्विनी राय ने भीड़ के बीच आकर पुकारा, "ए कादाखोया।" कादाखोया अश्विनी राय की पुकार सुनकर उधर बढ़ गया।

अश्विनी राय ने उससे पूछा, "क्या देखकर आया है रे ? घर-बार सब ठीक है कि नहीं ?"

कादाखोया सवाल का मतलब बिना समझे बोला, "वहाँ तो पानी है।"

"पानी तो है। पर यह आदमी सुपारी पेड़ के ऊपर चढ़कर क्या कर रहा था ?"

अश्विनी राय का सवाल सुनकर भीड़ में से बहुतों को याद आ गया कि यह आदमी सुपारी के पेड़ पर चढ़कर फिर उतरा नहीं था। वह उतरा क्यों नहीं था यह देखने के लिये ही यहाँ से नाव भेजी गयी थी। अचानक कादाखोया और अश्विनी राय को घेरकर भीड़ जम उठी। उनमें से एक आदमी ने पूछा भी, "क्या देखा रे कादाखोया, कहता क्यों नहीं ?"

"कुछ ज्यादा नहीं देखा है !"

"क्या नहीं देखा ? वहाँ जो यह आदमी था देखा नहीं ?"

"हाँ देखा। आदमी था।"

"कहाँ था ?"

"वहाँ था, पानी के भीतर।"

"पानी में बह रहा था कि खड़ा था ?"

"बैठा था। बैठा था पानी मे।"

"इसे छोड़ क्यों दे रहा है। नरेशुआ को आने दो, उसके बाद सब बात सुना जायेगा।"

लोगों की यह सब बातें थमते ही अश्विनी राय ने जैसे थोड़ा क्रोधित होकर पूछा, "इस आदमी का सुपारी पेड़ पर चढ़ने का क्या काम था ?"

अश्विनी राय के इस सवाल का जवाब ढूँढने के लिये कादाखोया ने एक बार शून्य में देखा—जैसे कि उस शून्य में अश्विनी राय की छत हो, फिर मिट्टी की ओर देखा, जैसे इस धरती पर बाढ़ का पानी फैला हो, और उसमें पेड़ों के साथ बाघारू बह रहा हो। पर बात कहने की भाषा न पाकर वह अपना दायाँ हाथ आकाश की ओर उठाकर बोला, "यहाँ तो छत है, और यहाँ तो पानी है।"

"चढ़ा तो चढ़ा। पर साले का सुपारी पेड़ पर चढ़ने का क्या काम ?"

अश्विनी राय ने अपने गुस्से को क़ायम रखने की कोशिश की। नरेश ने उसकी बात का जवाब नहीं दिया, फिर वह हिम्मत करके नरेश या अमूल्य से तमाम सवाल भी कर नहीं पायेगा। इसी से उनके आने के पहले ही वह अपनी निजी बातें अपने 'निजी' आदमी से जान लेना चाहता था। पर कादाखोया उसे बता नहीं पाया। उसने फिर से आकाश की ओर देखा। जैसे यहा पर अश्विनी राय की छत हो। वह फिर से मिट्टी की ओर देखने लगा, जैसे वहाँ बाढ़ में बाघारू बह रहा हो। फिर, उसके बाद दायाँ हाथ आकाश में उठाकर वह सिर्फ़ बोल पाया, "इहा पर छत है, और इहाँ पर पानी।"

'सुपारी सब है कि नहीं ?" अश्विनी राय ने कादाखोया के पास अपने सुपारियों का हिसाब-तलब किया। कादाखोया अश्विनी राय का सवाल सुनकर सबके सिर के ऊपर से हवा और बारिश को भेदकर उस चर की ओर ताकने लगा। वह देखना चाहता था कि सुपारी है कि नहीं पेड़ में।

जहाँ तक हो सका अश्विनी राय आवाज़ ऊँची करके कहा, "देखने का मन तो नहीं है, देखेगा क्या ?"

कादाखोया ने उस चर के ऊपर से अश्विनी राय की आँख पर अपनी नज़र केंद्रित कर दी। अश्विनी राय आवाज़ को और ऊँचा करके बोला, "जा फिर, गाय-बछड़ों को चारा खिला दे। उसने अँगुली उठाकर उसे जाने का रास्ता दिखा दिया। कादाखोया उधर चला गया।

बाघारू जहाँ पर था वहीं खड़ा रहा। बाँध के ऊपर की भीड़ दो भागों में बँट गयी थी। एक ढलान से नीचे ऑफ़िसर, नरेश और अमूल्य के साथ और दूसरी अश्विनी राय कादाखोया के साथ। इससे बाघारू थोड़ा अकेला ही पड़ गया था। वह दोनों भीड़ के पीछे हो गया। दोनों भीड़ के बाहर भी कुछ लोग इधर-उधर

खड़े थे। दो-एक आदमी बाघारू को सिर से पैर तक देख भी रहे थे। दो-एक आदमियों ने बाघारू के गले की रस्सी को भी देखा था। पर बाघारू से किसी ने कुछ नहीं पूछा। बाघारू जैसे खड़ा था, वैसे ही खड़ा रहा। उसके सामने बाँध के नीचे और उसके पास बाँध के ऊपर तरह तरह की बातो के बीच बाघारू के गले से नदी के भीतर बहते पेड़ तक पीले रंग की मोटी नाइलॉन की रस्सी बाढ़ की हवा में डोल रही थी।

151
बाघारू का दूसरा संलाप

बाँध के नीचे ऑफ़िसर ने नरेश से कहा, "अरे, उस आदमी का नाम, ठिकाना तो लिया ही नहीं गया, मुझे तो रिपोर्ट करनी पड़ेगी।"

नरेश पीछे की ओर मुड़ा, फिर खुद ही बाँध पर ऊपर चलने लगा बाघारू को बुलाने के लिये। बाँध के बीचोंबीच आते ही देखा कि बाघारू अकेला ही खड़ा है। नरेश ने वहीं से खड़ा होकर बाघारू को पुकारा, "हो, सुन रहे हो, हो सुन रहे हो, अरे हो..."

हवा की आवाज़, चारों ओर तरह-तरह का शोरगुल, बातचीत, इन सबके कारण बाघारू नरेश की पुकार सुन नहीं पाया। फिर उसे बुलाया जा सकता है यह बात वह सोच भी नहीं सकता था। इसी से मजबूरन नरेश को फिर से आगे बढ़ना पड़ा। वह चलते हुए पुकारता भी जाता था, "हो, लकड़ीवाले आदमी, हो पेड़वाले, अरे हो पेड़वाले आदमी !"

बाघारू तब ढलान से होकर ऑफ़िसर की गाड़ी की ओर ताक रहा था, जैसे वह सभी दिशाओं में अलग-अलग ताक रहा हो। ऑफ़िसर की गाड़ी से आँख हटाकर फिर बायीं ओर आँख करते हुए नरेश उसकी नज़र में आ गया। बाघारू अगर सीधा ताकता और सीधे बायीं ओर गर्दन घुमाता तो नरेश को देख नहीं पाता। पर ऑफ़िसर की गाड़ी की ओर देख रहा था, इसी से उसे धरती से तिरछे बाँध के ऊपर देखना पड़ रहा था। इसी से नरेश उसकी नज़र में आ गया।

नरेश तभी उसे हाथ से इशारा करते हुए चिल्लाया, "अरे, सुनायी नहीं देता क्या ? आओ इधर, सर बुला रहे हैं।"

नरेश की बात बाघारू, समझ नहीं पाया, सुना हो तो भी उसके मायने समझने के लिये उसे फिर से ऑफ़िसर के गाड़ी की ओर देखना पड़ा। गाड़ी के निकट से सभी उसकी ओर ताक रहे थे। नरेश से पुकारा, "अरे यह आदमी बहरा हो गिया है क्या ? अरे आओ, सर बुला रहे हैं।"

अबकी बार बाघारू समझ गया। वह ढलान से नीचे उतरने लग गया। एक-दो कदम चलते ही नरेश पीछे लौट आया। उसने भी दो-एक क़दम उतरने के बाद मुड़कर देख लिया कि बाघारू उतर रहा है कि नहीं।

बाघारू जाकर ऑफ़िसर के सामने खड़ा नहीं हुआ। बाँध की ढलान के बाद जहाँ जीप के सामने वाली भीड़ खत्म हुई थी, वह वहीं खड़ा हो गया था। तब तक नरेश ऑफिसर के पास पहुँच चुका था। उसने पीछे मुड़कर देखा था, उसके पीछे के लोगों के ऊपर से बाघारू का सिर नजर आ रहा है।

"अरे, यहाँ, इधर आओ न ? सर आये हैं।" नरेश ने हाथ से पीछे खड़े लोगों को दोनों ओर करते हुए बाघारू के लिये रास्ता बनाने लगा। पर राह बन जाने पर भी बाघारू आगे नहीं बढ़ा। जहाँ खड़ा था, वहीं खड़ा रहा।

ऑफ़िसर जीप के भीतर बैठा था। वहीं से गर्दन निकालकर उसने पूछा, "इधर आओ, तुम्हारा नाम क्या है ?" पूछने के लिये ऑफ़िसर ने नरेश को सामने से हाथ से सरका दिया। अब जीप में ऑफिसर और उसकी सीध में धरती और बाघारू। दोनों के बीच में था -पाँच-छः हाथ का ही फासला।

बाघारू ने कोई जवाब नहीं दिया। इस बीच ऑफिसर अपनी जेब से पेन और एक टुकड़ा कागज निकालकर दायीं जाँघ पर रख लिया था। सुनकर लिखने के लिये। ऑफ़िसर अपना सिर भी झुकाये हुए था। पर काफी समय गुज़र जाने पर उसे फिर से आँख उठानी पड़ी। आँख उठाकर बाघारू को देखकर फिर से सवाल किया, "तुम्हारा नाम क्या है," उसके बाद नरेश से पूछा, "रस्सी काहे का है ?"

बाघारू के गले से वह पील रंग की रस्सी बाँध की ढलान से ऊपर आकर आड़ में चली गयी थी। यहाँ बाँध की ढलान के लिये हवा में वह रस्सी अब हिल नहीं रही थी।

नरेश ने कहा, "वह सर, उसके पेड़ बाँधने की रस्सी है।"

"गले के साथ बँधी हुई ?"

नरेश हँस पड़ा, "पेड़ों को बाँधकर गले में लटकाकर रखा है।"

ऑफिसर ने नरेश से कहा, "नाम-पता पूछिये तो।"

नरेश बाघारू के पास जाकर बोला, "अरे, तुमको सर बुला रहे हैं। वहाँ पर खड़े क्यों हो ? अपना नाम-पता बताओ, सर पूछ रहे हैं। सर को लिखना पड़ेगा। तुम्हारा नाम, पता क्या है बताओ।"

"मेरा कोई नाम पता नही हो। मेरा देऊनिया गयानाथ जोतदार।" बाघारू इतने समय बाद बोला।

सुनकर मुँह पर हाथ रखकर नरेश हँस दिया। ऑफ़िसर ने पूछा, "क्यों, क्या हुआ ?"

"सर कहता है कि इस आदमी का कोई नाम नहीं, गयानाथ जोतदार का नाम लिखने को बोलता है।"

दूसरे लोगों की दबी हँसी कम हो जाने पर ऑफ़िसर ने कहा,"तो फिर गयानाथ जोतदार का ही पता पूछो। इसी से तो उसके ठिकाना का भी पता चल जायेगा। केयर ऑफ गयानाथ जोतदार।" ऑफ़िसर कागज़ के ऊपर सिर झुका लिया।

नरेश ने बाघारू से पूछा, "फिर गयानाथ जोतदार का ही पता बताओ।"

"मुझे मालूम नहीं। लिख दीजिए गयानाथ जोतदार।"

"अरे भई, वह तो लिख ही चुका। वह जोतदार रहता कहाँ है ? घर कहाँ है वह तो बताओगे न ?"

बाघारू की बातें सुनकर नरेश फिर से हँस पड़ा मुँह दबाकर। अबकी ऑफ़िसर ने पूछा, "क्यों, क्या हुआ ?" हँसी ख़त्म करके नरेश ने कहा, "सर, कहता है, उसका जोतदार गयानाथ सब जगह रहता है, यहां भी रहता है।"

ऑफ़िसर थोड़ा सोचने लगा,"गयानाथ का नाम तो सबको पता है। वह कहाँ नदी में गिरा पूछो, तो भी काम बन जायेगा।"

नरेश ने बाघारू से पूछा, "तुम कहाँ पर नदी में गिरे, वही बताओ।"

बाघारू थोड़ा सोचने लगा। नरेश को उसकी चुप्पी का जवाब देने में आपत्ति हुई। इसी से उसने फिर से पूछा, "क्या यह भी गयानाथ को ही पता है ? वह तुम और पता होगा गयानाथ को ?"

तब तक बाघारू को नरेश के प्रश्न का उत्तर मिल गया,"मई नदी में गिरा नहीं।"

अब तक शायद यह पता चल चुका था कि बाघारू नीम पागलों जैसा ही जवाब देता जायेगा, और उससे सबको हँसी आएगी। नरेश की हँसी को बीच में ही रोक कर बाघारू ने अपने जवाब को पूरा कर दिया, "मई बाढ़ में बहा हूँ।"

हँसी रोक कर नरेश ने कहा, "सर, कहता है कि नदी में गिरा नहीं, बाढ़ में बहा है।"

ऑफ़िसर को जैसे एक इशारा मिल गया। वह फ़ौरन बोला, "हाँ, यही तो पूछ रहे हैं हम कि तुम कहाँ से बाढ़ में बहे हो, वही कहो। और तुम्हारा नाम ?"

ऑफ़िसर के सवाल के मुताबिक नरेश ने कह, "बाढ़ में कहाँ से बहे ?" यह कहते हुए नरेश को लगा कि बाघारू को शायद जुबान समझ में नहीं आयें। उसने राजवंशी भाषा मिलाकर फिर से सवाल किया, "कहाँ से बहे फ्लड में ?"

बाघारू ने फ़ौरन जवाब दिया, "गाजोलडोबा से।" बाघारू के उत्तर देते

समय ऐसा एक भाव आ गया था जैसे कि वह सभी सवालों का जवाब दे सकता है, बशर्ते कि सवाल सही ढंग से किया जाये।

एक जगह का नाम पाकर नरेश खुश हो गया और एक छलाँग लगाकर ऑफ़िसर के निकट पहुँचकर बोला, "सर, बोला है, बोला है।"

"क्या बोला है ?"

"जगह का नाम बोला है।"

"बोला है तो फिर कहते क्यों नहीं ? कहां से बहकर आया है ?"

"गाजोलडोबा से।"

ऑफ़िसर ने उच्चारण के साथ ही कागज के टुकड़े पर लिख लिया—"जी.ए.जे.ओ.एल." फिर नरेश से कहा, "नाम पूछो।" "डी.ओ.बी.ए." नरेश फिर से बाघारू के पास चला गया और बोला "सुनो। अपना नाम बता दो, तब सर चले जा जाएँगे। यह तो लिख ही लिया--गयानाथ जोतदार, गाजोलडोबा। अबकी अपना नाम बताओ।"

"गयानाथ जोतदार गाजोलडोबा में नहीं रहता।" बाघारू ने कहा।

"मर गये। अभी तो कहा कि तुम गालोजडोबा से बहते आ रहे हो।"

"वो तो मई बहा हूँ। पर गयानाथ नहीं रहता।"

"गयानाथ का जहाँ मन करे वहीं रहे। पर तुम तो गाजोलडोबा से ही बाढ़ में बह रहे थे न ? तो भी काम चल जायेगा।"

"अरे क्या गाजोलडोबा-गाजोलडोबा कर रहे हो तब से, वह तो हो ही गया।" ऑफिसर चिढ़कर नरेश से बोला। अबकी अगर बाघारू कुछ कहता है और गाजोलडोबा नाम वापस ले लेता है तो जो कुछ हासिल हुआ है वह भी चला जायेगा। ऑफ़िसर को चाहिये था एक जगह का नाम—वह उसे मिल ही गया। नाम का पता लगा सकते हो या नहीं वही देखो वरना छोड़ो।" जैसे गाजोलडोबा से एक आदमी बहे जा रहा था, पेड़ के साथ बहा जा रहा था, उसे उद्धार कर लिया गया है--ऑफिसर के रिपोर्ट के लिये उतना ही क़ाफी था। इतने समय तक वह बाढ़ में बहता आया था, वह तो फिर इतना स्वस्थ नहीं हो सकता कि अपना नाम तक भी बता न सके।

"अपना नाम बताओ, भाई, नाम। सर को लिखना है।" बाघारू चुप हो गया।

थोड़ी देर बाद नरेश ने फिर से कहा, "क्यों, बताओगे नहीं अपना नाम ?"

बाघारू ने कहा, "हमरा नाम नहीं है जी।"

नरेश अबकी हँसा नहीं, उसे गुस्सा आ गया। "बाढ़ में बहने से पहले एक ठो नाम नाहीं दे सका अपने आपको तो यहाँ कंबल, कपड़े, तिरपाल, चिउड़ा-गुड़—यह सब कौन सा नाम से दिया जा सकेगा तुमको ? या फिर इनकी

ज़रूरत ही नहीं है ?"

नरेश को आशा थी कि बाघारू इतनी सारी चीज़ों के लोभ में आकर अपना नाम बता दे। पर बाघारू ने कहा, "गयानाथ का नाम से दे देना।"

"अरे फिर वही गयानाथ ? रिलीफ तुम्हें देंगे और नाम लिखेंगे गयानाथ का ?"

"मुझे नहीं चाहिये।"

ऑफ़िसर तब तक गयानाथ जोतदार के खेतों में काम करने वाला "एक खेतिहर मज़दूर" लिख चुका था। उसने ड्राईवर से कहा, "चलो," और नरेश से बोला, "उसे छोड़ दो। कल तुम जब ऑफिस में आओगे तब बता देना।"

152

डेढ़ हाथ का बंधन, नाइलॉन रस्सी का बंधन और टी.वी. कैमरा इत्यादि को लेकर वृक्षसर्ग का अंतिम अध्याय

वृक्ष-सर्ग यहीं समाप्त हो सकता है। वृक्ष-सर्ग में तो बाघारू किस तरह से गयानाथ के पेड़ों के साथ बहकर निताइयों के चर में पहुँचा और फिर वहाँ से गंधामाली के बाँध पर आया उसकी कहानी का वर्णन है। गंधामाली के बाँध पर उस दिन शाम को नरेश को ऑफ़िसर ने जितना रुपया देना था, दे दिया था। अगले दिन सुबह ऑफ़िस में आने को कहा। और एक रसीद में और कुछ पैसे दे देगा। बाघारू अपना नाम बता नहीं सका, वह एक तरह से अच्छा ही हुआ था—ऑफिसर ने अपनी तरफ़ से अपनी मर्ज़ी से कुछ लिख लिया। एक ही आदमी बाघारू, पर उसे कागज़ क़लम से दो बार रेस्क्यू किया गया है। तो फिर एक नया नाम भी लिखना पड़ा। अधिक लोग रेस्क्यू कर पाने से वह भी ऑफ़िसर की सर्विस फाइल में लिखा जायेगा।

बाघारू अपने पेड़ों को लेकर थोड़ा हट गया था। उसने उन्हें वहीं बाँध रखा था। वह इस बाँध के चरवासियों में से एक नहीं था। पर उन्हीं में से ही एक था भी। वह अपने मचान पर ही रहता था। बीच-बीच में बाँध पर भी आता था। कादाखोया के साथ बाघारू की फिर भेंट नहीं हो पायी। भेंट नहीं होती, मतलब बातचीत नहीं होती। उन दोनों की बीच होने लायक़ भी कोई बातचीत नहीं थी। कादाखोया तो कामकाजी आदमी है—हालाँकि अब कामकाज काफ़ी कम हो गया था। बाक़ी के समय वह गमछा सिर पर डाल, सिर हिलाते हुए बोल्डर पर मटरगस्ती करता था। बाँध के लोग कभी बाघारू को कादाखोया तो कभी कादाखोया को बाघारू कहकर पुकारते थे।

बाँध में आकर बाघारू को एक नया नाम मिला था 'गाछारू'। उसने अपना

नाम नही बताया। अगर बोल भी देता तो बाँध के लोग समझ नहीं पाते। उनलोगों ने खुद ही उसे बुलाने के लिये एक नाम रख दिया था। बाघारू के गले मे पड़ी उस नाइलॉन रस्सी के बंडल को लेकर भी एक नाम रखा जा सकता था। पर वैसा हुआ नहीं। इतने सारे पेड़ और उन पेडो के साथ बाघारू का शरीर बँधा हुआ था--फिर उन पेड़ो के मचान पर ही उसका उठना-बैठना-सोना—इन्हीं सब कारणो से 'गाछारू' नाम चालू हो गया था। इस पर पूर्वी बंगाल के ही लोग अधिक थे—उसी लिहाज से उसका नाम 'गाछारू' होना ही अधिक उचित था। पर भाषातत्त्व के बाहरी कारण के चलते नामकरण आदि के मामले में पूर्वी बंगाल के ये लोग तिस्ता पार के नियम-क़ानून को ही मान बैठे थे।

बाँध पर बाघारू गयानाथ आसिंदर की प्रतीक्षा कर रहा था। प्रतीक्षा करने के सिवा उसको कोई और दूसरा काम नही था। यह बाढ, हवा, बारिश रुकते रुकते आसिंदर की फटफटिया से गयानाथ ठीक पहुच जायगा। अधिक ढूंढना नही होगा गयानाथ को--उसे ठीक ही पता लग जायेगा कि बाघारू रधामाली के बाँध पर आ रुका है।

पर उन सब काम में भी बाघारू की कोइ भूमिका नही थी। उसे दूर से लाकर गाजोलडोबा से ही बाढ़ मे बहा दिया गया था। वह विश्वस्त भाव से बहता आया था। वह जहाँ रुक जाये, उसे वही पर रुकना था। वह बाढ मे इस चर मे रुक गया था–अब इस बाँध पर आकर रह रहा था। अब उसका शरीर बाढ के साथ जुड़ा हुआ नही है। गयानाथ की प्रतीक्षा को लेकर यह बहा-पर्व समाप्त हो सकता है।

निताई, जो रिलीफ का बंदोबस्त करके वापस आया था उसका हिस्सा बाघारू को भी मिला। इस तरह से बाढग्रस्त लोगों के रिलीफ मे तो हरेक के नाम से अलग से चिउड़ा-गुड का हिसाब लिखा नही जाता। इसी से कुल हिसाब के भीतर बाघारू भी घुस गया। पर बाढ़, हवा और बारिश के कम न होने पर चावल, गेहूँ का इतजाम किया जायेगा। बाढ का पानी उतर जाने पर निताइयों के चर के न सूखने तक कपडे, धोती, कंबल और नगदी व्यवस्था होगी—तभी अगर बाघारू को चर का एक आदमी बनकर रहना पडा, तो फिर उसके पुराने नाम-धाम की आवश्यकता होगी, नये नाम से काम चलने का नही।

पर दो कारणों से यह संभावना भी कम थे. चर के लोग इस चर के वासी होने के नाते, उन्हें जो सुविधा, सुयोग दी जायेगी, उसमें वे बाघारू को घुसाना नही चाहेंगे। यह सब विशेष सुविधाएँ परिवार के आधार पर दी जाती है। बाघारू चर मे किसी परिवार का नही है। इसके अलावा तिस्ता के बाढ़ में बहुत सारे लोग बहकर जैसे टीन की छत तक पा जाते हैं, या शाल का खूँट, बाँस का खूँट तो पा ही सकते हैं—उसी तरह बाघारू जैसा बह आया जवान

काम-काज के आदमी भी पा जाते हैं। नरेश या अमूल्य फिर तो बाघारू को अपने परिवार के आदमी के तौर पर बता सकते थे और बाघारू को मिलने वाले कपड़े-लत्ते, कंबल, गेहूँ, चावल यह सब भी पा सकते थे। पर बाघारू ने बार-बार गयानाथ जोतदार का नाम बता-बताकर सभी को मालूम करवा दिया था कि उसका एक 'देऊनिया' भी है, और उस देऊनिया के पेड़ों को साथ लेकर ही वह यहाँ तक आ पहुँचा है। यह आख़िरी बात अवश्य किसी भी समय स्पष्ट नहीं हो पायी थी। फिर इतने सारे पेड़ तो बाक़ायदा एक दौलत के बराबर थे। बाघारू को देखते ही यह समझ में आ गया कि यह संपत्ति तो उसकी हो ही नहीं सकती। इन पेड़ों का जैसे कोई मालिक है, उसी तरह उसका भी कोई मालिक है। चर के लोग संपदा का क़ानून जानते हैं। इसी से नरेश या अमूल्य जैसे संपत्ति के मालिक बाघारू या वृक्ष संपदा के मालिक किसी क़िस्म की भागीदारी नहीं बिठाते। बाघारू चर के एक आदमी के रूप में नहीं हो पाया था, यही उसका एक कारण है। इसी से चर के बाढ़ग्रस्त के हिसाब से उसका नाम रिकॉर्ड नहीं किया गया।

दूसरा कारण यह है कि—बाघारू को या इन पेड़ों को गयानाथ अधिक दिन तक कभी भी यहाँ पड़ा रहने नहीं देगा। वह इस हवा, बारिश और बाढ़ के बीच में ही आकर बाघारू और इन पेड़ों को ढूँढ़ निकालेगा। बाघारू जैसा गयानाथ का है वैसे ही गयानाथ का ही होकर रहेगा। बल्कि पेड़ों को गयानाथ यहाँ बेच दे। पर बाघारू को फिर से अपनी जगह भेज देगा।

अभी देखकर समझने का कोई उपाय नहीं था कि दो-चार दिन पहले तिस्ता ऐसी नहीं थी। सामने निताइयों के चर में भरपूर गाँव-पथार थे। यह बाँध तब बिल्कुल खाली पड़ा था। पर अब देखने पर लगता था कि तिस्ता में साल तमाम ही इस तरह की बाढ़ थी, और ये लोग इस बाँध के ही रहने वाले थे। ये सब एक ही गाँव के आदमी थे। फलतः बाँध पर आ जाने के बाद भी उसी गाँव के नियमानुसार सब-कुछ चालू रखने में कोई दिक़्क़त नहीं थी। सिर्फ़ रोज़मर्रा के कामकाज ही नहीं, उस कौवे के काँव-काँव से हुए भोर से लेकर कौवों के घर वापसी की शाम तक काम ही काम। उसके बदले कोई-कोई रिलीफ़ लेकर परेशान भी हो उठता था, कोई-कोई शहर के जीवन-यापन का स्वाद-भोग भी कर लेता था इस बीच। सिनेमा जाना तो था ही, उसके अलावा शहर में घूमना-फिरना, मटरगस्ती करना। फिर कोई-कोई आये दिन बाज़ार के पास वाली औरतों के मुहल्ले में भी आना-जाना करते थे। इसी से कभी-कभी तो ऐसा महसूस होता था कि ये लोग बाँध के स्थायी रहनेवाले हैं। इसी तरह कभी लगता कि ये विशुद्ध गाँव के रहनेवाले यहाँ छुट्टियाँ बिताने आये हैं। इस बीच काफ़ी दिनों से जमा हुआ या तख़्ता, या बाँस की बनी चीज़ों को बाज़ार के दिन ले जाकर

बेचने का मौका किसी-किसी के हाथ लग जाता।

बाघारू इतने सारे पेड़ों को ले बाँध के ही एक कोने में पड़ा रहा। इनके बीच इनमें से एक न होकर जो दिन काट रहा था, वह भी किसी-किसी की नज़र में आ जाता था। बाघारू अगर इसी तरह से रहता, तो शायद उसे कोई न देखता। पर वह तो इतने सारे पेड़ों को समेट कर बैठा था, इसी से जिस-तिस की नज़र उस पर और उसके पेड़ों पर पड़ जाती थी। उनमें से कोई-कोई आकर बाघारू के साथ बातचीत भी करता।

रंधामाली का एक लकड़ी का आढ़ती भी आकर बाघारू के पेड़ों के निकट काफ़ी देर तक बैठा था। उसका छोटा-मोटा आढ़त है, जिसमें कोई बिजली की आरी नहीं है। पर एक ही आरी से लकड़ी चीरने के लिये तीन-तीन बिहारी मज़दूर हैं। उसकी आढ़त में कुछ लकड़ी और एक शेड के नीचे चीरे हुए अलग-अलग साइज के तख़्ते रखे हुए हैं। वह आदमी किस देश का है पता नहीं चलता। नाम चरण राय है। बात के लहजे से विदेशी मालूम होता है। चेहरे-मोहरे से नेपाली-सा दीखता है। राजवंशियों जैसा भी लगता है। एक दिन पेड़ों को देखकर जाते समय उसने बाघारू से कहा, "मेरे शॉ मिल में कभी आओ न बाऊजी। दिन-रात ई नदी के पाट पे क्या करते रहते हो ? रात को यहाँ आ जाना सोने।"

बाघारू जैसे उसकी बातों का कोई मतलब ही नहीं समझा। बात जैसे किसी दूसरे से कही गयी हो, उसी तरह से वह चुप रह गया था। पर उसने फिर से आकर पूछा, "अरे कइसे आदमी हो तुम यार ? न्यौता दिया, तब भी नहीं आये ?" बाघारू ने इस बात का भी कोई जवाब नहीं दिया। राय ने उसी समय बीड़ी का कश लेते-लेते पूछा, "तुम्हारे जोतदार का शॉ-मिल है या नहीं ?"

बाघारू ने दूसरी ओर देखकर कहा, "पता नहीं।"

बाघारू को उसने एक बीड़ी दी। उसे लेने के लिये बाघारू को पेड़ के नीचे उतरना पड़ा। उसकी माचिस से बीड़ी को सुलगाने के लिये और करीब जाना पड़ा और बीड़ी सुलगा कर उसके पास ही बैठना पड़ा।

तभी उस आदमी ने कहा, "ये तो जंगल का पेड़ है। वो तुम बहाकर ले आये ?"

बाघारू चुप रहा। वह फिर से बोला, "पुलिस देखेगी तो पकड़ लेगी।"

"किसे पकड़ लेगी ?"

"तुम्हें पकड़ेगी। तुम्हारे पेड़ हैं, तुम्हें ही पकड़ेगी।"

"हमकू ?"

"हाँ, तुमको पकड़ेगी।"

उसकी बात सुनकर सोचते ही बाघारू जैसे और गहरे कश लेने लगा। फिर उससे बोला, "मुझे एक बीड़ी और दो।" बाघारू ने बीड़ी लेकर कान के पीछे

खोंस लिया।

उस आदमी ने कहा, "ई पेड़ हमको बेच दो। मैं आढ़त घर में रख दूँगा। किसी को भी पता नहीं चलेगा। साला तुम्हारा जोतदार आये तो हमरे पास ले आना। पैसे दे दूँगा।"

बाघारू ने बीड़ी का सुट्टा लगाया। उस आदमी ने खुद बीड़ी सुलगाने के पहले बाघारू को बीड़ी दी। बाघारू ने उसे कान में खोंस लिया। पर आखिर तक इस बाबत मे कुछ तय नहीं हो पाया। वह आदमी उठने तक बोला, "कल मैं मज़दूरों-आरीवालों को साथ लेकर आऊँगा।" पर वह नही आया।

उसके बदले आया था जगदीश बारुई। आया था कहना तो ठीक न होगा, क्योंकि जगदीश बारुई तो बाँध के ऊपर ही था, वह आयेगा कहाँ से ? पर बाँध के ऊपर या ढलान में बाघारू के साथ जगदीश की भेंट हुई, तभी वह बाघारू को एक बीड़ी देकर फुसफुसा कर बोला, "अरे तेरे जोतदार को थोड़े ही पता है कि तू कितने पेड लाया है ? एक ठो बेच दे, इस चंपा का पेड को ही भले दे दे, और पैसे लेकर छुपाकर रख दे।" फिर मन-ही-मन हँसकर बोला, "पैसा रखेगा भी कहाँ ? है तो बस यही एक लँगोटी ? तो खोस, इसी मे यहाँ खोस, लँगोटी के बीच में ? क्यों, राजी तो ?" जगदीश ने कहा। फिर कुछ पल उसे देखता रहा और "शाला बागद" कहकर चला गया।

मनुष्य चाहे कहीं भी हो, वहाँ का परिवेश-परिस्थिति समझ लेनाँ ही पड़ता है। बाघारू ने भी समझ लिया कि शॉ मिल का मालिक और जगदीश उसे पेड़ो को, कम-से-कम एक पेड़ बेचने के लिये कह रहे है। गयानाथ का किस्म-किस्म का व्यापार है, दस तरह की जोतदारी है, खेती के लिये जमीन है, डायना नदी के पहाड़ पर उसके भैंसों के बाथान से मिलीटरियों को दूध जाता है, उसका जगल है, हाट है, नदी है। और इन सब जगहों को किसी-न-किसी काम पर तो बाघारू को जाना होता है, घूमना होता है। उसे ऑफिसरो के पीछे-पीछे कुर्सी उठाकर भागना पड़ता है। उसे एमएलए को कधे पर बिठाकर नदी पार कराना पड़ता है। उसे जंगल के बीच में भैंसों का बाथान चराना पड़ता है। गयानाथ का इतना कुछ करता है जो बाघारू, वह क्या इतना समझ नहीं पाता कि इन चारों मे से एक पेड़, इस चंपा के पेड़ को ही बेचकर गयानाथ से कह दिया जाये कि अँधेरे में पेड़ कहाँ खिसक गया कुछ पता ही नहीं चला। गयानाथ यह सुनकर क्रोधित हो सकता है, गाली-गलोज़ कर सकता है, मार भी सकता है—पर उससे ज्यादा और क्या करेगा ? पैसे अगर लँगोटी के अंदर न भी रखे, इतने बोल्डर हैं चारों ओर—किसी एक पत्थर के नीचे तो दबाकर रख ही सकता है। बाघारू को खूब अच्छी तरह से मालूम था—ये सब होता है, ऐसा किया जाता है। बाघारू की माँ भी थी गयानाथ की, बाघारू भी गयानाथ का। दो-दो पीढ़ी

से गयानाथ के साथ रहते-रहते बाघारू ने इतना भी नहीं सीखा कि गयानाथ के एक पेड़ को बेच देना कितना सहज है। जंगल के अंदर से बाढ़ के मार से अलग भी स्रोत में गिर जानेवाला पेड़ काटकर, बाढ़ के पानी में बहा देने से भी यह कितना सहज है ? बाघारू ने एक बार "ले जाओ फिर" कह देने पर ही इस आढ़तिया के लोग आकर पेड़ काटकर ले जायेंगे। पर बाघारू आढ़तिया और जगदीश द्वारा दी गयी बीड़ी कान के पीछे खोंसकर और गले में नाइलॉन रस्सी का बंडल लटका कर घूम गया। पर बाघारू "ले जाओ" क्यों नहीं कहता, यह बाघारू भी नहीं जानता। पर बाघारू नहीं बोला, बोलने की बात भी नहीं सोचता। कहा जा सकता है जानकर भी बोलेगा या नहीं। यहाँ तक कि किसी मानसिक द्वंद्व में बाघारू फँसना नहीं चाहता। इससे लगता था कि उसका मन नहीं है। इसी से कोई मानसिक द्वंद भी नहीं है। अगर यह मान लिया जाये तो कहना न होगा कि उसका मन नहीं, पर शरीर है—उसके हर दिन का जीना, इस शरीर के सर्वस्वता को लेकर ही जीना था। अगर बाघारू अपने नाइलॉन की रस्सी के साथ बँधे चार पेड़ों में से एक पेड़ बेच देता है तो इन चारों पेड़ों को एक साथ बाँध इस फ्लड के तिस्ता में उसके शरीर का जी जाना है। उसमें से तो एक पेड कम हो जायेगा। द्वंद्व में जूझने का दिल भी नहीं बाघारू का। सिर्फ शरीर भर ही है। यहाँ तक कि हजार-हज़ार साल तक बनी मनुष्य का इतनी पोशाकों के बीच सिर्फ डेढ़ हाथ का एक ताना लगा है कि बाघारू के संपूर्ण मानव शरीर में, उसी डेढ़ हाथ वाले ताने से बाघारू मानव सभ्यता के साथ बंधा है। वही बाघारू प्लावित नदी में, बारिश में, तूफान में, अंधकार में इतनी सारी बाढ़ पार होकर आया यह शरीर से एक पेड़ को बेच दे कैसे ? बाघारू का जिस तरह मन नहीं, वैसे ही शायद मगज भी नहीं है। उसी तरह कुछ न करने के लिये जैसे कोई तर्क जुगाड़ कर नहीं पाता, उसी तरह कुछ न करने के पक्ष में भी कोई युक्ति नहीं बना पाता कि वह यह काम कर सकता कि नहीं कर सकता है। युक्ति को तरजीह देने जैसा दिमाग तक नहीं है जिस बाघारू का, वह कैसे जगदीश बारुई को या उस लकड़ी के आढती को "ना" करेगा ? वह सिर्फ इन चारों पेड़ों के साथ अपने को बाँधकर इस नाइलॉन की रस्सी का बंडल गले में लटकाकर बाँध पर कभी-कभी खड़ा हो सकता है। पत्थरों पर से कभी-कभी चल भी सकता है, अपने पेड़ों के मचान के ऊपर सो सकता है। कुल्हाड़ी को अब बाघारू हर समय लँगोटी में खोंस कर नहीं रखता था। एक पेड़ के भीतरी डाल पर चोट मारकर रख देता था।

इस तरह से बाघारू यहाँ इस रंधामाली के बाँध पर गयानाथ का और बाढ़ कम होने की प्रतीक्षा में दिन काटता है।

बाढ़ तो फिर अनंतकाल तक नहीं चलती—एक-न-एक दिन खत्म होती है।

पर कब ख़त्म होगी उसपर निर्भर करता है अख़बार, टेलीविजन में इस बाढ़ की ख़बर कितनी आती है, कितना दिखाता है। बिजली गिरने की तरह मृत्यु अचानक घट सकती है। कोई बाढ़, दीर्घस्थायी न होने पर भी समाचार बन सकता है। तिस्ता के उस बार की बाढ़ भी ख़बर बन गयी थी कई दिनों से। कलकत्ता से प्रेस फ़ोटोग्राफर, टी.वी. के कैमरामैन आ गये थे। पर उनको हर समय लौटने की जल्दी रहती थी। इसलिये ज़िले का तथ्य भी जनसंपर्क दफ्तर से शहर के पासवाली इन दोनों जगहों—जलपाईगुड़ी से आठ मील की दूरी पर मंडलघाट का दो नंबर चर और चार-पाँच मील की दूरी पर यह रंधामाली का बाँध से बता दिया जाता था। दोनों ही जगहों पर कुछ बाढ़ग्रस्त परिवार थे, गाय-बछड़े थे, गवर्नमेंट का तिरपाल भी था। रंधामाली हाट को विशेष सुविधा यह थी कि देखकर ही सीधा तिस्ता ब्रिज से होकर डुयार्स में जाया जा सकता था।

इस तरह से हर समय, खासकर टी.वी. के लोग जब आये थे, तब कैमरामैन और प्रेस फ़ोटोग्राफ़रों ने बाघारू का आविष्कार कर लिया था। ज़िला सूचना और जनसंपर्क दफ्तर ने हालाँकि एक सूची दी थी। उसमें कहाँ से कितने लोगों का बचाव किया गया था उसका विवरण दिया गया था। पर उस सूची में बाघारू का कोई अलग परिचय न था। तब तक उस दिन शाम को बाघारू के बचाव की कहानी सरकारी संख्या सिर्फ़ एक संख्या बन गयी थी, या फिर वह भी हुआ या नहीं उसमें भी संदेह है। फोटोवाले लोग अपने गुण के आधार पर ही बाघारू को ढूँढ़ निकाले थे।

वैसे तो तिस्ता के जल को पीछे रखकर बुड्ढा-बुढ़ी, भैंस, गाय-बछड़े, बच्चे को गोद में लिये माँ, जल का विस्तार—इन सब का फोटो लिया जा चुका था। बाघारू ने जहाँ अपने पेड़ों को बाँध रखा था, वहाँ तो फोटोवालों के पहुँचने का सवाल ही नहीं था। पर टी.वी. का कैमरामैन एक दृश्य में बाँध से तिस्ता को गोल करके बायें से दायें लौट आते-आते व्यूफ़ाइंडर में बाघारू को पा लिया था। बाघारू खड़ा था, गले में रस्सी का बंडल डाले, पेड़ के मचान पर, पेड़-पत्तों के अंदर लग रहा था जैसे जल से फूट कर निकाला हो। प्लानिंग ख़त्म होने पर कैमरा लेकर कैमरामैन बाघारू के सामने चला आया। बाँध से ढलान पर उतर कर बोल्डर के आख़िरी पाट से जल के किनारे घुटने मोड़कर बैठ गया और पानी के भीतर से शाल, चंपा, कत्था, शीशम के पेड़ के पीछे जंगल समेत बाघारू को मेघाच्छन्न आकाश के सामने खड़ा कराना चाहा। इतना कर न पाने पर भी बहुत कुछ पा गया। जितना चाहता था उतना पाने के लिये उसे पानी पर सोकर, कैमरे को आकाश की ओर उठाकर फ़ोटो लेना पड़ा। उसने हालाँकि बाघारू को थोड़ा 'मूव' करने के लिये कहा, पर बाघारू टस से मस नहीं हुआ। फलतः फ़ोटो को स्टिल फोटोग्राफ़ माना जाने का भय उसको बना रहा।

टी.वी. कैमरामैन के पीछे-पीछे प्रेस फोटोग्राफ़र लोग आकर दौड़-दौड़ कर फोटो ले रहे थे। टेली और वाइड में बाघारू का लँगोटी पहना शरीर, मुखरेखा और बाँध के साथ बाढ़ का फैलाव पकड़ में आ गया था। उन्होंने भी बाघारू को घूम-फिरकर खड़ा होने को कहा, पर बाघारू स्थिर ही खड़ा रहा। फ़ोटोग्राफरों के बीच बेहतर विजुअल के लिये प्रतियोगिता की उत्तेजना में इस तरह की रसिकता भी चल रही थी, "लोअर पार्ट में टेली मत डालो" "देखो, लँगोटी के भीतर का रोआँ भी खींच न बैठना" आदि-आदि। इतना उघड़ा बदन पर इतने तन्दुरुस्त शरीर को लेंस में सँभाल पाना बहुत ही मुश्किल का काम था। टी वी. के कैमरामैन ने अवश्य एकबार नीचे से आकाश तक एक विलक्षण प्लानिंग कर लिया था—बाढ़ का पानी, क्लोज-अप में भँवर, पेड़ के डाल-पत्तों में जल स्रोत का आघात और झाड़-झंखाड बाघारू के दोनों पाँव—क्लोज-अप में धीरे-धीरे घुटना, जाँघ, कमर, लँगोटी। मिडियम शॉट में पेट, छाती, फिर माथा। वहाँ से बाघारू धीरे-धीरे, दिगंत से दिगंत, आकाश में, नदी में, स्थापित होता गया।

गयानाथ के आने तक इन सबके बीच बाघारू का वृक्ष-सर्ग कटता है।

जुलूस-सर्ग

उत्तराखंड के अलग राज्य की माँग

153
गयानाथ का मन ही मन सोच-विचार

गयानाथ जोतदार अलसुबह आसिंदर की मोटरसाइकिल के पीछे बैठकर जलपाईगुड़ी शहर में अपने वकील के घर जा रहा था। अभी तो ठीक था। तय हुआ था कि लौटते समय वह बस से आयेगा। आसिंदर अपने काम पर चला जायेगा। वही जो तिस्ता बैरेज, सेटलमेंट के समय शुरू हुआ था—अभी इन कुछ वर्षों में वह बैरेज नदी के बीचोंबीच तक चला गया है। आसिंदर काफ़ी हद तक अपने ससुर का ड्राइवर ही बन चुका था। गयानाथ जोतदार जैसे प्रसिद्ध व्यक्ति का नाम अब लाटागुड़ी-रामसाई-उदलाबाड़ी, क्रांतिहाट, मौलानी, यहाँ तक कि मैनागुड़ी में भी 'फटफटी जोतदार' के रूप में जाना जाने लगा है। पहले-पहल लोग पीछे छुपकर कहा करते थे, पर अब लोग उसे 'ऐ फटफटी देऊनिया' कहकर ही पुकारते हैं। गयानाथ ने भी उन पर गुस्साना छोड़ दिया है।

आसिंदर के पास मोटरसाइकिल तो काफ़ी दिनों से है। पर पहले गयानाथ कभी उसके पीछे बैठता नहीं था। बैठने की आवश्यकता भी नहीं पड़ती थी। जलपाईगुड़ी शहर में उसके बाबा के समय के एक बँधे-बँधाये वकील रहते हैं। उसके बाबा से उसके समय के बीच तक बूढ़ा वकील बाबू का बच्चा वकील बाबू हुआ, बूढ़े वकील की मृत्यु हो गयी। अभी वही बच्चा वकील, वकील बाबू बन गया है। वैसे ज़रूरत पड़ने पर वकील बाबू ही आदमी भेजकर क्रांतिहाट में ख़बर कर देते, दूसरे दिन सुबह की बस से जलपाईगुड़ी जाकर, वकील बाबू के साथ बातचीत करके शाम तक गयानाथ घर वापस आ जाता।

पर तिस्ता बैरेज का वह जो स्पेशल सेटलमेंट शुरू हुआ है, उसके बाद से गयानाथ को जैसे आराम नहीं। फॉरिस्ट डिपार्टमेंट के साथ उसके खलिहान को लेकर मामला-मुक़दमा, बैरेज के लिये ली गयी ज़मीन को लेकर झंझट, मुआवज़ा की राशि को लेकर मुक़दमा—जैसे मुक़दमा का एक कुरुक्षेत्र बन गया हो। फ़ॉरिस्ट डिपार्टमेंट के विरुद्ध जो मुकदमा चला था, उसका एक स्टे-ऑर्डर निकलवाने में सफल हो गया था गयानाथ। पर मुआवजा वाला मामला, ज़मीन के अधिग्रहण का मुक़दमा कलकत्ता हाईकोर्ट तक खिंच गया था। जलपाईगुड़ी के वकील बाबू के आदमी ने कलकत्ते में एक वकील का इंतज़ाम कर दिया है। गयानाथ को जाना नहीं पड़ा, पर पहली बार वकील बाबू के आदमी के साथ आसिंदर को वहाँ जाना पड़ा था। उसके बाद जो मामला चला तो चल ही रहा है। एक बार मुआवज़ा का मामला गयानाथ जीत भी गया था—सरकार ने भी उसके ख़िलाफ़ कोई अपील नहीं की। बल्कि कोर्ट की राय के मुताबिक नये

हिसाब-किताब करके मुआवज़ा भी फ़ौरन अदा कर दिया गया था। गयानाथ ने जब देखा कि सरकार की ओर से कोई अपील नहीं की गयी तो वह और अधिक मुआवजे के लिये अपील करना चाहा था, पर वकील बाबू ने उसे समझाया था कि उस तरह से अपील नही की जा सकती। गयानाथ भी समझ गया था कि जितना शीघ्र संभव हो सरकार बैरेज का काम ख़त्म करना चाहती है, इसी से कोर्ट के हुकुम पर सिर झुका दिया था। मतलब यह कि बैरेज हो ही रहा है, यह बात समझ जाने पर गयानाथ और अस्थिर हो उठा था।

पहले आसिंदर अपनी मोटरसाइकिल लेकर इधर-उधर घूमता रहता और गयानाथ अपने जोत-ज़मीन पर पैदल चलता रहता। पर इस स्पेशल सेटलमेंट के बाद से ही विगत कई वर्षो मे आसिदर, उसकी मोटरसाइकिल और गयानाथ एकाकार हो गये हैं। मयनागुड़ी की चौहद्दी से होते हुए गयानाथ और आसिंदर के जाने की बात नहीं है। 'भारती' सिनेमा के पास दायी ओर के रास्ते से वे आराम से निकल जा सकते थे। पर मयनागुड़ी मे मरणचाँद की दुकान मे मिठाई और चाय पीने के लिये वे चौहद्दी से होकर आये थे। मोटरसाइकिल के पीछे से उतर कर गयानाथ ने चादर झाड ली। फिर एकबार देखा कि कोई जान-पहचान वाला नजर आ जाये। सामने रास्ते के उस पार एक मिनी बस में लोग-बाग बेठे थे। गाड़ी और दो-चार पैसेंजर की प्रतीक्षा में खडी थी। जब तक आसिंदर अपनी मोटरसाइकिल खड़ी करके मरणचाँद की दुकान मे गया, दो प्लेट रसगुल्ले ओर दो कप चाय कहकर बैठ गया, उसी बीच गयानाथ रास्ता पार कर मिनी बस का एक चक्कर काट आया—पर जान-पहचान का कोई मिला नही। पर वापसी के समय चौहद्दी में लगा फेस्टून उसकी नज़र मे पड़ गया। मयनागुडी मे उत्तराखड सम्मेलन हो रहा है। गयानाथ के पास भी वे लोग एक बार गये थे। पर गयानाथ इन सबके बीच नहीं पड़ना चाहा। रास्ता पार करने के लिये इधर-उधर दखते हुए बहुत सारे उत्तराखंड के पोस्टर उनकी नजर मे पड़े।

मरणचाँद की दुकान में घुसकर, आसिदर के निकट बैठते-बैठते गयानाथ ने कहा, "उधर उत्तराखंड के लोग खूब मीटिंग करने लगे हैं।" फिर बड़े-बड़े लाल-लाल रसगुल्लों को चम्मच से काटने लगा। रसगुल्लो पर से मक्खियाँ उड जाती थीं।

आसिंदर रसगुल्ला खा चुका था। वह चाय की चुस्की लेते हुए बोला, "मै तो कहता रहा कि ज्वाइन कर लो। बंबई से सिनेमा की छोकरियाँ लाने में लगे हैं।"

गयानाथ पहली बार चम्मच जितना मुँह में दे पाया था, उसे चबा कर निगल गया। रस उसके दाँतों में सिरसिराने लगा था। इसी के साथ वह रसगुल्ले के टुकड़ों को दाँतों के पीछे रख जीभी से दबाकर खाने लगा। इसमें उसे कुछ

समय लगा।

दूसरा टुकड़ा मुँह में डालने के लिये चम्मच में उठाते-उठाते गयानाथ ने आसिंदिर से कहा, "तो क्या हमको अब छोकरियों की तरह ठुमका लगाना होगा ?"

आसिंदर चाय ख़त्म करके जीभ से दाँतो को आवाज़ के साथ खोंट रहा था। उसने दाँत खोंटना रोककर कहा, "आपको ठुमका लगाने को कौन बोल रहा है ? ई लोगों ने तो राजवंशियो को लेकर पार्टी बनाया है। उनके बल पर। ई लोग तो कांग्रेसी नही, सब उत्तराखंडी बनना चाहते हैं। आप लोग भी क्यों नहीं होने लगे ? कितना तो मामला ठोंका है सरकार को, फिर आख़िर क्या हुआ ?

पॉकेट से सिगरेट ओर दियासलाई निकालते हुए आसिदर दुकान के बाहर चला गया। बाहर जाकर उसने सिगरेट सुलगा ली ओर अदर पानी पीने लगा। अबतक उसके चाय के उपर मलाई जम चुकी थी। गयानाथ उसी चाय को मजे ले-लेकर पी रहा था। यह सब तो अकेले-अकेले ही करना होता हे। उत्तराखंड में शामिल होने के बारे में आसिदर का प्रस्ताव भी अबतक नीरव रहा।

पैसा देकर गयानाथ के बाहर निकलते निकलते ही आसिदर मोटरसाइकिल के उपर बैठकर स्टार्ट कर चुका था। गयानाथ ने चादर को छाती पर तिरछा करके डालते-डालते फिर वही नीले रग के फेस्टून ओर पोस्टरो को देखने लगा ओर मोटरसाइकिल की तरफ दो क़दम बढ़ गया। फिर बोला, "तुम्हारा उत्तराखंड तो काफ़ी ज़ोरशोर से जुटा हुआ है।" पर मोटरसाइकिल की आवाज़ से कुछ सुनाई नही पड़ा। आसिंदर ने पीछे की ओर हाथ बढ़ाकर पान और चूना लगी पान की डंडी बढ़ा दी। गयानाथ ने उसे नहीं लिया। पहले पायदान पर पाँव रखकर आराम से बैठ गया, "हिलडुल कर अपने को ठीक कर लिया, फिर पान पकड़ा। गयानाथ के पान लेते ही आसिंदर ने मुँह बढ़ाकर पीक फेंका और मोटरसाइकिल बढ़ा दी। आसिंदर के पीछे मोटरसाइकिल पर बैठने को वह इतना अभ्यस्त हो चुका है कि उसने पान को झटककर मुँह में डाल लिया आराम से। दाँत-वाँत टूट जाने के बाद गयानाथ का मुँह इतना पोपला हो गया था कि पान से उसका पूरा-पूरा मुँह भर गया था।

मोटरसाइकिल पर चलते-चलते फिर दोनो में कोई बातचीत नहीं हो सकी, पर उत्तराखंड को लेकर गयानाथ के मन में तरह-तरह के सवालात उठ रहे थे। वह सब बातें आसिंदर से की जा सकती थीं, कुछ ख़बर का पता लगाया जा सकता था। पर अभी अगर वह कह नहीं पाया तो, फिर बाद में आराम से बातचीत करने की आदत गयानाथ की नहीं थी। इसी से जब वह उस समय आसिंदर से बात नहीं कर पाता तो खुद अपने से बातें करना शुरू कर देता

था। गयानाथ हमेशा से कांग्रेस का आदमी रहा है, कांग्रेस को वोट देता आया है। पर गायानाथ जोतदार जैसा एक नामी आदमी तो सिर्फ़ एक वोटर हो नहीं सकता। जोत-ज़मीन पर उसके बसाए गये कई सौ लोग तो उसके ही कहने से वोट डालते हैं। वरना वह खुद जाकर वोट दे आता तो फिर उसका सम्मान क्या रह जाता ? वैसे वोट से पहले गयानाथ को कोई आदेश-निर्देश देने की ज़रूरत नहीं पड़ती। सभी को पता था कि उन्हें क्या करना है ? पर सभी तो जानते थे कि जंगल गयानाथ का है। उस जानने भर से ही तो कोई फ़ायदा नहीं होता। तो "गयानाथ और उसके आदमी कांग्रेस में ही बने रहें, इससे भी तो कोई फ़ायदा नहीं। तो इन सब लोगों को लेकर गयानाथ तो अपनी ताक़त दिखा ही सकता है।"

वकील बाबू के घर के सामने के मैदान में मोटरसाइकिल से उतरने के पहले गयानाथ अपने को बस यहीं तक समझा पाया था।

154
वकील बाबू बनाम उत्तराखंड

वकील बाबू की घड़ी के सामने वाले मैदान में आसिंदर की मोटरसाइकिल के पीछे से उतर कर गयानाथ ने दोनों हाथ उपर उठाकर उबासी ली, अँगडाई ली। आसिंदर ने मोटरसाइकिल घुमाते हुए कहा, "आता हूँ।" पर रवाना होते ही फिर अचानक रुककर गर्दन घुमाकर पूछा, "यहाँ आऊँ या चला जाऊँगा ?" अँगड़ाई लेते हुए हाथों को पीछे ले जाकर गयानाथ ने गर्दन झुका ली। उसके दूर होने तक आसिंदर रास्ते में फट-फट करता हुआ खड़ा रहा। गयानाथ ने मुँह उठाकर जवाब नहीं दिया, दायाँ हाथ उठा अँगुली से दिखा दिया। आसिंदर समझ गया कोर्ट में जाना होगा। गयानाथ वकील बाबू के दरवाज़े पर सीधा जाकर खड़ा हो गया। वकील बाबू या उसके मोहर्रिर के उसे एक बार देख लेते ही उसका काम खत्म। जब ज़रूरत होगी तो वकील बाबू उसे बुलाएँगे या कोई खबर देनी हो तो मुहर्रीर से कहलवा देंगे। माहेर्रिर बाबू हो सकता है कि गयानाथ से कोर्ट में मुलाकात करने के लिये कहेगा। तबतक गयानाथ इस मैदान में खड़ा होकर या फिर थोड़ा घूम-फिर करके धूप सेंकेगा। बाहर बरामदे में रखे बेंच पर भी बैठ सकता है। यहाँ तक कि वकील बाबू का शिरस्ता का काम खत्म हो जाने पर, सब लोगों के चले जाने के बाद, मोहर्रिर बाबू के अपने साइकिल से अपने घर चले जाने के बाद भी गयानाथ हो सकता है यहाँ बैठा रहे। वकील बाबू नहा-धोकर, खा-पी लेने के बाद रिक्शे पर कोर्ट के लिए रवाना होते समय शायद

कहें, "क्यों गयानाथ बाबू ! चलिये, कचहरी पर चलिये।" वकील बाबू के साथ रिक्शे पर कचहरी जानेवाले किसी दूसरे आदमी के रहने पर कहेंगे, "क्यों गयानाथ बाबू, आइए, कोर्ट में आइए।" गयानाथ फिर चलते-चलते कोर्ट के लिये रवाना हो जायेगा।

पहली बार गयानाथ अपने पिताजी के साथ इस वकील बाबू के घर पर आया था। तब इस वकील बाबू के पिताजी बूढ़े वकील बाबू के सिरस्ता थे। तब तिस्ता का ब्रिज नहीं बना था। डूयार्स से सुबह आकर शाम को लौट जाना काफ़ी कठिन था। तब तक वकील बाबू का यह नया दलानवाला घर बना नहीं था। यहाँ पर बाँस की खपच्चियों के घेरे में टीन का दरवाज़ा था। घर के भीतर के साथ घर के बाहर कोई संपर्क नहीं था। इस मैदान के पश्चिमी कोने में एक कुँआ और पाखाना था।

गयानाथ अपने बाबा के साथ आता, सर्दी के दिनों में बैलगाड़ी से फिर नाव से तिस्ता पार करके भी आता था। तब यहाँ इस मैदान में ईंट का चूल्हा बनाकर खाना बनाया जाता था और शाम के बाद शिरस्ता के बरामदे में लकड़ी की बेंच पर वे सोते थे। कोर्ट-कचहरी का काम ख़त्म करके दो-एक दिन के बाद फिर रवाना हो जाते थे। तब, जलपाईगुड़ी शहर में एक बार घूम लेने पर और वापस जाने पर लगता था जैसे देशांतर से वापस लौटे हों। और अभी तो सुबह घर छोड़कर आये हैं और दोपहर को घर पर जाकर ही खाना खायेंगे। जलपाईगुड़ी शहर अब देशांतर नहीं लगता। पहले साल में एक-दो दिन कचहरी का काम रहता था, अब रोज आने पर रोज ही काम निकल जाता है।

गयानाथ वकील बाबू के शिरस्ते में गया। दरवाज़े के निकट जाकर मोहर्रीर बाबू से कहेगा कि उसकी आने की बात वकील बाबू को ख़बर कर दे। पर मोहर्रीर बाबू के देखने के पहले ही वकील बाबू की नज़र उस पर पड़ गयी। "अरे गयानाथ बाबू, आइये, आइये।"

वकील बाबू ने हाथ का क़लम-कागज़ रखकर दोनों हाथ ऊपर फैला कर इस तरह अँगड़ाई ली कि लगता था कि वे गयानाथ का ही इंतज़ार कर रहे थे। गयानाथ दो सज्जनों को छोड़कर ख़ाली कुर्सी पर बैठ गया। वकील बाबू ने कहा, "यहाँ से कुछ कागज़ात की कॉपी बनाकर भेजना है।" वकील बाबू अबकी मोहर्रीर की ओर देखा, "संतोष, तुम्हारे पास वह लिस्ट है न ?"

मोहर्रीर बाबू ने कहा है, "हाँ है।"

वकील बाबू ने अबकी फिर से गयानाथ की ओर देखकर कहा, "तो फिर आप कोर्ट में जाकर संतोष से मिल लेना और जो करना है करा लेना।"

गयानाथ ने वकील बाबू की ओर मुख़ातिब होकर कहा, "और बताइए वकील बाबू, सब कुशल मंगल तो है ? तबीयत-वबीयत ?"

वकील बाबू ने "हाँ, ठीक ही है" कहकर दोनों हाथ काग़ज़ पर झुका लिया पर क़लम नहीं पकड़ी। कलम पकड़ लेने पर गयानाथ बातचीत कर नही पायेगा। पर जितना भी आवश्यक हो गयानाथ के लिये तो फिर वकील बाबू से सीधे बातचीत करना संभव नहीं है। गयानाथ ने अबकी पासवाले दोनों सज्जनों की ओर देखा। ठीक अपने बायें तरफ बैठे सज्जन को वह देख नहीं पाया। पर पहले कुर्सी वाले सज्जन वकील बाबू की टेबिल पर दोनों कोहनी रखकर दोनों हाथ ठुड्डी पर लाकर बैठे थे। गयानाथ उन्हें पहचान नहीं पाया। यहाँ आते-आते वकील बाबू के अनेक मुवक्किलों के साथ गयानाथ की जान-पहचान हो गयी थी। गयानाथ इनके सामने वकील बाबू से कुछ पूछने के लिये असमंजस में पड़ गये। वकील बाबू भी कुर्सी पर सीधे हो गये थे। अबकी वह फिर से क़लम हाथ में ले लेंगे। गयानाथ के साथ और इससे अधिक बातचीत हुई ही कब थी। गयानाथ कुर्सी पर से नहीं उठा। वकील बाबू के क़लम पकड़ने के पहले ही कहा, "वकील बाबू, कलकत्ता से और कोई समाचार मिला ? गयानाथ ने टेबिल की ओर कुछ झुककर हँसते हुए धीमी आवाज़ में कहा, जिससे पास के सज्जन कुछ सुन न पायें। पर वकील बाबू पूरी बात सुन नहीं पाये। वे कुर्सी पर टेक लगाकर बोले, "हाँ, तो क्या कह रहे थे आप ? काहे का समाचार ?" गयानाथ अबकी और थोड़ा आगे झुक गया, टेबिल के ऊपर दोनों हाथ रख दिया एक-दूसरे से फँसा हुआ। थोड़ा हँसकर बोला, "कह रहा था कि कलकत्ता हाईकोर्ट का मामला कब तक रफा-दफा होगा उसका कोई अंदाजा मिला क्या ? उधर तो बैरेज का खंभा आधी नदी तक बन चुका है।"

"वह तो होगा ही। आपकी ज़मीन के लिये तो बैरेज का काम रुक नहीं सकता। चलिए आपसे एक अच्छी ख़बर मिली कि तिस्ता बैरेज का काम जोरों से चल रहा है। हमारे यहाँ तो एक रास्ता मरम्मत करने में ही अठारह महीने लग जाते हैं।" वकील बाबू ने दोनों सज्जनों की ओर देखकर ही बात ख़त्म कर दी। वकील बाबू संभवतया जो सज्जन पहले कुर्सी पर बैठे थे उनका काम कर रहे थे। इसलिये उस सज्जन ने थोड़ा उनके साथ मुस्करा कर गयानाथ की ओर देखा। गयानाथ भी हँस पड़ा—सज्जनों के साथ कहीं बैठने पर वे जो करते हैं, वही करना गयानाथ की आदत है। वह हँसा और बोला, "पर बैरेज का काम ख़त्म हो जाने पर मेरी ज़मीन का क्या होगा वकील बाबू ?"

वकील बाबू ने कहा, "आपका तो कंपेनशेसन का मामला है। एक तो जीत भी गये हैं। उसी तरह होगा। पर बैरेज जो ज़मीन ले चुका है, वह थोड़े ही वापस देगा ?"

"मैंने तो कह ही दिया है—मुझे हरज़ाना नहीं चाहिये। मेरे पुराने भेस्ट जमीन जितनी जमीन मुझे सरकार दे दे।" मामले की आलोचना शुरू होते ही गयानाथ

ने आत्मविश्वास के साथ कहने की हिम्मत जुटा ली।

"हाँ, वह रिट तो कर दी गयी है। आपकी बातों में तो सचमुच ही एक तगड़ा तर्क है। हाकीम यह बात मान भी सकता है। पर मामले की बात है। उसके लिये तो बैरेज का काम रुक नहीं सकता।" वकील बाबू थोड़ा जोर-ज़ोर से बोलने लगे, जैसे गयानाथ थोड़ा बहरा हो।

गयानाथ ने थोड़ा चुप रहकर कहा, "कचहरी भी तो सरकार का ही ऑफ़िस है। हाकीम भी तो सरकार से ही पगार पाते हैं। एक बार बैरेज बन जाने के बाद क्या हाकिम और हमारे बारे में सोचेंगे ?"

वकील बाबू कुछ पल चुप रहे, फिर अपने कागज़ पर आँखें झुकाकर बोले, "गयानाथ बाबू, आप लोगों की तो पुश्तों से जोतदारी है, जोतदारी भी कितनी बदल गयी है देखिये न ! आप लोगों को भी पुरानी जोतदारी को भूलना होगा। कोर्ट-हाईकोर्ट भी बदल गया है। एक बैरेज बनेगा—वह सरकार का काम है। उसको बंद करके आपकी जमीन का उद्धार कर दिया जायेगा, इस मुग़ालते में मत रहियेगा। पर हरजाना जैसे न्यायसंगत हो, या फिर आप जो कह रहे हैं, हरज़ाने के बदले कोई अगर इस बैरेज के लिये ज़मीन भेस्ट करके पुराना भेस्ट वापस पाये, वह जरूर ही कोर्ट देखेगा।" वकील ने सीधा बैठकर क़लम पकड़ ली और धीमी आवाज़ में बोला, "यहाँ तक तो क़ानून की बात है और अगर न हुआ तो आपको पार्टी बनाना होगा, उत्तराखंड पार्टी। वे तो कामतापुर राज्य चाहते हैं—पश्चिम बंगाल में अलग राज्य। उस राज्य का हाई-कोर्ट में शायद आपके पक्ष में न्याय मिले—कि बैरेज तोडकर गयानाथ बाबू की ज़मीन गयानाथ बाबू को दे दो। मयनागुड़ी में तो विराट सम्मेलन हो रहा है न

गयानाथ ने सिर हिलाकर कहा, "हाँ।"

"आप भी हैं क्या उत्तराखंड में ?" वकील बाबू ने लिखना शुरू करते-करते पूछा। गयानाथ समझ नहीं पाया कि क्या जवाब दे। वकील बाबू की बातों से वह यह तो समझ चुका था कि उत्तराखंड वकील बाबू को पसंद नहीं है। पर गयानाथ की ज़मीन की बात अगर वकील बाबू से बढ़कर उत्तराखंड ज़ोर देकर कहे तो फिर गयानाथ उत्तराखंड का क्यों न हो जायेगा ? गयानाथ ने एक जवाब सोचते-सोचते देखा कि वकील बाबू ने लिखना शुरू कर दिया है। वह धीरे-से कुर्सी छोड़कर उठा, काफ़ी धीमी आवाज़ में 'नमस्कार' कहा और चेयर के पीछे से निकल कर चला गया। पीछे तख्तपोश प मोहर्रीर बाबू बैठे थे। गयानाथ हाथ पर भार देकर उनकी तरफ़ बढ गया और धीमे से पूछा, "क्या-क्या नकल करना है कहिये।"

"बैठिये।" कहकर मोहर्रिर बाबू अपनी डायरी का पन्ना पलट कर बहुत सारे मुड़े हुए कागज़ों की तह खोलकर देखने लगे। आख़िर न पाकर बोले, "आप

तो आ रहे हैं न कोर्ट में, मैं निकाल कर रखूँगा।" गयानाथ ने अबकी पूछा, "जिन कागज़ों की नक़ल करना है वह आपके पास हैं या मेरे पास ?"

मोहर्रिर ने कहा, "देखना पड़ेगा। आप कोर्ट में आइये न। मैं निकाल कर रखूँगा।" गयानाथ धीरे से वकील बाबू के घर से निकल गया।

155

गयानाथ का पब्लिक को ढूँढना

गयानाथ बरामदे में बैठ गया। इस तरह बैठना उसकी आदत है। उसके बाद वकील बाबू के साथ या उनके पीछे-पीछे कचहरी जाना। गयानाथ तो कभी घड़ी देखकर काम नहीं करता—दिनभर के हिसाब से काम करता है। सुबह उठकर जहाँ जाना हो उसी ओर रवाना हो जाता है। रास्ते में एक-दो और जगह घूमकर भी जा सकता है। दोपहर में खाने के लिये उसे लौटना ही होगा—ऐसा कोई नियम नहीं है। और लौटेगा ही नहीं ऐसा भी कोई नियम नही है। लौटा तो लौटा, नहीं लौटा तो नहीं लौटा। लेकिन शाम के बाद ज़्यादातर कहीं नही निकलता—वही 'नक्सलिया हंगामे' के दौर से रात में निकलना बंद हो गया। एक आदत खत्म हो जाने पर फिर वापस नहीं आती।

जलपाईगुड़ी आने पर यही उसकी सबसे बड़ी दिक्कत है। "घंटे भर बाद आइये", "ठीक साढ़े बारह बजे मिलिये"—इन सब बातों के मुताबिक अपना आना-जाना भी ठीक करना उसके आदत के बाहर की चीज़ है। फिर शहर में उसका इतना ज़्यादा काम भी नहीं रहता कि वह एक काम ख़त्म करने के बीच कोई दूसरा काम खत्म कर ले। पर जोत की ज़मीन में घूमते समय घड़ी को छोड़ कर गयानाथ समय का एक हिसाब रखा करता है। शहर में वह हिसाब भी गड़बड़ा जाता है। वह समझ ही नहीं पाता कि यहाँ अगर धीरे-धीरे चला जाये और कचहरी में जाकर बैठा जाये तो उसे कितना पहले पहुँचना चाहिये।

वकील बाबू के बरामदे में बैठकर गयानाथ कुछ पल सोच-विचार करता रहा। वकील बाबू ने जो कहा है वह उसे मन ही मन नहीं सोचता, ऐसा नहीं है। जो बैरेज बन रहा है उसमें तो गयानाथ की ज़मीन पर कितना ही बड़ा बैरेज क्यों न हो, गयानाथ की ज़मीन तो गयानाथ की ही ज़मीन है। सरकार के एक नाम लेकर हरजाना दे देने पर भी वह उन्हीं रुपयों से कोई नयी ज़मीन खरीद नहीं पा रहा है। अगर खरीद भी ले तो पुरानी ज़मीन हाथ से निकल जाने से जो नुकसान हुआ उसकी पूर्ति नहीं हो सकती। ज़मीन क्या सरकारी ऑफ़िस के लोगों की ज़मींदारी है जो हर महीने पहली तारीख को मिल जाया करेगी ? वैसे भी तो जोत ज़मीन रखने का और कोई क़ानून नहीं है। सब कानून जोत

ज़मीन को छोड़ने के लिये हैं। बँटाईदारों को भी ज़मीन रिकॉर्ड करने के लिये मौक़ा दिया जाये तो जोतदार के हाथ में खतियान के काग़ज़ के टुकड़े के सिवा और रह ही क्या जाता है ? कई वर्षो से ऐसा ही होता आ रहा है। गयानाथ की जोतदारी के कई पुश्त तो निकल गये। जोतदार का रहेगा खतियान और जमीन को खायेंगे हज़ारों तरह के भूत।"

इस क्रोध के हिसाब-किताब के बीच भी गयानाथ भूला नहीं कि चाहे उसके हाथ से कितनी ही ज़मीन क्यों न निकल जाये पर जोतदारी उसके बाबा के समय से अधिक ही बढ़ी है। वही तो सबकुछ खेती को लेकर हुआ है। अभी खेती कितनी बढ़ गयी है। असल जमीन कितनी बढ़ गयी है। परती ज़मीन कितनी घट गयी है।"

पर वह भी इसी सरकार के ही समर्थन से, अपने साथ खुद के गोपनीय आलाप में गयानाथ उसे स्वीकारना नहीं चाहता। अभी अगर हमारी पूरी की पूरी ज़मीन होती तो कितनी फ़सल होती। पर आजकल ही यह खेती क्या इतनी सारी ज़मीनों पर की जा सकती है ? क्या संभव होता ? और यही तो कितनी सुंदर व्यवस्था की गयी है—जमीन कुछ कम हुई है, पर फ़सल काफ़ी बढ़ी है। गयानाथ यह जानता है। जानता है, क्योंकि जाने बग़ैर कोई उपाय भी नहीं है। पर जानने से भी चलेगा, इसी से मानता नहीं है।

मानता तो नहीं ही है, बल्कि गयानाथ वकील बाबू की बातों को मन ही मन अपनी मर्ज़ी के मुताबिक सजा लेता है। "जोतदारी अब पहले की तरह से चलेगा नहीं। हाकीम बदल गया है, क़ानून बदल गया है। बैरेज की ज़मीन अब वापस मिलने से रही। इस सरकार के क़ानून में वापस मिलने का सवाल ही नहीं। कामतापुरी राज्य बनाइये। साला नया राज्य नये क़ानून से वापस पाओगे।" ज़मीन वापस पाने की निश्चितता रहती तो गयानाथ ही उत्तराखंड का नेता बन बैठता। पर वह और यहाँ के कुछ लोग मिलकर एक पूरा का पूरा राज्य बना पायेंगे यह गयानाथ को विश्वास ही नहीं होता। पर अपने इधर-उधर घूमने देने के लिये तैयार है। इसको लेकर सरकार हर समय सहमी-सहमी-सी रहती है। जब वह डरी-सहमी हुई है तो उसे फिर और डराने में बुराई क्या है ? और डराने से ही अगर सरकार डर जाती है तो फिर गयानाथ भी उसे थोड़ा डर क्यों न दिखाये ?

फिर भी उत्तराखंड दल से जुड़ने के लिये गयानाथ का जो थोड़ा-बहुत संकोच है, वह राजनीति न करने का संकोच है। अपने बाबा के समय से ही वह देखता आया है कि इन सबका मतलब है जोतदारी का नुक़सान। वह चाहे कांग्रेस का घर हो चाहे कम्युनिस्ट का। जो साला जोतदारी करता है, वह साला जोतदारी ही करता है। सालों को पार्टी करने का समय ही नहीं मिलता। साला पार्टी करने

लगे तो जोतदारी भी चौपट हो जायेगी। साला जोतदारी छोड़कर साहूकारी करनी पड़ेगी। साहुकारी में पैसा ज़्यादा है, नगद रोकड़ा है पर जोतदारी नहीं।

अपने अनुभव और जीवन-दर्शन से गयानाथ यह धारणा बना बैठा है। पर उसकी ऐसी धारणा बन चुकी है, यह उसे ही पता नहीं। तथ्य के साथ इस बात को प्रमाणित भी नहीं कर सकता। पार्टी करने का मतलब साहुकारी करना है। शायद उल्टी बात ही सही है। उसके ख़्याल के पक्ष में ढूँढ़ने से कुछ साक्ष्य-प्रमाण जुगाड़ किया जा सकता है। पर गयानाथ का यह ख़याल बनने के पीछे इस तरह का साक्ष्य प्रमाण या अनुभव काम नहीं करता। गयानाथ फिर सर से पाँव तक ऐसा जोतदार है कि वह ज़मीन और खेती के नियम के बाहर किसी भी नियम को भी ग़ैरज़रूरी मानता है। उसी भावना को उसका जीवन-दर्शन कहा जाता है। उसकी जोतदारी कभी उसे कांग्रेसी बनने नहीं देती—वोट के टाइम में लोगों को साथ ले जाकर एक वोट दे आना वह तो ब्याह-शादी के न्योता जैसा है। वह जीवन-दर्शन ही उसे उत्तराखंड में योग देने का फ़ैसला करने में मदद करता है। पर गयानाथ को जैसे भनक लग गयी है कि उसे उसमें शामिल होना ही होगा, और वह ज़रूर शामिल होगा।

"अभी टाईम आ गया है पब्लिक का। जो काम तुम पब्लिक जुगाड़ कर नहीं पाओ, वह काम कभी हो ही नहीं सकता। बँटाईदार लोग पब्लिक हो गये हैं, उन्हीं का काम हो रहा है। जोतदारों को भी पब्लिक होना पड़ेगा। तभी सालो का काम हो पायेगा।"

पर अपने साथ के इसी आत्मालाप में गयानाथ इस सवाल पर आकर रुक गया—"पर मेरा काम क्या है ?"

इस सवाल का कोई सही उत्तर वह अपने अंदर से खींचकर बाहर नहीं ला पाया, इसका कारण, गयानाथ खुद अपने उस जवाब का सबकुछ जान लेना नहीं चाहता था। "उत्तराखंड कर लेने से क्या बैरेज में मेरी जो ज़मीनें गयी हैं, वह साला वापस मिल जायेगी ?" गयानाथ इसका निश्चित जवाब जानता था कि 'नहीं'। इसी से वह सवाल को इस तरह से उठाना नहीं चाहता था। फिर भी ज़मीन, तुम्हारे बाप-दादा, परदादाओं की ज़मीन, अगर कोई छीनने आये उसे बाधा देना होता है, रोकना होता है। लाठी सोंटा लेकर दखल करने के लिये आने से उसी तरीके से बाधा देना पड़ता है। मेड़ काटकर कोई घुसना चाहे तो मेड़ बाँध कर रोकना पड़ता है। फ़सल काट कर ज़मीन पर खेती क़ायम करने के लिये आने से उसे उखाड़कर रोकना पड़ता है। सरकार को नोटिस देकर छुड़ाने के लिये आने पर उसके जवाब में कोर्ट में नोटिस देकर बाधा देना पड़ता है। गयानाथ वह कर ही रहा है। अगर पब्लिक पार्टी करके ज़मीन लेने आये तो साला को पब्लिक लेकर ही बाधा देना पड़ता है। उत्तराखंड गयानाथ

की पब्लिक है।

गयानाथ इस तरह के उदाहरणों को केवल अपने तर्क से मजबूत करता जा रहा था सिर्फ इतना ही नहीं है। पर वह जब समझता है कि उसे उत्तराखंड में जाना ही पड़ रहा है तो उसे अपने जीवन-दर्शन से ही तो तर्क इकट्ठा करना पड़ेगा। ऐसा अगर होता कि वह उत्तराखंड करने को बराबर ही ज़रूरी समझ रहा है—तो वह पहले से ही वहाँ रहता। बल्कि गयानाथ तो समझता है कि खेती-आबादी के काम में सरकार के साथ सगे कुटुम्ब जैसा संपर्क बनाये रखना बेहतर है। अब जो कुछ भी खेती-आबादी है उसमें अगर सरकार के साथ उत्तम संपर्क बनाये रखा न जाये तो खेती-आबादी करना संभव नहीं है। बल्कि उत्तराखंड इन सब पार्टी-वार्टी के फेरे में पड़ने से सरकार के साथ संपर्क बुरा हो जायेगा। और गयानाथ जैसे एक जोतदार का समर्थन पाकर उत्तराखंडी मुझपर कब्जा करना चाहेंगे और लाल पार्टी मेरे लोगों पर कब्जा करना चाहेगी। इससे तो हंगामा और बढ़ेगा। पर गयानाथ को एक जनता, एक पब्लिक की ज़रूरत है, पर पायेगा कहाँ से इस उत्तराखंड को छोड़कर ?

गयानाथ ने वकील बाबू के बरामदे से उतर कर कचहरी की ओर क़दम बढ़ा दिया। रास्ते में रिक्शा, साइकिल, फटफटियों की क़तार बँधी थी—लोग ऑफ़िस जा रहे थे। धीरे-धीरे चलने से वह समय पर कचहरी में पहुँच पायेगा। मोहरीर बाबू से लिस्ट ले लेने के बाद तो उसका काम ख़त्म हो जाएगा। इस बीच आसिंदर आ जाये तो बेहतर है।

156

गयानाथ का उत्तराखंड में शामिल होने की घोषणा

गयानाथ जिस समय वकील बाबू के घर से निकला उस समय उसके मन में एक और जोड़तोड़ बैठा था। मोहर्रिर बाबू अगर कोर्ट में जाकर दूसरे काम-काज में लग जायें, तो गयानाथ को दोपहर तक ख़ाली बैठना पड़ जायेगा।

संतोष मोहर्रिर ने किया भी यही। गयानाथ को देखते ही वह सामने के लोगों को दिखाकर बोला, "गयानाथ बाबू, आज इन सबकी पेशी है, आप ज़रा बैठिये। इन्हें विदा करके आपका काम कर देता हूँ।

गयानाथ ने हाथ जोड़कर कहा, "आज तो मुझे आप जल्दी ही छोड़ दो बाबू। बहुत काम है। जाते समय मयनागुड़ी मे रुकना पड़ेगा। आप मेरा काग़ज़ दे दीजिये। और अगर नहीं दे रहे तो भेज दीजियेगा।

गयानाथ जोतदार को आमतौर पर बिठाकर रखा जाता था, पर शरिस्ता उस जैसा पैसेवाला मुअक्किल जब काम करने के लिये कह रहा है तो संतोष

मोहर्रिर ही क्या, उसका वकील बाबू में भी दम नहीं है कि काम न करे। पर गयानाथ को अपनी इस क्षमता के बारे में कुछ पता नहीं था। पर वह इतना तो समझता ज़रूर था कि मयनागुड़ी में रुकने के लिये हो तो यहाँ दोपहर तक रहा नहीं जा सकता।

मोहर्रिर बाबू ने कहा, "अरे आप बैठिये तो सही, बैठिये, बैठिये। इस कुर्सी पर बैठ जाइये।" एक आदमी उस हत्था टूटी कुर्सी पर बैठा था। संतोष ने उसे उठाते-उठाते अपने ऊपर के पॉकेट से एक कागज़ निकाल ली—तरह-तरह से मुड़ा-तुड़ा कागज़ एक नोट-बुक के साथ। प्रायः प्रत्येक कागज़ को देखने लगा संतोष। जल्दी-जल्दी उन्हें खोलता था, बंद करता था। देखने के साथ-साथ दही खाने जैसी एक चटखारे की आवाज़ भी निकालता जाता था। 'नहीं' कहकर वह उन कागज़ों को फिर से ऊपरवाले पॉकेट में रख देता था। "ऐ, गयानाथ बाबू को चाय दो। ऐ, एक कप चाय लाओ तो" संतोष ने अपने सामने खड़े एक आदमी से कहा। उसके बाद अपनी बड़ी डायरी का पन्ना पलटने लगा। हरेक पन्ना उलटना-पलटता था और चटखारे लेता था। पलटते-पलटते अचानक रुक गया संतोष। चटखारा बंद कर लिया था। जहाँ एक पलटा था, वहाँ एक ऊँगली रखकर संतोष डायरी के कवर के अंदर देखने लगा। फिर हँसने लगा गयानाथ को देखकर कहा, "मिल गया, मिल गया।"

गयानाथ ने कहा, "क्या-क्या चाहिये, देखिये।"

डायरी के अंदर से एक इनलैंड निकाला। खोलकर, पढ़कर सतोष ने कहा, "आपका यह 231 नंबर प्लॉट का परचा।"

"वह तो आपके पास पहले से ही है।"

"आँ ! तो शायद उसकी एक और कापी चाहिये। या फिर यह कहीं 233 नंबर का प्लॉट तो नहीं ?"

"233 को लेकर तो कोई मामला नहीं है।"

"मामला न होने पर भी तो लग ही सकता है।"

संतोष ने जिस आदमी को भेजा था, उसने एक कप चाय लाकर गयानाथ को दी। गयानाथ के चाय पीने लगने पर संतोष ने कहा, "गयानाथ बाबू, आप न हो तो यह चिट्ठी लेते जाइये। किसी को दिखा देना क्या-क्या चाहिये। और वह सब लेते आइयेगा। मैं तभी देख लूँगा। अब इन सबका बुलावा आनेवाला है।"

"अच्छा, अच्छा, मुझे ही दे दीजिये।" गयानाथ ने संतोष के हाथ से चिट्ठी लेकर उसे मोड़कर पॉकेट में घुसाते-घुसाते चाय का कप टेबिल पर रख दिया। "पर अगर कोई कागज़ात आपके पास हो तो ?"

और एक चुस्की में चाय खत्म हो गयी। गयानाथ ने उठकर कहा, "अच्छा

तो मोहर्रिर बाबू, चलता हूँ, नमस्कार।"

संतोष सर उठाकर "हाँ नमस्कार" कहकर फिर टेबिल पर झुककर काम में लग गया।

गयानाथ रास्ते में आकर सोचने लगा कि आसिंदर के लिये कहाँ खड़ा होकर प्रतीक्षा करे। वही सोचते-सोचते आसिंदर को जिधर से आना था, उसी मोड़ पर से बड़ी सड़क पर आ गया। चलते-चलते गयानाथ ने तय कर लिया कि सीधा पीडब्ल्यूडी मोड़ पर जाकर ही प्रतीक्षा करेगा।

पीडब्ल्यूडी के मोड़ पर स्कूल बोर्ड के ऑफ़िस के सामने बहुत-सी चाय की दुकानें थीं। उसके बाहर एक खाली बेंच पर वह बैठ गया। वहाँ धूप पड़ रही थी, पर वह तो चाय नहीं लेगा, इसी से भीतर नहीं जाता। शहर के तमाम बस, मिनी बसें यहाँ से तिस्ता ब्रिज की ओर मुड़ती थी। यहाँ कुछ समय रुकती भी। कोई भी गाड़ी पर बैठ जाने से भी आधे घंटे में मयनागुड़ी पहुँचा जा सकता है। गयानाथ ने एकबार सोचा कि वह मोहर्रिर बाबू को बताकर बस से मयनागुड़ी चला जाये। मोहर्रिर बाबू आसिंदर को मयनागुड़ी चोक पर मरण घोष की दुकान में भेज देगा। इस बीच गयानाथ उत्तराखंड के अध्यक्ष पंचानन मल्लिक के साथ मुलाकात कर चुका होगा।

ऐसा करने पर उसे फिर से कचहरी जाकर मोहर्रिर से बात कर आना होगा। पर गयानाथ को लग रहा था कि आसिंदर किसी भी पल आकर पहुँचने वाला है। मयनागुड़ी में पंचानन मल्लिक के साथ भेंट करने की बात उसके दिमाग़ में आते ही गयानाथ को लग रहा था कि आसिंदर देर लगा रहा है। पर साथ ही साथ वह यह भी समझता था कि आसिंदर किसी भी पल आ सकता है। गयानाथ चाय की दुकान की बेंच पर बैठा ही रहा। इधर-उधर ताकता रहा. बस-मिनीबसों को देखता रहा, बड़े ब्रिज से जो रिक्शे कचहरी की ओर मुड़ते है उन्हें भी देखता रहा।

आसिंदर की बात सुनकर गयानाथ चौंक पड़ा। आसिंदर उसके सामने फटफटी पर खड़ा होकर हँसता हुआ कह रहा था, "क्या सो गये थे बाबूजी ?" गयानाथ ने चौंककर देखा आसिंदर फटफटी पर बैठकर 'हो-हो' करके हँस रहा था। आसिंदर की हँसी दो-एक आदमी की नज़र में भी पड़ी और गयानाथ ने बेंच से उठकर चादर ठीक करते-करते अपने को प्रकृतिस्थ कर लिया।

हँसी रोककर आसिंदर ने कहा, "इहाँ से आपके आँखों के सामने से होकर गिया और देख नहीं पाये ? वहाँ कोर्ट में गिया, वहाँ भी नहीं। मोहर्रीर बाबू ने कहा वह तो कबके चले गये। तो सोचा कि पीडब्ल्यूडी के मोड़ पर बैठे होंगे। इहाँ आकर आपको देखकर पॉ-पों कर रहा हूँ, पर सुनते ही नहीं। कितना तो बुलाया, पर सुना नहीं।

आसिदर की इन बातों के बीच गयानाथ उसके पीछे बैठ गया था और चादर ठीक कर रहा था। आसिंदर के गाड़ी चलाना शुरू करते ही उसने अपनी बात रोककर कहा, "मयनागुड़ी, पंचानन मल्लिक के घर चलना है।"

गाडी रोककर गर्दन घुमाकर पीछे मुड़ते हुए आसिंदर ने कहा, "पंचानन मल्लिक ? बापू, उत्तराखंड पकड़ना है क्या ?" फिर बड़े रास्ते पर चढ़ाई के पहले ही गाडी रोक दी।

अचानक रुक जाने पर मोटरसाइकिल काँप रही थी, उसके ऊपर गयानाथ भी काँप रहा था। आसिंदर दोनों ओर मिट्टी पर पाँव रखकर गर्दन पीछे की ओर मोड़े हुए है। इस हालत मे गयानाथ ने अपने ऐतिहासिक सिद्धांत की घोषणा कर दी, "पकडूँगा तो, उत्तराखड पकडूँगा। मैं न पकडूँ तो तुझे जाकर पकडाऊँगा नहीं तो इस कोट और हाकिम के जरिये और जोतदारी नही सँभाला जा सकता बेटा !"

आसिंदर ने अपना दाँया हाथ हैंडिल पर रखकर चिल्लाया, "उही बोलो, बापू अब लीडर हो जाइगा, हमारा बापू अब लीडर बन जाइगा, उत्तराखड का लीडर।" उसने गाड़ी चालू कर दी।

थोड़ी देर बाद पीछे से गयानाथ ने चिल्लाकर कहा, "सुन, अभी मै नाही जाऊँगा, तू जा।"

आसिंदर बात ठीक तरह से समझ नही पाया। स्पीड बगैर कम किये पीछे मुड़कर पूछा, "कहाँ जाओगे ? मयनागुडी जा रहे हो न ?"

आसिंदर की पीठ पर हाथ रखकर गयानाथ ने उसे समझाया, "ठीक ही चल रहे हैं। सामने तिस्ता ब्रिज का सर आकाश को छू रहा है।"

आसिंदर कंधा घुमाकर चीख़कर बोला, "क्या, क्या कह रहे हो ?"

फिर से गयानाथ ने आसिंदर की पीठ पर हाथ रखकर चीख़कर कहा, "कहूँगा, कहूँगा। अभी चल तो मयनागुड़ी।" फिर ऊँची आवाज़ में बोला, "आगे चौक पर उतरना।"

157

शब्द के अर्थ को लेकर पंचानन-गयानाथ के बीच बहस

मयनागुड़ी में पंचानन मल्लिक के घर जाने के पहले चौराहे पर मरणचाँद घोष की दुकान में दो कप चाय पीते-पीते गयानाथ और आसिंदर के बीच बहस छिड़ गयी थी। गयानाथ ने कहा कि, पहले से ही उसकी पार्टी में चले जाना ठीक नहीं होगा। उसके शामिल हो जाने से सरकार उसका मामला मुकदमा 'डिसमिस' कर सकती है। इसके अलावा, वह एकबारगी पहले से शामिल हो जाये कैसे ?

आगे चुनाव आ रहा है। गयानाथ के हाथ में भी कोई कम वोट नहीं है। आसिंदर अगर पार्टी में शामिल हो गया तो सब पार्टी वाले डरने लगेंगे कि जँवाई समुर को भी खींचकर ले जा सकता है। और कोई अगर गयानाथ से पूछे तो वह कह सकेगा, "हमरा जँवाई तो जोतदारी नहीं करता, कंट्राक्टरी करता है। हमरी बात तो वह सुनता ही नाहीं।"

आसिंदिर ने कहा, "मुझसे पक्का घर बनवाना चाहते हो ?" आसिंदर का खयाल था कि इन सब बातों से अब और किसी को भरमाया नहीं जा सकता है। सभी यह समझेंगे कि गयानाथ खुद शामिल न होकर आसिंदर से पक्का घर बनवा रहा है। उससे जात भी जायेगी और पेट भी नहीं भरेगा। अगर पार्टी में जाना है तो गयानाथ और आसिंदिर दोनों को ही जाना चाहिये। इससे सभी थोड़ा विचलित हो सकते हैं। "लीडरी करनी है तो फिर लीडरी करनी पड़ेगी। लीडरी क्या पक्का घर होने से होती है ? नहीं होती।"

गयानाथ ने कुछ कमज़ोर भाव से कहा कि इनके लीडर सब ठीक हो ही चुके हैं। वह जाने से क्या उसे लीडर बना लिया जायेगा ?

आसिंदर ने फिर भी उससे कहा कि, "क्या कह रहे हो ? गयानाथ जोतदार ज्वाईन कर ले तो वह तो एक काफी ज़ोरदार खबर बन जायेगी उत्तराखंड के लिये। तुमरा क्या उठाईगिरी का घर है कि भोलेंटियर बनायेंगे ? तुम तो ज्वाइन करते ही सीधा लीडर।" चाय खत्म करके मोटरसाइकिल पर सवार होकर जब वह पंचानन मल्लिक के घर पहुँचा, तब भी वह दुविधा से मुक्त नहीं हुआ था। उत्तराखंड में योग देना—यहाँ तक तो ठीक है। आसिंदर जैसे कह रहा है कि उसके मिल जाने पर ही हलचल मच जायेगी। गयानाथ भी वैसा ही चाहता है—इतने हो-हल्ले की क्या ज़रूरत है ?

दोपहर में पंचानन मल्लिक सो रहा था। उसके बैठक में गयानाथ और आसिंदर को बिठाया गया। एक छोटा-सा लड़का एक काँसे के लोटे में पानी और स्टील का ग्लास रख गया। पंचानन मल्लिक के घर में एक तख्तपोश था, एक टेबिल और कुछ कुर्सियाँ भी थीं। बैठक में प्रवेश करके गयानाथ सोच नहीं पाया कि कहाँ बैठें। पीछे से आसिंदर ने कहा, "कुर्सी पर बैठो, मैं पीछे बैठ जाता हूँ।" आसिंदर जाकर तख्तपोश पर बैठ गया। गयानाथ के कुर्सी पर बैठ जाने से आसिंदर पीछे रह गया। गयानाथ कुर्सी को थोड़ा घुमाकर बैठा, पर हिला नहीं। गयानाथ जैसे यहाँ से उठा सकता है—उसके चहरे-मोहरे में यह अनिश्चितता झलकती थी। आसिंदर ने पूछा, "आप पंचानन मल्लिक को पहचानते हैं न ?"

गयानाथ इस बात का जवाब देने का मौका नहीं पाया। उसके पहले बैठक के आँगन के नीचे पंचानन मल्लिक आ गया। बैठक थोड़ी ऊँची थी—मिट्टी की। दो दरवाज़े, नीचे लकड़ी की एक ठूँठ है। काफ़ी दिनों से जिसका इस्तेमाल सीढ़ी

के रूप में होते-होते इस मिट्टी के घर के साथ मिल गया था। दोनों दरवाज़ों के आमने-सामने होने से दोनों दरवाज़ों से होकर धूप आ रही थी। घर के बाक़ी सब भाग में मटमैला उजास फैला हुआ था। पर भानिमी के घेरे के सुराग से बाहर का प्रकाश नज़र आ रहा था।

घर के आँगन में आने के लिये पंचानन बाबू को दरवाज़े का सहारा लेना पड़ा था। वह बनियान और धोती पहने हुए था। बनियान के अंदर से जनेऊ दिखायी दे रहा था। कमरे में प्रवेश करके उसने गयानाथ को नमस्ते किया। गयानाथ को पार करके उसे टेबिल के दूसरी ओर की कुर्सी पर बैठना पड़ा। वहाँ बैठकर वह आसिंदर को देख नहीं पाया। गयानाथ के ऊपर से आँखें घुमाते समय ही वह उसे देख पाया।

गयानाथ ने बात शुरू की, "गया था जलपाईगुड़ी कोर्ट में। जाते समय देखा कि उत्तराखंड सम्मेलन हो रहा है। तो सोचा कि आपके साथ भेंट करता चलूँ। यह तो हमारा ही सम्मेलन है—राजवंशियों का।"

पंचानन बाबू ने गला साफ़ करके धीरे-से कहा, "आपने कहा कि खाली राजवंशियों का ? कैसे ? नही, राजवंशी ही उत्तर बंग के प्रधान हैं। पर उत्तराखड दल सबलोगों का है। जो कामतापुर नाम के स्वतंत्र राज्य के दावे का समर्थन करते हैं, उन्हीं का दल है उत्तराखंड।"

ज़रूर, ज़रूर, ऊ तो होना ही चाहिये। आप लोग तिस्ता बैरेज के बारे मे कुछ सोच-विचार कर रहे हैं ?" गयानाथ ने पूछा।

"हाँ-हाँ। उत्तर बंग के हरेक मामले के बारे मे, समस्या के बारे में हमें कहना होगा। आपकी तो काफ़ी ज़मीन चली गयी है।"

"वही बात तो कहना चाहता हूँ। हमरे साथ तो सरकार का मुकद्मा चल रहा है—कलकत्ता हाईकोर्ट और जलपाईगुड़ी कोर्ट में फारेस्ट डिपार्टमेंट को कोर्ट ने स्टे-ऑर्डर दिया नहीं। पर हरज़ाने का एक मुकदमा जीत चुका हूँ। अब मेरा तो बस यही कहना है कि जिन जोतदारों की ज़मीन पहले से भेस्ट हो चुकी है, इसी भेस्ट ज़मीन में, अब जो बैरेज के चलने नयी ज़मीन का अधिग्रहण किया गया है वही उतनी ही ज़मीन, जोतदारों को वापस देनी पड़ेगी।"

पंचानन ने थोड़ा सोचकर कहा, "यह तो बहुते अच्छा प्रस्ताव है। पर 'जोतदार' नहीं कहना चाहिये।"

"क्यों ? जमीन तो जोतदारों की ही भेस्ट हुई है ?" गयानाथ नें कहा।

"ऊ तो हुई ही है। पर हमरे पार्टी को तो सरकारी लोग, कम्युनिस्ट लोग जोतदारों की पार्टी कहते हैं। इसी से हमारे प्रस्ताव में या भाषण में 'जोतदार' न कहकर 'किसान' कहना चाहिये। हम किसानों के स्वार्थ में ज़रूर बोलेंगे।

गयानाथ चुप हो गया। चुप होकर उसे शब्दार्थ के इस गोलमाल को समझना

पड़ा। अबतक वह सुनता आया था और जानता आया था कि "किसान ज़िंदाबाद", "किसान को दख़ल देना होगा, देना होगा", "किसान उच्छेद--नहीं चलेगा, नहीं चलेगा" का नारा लगाते हैं।

पंचानन इन सवालों का जवाब देने का अभ्यस्त हो चुका था। शायद, ठीक ही कहता है, किसान यानी कृषक। कृषक एक संस्कृत शब्द है। जो कृषि कर्म करता है वह कृषक है। जोतदार लोग भी तो चौबीस घंटे कृषि कर्म करते हैं। ज़मीन आप क्यों चाहते हैं ? खेतीबाड़ी के लिये। उसी के चलते हम अपने को कृषक कहेंगे। कम्युनिस्ट लोगों ने तो 'किसान' शब्द को अपनी बपौती बना ली। और 'जोतदार' शब्द को एक गाली बना दिया है। उत्तराखंड दल 'कृषक' का असली मतलब सबको बनायेगा। हम तो कृषक हैं, सभी कृषक हैं—वह चाहे बँटाईगीर हो, देऊनिया हो या फिर कामगार हो।"

ये सब बातें समझने के लिये गयानाथ कुछ समय तक चुप रहा। उसे 'कृषक' शब्द सम्मानजनक या 'जोतदार' शब्द गाली-सा नहीं लगा। वह जैसे जोतदार ही रहना चाहता हो। उत्तराखंड उसमें 'कृषक' बनने के लिये कहेगा, इसके लिये वह जैसे तैयार नहीं था।

आसिंदर नख्तपोश से उठकर आया और बोला, "बापू जो जोतदार, वही कृषक। उत्तराखंड का कृषक और लाल पार्टी का किसान, एक नहीं, अलग-अलग हैं।" आसिंदर की नकारात्मक बातों से पंचानन ने सिर हिला दिया और आसिंदर के सकारात्मक वाक्य पर उसने गर्दन हिला दी। जैसे कि बातें आसिंदर की हों और लहजा पचानन का।

"पर यह बात लोगों की समझ में आयेगी कइसे ? लाल पार्टी वाले नारा लगायेंगे—'किसानों का उच्छेद नहीं चलेगा' और आप लोग कहेंगे 'कृषक-उच्छेद का अधिकार देना होगा', लोगों के लिये तो इससे गड़बड़ी हो जायेगी। मैं भी किसान हूँ, हमरा यह जँवाईबाबू भी कृषक है, मेरा आदमी वह बाघारू भी किसान है।"

"सुनिये, गयानाथ बाबू, हमें भी तो एक दल बनाना चाहिये, पार्टी बनानी चाहिये—उत्तराखंड पार्टी उसका उद्देश्य क्या है ? पश्चिम ढग से अलग-अलग एक राज्य का गठन करना। कौन-सा राज्य ? कामतापुर राज्य। ई राज्य की माँग को लेकर सबलोगों को एकत्रित करना है। संगठित करना है। राज्य होगा तो उसमें बहुत तरह के लोग होंगे। कृषक शब्द का माने सभी को समझ में आता है, पर जोतदार सबको नहीं समझ में आता। पर लोगों को जब पता चल जायेगा कि उत्तराखंड दल कहता है—भेस्ट ज़मीन से बेरेज की ज़मीन वापस करो—तब सभी की समझ में आ जायेगा कि जिनके पास भेस्ट ज़मीन थी, हम सिर्फ़ उन्हीं लोगों की बातें कर रहे हैं।"

गयानाथ ने अबकि सिर हिलाकर कहा, "हाँ, यह बात तो आपने ठीक ही कहा है। लोगो को अपनी ओर करना ही होगा। जोतदार का नाम लेने पर तो लोग आयेंगे नहीं। और भेस्ट ज़मीन का नाम लेने पर लोग समझ जायेंगे कि जोतदारी की बात की जा रही है।"

"वह क्यों कहते हो ? सिर्फ़ जोतदारी की ही बात नहीं है। न्याय की बात कहो। धरम-करम की बात कहो। पाँच गाँव दे दे दिया जाता तो महाभारत युद्ध न हुआ होता और सरकार आप लोगों की इतनी सारी ज़मीन पहले भेस्ट में ले ली, फिर इतनी सारी ज़मीन बैरेज के लिये अधिग्रहण किया।" पंचानन महाभारत का उदाहरण देकर क्या समझाना चाहता था, वह खुद भी समझ नहीं पाया, न ही गयानाथ की समझ में आया।

"क्या आपके कामतापुरी राज्य मे ई तिस्ता बैरेज भी होगा ?" गयानाथ की इस सहज जिज्ञासा से पंचानन गम्भीर हो गया। इस प्रश्न का उत्तर उसने सोचा नहीं कभी। दरअसल, गयानाथ जैसे बड़े जोतदार के उत्तराखंड में शामिल होने पर उसके स्वार्थ के हित में यह तिस्ता बैरेज संबंधी प्रस्ताव लेना ही होगा। पर प्रस्ताव लेने पर भी पंचानन किस तरह से कह सकता है कि कामतापुर राज्य में तिस्ता बैरेज रहेगा या नहीं।

पंचानन कहता है, "बैरेज को लेकर तो आपको कोई आपत्ति नही है ? आपत्ति है तो ज़मीन के अधिग्रहण को लेकर। कामतापुर में आवश्यकता पड़ने पर बैरेज बनाया जा सकता है। पर उसके लिये कभी भी किसानो की ज़मीन का अधिग्रहण नहीं किया जायेगा। नदी की ज़मीन पर ही बैरेज बाँधा जायेगा।" पंचानन इतने सुंदर भाव से सवाल का जवाब दे पाने पर खुश हो गया था।

गयानाथ ने फिर सवाल किया, "और फॉरेस्ट डिपार्टमेंट ? कामतापुर में क्या फॉरेस्ट डिपार्टमेंट भी होगा ?"

पंचानन के जवाब देने का जो फायदा था उसे छोड़ना नहीं चाहता था, "गयानाथ बाबू, हमारा कामतापुर राज्य तो भारत का ही एक राज्य होगा। भारत के सभी राज्यों में जो कायदा-क़ानून है वह कामतापुर में भी रहेगा, पर वह कभी भी किसानों के ख़िलाफ़ नहीं जायेगा, वह उनके स्वार्थ के लिये ही होगा।"

"कृषक मतलब लाल पार्टी का किसान नही, उत्तराखंड पार्टी का किसान ?"

हाँ, भाई ज़रूर। किसान का मतलब सिर्फ़ हलवाहा और बँटाईगीर नहीं हो सकता। किसान का माने सिर्फ़ हलवाहा और बँटाईगीर को क्यों समझाने लगा ? जिसकी ज़मीन है वही किसान है। सुनिये गयानाथ बाबू, आप उत्तराखंड में योग दें तो वह हमारा गौरव होगा। इस डुयार्स के सभी, कूचबिहार के सभी, तराई के सभी हमें पूछ रहे हैं—गयानाथ बाबू क्यों नहीं आ रहे हैं ? आप तो कई पुश्तों के भोगी हैं। आप भी आकर अपनी बात कहें, हम उन सब पर आलोचना करेंगे,

आप भी और दस लोगों के साथ बैठें। यह तो गौरव की बात है।

गयानाथ ने थोड़ा चुप रहकर कहा, "उसी लिए तो आपसे भेंट करने चला आया। पर हमरा तो इतना सारा मुक़दमा चल रहा है। साला मैं तो आगे आ नहीं सकता। मेरी ओर से हमरा ई जँवाई बाबू आसिंदर उत्तराखंड करेंगे। मैं भी आप लोगों का तमाम काम करूँगा, पर मैं नाम लिखवाने से पहले दो-चार महीना देखना चाहता हूँ।"

"क्या देखना चाहते हैं आप ? हमारा काम-काज ?"

"अरे नहीं, नहीं, हमरा मुकदमा कोर्ट में पड़ा है न अभी ? वही देखना चाहता हूँ।"

"मुक़दमा तो मुक़दमा की तरह चलेगा, वहां आपका उत्तराखंड में अड़ंगा कहाँ है ? आप तो चाहते हैं कि तिम्ता बैरेज के बारे में मैं अपने सम्मेलन में बात उठाऊँ ? पर आप अगर खुद नहीं आते तो फिर प्रसंग कौन उठायेगा ? बैरेज के बारे में तो हमें आपको ही नेतृत्व देना होगा। आप हमारे लीडर होंगे।"

आसिंदर गयानाथ के निकट खड़ा होकर बोल उठा, "मैंने तो कहा है बाबू को। यह क्या तुम्हारे कोई छुपने की उमर है ? तुमको अब लीडर बनना पड़ेगा। लीडर बनो बाबू, लीडर बनो।" गयानाथ ने थोड़ा चुप रहकर कहा, "ठीक है, बैरेज के लिये मैं आऊँगा। पर बाक़ी का सब काम आसिंदर करेगा।"

फिर न जाने क्या तो सोचकर कहा, "नहीं, मैं आऊँगा तो फिर आसिंदर को छोड़ दो। दोनों जने के एक साथ पार्टी में आ जाने से सभी सोचेंगे कि मैंने सरकार के ख़िलाफ़ लड़ाई छेड़ दी है।"

"तो फिर जँवाई बाबू को हमरे सांस्कृतिक अनुष्ठान का पार्टनर कर दीजिये।"

"वह क्या है ?"

पंचानन ने दोनों हाथ उठाकर कहा, "एक काम करिये। आप घर वापस चले जायें। दो-एक दिन के बीच हम और हमारा सेक्रेटरी वीरेन्द्रनाथ बसुनिया आपसे भेंट करेंगे।"

158

उत्तराखंड सम्मेलन और श्रीदेवी का नाच

मयनागुड़ी में 'निखिल बंग उत्तराखंड समिति' के पहले सम्मेलन का आयोजन ज़ोरों पर था। पर वह उत्तराखंड समिति के सम्मेलन के लिये था, या सम्मेलन समाप्ति पर हर शाम होनेवाले सांस्कृतिक कार्यक्रम के लिये था, वह समझ में नहीं आ रहा था, क्योंकि अबतक समझने का समय आया नहीं था। पर सम्मेलन

और कार्यक्रम जब शुरू होगा तो सम्मेलन की बात किसी के मन में नहीं होगी—वह अभी से अंदाज़ा लग रहा था। सांस्कृतिक कार्यक्रम अगर सचमुच सफल रहा तो वह भी उत्तराखंड सम्मेलन की सफलता के रूप में गिना जायेगा। इस बीच तो इस सांस्कृतिक कार्यक्रम का नाम लोगों के जुबानी 'उत्तराखंड फंक्शन' हो चुका था।

सम्मेलन में आने के लिये कोई प्रवेश फीस नहीं थी। "सभी दल-के-दल योगदान करें' पर सांस्कृतिक कार्यक्रम के लिये टिकट लगाया गया था—फर्स्ट क्लास पंद्रह रुपये, सेकेण्ड क्लास दस रुपये, थर्ड क्लास पाँच रुपये। डोनर और कंपलीमेंटरी कार्ड होल्डरों के लिये कुर्सी का प्रावधान किया गया था।

सम्मेलन सुबह को होगा और सांस्कृतिक कार्यक्रम शाम को होगा। दो दिनों तक नवरंग ऑपेरा खेला जायेगा—'कुलटा का कुल' और 'प्रमोद तरणी'। इसमें तीन फिल्मी ऐक्टर भी होंगे—सानू बनर्जी, अलबर्ट सेन और मोना गुप्ता। मोना गुप्ता सिनेमा में भी नाचती हैं और ऑपेरा में भी। फिर कार्यक्रम में हिंदी बाङ्ला गीतों का प्रोग्राम होगा। उसमें मन्ना दे से अनूप जलोटा तक होंगे। चित्रा सिंह की भी आने की बात थी, पर अब तक पक्का नहीं हो पाया था। कलकत्ते के एक ग्रुप थियेटर का सामाजिक नाटक होगा। एक दिन वीडियो पर रात भर चार फिल्में दिखायी जायेंगी। और अंतिम दिन, वही ख़ास दिन होगा—उस दिन बंबई की फ़िल्म आर्टिस्ट श्रीदेवी का प्रोग्राम होगा। उसके अगले दिन सुबह सम्मेलन मंडप से एक विशाल शोभायात्रा जल्पेश मंदिर पर जायेगी। वहां जल्पेश्वर शंकर के सामने भव्य शपथ ग्रहण होगा।

उत्तराखंड सम्मेलन के लिये ही इस तरह के भव्य सांस्कृतिक समारोह का आयोजन हो रहा था ऐसा नहीं था। बल्कि यह सम्मेलन ही नया हो रहा था। वरना पूजा के बाद इस तरह के सांस्कृतिक समारोह तो कहीं-न-कहीं होते ही रहते हैं। हर वर्ष काफ़ी वर्षों से होनेवाले इस कार्यक्रम की एक संयोग व्यवस्था भी कायम हो गयी है। आसाम से लौटने के रास्ते डुयार्स के विभिनन स्थानों पर कलाकारों की ओर से या फिर कंपनी की तरफ़ से ही आयोजकों के पास लोगों का आना-जाना प्रारंभ हो जाता है। डुयार्स का कहीं या फिर सिलीगुड़ी शहर में इस तरह का अनुष्ठान होता है। जो यह कार्यक्रम करवाते हैं, व्यावसायिक स्तर से करवाते हैं। फलस्वरूप, पास-पास में दो कार्यक्रम नहीं होते हैं, या एक ही जगह दो वर्षो तक कार्यक्रम नहीं हुआ करते हैं। पर जहाँ भी हो, बड़े-बड़े कलाकारों के होने पर आसाम-बिहार तक से लोग आते हैं। उत्तराखंड के फंक्शन में जिस दिन श्रीदेवी का प्रोग्राम होगा उस दिन तो इन सब जगहों पर भीड़ टूट पड़ने की उम्मीद की जा रही थी।

उत्तराखंड सम्मेलन पहली बार हो रहा था पर इस सांस्कृतिक कार्यक्रम का

नाम ही पड़ गया था—उत्तराखंड फंक्शन। तेरह आदमियों की भागीदारी में यह फंक्शन किया जा रहा था—उन लोगों के साथ सम्मेलन का कोई संयोग नहीं। उत्तर बंग के सांस्कृतिक कार्यक्रम के हर जगह पोस्टर लगाये गये थे। दार्जीलिंग से फरक्का तक, यहाँ तक कि कुछ-कुछ पोस्टर जो बरहमपुर तक भी पहुँच गये थे। सिलीगुड़ी, कूचबिहार, डूयार्स को पोस्टर-फेस्टूनों से भर दिया गया था। जो बसें तिस्ता ब्रिज होकर आसाम जाती हैं उनके पीछे पोस्टर तो चिपके ही हुए थे, इसके अलावा भी बनगाईगाँव, चुटियापाड़ा, पांडु और गुवाहाटी में भी फेस्टून झूल रहे थे। फिर आसाम से किशनगंज होकर पूर्णिया की तरफ़ जो ट्रक आते-जाते रहते हैं, उनपर भी पोस्टर लगा दिये गये थे। पर ट्रक पर पोस्टर ठहरता नहीं है, फट जाता है। इसी से कलकत्ता से कुछ प्लास्टिक शीट छपवाकर ट्रक के सामने की काँच पर लगाये गये थे। किशनगंज डालखोला के रिक्शे के पीछे भी पोस्टर थे। फंक्शन के एक-दो दिन पहले रिक्शावालों को श्रीदेवी की छपी तस्वीर बनियान जलपाईगुड़ी और मयनागुड़ी में बाँटे जाने के बारे में भी सुनने को मिल रहा था।

आसाम, बिहार, पहाड़, डुयार्स—चारों ओर असमिया, हिंदी, नेपाली भाषा में व्यापक प्रचार चल रहा था। पांडु में प्रयोग के तौर पर बाङ्ला में एक फेस्टून लगाया गया था। किसी ने उसे फाड़ा नहीं, यह देखकर और कुछ फेस्टून रेलवे कॉलोनी में लगाये गये थे। किशनगंज में हिंदी पोस्टर और फेस्टून लगाये गये थे। डालखोला के मोड़ पर हिंदी-बाङ्ला दोनों पोस्टर लगे थे—डुयार्स में भी।

डालखोला के मोड़ पर तीन दुकानों मे, किशनगंज की छह दुकानों में, पांडु की एक दुकान, बनगाईगाँव, केचुटियापाड़ा के सिनेमा हॉल में, गुवाहाटी की तीन दुकानें, अलीपुरद्वार में एक मिठाई की दुकान में और अलीपुरद्वार के एक ऑफ़िस में, दार्जीलिंग के एक ऑफ़िस और दो दुकानों में, कुर्शियांग के टैक्सी स्टैंड में, सिलीगुड़ी के एयर व्यू होटल के मोड पर छतरी के नीचे, जलपाईगुड़ी के निराला होटल में, पूर्णिया के एक डॉक्टरखाना में, कूचबिहार में एक आदमी ने अकेले ही कंट्रेक्ट लिया था। डुयार्स की बहुत-सी जगहों पर टिकट बेचने की व्यवस्था की गयी थी। पर कार्यक्रम के पाँच दिन पहले बाहर के इन सब टिकट बिक्री केन्द्रों से टिकट वापस लाकर सिर्फ़ कुछ निर्दिष्ट जगहों पर बेचा जायेगा। इस कार्यक्रम में लाखों रुपये लगाये गये हैं। उसकी उगाही करके ऊपर लाभ भी निकालना होगा। इसके लिये टिकट बेचना ही एकमात्र उपाय है। आयोजक लोग इसी से प्रचार पर जितना बल दे रहे थे, उतना ही टिकट भी चारों ओर बेचने पर ज़ोर दे रहे थे। टिकट के चलते कोई चाहते हुए भी कार्यक्रम में नहीं आ पाये, ऐसा न हो इसके लिये काफ़ी सतर्कता बरती जा रही थी। हालाँकि कार्यक्रम

छह दिन का था और छह दिनों का टिकट लेनेवालों से सिर्फ़ पाँच दिन का ही पैसा लिया जा रहा था, एक दिन का बोनस। तब भी सब व्यवस्था अंतिम दिन में श्रीदेवी के होनेवाले कार्यक्रम के-लिये किया जा रहा था। श्रीदेवी का नृत्य देखने के लिये उस दिन कितने लोग टूटेंगे, यह कहना मुश्किल था। इसी आख़िरी दिन के कार्यक्रम के ज़ोर से ही बाक़ी दिनों के टिकट धड़ल्ले से बिक रहे थे। श्रीदेवी के कार्यक्रम में अगर आसाम, बिहार और डुयार्स के लोग आते तो बहुत लाभ होने की संभावना थी।

दूर-दूर से जो लोग आयेंगे वे खुद ही बस में या ट्रक किराये पर लेकर आयेंगे। यहाँ तक कि चाय बागान से भी जो लोग आते हैं, वे चाय बागान के ट्रक में ही आते हैं। पर 15 से 30 किलोमीटर दूरी पर रहनेवाले नियमित दर्शक के तौर पर योग देने का अंदेशा था। उनमें से कुछ बैलगाड़ी से आते हैं, पर कार्यक्रम के अंत में कुछ रास्तों पर कुछ दूर तक एक-दो बसों के चलने से उन्हें काफ़ी भरोसा रहता। उसके लिये प्राइवेट बस या हाट के बसवालों के साथ बातचीत चल रही थी।

इस कार्यक्रम में आने के लिये आसाम, बिहार, दार्जीलिंग और तराई में तरह-तरह के इंतज़ाम किये जा रहे थे। बहुतों से सिर्फ़ श्रीदेवी का कार्यक्रम देखने के लिये डीलक्स बस में जितने लोगों को लाना संभव था, उतनों से टिकट समेत बस का भाड़ा भी एक साथ जोड़कर लिया जा रह था। बसवालों के पास डीलक्स-बस, ऑर्डिनरी बस रहने के साथ-साथ डीलक्स में वीडियो बस भी था। वे आने और जाने के समय वीडियो पर श्रीदेवी की फ़िल्म दिखायेंगे। दूरी को देखते हुए किसी-किसी बस में खाने और नाश्ते का भी बंदोबस्त किया जा रहा था। किसी-किसी बस में खाने-पीने का कोई बंदोबस्त नहीं था। फिर बहुत-से लोग खुद ही बस, ट्रक भाड़ पर लेकर आ रहे थे।

फलस्वरूप, इस आख़िरी दिन के कार्यक्रम में मयनागुडी शहर पूरा जाम हो सकता था। इतना छोटा-सा शहर है, सड़कें भी काफ़ी सँकरी हैं। अगर एक बार कोई गाड़ी रुक जाएगी तो फिर उसे निकाल पाना असभव था। उसी के चलते पुलिस पर पूरी तरह से निर्भर करना पड़ रहा था। अनुमति तो ले ही ली गयी थी। पुलिस विभिन्न स्थानों पर मास पार्किंग और ट्रक पार्किंग की व्यवस्था करेगी। उस मैदान में जाने के लिये रास्ता बनाने की जिम्मेवारी कंपनी पर सौंपी गयी थी। आसाम से आनेवाली गाड़ियों को चौराहे के आगे ही पार्किंग करनी होगी। और बिहार और तिस्ता ब्रिज़ पार से आनेवाली गाड़ियाँ पश्चिम में पार्क करायी जायेंगी। मैदान काफ़ी बड़े-बड़े हैं, यही गनीमत थी। श्रीदेवी के नाच के लिये मयनागुड़ी जैसे छोटा-सा थाना शहर में सर्वभारतीय व्यवस्था बनाई जा रही थी। आसाम की गाड़ियों के साथ बिहार की गाड़ियों का आमना-सामना न हो,

डूयार्स के गाड़ियों के साथ तराई की गाड़ियाँ मिल न जायें—सब गाड़ियाँ का रुख श्रीदेवी के मंच की ओर था विभिन्न दिशाओं में।

159
संक्षेप में : एक आवश्यक जीवनी

वीरेन्द्रनाथ बसुनिया को थाना के बड़े बाबू का पत्र उस दिन शाम के पहले ही मिल गया। जिस तरह के लोगों ने आर्थिक दायित्व लेकर, एक कमेटी बनाकर इस सांस्कृनिक कार्यक्रम के लिये अनुमति चाही थी उन्हें जलपाइगुड़ी सर्किट हाउस में होनेवाली मीटिंग में उपस्थित रहने के लिये सांस्कृतिक कार्यक्रम के बतौर वीरेन बाबू (सभापति) को सूचित किया गया था। इस सांस्कृतिक कार्यक्रम के पंडाल में एक ही साथ 'निखिल बंग उत्तराखंड सम्मेलन' के नाम से जो सम्मेलन हो रहा है और जिस सम्मेलन के बारे में अबतक सरकार को कुछ सूचित नहीं किया गया था, उसके आयोजकों को भी साथ में लेते आने के निर्देश के साथ पत्र में यह भी सूचित किया गया था कि इस मीटिंग में माननीय पर्यटन मंत्री, शिल्प मंत्री और वनविभाग के राज्य-मंत्री भी उपस्थित होंगे।

वीरेन बाबू ने पत्र को दो-तीन बार पढ़कर फतुही की जेब में रख लिया और अपने गोभी के खेत में उतर गये। सर्दी के प्रारंभ में बाड़ी के सामने और पीछे पड़ी बड़ी-सी जमीन के टुकड़े का एक छोटे-से भाग में ही पालक, फूलगोभी, बंद गोभी, मटर साग की बागवानी करते हैं वीरेन बाबू। उनके पास कुछ मवेशी हैं—उनका चरवाहा ही बागवानी करता है। वही बागवानी की देख रेख भी करता है। वीरेन बाबू अलसुबह उठकर पौधों पर केले पेड़ के छिलके से बनी ढँकनी रख देते है—धूप से बचाने के लिये फिर साँझ को उन्हें खोल देते। इधर इतनी ठंड और ओस पड़ती है कि ये पौधे रात भर खुले रहने से ओस में भींगकर चमक उठते हैं। सुबह और शाम वीरेन बाबू का चरवाहा गाय-बैलों के पीछे व्यस्त रहता है। इसके अलावा तीनेक साल पहले वीरेन बाबू खुद अपने हाथों से यह खेती किया करते थे। पर तीन साल पहले जब छाती में कफ जम गया और ब्लड प्रेशर बढ़ गया तो जलपाईगुड़ी अस्पताल में उन्हें दस दिनों तक भर्ती होना पड़ा था। अस्पताल से वापस आने के बाद वीरेन बाबू फिर पहले की तरह खेती के काम पर वापस जा नहीं सके। शायद चाहा भी नहीं। उनके पास कुछ खेती लायक ज़मीन है। उससे साल भर फ़सल बच जाती है। चारों लड़कियों का ब्याह हो चुका है। बड़ा लड़का जलपाईगुड़ी कॉलेज से बी. ए. पास करके घर पर ही है। ज़मीन-जायदाद की देखभाल करता है। पोखर काटकर मछली-पालन में लगा है। उसकी एक ही लड़की है। छोटा लड़का कलकत्ते में वकालत पढ़ता है। अब

हालाँकि नार्थ बंगाल यूनिवर्सिटी में भी लॉ-फैकल्टी खुल गयी है। जलपाईगुड़ी में भी लॉ कॉलेज है। शाम को क्लास करके रात में मयनागुड़ी वापस आ जाते हैं बहुत से विद्यार्थी पर वीरेन बाबू ने चाहा था कि उनका लड़का अगर वकालत पढ़ना चाहता है तो कलकत्ता में ही रहकर पढ़े। उसी छोटे लड़के के लिये वीरेन बाबू इस काम को जकड़े बैठे थे। वरना शायद वकालत छोड़कर घर पर ही बैठे रहते। वकालत पर जितना जोर था उससे भी अधिक ज़ोर था अपने बनाये हुए इस सिरस्ते के ऊपर। वह मयनागुडी में बैठे-बैठे ही बराबर जलपाईगुड़ी कोर्ट में प्रैक्टिस करते आ रहे थे। पहले जलपाईगुड़ी में एक छोटा-सा मकान किराये पर लेकर रहा करते थे। पर तिस्ता ब्रिज हो जाने के बाद वहाँ का घर छोड़ दिया। वीरेन बाबू को वकालत का पेशा पसंद है। क़ानून का सूक्ष्मातिसूक्ष्म विचार-विश्लेषण उन्हें प्रिय है। आमतौर पर वकीलों मे यह गुण पाया नहीं जाता, कोई आवश्यकता भी नहीं पड़ती उन्हें। यहाँ तक कि जज-कोर्ट में सिर्फ़ दो-चार वकील ही इन सब लॉ-पाइंट को लेकर सर खपाते, माथापच्ची करते है। वकालत की भाषा भर जान लेने पर ही अधिकांश वकीलो का काम निकल जाता है। पर वीरेन बाबू सिर्फ़ जमानत करानेवाले वकील बनना नहीं चाहते। आजीविका के लिये वह सामान्यतया फौजदारी का मुक़दमा ही अधिक लिया करते। पर उन्होंने दीवानी मुक़दमा पर ही अपना दफ्तर क़ायम करना चाहा था। वहीं पर उन्हे जीवन में सबसे ज़्यादा बाधाओं का सामना कर पड़ा था राजवंशी लड़ तो सकते है, पर संपत्ति के मामले में उनपर भरोसा करनेवाला मुवक्किल कम ही देखने मे आते हैं। राजवंशी समाज के लोग भी उन्हें मुक़दमा देना पसंद नहीं करते थे। कम उम्र में ही उन्हें एक बड़ा मामला मिला था बक्काली के ग़ुलाम मुस्तफा की ओर से। गुलाम मुस्तफा एक मुसलमान राजवंशी था, बहुत बड़ा जोतदार जलपाईगुड़ी के नयापाड़ा में उसका बाङ्ला-घर था। बक्काली हाउस सभी वहाँ पहचानते थे। जलपाईगुड़ी के बड़े-बडे वकील उसका मुक़दमा लड़ते थे। उसी ने एक दिन उन्हें अपने बक्काली के घर में बुलाकर एक मामले का दायित्व लेने को कहा। किसी जूनियर के हिसाब से नहीं, पूरे-के-पूरे केस की ज़िम्मेदारी उनपर ठोंक दिया था। पर वीरेन बाबू चाहते तो किसी सीनियर से सलाह-मशविरा ले सकते थे या फिर सीनियर से ड्राफ़्ट करवा सकते थे। वह उनकी मर्जी की बात थी। पर 'मुक़दमा' में हार नहीं चलेगी। साला हाईकोर्ट में जाना होगा तो भी कुछ परवाह नहीं, पर जीतना ही होगा, चाहे जैसे भी हो। गुलाम मुस्तफ़ा साहब ने हँसकर कहा था। वह चेकदार लुंगी और सफेद लकझक बनियान पहने था। उसने लकड़ी के हत्थावाले दीवार से सटे—लंबे बेंच के किनारे से थूकते हुए हो-हो कर हँसकर कहा था—"हारने का ही है तो हमरे सज्जन मानुष भाटियार घर के एक ठो वकील हैं न—नलिनी घोष। मकबूल हुसैन, खगेन महलानवीस—पर ई

मुक़दमा को हमरे राजवंशी वकील से जीतना है हमको। जीतोगे क्यों नहीं भाई, जीत लो।"

मुक़दमा कोई ख़ास नहीं था—जीतनेवाला ही केस था। तब का क़ानून-क़ायदा भी काफ़ी सीधा-सादा था पर गुलाम ने मुस्तफा वीरेन बसुनिया को वकील रखा था—इसी से ही उसका पासा पलट गया। सभी की जुबान पर उसका नाम चढ़ गया। मुस्तफ़ा साहब ने वीरेन बाबू से कहा था, "हमरे घर के बाहरे मानूष मामले काहे न दे है, कहिए तो ?" फिर खुद ही जवाब देते हुए कहा, "ये आईन-क़ानून, धन-दोलत, कोर्ट-कचहरी सब भटिया भद्रलोगों का बनाया गया है, अइसा सबही सोचते हैं—ई सब मामला, मुक़दमा, भटियार लोग ही ठीक तरह से समझ पाते हैं। तुमर राजवंशीय लोग क्या हकीम साहब के सामने अईसे अंगरेजी में बातचीत कर सकते हई ?" मुस्तफा साहब काफ़ी दिनो तक पाकिस्तान नहीं गये थे, शायद वह नहीं जाने का ही तय कर चुके थे, पर सन् सत्तावन के एक छोटे से दंगे के बाद अचानक सब सपत्ति बेचकर चले गये। मुस्तफ़ा साहब की दौलत पर ही वीरेन बाबू अपना दफ़्तर खड़ा कर सकते हैं। उनका खयाल था कि मुस्तफ़ा साहब दंगा के चलते इंडिया छोडकर पाकिस्तान नहीं गये। अचानक उनकी समझ में आ गया था कि इंडिया में जोतदारी और जमींदारी का समय समाप्त होता जा रहा है। वीरेन बाबू ने यह बात कभी किसी से भी कही नही। पर मन ही मन वह अब भी विश्वास कर रहे थे कि मुस्तफ़ा साहब तो पहले एक जोतदार थे, फिर एक राजवंशी। उस पर एक मुसलमान वर्ना उस लीग की अमलदारी में गुलाम मुस्तफा जैसा एक मुसलमान कम-से-कम डिस्ट्रीक्ट बोर्ड का चेयरमैन तो हो सकता था, पर लीग में राजनीति किये बगैर मुस्तफ़ा साहब चले गये। एक बार वीरेन बाबू से कहा भी था, "तुमने बाहरवाले घर को तो 'क्षत्रिय समिति' बना लिया है, अच्छा है, पर देखिये तो तुम्हरे महाभारत में कोई मुसलमान क्षत्रिय है कि नहीं ? अगर नहीं है तो हम फिर कहाँ जायें—हम ठहरे मुसलमान, जायें कहाँ, कहिये।"

तो क्या वीरेन बाबू भीतर ही भीतर एक राजवंशी थे ? अगर न होते तो उत्तराखंड दल ने जिस समय उन्हें सभापति बनाकर इस सम्मेलन की व्यवस्था क्या तो फिर वह राजी हो कैसे गये ? फिर 'नागरिक कमेटी' के भी तो वे अध्यक्ष थे—जो इस सांस्कृतिक कार्यक्रम का आयोजन कर रहा था। वर्ना वह अब अपने दफ्तर को अपने छोटे लड़के के लिये बचाये रखने के लिये नियमित कोर्ट में जाना-आना कर रहे थे क्यों ? जबकि यह बात उन्हें पता ही नहीं थी कि उनका लड़का मयनागुड़ी या जलपाईगुड़ी में बैठकर प्रैक्टिस करेगा या शायद कलकत्ता में ही करेगा ? बैठे, जैसे वीरेन बाबू चाहते हैं, बग़ैर कुछ जाने ही ऐसा चाहते हैं। आजकल किसी भी मामले का निपटारा डिस्ट्रिक्ट कोर्ट में नहीं होता, सभी

मामले हाईकोर्ट तक जाते हैं। अगर वैसा ही होता रहा, तो एक राजवंशी वकील, अपने इस दफ़्तर के मामले के ज़रिये अपनी प्रैक्टिस शुरू कर सकता है—अपने उस भावी एडवोकेट लड़के के लिये वीरेन बाबू ने दफ़्तर को अगोरे रखा था।

वीरेन बाबू गोभी पौधों के ऊपर केलों के पेड़ की छाल का ढँकना ढँक चुके थे। इसमें उनको कुछ समय लग गया था। खड़ा होकर झुककर यह काम करते तो शायद जल्दी ही ख़त्म हो जाता, पर ऐसा करने में उनकी कमर दुखती है।

इसलिये वे सुस्त क़दमों से धीरे-धीरे चलते हैं। इस पर भी उन्हें दर्द होता है—घुटनों में। पर एक-एक क़तार ढँकने के बाद वह ज़रा खड़ा हो जाते हैं पैर सीधा करके, तब दर्द मे कुछ आराम मिलता है।

वीरेन बाबू अपनी ज़मीन के छोटे-छोटे दो टुकड़ों में सब्ज़ियाँ लगाते हैं। बाक़ी की करीब डेढ़ बीघा ज़मीन तो पड़ी ही रहती है गोहाल, गोहाल घर इन सबके साथ। आजकल इस तरफ ज़रूर एक नया व्यापार पनप रहा है। इस तरह की बड़ी ज़मीन घर के साथ लगी हुई जिनके पास है, उनके पास सब्जी की खेती करनेवाले माली, किसान आते हैं और सालभर के लिये ज़मीन लेना चाहते हैं। तमाम ख़र्च माली का। जो सब्ज़ियाँ उगाई जायेंगी उसका एक हिस्सा ज़मीन मालिक का। कितनी ज़मीन मालिक की हो और कितनी माली की, स्थायी तौर पर वह अबतक तय नहीं हो पाया है। हर आदमी का ज़मीन लगान देने में तरीका अलग-अलग है। वह किसान और मालिक की मर्जी पर निर्भर करता है। कोई-कोई आधी भागीदारी में देता है—इस हालत में खेती पर जो ख़र्च आता है उसका हिस्सा भी बारह आने और चार आने का रहता है। इस प्रस्ताव के साथ दो-तीन साल से बहुत से माली-किसान भी आ रहे हैं। पर वीरेन बाबू राज़ी नहीं हो रहे। वे अपनी वकालती बुद्धि के चलते ही राजी नहीं हो पा रहे क्योंकि एक ही ज़मीन पर लगातार अगर दो-तीन साल एक ही किसान तरकारी की फ़सल उगाता है तो एक सम्पर्क बन जाता है, जिसे फिर पूरी तरह अस्वीकार नहीं किया जा सकता। फिर उसकी कोई आवश्यकता भी नहीं है। पर जिनकी आवश्यकता है, जो पहले सम्पन्न परिवार से थे, और अब विभिन्न कारणों से उनकी सम्पन्नता नहीं रही। पर अब भी वे घर पर दो-तीन बीघा के मालिक हैं। उनके लिये तो यह आमदनी का एक ज़रिया बन गया है। वीरेन बाबू आँखों के सामने ही चीज़ों को देख रहे थे। पहली बात—दो-चार सालों में शहर में इस तरह की ज़मीन पर सब्जी उगानेवाले किसानों का एक तरह से अधिकार क़ायम हो गया है। कम-से-कम आश्विन से माघ के अंत तक। दूसरी बात, इन किसानों को डुयार्स, जलपाईगुड़ी, सिलीगुड़ी के कच्चे सब्जी के बड़े-बड़े आदमी फाईनेंस कर रहे हैं। वीरेन बाबू के हिसाब के मुताबिक और एक-दो सालों में यहाँ आलू की खेती

होगी। आलू को अधिक दिनों तक रखा जा सकता है। कोल्ड स्टोरेज बनेंगे। पुराने घर के अलावा किसी का और दो-तीन बीघा रहने के लिये ज़मीन रहेगी। उन सब घरों में से करीब चौदह-पंद्रह आना भाग तो राजवंशी लोगों का है। मयनागुड़ी जैसे शहर में अगर इन रिहायशी ज़मीनों पर खेती का दादन चलता रहा तो फिर दस वर्षों में रिहायशी ज़मीन का यह भाग बेच देना होगा। आगे, जलपाईगुड़ी शहर में जितने राजवंशी परिवार रहते थे, अब और उतने नहीं रहे। मयनागुड़ी में रिहायशी ज़मीन के राजवंशी मालिकाना का अनुपात द्रुत गति से कम होता जा रहा है। जलपाईगुड़ी शहर में राजवंशियों का घर कम होते जाने का सबसे बड़ा कारण है तिस्ता ब्रिज। तिस्ता ब्रिज बन जाने से मिनी बस-टैक्सियों की आ जानेवाली बाढ़। आगे, जलपाईगुड़ी शहर में जाने के लिये तिस्ता को नाव से पारकर, चलकर, तैरकर, टैक्सी में ठेलपेल कर बैठकर जाना होता था। जबकि स्कूल, कॉलेज, अस्पताल, ऑफिस, कचहरी सभी कुछ जलपाईगुड़ी में होता था। तभी स्कूल कहने से यज्ञेश्वर राय का बाङ्ला भाषी स्कूल, दो मुहानी का रेलवे स्कूल और मयनागुड़ी के स्कूल को समझा जाता था। और अब फालाकाटा में एक कॉलेज और दूसरा धूपगुड़ी में है। स्कूल की तो बात ही नहीं। कॉमर्स कॉलेज और लॉ कॉलेज के छात्र रात आठ बजे शहर में क्लास ख़त्म करके डुयार्स में आराम से लौट आते हैं। फिर जिन्होंने यह मोटरसाइकिल ख़रीदी है, उनकी तो बात ही कुछ और है। जलपाईगुड़ी में लड़के-लड़कियों की पढ़ाई-लिखायी के लिये एक अलग कमरा रखना तो काफ़ी ख़र्चीली बात है। वह ख़र्च फिर कोई क्यों करने लगा ? वीरेन बाबू का भी पहले शहर में घर था, अब नहीं रहा। इसी से जलपाईगुड़ी शहर में राजवंशी परिवारों की आबादी कम होने का कारण समझा जा सकता है।

पर ऐसा कोई कारण तो मयनागुड़ी में नहीं है। एक तरह का जंक्शन-गंज जैसी जगह है मयनागुड़ी में, जहाँ से सिलीगुड़ी होकर पहाड़, बिहार, धुबड़ी होकर आसाम तक कुछ घंटों में मालपत्थर भेजा जा सकता है। वहाँ पुराने राजवंशी परिवारवर्ग दो-चार बीघा ज़मीन का अधिकांश भाग खुला रखकर दो-एक छोटे-छोटे टीन के घरों में रहे ये सब्जीवाले आढ़ती चाहेंगे कैसे ? सिर्फ़ नगद रुपयों का स्वाद चखकर तो ये इन ज़मीनों को हथिया लेंगे। अभी तक तो लिया नहीं, पर जलपाईगुड़ी के डिस्ट्रिक्ट कोर्ट में पिछले पैंतीस सालों की प्रैक्टिस के अनुभव से वीरेन बाबू को समझ में आ गया था कि मयनागुड़ी, धूपगुड़ी, फाटाकाटा जैसी जगहों में भू-संपदा मालिकाना का रद्दोबदल आसन्न है। सात-आठ महीने की पोखती के जैसा आसन्न है। डुयार्स में राजवंशी लोग भी अल्पसंख्यक हो जायेंगे—सम्पत्ति के मालिकाने को लेकर। इसे रोकने का कोई क़ानूनी रास्ता भी तो नहीं रहा। इसका एक ही उपाय है, तमाम राजवंशियों को संगठित करके

आसाम जैसा कोई आन्दोलन। अगर वैसा हो जाता है तो गोलमाल के भय से शायद अब कोई ज़मीन ख़रीदने का साहस न कर पायेगा। पर इससे भी तो स्थायी समाधान हो नहीं सकता। स्थायी समाधान के लिये आसाम जैसे 'विदेशी भगाओ' आंदोलन राजवंशियों की कोई ज़मीन या संपत्ति कोई जलपाईगुड़ी और डुयार्स में प्रयोग करना होगा। इसका मतलब राजवंशी क्षेत्र की कुछ आज़ादी का दावा करना। और उसका नाम कम-से-कम दिया गया है उत्तराखंड। उस नाम को बाद में बदला भी जा सकता है। पर राजवंशी या उत्तर बंग के आदिवासियों की स्वार्थ रक्षा के लिये और कोई विकल्प है ? वर्ना इसे मान लेना पड़ेगा कि—देश भर में जो कुछ हो रहा है, यहाँ पर भी वही किया जाना चाहिये। फिर वहाँ अलग से राजवंशियों का सवाल उठाने का क्या मतलब है ? वीरेन बाबू की सब्जी की खेती का काम हो गया था। वे वहाँ से कुँए के पास गये—पानी पहले से ही भरा था। एक लोटे में पानी लेकर मुँह में उन्होंने छींटा मारा, फिर थोड़ा-सा पानी पीकर, थोड़ा पैरों पर डाला। बारह सीढ़ियाँ चढ़कर उन्हें बरामदे में जाना होता है। पहले के घर सब इसी तरह डेढ़ तल्ले की तरह ऊँचे होते थे। वीरेन बाबू ने सुना था कि बाघ की डर से ही ऊँचा घर बनाया जाता था। लकड़ी का घर, रात को सीढ़ी उठा ली जाती है। पर उनके ही समय में लकड़ी के घर के बदले ईट के घर बनाये जाने लगे, पर फिर भी ऊँचाई में कोई कमी नहीं हुई एक तरह के घर में रहने का अभ्यास हो गया था। इस तरह के बड़े घर में रहने का अभ्यास वीरेन बाबू को हो चुका था।

बरामदे में टँगे तार पर गमछा था। उन्होंने उससे मुँह और पैर पोंछा और घर में घुस गये। बाग का काम करते समय धोती थोड़ा ऊपर उठा लिया था। अब घर में आकर उसे नीचे कर ली। फिर फतुई के ऊपर गरम कपड़े की पंजाबी और तूष पहन लिया, पंप-शू पैरों में डाला फिर बाहर निकलकर थोड़ा ऊँचे गले से पत्नी से बोले, "मैं उत्तराखंड जा रहा हूँ।" सम्मेलन और सांस्कृतिक कार्यक्रम होनेवाली जगह अब इसी नाम से जानी जाती है।

अचानक सरकारी पत्र आकर उनके वकालती जीवन की स्मृति, उनके छोटे लड़के का कलकत्ता हाईकोर्ट में प्रैक्टिस करने का सपना और जलपाईगुड़ी डुयार्स में राजवंशियों की संपदा का कम होना धारावाहिक रूप से वीरेन बाबू को याद आ गया। सिर्फ इतना ही नहीं, वह उत्तराखंड और श्रीदेवी कार्यक्रम के आयोजक बने कैसे—इस स्मृति के साथ प्रयोजन के तहत वीरेन बाबू के मन में नहीं आयी। वीरेन बाबू की अपनी कहानी, राजवंशी होकर भी वकील के रूप में प्रतिष्ठित होने की कहानी ही तो एक अलग वृत्तांत का विषय हो सकता था। उनके जैसा आदमी उत्तराखंड जैसे आंदोलन में कैसे कूद पड़ा, इसका आभास देने के लिये ही वीरेन बाबू के सम्पर्क में ये सब बातें नहीं उठीं। पर वीरेन बाबू जैसा वकील

और वयस्क आदमी, जिन्होंने अपना पूरा का पूरा कर्म जीवन ज़िला शहर के केन्द्र, ज़िला की राजनीति और प्रशासन के बीच बिताया–उसको दारोगा का यह पत्र क्यों और कैसे लिखा गया–यह पत्र पाते ही पानी की तरह साफ हो गया। उन्होंने चाहा था सम्मेलन और अनुष्ठान के बीच एक मतभेद उठाकर सम्मेलन को बंद करवा दें और सांस्कृतिक कार्यक्रम को चलने दें। वामफ्रंट की सरकार और सरकारी पार्टियों के लिये बंबई की कोई सिनेमावाली श्रीदेवी का नाच अधिक निरापद था। पर राजवंशी लोगों का अलग बैठकर कुछ बातचीत करना कहीं अधिक ख़तरनाक था। 'उग्रपंथी' और 'अलगाववादी' थे। वह काफ़ी कम बातें करनेवाले हैं, इसी से पत्र पाकर उसे फतुई की जेब में डाल, फूलगोभी के पौधों पर केले की छाल ढँकने के काम में लग गये थे। इस तरह पत्र की उपेक्षा और अपमान करके, अपने और अपनों के बहुत ही पुरानी उपेक्षा और अपमान का बदला लिया। उनके जीवन की ये ख़बरें उन सब उपेक्षाओं, अपमानों के लिये ही प्रासंगिक था।

160

उत्तराखंड फंक्शन की आलोचना (एक)

वीरेन बाबू को घर से सम्मेलन और कार्यक्रम की जगह तक जाने के लिये काफ़ी दूर तक चलना पड़ता है। वे चलकर ही जाते हैं, रिक्शा नहीं लेते। पर पैदल चलने के लिये यह रास्ता उतना अच्छा नहीं रहा। हर समय ट्रक, बसें और मिनी बसों की भरमार रहती है। फिर रास्ता भी छोटा है। दुकान, बाज़ारों के लग जाने से और भी सँकरा हो गया है। किसी को पास देने तक की भी कोई जगह नहीं रहती। ब्लाक ऑफ़िस के निकट पंडाल बन रहा है। अभी पूरे ज़ोर-शोर से काम चल रहा है। सभी से वहाँ भेंट हो सकती है। फिर भी जाते समय चौराहे पर मरणाचाँद की दुकान में एक बार झाँक लिया था–कभी-कभी वे शाम को यहाँ बैठते हैं। पर आज वहाँ कोई नहीं था।

पंडाल पर नकुल से भेंट हो गयी। वह वहाँ मिलेगा यह उम्मीद की जा रही थी। नकुल को ख़बर बता देने पर वह दौड़धूप करके सबको इकट्ठा कर लेगा।

पंजाबी के नीचे फतुई, फतुई के अंदर जेब। उस ज़ेब से पत्र निकालने में वीरेन बाबू को कुछ समय लगा। पर वीरेन बाबू को हर काम में थोड़ा समय देना सबकी आदत बन चुकी है।

वीरेन बाबू को देखकर ''आओ काका'' कहकर नकुल ने सिगरेट फेंक कर पाँव के नीचे मसल दी और गिरिजा ने एक मुड़ी हुई कुर्सी खोलकर आगे कर

दिया। पत्र निकाल कर नकुल की ओर बढ़ाते-बढाते वीरेन बाबू कुर्सी पर बैठ गये। नकुल पत्र लिये बिना ही पूछ बैठा, "काका, क्या ईस उमर में मुझे इस्कूल भेजने का इरादा है ? जो किलास से खिड़की से कूद करके भागा था, फिर दरवाज़े से आके माँ सरसती के सामने कब्बी खड़ा नाहीं हुआ। टेंडर नोटिश तक पढ़ नहीं पाता, आऊर तुम मुझे ई चिट्ठी दिखा रहे हो ? माँ सरसती सरमा न जायेंगी ? इसी से सरसती पूजा के दिन नहीं खाता, उपास रखता हूँ, पर अंजली नहीं देता।"

वीरेन बाबू ने पत्र को पकड़े-पकड़े ही हाथ को गोद में रख लिया और नकुल के पेट की ओर ताक कर बोले, "जलपाईगुड़ी सर्किट हाउस में मीटिंग है, नार्थ बंगाल के मंत्री लोग होंगे, वहाँ तुम तेरह लोगों को रहना है और उत्तराखंड के लोगों को भी साथ में लेना है।"

"यानी ? कब ?" नकुल जैसे आकाश से गिरा हो, "वह हंगामा क्या उस दिन थाना की मीटिंग में नहीं मिटा ? उसके बाद तो ऊ लोग भी कुछ नहीं बोले काका ? अब तो चार ही दिन के बाद फंक्शन है—अभी मीटिंग ? मंत्री लोग आ रहे हैं ?" नकुल रुक गया। दो क़दम बढ़कर वापस आ गया फिर पूछा, "कब है ?"

"परसों।" वीरेन बाबू ने जवाब देने के बावजूद लिफ़ाफ़े से पत्र निकाल कर देख लिया फिर उसे मोड़कर लिफ़ाफ़े में डाल दिया।

"परसों ? यानी बुधवार को ? और शनिवार को प्रारंभ ? इन सबका मतलब क्या है ? क्या चाहते हैं ये लोंग ?"

वीरेन बाबू ने हाथ उठा दिया—नकुल को रोकने की मुद्रा में। नकुल के रुक जाने के बाद फिर से उसके पेट की ओर देखकर वीरेन बाबू ने कहा, "अरे गरम क्यूँ हो रहा है ? सरकार का मंशा साफ है—कि उत्तराखंड सम्मेलन होने नहीं देगी। उस पर भी पहले का जो सब प्रोग्राम है, उस पर सरकार को आपत्ति नहीं, पर सरकार आखिरी दिन का जल्पेश्वर अभियान और तिस्ता बूढ़ी के पूजा को किसी तरह से रोकना चाहती है। इसलिये उद्‌घाटन को लेकर सोचो मत तुम लोग।" लकड़ी मिस्त्री के हथौड़े की आवाज़ सुनकर रुक गये वीरेन बाबू। नकुल उधर देखकर चिल्लाकर बोला, "अरे अरे भाई, रोक लो अपना हथौड़ा।" हथौड़े की आवाज़ बंद हो जाने पर वीरेन बाबू ने कहा, "पहले फंक्शन के और कांफ्रेंस के जो रीयल लीडर हैं, वे लोग बैठें। हो सके तो आज रात को ही। फिर वहाँ भी बैठ सकते हैं। कम-से-कम जितने लोग एवलेबल हैं यहाँ। फिर उसके बाद तुमरे तेरह आदमी और उत्तराखंड के एक्जीक्यूटिव कमेटी का एक ज्वाइंट मीटिंग करना होगा—कल दोपहर को ही। यहाँ फार्मल प्रस्ताव लेने होंगे। वर्ना जो लोग इस मीटिंग में जायेंगे वे कहेंगे क्या ?"

नकुल अचानक हाथ जोड़कर घुटने टेककर बैठ गया, "काका, मुझे तो तुम छोड़ दो। ई मीटिंग-वीटिंग, प्रस्ताव-वस्ताव सुनने से मेरा सिर घूमता है। मैं तो चला। इस बीच जो पैसे-वेसे दिये हैं ऊ भी वापस नहीं चाहता। हमको एक टेंडर मिल जाये तो सरकार से उसका दस गुना वसूल कर लूँगा। पर ई हमसे नहीं हो सकता काका। आया था थोड़ा मौज-मजलिस करने आउर इहाँ तो साला मीटिंग में फँसा जा रहा हूँ।"

वीरेन बाबू चुप बैठे थे। पंडाल के दूसरी जगह पर और दो-चार आदमी भी थे, वे हथौड़े की आवाज़ के बंद हो जाने पर नकुल का चिल्लाना सुनकर इधर ही बढ़ आये थे। नवीन दूर से ही बोला, "क्या हुआ नकुलदा ? क्या आप भी नौटंकी खोलकर बइठ गिया ?"

अबकी बार नकुल खड़ा होकर उनकी तरफ़ देखकर बोला, "अरे भाई, तुमलोग तो हो इहाँ—उत्तराखंड, श्रीदेवी, जो मन करे समझ लो, हमको तो छोड़ दो भाई, हमरा तो साथ मिट चुका है।"

तब तक वे इनके क़रीब पहुँच चुके थे। क्या हुआ है पूछने की और कोई आवश्यकता ही न थी। परंतु वीरेन बाबू के कुछ न कहने पर उन्हें ही कहना पड़ा, "परसों दिन जलपाईगुड़ी सर्किट हाउस में मंत्री लोगों ने मीटिंग बुलायी है। उत्तराखंड और इस फंक्शन के बारे में बातें करनी होंगी। सबको जाना होगा।"

नवीन के पास ही तिलक था। उसने पूछा, "क्या बातें होंगी ?"

"होगा और क्या ? गवर्मेंट नहीं चाहती कि उत्तराखंड सम्मेलन हो, पर वह श्रीदेवी का होने में कुछ अड़चन नहीं है।"

वीरेन बाबू ने कुछ कहने के लिये सिर उठाया, पर उनसे पहले ही तिलक बोला उठा, "ई तो अच्छा ही है। कल अख़बारों में एक विज्ञापन ठोंक दो कि सरकारी निर्देश पर श्रीदेवी का कार्यक्रम स्थागित कर दिया गया। हमें कोई कारण बताया नहीं गया है। जो कारण जानना चाहें ऊ मंत्रियों के पास जा सकते हैं। ऐसा होने पर लोग मंत्रियों को श्रीदेवी का नाच नचवा कर छोड़ेंगे—एकदम से मिस्टर इंडिया का नाच।" उसके बात से जो सामूहिक हँसी उठी उससे भी तिलक का गुस्सा कम नहीं हुआ। पर उसकी बातों को सुनते ही वीरेन बाबू तिलक के चेहरे की ओर ताकने लगे। जैसे कि वह जाँच रहे हों कि इस तरह के एक विकल्प में सच्चाई है।

फिर वीरेन बाबू ने हाथ उठाया, सभी उनके पास आ गये। वीरेन बाबू सीधा ताकते हुए अपनी धीमी आवाज़ में कहते ही जा रहे थे, "सुनो, परसों सुबह मीटिंग है। मंत्री लोग भी होंगे। मीटिंग में वे ज़रूर कोई प्रस्ताव लेकर आयेंगे। तुम्हें उन प्रस्तावों के जवाब में कुछ कहना है, हाँ या नहीं। या फिर निर्दिष्ट प्रस्ताव को ही मान लेना है—यह तुमको खुद मीटिंग करके लिखित रूप

से प्रस्ताव पारित करना होगा कि इस पंडाल में उत्तराखंड सम्मेलन करने के लिये अगर सरकार अड़ंगा लगाये तो श्रीदेवी का कार्यक्रम यानी कि कल्चरल फंक्शन होगा या नहीं होगा। एक-एक के आदमी एक-एक मत देने से काम नहीं चलेगा। इस मीटिंग में भी एक-एक आदमी का एक-एक क़िस्म की बात करने से नहीं होगा। एक-एक लिस्ट बनाकर, जो कर सकते हो ख़बर कर दो।"

नकुल ने नवीन से कहा, "ऐ, लिस्ट बनाओ, नवीन।"

नवीन ने वीरेन बाबू से कहा, "काका, मैं अगर मीटिंग में न जाऊँ तो कुछ होगा ?"

वीरेन बाबू मुँह उठाकर नवीन को देखने लगे—जैसे कि वे जाँच लेना चाहते हों कि इस तरह के एक विकल्प में वास्तविकता कितनी है।

नवीन कहता जा रहा था, "क्या करें ? पुलिस आके उत्तराखंड को बाधा देगी आउर श्रीदेवी को छोड़ दे—वह कैसे हो सकता है ? आउर अगर गिरफ्तार करती है तो कर ले। हम गिरफ़्तारी के लिये तैयार हैं ?"

वीरेन बाबू अचानक उठ खड़े हुए, "तो फिर तुम लोग लिस्ट बनाकर ख़बर कर दो। आउर उन्हें भी मीटिंग में आने के लिये कह दो।" उन्होंने नकुल से ही कहा था यह, "तुम रात में घर पर आ जाना। क्या हुआ बताना।" नकुल उनके क़रीब चल रहा था, बाक़ी लोग उनके पीछे-पीछे चल रहे थे। वीरेन बाबू अचानक खड़ा होकर नकुल से बोले, "तुम जो तेरह लोग पार्टनर हो, तुममें से किसी को भी यह कहना ठीक नहीं होगा। पर नकुल उत्तराखड के आख़िरी दिन जो जल्पेश्वर अभियान है, उसे 'आऊर कही ले जाओ।"

नकुल चुप रहा, जैसे कि वह वीरेन बाबू को इशारे से ही जतला देना चाहता था कि उस तरह से कुछ लोग सोचने भी लगे हैं। फिर वह चुप्पी को तोड़कर बोला, "वह पहले से ही हो गिया होता तो एक बोझ हल्का हो जाता। थाना वाले मीटिंग में होते तो भी बात थी। पर अब ? अब अगर वइसा किया जाता है तो लगेगा कि सरकार जबरन उत्तराखंड को दंड दे रही है आऊर हम उसके लिये अवसर जुटा दिये हैं। सब तो हर जगह काम कर रहे हैं एक साथ, कोउन उत्तराखंड है आउर कोउन श्रीदेवी है। ई कोउन तय करेगा ? फिर ई हो भी कइसे सकता है काका, अब ई हो नहीं सकता। ऊ समय अब बीत चुका है।"

161

उत्तराखंड फंक्शन की आलोचना (दो)

रात साढ़े नौ बजे नकुल, जगदीश, सुरेन, नवीन, तिलक, तरणी बाबू, वीरेन बाबू के घर पहुँच गये।

वीरेन बाबू के बीच का घर ही उनका कचहरी घर था। उस घर में वकील के कागज़-किताबों से भरे टेबिल के सामने चार-पाँच लकड़ी की कुर्सियाँ और एक तरफ लकड़ी की एक लंबी बेंच पड़ी थी। बेंच दीवार से सटी थी और हत्थेदार थी। वीरेन बाबू बत्ती जलाकर कुछ पढ़ रहे थे। इनके घर में आने पर भी वह सर उठाकर उनकी तरफ़ नहीं देखे। पर कुर्सी और बेंच पर इनके बैठ जाने के बाद किताब के अंदर एक कागज़ का निशान लग लिया, सरकाकर उन्होंने सबको एक बाद नज़र उठाकर देख लिया।

नकुल बोला, "बेणी बाबू बीमार हैं, इसी से नहीं आ पाये। कल पैंडल की मीटिंग में ज़रूर आयेंगे।"

वीरेन बाबू कुछ नहीं बोले। सामने ताकते ही रहे। "आपको अधिक समय तक बिठाया नहीं रखा जा सकता। हमलोग आमतौर पर चर्चा करते ही आये हैं। हमलोगों ने तय कर लिया है कि उत्तराखंड सम्मेलन आउर हमरे कार्यक्रम को अगर अलग करने की कोई कोशिश की गयी तो हम उसको स्वीकार नहीं करेंगे।"

यह सुनकर वीरेन बाबू ने फिर से सबकी ओर एक बार देखा कि आने वालों में सांस्कृतिक अनुष्ठान के प्रधान आयोजकों में से कितने लोग आये हैं। सम्मेलन और कार्यक्रम को अलग करने में अनुष्ठान के लिये जिन लोगों ने रुपया लगाया है उनका समर्थन हो सकता है, पर उत्तराखंडी किसी का समर्थन कर ही नहीं सकता। वीरेन बाबू आश्वस्त हो गये कि जो लोग आये हैं कार्यक्रम के साथ ही उनका संबंध अधिक है।

"सुस्थिर दिख नहीं रहा ?" वीरेन बाबू ने पूछा।

"वह तो सम्मेलन के काम से सब जगह चक्कर काट रहा है। रात में ही लौट पायेगा। कल की मीटिंग में रहेगा।" नकुल ने बताया।

रामकिशोर का मयनागुड़ी बाज़ार में बिज़नेस है। वह बोला, "सर मैं एक बात सोच रहा था। इस सरकार का मीटिंग में अगर हमारे सब लोग चले गये तो काम कैसे होगा ? फिर हमलोग ठहरे व्यापारी आदमी। इस तरह की पार्टी-वार्टी की मीटिंग में जाने से कोई खुश होगा तो कोई नाराज़ होगा हमसे तो ऐसे चलना मुश्किल है सर। आप तो मुझे बस छोड़ ही दें सर।"

टेबिल की ओर देखते हुए वीरेन बाबू सब बातें सुन रहे थे। अंतिम वाक्य सुनने के बाद उन्होंने आँख उठाकर रामकिशोर की ओर देखा, "तुम तो इन तेरह पार्टनरों में नहीं हो ?"

"नहीं सर, वो तो नहीं हूँ, लेकिन कमेटी में हूँ।"

"मतलब, तुम कमेटी छोड़ देना चाहते हो ?"

"नहीं, नहीं सर, कमेटी में मैं रहूँगा, हूँ भी।" रामकिशोर ने फ़ौरन जवाब

दिया। उसे रोक कर तरणी बाबू बोले, "हम क्या कह रहे थे कि वीरेन दा, हम जैसे हैं, वैसे ही रहेंगे। आप लोग जो ठीक करेंगे हम वह मान लेंगे। आप लोग जो मीटिंग-वीटिंग बुलायेंगे, उसमें भी रहेंगे। जैसे थे वैसे ही रहेंगे। पर इस सरकारी मीटिंग में हम जाना नहीं चाहते। हम तो वहाँ बात भी नहीं कर पायेंगे। बेकार में भीड़ बढ़ेगी और इन सब पार्टी के लोग हम पर नाराज़ होंगे। हमें तो व्यापार करना ही होगा। व्यापार करके खाना पड़ता है। व्यापार न करें तो खायें क्या ?"

मयनागुड़ी हाट में तरणी बाबू की साइकिल की एक बड़ी-सी दुकान है और तरह-तरह की चीज़ों की एजेंसी भी है। तरणी बाबू की बात सुनकर वीरेन बाबू ने रघुनाथ की ओर देखा। उनकी भी दुकान है, उसका भी ज़रूर यही मत होगा।

"काका, हम लोग बात करके ई त समझ गये हैं कि सरकार के प्रस्ताव में कोई राज़ी नहीं होगा आऊर किसी को डर भी नहीं रहेगा। हमारे तेरह पार्टनरों में से पाँच पार्टनरों को आप किसी भी समय पा नहीं सकते। ऊ लोग रुपया देकर खलास आऊर रुपया पाकर ही खुश। आऊर इन पाँचों में से कोई-कोई गड़बड़ी के भय से कट भी सकते हैं। पर उन दो-एक लोगों के चलते तो हम वापस जा नहीं सकते। इसी से आप ही भले तय कर लें कि किस-किसको लेकर मीटिंग में जाना है।"

"पर तुम तेरह लोगों को ही मीटिंग में बुलाया गया है। मुझे बतौर सेक्रेटरी बुलाया गया है। इन तेरह लोगों को ख़बर देके चिट्ठी पर उन सबका दस्तख़त लेने को कहा गिया है। पर ई तेरह लोगों को कम-से-कम एक बार मीटिंग में चेहरा दिखाना ही होगा। अब वह बात तुम्हें ही देखना है। आऊर जो लोग ठीक तरह से बातचीत कर सकें उत्तराखंड की ओर से सिर्फ उन्हीं को ही भेजो।" वीरेन बाबू ने कहा।

मैं भी तो वही कह रहा था काका।" जगदीश ने कहा, "तो फिर आप हैं ही। पर आप अकेले-अकेले कितना बात करेंगे। साला दो-एक जूनियर वकीलों को अगर ले लिया जाये तो बात बन जाये। जूनियर लोग चिल्ला-विल्ला भी सकेंगे। बाक़ी जो ख़ास बात है वह आप कह देंगे।"

नकुल हँस पड़ा, "फिर बोला, "अरे काका को तो मुँह उठाना होगा, हाथ उठाना होगा, गला साफ करना होगा, तब जाकर कहीं कुछ कहेंगे—और तब तक तो सरकारी पार्टी के लोग ज़िंदाबाद-ज़िंदाबाद कर देंगे।" सभी इस बात पर हँस पड़े। वीरेन बाबू भी थोड़ा मुस्कराकर बोले, "तुमने क्या किसी के बारे में सोचा है ? होगा कोई राज़ी ?"

"सोचा था देवनाथ मास्टर और सिलीगुड़ी के उमा वकील के बारे में।" नकुल ने कहा वीरेन बाबू की ओर ताकते हुए। वीरेन बाबू थोड़ा-सा सोचने लगे।

फिर आँखें झुकाकर बोले, "वे राज़ी होंगे ?"

सुनकर वे चुप हो गये।

वीरेन बाबू ने फिर जोड़ा, "देवनाथ रहता तो खूब अच्छा होता। राजवंशी समाज का एकमात्र पी-एच.डी. होल्डर है। पर वह तो युनिवर्सिटी में नौकरी की तलाश कर रहा है। क्या वह इन सबसे जुड़ना पसंद करेगा ? और उमापद, वह भी काफ़ी अच्छा है। पर वह तो कांग्रेस में था।"

"उत्तराखंड के ज़्यादातर तो कांग्रेस के ही हैं काका।" जगदीश ने कहा।

"नहीं, सर उन्हें तो सब नहीं पहचानते। उमापद सिलीगुड़ी कोर्ट में काफ़ी दिनों से वकालत कर रहा है। अब अगर सरकार यह प्रमाणित कर दे कि उत्तराखंड के पीछे कांग्रेस का हाथ रहा है तो उसे इस तरह से प्रचार किया जायेगा कि तुम कहीं ओर ज़ुबान भी खोल नहीं पाओगे।" वीरेन बाबू की बात सुनकर सभी चुप हो गये।

वीरेन बाबू ने फिर कहा, "पर तुमने यह सोचा है बहुत ही अच्छा। एक काम करो, देवनाथ को राजी कराओ, उसे कोई बात कहना नहीं है। पर अगर हम मुनासिब समझें तो उसके बारे में बतायेंगे।" वीरेन बाबू थोड़ा रुक गये, फिर बोले, देवनाथ से कहो, इससे उसकी नौकरी में सहूलियत ही होगी। और कूचबिहार से संतोष को लाओ।"

"संतोष ? यानी कि संतोष मुख़्तार ?" सुरेन ने पूछा।

"अब मुख़्तार नहीं एडवोकेट। पर संतोष के साथ क्या तुमलोगों की पहले से कोई बातचीत हुई नहीं है। मुझे तो जहाँ तक पता है कि इस मामले में वह हमारा सपोर्ट ही करेगा। संतोष को अगर सभी बारे में पता नहीं, तो वह राज़ी न भी हो सकता है। वह अगर आ जाता तो तुमने जो सोचा है वह काफ़ी अच्छा रहता। खूब स्ट्रांगली आर्ग्यू कर सकता है। तुमलोग कल ही चले जाओ उसके पास। मेरा नाम लेकर कहो। उसे लाओ।" वीरेन बाबू रुक गये सभी कुछ देर के लिये चुप हो गये। उसके बाद तरणी बाबू ने कहा ऐसे जैसे कि वह बैठे हैं इसी से कह रहे हैं, वरना कुछ कहते ही नहीं, "कोई एक उपाय सोच कर जाने से ठीक रहता।"

"उपाय ? माने ?" सुरेन ने पूछा।

"मान लो, सरकार कहती है—उत्तराखंड करना नहीं चलेगा और आप लोगों ने कहा उत्तराखंड और फंक्शन दोनों करना होगा इससे तो कोई समाधान हो नहीं सकता। मैं कह रहा था कि आख़िरी दिन का जुलूस निकालने की जगह बदलने के लिये अगर तैयार हो जाओ तो शायद सरकार और कुछ कह न पाये, यानी चाहकर भी कुछ कह नहीं सकती।"

"जुलूस, मतलब जल्पेश्वर अभियान ?" तिलक पूछा।

"हाँ" तरणी बाबू बोले।

"यानी कि जुलूस नहीं निकलेगा ?" तिलक ने पूछा।

"अरे, नहीं-नहीं, जुलूस अवश्य निकलेगा। मान लीजिये कि आप राज़ी हो जाते हैं कि श्रीदेवी के नाच से जुलूस न निकल कर चौराहे पर से निकलेगा, उसमें तो कोई नुकसान नहीं है।" तरणी बाबू ने कहा।

"उस तरह के समझौते की बातें भी ज़रूर सोचनी पड़ेंगी। तो फिर तुम लोग आओ, कल, घूम-फिरकर क्या होता है बताना।" वीरेन बाबू उठकर खड़े हो गये।

162

जलपाईगुड़ी सर्किट हाउस का स्थापत्य

जलपाईगुड़ी सर्किट हाउस का सभाकक्ष काफ़ी छोटा था। दरअसल, यह कोई सभाकक्ष ही नहीं, खाने का कक्ष था। एक छोटा-सा पार्टीशन देकर बैठने की जगह को अलग किया गया था। अंग्रेज़ी हुकूमत के समय टूर में आनेवाले सरकारी ऑफ़िसरों के लिये इस तरह का बँगला टाइप सर्किट हाउस बनाया गया था। जलपाईगुड़ी ज़िला के सदर, फिर कमिश्नर भी जलपाईगुड़ी में रहा करते थे। इसी से ज़िला के ऑफ़िसरों के लिये टूर पर आने का कोई अवसर ही न था। एक तो कलकत्ता से सरकार का सबसे बड़े कर्ताधर्ता आता था या फिर अन्य ज़िलों के ऑफ़िसर लोग कमिश्नर के लिये आते थे। स्वतंत्रता के पहले भारतीय अफ़सरान शायद इस सर्किट हाउस में बहुत ही कम ठहरा करते थे—बल्कि वे स्टेशन के पासवाले डाक बँगला को ही अधिक पसंद किया करते थे। सर्किट हाउस ख़ासकर गोरे साहबों के लिये ही बनाया गया था। साहबों के ख़याल को नज़र में रख कर ही जगह का चुनाव किया गया था। अब इस रास्ते के पूरब में, तिस्ता के पाट पर कमिश्नर, डिस्ट्रीक्ट जज, डिप्टी कमिश्नर और डिवीज़नल फॉरेस्ट ऑफ़िसर के बड़े-बड़े बंगले हैं—लाल ईट, ढलवाँ छत और दो-एक बीघा बाग-बगीचवाले रास्ते के पश्चिम में काफ़ी बड़ा जामुन बागीचे वाला मैदान है, उसके पास करला नदी। इसी करला नदी के पाट में, जामुन के बाग के मैदान के दक्षिणी छोर में यह एक तल्ला में करीने से सज़ा हुआ सर्किट हाउस है।

इसका स्थापत्य भी दूसरे बंगलों से बिलकुल अलग-थलग है। तीनों तरफ़—सामने, बायें और दायें चौड़ा बरामदा खिलानदार। नीचे ज़मीन—इतनी नीचे कि इधर से दिखायी नहीं पड़ता। सामने बरामदे से होकर अंदर जाकर बैठने की जगह और पार्टिशन कर अलग निकाली गयी खाने की जगह। उस घर की ओर खुलनेवाले दरवाज़ों के साथ पीछे की ओर तीन सोने के कमरे, काफ़ी

बड़े-बड़े। खिलान के साथ मेल रखकर छत एक ढलाई में नहीं बनाया गया है। बरामदे के ऊपर एक छत और उसके थोड़ा ऊपर घरों के ऊपर और एक छत। ऊपर के छत के बीच में एक चिमनी का बँधा हुआ नल। अब वह कोई काम में नहीं आता। ठंड कम हो गयी है इससे नहीं, ठंड में लकड़ी से आग जलाने वाले लोग नहीं रहे इसी से। पर रास्ते के विपरीत इस सुंदर मकान का गंदा और बदरंग पीला रंग जब भी नया किया जाता है, तब इस चिमनी का भी रंग बदल जाता है।

सर्किट हाउस अब सर्किट हाउस ही है। मंत्री, बड़े-बड़े ऑफ़िसर यहाँ आकर ठहरते हैं। पर मंत्री लोगों के आने से ही सर्किट हाउस का व्यवहार थोड़ा बदल जाता है। मंत्रियों के साथ मीटिंग सर्किट हाउस में हुआ करती है। वह मीटिंग ऑफ़िसर लोग भी कर सकते हैं। वह सर्वदलीय मीटिंग भी हो सकती है। मीटिंग के लिये कोई स्वतंत्र कक्ष न होने से खाने की जगह, खाने के लंबे टेबिल को घेर कर ही मीटिंग होती है। फिर भी ज़्यादातर जगह कम पड़ जाती है—तब कुर्सियों की एक और क़तार सजा दी जाती है। पर इस खाने के कमरे की टेबिल और एक क़तारों में लगे चेयर के पीछे कुर्सियों की क़तार सजाने से इधर-उधर घूमने की जगह नहीं रहती। भीतर से कोई बाहर निकलना चाहे तो स्टील के चेयर से उठकर, चेयर को मोड़कर जगह करके निकालना पड़ता है। अधिकांश समय कोई बड़ी-बड़ी मीटिंग की भीड़ घर के बरामदे तक आ जाती है। बरामदे के दरवाज़े पर भी लोगों की भीड़ जमा रहती है। इसके अलावा बैठने और खाने की जगह को बाँटकर जो पार्टीशन है, उस पार्टीशन के निकट भी लोगों की भीड़ बनी रहती है।

उस दिन की मीटिंग में इतनी भीड़ नहीं थी। क्योंकि विषय शहर को लेकर नहीं था, सिर्फ़ मयनागुड़ी को लेकर ही था। पर श्रीदेवी का फंक्शन कैंसिल हो सकता था, इस तरह की एक अफ़वाह एक ही दिन में जलपाईगुड़ी में फैल गयी थी। घटना की सही जानकारी हासिल करने के लिये कोई आया था। पर मीटिंग में जाये बिना ही मीटिंग में क्या हो रहा है उस बारे में जानने के लिये उद्विग्न मयनागुड़ी के लोग काफ़ी तादाद में वहाँ आ पहुँचे थे। आनेवालों में उत्तराखंड सम्मेलन और सांस्कृतिक कार्यक्रम से जुड़े तरह-तरह के कार्यकर्ता भी थे, इसके अलावा जो लोग फंक्शन के लिये टिकट खरीद चुके थे, उनका भी एक बड़ा दल था।

कार्यकर्त्ताओं में से जो लोग अंदर घुस नहीं पाये थे, सिर्फ़ वे ही बाहर रह गये थे, ऐसा नहीं था। और भी ऐसे बहुत-से लोग बाहर बरामदे में घूम-फिर रहे थे, या बरामदे के किनारे मिट्टी में पैर झुलाकर बैठे थे, जिन्हें इस सम्मेलन आयोजन के कार्यकर्त्ताओं ने उनके साथ आलोचना के लिये इस मीटिंग में बुलाया

था। पर ये कार्यकर्त्ता जैसे मीटिंग का दायित्व दूसरों पर छोड़कर खुद बाहर खड़े थे—मामला मुक़दमा के समय जैसे कोर्टरूम के बाहर रहकर लोग वकील मुख़्तारों के मुकदमे की लड़ाई को देखते रहते हैं।

जो लोग बाहर बैठे थे या घूम-फिर रहे थे, उनकी आँखों के सामने ही सम्मेलन और कार्यक्रम के पोस्टर लगी बसें कोर्ट की ओर आ-जा रही थीं। यहाँ तक कि एक मिनी बस के पीछे 'मिस्टर इंडिया' फ़िल्म की श्रीदेवी की एक रंगीन तस्वीर भी टँगी हुई थी।

जलपाईगुड़ी का एमएलए कूचबिहार, नाटाबाड़ी का एमएलए मंत्री, डुयार्स के और एक एमएलए वन विभाग का राज्य-मंत्री इनमें से किसी को भी बाहर देखा नहीं जा रहा था, पर मयनायुड़ी के एमएलए बाहर आकर बहुत से लोगों के साथ बातचीत कर रहे थे। एमएलए जब बाहर आये थे तो एक आदमी उनके हाथ में अपने व्यक्तिगत काम का एक दरख़ास्त पकड़ा दिया। उसने अपने व्यक्तिगत मामले के बारे में कुछ बातचीत भी की और तीन काग़ज़ भी साथ में दिये थे। एमएलए ने उन काग़ज़ों को मोड़कर अलग से पकड़ा था—दायें हाथ की मुट्ठी में। पर उस दायें हाथ को ही वह काफ़ी हिला रहे थे—कभी माथे के पीछे लिये जा रहे थे, कभी किसी की पीठ पर रख रहे थे, कभी किसी को एकाध मुक्का मार रहे थे जो लग रहा था कि काग़ज़ों को मोड़कर हाथ की मुट्ठी में न रखते तो वह शायद हाथ का इस्तेमाल कर नहीं पाते। एमएलए के कपड़े का रंग मटमैला था। गले में एक चादर लिपटी हुई थी। उन्हें देखकर लग रहा था कि इस मीटिंग के साथ उनका सम्पर्क काफ़ी दूर का रहा है। पर असल में इस मीटिंग के साथ उनका सम्पर्क दोनों ओर से काफ़ी करीब का रहा है। पहली बात तो घटनास्थल है मयनागुड़ी। सरकारी पक्ष की उम्मीद थी कि वह पहले बातचीत करके समाधान का कोई रास्ता ढूँढ़ निकालेंगे। फिर आयोजकों की आशा थी कि वह बँगल में कोई-न-कोई उपाय ढूँढ़ निकालेंगे। पर एमएलए की बातचीत, आचार-व्यवहार में किसी तरह की कोई उद्विग्नता प्रकाश में नहीं आ पा रही थी।

एमएलए बरामदे के ऊपर सीढ़ी के पास ही खड़े थे। सभी उनको घेरकर बातें कर रहे थे। एमएलए एक पच्चीस-छब्बीस साल के लड़के के कंधे पर हाथ रखकर बोले, "अरे यह कैसी बातें कर रहा है तू ? उत्तराखंड का भी साथ देगा और मेरी पार्टी में भी रहेगा ?" लड़का हँस कर बोला, "कइसे न करैं, तुम्हीं बोलो न ?"

लगता था कि थोड़ी रसिकता करके वे राजवंशी भाषा में बातचीत कर रहे थे।

एमएलए ने हँस कर कहा, "हमको पहेली बुझा रहा है क्या ? टीवी का कुइज ? ठीक है मैं तुझे अब पकड़ता हूँ, अब तू बता। हमारा कम्युनिस्ट पार्टी

चाहती है कि इस सारी दुनिया का परिवर्तन हो और तेरा यह उत्तराखंड चाहता है कि सिर्फ़ तिस्ता पार का परिवर्तन हो। तो, दुनिया का परिवर्तन होता है तो तेरा तिस्ता पार का भी परिवर्तन होगा। पर क्या तिस्ता पार के बदल जाने से दुनिया का परिवर्तन होगा ? बता तो देखें सही। बता ?"

लड़का दोनों हाथ मुँह के पास लाकर थोड़ा-थोड़ा हँस रहा था। उसकी सलज्ज हँसी और तेज़ से उसके चेहरे पर एक जगमगाहट आ गयी थी, जो उसकी सुन्दरता को निखार रही थी। इस एमएलए के कपड़े-लत्ते का गंदापन और मेहनती शरीर के स्वच्छंदता के साथ इस युवक के सौन्दर्य का जैसे कहीं कुछ मेल हो। पर कहीं कोई अमेल भी था—एमएलए के चेहरे पर निश्चयता बोध के साथ इस युवक की सलज्ज अनिश्चयता बोध का कोई तारतम्य नही था। एमएलए की बातों के अंत में थोड़ी-सी हँसी की महक थी। वह खत्म होते ही लड़का बोला, "इसीलिये तो दुनिया बदलने के काम में लाल झंडा लेकर आपको एमएलए बनाये है और उत्तराखंड के काम में उत्तराखंड को पकड़े है।" इस बात से हँसी और भी बढ़ गयी।—एमएलए लड़के के कंधे पर से हाथ हटाकर घूमकर खड़े हो गये और उसके पीछे से एक घूँसा जड़ दिया। लड़का नाचते हुए थोड़ा सरक गया। भीड़ भी बदल गयी।

पीछे से एक आदमी ने आगे बढ़कर कहा, "ओ हेमेन दादा, बेकार की बातें छोड़ो। यह फंक्शन अगर कैंसिल हो गया न, तो फिर कुरुक्षेत्र हो जायेगा। कोई उपाय निकालो।

एमएलए हेमेन दा हँसकर बोले, "अरे कुरुक्षेत्र बंद करने के लिये ही तो मीटिंग बुलायी गयी है। तो तुम कह रहे हो उत्तराखंड और ला रहे हो बंबई से श्रीदेवी को ? साला वो भी मद्रास की लड़की। यह कैसा उत्तराखंड है तुम्हारा—मयनागुड़ी—मद्रास—बंबई ?"

पीछे से किसी ने छिपकर ताना कसा, "तुम लोगों ने जो सिखाया है—दुनिया का मज़दूर एक हो।"

"कौन है रे ?" एमएलए समवेत हँसी के बीच सिर उठाकर ताना कसनेवालों को तलाश करने लगे।

"अरे यह क्या ?" तो पहले बात उठायी थी वह कंधा घुमाकर धीमे से फिर एमएलए से बोला, "अब आप मीटिंग से पहले कोई उपाय सोच लो। फिर मीटिंग में जाना।"

"उपाय और मेरे पास कहाँ ? कांग्रेस के तमाम लोग तो उत्तराखंड करने लगे। अब जब वे अच्छी तरह से समझ चुके हैं कि पश्चिम बंग में कांग्रेस की सरकार बनने का कोई चांस नहीं, साले यहाँ पर उत्तराखंड बना, गोरखालैंड बना, झारखंड बनाकर वामफ्रंट सरकार को झाँसा देने लगे हैं। कांग्रेसी देउनिया लोगों

से क्यों नहीं पूछते उपाय ? हमारे पास बुद्धि कहाँ, उपाय कहाँ ? कांग्रेस ही सम्मेलन कर रही है, श्रीदेवी को नचवा रही है। तो साले तुम करते ही कुछ नहीं ? अरे हेमेन दा, कुछ उपाय निकालो भाई।"

घर के अंदर से बुलावा आया, "हेमेन, आओ भई अंदर।"

तब तक पर्यटन-मंत्री तैयार हो रहे थे। सुबह तैयार होने में उन्हें कुछ समय लग जाता है। उनका बुलावा आते ही वह घर के अंदर जाने के लिये मुड़ गये। भीड़ ने हटकर उनके लिये रास्ता कर दिया। एमएलए फौरन अंदर चले गये। कोई-कोई बरामदे में से मैदान में उतर आये। दो-एक आदमी मीटिंग होनेवाले कमरे की खिड़की के पास खड़े हो गये।

163
सम्मेलन और कार्यक्रम को लेकर सरकारी आलोचना

टेबिल को घेर कर सबके बैठने में थोड़ा समय लग गया। डिप्टी कमिश्नर, एडिशनल डीसी एडिशनल एस.पी., सदर एस.डी.ओ., डीएसपी सोफे पर बैठे थे। मयनागुड़ी का ओ.सी.पी. भीतर जानेवाले दरवाज़े के पास एक लकड़ी की कुर्सी पर बैठे थे। पर्यटन मंत्री निकले नहीं थे, इसी से मीटिंग शुरू नहीं हुई थी। पर उनके पहले उद्योग मंत्री बाहर आ गये थे। "क्यों, सुविमल दा ! हुआ ?" कह कर खड़े होते ही अफ़सर लोग खड़े हो गये। उद्योग मंत्री के 'बैठिये' कहने पर भी वे बैठे नहीं। पर उनके आदमी के उन्हें खाने की जगह की तरफ मीटिंग की जगह की ओर बुलाकर ले जाते ही अफ़सर लोग बैठ गये। इसके कुछ समय बाद वन विभाग के राज्यमंत्री निकल कर दरवाज़े पर खड़े हो इधर-उधर देखने लगे। मयनागुड़ी थाना के ओसीपी खड़े हो गये। थोड़ी देर बाद एस.डी.ओ. भी खड़े हो गये। पर डी.सी. और ए.डी.सी. ने उठने का उपक्रम मात्र किया।

पर कुछ याद आते ही एस.डी.ओ. उनके पास जाकर बोला, "सर, यह बिल्कुल ही अलग तरह की मीटिंग है, इसी से डी.एफ.ओ. नहीं आये। पर वे अपने ऑफ़िस में ही हैं। आपको समय मिलने पर बता देंगे। मैं उन्हें फ़ोन कर दूँगा।"

"समय तो आपके ही हाथ में है। मीटिंग जब ख़त्म हो जाये तभी, अच्छा" कहकर वह फिर अंदर चले गये।

और थोड़ी देर बाद पर्यटन मंत्री निकले। उन्हें साँस की शिकायत थी। खूब पतली धोती के ऊपर मोटा गरम कुर्ता और उसके ऊपर सादी गरम तसर की चादर। चेहरा और आँखें फूली-फूली नज़र आ रही थीं। उसने आकर खड़े

होते ही सब उठकर खड़े हो गये। अफ़सर लोग बाहर आ गये। अब मीटिंग शुरू होगी। पर्यटन मंत्री ने मीटिंग की ओर जाते-जाते घूमकर पूछा, "हेमेन कहाँ है ? उसका ही तो मामला है।"

एस.डी.ओ. ने कहा, "वह तो बाहर ही हैं सर।"

पर्यटन मंत्री ने बाहरी दरवाज़े की ओर दो क़दम बढ़कर ज़ोर से पुकारा, "हेमेन, अंदर आओ।" उसके बाद वह मीटिंग की जगह पर आ गये। टेबिल के सामने वाली कुर्सी पर बैठते हैं। उनके पीछे-पीछे अफ़सर लोग आकर पर्यटन मंत्री के बायीं ओर की कुर्सियों पर बैठ गये। एक कुर्सी उद्योग मंत्री के लिये खाली छोड़ दी गयी। पहले डी.सी., उसके बाद ए.डी.सी., डी.एस.पी.। मयनागुड़ी थाने के ओ.सी. ने डी.एस.पी. से पूछा, "सर, तो फिर मैं उस तरफ़ इंतज़ार करता हूँ। आवश्यकता हो तो बुला लीजियेगा।"

"अरे नहीं नहीं। आपको ही तो ब्रीफ करना है, आप यहाँ बैठिये।" कहते हुए उन्होंने पास के चेयर को दिखाया। ओसी कुर्सी को थोड़ा सरकाकर अंदर गये और कुर्सी को थोड़ा हटाकर बैठ गये। ऐसा लग सकता था कि वह पर्यटन मंत्री के आमने-सामने होने के लिये थोड़ा-सा कोने में सरक कर बैठ गये।

इन सबके बैठते ही बाहर जो लोग थे, वे भीतर आ गये। उद्योगमंत्री भीतर आ गये। वे जलपाईगुड़ी के एमएलए थे। उन्हें अफ़सरों के पीछे से आकर टेबिल के सिर पर खड़ा होना पड़ा था। उन्होंने देखा कि उनके लिये एक कुर्सी खाली रखी गयी है। उस कुर्सी को खींचकर टेबिल से कुछ दूर पर्यटन मंत्री के पास ले गये। इससे उधर से जाने-आने में थोड़ी-सी दिक्कत तो ज़रूर होगी, फिर भी वे वहीं पर बैठ गये। आमतौर पर यह रिवाज था कि ज़िला में इस तरह की कोई मीटिंग होने पर ज़िला का कोई केबिनेट मंत्री हो तो वही अध्यक्षता करता था। उद्योगमंत्री को ही वहाँ अध्यक्षता करनी चाहिये थी। पर सुविमल बाबू कोई भी मीटिंग मे प्रधान के आसन पर जाकर बैठते थे। यह उनके उम्र के लिहाज़ से था और फिर शायद पार्टी के चलते भी। हालाँकि इस क्षेत्र में तो कोई किसी का नाम अध्यक्षता के लिये प्रस्तावित नहीं करता। विवरण भी लिखा जायेगा तो पहले मंत्रियों के नाम ही आयेंगे। पर फिर भी सभा का संयोजन का एक नियम होता है। इसके अलावा, इस घटना के साथ सुविमल बाबू किसी तरह से जुड़े भी नहीं थे। यह कुर्सी फिर सभापति की कुर्सी थी, ऐसा कुछ भी तय नहीं हुआ था। फिर भी उद्योग मंत्री को इस चेयर पर होना चाहिये। वह अगर पहले ही यहाँ आ जाते तो इसी कुर्सी पर बैठते। पर जब सुविमल बाबू उस कुर्सी पर बैठ चुके थे, तो वह कुर्सी को थोड़ा सरका कर बैठने की जगह को थोड़ी विशिष्टता प्रदान करना चाहते थे।

सुविमल बाबू की दायीं ओर की पहली कुर्सी पर वन विभाग के राज्यमंत्री

भुवन मोहन राय थे। वही सिर्फ़ राजवंशी मंत्री थे। उनके निकट मयनागुड़ी के एमएलए हेमेन बाबू। उसके बाद से उत्तराखंड और कार्यक्रम के लोग बैठे हैं पर उन सबके लिये जगह नहीं होती। इसी से पहली पंक्ति के बाद स्टील की चेयर डालनी पड़ी थी। उस दूसरी पंक्ति में सबका बैठना ख़त्म होने के पहले ही सुविमल बाबू ने एक बार आयें-बायें देखा, फिर बोले, "लीजिये, शुरू कीजिये, ज़्यादा देर नहीं बैठा जा सकता। मीटिंग को जल्द ही ख़त्म करना होगा, आप लोगों की जो समस्याएँ हैं, वही पहले कहिये।"

बात पहले कौन शुरू करे इसे लेकर कुछ सन्नाटा-सा दिखायी पड़ता है। डी.सी , डी.एस.पी. की ओर ताकते हैं, डी.एस.पी., ओ.सी. की तरफ देखते हैं। ओ.सी. वह देख नहीं पाते, क्योंकि उन्होंने सोच लिया था कि उत्तराखंडी वाले ही पहले बात की शुरुआत करेंगे। इसी से वह वीरेन बाबू की तरफ ताकते हैं। वीरेन बाबू टेबिल की ओर देख रहे थे, इसी से ओ.सी. की नज़र को ताड़ नहीं पाते। पर नकुल सबकी तरफ़ देख रहा था, इसी से समझ जाता है कि ओ सी. वीरेन बाबू को शुरू करने के लिये कह रहे हैं। नकुल, वीरेन बाबू के पास, संतोष बाबू के बाद बैठा था। संतोष बाबू के पीछे से होकर वीरेन बाबू की पीठ पर एक छोटा-सा घूँसा मारकर वीरेन बाबू धीरे-धीरे सिर घुमाने लगा। नकुल सिर के इशारे से शुरू करने को कहे। वीरेन बाबू काफ़ी धीरे से संतोष बाबू को कहते हैं, "संतोष, तुम्हीं शुरू करो।"

संतोष बाबू को कूचबिहार से लाया गया है। वह गला खँखार कर कहते हैं, "ऑनरेबल मिनिस्टर्स, हम तो प्रोपर परमिशन लेकर ही फंक्शन कर रहे हैं। आज बुधवार है। शनिवार से हमारा फंक्शन शुरू हो जायेगा। इसमें लाखों रुपये इनवाल्वड हुए हैं, इतना ही नहीं, हज़ारों की तादाद में लोग भी आयेंगे। फिर अभी वह मीटिंग क्यों बुलायी गयी है। हमारी समझ में नहीं आ रहा है।" संतोष बाबू के गले में दम है। यह दम इतना ज़ोरदार है कि कई लोगों के ही मीटिंग में वह एक तरह से जँचता ही नहीं है। इस मीटिंग के बाद उस तरह की ऊँची आवाज़ में बातें की जा सकती हैं, पर शुरुआत जैसे दूसरे किसी तरह से ही होती तो अच्छा रहता।

सुविमल बाबू सफ़ेद चादर से मुँह ढँके हुए थे। वह मुँह से चादर नहीं निकालते पर चादर के भीतर से उनका हाथ सरक जाने से बातें ठीक से समझ में आती हैं। वह अपने स्वाभाविक आवाज़ में ही बातें कर रहे थे, पर उनकी स्वाभाविक आवाज़ भी काफ़ी भारी है। संतोष बाबू की चढ़ी आवाज़ के जवाब में हौंलाकि उनकी आवाज़ ऊँची हुई न थी, पर कड़कदार ज़रूर लगी थी, "तुम्हें तो कुछ कहा नहीं गया है। तुम जिस फंक्शन के लिये परमिशन लिये हो, वह फंक्शन करना। पर जो लोग परमिशन नहीं लिये हैं, वे तुम्हारे फंक्शन के साथ

मिलकर कोई फ़ंक्शन कर नहीं सकते। कोई कांफ्रेंस कर नहीं सकते।"

संतोष बाबू की बात और सुविमल बाबू के जवाब के बाद सब अचानक कुछ पल के लिये चुप कर जाते हैं। किसी की समझ में नहीं आता कि फिर कौन-से मुद्दे को लेकर मीटिंग आगे बढ़ाई जा सकती है। सुविमल बाबू चादर के अंदर से हाथ से फिर से मुँह को ढँक लिये हैं।

सुस्थिर कुछ समय बात कहता है, "मैं एक बात कहना चाहता हूँ।" जैसे कोई इसके लिये अनुमति प्रदान करेगा, वह उसी ढंग से थोड़ा रुक जाता है। फिर कहता है, "तो फिर हमारे इस मीटिंग बुलाने की कतई आवश्यकता ही न थी। सरकार हमें सूचित कर सकती थी कि उत्तराखंड सम्मेलन के लिये परमिशन नहीं है। सरकार के निषेध के बावजूद हम सम्मेलन करते या न करते वह हम तय कर लेते।" सुस्थिर की बात के समर्थन में पिछली पंक्ति से गुंजन सुनायी देती है। गुंजन इस तरह से उठती है कि लगता है उसे रोका जा सकता है। पर ऑफ़िसर और सुविमल बाबू सिर्फ़ उधर ताकते ही रहते हैं। फलतः गुंजन और थोड़ा बढ़ जाती है। फिर बंद हो जाती है।

उसके थोड़े समय बाद सुविमल बाबू ने कहा, "अबकी उन्होंने मुँह पर से चादर हटा ली थी—उत्तराखंड या और कोई खंड, कहाँ, कौन-सा सम्मेलन करेगी, उसे लेकर सरकार को कोई सरदर्द नहीं है। हालाँकि क़ानूनी तौर पर भी इस सम्मेलन के लिये पुलिस की परमिशन ली जानी चाहिये। पर फ़ंक्शन के लिये जिस जगह की अनुमति दी गयी है, वहाँ उस तरह का कोई राजनीतिक सम्मेलन होने से लॉ एण्ड ऑर्डर सिचुएशन क्रिएट हो सकती है, शांति शृखला भंग हो सकती है। इसलिये सरकार का कहना है कि फंक्शन की जगह सिर्फ फ़ंक्शन होगा, वहाँ कोई सम्मेलन-वम्मेलन नहीं चल सकता। सीधी बात यही है।"

164
श्रीदेवी का नाच और जल्पेश अभियान

मीटिंग में फिर से चुप्पी छा गयी। कुछ पल बाद डी.सी. ने कहा, "सर।" सुविमल बाबू ने डी.सी. की तरफ देखा, "सर, ये कल्चरल फ़ंक्शन का मामला होने पर हमने दो सज्जनों को ख़ास तौर पर आने के लिये अनुरोध किया था—उपेन बाबू और समीर बाबू। उपेन बाबू की तबीयत ख़राब है।"

पीछे से उद्योग मंत्री ने कहा, "उपेन बाबू, मतलब उपेन दा ? माने उपेन वर्मन मोशाई !"

डी.सी. ने कंधा उधर घुमाकर कहा, "हाँ सर।"

"क्या वह भी इन सबके बीच हैं ?"

"नहीं सर, पर ज़िले के ओल्ड सिटीज़न के नाते तो उनकी बातों का ख़ास महत्त्व हो सकता है। वे दोपहर में आने की कोशिश करेंगे, उन्होंने कहलवाया है। उन्होंने मुझसे कहा है कि इन सब कल्चरल फंक्शनों के साथ किसी राजनैतिक मामले को जोड़ना उचित नहीं होगा।" डी.सी ने मुड़कर उद्योग मंत्री से कहा, इसी से मीटिंग का हर कोई यह सब सुन नहीं पाया। यह सुनते ही उद्योग मंत्री ने सीधा होकर कहा, "मीटिंग में कहिये कि उपेन्द्रनाथ वर्मन जैसे एक सीनियर सज्जन का कहना है कि फंक्शन हो, पर सम्मेलन-वम्मेलन किया नहीं जाना चाहिये।" उद्योग मंत्री इतने ज़ोर से बोला कि मीटिंग में सभी हड़बड़ाकर सीधा होकर बैठ गये। जैसे कि उपने बाबू के बात की बाद में इस बारे मे और कोई बातचीत हो ही नहीं सकती। मीटिंग ही जैसे ख़त्म हो गयी थी। उपेन्द्रनाथ वर्मन के नाम की प्रतिक्रिया मुख्यतया उत्तराखडी लोगों में हुई। राजवंशी समाज का और कोई भी व्यक्ति इस तरह से देश भर में सम्मानित नहीं था। परन्तु अपने जीवन की इन सफलताओं के बावजूद भी वे कभी अपने राजवंशी परिचय को छोटा करके नहीं देखते। राजवंशी समाज के और जो भी लोग देश की विभिन्न जगहों, विभिन्न क्षेत्रों में सम्मान के अधिकारी बने थे, वे तो शायद अब राजवंशी ही नहीं रहे। राजा प्रसन्नदेव रायकत जमींदार जैसे वन गये। उपेन्द्रनाथ को अस्वीकार करने का कोई उपाय उत्तराखंडियों के पास था, न सरकार के पास।

संतोष बाबू फ़ौरन वीरेन बाबू के साथ कानाफूसी करके उनके लिये जितने आहिस्ते संभव था, उतने ही आहिस्ते से कहा, "तो कम-से-कम इतना तो प्रमाणित हो गया कि कांग्रेसी उत्तराखंड नहीं कर रहे हैं। क्योंकि उपेन्द्र बाबू तो सनातनी कांग्रेसी हैं।"

संतोष बाबू की बात सभी ने सुनी, सभी को सुनाने के लिये ही यह बात कही गयी थी। हो सकता है कि इसका मूल उद्देश्य था—"उपेन बाबू का नाम लेकर मीटिंग में सरकार के वक्तव्य के पक्ष में जो समर्थन बनता जा रहा था, उसे नष्ट करना।"

उद्योग मंत्री सिर झटक कर बोले, "सतोष बाबू, उपेन दा को इन सब बातों में मत घसीटिये। ऑफ्टर ऑल ही इज़ ए पेटी पालिटिशियन। हम सबके वे आदरणीय हैं। वे अगर आ जायें तो बेहतर हो।"

संतोष बाबू ने कहा, "अरे, हमने कब उपेन दा का नाम कहा, आपने ही तो कहा। उन्हें तो यह सब कुछ पता ही नहीं होगा। आपने क्या ब्रीफ़ किया है, आप ही बतायें, अब अगर उनका नाम लेकर एक डिवीज़न को हमारे सिर पर थोप देना चाहते हैं।"

सुविमल बाबू ने थोड़ा हँसकर कहा, "तुम्हारे जैसे एडवोकेट को कूचबिहार से पकड़ लाया है—फ़ैसला क्या इतनी सहजता से हो जायेगा ?"

संतोष बाबू ने थोड़ा हँसकर कहा, "वह तो भाई तुम्हें भी कूचबिहार से पकड़कर ले आये हैं। तो फिर तुम भी मत बोलो, मैं भी नहीं बोलता कुछ—ये लोग जलपाईगुड़ी का मामला यहाँ बैठकर ही मिटा लें।"

मयनागुड़ी के एमएलए "हो-हो" करके हँस पड़े। ऑफ़िसर लोग भी हँस पड़े। सम्मेलन और कार्यक्रम के लोगों के बीच भी एक गुंजान उठा—समर्थन का। हँसी-मज़ाक़ से मीटिंग का भारीपन कुछ हल्का हो गया।

उस हँसी के रुकते ही वीरेन बाबू ने खँखार कर गला साफ कर लिया, पर किसी ने उसका ख़याल नहीं किया। फिर उन्होंने थोड़ा हाथ उठाया। उस पर भी किसी का ध्यान नहीं गया। अचानक संतोष बाबू अंग्रेज़ी में बोल पड़े, "मिस्टर मिनीम्टर्स, मेहरबानी करके आप लोग ज़रा ध्यान दें, वीरेन्द्रनाथ बसुनिया इस जिले के एक अव्वल दर्जे के वकील हैं। कलकत्ता हाईकोर्ट भी जिनसे उपकृत हो सकता था, और श्रद्धेय उपेन बाबू की तरह जो परम आदरणीय हैं, लेकिन वे आप लोगों से दूर रहे, इस समय वे आप लोगों से कुछ कहना चाहते हैं। और आप लोगों की जानकारी के लिये इस अवसर पर इतना बता देना चाहता हूँ कि आज आप लोगों के समक्ष देवनाथ राय भी हैं—राजवंशी समाज के प्रथम पी-एच.डी. होल्डर।"

मयनागुड़ी के एमएलए हेमेन बाबू और वन विभाग के राज्य-मंत्री भुवन मोहन बाबू ने टेबिल के ऊपर झुककर वीरेन बाबू की ओर देखा। वीरेन बाबू टेबिल की तरफ ही देख रहे थे—इसी से शायद वे उन्हें देख नहीं पा रहे थे। हेमेन बाबू ने कहा, "काका, कहिये।" भुवनमोहन बाबू ने कहा, "कहिये दादा, कहिये।" सब चुप हो गये। वीरेन बाबू गला फिर से साफ करके बोले, "मैं एक बात जानना चाहता हूँ—इस बात को हम क़ानून की नजर से देख रहे हैं, राजनीति की नज़र से देख रहे हैं या कि प्रशासनिक कानून-शृंखला की नज़र से।"

वीरेन बाबू रुक गये। उनकी धीमी आवाज़ से कही गयी बातों को सुनने के लिये ऑफ़िसर लोग टेबिल पर आगे की ओर झुक गये। सम्मेलन और कार्यक्रम के लोगों ने भी सुनने के लिये सर आगे बढ़ा दिया। उद्योगमंत्री कुर्सी पर आगे की ओर झुक आये थे। सिर्फ संतोष बाबू ही एकमात्र व्यक्ति थे जो कुर्सी पर टेक लगाये बैठे थे, और मुस्कराते हुए सबकी ओर देख रहे थे, जैसे कि उन्हें पता हो कि वीरेन बाबू जो कहने जा रहे हैं वह पहल से ही उन्हें पता है, और उन्हें यह भी पता है कि उसके बाद हालत कैसे बदल जायेगी। या, वीरेन बाबू के एकबारगी निकट बैठकर वह बातों को सबसे अच्छी तरह सुन पा रहे थे और उसी कारण से सुनने के लिये उन्हें कोई अतिरिक्त प्रयास करना नहीं पड़ रहा था। वीरेन बाबू ने अपने सवाल के जवाब के लिये जैसे कुछ समय दिया, फिर शुरू किया—

"मान्यवर पर्यटन मंत्री ने इस मीटिंग के शुरुआत में कहा था कि जो लोग अनुमति ले चुके हैं, वे फ़ंक्शन कर सकते हैं। उसके साथ सम्मेलन किया नहीं जायेगा। तो फिर यह क़ानून का सवाल बन जाता है। फिर उसके बाद की विभिन्न बातों से लगा कि सम्मेलन और कार्यक्रम एक जगह होने पर सरकार को क़ानून-शृंखला की आशंका हो रही है। हम सम्मेलन भी करना चाहते हैं और कार्यक्रम भी, शांतिपूर्ण तरीक़े से दोनों करना चाहते हैं। इसके अलावा यहाँ कांग्रेस और उत्तराखंड का सवाल भी उठा है। वह राजनैतिक सवाल है। हमें क्या आलोचना करनी है वह पहले से तय नही कर लिया गया तो इस मीटिंग में किसी सिद्धांत पर पहुँचा नहीं जा सकेगा। या फिर हमें यह लग सकता है कि सरकार चाहे किसी तरह से भी क्यों न हो अपना विचार हमारे ऊपर थोप देना चाहती है।" वीरेन बाबू रुक गये। पर उनका तेवर ज़रा भी नहीं बदलता। सभी को प्रतीक्षा करनी पड़ी कि वे कुछ और कहते हैं या नहीं।

उद्योग मंत्री ने कुर्सी को थोड़ा आगे बढ़ा लिया। सुविमल बाबू ने कुर्सी पर कोहनी रखकर दोनों हाथ खड़ा रखा और पैर को हिलाने लगे। मयनागुड़ी के एमएलए आगे झुककर बोले, "काका, आप कह क्यों नहीं रहे ?" क़ानून की बात को छोड़िये, पर एक ही दिन श्रीदेवी का नाच और आपका सम्मेलन होने से तो बड़ी परेशानी हो जायेगी, पुलिस तैनात करके भी सँभाला नहीं जा सकेगा, श्रीदेवी के नाच में तो सुन रहा हूँ कि आसाम, बिहार से ट्रक भर-भर के लोग आ रहे हैं।

सुविमल बाबू पैर हिलाते-हिलाते मुस्कराते हुए बोले, "संतोष तो अकेला ही कूचबिहार से दो ट्रक आदमी ढो ले जायेगा।"

संतोष बाबू फ़ौरन बोले, "दो ही ट्रक क्यों ? तुमने जो उस दिन फ़ोन पर कहा था कि तुम्हें एक ट्रक अलग से चाहिये, पर मंत्री के नाम से भाड़ा करना ठीक नहीं लगेगा, इसी से मैं अपने नाम से कर रखूँ, उसे लेकर तीन ट्रक।"

सभी, यहाँ तक कि ऑफ़िसर लोग भी हो-हो करके हँस पड़े। हेमेन बाबू खड़ा होकर एक बार सुविमल बाबू की ओर, फिर एक बार संतोष बाबू की ओर मुड़कर ज़ोर से बोले, "एइ सुविमल दा, संतोष दा, आप दोनों का फ्रेंडली मैच खत्म हुआ तो ? मीटिंग तो ख़त्म करनी है न ? हाँ, काका, अब आप कहिये।"

वीरेन बाबू ने गला साफ़ करके हाथ ऊपर उठा दिया। संतोष बाबू उस हाथ की ओर देखकर थोड़ा हँसे। वीरेन बाबू अदालत में जब अपने सबसे जोरदार तर्क देते हैं तो उस समय बायें हाथ को कुछ इस तरह से खड़ा करते हैं। टेबिल की ओर देखकर वीरेन बाबू ने कहा, "मयनागुड़ी के एमएलए ने जो कहा वही अगर इस मीटिंग का आलोच्य विषय है तो फिर उसका जवाब भी काफ़ी सीधा है—श्रीदेवी रोज नहीं नाच रही, पर हमारा सम्मेलन रोज़ दोपहर एक बजे से पहले

खत्म हो रहा है। उसके पाँच घंटे बाद सांस्कृतिक सम्मेलन शुरू हो रहा है। तो, सम्मेलन के लोग और कार्यक्रम के लोग किसी समय भी मिल नहीं पा रहे हैं।"

वीरेन बाबू के रुकने के साथ ही हेमेन बाबू ने कहा, "वाह, उसी को लेकर तो क्राइसेस चल रहा है। श्रीदेवी का नाच हो रहा है रात को और आप लोगों का जल्पेश्वर अभियान हो रहा है सुबह। तो फिर ?"

वीरेन बाबू की तरफ़ सभी ने देखा। उन्होंने अपनी मुद्रा ज़रा भी नहीं बदली। आवाज़ थोड़ी भी ऊँची नहीं की। अपरिवर्तित स्वर और मुद्रा से उन्होंने अनायास ही सबकी दृष्टि आकर्षित कर ली। कभी-कभार यह उनका कौशल ही समझा जाता है—जब प्रतिपक्ष अपना आक्रमण वापस समेटने को मजबूर होता है। पर कभी-कभी यह उनका स्वभाव ही लगता है—जब वह प्रतिपक्ष पर सीधा-सीधा आक्रमण कर नहीं पाते। वीरेन बाबू कह रहे थे, "हमारी कार्यसूची के अनुसार श्रीदेवी का कार्यक्रम होगा रात साढ़े नौ बजे से साढ़े ग्यारह तक। कार्यक्रम का समय बढ़ जाने की कोई आशंका ही नहीं। क्योंकि कार्यक्रम देने के बाद श्रीदेवी सिलीगुड़ी वापस चली जायेंगी। वहाँ उनके रहने की व्यवस्था की गयी है। इसके अलावा, अगर कार्यक्रम शुरू करने में देर होती है, तो भी श्रीदेवी साढ़े ग्यारह बजे अपना कार्यक्रम ख़त्म कर देगी। हर एक अधिक मिनट के लिये जो पैसा देना पड़ेगा, वह दे पाना हम।र लिये संभव नहीं है। रात साढ़े ग्यारह बजे हमारा कार्यक्रम ख़त्म और सुबह छह बजे जल्पेश्वर शिव मंदिर के लिये हमारी यात्रा शुरू। बीच में साढ़े छह घंटे का समय है। तो श्रीदेवी के नाच की भीड़ और जल्पेश्वर शिवमंदिर यात्रियों की भीड़ किसी भी समय मिल नहीं सकती। इसके अलावा यहाँ के होने कं नाते आप भी यह जानते हैं कि साल कं इसी समय देश के विभिनन जगहों से तीर्थयात्री इस मंदिर में आते हैं। उनके साथ किसी सम्मेलन या कार्यक्रम का कोई सम्पर्क नहीं होता। हम अपने सम्मेलन और कार्यक्रम के आख़िरी दिन उसी चिराचरित तीर्थयात्रा में योगदान करेंगे। तीर्थयात्रा के लिये कभी किसी सरकार की कोई अनुमति आवश्यक नहीं होती। बल्कि तीर्थयात्रियों को जैसे कोई दिक्कत उठानी न पड़े इसके लिये सरकार यथायोग्य व्यवस्था खुद ही करती है। इस साल भी कर रही है और आगे भी निश्चय ही करेगी।"

सब चुप हो गये और वीरेन बाबू धीमे स्वर में कही गयी बातें मनोयोग से सुने। कोई ज़ोर-ज़ोर से साँस ले रहा था। पासवाले आदमी ने उसे कोंच कर रोक दिया। वीरेन बाबू की बात ख़त्म होने पर जो अतिरिक्त समय चुप रहना पड़ा, यह जानने के लिये कि उनकी बात ख़त्म हुई या नहीं, वह समय बीत जाने पर संतोष बाबू ने उस्ताद को वाहवाही देने के अंदाज़ में गर्दन उचकायी—"आरगुमेंट, आरगुमेंट" फिर दबे स्वर में बोले, "सुविमल, कबसे तुम्हें

कह रहा हूँ कि यहाँ हाईकोर्ट का एक बेंच बिठाओ, वीरेन दा जैसे यह सब लीगल टेलेंट को काम में लगाया जा सकता। तुम्हारा उत्तराखंड भी नहीं होता, कामतापुरी भी नहीं होता। क्यों लीगल टेलेंट ! आरगुमेंट, आरगुमेंट।"

165

श्रीदेवी के नाच और जल्पेश अभियान को लेकर राजनीति

उद्योग मंत्री को कुर्सी खींचकर टेबिल के पास लाना पड़ा। फिर टेबिल पर दोनों हाथ रखकर वे बोले, "वीरेन दा, आपकी बात तो ऑकड़े के हिसाब से ठीक है, पर ग़ैर आँकड़े का हिसाब जोड़ेगा कौन ?"

उद्योग मंत्री वीरेन बाबू को नहीं पहचानते। राजनीतिक मामले में भी उनका परिचय कभी उनके साथ नहीं हुआ था। पर वह समझ गये कि परिस्थिति को यही सँभाल सकते हैं। फिर डिप्टी कमिश्नर एक काग़ज़ पहले ही दिखा चुके थे—उसमें पार्टनरों का नाम और भविष्य था। कार्यक्रम और सम्मेलन के अध्यक्ष के नाते उसमें इसी वीरेन्द्रनाथ बसुनिया का नाम है।

उद्योग मंत्री की जिज्ञासा के उत्तर में वीरेन बाबू ने ऑख उठाकर देख। संतोष बाबू ने पूछा, "ग़ैर ऑकड़े का हिसाब क्या है वह तो बताइये।"

उद्योग मंत्री के बात के लहजे से उत्तराखडी और कार्यक्रम के लोग अचानक जैसे समझ गये कि सम्मेलन या कार्यक्रम कैंसिल नहीं हो रहा, वीरेन बाबू ने तगड़ा तर्क रखा है।

उद्योग मंत्री ने जानबूझ कर ही यह समझने दिया या नहीं वह समझा नहीं जा सकता और जाना भी नहीं जा सकता। इतना सूक्ष्म हिसाब करके बात करना शायद संभव ही नहीं। पर उद्योग मंत्री का एक स्थूल विचार था कि आज के बाद कल सम्मेलन और कार्यक्रम है। किसी भी क़ीमत पर कोई कार्यक्रम रद्द नहीं किया जा सकता। अगर किसी तरह से जल्पेश्वर अभियान को रोका जा सके या कुछ दिन के लिये टाला जा सके और उसके लिये इन्हें राज़ी किया जा सके तो वही काफ़ी है।

उद्योग मंत्री ने कहा, "श्रीदेवी का नाच और आपका यह जुलूस—अगर एक ही रात हो तो हम सिर्फ़ लॉ एण्ड ऑर्डर के नज़रिये से आशंकित है। विभिन्न जगहों से लोग आयेंगे, आपके जुलूस में भी लोग आयेंगे, रात भर में तो सभी लोग जा नहीं सकते, अधिकांश लोग यहीं रुक जायेंगे, कोई भी मिसक्रियेंट कोई गड़बड़ी कर सकता है, इसी की बस चिंता है हमें।"

"वह चाहे तो कभी भी कर सकता है।" संतोष बाबू ने कहा।

"वह तो कर सकता है। पर श्रीदेवी की फ़िल्में आने पर कलकत्ता में सिनेमा

हालों के सामने इसीलिये पुलिस तैनात करनी पड़ती है। ऐसा सुनते हैं, और यहाँ तो खुद ही श्रीदेवी आ रही है। हालाँकि मैंने खुद तो देखा नहीं, पर जो रिपोर्ट मिली है, वह शायद सेक्स का सिंबल है। आप लोग अपने राजनैतिक सम्मेलन और कार्यक्रम में इस तरह की एक आर्टिस्ट को क्यों ला रहे हैं, समझ में नहीं आ रहा। जो भी हो, अपने के जुलूस को एक दिन पीछे कर दीजिये।''

''जुलूस, मतलब जल्पेश्वर अभियान ?'' संतोष बाबू ने पूछा।

सम्मेलन और कार्यक्रम के आयोजकों से समवेत गूँजने लगे। संतोष बाबू ने एकबार पीछे मुड़कर देखा। फिर पास ही बैठे नकुल बाबू के साथ बात करके जान लेना चाहा कि यह कितना संभव है और कितना असंभव। संतोष बाबू ने अपनी वकालत बुद्धि से पलभर में अनुमान लगा लिया कि श्रीदेवी का नाच और जल्पेश्वर अभियान का तय कार्यक्रम अपरिवर्तनीय है। इस बारे में किसी समझौते की गुंजाइश नहीं हो सकती। दूसरे किसी विषय में हो सकती है।

सुस्थिर खड़ा होकर बोला, ''मान्यवर, मंत्रीजी से हम उत्तराखंडवालों का एक अनुरोध है कि श्री वीरेन बसुनिया ने जो तर्क रखा, उसमें से एक-एक को लेकर बहस की जाये, वरना हम जिस तरह से सम्मेलन और फ़ंक्शन कर रहे हैं, हमें वैसा ही करने दें। हम अपने कार्यक्रम में किसी तरह का परिवर्तन नहीं कर सकते।''

मयनागुड़ी के एमएलए हेमेन बाबू फ़ौरन उठकर खड़े हो गये। उनके गले की चादर आधी गले में, बाक़ी की आधी कुर्सी पर रह गयी। वे दायें हाथ से चादर को कुर्सी पर डालकर कहते हैं, ''सुनिये, मैं एक बात कहना चाहता हूँ। वीरेन काका ने ही बात उठाई है। मैं खड़ा होकर कहना चाहता हूँ क्योंकि मैं सबका चेहरा देखना चाहता हूँ। वीरेन काका ने कहा है कि विषय के तीन पक्ष हैं—क़ानूनी पक्ष, क़ानून शृंखला पक्ष और राजनैतिक पक्ष। राजनैतिक उत्तराखंड आंदोलन अलगाववादी आंदोलन है कि नहीं, उत्तर बंग, पश्चिम बंग के अंतर्गत सुरक्षित रहेगा या बाहर आकर सुरक्षित रहेगा—ये सब राजनैतिक बातें हैं और इन बातों की भी चर्चा की जानी ज़रूरी है। चाहे वह इस जुलूस में हों, बाहरी मीटिंग में हों या पब्लिक मीटिंग या फिर बैठक में हों। हर जगह इस पर बहस की जानी चाहिये। हमारी पार्टी की ओर से हम वही राजनैतिक प्रचार करेंगे। आप लोग भी कीजिये पर उद्योग मंत्री महोदय के एक बेहतर सुझाव को, प्रस्ताव को आप लोगों ने ठुकरा दिया है। आप लोगों का जुलूस एक दिन पीछे हो तो इससे आपका क्या नुक़सान होता ? पर आप लोग उस पर भी राजी नहीं हुए। तो फिर आप लोग ही कहिये कि मयनागुड़ी और आसपास के क्षेत्र के लोगों की सुरक्षा के सवाल पर सरकार कैसे चुप्पी साध सकती है ? आप लोगों ने किससे इस कार्यक्रम के लिये चंदा उगाहा है ?

कौन हैं इसके पार्टनर ? रामगोपाल अग्रवाल—तमाम उत्तर बंग में नेपाल के साथ जो स्मगलिंग करता है, उसमें सबसे अधिक पैसा लगानेवाला, वह उस कमेटी में है।" इस बात से उत्तराखंडियों के बीच थोड़ी सी खुसर-पूसर होते ही हेमेन बाबू ने स्वर और थोड़ा तीखा कर लिया। इससे उनकी बातें जनसभा में भाषण देने जैसी लगने लगी। ऑफ़िसर लोग सर को झुकाकर सुनने लगे। "आप लोगों का एक और पार्टनर है सुखराम बर्मन। वह तम्बाकू के स्मगलिंग से अब शायद लखपति बनकर अपना नाम बदल लिया है। अब उसका नाम अमिताभ बच्चन है। आप लोगों का एक और पार्टनर है आसिंदर राय—गयानाथ जोतदार का जॅयाई। गयानाथ जोतदार सेटलमेंट के ख़िलाफ़ मुक़द्दमा करके जंगल के पेड़ काट-बेचकर बड़ा आदमी बन गया। आप लोगो के बहुत सारे पार्टनरों का यह परिचय है। आप लोग अगर उत्तराखंड सम्मेलन ही करेंगे तो फिर इन सब लोगों पर क्यों निर्भर कर रहे हैं ? क्योंकि, आप लोगों को पैसे की ज़रूरत है। और ये लोग आपको पैसे दे रहे हैं। ये लोग आप ही लोगों के पैसे से बंबई से श्रीदेवी को बुलवा रहे हैं और आप लोग वही पैसे और उन्हीं लोगों को लेकर जल्पेश्वर के शिव के नाम पर सरकार विरोधी जुलूस लेकर जायेंगे। सरकार-विरोधी होने पर हमको कोई एतराज़ नहीं। पर हम जानते हैं आप लोग जल्पेश्वर के पवित्र नाम को संकीर्ण स्वार्थ के लिये व्यवहार कर रहे हैं। वहाँ तिस्ता बूढ़ी की पूजा होगी। उस पूजा के अंत में आप लोग शपथ लेंगे तिस्ता बैरेज के विरुद्ध -आंदोलन करने के लिये। क्यों ? इसलिये कि गयानाथ जोतदार वंशानुक्रम से जो सब जमीन ग़ैरक़ानूनी तौर पर भोग-दख़ल करता आया है गोचीमारी, बासुबा, गाजोलडोया में, वह सब ज़मीन तिस्ता बैरेज में लेना नहीं चलेगा। तिस्ता बैरेज बन जाने पर लाखों किसानों का उपकार होगा। आप लोग यही नहीं चाहते। आप लोग चाहते हैं गयानाथ जोतदार जैसे, रामगोपाल अग्रवाल और अमिताभ बच्चन जैसे जोतदार, कालाबाज़ारी, स्मगलरों का उपकार करना। वीरेन काका इन सब बातों पर विचार करते हैं। जो साफ बात है, वह साफ़-साफ़ की जानी ही बेहतर है। आप लोग श्रीदेवी का नाच देखेंगे या हेमामालिनी का नाच देखेंगे—देखिये। पर इस नाच के नाम से बैरेज के विरुद्ध अभियान चलायेंगे, वह हम करने नहीं दे सकते। अगर यह हुआ तो हम भी जवाबी जुलूस निकालेंगे। हम जानते हैं एकाध महीने के बाद हमारे मुख्यमंत्री तिस्ता बैरेज का उद्घाटन करेंगे। उस समारोह में प्रदर्शन के लिये उत्तराखंड, कामतापुरी, गोरखालैंड सभी संगठित रहे हैं, यह भी पता है हमें। आपके सम्मेलन का उद्देश्य भी उस प्रदर्शन के लिय लोगों का जुगाड़ करना रहा है। हम भी जानते हैं धान का बीज कहाँ होता है। हम जानते हैं, बम्बई की श्रीदेवी को कलकत्ता लाने में कितना ख़र्च बैठता है। और यह पैसा कहाँ

से आता है। वीरेन काका ने काफ़ी तगड़ा तर्क देकर अपनी बात कही है। पर हम सीधे-सादे ढंग से कहना चाहते हैं कि बात कानून और व्यवस्था की नहीं, क़ानून की भी नहीं, बात राजनीति की है। आप लोगों ने राजनीति किया है, सो हम भी राजनीति ही करेंगे।''

166
उपेंद्रनाथ बर्मन और दोनों पक्षों की सहमति

हेमेन बाबू आख़िरी बार धप्प से कुर्सी पर बैठकर बोले। बैठकर उन्होंने चादर खींच ली। पर उनके चादर पर बैठ जाने से वह निकल नही पायी। हेमेन बाबू थोड़ा उठकर चादर को खीचकर निकाल ली और शरीर पर लपेट लिया।

हेमेन बाबू के भाषण के अंत में मीटिंग की आबोहवा बदल गयी। उनके भाषण के बीच ही हालत में बदलाव आता जा रहा था, पर यह समझ में नहीं आ रहा था कि वह कितना बदलेगा। वीरेन बाबू की बातो के बाद मीटिंग की आबोहवा जिस तरह से बदली थी, यह परिवर्तन उस तरह का न था। वीरेन बाबू ने मीटिग के नियम-कानून के बीच, मत्री और ऑफिसरो की बातों के बीच एक तगडा जवाबी तर्क खडा कर दिया था। उस जवाबी तर्क की ताकत को स्वीकार करते हुए ही उद्योगमंत्री ने थोडा नरम होकर मीमासा का एक प्रस्ताव रखा था। उस प्रस्ताव को मान लिया गया होता तो हेमेन बाबू शायद कुछ नहीं कहे होते। पर उसे स्वीकार न किए जाने पर हेमेन बाबू मीटिग के इतने समय के तमाम आलोचना की खिल्ली उडाकर वही सब बात ले बैठे जिन्हें अब तक इतने दिनों से टाला जा रहा था, जिससे बचा जा रहा था। सम्मेलन और कार्यक्रम के लोग मीटिंग में काफ़ी उद्विग्नता के साथ आये थे। पर मीटिग का परिवेश और परिस्थिति देखकर उन्हें कुछ आश्वासन-सा मिल गया था कि अंत तक सम्मेलन भी होगा, कार्यक्रम भी होगा। पर उद्योगमत्री के प्रस्ताव को ठुकरा देने के बाद हेमेन बाबू हालात को इस तरह से पलट कर रख देंगे, यह किसी ने भी सोचा नहीं था।

हेमेन बाबू के बैठने के साथ-साथ ही सुस्थिर उठ खड़ा हुआ था—''हेमेन बाबू ने एमएलए को धन्यवाद दिया कि उन्होंने हमारे ख़िलाफ़ अपने तमाम वक्तव्यों को साफ कर दिया है। पर उद्योगमत्री अचानक अपनी कुर्सी छोड़कर खड़े हो गये और सुस्थिर से बोले, ''आप बैठिये, बैठिये, अब कोई बात नहीं होगी, बैठिये।''

''आप लोगों ने हमें मीटिंग मे बुलाया है, और हमें बोलने नहीं देंगे ?'' कहते हुए संतोष बाबू खड़े हो गये, ''हेमेनबाबू को जो जी में आयेगा, वही आरोप

लगाते चले जायेंगे ? हम राजवंशियों की संस्कृति, धर्म, संस्कार सब-कुछ पर प्रश्नचिह्न लगायेंगे ?" तभी उद्योगमंत्री, सुस्थिर और संतोष बाबू तीनों खड़े थे, पर संतोष बाबू लंबे थे, और उनके गले की आवाज़ भी काफ़ी गंभीर थी, इसी का फ़ायदा उन्होंने उठा लिया—"हेमेन बाबू को राजवंशियों की ऐतिहासिक संस्कृति अब पसंद नहीं आ सकती है, वह कम्युनिस्ट होकर अब जल्पेश्वर मंदिर की महिमा, माहात्म्य को भूल सकते हैं, वह तिस्ता बूढ़ी की पूजा को कुसंस्कार सोच सकते हैं, पर हमारे लिए जल्पेश्वर सर्वश्रेष्ठ देवता हैं। तिस्ता बूढ़ी हमारे लिये माँ गंगा है। तिस्ता नदी नहीं, तिस्ता देवी है। हेमेन बाबू का यदि मन हो तो वे तिस्ता बैरेज की पूजा कर सकते हैं, पर हम तिस्ता बूढ़ी की ही पूजा करेंगे। उसमें अगर हमारा अपराध होता है, तो होने दो। पर इस तरह से हमारे—"

अचानक खाने की जगह के पार्टीशन के पास कुछ आवाज़ाही शुरू हो गयी। डिप्टी कमिश्नर चट से कुर्सी से उठ गये। उद्योगमंत्री के कान में कुछ कहकर बाहर चले गये। "उपेन बाबू" चारों ओर सुनायी देने लगा। उद्योगमंत्री बैठने की जगह की ओर एक बार मुँह बढ़ाकर संतोष बाबू से बोले, "उपेन दा आये हैं, अभी कम-से-कम थोड़ी देर के लिए इस आलोचना को बंद रखा जाये। उपेन दा के साथ हम सब थोड़ा बात कर लें। उसके बाद फिर आलोचना शुरू की जायेगी।" संतोष बाबू को बैठ जाना पड़ा।

सुविमल बाबू पैर झुलाकर बैठ गये। वन विभाग के राज्यमंत्री उठ खड़े हुए, फिर उद्योगमंत्री की ओर चले गये। डी.सी. और एस.डी.ओ. उनके साथ गये, मीटिंग एक तरह से खत्म ही हो गयी थी। उत्तराखंड का कोई-कोई बैठने की जगह की ओर गया उपेन बाबू के साथ भेंट करने के लिए, कोई दरवाज़े से बाहर चला गया। वीरेन बाबू अपने जगह पर ही बैठे रहे।

कुछ पल बाद ही मीटिंग इधर-उधर बिखर गयी। बैठने की जगह पर उपेन बाबू को घेर कर मंत्री लोग, मीटिंग की टेबिल पर बाक़ी के अफ़सरान और दूसरे लोग, बाहर बरामदे में और मैदान में उत्तराखंड और कार्यक्रम के लोग एक-एक गोले में बँध कर उत्तेजना में फटे पड़ रहे थे।

इस तरह के एक दल में सुस्थिर चीख कर नकुल से बोला, "आप जिसको मर्ज़ी उसे नचायें, हम सम्मेलन करके ही रहेंगे, हम और इस मीटिंग में रह नहीं सकते।"

संतोष बाबू अचानक सुस्थिर का कंधा बायें हाथ से दबाकर दायें हाथ की अँगुलियाँ नचाकर बोला, "तुम जैसे लोगों के चलते हमारा उत्तराखंड मारा जायेगा। पहले तुम एक ग़ैरक़ानूनी काम कर रहे हो—परमीशन ही नहीं लिया कांफ्रेंस का ? उस पर भी कल्चरल फंक्शन के लिए परमीशन लेकर पॉलिटिकल कांफ्रेंस कर रहे हो। गवरमेंट चाहे तो एक मिनट में तुम्हारे कांफ्रेंस को बंद करवा

सकती है। उसकी प्रतिक्रिया क्या होगी इसका अंदाज़ा लगा न पाने से सरकार वह कदम उठा नहीं रही और हिम्मत भी नहीं कर पा रही। सरकार की सभी पार्टियाँ अगर तुम्हारे खिलाफ़ निकल पड़ीं तो तब तुम क्या करोगे ? क्या कर सकोगे ? इससे तो कहीं बेहतर यही है कि हमें किसी कम्प्रोमाइज पर पहुँच जाना चाहिए। बात जल्पेश्वर अभियान को लेकर है—वह अगर नहीं किया जा सका तो फिर इस कांफ्रेंस का कोई मतलब ही नहीं रह जाता। उसके लिए अगर एक दिन पीछे करना पड़े या फिर जगह ही बदल दी जाती—यानी कि एक बदलाव, एक ज़रा-सी चेंज में राज़ी हो जाओ। तुमलोग अगर कुछ भी न छोड़ो, तो वे भी भला कैसे राज़ी होंगे ? बुलाओ, सभी को बुलाओ, वीरेन दा कहाँ हैं ?"

संतोष बाबू ने सुस्थिर के कंधे पर से हाथ उठा लिया। सुस्थिर वहीं खड़ा रहा—उसके कंधे पर झोला था, बायें हाथ की कोहनी के समकोण में मोड़, पेट और छाती के बीच, दायाँ हाथ होंठ पर रखा था, चेहरे पर थोड़ी-थोड़ी दाढ़ी उस पल उसे काफ़ी अकेलापन महसूस हो रहा था, जैसे कि सुस्थिर समझ गया था कि वीरेन बाबू, नकुल बाबू, संतोष बाबू आदि सबके एकमत हो जाने पर उसके लिए और कुछ करने को रह नहीं जायेगा। तब सुस्थिर शारीरिक तौर से भी अकेला था—संतोष बाबू उसके सामने खड़े भर रहे, बाक़ी के सब दौड़ गये थे और कई लोगों को बुलाने के लिए जिससे मीटिंग शुरू होने के पहले वे आपस में बातचीत कर सकें।

नकुल, जगदीश मीटिंग वाले कमरे से जल्दी बाहर निकल आये थे। आकर बोले—"वीरेन काका को बुलाकर उपेन बाबू बातें कर रहे हैं। हमें ही तय करना पड़ेगा। यहीं पर बैठिए। "सुरेन, शांति, भूपेन बाबू तब तक बैठ चुके थे इधर मैदान में ही। यहाँ इन्हें इतने सारे लोगों को मैदान के बीच गोलबंध होकर बैठते देखकर जो इधर-उधर खड़े थे वे भी आकर गोलाई में बैठ गये। यहाँ दबे स्वर में एक पूरी की पूरी मीटिंग शुरू हो गयी थी।

कुछ देर बाद सर्किट हाउस के बरामदे से बुलाहट शुरू हो—सभी आ जाइये, मीटिंग शुरू हो गयी है।"

सुनते ही वे सब के सब एक साथ उठ खड़े हुए और मीटिंगवाले कमरे की ओर बढ़ गये। नया कोई आदमी नहीं आया। बल्कि दो-एक आदमी चले भी गये थे शायद। कौन, कहाँ बैठा था वह जगह उसके लिए निर्दिष्ट हो चुकी थी। फलस्वरूप मीटिंग को अपनी पहले की-सी हालत में आने में देर नहीं लगी। बस इतना ही फ़र्क था—उद्योगमंत्री वीरेन बाबू की बातें सुनने के बाद अपने चेयर को जहाँ खींच लाये थे, वहाँ उपेन बाबू बैठे गये थे। और उपेन बाबू के पासवाली चेयर पर उद्योगमंत्री। ऑफ़िसर लोग एक-एक चेयर पर सरक गये थे।

उद्योगमंत्री ने खड़े होकर कहा—"हमलोगों ने उपेन बाबू से अनुरोध किया

था आज की मीटिंग में रहने के लिए। पर वे काफ़ी बीमार हैं। इसी लिए सबसे मिलकर जल्दी चले जायेंगे। अभी वे चले जायेंगे। इसीलिए आप सब लोगो को वह देखना चाहते हैं।"

उपेन्द्रनाथ ने खड़े होकर सबको नमस्कार किया। सुस्थिर और कई लोग आँखें फाड़-फाड़कर उस किंवदंती के नाटक को देख रहे थे। वह सिर्फ़ अपने समय के एक राजवंशी एमएलए ही नहीं थे, देश का जो दायित्व उन्हें दिया गया था, उसे उन्होंने बखूबी निभाया था। सिर्फ़ निभाया ही नहीं वहाँ अपने कृतित्व का प्रदर्शन भी किया था। दिल्ली, कलकत्ता, लंदन, लॉस एंजेल्स—इन राज्यों की विधान परिषदें एक समय में इनके निर्देश पर ही संचालित हुई थीं, इसी राजवंशी के। इस पर भी उन्होंने जीवन में कभी भूला नहीं कि वे राजवंशी हैं। फिलहाल उन्हीं का लिखा जल्पेश्वर मंदिर का इतिहास प्रामाणिक रूप से उपलब्ध है। सुस्थिर आदि इसी आधार पर जल्पेश्वर अभियान के लिए प्रचार कर रहे हैं। उपेंद्रनाथ अपने तसर चादर को ओढ़े हुए थे विवेकानदी स्टाइल में। सिर पर मामूली बाल, मूँछें—दोनों ओर पतली और लंबी। प्राय· बाल पक चुके थे। चेहरे पर मुस्कराहट—विनय और आत्मविश्वास से भरी मुस्कराहट थी। आँखें नीचे की ओर झुकी हुई, थोड़ी शर्मीली-सी। कुर्ते का ढीला-ढाला हाथ झुलाकर सभी को नमस्कार करके बोले, "मैं चल रहा हूँ। आप सभी को मेरा नमस्कार। सब मिलजुलकर एकमत होकर सब तय कर लीजिये। 'अच्छा'—कहकर थोड़ा मुड़ गये। उद्योगमंत्री कुर्सी छोड़कर उठ खड़े हुए—साथ ही सभी ने खडे होकर हाथ जोड़ दिया। उद्योगमंत्री दो क़दम आगे बढ़ आये, डी.सी. पीछे से बोले, "सर, मैं उन्हें छोडकर आ रहा हूँ। आप मीटिंग में बैठिये। उपेन्द्रनाथ ने थोड़ा घूमकर नमस्कार किया और धीरे-धीर निकल गये। उद्योगमंत्री आकर अपनी पहलीवाली कुर्सी पर बैठ गये।

उद्योगमंत्री के बैठते ही संतोष बाबू ने पूछा, "उपेन दा से यह तो कहा नहीं कि श्रीदेवी नाचेगी।"

सबलोग ठठाकर हँस पड़े सुविमल बाबू बोले, "उपेन दा से श्रीदेवी के नाच का उद्घाटन करवाना कैसा रहेगा, हेमेन ?"

फिर से सभी की हँसी फूट पड़ी—जैसे कि यहाँ सबलोग परिवार के वयोवृद्ध से छिपकर कोई मज़ा ले रहे हों। वहाँ उनके बीच कोई मतविरोध नहीं। डी. सी. लौटकर अपनी कुर्सी पर बैठ गये। फलस्वरूप, उद्योगमंत्री और डी.सी. के बीच एक कुर्सी खाली पड़ी रही।

संतोष बाबू ने अपना लंबा हाथ उठाकर कहा, "सुविमल, देखो, हमारा एक प्रॅपोजल है। एनफ इट हैज बीन जेनेरेटेड बाई द फायरी ओराटरी ऑफ अवर इन्टीमेटेड एमएलए फ्राम मयनागुड़ी।"

"उसका जवाबी हमला और गर्मी फैलाने के लिए हमारा ज्वालामुखी वक्ता सुस्थिर उठकर खड़ा जरूर हो गया था, पर उपेन दा की मौजूदगी ने हमें बचाया है।" संतोष बाबू सबकी ओर घूम-घूमकर बातें कर रहे थे, ख़ासकर उत्तराखंडियों की ओर देखकर। खुद थोड़ा हँस भी रहे थे। पास ही नकुल मुस्कराते हुए बैठा था, जैसे अपनी हँसी के ज़रिये ही वह संतोष बाबू के प्रस्ताव को जहाँ तक हो सकता था, मदद करना चाहता था।

संतोष बाबू कहते जा रहे थे—"क़ानून और व्यवस्था के मामले में सरकार की चिंता देखकर मैं प्रस्ताव रख रहा हूँ कि उत्तराखंड सम्मेलन जहाँ, जिस तरह से हो रहा है, वैसा ही हो, पर आख़िरी दिन का जल्पेश्वर अभियान सम्मेलन-स्थल से शुरू न होकर, चौराहे से शुरू हो।"

हेमेन बाबू फ़ौरन बोले, "और जो करना हो करिये, पर सम्मेलन को हटाया या बंद नहीं किया जा सकता। ख़राब आबोहवा में तो अभियान ख़त्म ही हो जायेगा। चौराहे पर लोग खड़े होंगे कहाँ ?"

हेमेन बाबू और संतोष बाबू हँस पड़े, पल भर को लगा कि सभी लोग यह प्रस्ताव मान लेंगे पर हेमेन बाबू अभियान का विचार छोड़ने के लिए और ज़ोर देंगे कि नहीं, इसको लेकर एक दबी-दबी-सी फुसफुसाहट शुरू हो गयी।

हेमेन बाबू ने कहा, "इससे तो बेहतर है कि आप लोग जल्पेश्वर की ओर और थोड़ा बढ़ जाइये, आप लोग न हो तो टाउन के बाहर ही इकट्ठे होइये।"

"ठीक है, वही होगा।" कहकर नकुल ने हाथ उठा दिया। और किसी के आपत्ति न उठाने पर नकुल खड़ा होकर बोला, "मै कल्चरल फ़ंक्शन के पार्टनरों की ओर से माननीय पर्यटन मंत्री, उद्योगमंत्री, वन मंत्री और एमएलए साहब को इस फ़ंक्शन में, और ख़ास तौर पर आख़िरी दिन, सपरिवार आने के लिए आमंत्रित करता हूँ। मेरा अनुरोध है कि वे हमारा निमंत्रण स्वीकार कर हमें गौरवान्वित करें।"

"अरे हम तो आना चाहते हैं, इसी से तो आप लोगों को इतना करके उत्तराखंड को हटाने के लिए कहा। उत्तराखंड को हटाओ, श्रीदेवी को रखो, तो तुमलोगों ने सुना ही नहीं बिल्कुल।" कहते हुए सुविमल बाबू कुर्सी छोड़कर उठ खड़े हुए।

167
सम्मेलन और कार्यक्रम का परिसर

मयनागुड़ी ब्लॉक ऑफ़िस के पासवाले मैदान में शामियाना डालकर विशाल पंडाल बनाया गया था। पंडाल में पुआल के ऊपर तिरपाल और दरी बिछाकर बैठने की व्यवस्था की गयी थी। सामने की ओर ज़रा कोने में स्टील और लकड़ी की

फ़ोल्डिंग चेयर डालकर शामियाने को घेरा गया था। इन कुर्सियों के चलते दर्शको को कोई असुविधा होनेवाली नहीं थी। पुआल के ऊपर बिछाई गयी दरी के आसन को बाँस से तीन भागों में बाँटा गया था। फ़र्स्ट, सेकेण्ड और थर्ड—तीन भागों में विभाजित किया गया था—फ़र्स्ट क्लास, सेकेण्ड क्लास और थर्ड क्लास। पूरब की ओर कोई गेट नहीं था, पश्चिम की तरफ़ तीन बड़े-बड़े गेट थे। उनमे पर्दे झूल रहे थे। इस पूरे पंडाल को घेरकर चारो तरफ़ टीन का घेरा गया था। अधिकांश भाग कच्चे बाँस से घेरा हुआ था। स्टेज के पीछे और सामने लकड़ी का घेरा था। उसमें स्क्रू लगाकर टीन की चादरों को लगाया गया था। अदर जाने का रास्ता काफ़ी चौड़ा था। उन रास्तों को फिर बॉस के जरिये दो भागों में बॉटा गया था। पुरुषों और महिलाओं के लिए अलग-अलग गेट। स्टेज के पीछे, स्टेज से थोड़ी कम ऊँचाई पर लकड़ी का तख़्ता लगाकर ग्रीनरूम बनाया गया था। ग्रीनरूम और स्टेज की लकड़ी में टीन लगाकर अलग से घेरा गया था। अंदर जाने के लिए दोनों तरफ़ दो कोलप्सिबल गेट—उधर से स्टेज पर जाया जा सकता था। ग्रीनरूम के लिए भी एक लकडी का दरवाजा बनाया गया था। आवश्यकता पड़ने पर इसे अंदर से भी बंद किया जा सकता था।

इस पंडाल के बाहर मैदान में तरह-तरह की दुकानें बनी थी। अधिकाश दुकानें खाने-पीने की चीज़ों की थीं। एक काफी लंबोतरा दुकान का चूल्हा बाहर की ओर था। वहाँ जलेबी और समोसे तले जा रहे थे। उस दुकान मे अदर बैठने की व्यवस्था थी। बहुत-से लोग वहाँ बैठकर खा-पी थे, पर अधिकांश लोग बाहर चूल्हे के सामने खड़ा होकर गरम-गरम जलेबी और समोसे अख़बारो के टुकडे पर रखकर खाना पसंद करते हैं। इसी से दुकान में दो कैश-बॉक्स थे, एक दुकान के भीतर और दूसरा बाहर चूल्हे के पाट पर। इस दुकान के अलावा छोटी और मझोली साइज़ की बहुत सारी दुकानें थीं। सिर्फ़ एक टेबिल और एक चूल्हे वाली बहुत सारी चाय की स्टाल लगी थीं। मैदान पर प्लास्टिक की चादर बिछाकर चासनी में पगी सूखी मिठाइयों का अंबार लगा था। एल्यूमीनियम के सॉसपैन में रसगुल्ला और लड्डू लिए एक आदमी स्टूल पर बैठा था। सर के ऊपर खपरैल की छत, नीचे काँच के शो-केसों में औरतों के तरह-तरह के नकली गहने सजे हुए थे। रंगीन काग़ज़ो पर मढ़े हुए। पीछे लकड़ी के तख़्तों पर तरह-तरह के खिलौने। एक दुकान में प्लास्टिक की बाल्टी और गमले बिक रहे थे। खुले मैदान के बीच में एक पर्दा में क़तार की क़तार बैलून लगाये गये थे। थोड़ी दूर पर टेबिल पर एक खिलौने की बंदूक—एअर गन थी। इन बैलूनों पर नंबर दिये गये थे और नीचे प्राइज का सामान भी सजाकर रखा गया था, उनपर भी नंबर थे। ढिबरी जलाकर चनाचूर, बादामवाले और तिल के लड्डूवालों की भीड़ लगी थी। रास्ते से होकर भीतर जाने पर बायें-दायें दो-दो पान-सिगरेट की दुकानें—कुर्सी

पर लगी हुई थीं। भीतर,जाने के रास्ते के दायीं ओर पान-सिगरेट दुकान के पीछे साइकिल, मोपेड, स्कूटर और मोटरसाइकिलों का स्टैंड बना था।

यह मैदान ब्लॉक ऑफ़िस के सामने था, पर रास्ते से होकर आने के लिए यहाँ कोई व्यवस्था नहीं थी। रास्ता मैदान के काफ़ी नीचे रह था। रास्ते से मिट्टी कटते-कटते एक बड़े-से नाले में आकर मिली थी। नाला में इस सर्दी के मौसम में भींगी काली मिट्टी और उसके ऊपर काई का अंबार लगा था। पर हर कहीं एक जैसा नहीं। कहीं पर काली भींगी मिट्टी का टील तो, कहीं गड्ढा था। यह नाला सरकारी ज़मीन में आता है। इसी से जिसकी मर्ज़ी अपनी ज़रूरत के मुताबिक मिट्टी खोदकर ले जाता है और अपनी ज़मीन में डालकर उसे ऊँचा कर लेता है। इसके चलते रास्ते के क़रीब एक सूखी खाई-सा नाला बन गया है।

रास्ते से सीधे नाले को पार करके ऊपर आ पाना कतई संभव नहीं था। इस नाले के ऊपर बाँस या लकड़ी का अस्थायी पुल भी नहीं बनाया गया था। पर श्रीदेवी की गाड़ी के लिए, सर्वसाधारण के लिए निषिद्ध, एक लकड़ी का कल्वर्ट बनाया गया था—यह आम आदमियों के लिये नहीं था। ब्लॉक ऑफ़िस में जाने का बड़ा-सा कल्वर्ट ही यहाँ मुख्य प्रवेश-पथ था। उस कल्वर्ट से होकर नाले को पार करके ब्लॉक ऑफ़िस की दीवार से दायीं ओर मुड़कर मैदान में पहुँचा जा सकता था। वहां पर जो एक-आध गड्ढे थे उसे मिट्टी से भर दिया गया था। दो-चार ट्रक बालू डालकर लेवल बना दिये जाने से यह जगह मुख्य सड़क-सी नजर आ रही थी। ब्लॉक ऑफ़िस की दीवार के पास वाली जगह सँकरी होने पर भी वहाँ से मोटरसाइकिलें चली आती थीं।

पर मुख्य सड़क के ऊपर इस सम्मेलन के लिए एक साधारण पुल न बनाये जाने पर कोई जगमगाता गेट नहीं बनाया जा सका था। निखिल बंग उत्तराखंड सम्मेलन लिखा नीले रंग का एक फेस्टून पंडाल के पीछे शामियाने के ऊपर रास्ते की तरफ मुँह करके टॉग दिया गया था। और एक फेस्टून पान-सिगरेट की दुकान के निकट तिरछे रास्ते की ओर टाँगा गया था। पर गेट के न होने पर दोनों फेस्टून जैसे अलग से झूलते हुए नज़र आ रहे थे। कुछ खालीपन का भी आभास हो रहा था। पर रास्ते से दोनों ही फेस्टून ठीक नज़र आ रहे थे। बस से लोगों को भी नज़र आ रहा था, पर इस सम्मेलन के लोगों की नज़र से परे ही रह जाता था यह फेस्टून। टीन के बाड़े पर रस्सी से और एक फेस्टून टाँगा गया था पर रस्सी तनी न होने के कारण उसमें इतना सारी सिलवटें आ गयी थीं कि ठीक से पढ़ा ही नहीं जा रहा था। इसके अलावा टीन के ऊपर काग़ज़ों पर लिखे हुए तरह-तरह के पोस्टर थे—किस दिन कौन-सा कार्यक्रम है लिखा हुआ था। वही सबकी नज़रों में अधिक पड़ता था।

मायनागुड़ी के चौराहे पर एक गेट बनाया गया था पेट्रोल पंप के क़रीब। हाईवे पर होने से गेट को काफ़ी ऊँचा बनाया गया था, जिससे आसाम से और आसाम की ओर जाने-आनेवाले, पहाड़ जैसे सामान लदे ट्रक आसानी से पार हो सकें। इतना ऊँचा बनाने के लिए इलेक्ट्रिक और फ़ोन के तारों के ऊपर गेट को बनाया गया था, पर हाई वोल्टेज तारों से काफ़ी नीचे रखा गया था। इतने बड़े रास्ते के इस पार से उस पार तक का गेट इतना लंबा और चोड़ा हो गया था कि आँख में पड़ने से नजरें वहाँ ठहर जाती थीं। ऊपर लिखा था—'निखिल बंग उत्तराखंड सम्मेलन, मयनागुड़ी।' पर वह नज़र में पड़ना ही मुश्किल था। गेट का ऊपरी हिस्सा जितना बड़ा था, उसका खंभा उतना मोटा नहीं था। ऊपर का जो अंश तिरछा होकर दोनों खंभों से जुड़ा था, वह काफी मजबूत था। फलस्वरूप गेट जैसे दोनों ओर का और ऊपर के दुकान-पाट, घर-द्वार, पेड़-पौधो से मिल गया-सा नज़र आता था। ऐसे मिला हुआ नजर आता था कि ट्रक, बस पर से तो नजर ही नहीं आता, यहाँ तक कि रिक्शे पर बैठकर जाने पर भी आँखों में नही पड़ता था। पर एक बार अगर नजर में पड गया तो बार-बार ही दीखता था—हाँ मानना पडेगा, गेट जैसा एक गेट बना था। सात दिनों तक चलनेवाले इस सम्मेलन में जो लोग आ-जा रहे थे, उनके लिए और चारा भी क्या था गेट को देखे बिना ? पर सम्मेलन के मुख्य स्थान पर गेट के न होने से इस चौराहे का गेट ही सम्मेलन का गेट है, ऐसा समझा नहीं जा सकता था।

सम्मेलन के मैदान में साइकिल, मोपेड, मोटरसाईकिल, स्कूटर रखने की व्यवस्था तो की ही गयी थी, पर बैलगाड़ी रखने का कोई इंतज़ाम नही था। अगर रास्ते मे एक पुल बनाया जाता, तो इतने बड़े मैदान का एक भाग बैल-गाड़ियो से भर गया होता जैसा कि आमतौर पर हाटों में होता है। पुल के न होने से बैलगाड़ियों को रास्ते के पास ही लाइन लगाकर खड़ा करना पड़ रहा था। इसमे भी सहूलियत नहीं थी। नेशनल हाईवे होने पर भी रास्ता काफ़ी चौड़ा नहीं था। अप-डाउन गाड़ी का रास्ता छोड़ देने पर और कितनी जगह बची रहती है ? वहीं पर से ही तो नाले की ढलान आरंभ हो जाती थी। उस ढलान पर बैलगाड़ी उतार देने से ऊपर लाना मुश्किल हो जाता। फिर बैलगाड़ियों की तादाद भी कुछ कम नहीं थी। शाम का फंक्शन देखने के लिए दोपहर के बाद से ही आस-पास के गाँवों की औरतें, बच्चे पैदल चलकर, रिक्शे में और बैलगाड़ी में आना शुरू हो गये थे। फ़ंक्शन के शुरू होने से पहले ही मैदान-रास्ता मिलकर एक मेला जैसा दिखायी देने लगा था। रास्ते में बड़े-बड़े पेड़ों के नीचे बैलगाड़ियों को रखा जाता।, बैलों को गाड़ी के पहियों में या फिर खूँटी गाड़कर बाँध दिया जाता। औरत-बच्चे तरह-तरह के रंगीन कपड़ों में सजे पेड़ों के नीचे सुस्ता कर प्रतीक्षा करते—जब तक कि उन्हें ले जाने के लिए देऊनिया आ नहीं जाता।

168
उद्‌घाटन समारोह के विभिन्न भाषणों का सार-संक्षेप

शनिवार के दिन सुबह सम्मेलन का उद्‌घाटन समारोह हुआ। समय सुबह के आठ बजे। पर लोगों के आते-आते नौ बज गये। सुबह सिर्फ़ ध्वजारोहण और कुछ विशेष वक्ताओं का भाषण था। राजवंशी समाज के प्रधान नेता पंचानन मल्लिक ने झंडा फहराया। आसाम और दार्जिलिंग से आये हुए दो प्रतिनिधि और स्थानीय कई व्यक्तियों के भाषण हुए। जो स्थानीय लोग बोले थे वे उत्तराखंड में शामिल नहीं हुए थे। कई लोग किसी भी पार्टी में नहीं थे, पर विभिन्न पेशे और राजनीति में अपने को प्रतिष्ठित कर चुके थे।

इतने बड़े पंडाल में आख़िर तक सौ-डेढ़ सौ लोग उपस्थित थे। उनमें से बहुत-से शाम के सांस्कृतिक कार्यक्रम के साथ जुड़े थे। सुस्थिर के साथ काम करनेवाले कुछ प्राइमरी शिक्षक इकट्ठे आये हुए थे। और मयनागुड़ी बाज़ार का जो व्यापारी सांस्कृतिक कार्यक्रम के साथ जुड़ा था उनमें से भी कई आये थे। इसके अलावा विभिन्न अंचलों से भी कई लोग आये थे। उन्हें प्रतिनिधि ही कहा जाता था—जितने दिनों तक सम्मेलन चलेगा, उतने दिनों तक वे रुकेंगे। इसके अलावा सम्मेलन में उपस्थित थे ऐसे लोग जो राजवंशी नहीं थे। वे किसी तरह से भी उत्तराखंड आंदोलन के साथ जुड़े नहीं थे। उनमें से एक 70-71 साल की उम्र में लाटागुड़ी क्षेत्र में किसानों का एक अलग क्षेत्र बनाने के लिए किसानों के हाथ से मार खाकर अस्पताल पहुँचे थे। अस्पताल के बेड से उन्हें गिरफ्तार किया गया था, उनके बेड के चारों तरफ़ पुलिस का पहरा बैठा दिया गया था। कुछ दिनों बाद उन्हें कलकत्ते के एक अस्पताल में बदली कर दिया गया। वहाँ आर्थोपेडिक्स ऑपरेशन किया गया। इसके बाद जेल में भी रहना पड़ा। कुल मिल-मिलाकर उन्हें सात-आठ साल बाद छोड़ा गया। दाढ़ी बढ़ी तब भी थी, अब भी है। पर दाढ़ी का अधिकांश भाग अब सफ़ेद हो चुका था। अब वह जलपाईगुड़ी में ही रहते थे, अपने बाबा के घर। कुछ करते नहीं थे। पर बीच-बीच में यहाँ के स्थानीय आंदोलन में उपस्थित रहते थे। उनको कुछ करने को भी नहीं था। पर इस तरह की स्थानीय समस्याओं के मसले पर उनका काफी आग्रह रहा है। वे साथ में एक दोस्त को लेकर आये थे। उन्हें किसी ने आमंत्रित किया था या नहीं या फिर आने के लिए कहा था या नहीं-इन बातों का कोई सवाल ही नहीं उठता। पायजामा-कुर्ता-दाढ़ी और एक चादर में ऐसे परिचित एक सज्जन को देखने से इस तरह के सम्मेलन में एक ज़ोर आ जाता है।

ठीक इसी तरह से धूपगुड़ी और वीरपाड़ा अंचल से दो परिचित कांग्रेसी नेता भी आये थे। अनिल राय और देवकांत छेत्री का ज़िला कांग्रेस के नेता

के रूप में कोई ख़ास पहचान नहीं थी पर स्थानीय तौर पर कांग्रेसी नेता के रूप में इनका जो परिचय है, वह निर्वाचन के समय काफ़ी काम आता है। कांग्रेस की सरकार होने पर स्थानीय मसलों को लेकर इनकी एक भूमिका रही है। अब ये काफ़ी बूढ़े हो चुके थे। खुद की कुछ ज़मीन-जायदाद थी पर लोगों के विभिन्न मामले-मुक़दमे या सरकार के पास तरह-तरह के कामों के छोटी-मोटी तदबीर-सिफ़ारिश से ही इनकी ख़ास आय हो जाया करती थी। ऐसा कोई बड़ा काम नहीं—इन सब कामों को ख़राब अर्थ या देशी भाषा में कहा जाता है देऊनियागिरी। अब काफ़ी दिनों से वह आमदनी नहीं थी, यह भूमिका भी नहीं रही। कांग्रेस की सरकार होती तो राजनैतिक दलाली का जो आत्मविश्वास इनके चेहरे पर झलकता, आज वह भी नहीं था। वे स्थानीय रूप से नेतृत्व प्रदान करने में अभ्यस्त हो चुके थे। पंचायत-वंचायत के होने से गाँव में नये नेता उभर कर आ गये थे। उस नये नेतृत्व मे ये लोग कोई ख़ास नहीं थे। पर पंचायत जब नहीं थी तब ये लोग ही पचायत थे। उत्तराखंड आंदोलन मुख्यतया ग्रामाचलो को लेकर ही होगा, ऐसी आशा की जा रही थी। इसी से इनके चेहरे-मोहरे पर कुछ आशा दिखायी दे रही है कि शायद उत्तराखंड आंदोलन उनको पुराना नेतृत्व वापस दिला दे। पर उत्तराखंड जिस तरह से जुलूस, मीटिंग, सम्मेलन और अपनी माँगे पेश कर रहा था, इस तरीके के वे अभ्यस्त नहीं थे। बल्कि इन सबसे वे दूर रहना चाहते थे।

उद्घाटन वाले दिन तरह-तरह के भाषण थे। उत्तराखंड का अपना झंडा फहराया गया। लाल तिकोने कपड़े के बीच सफेद पूर्ण सूरज का चिह्न। बाद में इस नये झंडे की व्याख्या करते हुए अध्यक्ष पंचानन मल्लिक ने कहा था। हालाँकि ठीक तरह से नहीं कह पाये थे, उनके छपे हुए अध्यक्षीय भाषण में लिखा था, "कामतापुर राज्य मुक्ति आंदोलन का इस पल झंडा रक्तवर्ण त्रिकोण है और बीच में मध्याह्नकालीन श्वेत सूर्य की घोषणा की गयी है। उत्तराखड दल प्राच्यदर्शन में विश्वास रखता है। पौराणिक युग से प्रागैतिहासिक युग तक त्रिकोण ध्वज प्रचलित रहा है। त्रिकोण का अर्थ है त्रिगुण यानी सत्व, रज, तम। मातृरज का रंग भी लाल होता है सो यह शक्ति का प्रतीक है। त्रिकोण के बीच का रंग सफ़ेद है, सो यह शक्ति का प्रतीक है। अर्थात् सूरज ज्ञान का प्रतीक है। शक्ति और ज्ञान के समन्वय में ही विकास का पथ है। जैविक, त्रिगुणात्मक त्रिकोण श्वेतसूर्यसमन्वित ध्वज संपूर्ण अहिंसात्मक, लोकतांत्रिक पथ पर ज्ञान के आलोक से दल के क्रांतिकारी बिचारधारा को लक्ष्य तक पहुँचाने की दृढ़ता की घोषणा करता है।"

अध्यक्ष, उद्घाटनकर्ता और प्रमुख नेता पंचानन मल्लिक के भाषण में भी यही विषय प्रमुख रहा—भारतीय हिंदू दर्शन में विश्वास, भारतीय संविधान के प्रति

विश्वास, केन्द्रीय सरकार पर विश्वास और कलकत्ते के नेतृत्व के प्रति संपूर्ण अनास्था। उनके भाषण में ही स्वाधीन कामतापुर राज्य प्रतिष्ठा का दावा किया गया। उस दावे के समर्थन में इतिहास से भी कुछ-कुछ तर्क उठाया गया। पर बार-बार अपने उपजातीय अस्तित्व के स्वतंत्रता की घोषणा के साथ मिला जा रहा था सवर्ण हिंदू समाज के प्रति आनुगत्य का संस्कार।

उनका भाषण गीता के एक उद्धरण से शुरू हुआ था, वह भी अनुवाद से नहीं, संस्कृत से—

हतो वा प्राप्यसि स्वर्गम् जित्वा वा भोग्यसे महीं
तस्मादुत्तिष्ठ कौंतेय युद्धाय कृतनिश्चयः।।
सुखदुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ
ततो युद्धाय युज्यस्य नैवं पापमृवास्यासे।।

उन्होंने पहले से ही कह दिया था, "भारतवर्ष मातृभूमि है। भारतवर्ष की अखण्डता और राष्ट्रीय एकता की रक्षा के लिए हरेक भारतीय की तरह हम भी हर तरह का त्याग करने के लिए प्रस्तुत हैं।" उसके बाद उन्होंने कहा, "पश्चिम बंग राज्य उत्तरांश के लोगों के सर्वांगीण प्रगति, उन्नति के लिए पश्चिम बंग सरकार को आज तक जो करना था जो कि परम आवश्यक था, वह नहीं किया। सबसे अधिक अन्याय और शोषण हुआ है यहाँ बसनेवाले बहुसंख्यक राजवंशी सम्प्रदाय, मुसलमान, सर्वहारा नमशूद्र और दूसरे बहुत-सी उपजाति और दूसरे सम्प्रदाय के लोगों का। इन सभी अन्याय-अत्याचार के ख़िलाफ़ संगठित हुई है उत्तराखंड पार्टी। उत्तराखंड दल का एकमेव उद्देश्य है उत्तरबंग को पश्चिमबंग से अलग करके भारतीय संविधान की धारा 3 के मुताबिक कामतापुर नाम से एक समृद्धिशाली अंग-राष्ट्र का गठन करना और कलकत्ता केंद्रित राजनैतिक षड्यंत्रकारी पूँजीवादी नेताओं के शोषण से उत्तर बंगवासियों की रक्षा कर उनके चेहरे पर हँसी खिलाना। .. .आप लोगों को पता है कि प्राचीन काल में भारत में कामतापुर राज्य का गठन हुआ था। महाराजा नरनारायण के शासनकाल में इस कामतापुर राज्य की सीमा आसाम और उत्तरबंग तक विस्तृत थी। पर समय-क्रम से कामता राज्य की सीमा कुछ परिवर्तित होती गयी और तमाम उत्तरबंग के बीच ही सीमित हो गयी। . ..उत्तरबंग का कोई भी भाग सिराजुद्दौला के शासनाधीन नहीं था। 23 जून, 1757 को प्लासी के मैदान में सिराजुद्दौला के अंग्रेज़ों के हाथों पराजित होने से ही बाङ्लादेश अंग्रेज़ों के शासनाधीन हो गया। पर यह बात इतिहास से प्रमाणित हो चुकी है कि कामतापुर राज्य कभी भी बंगदेश का हिस्सा नहीं था। स्वतंत्रता के बाद भारत सरकार ने उत्तरबंग की पृथक रूप से शासन-व्यवस्था करनी चाही थी।" भाषा पर आधारित राज्य-पुनर्गठन कमीशन जब उत्तरबंग में आया तो उस कमीशन के आगे उत्तरबंग को कामतापुर नाम के एक राज्य के रूप में घोषणा करने का

दावा किया गया था—13 मई 1955 को इस कमीशन के मान्यवर सदस्य हृदयनाथ कुजरूँ, मि. पनिकर और दूसरे सदस्यो ने कामतापुर राज्य के गठन को युक्तिसंगत ठहराया था और प्रस्ताव भी किया था। पर तत्कालीन पश्चिम बंग के मुख्यमंत्री विधानचंद्र राय ने प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू को तरह-तरह से समझा-बुझाकर कामतापुर राज्य को पश्चिम बंगाल के भीतर ही रखा। इसके बाद बंबई को तोड़कर महाराष्ट्र और गुजरात (1960), आसाम तोड़कर नगालैंड (1962), पंजाब को तोड़कर हरियाणा (1966), आसाम तोड़कर मेघालय और अरुणाचल (1971), मद्रास को तोड़कर आंध्र (1953) का गठन किया गया था"—यह सब उदाहरण उन्होंने रखे।

पर पंचानन बाबू के भाषण का प्रमुख भाग कुछ अलग तरह से इस इतिहास पर ही निर्भर रहा। मौजूदा हालात के बारे में, हाली समस्याओं की विशेषता के बारे में उन्होंने कुछ विशेष बात नहीं कही।

बल्कि उन बातों को नक्सलबाड़ी से आये संपत राय ने अधिक सही और स्पष्ट ढंग से रखा। पहले-पहल जब नक्सलबाड़ी हुआ तभी वहाँ के नक्सल-आंदोलन के विरुद्ध संपत राय ने जोतदारों का एक कृषक समिति बनाकर नकसल-प्रभावित किसानों के विरुद्ध लड़ाई में कूद पड़े। तब संपत राय की उम्र यही कोई चालीस वर्ष रही होगी। अब वह साठ के हो चले हैं। चारू मजूमदार, कानू सान्याल के नेतृत्व में नक्सलबाड़ी का किसान आंदोलन प्रारंभ में तो किसानों का हक दिलाने का आंदोलन रहा, कहीं-कहीं बँटाईगिरों का दख़ल, कब्ज़ा का आंदोलन था। उन सब इलाकों में कभी कोई गड़बड़ी नही हुई, इसी से वहां थाना, पुलिस का भी कोई काम नहीं था। संपत राय ही सबसे पहले स्थानीय जोतदारों को संगठित करके पूर्णिया से भाड़े पर लोगों को लाकर जवाबी हमला शुरू कर दिया था। संपत राय ने माईकतोड़ आवाज़ में दहाड़ा, "बहुत से लोगों का कहना है, यह राजवंशियों की पार्टी है—उत्तराखंड पार्टी। मैं इस बात को नहीं मानता। उत्तरबंग में राजवंशी अधिक हैं, यहाँ जो भी किया जायेगा उसमें राजवंशियों की तादाद अधिक होगी ही। कम्युनिस्ट लोग जब जुलूस निकालते हैं तो वहाँ पर भी राजवंशी ही अधिक रहते हैं। उसे तो कोई राजवंशी पार्टी नहीं कहता। फिर चाय बागान के मज़दूरों को लेकर सीटू या आईएनटीयूसी जब आंदोलन करता है, तो उसे कोई मधेशिया आंदोलन नहीं कहता—पर उसमें तो मधेशिया ही अधिक होते हैं। आप लोग सोचिए कि उत्तर बंगाल में राजवंशी ही सबसे अधिक हैं, बहुसंख्यक हैं। पर देखिये, किसी जगह राजवंशियों को नौकरी नहीं मिलती। राजवंशी किसान को बैंक से लोन नहीं मिलता। देश की स्वतंत्रता को चालीस साल हो गये, पर उससे राजवंशियों का क्या उपकार हुआ ? प्रत्येक सरकार एक राजवंशी मंत्री रखा करती है। पहले पूरा मंत्री रखती थी, अब आधा मंत्री रखती है। उसी में ही राजवंशियों के बाप-दादाओं का उद्धार हो गया। पर हमारा यह आंदोलन—उत्तरबंग

के सभी लोगों का आंदोलन है, सिर्फ़ राजवंशियों का आंदोलन नहीं है। हम चाहते हैं कि उत्तरबंग के सभी लोग हमारे साथ आयें।"

आसाम से जो आये थे वह आसाम की किस पार्टी के प्रतिनिधि हैं या फिर क्यों आये हैं समझ में नहीं आया। पर उनका वक्तव्य काफ़ी ठोस और निर्दिष्ट था। उन्होंने कहा, "भारतवर्ष की राजनीति में एक महत्त्वपूर्ण परिवर्तन आ रहा है। अब तक दिल्ली से ही राष्ट्र भर का शासन चल रहा था, पर आज एक ऐसा समय आ पहुँचा है जव क्षेत्रीय शक्तियाँ अलग-अलग क्षेत्रों से मिलजुलकर भारत को चलायेंगी। केन्द्र में एक सरकार रह सकती है, रहेगी ही और रहना भी चाहिए। पर उस सरकार को इन शक्तियों पर निर्भर करके ही चलना पड़ेगा। इसी तरह से इन क्षेत्रीय शक्तियों के साथ केन्द्र का एक लेनदेन का सम्पर्क बनेगा। क्यों, यह सम्पर्क अब भी बना हुआ है। तमिलनाडु की ही बात लीजिए। वहाँ कुछ दिन हुए स्थानीय डीएमके, या एआईएडीएमके दल के साथ केन्द्र की कांग्रेस का एक समझौता हो चुका है। राज्य में डीएमके या एआईएडीएमके जो भी सत्ता में रहेगा—वहाँ कांग्रेस किसी तरह की हिस्सेदारी में भाग नहीं लगी और केन्द्र में कांग्रेस की सत्ता को बनाये रखने में ये लोग मदद करेंगे। वहाँ ये किसी तरह की भागीदारी की माँग नहीं करेंगे। एक बार कांग्रेस हिसाब में चूक गयी थी, उसे अंदाजा नहीं लग पाया था कि राज्य की सत्ता किसके हाथों में जायेगी। उस बार कांग्रेस को उस चूक का हर्ज़ाना भी भरना पड़ा था। सिर्फ़ कांग्रेस ही नहीं, केन्द्रीय सत्ता में जो भी रहेगा उन्हें भी राज्य या क्षेत्रीय दलों के साथ इस तरह का समझौता करना पड़ेगा। 1977 के चुनाव को ही लीजिए, तब वहाँ एआईएडीएमके की विजय हुई थी और तमाम देश में कांग्रेस को हार का मुँह देखना पडा था। इसी एआईएडीएमके के साथ केन्द्र की जनता पार्टी का आपसी समझोता हुआ। 1980 में इंदिरा गांधी सत्ता में लौट आयीं, तमिलनाडु का एआईएडीएमके सरकार को कांग्रेस विरोधी कहकर बर्खास्त कर दिया गया और डीएमके के साथ समझौता हो गया। इसके छह महीने बाद जो चुनाव हुआ उसमें कांग्रेस डूब गयी और डीएमके भी डूब गयी। एआईएडीएमके के साथ समझौता कर लिया—राज्य तुम्हारा, केन्द्र हमारा। इस तरह की राजनैतिक धारणा भारत में नयी-नयी ही आयी है, आप लोगों को उत्तराखंड आंदोलन को उसी तरह से संचालित करना पड़ेगा।"

आसाम के इसी प्रतिनिधि ने राजनैतिक क़ायदा-क़ानून को लेकर और एक महत्त्वपूर्ण मुद्दा भी उठाया। उन्होंने कहा, "अब तक भारत की राजनीति इस तरह से बँटती हुई चली आ रही है—कांग्रेस विरोधी और कांग्रेस का समर्थक। इन्हीं दो गुटों की महत्त्वपूर्ण भूमिका अब भी बहाल है। या फिर आप इसे उलट करके भी कह सकते हैं—कम्युनिस्ट विरोधी और कम्युनिस्ट समर्थक। या फिर

इसे ऐसे भी कह सकते हैं—कांग्रेस-कम्युनिस्ट विरोधी और कांग्रेस-कम्युनिस्ट समर्थक। कांग्रेस के विघटन से जो सब दल बने, वे सब दल और बीजेपी, कांग्रेस-कम्युनिस्ट-विरोधी। इस तरह की श्वेत-श्याम राजनीति को फिर क्यों खेमे में बँटना पड़ेगा ? किसलिए किसी दल को कांग्रेस और कम्युनिस्टों का समर्थक या विरोधी होना ही पड़ता है ? हालाँकि ये दोनों पार्टियाँ इस तरह के किसी अड़चन को नहीं मानतीं। ये लोग जब जिसका साथ चाहते हैं समझौता कर लेते हैं, जब किसी का विरोध करना चाहते हैं, विरोध कर लेते हैं। हम भी उसी तरह का रुख़ अपनायेंगे। हम कांग्रेसी भी नहीं हैं, कम्युनिस्ट भी नहीं है। हर एक के साथ हमारा लेन-देन का सम्पर्क होगा। अभी कम्युनिस्ट लोग यहाँ सत्ता में हैं। अगर कम्युनिस्ट पार्टी आप लोगों का दावा मान लेती है—राजवंशी प्राधान्य क्षेत्र में अगर राजवंशियों की प्रधानता को स्वीकार कर लेती है। अगर राजवंशियों की नौकरी की व्यवस्था करती है या राजवंशी भाषा को प्रमुखता देती है, तो आप लोगों को क्या आपत्ति होगी ? उसी प्रकार इन सब दावों को हासिल करने के सवाल पर केन्द्रीय सरकार को कांग्रेस अगर आपकी सहायता करती है तो आप केन्द्रीय सरकार का या कांग्रेस की सहायता लें। गोरखालैंड होगा या नहीं इस पर साफतौर पर अब तक कुछ कहा नही गया है, पर राज्य के मुख्यमंत्री ने जब गोरखालैंड के नेता सुभाष घीसिंग को जातिद्रोही, गद्दार कहा था, तो केन्द्र के प्रधानमंत्री ने इसका विरोध किया था। फिर राजीव गांधी जब दार्जिलिंग यात्रा पर गये थे, तभी घीसिंग ने हड़ताल एलान कर दिया था। यही होना भी चाहिए। आप लोगों का प्रमुख काम होगा, जो कुछ आपके विपक्ष में है उसका कड़ा-से-कडा विरोध करना। इसके लिए कांग्रेस या कम्युनिस्ट का स्थायी समर्थक या विरोधी बनने की कोई आवश्यकता नहीं है। क्या देश के भीतर सिर्फ़ कांग्रेस या कम्युनिस्ट हैं—और कुछ नहीं ? देश के अधिकांश व्यक्ति कांग्रेसी भी नहीं हैं और कम्युनिस्ट भी नहीं हैं। आप लोगों के इस आंदोलन को कांग्रेस-कम्युनिस्ट विरोधी आंदोलन के साथ जोड़ना होगा।''

दार्जिलिंग से जो सज्जन आये थे उनके भाषण के बाद ही पता चला कि वे अध्यापक हैं। उन्होंने एक नयी बात कही, ''देश आज़ाद होने से पहले कांग्रेस ने भाषा पर आधारित राज्य-गठन का आश्वासन दिया था। सभी दलों ने उसका समर्थन किया था। क्यों ? किसलिए ? या फिर अंग्रेज़ ही उनकी खुद की ज़रूरत के मुताबिक देश को जब जैसे मन हुआ बाँटकर शासन करते रहे। मद्रास एक बहुत ही बड़ा प्रदेश था। आज का केरल या कर्नाटक प्रदेश नहीं था। त्रिवांकुर, कोचीन, पेप्स से सब प्रदेश या राज्य बनाये गये थे। बंगाल-बिहार-ओड़िसा एक साथ मिलकर था। फिर बाद में अलग हो गया। उत्तर-प्रदेश भी नहीं था, था यूनाइटेड प्राविंस। स्वतंत्रता के बाद राज्य सीमा

पुनर्विचार कमेटी ने नया-नया राज्य बनाने की सिफ़ारिश की। भाषा के आधार पर राज्य बनाये गये। भाषा तो विभिन्न जाति की अलग-अलग होती है। जाति और भाषागत राज्य—यही भारतीय लोकतंत्र का आदर्श रहा है। जिस तरह पब्लिक सेक्टर भारतीय उद्योग नीति का आदर्श है, उसी तरह योजनायें भारतीय विकास का आदर्श हैं। एक के बाद एक पब्लिक सेक्टर का कारख़ाना बनता चला जाता है। एक ही बार तो कई कारखाने बनवा कर यह कहा नहीं जा सकता कि बस बन गया हमारा पब्लिक सेक्टर। उसी तरह से पंचवर्षीय योजनायें। तो फिर राज्य सीमा पुनर्विचार कमेटी सदा के लिए एक ही बार सब राज्यों की सीमा तय कर कैसे कह सकती है कि बस यही है हमारा एकमेव राज्य, और हो ही नहीं सकता कोई नया। विगत चालीस वर्षों में खुद भारत की ही सीमा कितनी बदल गयी है, यह आप ही बताइये। सिक्किम पहले भारत में नहीं था, अब सिक्किम भारत की सीमांत रेखा में है। उसी तरह आक्साई चीन हमारे हाथ में नहीं है, भारत में नहीं है। हमारे सर्वे ऑफ इंडिया के नक्शे पर इन जगहों को भारत का दर्शाया गया है। धरती के दूसरे सभी देशों के नक्शे में इन जगहों को चीन का दिखाया जाता है, जैसे आज़ाद काश्मीर को पाकिस्तान के अन्तर्गत दिखाया जाता है। तो फिर भारत की सीमा ही अगर इस तरह बदलती है तो फिर राज्य की सीमा क्यों न बदले ? जब 1953 में राज्यों की सीमा निर्धारित हुई तब बिहार और बंगाल के आदिवासियों को कुछ भी पता नहीं था। गोरखाओं को कुछ पता नहीं था। आप लोगों को भी कुछ पता नहीं था। अब अगर हम सब जान-बूझकर अपनी भाषा और जाति के लिए कहें कि हमें अलग राज्य दो, तो उसमें दोष कहाँ है ? बंगालियों ने तब कहा था, बिहार के कुछ जगहों में बाङ्ला भाषा का प्रचलन है, वहाँ रहनेवाले भी बंगाली हैं, उस जगह को पश्चिम बंगाल को दे दो। वह दे दिया गया। अब हम जब कह रहे हैं कि जो नेपाली भाषाभाषी हैं, उन्हें भी एक राज्य दे दो—तो हमें अलगाववादी कहा जा रहा है। आप लोग अगर कहें कि हम राजवंशियों को एक अलग राज्य चाहिए तो कहा जायेगा—अलगाववादी हैं। दरअसल हम तो अभी भी अलग हो रहे हैं। अपनी भाषा से अलग, अपने हक से अलग, अपने अधिकारों से अलग-अलग। और जो भी हो यह तो कोई कह नहीं रहा कि नेपाली भी बंगाली हैं। यह अगर न कहें, तो फिर हमारा अलग, अपने हक़ से अलग, अपने अधिकारों स अलग-अलग। और जो भी हो यह तो कोई कह नहीं रहा कि नेपाली भी बंगाली है। यह अगर न कहे, तो फिर हमारा अलग राज्य होगा नहीं क्यों ? आप लोगों का अलग राज्य क्यों नहीं होगा ? राज्य पुनिर्विचार कमिटी फिर से क्यों न बने ? या फिर ऐसा होने से पश्चिम बंगाल छोटा हो जायेगा ? तो फिर यह बात अंग्रेज़ भी

कहे होते कि बंगाल को बाँट देने से यह छोटा हो जायेगा। पूरा का पूरा पाकिस्तान में जाये। 1953 में जब राज्यों का बँटवारा हुआ, तब हम नहीं थे। नहीं थे इसी से मेरे चाचा, ताऊ हमारे ज़मीन-जायदाद की देखभाल कर रहे थे। अब बालिग होकर जब मैं जायदाद में अपना हिस्सा माँग रहा हूँ तो वही चाचा, ताऊ कह रहे हैं—यह लड़का बड़ा बेअदब है, हमारे सुख के संसार को तोड़कर अलग करना चाहता है। तो मैं कहता हूँ—चाचा जी, सुनो, ताऊ जी सुनो, यह संसार तुम्हारा है, तो फिर मेरा क्या है ? लड़का लायक होने से शादी-विवाह करके उसे घर बसाने दिया जाता है। तो, मेरी तो दाढ़ी निकलकर अब पकने भी लगी, बाल पकने के डर से छाँट दिया है, फिर भी तो मेरा शादी-ब्याह रचाकर घर बसाने के लिए आप लोगों का कोई मन नहीं है। यह कैसा व्यवहार है ? तो इतने दिनों तक आप लोगों ने मेरी देखभाल की, इसके लिए आप लोगों को प्रणाम करता हूँ, पर अब अपनी देखभाल मुझे खुद ही करने दें। आप लोग राज्य की सीमा नये सिरे से ठीक करने के लिए कमेटी फिर से बिठायें और उसकी राय मान लें।"

169
तिस्ता बैरेज के बारे में भाषण

जलपाईगुडी शहर के जो दाढ़ीवाले सज्जन किसानों का अलग इलाका बनाने के लिए काफ़ी साल तक जेल की खाक छानते रहे, उन्हें भाषण देने के लिए बुलाया गया था। पर उनके साथ इस सम्मेलन के संपर्क को लेकर कोई भी निश्चित नहीं था। किसने उन्हें निमंत्रित किया था, अब ये क्या कर रहे हैं—यह किसी को भी पता नहीं था। आमतौर पर इस तरह के सज्जनों को नक्सलिया कहा जाता था। चाहे नक्सलिया हों या कुछ और हो पर एक जाने-माने सज्जन के लड़के हैं, या एक पढ़े-लिखे जानकार सज्जन हैं, फिर वह अगर इस तरह के सम्मेलन में उपस्थित हों तो उनको कुछ कहने का मौक़ा कैसे न दिया जाये ? पर इस सज्जन ने सबसे ज़रूरी बात ही उठायी—उत्तराखंड आंदोलन के मौजूदा कार्यक्रम के सबसे मुख्य विषय पर ही उन्होंने खुलकर चर्चा की, सरकार घोषणा कर चुकी थी कि और कुछेक महीनों में ही तिस्ता बैरेज का प्राथमिक उद्घाटन होनेवाला है। मुख्यमंत्री से ही यह उद्घाटन कराया जायेगा। उसके लिए उस दिन समूचे उत्तर बंगाल से वामफ्रंट जुलूस लेकर आयेगा। उत्तराखंड ने दावा किया है कि तिस्ता बैरेज का उद्घाटन अभी नहीं किया जा सकता। किसानों की ज़मीन का अधिग्रहण भी अभी नहीं किया जा सकता और जो ज़मीन बैरेज के लिए ली जा चुकी है उसके हरज़ाने के बदले समान परिणाम की ज़मीन आस-पास

के इलाकों के सरकारी ख़ास ज़मीन में से दिया जाना चाहिये। बैरेज के लिए जिन किसानों की ज़मीन का अधिग्रहण हो चुका है उनमें अगर कोई ऐसा हो जिसकी ज़मीन इससे पूर्व वेस्ट हो चुकी है तो अधिगृहीत ज़मीन के सम परिणाम की ज़मीन उस वेस्ट ज़मीन से वापस करना होगा। इन सब माँगों के आधार पर उत्तरबंग, ख़ास करके जलपाईगुड़ी जिले की विभिन्न जगहों से प्रदर्शन के लिए विरोध जुलूस लेकर जाना होगा—तिस्ता बैरेज उद्घाटन के दिन। उत्तराखंड के इस सम्मेलन की तरफ से आनेवाले महीने में उस विरोध जुलूस का संगठन किया जायेगा। वे नक्सलिया सज्जन ख़ास इसी मुद्दे को लेकर बोले, केवल इसी विषय पर। "भारत में भाखड़ानांगल बना है, हीराकुड बाँध बना है, नागार्जुन सागर बना है, और कितनी सारी जगहों में कितने नये-नये बांध बने हैं, डेम बने हैं। इसी पश्चिम बंगाल में ही दामोदर बना है, माइथान बना है, पांचेत बना है। पर जहाँ कहीं भी हुआ क्यों न हो, वहाँ उन सब जगहों में गरीब आदिवासी, ख़ासतौर पर आदिवासियों का ही नुकसान हुआ है। आख़िर इनका ही क्यों ? इन सब बाँध, बैरेजों के लिए पहाड़ और जंगल की इस तरह की दुर्गम जगह तलाशी जाती है, जहां जंगली जानवरों के साथ लड़ते हुए जानवरों जैसी ज़िंदगी बिताने को मजबूर होता है आदिवासी, गरीब जन समुदाय। पर क्यों ? क्योंकि इस तरह के दुर्गम स्थानों पर वे इस तरह के भद्रलोगों के शोषण से मुक्त रहते हैं। पर जब बैरेज या डैम के लिए ज़मीन का चुनाव होता है, तभी उस जमीन से इन्हें हटाने के लिए पहला उद्यम होता है। उन्हें सबसे पहले हटाया जाता है। जमीन से हटाकर उन्हें बैरेज या डैम में मजदूर के बतौर काम करवाया जाता है। उसके बाद उस डेम या बैरेज के पानी से फसल उगाने का समय आता है, तब उस ज़मीन का मोल सोना का मोल हो जाता है। बड़े-बड़े व्यापारी तब हरितक्रांति के लिए उस ज़मीन पर गिद्ध-सा झपट पड़ते हैं। भारत में ऐसे किसी एक भी विकास योजना का नाम बताइये, जहाँ एक भी बैरेज या बाँध के फलस्वरूप आदिवासियों या ग़रीब लोगों की तिल भर भी भलाई हुई हो। आपके यहाँ इतने दिनों तक यह उपद्रव नहीं था। पर तिस्ता बैरेज का नाम आते ही उपद्रव शुरू हो गया। कहा जा रहा है कि तिस्ता बैरेज के पानी से लाखों बीघा ज़मीन उर्वर होगी, उसमें खेतीबाड़ी होगी, धरती सोना उगलेगी,उस सोने को बेचकर किसान बड़ा आदमी बनेगा, पर उसके पहले इस बैरेज का बूँद भर भी पानी खेती के काम में लगने के पहले ही किसानों को ज़मीन से बेदख़ल किया जा रहा है, हटाया जा रहा है, किसानों की ज़मीन को कौड़ियों के मोल अधिग्रहण किया जा रहा है, जिन किसानों को ज़मीन के मालिक से तिस्ता बैरेज के मज़दूर में तब्दील किया जा रहा है उस किसान को बैरेज का पानी क्या सोने का फसल देगा ? बैरेज होने के पहले तो किसान तिस्ता का पानी अँजुरी भर पीकर अपनी

भूख को दबा सकता था, तिस्ता के चर में बाघ-भालू के साथ लड़कर दो–एक मुट्ठी धान उगा सकता था, बैरेज हो जाने के बाद तो किसान वह भी नहीं कर सकता। क्योंकि पहले तो तिस्ता का पानी आकाश के हवा जैसा था–जिसका जब भी मन हुआ ले लो। न कोई रोक, न टोक। पर अब तो तिस्ता का जल सरकारी बैरेज का जल है। अब तो उस जल की कीमत बँध गयी है। अब तो कोई भी इसे बगैर पैसे के छू नहीं सकता, जब मन को अंजुरी भरकर पी नहीं सकता। जब मर्ज़ी हो दोनों हाथ में ले नहीं सकता। तिस्ता का चर तो अब कोई पतित चर नहीं रहा कि जिसने बोया, फ़सल उसकी होगी। बैरेज के चलते तिस्ता की कीमत आसमान छू रही है। यह कैसा विकास है जहाँ नदी के जल पर अपने स्वाभाविक अधिकार से किसान वंचित होगा ? चर की ज़मीन पर से अपने स्वाभाविक अधिकार को खो देगा ? दख़ल खो देगा ? जंगल के ज़मीन पर बाघ, भालू का अधिकार है पर वही ज़मीन किसान के खेती करते ही वह हो जायेगा स्क्वायर या अनधिकारी दखलकार। आज तक भारत के लोगों को बुद्धू बनाकर, मूर्ख बनाकर ये बैरेज, डैम, बाँध सब बनाये गये है, पर लोगों ने अपने अनुभव से बहुत कुछ सीखा है, जाना है। ओड़िसा में ही इसी तरह की दो घटनायें हुई हैं। एक तो बालियापाल में और एक कहाँ, मुझे याद नहीं आ रहा। बालियापाल में सरकार प्रक्षेपणास्त्र गोले परीक्षण के लिए समुद्र के किनारे वाली ज़मीन का अधिग्रहण किया है। पर वहाँ के लोग ज़मीन से अपना दखल छोड़ नहीं रहे। वहाँ ज़ोरों का आंदोलन चल रहा है। सरकार अब उस ज़मीन पर अपना दख़ल ले नहीं पा रही है। और एक जगह एक पहाड़ में एक नये उद्योग को लेकर वहाँ के आदिवासी प्रबल विरोध कर रहे हैं कि उन्हें यह उद्योग नहीं चाहिये। आपके उत्तराखंड आंदोलन का राजनैतिक भविष्य आप ही के हाथों है। उस विषय पर मैं आपसे कुछ कहना न चाहूँगा। पर एकाध महीने के बाद तिस्ता बैरेज के उद्घाटन समारोह पर विरोध प्रदर्शन करने का जो कार्यक्रम आप लोगों ने बनाया है–उस कार्यक्रम को जी-जान से सफल बनाइये। आप लोग अगर प्रयास करते हैं, तो तिस्ता बैरेज को बंद कर सकते हैं, जो कुछ काम हो चुका है, उसे भी मुअत्तल कर सकते हैं। और वही होगी आप लोगों की सबसे बड़ी सफलता।"

वह सज्जन इस तरह का भाषण करेंगे, यह बात सभा के आयोजकों को निश्चित रूप से पता नहीं था। उन्होंने सोचा था कि गयानाथ जोतदार के जरिये ही तिस्ता बैरेज की बात कहलवायेंगे। गयानाथ जोतदार उत्तराखंड में अपनी बात उत्तराखंड के जरिये कहलवाने के लिए ही शामिल हुआ था। पर इस सज्जन ने जब यह बात कह दी जो उसके बाद सभा के अध्यक्ष पंचानन बाबू ने गयानाथ जोतदार का नाम पुकारा। साथ ही यह भी कहा, "गयानाथ बाबू इस डूयार्स

क्षेत्र में पुश्तों से रहते आये हैं और तिस्ता बैरेज के बारे में उन्हें बहुत कुछ पता है, अब मैं उनसे आग्रह करूँगा कि वह अपना वक्तव्य रखें।"

गयानाथ ने जीवन में कभी भाषण नहीं दिया था। नाम सुनते ही उसके अंदर धुकधुकी शुरू हो गयी। नाम बुलाने के बाद पंचानन बाबू ने जो अतिरिक्त बातें कहीं, और उसमें जितना समय लगा उस बीच गयानाथ की धुकधुकी थोड़ी शांत हो गयी थी, पर गला सूख गया था। इसी बीच आसपास में कई लोगों ने उनसे कहा, "गयानाथ बाबू जाइये, जाइये।"

गयानाथ जहाँ बैठा था, वहीं से अगर उसे कहने के लिए कहा गया होता तो शायद उसे इतनी दिक्कत न हुई होती। या फिर वह उस दिक्कत को सँभाल भी लेता। आखिर उसे उठकर मंच पर जाना पड़ा, माइक के सामने खड़ा होना पड़ा। गयानाथ अपनी बात खत्म करने के लिए पहले से ही चीखने लगा—"मेरा कुछ कहना नहीं है। मैं सिर्फ़ एक ही बात कहना"—तब गयानाथ कहता जा रहा था—"ई सब सरकार सोचने लगे हई कि धान, चावल, आलू, कुमड़ा सब नदी का पानी से बहकर आता है। उसके लिए जमीन का कोई दरकार नहीं होता। जिसके पास जितना ज़मीन था जब जमीन तो सरकार ले लिया। सेंध मारकर सब चला गया। तो फिर सरकार है इन तमाम जमीन पर खेतीबाड़ी करें। अभी एक नया ढोंग पकड़ा है तिस्ता बइरेज का नाम से। ऊहां जिसका ज़मीन था, वह सब ज़मीन नदी के भीतर चला गया। पहिले लोग नदी के भीतर जाकर चर में खेतीबाड़ी कर रहे थे। ई लोग तिस्ता बइरेज के नाम पर ऊँचा, डाँगर जमीन को नदी के भीतर खींच ले रही है। तो, फिर खेतीबाडी करोगे कइसे ? क्यों करोगे ? तिस्ता के पानी में धान की खेती करो। ये लोग कहाँ से आके टपक पड़े ? हमरे तिस्ता में कभी कोई बइरेज-वइरेज नहीं था, त फिनो तब धान का खेती होता था कि नाहीं ? अब ज़मीन खिंच रहे हई, नदी भी खिंच रहे हई। मैं सब बइरेज-वइरेज नहीं चाहता। बस ये ही हमको कहना था।" गयानाथ के भाषण के बाद तालियों की गड़गड़ाहट हुई। अब तक भाषण का बनाना कठिन लग रहा था। श्रोताओं को गयानाथ का भाषण काफी सहज और सरल लग रहा था।

170
राजवंशी समाज के रूपांतरण पर चर्चा

इसी तरह से उत्तराखंड सम्मेलन की शुरुआत हुई। छह दिनों तक चलता रहा सम्मेलन। एक तरफ पंचानन मल्लिक जैसे प्रवीण व्यक्ति जिनके पास उत्तराखंड के नाम पर एक अस्पष्ट अतीत के कुछ गौरवशाली दिनों का प्रत्यावर्तन था—पर

किस तरह से वह प्रत्यावर्तन या पुनरागमन होगा, उसके बारे में कोई धारणा ही नहीं थी। दूसरी ओर सुस्थिर राय वर्मन के जैसी डाँवाडोल तरुणाई थी जो उत्तराखंड का मतलब सत्ता को एक लड़ाकू संगठन ही समझते थे—जिस संगठन को ये अपनी क़ौमी एकता के बल पर ही राजशक्ति के हाथ से छीन लेंगे, अपनी निजी ज़मीन का टुकड़ा हासिल कर लेने का अपार विश्वास था। पंचानन मल्लिक और सुस्थिर के बीच बस संभवतः यही मेल था कि ये दोनों राजवंशी अतीत की एक गौरवशाली लोककथा चाहते थे, जो इतिहास द्वारा समर्थित हो। उसकी हज़ारों कहानियाँ, बच्चों की कहानी, सेनापति चिला राय के दिग्विजय बनने की कहानी हो। उनकी आँखों के आगे यह प्रबल वर्तमान तो हर समय ही उपस्थित रहता था कि कूचबिहार में एक राजवंशी राजवंश 1510 से 1773 सन् तक स्वाधीन भाव से, उसके बाद 1949 तक करद देशीय राज्य के तौर पर सत्ता में रहा क़रीबन 440 सालों तक। पूर्व और पश्चिम बंग मिलाकर और कहीं इस तरह का कोई देशीय राज्य नहीं था, न ही है। अब भी वह राजमहल खड़ा है। उसी राजवंश का एक और भाग बैकुंठपुर की जमींदारी स्वाधीन राज्य की तरह रहा है तकरीबन इस पूरे समय तक। उसी के चलते तो मालदह से दार्जिलिंग की तराई तक फैले यह विशाल समुदाय अपने को राजवशी कहकर परिचय देता है। पर पंचानन मल्लिक और सुस्थिर के बीच ख़यालों के इस मेल के बावजूद भी यह बेमेल भी है कि किसी तरह, किसी अवसर या उपलक्ष्य में पंचानन के भीतर उभर आया अतीत का गौरव की आत्म सचेतनता ही समुदाय की आत्मप्रतिष्ठा के लिए बहुत बड़ा या प्रधान अवलंबन रहा है। सुस्थिर के लिए यह अतीत का गौरव राजवंशी समाज की भूमि पर अधिकार का एक अवलंबन भर है। सिर्फ़ एक अवलंबन भर ही, उससे अधिक कुछ नहीं।

संपत राय इस उत्तराखड के अंतर्गत आ जाना चाहते थे। संपत ने नक्सलबाड़ी आंदोलन के प्रारंभ में भूमिहीन आदिवासी किसानों के ज़मीन दख़ल के विरुद्ध अपनी एक सेनावाहिनी तैयार किया था। यह क़रीब बीस वर्ष पहले की बात हैं जलपाईगुड़ी के इस सज्जन का नक्सलिया लड़का—जो नक्सलबाड़ी आंदोलन के जरिये अब तक भारतीय किसानों को उनका अधिकार दिलाने का उपाय तलाश रहा था। संपत राय के लिए उत्तराखंड आंदोलन सिर्फ़ राजवंशी समाज का आंदोलन नहीं हो सकता है—वह चाहता था कि उत्तर बंग के राजवंशी जोतदारों के हाथ में जो पैसे हैं, उसका इस्तेमाल इसी उत्तर बंग में ही विभिन्न तरह से उपयोग में लाया जाये। संपत राय पंजाब-राजस्थान ही हरित-क्रांति का इंटरप्रीन्योर कृषि विनियोगकारी का उत्तरबंगीय संस्करण है। यह अलग राज्य नहीं चाहता, अलग कुछ अधिकार चाहता है—वह सब उसके लिए तुच्छ है, वैसे ही जैसे पुरानी कामतापुरी राज्य की गौरव गाथा उसके कोई काम की नहीं। उसके

पास काफ़ी पैसा है और बहुत सारे पैसे आ रहे हैं—वह उन सब पैसों का विनियोग क्षेत्र चाहता है। और उस विनियोग क्षेत्र का नाम अगर 'उत्तराखंड' हो तो उत्तराखंड ही सही। और उसके साथ अनायास ही मतांतर हो जाना है उस नक्सलिया सज्जन का। क्योंकि संपत का विद्रोह उस सज्जन के निकट प्रतिष्ठित व्यवस्था के विरुद्ध विद्रोह था। क्योंकि संपत यहाँ केंद्रीय प्रशासन व्यवस्था को ही चैलेंज कर रहा था। उसी केंद्रीय प्रशासन व्यवस्था में दिल्ली मे कांग्रेस और कलकत्ता में वामफ्रंट, यह फ़र्क़ उसके लिए कोई फ़र्क़ ही नहीं था। किसी भी तरह के विद्रोह और अराजकता के प्रति भावनात्मक और बौद्धिक समर्थन में वह संपत को अपना मित्र समझता था, और उसी तरह दुश्मन समझता था दिल्ली सरकार को और राज्य सरकार को। संपत जानता था कि तिस्ता बैरेज के पानी का फ़ायदा वह पूरा का पूरा उठा सकता है। पर तिस्ता बैरेज के लिए सरकार ने जिन जोतदारों की कुछ-कुछ ज़मीन ले लिया है, उन्हें अगर अपने दल में रखना हो तो तिस्ता बैरेज के विरुद्ध खासतौर पर आवाज़ उठानी होगी। संपत राय के लिए तिस्ता बैरेज—राजवंशियों का, जोतदार और किसान राजवंशियों का एक ग्रहणयोग्य प्रतीक है। कब पानी निकलेगा, उस पानी से एक बीघा जमीन मे दस बीघा लायक़ फसल होगी, इस हिसाब की तुलना में इस एक बीघा जमीन का अधिग्रहण भी बहुत है। फिर, वही एक ही तिस्ता बैरेज इस नक्सलिया के लिए भारत की क्लर्की पूँजी का एक और कारखाना है, जिससे गाँव के गरीब लोगों को और अधिक गरीब बनाया जा सकता है। पर क्लर्क ढूँढने के चक्कर मे संपत राय खुद क्लर्क-सा नहीं लगता। बल्कि संपत राय का मानना था कि जोतदार लोग भी अगर राजवंशी आदिवासियो के साथ मिलकर एकबद्ध आंदोलन की तैयारी की जाये तो संपत राय के साथ कुछ दूर चलने में इनकार क्यों किया जाये ? जो चीजें केंद्रीय प्रशासन को चोट पहुंचाती हैं, और जो चीज़ें आदिवासियो को संगठित करती है, वह सब उसके लिए ग्रहणयोग्य है।

एक साथ पेन-बोडो संस्कृति की हवा चल रही थी, इससे उत्तरपूर्व या नार्थ इस्ट के वृहत्तर क्षेत्र मे सांस्कृतिक एका की खोज जारी थी।

इन सबके बीच कोई ठोस मेल नही था, अनेकांश और ज्यादातर समय इसमें विरोध भाव नहीं था। उत्तराखंड में इस तरह का कोई आदमी नहीं जो कि इस आंदोलन को संगठित एक तार्किक पृष्ठभूमि दे सके। वीरेन बसुनिया या कूचबिहार के संतोष बाबू जैसे लोग उत्तराखंड को कभी वृहत्तर समाज में या प्रशासन में औचित्यता के साथ खड़ा कर भी सके तो वह आंदोलन का एक छोटा ही भाग था, इसे पूरा नहीं माना जा सकता। उनके लिए तो जन नेता हो पाना संभव नहीं।

फिर हो सकता है कि उत्तराखंड आंदोलन जैसी घटना इसी तरह के परस्पर

विरोधी स्वार्थ को मिलाकर बनता है। कभी इस स्वार्थ की प्रधानता रहती है तो कभी उस स्वार्थ की प्रमुखता। पर राजवंशी जोतदारों के नये रुपये के योग्य विनियोग क्षेत्र की तलाश करने के लिए इस तरह का आंदोलन अभी काफ़ी दिनों तक बनता जायेगा, बनता रहेगा। वृहत्तर भारत में व्यापार और उद्योग की बढ़ोत्तरी, हिसाब के बाहर, अनगिनत रुपयों से जो सामाजिक वर्ग तैयार हो चुका था—राजवंशी लोग भी उससे परे नहीं थे। भारत की अर्थशास्त्रीय नियम से ही उनके समाज में अभी उनके बोडो और कूच रक्त की शुद्धता तलाशने का यह झोंक तैयार हो रहा था, जिस प्रकार भारत के अर्थशास्त्रीय नियम के तहत ही सिख लोग और कितने बेहतर सिख हो सकते हैं वह एक राजनैतिक विषय बन चुका है, जैसे कि उसी एक नियम के चलते तेलुगु लोग कितने बेहतर तेलुगु बन सकते हैं, वह भी एक राजनीति बन चुकी है। जैसे कि उसी एक ही नियम से असम के लोग असमिया-संस्कृति की प्रागैतिहासिकता से अपना आत्मपरिचय जुगाड़ करके भारत के भावी राजनीति में प्रवेश कर रहे हैं। इतिहास का भी अतीत वर्तमान के इस काम में लग रहा है, राजनीति की—अर्थनीति की भारतीय भविष्य के प्रयोजन में।

पर अपने उपजातीय अतीत को वर्तमान के बीच ढूँढने के बीच, कम-से-कम राजवंशियों के क्षेत्र में, एक इस तरह की गड़बड़ी है, जिसका समाधान असभव है। राजवंशी, राजवंशी ही रहेंगे फिर कूच-बोडो उपजाति ही बने रहेंगे—यह व्यवस्था किसी प्रकार से भी संभव नहीं है।

कोई अगर कहता है कि अब दूसरे राजवंशियों का उपजातीय निर्णय किया नहीं जायेगा, उसी से उनके लिये उपजाति में प्रत्यावर्तन करना सभव नहीं हो पायेगा—तो फिर यह बात दिमाग़ में टिक नहीं पायेगी। क्योंकि बुद्धि दे रहे हैं राजवंशी लोग। वे अपने लिए जिस उपजातीय मान्यता को स्वीकार करेंगे, वही उपजातीयता ही उनका परिचय है। उसमें हजमन, डॉलटन, बेवरली, हंटर, राऊनी, बोयलो, मौगोयार, ओडोनेल, रिजली, ग्रियर्सन, गेइट, ओमेली, टामसन—इन सब साहबों के द्वारा तैयार सूची में जाति-उपजाति गोष्ठी का समावेश हुआ या नहीं यह अवांतर है। कारण, ये सब साहब जो लिस्ट बना गये हैं वह कोई नया स्मृति-शास्त्र नहीं है कि उसमें गाँव-गोत्र मिलान करके ही एक उपजाति को उपजाति बनाना पड़ेगा।

पर इस उपजाति के परिचय के पुनरुद्धार के रास्ते में राजवंशी लोग खुद ही एक बड़ी बाधा हैं। क्योंकि इतने दिनों तक अपने उपजाति होने के परिचय को नकारते हुए सदी-दर-सदी हिंदू बनना चाहा है और हिंदू हो भी चुके हैं।

कूचबिहार का राजपरिवार और जलपाईगुड़ी, बैकुंठपुर का रायकत परिवार तो राजवंशियों का प्रधान ऐतिहासिक प्रतिनिधि है। कूचबिहार का आदि पुरुष

बिशु या बिशाई था। वही बिशाई हो गया बाद में विश्व सिंह। इसी बिशाई के पूरब में ब्रह्मपुत्र से पश्चिम में घोड़ाघाट तक अपना राजतत्व क़ायम करने के बाद ब्रह्मणों ने उसे हिंदू बना दिया। पंचाग-पोथी खँगाल कर उन्होंने यह शोध किया कि असल में बिशाई और उनके जाति स्वजन क्षत्रीय हैं, परशुराम के भय से वे यज्ञोपवीत तोड़कर इस जंगल में भाग आये थे। और बिशाई हरिया चांडाल का पुत्र नहीं, असल में भगवान शंकर का पुत्र है। उसी तरह बिशाई का भाई शिशाई भी शिव का पुत्र है। विश्व सिंह सिलेट मे एक दल ब्राह्मणों को लाकर कामरूपी ब्राह्मण नाम से एक वर्ग ही बना दिया। विश्व सिंह के बाद से कूचबिहार के राजपरिवार नारायण पद का व्यवहार किया। मदनमोहन ठाकुरबाड़ी बनवाया। और जलपाईगुड़ी के रायकत लोग बैकुंठपुर के अधिवासी बन गये।

पर यह सिर्फ राजपरिवार का ही मामला नहीं था। राज परिवार ने उसी जनसमुदाय के मुख्य परिवार के रूप में यह व्यवस्था किया था और उस जनसमुदाय ने भी अपने को राजवंशी कहकर परिचय देना तय कर लिया। वही उनका गौरव का परिचय, उनके उपजातित्व का परिचय और वृहत्तम हिंदू जाति में शामिल होने का प्रधान पारपत्र बन गया। तीन सो से अधिक साल तक यही हिंदू परिचय राजवंशी समाज मे इतने गहरे पैठ गया कि उन्नीसवी सदी के आख़िरी चरण से यह हिंदू क्षत्रिय आत्मपरिचय उनके आंदोलन का एक प्रमुख मुद्दा बनकर उभरा। वह 1921 की जनगणना की समस्या बनने तक का रहा। 1891 से पहले बैकुंठपुर की जमींदारी को लेकर एक मामला प्रीवी कौंसिल तक खिचा था। उसमे कहा गया था, बैकुंठ परिवार के प्रधान का नाम था रायकत, ये बंगाल के उत्तर-पूर्वी सीमांत के कूच उपजाति में आते है, हिन्दू नहीं। 1891 के सेंसस रिपोर्ट में भी राजवंशियों के कूच परिचय को स्वीकार कर लिया गया है। पर इसी 1891 की रिजली ने वक्तव्य दिया है, "उत्तरबग के कूच आदिवासी वर्ग अपने को राजवंशी और भंगक्षत्रीय कहकर परिचय देते हैं। उनके ब्राह्मण हैं, वे ब्राह्मण रीति-रिवाज़ का अनुसरण करते हैं और ब्राह्मणों का गोत्र ग्रहण करना शुरू कर लिया है।"

पर 1911 में ही इस द्विधा का भाव चला गया। ओमेली ने अपने सेंसस रिपोर्ट में लिखा "अपने को क्षत्रिय कहकर परिचय देने के अधिकार से उत्तरबंग के राजवंशियों के बीच एक स्थायी और गहरा आंदोलन चल रहा है। वे कूच लोगों से अलग परिचय चाहते हैं। सिर्फ़ इतना ही नहीं, वे अपने को "क्षत्रिय" नाम से स्थापित करना चाहते हैं। पहले अनुरोध को बिना किसी दुविधा के पूरा कर दिया गया है, क्योंकि उनकी उत्पत्ति किस तरह से हुई है, इस पर निरपेक्ष भाव से ही विचार किया गया है। यह बात अबकी संदेहातीत सत्य प्रमाणित हो चुका है कि राजवंशी और कूच अलग जाति (कास्ट) हैं। जो भी हो उन्हें वंशोत्पत्ति उपाधि और प्राचीन पदवी क्षत्रिय नाम से स्थापित करने का कोई प्रश्न ही नहीं

उठता।'' 1923 के सेंसस रिपोर्ट में टेमसन ने लिखा कि ''1901 में बहुत से कूच अपने को राजवंशी बताये हैं, और अब राजवशी लोगों में बहुत सारे राजवंशी अपना क्षत्रिय परिचय लिपिबद्ध कराने के लिए शक्ति का प्रयोग तक करते हैं।'' इसी 1921 में इन राजवंशियो के अंदर यज्ञोपवीत (जनेऊ) पहननेवालों का 'क्षत्रिय समिति आंदोलन' इस तरह से फैला कि उन्हें क्षत्रिय कहकर परिचय न देने से रंगपुर से कूचबिहार तक मर्दमसुमारी का काम ठप्प हो गया होता। इसी क्षत्रिय परिचय अर्जन का आंदोलन स्वतंत्रता आंदोलन के साथ बहुत-सी जगहों पर जुड़ा हुआ है। जैसे अपने हिंदू-परिचय को प्रमाणित करना अपने भारतीय होने को प्रमाणित करने के समान हो। स्वतंत्रता आंदोलन के बीच से होकर भारतीय जनसाधारण का जो एक परिचय प्रतिष्ठित हो रहा था, अपने को हिंदू कहकर प्रमाणित करने से उसी परिचय के बीच आ जाता है। उसी तरह, फिर इतने दिन हिदू मध्यवर्गीय की प्रतिष्ठा हिंदू मध्यवर्गीय आदर्श को राजवंशियों ने ग्रहण किया और यह परिचय जैसे उनके सामाजिक मर्यादा पाने का पारपत्र है। क्षत्रिय समिति आंदोलन राजवंशी समाज का सबसे व्यापक और गहरा आंदोलन है। इसके फलस्वरूप राजवंशी परिवार का गठन और जीवन यापन तक नियंत्रित होता है।

171
राजवंशी समाज का जाति और उपजाति परिचय

ऐतिहासिक काल से अपने उपजाति-परिचय को जाति-परिचय में तब्दील कर देने की राजवंशी समाज के कोशिश के बावजूद उस उपजाति-परिचय का स्मारक के रूप में उनकी चपटी नाक, छोटी आँखें, हल्का-सा उजला रंग और चिबुक का ऊँचा हाड़ रह गया था। जिस वृहत् हिंदू समाज के साथ मिल जाने के लिए राजवंशी समाज की सैकड़ों वर्षो से कोशिश के बाद भी वर्ण हिंदू समाज ने कभी भी अपना दरवाज़ा राजवंशी समाज के लिए नही खोला। स्त्री-पुरुष के जिस संपर्क के माध्यम से, खून के मेलजोल से उपजाति के परिचय को शरीर से मिटाया जा सकता था। लेकिन राजवंशी समाज का हिंदू वर्ण समाज से वह संपर्क कभी भी स्थापित नहीं होने दिया गया। जो दो राजपरिवार राजवंशी समाज के प्रधान परिवार थे, वे तरह-तरह से अपने को हिंदू बना चुके है और वर्ण हिंदू समाज ने भी उन्हें अपने में शामिल कर लिया है। इतने बड़े-बड़े राजपरिवार या जमींदार परिवार में लड़के-लड़कियों को ब्याहने में किसे भला आपत्ति हो सकती है ? तब तो उन्हें राजवंशी नहीं बल्कि बतौर 'राजा' देखा जाता था। कालापहाड़ जो कामाख्या मंदिर का पुनर्निर्माण किया और वहाँ दुर्गा प्रतिमा प्रतिष्ठित करके अपने हिंदू होने का रास्ता बनाया। इस उपलक्ष्य में 150 लोगों की बलि चढ़ाकर ताम्रपत्र

में मंदिर की देवियों के समक्ष प्रस्तुत किया गया। राजवंशी या कूच से हिंदू होने का इस तरह खून से सना रास्ता सबके लिए या आम आदमी के लिए सुलभ नहीं था। राजा लोगों ने कभी खून चढ़ाया है तो कभी खुन का प्रतीक सिंदूर चढ़ाया है। लक्ष्मीनारायण नाम के कूचविहार के किसी राजा ने अकबर के सेनापति मानसिंह के साथ अपनी लड़की को ब्याहा था (1585)। और एक राजा प्राणनारायण (1625-1655) ने अपनी बहन रूपवती को नेपाल के राजा प्रतापमल्ल के साथ ब्याहा था। 1878 में कूचबिहार के राजा नृपेन्द्रनारायण के साथ ब्रह्मसमाज के केशवचंद्र की कन्या सुनीति देवी का विवाह हुआ था। नृपेन्द्रनाथ के बड़े बेटे जितेन्द्रनारायण का विवाह बड़ौदा की इंदिरा देवी के साथ हुआ था। उसकी लड़की गायत्री देवी का विवाह जयपुर महाराजा के साथ सम्पन्न हुआ था। और एक बहन का विवाह अगरतल्ला के राजा के साथ हुआ। भारतीय राजा की स्वीकृति के मूल स्वरूप को कूचबिहार के राजा ने अपनी इच्छा से अपने राजवंशी परिचय का परित्याग किया।

बैकुंठपुर के राजपरिवार का इतिहास भी तकरीबन इसी तरह का है। पर वे तो देशी राज्य के तौर पर स्वीकृत नहीं है, इसी से दूसरे देशी राजाओं ने उनके परिवार में शादी-ब्याह नहीं किया। पर पैसे देकर वर्ण हिंदू घर से जँवाई और लड़की वे भी जुगाड़ कर लिया करते थे।

राजवंशी परिचय के चलते जो राज्य और प्रायः राज्य प्रतिष्ठित हुए थे, राजवंशी परिचय के विलुप्ति के बीच उन्होंने अपने को हिंदू समाज के अंदर बैठा लिया था। पर ठीक उल्टी प्रक्रिया से वर्ण हिंदू समाज ने इन राजवंशियों को दूर ठेल रखा था। फलतः वे विगत पाँच सौ साल से एक अद्भुत क़िस्म का जीवन जीते आये थे। उनके तमाम अवयव में कूच जन्म-चिह्न, उनके पोशाक-वोशाक में कूच उपजाति की छाप, उनके अन्तकरण में कूच संस्कार, उनकी कूच संस्कृति, उनके परिवार के लोगों के अंदरूनी संपर्क कूच परंपरा के अनुरूप, उनके घरद्वार कूच रीति के अनुसार तैयार होता था पर वे अपने को कूच कहकर स्वीकार नहीं करते, कूच परिचय उनके लिए एक तरह से निकृष्ट अपमान है।

बिशाई या विश्व सिंह (1496-1553) को अगर ऐतिहासिक काल में कूचों के संगठित आत्मप्रकाश का प्रथम चरित्र मान लिया जाये तो इसका मतलब राजवंशी लोगों के अपने इन दोनों जीवन को स्वीकार कर लेने की अविधि पाँच सौ साल होगी। वे अपने को मनप्राण से हिंदू समझते हैं। और उनका परम देवता जल्पेश्वर शिव है। पर वर्ण हिंदू लोग उन्हें हिंदू नहीं मानते, इसी से वर्ण हिंदू संस्कृति को वे अपना नहीं बना पाये।

फ़िलहाल भारत के आर्थिक-राजनैतिक नियमानुसार राजवंशी लोगों ने अपने कूच परिचय का पुनरुद्धार करना चाहा है। जो हिंदुत्व उनका आदर्श था, उसी

हिंदुत्व से वे निकल आना चाहते हैं। शरीर और संस्कृति से जो कूच है, वह तो वही रहा, और वही रहना भी चाहता है। और इसी कूच परिचय के चलते भारतीय राजनीत-अर्थनीति में बतौर भारतीय वह विशेष सुविधा यसूल करना चाहता है। हिंदू बने रहना चाहता है। हिंदू होने के पॉच सौ साल बाद वह ग़ैर हिंदू बने रहना चाहता है। पर इसमें ग़ैर-हिंदू होने की आकांक्षा उसके कूच की परंपरा के गौरवबोध और चेतना से नहीं जन्मी, बल्कि रुपये पैसों के नगदी हिसाब से जनमी है। जो कूच पाँच सौ सालों तक राजवंशी रहा है, वह क्या आज चाहने भर से कूच हो सकता है ?

ऐसा हो पाने का एक उपाय अवश्य था। हिंदू समाज के प्रत्याख्यान के चलते वह अपनी कूच जीवन की शैली को जारी रख सका है। उस अभ्यास को तक़रीबन आक्रामक भंगी से हिंदू समाज के ख़िलाफ़ व्यवहार कर सकता है। पर ऐसे में तो उसे राजवंशी परिचय को अस्वीकार करना पड़ेगा। किसी राजपरिवार के साथ उपजाति परिचय के सूत्र के साथ वह अपना कूच परिचय वापस पा नहीं सकता। उस राजपरिवार के साथ अपने संपर्क को अस्वीकार करने पर ही वह अपना उपजाति परिचय वापस पा सकता है। 1890 से 1930-35 तक जो अपने को सिर्फ़ राजवंशी ही नहीं, क्षत्रिय कहकर परिचय देना चाहता था, वही परिचय ही उसके सामाजिक आंदोलन का मुख्य विषय बन गया है, फिर किस तरह से वह अपने को राजवंशी न कहकर कूच कहे ? कोच भी नहीं, राजवंशी भी नहीं—हिंदू क्षत्रिय। इस परिचय में अब उलटफेर कैसे हो सकता ? 'हिंदू' नहीं, 'राजवंशी' भी नहीं—'कूच'।

हाँ, यह संभव था, अगर सही आत्म-परिचय की एक प्रखर टीस और स्वाभिमान से यह समाज अपने से बदल लेना चाहता, अपने पाँच सौ वर्षों का हिंदू होने का इतिहास बदल लेना चाहता, अपने को तरह-तरह के आघातों से बचाना चाहता। तभी एक अद्‌भुत प्रतिक्रिया से वह अपने संस्कृत नाम का परित्याग करता, यहाँ तक कि राय या बर्मन उपाधि छोड़ देता, विवाह-श्राद्ध में पुरोहित-ब्राह्मणों को आने नहीं देता, अपना लेता अपना पाँच सौ साल पुराना कोई रीति-रिवाज, यहाँ तक कि जल्पेश्वर शिव को भी अस्वीकार करता, कूचविहार के मदनमोहन को भी अस्वीकार करता, कामाख्या मंदिर के विग्रह को भी नकार देता—उसके बदले बना लेता अपना नया तीर्थ। तभी वह अभियान इस विराट राजवंशी समाज को इतिहास की एक अवास्तविक पुनरावृत्ति शायद एक नया प्रारंभ कर सकता था। इस उत्तराखंड आंदोलन में तो वह नहीं है, बल्कि इसका उल्टा ही है।

सम्मेलन सुबह शुरू होते तक़रीबन दस बज जाता। फिर उसके बाद बारह-साढ़े बारह बजते ही ख़त्म। दो-एक दिन तो ऐसा भी हुआ कि दस बज

जाने पर भी सम्मेलन शुरू नहीं हो पाया। पर एक-एक अधिवेशन को पूरी तरह से छोड़ा नहीं जा सकता इसी से किसी का भी एक भाषण करवा कर अधिवेशन को ख़त्म करवाया गया।

अंत में मालूम पड़ा कि सम्मेलन में बहुत-से प्रस्ताव पारित हुए हैं। उनमें एक है—उत्तरबंग के राजवंशी प्रधान इलाकों को स्वतंत्र अधिकार दिया जाना चाहिए। आवश्यकता पड़ने पर इसके लिए 'राज्य सीमा पुनर्विचार कमेटी' को नियुक्त करना होगा। दो, उत्तरबंग के तमाम सरकारी कामकाज में, कॉलेजों में, विश्वविद्यालयों में, मेडिकल कॉलेजों मे, इजीनियरिंग कॉलेजों में राजवंशी विद्यार्थियों के लिए कम-से-कम 50 प्रतिशत सीट आरक्षित करना होगा और उनके दाख़िले के लिए प्रवेशिका परीक्षा का सिस्टम मुअत्तल करना होगा। तीन, तिस्ता बैरेज के लिए अधिगृहीत ज़मीन के बराबर जमीन किसानो को देना होगा। और किसी ज़मीन का अधिग्रहण नहीं किया जायेगा। चर, कृषि सामान का सर्वोच्च मूल्य और लंबी की बाध्यता उत्तरबंग में लागू नहीं होगी। क्योंकि उत्तरबंग में कृषि के लिए कोई सिंचाई व्यस्था नहीं है और यहाँ उपज कम हे।

पर ये तो नीतिमूलक प्रस्ताव थे। सिर्फ़ दो कार्यकारी प्रस्ताव स्वीकृत हुए। पहले प्रस्ताव में कहा गया कि जिस तरह से तिस्सा बेरेज बनाया जा रहा हे, उससे यह सम्मेलन गहरी चिता जाहिर किये बिना नही रह सकता। सरकार ने मनमाने तरीक़े से जमीन का अधिग्रहण किया है। अधिग्रहण करते समय यहाँ तक कि खेत में खड़ी फ़सल का भी ख़याल नही किया गया है। पर अगर तिस्ता बैरेज किधर से होकर जायेगा उसके नक्शे मे पहले से ही प्रचार कर दिया गया होता तो किसान लोग पहले से ही सतर्कता बरतते और अधिग्रहण की आशंका के चलते उस तरफ की ज़मीन पर फ़सल नहीं बोते। इसके अलावा तिस्ता बैरेज के काम में स्थानीय लोगों को लिया नहीं गया है। फिर तिस्ता बैरेज के फलस्वरूप कहाँ किस तरह से पानी जायेगा उसका कोई हिसाब जनसाधारण को नहीं दिया गया है। इसके चलते इस तरह की आशंका भी उभर रही है कि तिस्ता बैरेज के चलते उत्तरबंग की कृषि-धारा बाधित होगी। और इस आशंका के बावजूद राज्य-सरकार के फ़ौरन तिस्ता बैरेज चालू करना चाहा है। जल्द ही पश्चिम बंग के मुख्यमंत्री तिस्ता बैरेज के प्रथम चरण का उद्घाटन करनेवाले हैं कहकर जो घोषणा किया गया है उससे सम्मेलन गहरी चिंता जाहिर किये बग़ैर नहीं रह सकता। तिस्ता बैरेज का काम कहाँ तक बढ़ा है उस बारे में लोगों को कुछ बताये बग़ैर एकबारगी उद्घाटन कर देना सरासर अन्याय और अलोकतांत्रिक है। परंतु, तिस्ता बैरेज का काम अब तक इतना नहीं हो पाया है कि उसका उद्घाटन किया जा सके। इस हालत के चलते सम्मेलन उत्तरबंगवासियों को सतर्क कराये दे रहा है कि इस उद्घाटन के विरुद्ध आवाज़ उठायें। इसी से सम्मेलन आह्वान

करता है कि मुख्यमंत्री तिस्ता बैरेज उद्घाटन करने आये तो आप लोग निर्धारित दिन समूचे उत्तरबंग से जुलूस लेकर आयें और इस उद्घाटन का विरोध करें जिससे कि मुख्यमंत्री यह उद्घाटन न कर पाये।

दूसरा प्रस्ताव काफ़ी दूरगामी था। उसमें कहा गया कि 'उत्तरबंग के प्रगति के प्रति किसी भी राज्य सरकार ने कभी कोई ध्यान नही दिया। हालाँकि उत्तरबंग से चाय, तंबाकू और लकडी के शुल्क की बावत राज्य और केंद्र सरकार करोड़ों रुपये पाती है। उत्तरबंग के प्रति इस उपेक्षा के विरोध में उत्तरबगवासी शिरकत नहीं करेंगे। सम्मेलन की ओर से उतरबगवासियों को आह्वान किया जा रहा है कि वे विधान-सभा चुनाव का बायकॉट करें। उत्तरबंग से कोई उम्मीदवार न खड़ा हो। सम्मेलन की ओर से सूचित किया जाता है कि उत्तरबग से एक भी वोट न पड़े। सम्मेलन की ओर से सूचित किया जाता हे कि उत्तराखड हिंसा मे विश्वास नही करता, इसी से किसी हिंसात्मक उपाय से वोट बंद करने का आह्वान नही किया जा रहा। सम्मेलन सिर्फ शातिपूर्ण उपाय से आसन्न विधानसभा चुनाव का बायकॉट करने का आह्वान कर रहा है।

172

सांस्कृतिक फंक्शन का विवरण : यात्रा

शनिवार को था कलकत्ते के नवरंजन ऑपेरा का जात्रा 'कुलटा का कुल' और रविवार को उसी ऑपेरा का 'प्रमोद तरणी', सोमवार को था 'गीता का कार्यक्रम।'। उसमें चित्रा सिंह आखिर तक जोड़े में नहीं आ पाई, अकेली ही आयी थीं। पर अनूप जलोटा आये थे, मन्ना दे तो थे ही, इसके अलावा दूसरे कई आर्टिस्ट भी थे। मंगलवार को कलकत्ते के 'ग्रुप थियेटर' द्वारा, ब्रेख़्त का 'काकेशियन चॉक सर्कल' खेला गया था। बुधवार का कार्यक्रम शाम को शुरू नहीं हो पाया। रात आठ बजे ही जाकर कही शुरू हुआ और सुबह चार बजे ख़त्म हुआ—रात भर वीडियो पर चार फ़िल्में दिखायी गयीं। वृहस्पतिवार को एक ही कार्यक्रम था और वह भी सम्मेलन का आख़िरी सांस्कृतिक कार्यकम—श्रीदेवी का नाच।

इस बीच जात्रा का कार्यक्रम दो दिनों तक काफ़ी जम गया था। पर इसमें से कोई एक पौराणिक रहा होता तो बेहतर होता। पर दोनों ही नाटक कुछ-कुछ ऐतिहासिक और सामाजिक थे। नवाबी दौर में एक लड़की कुलत्यागिनी होकर कैसे अत्याचारी नवाब के ख़िलाफ़ संगठन बना पायी थी। उसी की कहानी थी—'कुलटा का कुल'। लड़की हिंदू थी। हिंदू जमींदार के गाँव में रहती थी। वह एक रात एक युवक के साथ गाँव, घर छोड़कर चली गयी। इसीलिए वह 'कुलटा' हो गयी। पर बाद में धीरे-धीरे पता चला कि गाँव का हिंदू ज़मींदार

उस हिंदू लडकी को एक मुसलमान मनसबदार को भेंट करना चाहता था। यह ख़बर पाकर मनसबदार का एक युवक सेनाध्यक्ष भागकर आया और लड़की को उसके घर से हटाकर दूसरी जगह ले जाकर उसकी रक्षा की। पर इसी बीच वह जमींदार मनसबदार के उस युवक को 'तनखेया' घोषित करता है, उसकी खोज में हर जगह सेना भेजता है और वह सेना गाँव गाँव मे अत्याचार का तूफान मचा देती है। खासकर लडकियो पर। दल की दल लडकियाँ पकडकर लायी जाती - जमींदार को दिखाने के लिए कि उनमें तो कहीं वह लडकी नहीं है। और भूमिगत रूप से गाँव-से-गाँव भागते-छिपते फिरते है वह युवक और लडकी। अचानक एक वक्त ऐसा आता है जब नवाब के विरुद्ध आदोलन खडा हो जाता है। आखिर तक यह मुसलमान सेनाध्यक्ष और हिंदू नारी के नेतृत्व मे स्वत: संगठित ग्रामीणो की सेना गुरिल्ला युद्ध मे उस मुसलमान मनसबदार और हिंदू ज़मींदार के भाडे की सेना को पराजित कर देती है।

इस कहानी में थोडा थोडा 'देवी चौधुरानी' और 'जन आफ आर्क' का प्रभाव नजर आता है। जो लोग ऐतिहासिक नाटक के प्रेमी है उनके लिए मनसबदार, जमींदार और इस गाँव की लडकी पलभर मे ही परिचित हो उठती है। और उसके बाद हिंदू-मुस्लिम एकता पर बीच बीच मे बातचीत भी छिड जाती है। गुरिल्ला युद्ध के प्रसग मे नक्सलो का 'ख़त्म करो अभियान' भी याद आती है। फिर पजाब के आतकवादियो का भी ख़याल आ जाता है। इन सब बातों को मिल-मिलाकर यह नाटक तकरीबन हर वर्ग के दर्शकों के लिए आकर्षणीय बन जाता है। यहाँ तक कि आधुनिक लडके-लडकियाँ, जो कि इतिहास को कोई ख़ास महत्त्व नही देते, वे भी अत्याचारी शासक के विरुद्ध आम जनता के सगठित विद्रोह की कहानी से अपने रुझान का विषय पा जाते है। एक तरफ मनसबदार और जमींदार का अत्याचार प्रसग दिखाने में स्त्री-पुरुषो के कुछ घनिष्ठ दृश्य भी थे, वहा हिंदी ग़ज़लो का प्रयोग हुआ और वहाँ लडकी का नाच भी हुआ। यह लड़की मोना गुप्ता फिल्म में कैबरे नाच के लिए काफी नाम भी कमा चुकी थी। मनसबदार के एक शराब पीने के दृश्य मे मोना गुप्ता का केबरे डास था। इस नाच के बारे मे बहुतों को पता था। दरअसल, इसी डास के लिए ही 'कुलटा का कुल' बतौर जात्रा काफी हिट रहा। कैबरे में काफी हद तक बेल डास भी था। नृत्य के अंत में लड़की प्राय: आर्च करती हुई स्टेज के बीच मे चक्कर काटने लगती, इस चक्करघिन्नी में उसके पेट के ऊपर, पेडू के ऊपर, छाती के ऊपर लाइट फोकस होता, बाक़ी तरफ अँधेरा होता। मोना को आर्च करते स्टेज के चारों तरफ़ थिरकना होता ताकि सभी ओर के दर्शक उसे देख सकें। दर्शकों के बीच से तालियाँ, कमेंट बरसने लगते। जब भी जिधर उसका पेट, पेडू, छाती होती, उधर ही हाहाकार मच जाता। तालियाँ, सीटियाँ। चीख़-पुकार। पर यह स्टेज तो

जात्रा-नौटंकी की तरह चारों ओर से खुले में नहीं होता, थियेटर की तरह एक ओर ही खुला था। मोना गुप्ता के शरीर के घूमने से सभी दर्शक उसकी पेट, पेड़ू, नाभी, छाती का नया-नया दृश्य पाते थे। इससे ताली, सीटी और ही बढ़ जाती। यह दृश्य काफ़ी समय तक चलता रहा। उसके बाद बाहर बम का धमाका, चकित अंधकार में मोना गुप्ता उठ खड़ी हुई, हाथ बढ़ाकर एक काले कपड़े मे अपने को पूरी तरह ढँक ली और अचानक प्रकाश झक् से जल उठा और उसी नायक-नायिका की गुरिल्ला वाहिनी स्टेज पर कूद पड़ी। तभी समझ मे आया कि यही नर्तकी ही छद्मवेशी गुरिल्ला थी। वहाँ मनसबदार की पराजय और हत्या के बाद ही जात्रा का अंत होता है—उसके पहले कुछ तलवारबाज़ी भी दिखाायी गयी थी।

'प्रमोद तरणी' भी उसी तरह की कुछ ऐतिहासिक और कुछ-कुछ सामाजिक नाटक है। 'कुलटा का कुल' की तरह 'प्रमोद तरणी' में भी, नायक-नायिका का संपर्क आख़िर तक स्थिर नहीं हो पाता—यानी कि वे भाई-बहन, पति-पत्नी, प्रेमी-प्रेमिका—इस तरह के निर्दिष्ट परिचय के अलावा भी उनका एक साथ रहना, बसना मुख्य आकर्षण का विषय था। 'प्रमोद-तरणी' मे भी पहले-पहल मोना गुप्ता के साथ दूसरी लडकियों का नाच था। मोना गुप्ता यहाँ हाथ मे माइक लेकर पश्चिमी फ़िल्मी अंदाज़ में घूम-घूमकर गाना भी गाती थी। नीलकर साहब के बॅगले में बड़े दिन का समारोह था इस तरह के लंबे और समवेत नाच के उपलक्ष्य में। उसमें भी 'नीलदर्पण' के तोराब जैसा चरित्र है, हालाँकि संख्या में कुछ अधिक ही। क्षेत्रमणि के बलात्कार का दृश्य है दो-एक बार—एक बार साहब करता है और एक बार नायेरगोछ का एक बंगाली। पर इस तरह के कुछ अंशो को छोड़कर 'नीलदर्पण' की और कोई याद नहीं आती। वहाँ भी देखा गया कि काफ़ी लोग इस प्रारंभ से समवेत नृत्य और बलात्कार के बारे में पहले से ही जान गये थे। इसी से उस नृत्य के बाद ही पंडाल से बहुत से लोग निकल कर चले गये और बलात्कार के पहले फिर से वापस आ गये। नृत्य के समय लाइट काफ़ी तेज़, रंगीन और घुमावदार थी। फलतः उस चक्कर मे एक मादकता आ जाती थी। वही मादकता दर्शकों में फैल जाती थी, पर साथ ही साथ कहानी का इशारा समझना पड़ता था, इसी से वह इतना नहीं चढ़ती थी कि दर्शक अपनी जगह से उठकर नाचने लगे। बल्कि वह दोनों बलात्कार के दृश्य में हो गया। दोनों दृश्यों को थोड़ा विस्तार के साथ दिखाया गया था। वहाँ भी लाइट काफ़ी परिकल्पित ढंग से व्यवहार में लायी गयी थी। पर बलात्कार के दृश्य में दो बार किसलिए ? उसका एक जवाब कहानी से ही मिल जाता है। जात्रावालों ने देशी ताबेदार वर्ग का चरित्र भी दिखाया। उसे हालाँकि दूसरे तरह से भी दिखाया जा सकता था। पर दर्शकों की प्रतिष्ठा से ही लगता था कि पहली बार का बलात्कार

प्रत्याशित दुर्घटना थी। वहाँ अत्याचार के चिह्न संपूर्ण लुप्त नहीं होते। पर एक ही लड़की के साथ दुबारा बलात्कार का दृश्य दर्शकों को नाटकीय और अप्रत्याशित लगा। देहजीविनी किसी लड़की के शरीर पर किसी प्रकार के यौन आघात आने पर जैसे दर्शकों का शारीरिक पवित्रता बोध आहत नहीं होता, उसी तरह एक बार बलात्कार की शिकार बनी लड़की का दूसरी बार बलात्कार होते देखकर दर्शकों का सामाजिक सुरक्षा बोध शायद बाधित नहीं होता। बल्कि इस दूसरे बार होनेवाले बलात्कार को जात्रा के दृश्य में काफ़ी निरपेक्ष भाव मे उपभोग किया जा सकता है। उस मामले में लाइटिंग व्यवस्था भी काफ़ी सहायक सिद्ध हुई। पहली बार की घटना साहब की कोठी पर घटती है। वहाँ तभी काफ़ी प्रकाशमान लाइट रहती है तब तक कि साहब चाहता है और साहब भी काफ़ी समय तक उजला प्रकाश चाहता है। वहाँ किसी अज्ञात उत्स से साहेबी संगीत भी झर रही होती है—बलात्कार की प्रस्तुति के साथ। और दूसरी बार बलात्कार होता है लड़की के अपने घर में, अँधेरे में। वहाँ दर्शकों की साँसें, आह, कातरता की आवाज़ काफ़ी स्पष्ट रूप से सुनने को मिलती हैं।

प्रत्येक सांस्कृतिक कार्यक्रम में देखा गया कि दर्शकों का एक बड़ा हिस्सा सब कुछ पहले से ही जान गया था कि कहाँ क्या होगा या होनेवाला है। सिर्फ़ अनुमान रहा हो, ऐसा नहीं था। क्योंकि पंडाल में खचाखच भरे इतने लोगों के बीच आस-पास वाले गाँव से कितनी औरतें आयी हैं, दूर से बस में कितने दर्शक पहुँचे हैं यह जान पाना संभव नहीं था। फिर उस तरह के पुरुषों की संख्या भी कोई कम नहीं थी जो सब जात्रा, थियेटर, फ़िल्में पहले कभी नहीं देखे हुए थे। वे ये सब गीत बल्कि रेडियो में पहले से सुन चुके थे। ये सब देखने या जाननेवाले दर्शकों की संख्या अधिक न होने पर भी, ये दर्शक इतने बड़े पंडाल में प्रमुख स्थान रखते थे। वे विभिन्न जगहों पर बैठे रहते थे, पर अंदर घुसते और निकलते थे प्रायः एक समय ही। उनकी उम्र की सीमा भी काफ़ी बड़ी थी—बीस-बाईस से लेकर चालीस-पैंतालीस तक। इधर काफ़ी कम लाइट का वोल्टेज था। उस कम प्रकाश में ठीक से समझा ही नहीं जाता था कि ये सब स्थानीय लड़के हैं या नहीं। फिर इस कार्यक्रम का टिकट बिका था पहाड़ पर, असम के आस-पास तक के इलाक़ों में, बिहार में बालूरघाट, रायगंज, सिलीगुड़ी, जलपाईगुड़ी—इन सब शहरों में भी। सो, बर्फ़ीली रात के कम प्रकाश वाले इस कार्यक्रम में स्थानीय राजवंशी युवकों के साथ मिल गये थे। चाय बागान के मज़दूरों के मदेशिये चेहरे, गोरखा, बिहारी, असमिया चेहरे। पालिथिन की जैकेट, टोपी और उसी प्रकार के जूतों में शहर के युवकों के साथ मिले जा रहे थे ट्रक या बस के ड्राइवर, क्लीनर या ट्रक में लदकर दूर से आये विभिन्न पेशे के लोग। यही भीड़ दर्शकों का प्रमुख अंश थी—वे ही जैसे तय कर रहे थे कि कहाँ पर

कितनी सीटियाँ बजेंगी, कितनी आवाज़ उठेगी, कहां कोई रिमार्क कसेगा, कहां तालियाँ बजेंगी, शोर मचेगा।

173
सांस्कृतिक फंक्शन का ब्यौरा : गीत

दर्शकों के इस भाग के कार्यक्रम सबंधी पूर्व ज्ञान ही इन सास्कृतिक कार्यक्रमो की प्रमुखता होती है। जैसे बच्चे सुनी हुई कहानियों को बार-बार सुनना चाहते हैं और सुनते हुए दिल मे होनेवाली परिचित प्रतिक्रिया का रस लेते हुए आगे बढ़ते है ठीक उसी तरह ये दर्शक भी कार्यक्रम के बहुधा परिचित अशो को बार-बार सुनना और देखना चाहते है। फिर ऐसा भी हो सकता है कि इन दर्शको मे ऐसे भी बहुत से है, बल्कि यों कहना चाहिए कि एक बडा भाग ही है जो बार-बार फिल्म, टी वी या भिन्न-भिन्न जगहों पर कार्यक्रम देखकर पक्के दर्शक बन चुके है।

आमतौर पर जब गीतो के कार्यक्रम की बारी आयी तो कार्यक्रम के बारे मे दर्शको का पूर्व ज्ञान बहुत कुछ समझ में आ गया। क्योकि औरतो के बीच भी बहुत-सी ऐसी महिलायें थीं जो गायको के गले के साथ और उनके गीतो से पहले से परिचित थीं। हालांकि औरतो की भीड भी पुरुष दर्शकों की उपस्थिति में बड़ी विचित्र थी। हिसाब लगाकर देखा जाये तो वहाँ राजवंशी और मदेशिया औरतो की तादाद अधिक थी। पर इस गीत के कार्यक्रम मे शहर की औरतें भी शामिल थीं—जलपाईगुड़ी, सिलीगुड़ी, धुपगुडी, अलीपुरद्वार से भी काफी औरते आयी थीं। गानेवाले वैसे बहुत नहीं थे—चित्रा सिंह, अनूप जलोटा, मन्ना दे। इनके अलावा तीन और थे, पर इतने प्रसिद्ध नहीं, बस गा भर लेते थे। उन्ही से कार्यक्रम का शुभारंभ हुआ था, तब तक भीड नहीं लगी थी। बहुत-से लोग बाहर के मैदान मे थे, यहाँ तक कि रास्ते पर भी खड़े थे। गोला बनाकर झुंड मे बाते कर रहे थे भीड लगाकर चाय-सिगरेट पी रहे थे। एक छोटी-सी ताडी की दुकान भी खुली थी मैदान के भीतर इमीटेशन गहनों की दुकान के पीछे। बहुत सारे लोग थोड़ा इधर-उधर घूमते हुए अँधेरे में जाकर उस ताडी की दुकान से चक्कर काटकर चले आ रहे थे। बाहर से आये लोग इतना पर्दा नहीं कर रहे। वे काफी शोर मचाते हुए उधर जाते और पीकर वापस आ जाते थे आराम से।

दरअसल, मन्ना दे के गीतों से ही असली कार्यक्रम की शुरूआत हुई। दे ने एक भजन से ही प्रारंभ किया। उसके बाद एक रवींद्र संगीत गाया। इन दो गीतों के बाद थोड़ा समय लिया, थोड़ी देर तक सिर्फ़ हारमोनियम बजाया। तबला, गिटार का सुर बाँधा गया। फिर थोड़ा-सा मन्ना दे ने गुनगुनाया। वह

भी माइक पर सुना गया। फिर अचानक एक मुखड़ा गाकर रुक गये। दर्शकों की तालियाँ गूँज उठीं। तालियों की गँड़गड़ाहट रुक जाने पर वह माइक से थोड़ा मुँह हटाकर गाने लगे। वह गीत कोई ख़ास तालवाला गीत नहीं था। पर खिंचे हुए सुर का चलन था गीत में। ऊँचे पर्दे में खिंचे सुर के उस चलन में एक उत्तेजना भरी हुई थी। पर उत्तेजना चरम में पहुँचने के पूर्व ही गीत को अचानक ख़त्म करके बाङ्ला लोकसंगीत के धुन पर एक आधुनिक गीत का पहला चरण गा बैठे। पहले चरण के शुरू होते-न-होते दर्शकों के बीच 'ईस्स' जैसी एक आवाज़ फैल गयी। पर उस आवाज़ में आकस्मिकता से कहीं अधिक अचानक याद आ जाने का भाव था। इस प्रारंभिक उच्छ्वास के बाद दर्शक कहीं गीतों का सही जायजा लेने लगे। और इसी गीत से ही मन्ना दे जैसे समझ गये कि दर्शकों को कुछ दूसरे तरह का गीत पसंद है। वे गीत को घुमा-घुमाकर गाने लगे और उस प्रक्रिया से गीत की गति द्रुत हो उठने पर भी उससे एक नाटकीयता टपकने लगी थी।

मन्ना दे के बाद आयीं चित्रा सिंह। पर दल-बल के साथ मन्ना दे का प्रस्थान, फिर पर्दा का गिरना, दर्शकों में से बहुतों का बाहर चला जाना, यह सब मिलकर एक मध्यांतर-सा लगा था। काफ़ी समय बाद चित्रा सिंह के मंच पर आसीन होते ही पर्दा उठा। उसके बाद साज़ों का सुर बाँधा जाने लगा। तभी लगा कि दर्शक काफ़ी स्थिर होकर बैठे हैं। चित्रा सिंह माइक पर थोड़ा गुनगुनाने लगीं। काफ़ी सुरीली, नरम गले की उस गुनगुनाहट से तमाम पंडाल भर गया। फिर गुनगुनाहट बंद हो गयी। साज़ अचानक ज़ोर से बजने लगे। आधे मिनट तक एक सुर बजने लगा। उसके रुक जाने के बाद माइक में घोषणा शुरू हो गयी, "श्रोताओं से चित्रा सिंह का ख़ास अनुरोध है कि वे इस कार्यक्रम को किसी कैसेट में न भरें या टेप न करें। अगर ऐसा किया गया तो उसी पल वह कार्यक्रम बंद कर देंगी।" यह घोषणा दो बार की गयी। चित्रा सिंह ने ज़रा ज़ोर से हारमोनियम बजाकर दोनों हाथ जोड़कर नमस्कार किया। फिर उन्होंने गीत गाना शुरू कर दिया।

उनके शुरू करते ही औरतों की भीड़ से एक गुनगुनाहट उभरने लगी। एक समवेत गुनगुनाहट। वह गुनगुनाहट तुरंत थम गयी। उससे यह तो पता ही चल गया कि गायिका के साथ-साथ कुछ औरतें भी गुनगुनाने लगी थीं। चित्रा सिंह के कार्यक्रम के बीच ही यह गुनगुनाहट स्पष्ट हो गयी थी। कुछ औरतें गला मिलाकर गाने लगीं थीं। लगा कि चित्रा दर्शकों की इस प्रतिक्रिया को कुछ प्रोत्साहन ही देने लगी हैं। वे थोड़ी हँसीं। फिर उस गीत के ख़त्म होते ही वह एक द्रुत लय का भजन गाने लगीं। दर्शकों की तरफ हाथ बढ़ाकर कहा, "आप लोग भी गाइये।" फिर एक पंक्ति गाकर जैसे प्रतीक्षा करने लगीं दर्शकों की

प्रतिध्वनि के लिए। प्रतिध्वनि उठी भी। थोड़ी धीमी पर काफ़ी उल्लासभरी प्रतिध्वनि। और दो-तीन चरण इस तरह से गाने के उपरांत चित्रा सिंह अचानक हारमोनियम छोड़कर उठ खड़ी हुई। भजन के छंद के साथ-साथ दोनों हाथ फैला कर खुद भी भावनाओं की रौ में बह गयीं। साथ ही इशारे से उन्होंने दर्शकों को गाते रहने के लिए भी कहा। विंग से निकलकर एक आदमी उनके हाथ में माइक पकड़ा गया। बायें हाथ में माइक लेकर वे बायें हाथ को हवा में लहराने लगीं। सुर-ताल के साथ डोलने लगीं। उनकी अधखुली आँखों में भजन की खुमारी छा गयी। खुले बाल एक तरह के नशे में लहराने लगे। दर्शक उनके सिर के डोलने के साथ ताल रखकर धीरे-धीरे ताली देने लगे। पर गीत की द्रुतता के साथ वे ताली ताल से मिलाने लगीं। काफ़ी कुछ कीर्तन जैसा। आख़िर मे क्लाईमेक्स में वह काफ़ी देर तक चुपचाप झूमने लगीं। और दर्शक तालियाँ बजा-बजाकर गाने लगे। और फिर एक समय ऐसा भी आया कि यह सब-कुछ थम गया, गीता, झूमना, लहराना। चित्रा सिंह खडे खडे दर्शको के आगे झुकी और धीरे-धीरे पर्दा गिरने लगने लगा। तमाम कार्यक्रम जैसे एक आच्छन्नता के बीच ही कट गया।

उस आच्छन्नता के कटने में कुछ समय लग गया। पर दर्शक वैसे ही बैठे थे मंत्रमुग्ध। यह सही है कि उनमें से बहुत ही कम लोग बाहर गये थे। बाकी सब जैसे अपनी-अपनी सीट पर जम ही गये थे। पर्दा फिर उठा। अबकी स्टेज का प्रकाश और चित्रा सिंह की पोशाक थोड़ी बदल गयी थी। उनके गले में एक दूसरा सुर थिरकने लगा था--इस सौम्य स्निग्ध सुर में बालगोपाल का भजन। पर वह बालगोपाल भी दर्शको का काफ़ी जाना-पहचाना था। जैसे कि यह बात भी उन्हें पहले से ही पता थी कि इस दूसरे सत्र में उनका गला मिलाना निषिद्ध था। और फिर इस बार के गीत भी ऐसे नहीं था कि गला मिलाया जा सके।

अनूप जलोटा की बारी में दर्शकों का यह पूर्वज्ञान कुछ दूसरे रूप में ही देखने में आया। चित्रा सिंह के बाद कुछ समय तक मध्यांतर जैसा रहा। पर्दा उठने के बाद जलोटा ने भी कुछ वक़्त लिया तैयारी में। उस तैयारी में जैसे वे दर्शकों को अपने साथ जोड़ते हैं। बार-बार हारमोनियम बजाते रहे और दर्शकों की ओर देखते रहे। इस तरह से जैसे किसी परिचित व्यक्ति को ढूँढ़ रहे हों। पर वह तो सिर्फ़ एक मुद्रा ही थी। मंच का तमाम प्रकाश उन पर केंद्रित था। उस प्रकाश के पर्दे को भेदकर उनके लिए किसी दर्शक को देख पाना संभव नहीं था। पर दर्शक तो उनकी इस मुद्रा को देख रहे थे, और उस मुद्रा की सहायता कर रहे थे--गाने के लिए माहौल बनाकर। अनूप जलोटा ने इस तरह की खोज करते-करते काफ़ी धीमी आवाज़ में उर्दू की एक ग़ज़ल का सुर पकड़ लिया। जैसे किसी प्रगाढ़ स्वर में कोई अपने-आप से कुछ बात कर रहा हो एकांत में।

मयनागुड़ी जैसी एक जगह में ख़ासकर राजवंशी श्रोताओं के समक्ष उर्दू शायर की मिजाज़ से अनूप जलोटा का वह गीत न जाने कैसा तो एक मोहाच्छन्नता का माहौल बना दिया था। असम-बिहार से कितने ही भले दर्शक आयें हों, सिलीगुड़ी-बालूघाट से ही भले क्यों न दर्शक टूट पड़ें हों--फिर भी काफ़ी कम ही लोग इनमें से हिंदी भाषा-भाषी थे। पर उर्दू की सूक्ष्म रसिकता में वे भी डूब गये थे। उर्दू भाषा से इतने दूर के दर्शक और उर्दू अदब से ही गायक को वाहवाही देते थे। अनूप सिर्फ़ इस एक उर्दू ग़ज़ल में ही रुके रहे, ऐसा नहीं है। पहले की दो ग़ज़लें इसी रौ में गाने के बाद वह जैसे लोगों को भुला ही दिया कि कुछ समय पहले यहाँ चित्रा सिंह कोई दूसरे तरह का गीत प्रस्तुत कर चुकी थीं। और उसका शमाँ भी जैसे कब का टूट चुका था। अनूप जलोटा यही दो गीत गाने के बाद श्रोताओं की तरफ़ हिंदी में मुख़ातिब हुए, "मैं आपकी सेवा में यहाँ उपस्थित हुआ हूँ। आपके हुक्म के मुताबिक ही गाऊँगा। पर सबके मिलकर एक साथ हुक्म करने पर तो कुछ सुनायी नहीं देगा। अपना एक गीत ख़त्म होने पर मैं क्या गाऊँ--यह आपसे जानना चाहूँगा। तो आपमें से, जिनकी आवाज़ मुझ तक पहुँच सके, वह हुक्म फ़रमायें। मैं उन्हीं की फ़रमाइश के मुताबिक गाऊँगा।" अनूप जलोटा अपने एक-एक गीत से श्रोताओं को स्तब्ध कर देते। फिर रूमाल से मुँह पोंछते। हँसते हुए पूछते,--"फ़रमाइए !" समवेत चीत्कार ख़त्म होने से पहले ही वे एक गीत पकड़ लेते। शायद वह गीत पहले से ही तय हो चुका होता, पर दर्शकों के इस फ़रमाइश अधिकार के फलस्वरूप इतने बड़े पंडाल में हज़ारों दर्शकों के साथ गायक का घनिष्ठ संपर्क बन गया था। कभी वे हँसकर दर्शकों की तरफ एक हाथ बढ़ा देते। कभी सिर झटककर एक लाइन को बार-बार दुहराते। एक निश्चितता के साथ कि जिन दर्शकों को वे देख नहीं पा रहे थे कि वे उनके गीतों को किस तरह से ले रहे हैं।

174
सांस्कृतिक फंक्शन का ब्योरा : वीडियो

यह सांस्कृतिक कार्यक्रम तो उत्तराखंड सम्मेलन के उपलक्ष्य में हो रहा है--जबकि जो यह कार्यक्रम करवा रहे हैं, वे उत्तराखंडी शायद न भी रहे हों। पर उत्तराखंड के साथ अगर उनकी किसी तरह की सहानुभूति न रही होती तो वे ख़ुद ही पैसे लगाकर इस तरह का अलग कार्यक्रम करवा सकते थे। वह सहानुभूति शायद राजनैतिक नहीं है, या फिर सिर्फ़ राजनैतिक नहीं है। वह सहानुभूति शायद इस उत्तरबंग के साथ व्यापार या कामकाज के सूत्र से बना है। हो सकता है कि व्यक्तिगत जान-पहचान के आधार पर ही बना हो। पर किसी भी सूत्र से भले

क्यों न बना हो पर सहानुभूति तो सच है। एकदम सच। फिर इसके विपरीत उत्तराखंड का इतना बड़ा एक सम्मेलन जिन लोगों ने संगठित किया है, वे तो जानते ही है कि यह सांस्कृतिक कार्यक्रम इस सम्मेलन का ही एक भाग है। एक सांस्कृतिक कार्यक्रम के होने से उत्तराखंड सम्मेलन की बात तमाम उत्तरबंग में फैल जायेगी। कम-से-कम सभी को पता चल जायेगा - प्रचार के सहज उपाय के रूप में भी इस सांस्कृतिक कार्यक्रम को देख सकते है।

पर पहले ही धक्के से लगा कि उत्तराखंड सम्मेलन और यह सांस्कृतिक कार्यक्रम जैसे परस्पर विरोधी आयोजन है। सम्मेलन में उत्तराखंड का मतलब था राजवंशियों की स्वतंत्रता, अतीत का गौरव, वर्तमान की उपेक्षा, विक्षोभ, भविष्य की कर्मसूची। और शाम के कार्यक्रम में चल रहा था मुख्यतया हिंदी-उर्दू गीत या कम-से-कम बंगाली संस्कृति के आंशिक स्वरूप के ऐतिहासिक नाटक की धारा में जात्रा, और यहां तक कि ब्रेख्त के नाटक का बाङ्ला अनुवाद और इसके अलावा वीडियो। इसमें का हरएक कार्यक्रम तो दर्शकों को भारत की वृहत्तर सत्ता, यहाँ तक कि विश्व सत्ता की याद भी दिला देता था। कम से-कम याद दिला देने की बात भी थी। सुबह सम्मेलन मे जो आज़ादी की माँग की जा रही थी, शाम के कार्यक्रम में तो उसी आजादी की माँग को खारिज कर भारतीय संस्कृति के साथ सामंजस्य की ही बात अधिक हो रही थी। तो फिर इस सम्मेलन के साथ इस तरह का एक कार्यक्रम जुड़ा कैसे ?

बात को थोड़ा और विस्तार के साथ भी सोचा जा सकता है। कार्यक्रमो में दर्शकों के पूर्वज्ञान का मामला इतना प्रतिष्ठित है कि लगता है यह कार्यक्रम अगर न भी होता तो भी दर्शक इनमें हर समय मशगूल रहते। वही अगर हो तो इस उत्तराखंड के आधार के लिए मिट्टी तो चाहिये ही ?

या फिर कहीं संयोग अदृश्य हो जा रहा है ? कहीं कोई संयोग और जोरदार हो रहा है—अदृश्य ? परिचित ऐतिहासिक कहानी के भीतर बंबइया फ़िल्म में दिखाया जाने वाला कैबरे और बॉल डांस, समाचार-पत्रों मे सामूहिक बलात्कार की ख़बर पढ़ने के अभ्यस्त दर्शकों के सामने एक ही लड़की दो बार दो तरह से जिस कारण से बलात्कार की शिकार होती है, चित्रा सिंह के भजन की मोहकता और अनूप जलोटा के दरबारी गायन की कला दर्शकों को अच्छी लगी। यहाँ तक कि वीडियो जैसे आधुनिक यंत्र के व्यवहार ने इस पिछड़े इलाक़े में जिस स्वच्छंदता के साथ अपना स्थान बना लिया—उसी प्रक्रिया, कौशल और स्वच्छंदता में अलगाव का एक प्रबल आकर्षण निहित था। नदी में जैसे बहुत बार सतह का बहाव जिस गति से बहता है नीचे उतने ही तेज़ वेग से एक धारा विपरीत दिशा में बहती है, समाजबद्ध मनुष्य के समक्ष भी शायद ऐसा ही होता है। ये सब जात्रा, गाना-बजाना लोगों को जितने अधिक एकसूत्र में बाँधते हैं, मनुष्य

उतना ही अधिक अंदरूनी तौर से अलग हो जाना चाहता है। सीप जैसे नहीं, क्योंकि सीप के खेल में अपने को छिपा लेने में सिर्फ़ आत्मरक्षा की भावना रहती है, किसी के प्रति हमले की हिंसक भावना नहीं होती।

बुधवार की रात भर वीसीआर पर चार फिल्म दिखाने की व्यवस्था की गयी थी। उसके दूसरे दिन श्रीदेवी का कार्यक्रम रखा गया था इसी से उसके पहले दिन का कार्यक्रम थोड़ा हल्का फुल्का रखा गया था। क्योंकि वीडियो फिल्म देखने के लिए निश्चय ही दूर दराज के दर्शक आनेवाले नहीं थे। गाँव के दर्शक भी आने वाले नहीं थे। स्थानीय दर्शक ही रात भर जागकर जहाँ तक हो सकेगा देखेंगे। एक दिन अगर छोड़ दिया जाता तो अच्छा रहता पर खाली छोड़ देना बहुत ही बुरा लगता, इसी से वीडियो फिल्म का बंदोबस्त किया गया था। एक अंग्रेज़ी फिल्म 'ड्रेकुला' दो हिंदी फिल्म 'शोले' और 'शहंशाह' और एक बाङ्ला फिल्म 'प्रतिकार' दिखायी जा रही थी। अब तराई-डुवार्स इलाके में हाट काफी बढ़ गयी है। बड़े बड़े कई हाटों में वीडियो पार्लर भी खुल गये हैं। पहले तय किया गया था कि शहर के किसी वीडियो पार्लर के मालिक के साथ मिलकर फिल्म दिखाने का बंदोबस्त किया जायेगा। सभी तार्किक थे। वे इस पर ही आ रहे थे, तो वीडियो का जाकर रखकर क्या होगा? पर हल्दीबाड़ी के वीडियो पार्लर का मालिक यहाँ आकर लोगों की खुशामद करने लगा। मालिक का बाप हल्दीबाड़ी का एक विख्यात जोतदार था। उनके लड़के ज़मीन जायदाद बेचकर प्रायः सबके साथ बाहर चले गये थे। एक लड़का तो विदेश में जा बसा है। बस यही मालिक यहाँ रुका हुआ है। बाप-दादों के घर में हिस्सा मिला हुआ है। समय समय पर तरह तरह के बिजनेस करने के बाद इधर काफी दिनों से वीडियो पार्लर खोल रखा है। उसका परिवार वीरेन बाबू का पुराना मुवक्किल है। अब वैसे मामले मुकदमे की कोई बात नहीं रही। वह आकर वीरेन बाबू की खुशामद करने लगा। वीरेन बाबू ने उसका नकुल बाबू से परिचय करवा दिया। उन्होंने वायदा किया कि इनके लिस्ट के मुताबिक कलकत्ता से नया प्रिंट मंगवायेंगे। आयोजक भी वीडियो फिल्म के मामले को ज़्यादा घसीटना नहीं चाहते थे। आख़िरकार इसके प्रस्ताव से राज़ी हो गये।

पर कौन-कौन-सी फ़िल्में लायी जायें -यह तय करने में ही काफ़ी वक्त लग गया। एक गोपनीय प्रस्ताव को लेकर हो-हल्ला मचा कि आख़िर में एक ब्लू फिल्म दिखायी जाये कि नहीं। वैसे इतनी रात गये कोई अधिक दर्शक, बच्चे, स्त्रियाँ भी नहीं होंगी। जो भी होंगी सो चुकी होंगी। पर आख़िर में उसी गोपनीय भाव से यह भी तय हुआ कि ब्लू फ़िल्म नहीं होगी। क्योंकि पुलिस बखेड़ा खड़ा कर सकती है। उससे 'एडल्ट हॉरर' फिल्म दिखाना काफ़ी अच्छा रहेगा और सुरक्षित भी। उसमें भी थोड़ा-थोड़ा ब्लू होता है पर वह बीच-बीच में चल ही

जाता है। एडल्ट हॉरर फ़िल्म को लेकर कुछ बातें भी हुईं। आख़िर में तय पाया कि 'ड्रैकुला' ही ठीक रहेगी, बिल्कुल नयी तरह की, ख़ास वीसीआर के लिए ही बनी है। 'शोले' के लिए सब राज़ी थे। वीडियो पॉर्लर के मालिक ने पूछा था, "अगर शहंशाह का एक प्रिंट मिल जाये तो, जाये या नहीं ?" अमिताभ बच्चन का पोस्टर बार-बार देने के बावजूद, रिलीज़ की डेट बार-बार तय हो जाने पर भी रिलीज़ नहीं होने दिया जा रहा है। बाङ्ला फ़िल्म होती तो सभी लड़कों को अच्छा लगता—लड़कियाँ आने से इसी पहली फ़िल्म को देखकर ही चली जायेंगी। आख़िर में यही चार फ़िल्में ही चुनी गयीं। पॉर्लर वालों ने ही तय कर दिया कि सबसे पहले बाङ्ला फ़िल्म ही दिखायी जाये, फिर 'शोले', बाद में 'ड्रैकुला' और आख़िर में 'शहंशाह'। पर बाद में थोड़ी फेर-बदल की गयी। 'शोले' लंबी फ़िल्म है, फिर अधिकतर लोगों की देखी हुई ही है इसलिए उसे ही अंत में रखा जाये। 'शहंशाह' एकदम नयी फ़िल्म है। बल्कि उसे सबसे पहले दिखाया जाये। आख़िर में वही तय हुआ। पर उसमें भी तरह-तरह की बाधाएँ आयीं। क्योंकि जागते हालत में 'शोले' का परिचित डायलॉग सुनने के लिए सबका आग्रह था। ठंड से ठिठुरते हुए रात में ऊँघते हुए 'शोले' कुछ जमेगी नहीं। तभी तो रात बिताने के लिए ही ऊँघते-ऊँघते देखना भी कोई देखना है !

'शोले' को पहले दिखाने के पीछे भी एक ख़ास मतलब था। ताड़ी की दुकान तब तक खुली रहेगी। शराब पीते-पीते 'शोले' देखना ! ऐसा सोचा भी नहीं जा सकता। पर 'शहंशाह' को ज़्यादा वोट मिला। जो लोग 'शोले' के पक्ष में थे, वे भी आख़िरकार राज़ी हो गये। कुछ भी हो, अमिताभ बच्चन की नयी बिना देखी फ़िल्म थी। कितनी और ख़राब होगी ?

बाङ्ला फ़िल्म साढ़े दस बजे के अंदर ही ख़त्म हो गयी। बीच में कोई मध्यांतर नहीं दिया गया था। बाङ्ला फ़िल्म औरतों ने ही अधिक देखा। पर उस फ़िल्म के ख़त्म होने के साथ ही पंडाल प्रायः खचाखच भर गया था। इतने लोग होंगे ऐसा सोचा भी नहीं गया था। टेलीविज़न को एक ऊँचे स्टूल पर रखा गया था। टीन के बेड़े को स्टूल पर स्क्रू से कस दिया गया था। पर स्टेज पर उसे न रखकर पंडाल के बीचोंबीच रखा गया था। पूरब की दीवार से सटाकर। दर्शक टी.वी. को घेरकर बैठे थे। सामने जो लोग बैठे थे, वे अधिक सामने जा नहीं पा रहे थे, पर पीछे जो लोग थे, वे पास में ही फैलकर बैठे हुए थे।

स्क्रीन के प्रकाश में पंडाल के भीतर पल-पल में उभर आते थे भारत के विभिन्न प्रांतों के तरह-तरह के दृश्य। पहाड़ों से समुद्र, मध्ययुग से आधुनिक युग तक फैल जाता था उस दृश्य का संसार। और क़रीब तीन घंटे तक वास्तविकता के ऊपर उतर आता था मध्ययुग का एक पाश्चात्य प्रासाद। उसमें मृत्यु के बाद का निर्विकार चेहरा लिए एक मुखौटे जैसा मुँहवाला एक दीर्घकाय मनुष्य। उसकी

आयु समझ में नहीं आती। उसकी आँखों में पलक का साया नहीं। मयनागुड़ी के इस पंडाल के सिरे पर अंतिम रात के आख़िरी पहर की ओस पड़ रही थी टप-टप, लगातार और पंडाल के भीतर दर्शकों की उनींदी आँखों के सामने एक के बाद एक हत्यायें होती चली जाती थीं। प्रत्येक हत्याकांड को विस्तार से दिखाया जा रहा था। जिसका खून होता, उसके शरीर के हरेक हिस्से को तरह-तरह के क्लोज़-अप के जरिए दर्शक के सामने परोसा जा रहा था। हत्या के बाद हत्या, खून के बाद खून से मानव शरीर जब अवांतर हो जाता था, तभी उस यांत्रिक अवास्तविकता में लड़कियों का शरीर मोम की तरह पर्दे में सिर्फ़ घूमता रहता था। जैसे, कोई उच्चारण नहीं, कोई भाषा नहीं, बम से विध्वस्त किसी नगर की तरह नारी शरीर था, सिर्फ़ शरीर। उस संपूर्ण अनजान कहानी के अंत में गब्बर सिंह के चिर-परिचित कंठस्वर में 'ड्रेकुला' भी उत्तराखंड सम्मेलन का आत्मीय बन गया था।

175
श्रीदेवी के नाच के लिए ट्रैफिक कंट्रोल

बृहस्पतिवार की सुबह ठीक दस बजे लगा कि मयनागुड़ी शहर को पुलिस ने अपने क़ब्ज़े में कर लिया है। तिस्ता ब्रिज से होकर जो रास्ता मयनागुड़ी को आता है, और मयनागुड़ी से जो दो रास्ते मालगोदाम और असम की ओर चले गये हैं—उन्हीं तीनों रास्तों से होकर पुलिस गाड़ियाँ भागती देखी गयीं। मलाबाज़ार रास्ते में एक, असम रास्ते में तीन और ब्रिज के रास्ते में दो पुलिस से भरी लारियाँ। इसके अलावा खुद डीएसपी साहब जीप लेकर चौराहे पर खड़े रहे; असम रास्ते में चले गये मयनागुड़ी थाना के ओसी। जलपाईगुड़ी की ओर जलपाईगुड़ी का ओसी। दस से बारह बजे तक समय तो इस भागमभाग में बीत गया। बारह बजे के बाद ही समझ में आया कि ट्रैफ़िक का उत्तरदायित्व पुलिस ने अपने कंधों पर ले लिया है। असम के रास्ते में तीनेक मील आगे से, जलपाईगुड़ी रास्ते में तिस्ता ब्रिज तक, किसी भी गाड़ी को खड़ा होने नहीं दिया जा रहा था। किसी गाड़ी को रोका भी नहीं जा रहा था। मिनी बस या बसों को स्पीड भी कम करने नहीं दे रहे थे। पैसेंजर बिठाने-उतारने के लिए कार्यक्रम की जगह, चौराहे, चौराहे के बाद एक जगह पर सिर्फ़ एक मिनट रुकने दिया जा रहा था। गाड़ियों को मालगोदाम की ओर से शहर में घुसने नहीं दिया जा रहा था। 'भारती' सिनेमा के क़रीब से ही बाहर कर दिया जा रहा था। फलतः मयनागुड़ी चौराहे में दूसरे दिनों की तुलना में गाड़ियों की भीड़ लगभग नहीं थी। हालाँकि लोगों की भीड़ काफ़ी बढ़ गयी थी। बहुत कुछ हड़ताल के दिनों जैसा लग रहा था।

क़रीब दिन के एक-डेढ़ बजे से बाहर से ट्रक-बसों का आना शुरू हो गया। पुलिस किसी ट्रक-बस को शहर के अंदर आने नहीं दे रही थी। कार्यक्रम वाली जगह से एक मील दूर असम के रास्ते में एक बड़े-से मैदान में उन ट्रक-बसों को ठहराया जा रहा था। क़तारों में खड़े होकर एक-एक टोकन दिया जा रहा था—गाड़ी का नंबर और ड्राईवर का नाम लिखकर रखा जा रहा था। सबसे पहले गाड़ियों का परमिट चेक किया जा रहा था। उसको लेकर कुछ झमेला होते ही डीएसपी साहब ने आकर मयनागुड़ी के ओसी से कह दिया कि परमिट देखने की आवश्यकता नहीं है। डीएसपी के चले जाने के बाद दो हेड कांस्टेबिलों ने मैदान के अंदर कतारों में खड़ी गाड़ियों का परमिट गुप्त रूप से देखना चाहा। परमिट के बदले वे दस-दस रुपये लेने लगे। वे तो पाँच-पाँच रुपये देना चाहते थे, पर कांस्टेबिलों ने उन्हें समझाया कि ऊपर से नीचे तक उसका कितना हिस्सा बनना है, जो पाँच रुपये में हो ही नहीं सकता। सभी से दस रुपया ले रहे थे। कई ट्रक-बसों के आते ही यह सब हंगामा बंद हो गया। नयी गाड़ियों के मैदान में घुसते-घुसते ही पता चल गया था कि उन्हें दस रुपये देने हैं कांस्टेबिलों को। इन दोनों कांस्टेबिलों को और कोई बुलाता न था, वे वहाँ एक बस की छाया में बिछे शतरंजी पर बैठे हुए थे।

तिस्ता ब्रिज की ओर से थोड़ी देर बाद पहली गाड़ी आयी। दिन के क़रीब तीन बजे। उस ओर पास में किसी मैदान के न होने से क़रीब मील-डेढ़ मील दूर एक मैदान में गाड़ियों को खड़ा किया जा रहा था। वह मैदान ढलान पर था। रास्ते से काफ़ी सँभालकर गाड़ियों को मैदान में उतारा जा रहा था। मैदान काफ़ी बड़ा था पर कुछ दूर पर जंगली झाड़-झंखाड़ों से भर गया था। उधर जाने के लिए कोई बस या ट्रक राज़ी न था।

तिस्ता ब्रिज की ओर से प्राइवेट गाड़ी और टैक्सी काफ़ी तादाद में आने लगे थे। और इस मैदान में उतरने के लिए राज़ी न होते थे। फिर यहाँ इतनी दूर से उतरकर पैदल जाना भी लोगों को पसंद नहीं था। वहाँ भी चार बजे गड़बड़ी शुरू हो गयी थी। डीएसपी साहब को वहाँ आना पड़ा। जो लोग डीएसपी के साथ बातचीत कर रहे थे, उनमें से काफ़ी लोग दार्जिलिंग, सिलीगुड़ी, जलपाईगुड़ी के व्यापारी या नौकरीपेशा लोग थे। कॉलेज के अध्यापक लोग भी दो टैक्सियों में आये थे। गड़बड़ी के तूल पकड़ने के पहले ही डीएसपी ने कहा, "देखिये, ट्रक, बस, मिनी बसों को यहीं रहना पड़ेगा। प्राइवेट गाड़ी और टैक्सियों के लिए हमने सामने एक पार्किंग का बंदोबस्त भी किया है। उस प्वाइंट पर पैसेंजरों को उतारकर गाड़ियों को यहाँ ले आना होगा। इस पर आप लोग राज़ी हों तो बताइये, वरना सबको यहीं उतरना पड़ेगा।"

इस प्रस्ताव को न मानने के एक गुंजन के बीच किसी ने अचानक सवाल

उठाया, "मतलब यह कि लौटते समय फिर से यहाँ आकर गाड़ी पकड़ना होगा। इतना पैदल चलकर ?"

डीएसपी धमकी देने के अंदाज़ में कहने लगे, "बस-ट्रक के पैसेंजरों को यहाँ से चलकर जाना पड़ रहा है, देख नहीं रहे। आप लोगों को समय नष्ट करना नहीं है। जो करना है फ़ौरन कीजिये।" इस बीच एक और आवाज़ सुनायी दी, "इतनी रात में इतना पैदल चलकर आने में रास्ते में अगर कोई चोरी-डकैती हो तो उसकी ज़िम्मेदारी कौन लेगा ?"

डीएसपी ने कहा, "रास्ते में कल सुबह तक पुलिस रहेगी।" कहते हुए रास्ते में खड़ी मारूती को सीधा चले जाने के लिए कहा। मारूती का ड्राइवर कोई बात समझे बग़ैर सीधा चला गया। उसके पीछेवाली गाड़ियाँ भी पीछे-पीछे चल पड़ीं। जलपाईगुड़ी के ओसी को उस प्वाइंट पर भेजकर डीएसपी अपनी गाड़ी में जा बैठे।

जलपाईगुड़ी के ओसी रास्ते के किनारे अपनी जीप रोककर नीचे उतर आये—फिर डीएसपी की आयी हुई जीप की तरफ चलने लगे। डीएसपी की गाड़ी के रुकते ही ओसी ने कहा, "सर, पहले जो व्यवस्था थी, उसी को बरक़रार रखें। नहीं तो इस सँकरे रास्ते में लोगों और गाड़ियों में फिर गोलमाल शुरू हो सकता है।"

डीएसपी गाड़ी के नीचे उतर आये। फिर ओसी को साथ लेकर पहले वाली जगह की ओर पैदल चल पड़े। प्राइवेट गाड़ियों की धूल से रास्ता अँधेरा हो गया था। डीएसपी ने दबे स्वर में कहा, "ठीक कह रहे हो," गाड़ी-वाड़ी मिलकर एक स्टम्पेड हो जाने का भय है।"

उस पार्किंग के मैदान में आकर डीएसपी ने हाथ दिखाकर बाक़ी प्राइवेट गाड़ियों को रोककर मैदान में जाने के लिए कहा। उन सब नये गाड़ीवालों को यह पता ही न था कि इस बीच यहाँ क्या-क्या तय हो चुका है। फलतः वे गाड़ी लेकर सीधा मैदान में चले गये। और जिन प्राइवेट गाड़ियों के लोगों ने वहाँ उतरने से आपत्ति जतायी थी, उनमें से बहुत-से मैदान में उतर गये हैं। क्योंकि गाड़ी के भीतर किसी-किसी के फ्लास्क में चाय थी, किसी के पास शराब की बोतल थी। गाड़ी अगर थोड़ी दूर जाकर फिर लौट आये तो फ़ायदा ही क्या ? उससे तो यही बेहतर था कि इस मैदान के बीच गाड़ी रखकर पैदल ही चला जाये। यही सोचकर वे मैदान के बीच में घुस आये हैं। इसे लेकर और कोई बखेड़ा खड़ा नहीं हुआ। जिन गाड़ियों को पहले से छोड़ दिया गया था, उनके वापस आ जाने पर डीएसपी ओसी से बोले, "आप यहीं पर रुकें।"

अब तक जिन तीन दिशाओं से ट्रक-बस-गाड़ियाँ आ रही थीं, वे सब संगठित हो चुकी थीं। अगर आकाश के ऊपर से देखा जाता, तो दिखायी देता

कि तिस्ता ब्रिज से, असम रोड से, डुयार्स के रास्ते और इसके अलावा मैदान से होकर या मैदानी सड़क से होकर, जैसे इतनी थोड़ी जगह से सभी तरफ़ से पैदल चलने वाले लोग एक केन्द्र की ओर बढ़ रहे हैं। इतने सारे पथ से होकर हज़ारों लोग धीरे-धीरे उस केंद्र की ओर जा रहे हैं—ठीक काफ़ी बड़े मेले में तीर्थ यात्रा जैसे चलते थे। इससे धूल उड़ रही थी। आकाश और मिट्टी के बीच धूल का एक पर्दा-सा तैयार हो गया था। उस पर्दे की आड़ में लोग भी धुँधले-धुँधले नज़र आ रहे थे। पर इतने सारे लोगों का एक ही साथ एक ही गति से एक ही केंद्र की ओर चलना, इससे धूल का उड़ना भी एक तरह से सुंदर लग रहा था। यह तो फिर ट्रक या बस से उड़नेवाली धूल का तूफान नहीं, लोगो के पैरों से उड़नेवाली धूल थी। एक ही केंद्र की ओर इतने लोगों के चलने से धूल को भी एक प्रवाह-पथ मिल गया था।

176

श्रीदेवी का नाच : प्रत्याशा और प्रतीक्षा

मयनागुड़ी के निकट जल्पेश में हर साल शिवरात्रि के अवसर पर मेला लगता है। जल्पेश के आस-पास मयनागुड़ी ही सबसे बड़ा शहर है और जल्पेश का मेला भी महीने भर तक चलता है। फलस्वरूप तीर्थयात्री मयनागुड़ी होते हुए ही जाते हैं। मयनागुड़ी के मैदान, घाट, बरामदे, पेड़ के नीचे अस्थायी भाव से डेरा बाँधते हैं। शिवरात्रि के दिन मयनागुड़ी होकर पहले पैदल तीर्थयात्री जाया करते थे, अब बस, मिनी बस में भीड़ लग जाती है। यह सब देखने का अनुभव मयनागुड़ी के लोगों को रहा है।

पर श्रीदेवी के नाच के दिन शाम चार बजे से ही मयनागुडी और उसके आसपास का जो रूप हो गया था उस सालाना अनुभव के साथ तिल भर भी मेल नहीं खाता था। लगता था मयनागुड़ी में और उसके आस-पास जल्पेश के कई मेले एक साथ ही चल रहे हैं।

असम और बिहार की ओर से जो लोग ट्रक या बस में आ रहे थे, वे बस ट्रक में ही खाने-पीने पहनने-ओढ़ने की चीज़ें लेकर आ रहे थे। किसी कंपनी की ज़िम्मेदारी में जो लोग डीलक्स बस में आये थे, उनका तो बस ही घरद्वार बन गया था। मैदान के भीतर गाड़ियों को घुसा लेने के बाद गाड़ी के यात्री अपने परिवार के लोगों को या फिर दोस्तों के लिये अलग-अलग गाड़ी के यात्री अपने परिवार के लोगों को या फिर दोस्तों के लिये अलग-अलग शतरंजी बिठाकर बैठ गये थे। कहीं टीन खोलकर डालपुर, अचार, दालमोठ, चनाचूर, अमरूद निकल रहा था। शालपत्ते का दोना उनके साथ ही था। जेली कैन में पानी भी। कहीं

पंपवाले कैरोसीन तेल के स्टोव के ऊपर कढ़ाई चढ़ी थी—पूरियाँ तली जा रही थीं। यहाँ तक कि इस छोटे-से आकार में ही कहीं-कहीं ताश की महफिल गर्म हो चुकी थी। औरतें भी थीं। पर संख्या में उतनी अधिक नहीं। इस तरह के जितने भी कार्यक्रम होते हैं, उसमें औरतों की जितनी तादाद आमतौर पर होती है, उतनी भी नहीं थी। पर पूरी तलने, टीन के बक्से से खाना निकालने जैसे काम के लिये तो औरतों की आवश्यकता होती ही है। किसी-किसी डीलक्स बस में औरतों की संख्या अधिक थी। वहाँ बड़े-बड़े कलश के साइज़ के फ्लास्क में चाय भी थी, ठंडा पानी भी था।

ट्रक, बस, गाड़ी पार्किंग की जगह खाने-पीने की चीज़ों की सुगंध हवा में तैर रही थी। उसके साथ कुछ-कुछ शराब की गंध भी। पर खाने की चीज़ों की गंध इतनी प्रबल थी कि शराब की गंध भी उसमें घुल-मिल गयी थी—अलग से पहचाना नहीं जा रहा था। पर आवाज़ों को अलग किया जा पा रहा था। मेले जैसे खूब हो-हल्ला नहीं—लोग आपस में ही बतिया रहे थे। वह आवाज़ कितनी दूर तक जा सकती है ? दुकान-बाज़ार का शोर नहीं, गाड़ी-घोड़े की आवाज़ नहीं। लोगों की आवाज़ के साथ कैसेट पर श्रीदेवी के सभी हिट गीतों की आवाज़ चारों ओर फैल रही थी। कैसेट प्लेयरों को कंधे या हाथ में झुलाकर लोग इधर-उधर घूम रहे थे। इसी से एक-एक गीतो के साथ दूसरे गीत घुलमिल जा रहे थे—बड़े ही विचित्र ढंग से। फिर बिखर रहे थे। किसी-किसी कैसेट में दूसरे गीत भी बज रहे थे। कोई-कोई इन गीतों के साथ सुर मिला रहा था। पर फिर भी किसी तरह का शोरगुल नहीं था। यहाँ तक कि कैसेट भी कोई ऊँची आवाज़ में नहीं बजा रहा। या फिर शायद ज़ोर से बजाने के बावजूद इतनी बड़ी जगह और इतने सारे लोगों के होने से आवाज़ धीमी लग रही थी। इतने सारे लोग, इतने गाड़ी-घोड़ों के साथ आजकल माइक की आवाज़ के लोग अभ्यस्त बन चुके हैं। या कि सिर्फ़ माइक के न होने पर लगता है कि सबकुछ जैसे चुपचाप है।

ये हज़ारों लोग अपेक्षतया शांत होकर घूम-फिर रहे थे। धीमे स्वर में कैसेट बजाये जा रहे थे। खाने-पीने, ताश खेलने के बीच भी जैसे थोड़ा-अनमना हो रहे थे। चाय या शराब से गला थोड़ा-सा तरकर लेने पर भी उसमें खो नहीं रहे थे। इसका कारण—ये हज़ारों-हज़ार लोग एक स्थायी और अनाटकीय प्रत्याशा के बीच घूम-फिर रहे थे। अगर किसी अपरिचित को लेकर कुछ हो जाता, तो उस प्रत्याशा को इतना धीरे और निश्चित लय पर गरमाया नहीं जा सकता था। एक अनिश्चयता के उद्वेग में फट पड़ती थी वह प्रत्याशा। क्योंकि श्रीदेवी इस भीड़ में किसी से भी अपरिचित नहीं। श्रीदेवी की फ़िल्में देखकर, नाच देखकर यह भीड़ आज के कार्यक्रम में क्या देखना चाहती थी वह निश्चित भाव से पता था उसे। यहाँ तक कि यह भीड़ अपनी देखी और पहचानी श्रीदेवी को ही सक्षात्

में देखना चाहती थी। यहाँ तक कि श्रीदेवी अगर इसी रास्ते पर से खुली गाड़ी पर खड़ी होकर गुज़रती तो उससे भी भीड के बहुतों को तृप्ति मिल जाती कि श्रीदेवी का भी रक्तमांस का एक शरीर है। श्रीदेवी का रक्तमांस का शरीर इन लोगों का परिचित था। उसी रक्तगास के शरीर से यौन-उत्तेजना के आकर्षण में ही यहाँ खिंची चली आयी थी। यह भीड को जैसे पता था कि सिनेमा से जो यौन उत्तेजना फैली है उसका एक मानविक उत्ता भी है, और वही जान लेना भर ही इनके लिये पर्याप्त था। पर उस ज्ञान की सीमा काफी शिथिल है। इस भीड़ में उस तरह के एक असंभव की तैयारी भी जैसे थी कि सिनेमा के पर्दे को छोड़कर भी रंगमंच की वास्तविकता में रक्तमांस की श्रीदेवी को देखना उसके सिनेमा हॉल के अनुभव के संप्रसारग्ण जैसा भी हो सकता है। श्रीदेवी के रक्तमास के शरीर को छुआ जा सके या फिर क़रीब-से ही देखा जा सके। सिनेमा के पर्दे पर श्रीदेवी के बदन की मांसल उभार या पीठ के तिकोने हाड के ऊपर की पेशियों की थरथराहट से जो परिचित थे, वे उस शरीर को इतना स्पर्शातीत नहीं सोच सकते थे। हाँ, अगर कोई मौक़ा उनके हाथ लगा तो। इसी से इस भीड़ के शांत या अनुत्तेजित प्रत्याशा के बीच एक हिंसक इच्छा नही होती, ऐसा भी नहीं है। इतना शांत और अनुत्तेजित न होते तो उस हिंसक भावना का अदाजा कर पाना भी कठिन ही होता।

या फिर उस हिंसक भावना को एकदम सच कहकर भी मान लिया जाता। इसी से पुलिस के परामर्शानुसार श्रीदेवी सिलीगुड़ी के होटल से अपनी तीनों गाडी लेकर जलपाईगुड़ी होते हुए तिस्ता ब्रिज से होकर मयनागुड़ी नहीं आयी। क्योंकि इसी रास्ते पर दर्शकों का तॉता बँधा था। किसी भी जगह गाड़ी रुक जाने का चांस था। लोग श्रीदेवी को पहचान सकते थे। श्रीदेवी लाटागुडी होकर आयी। उदलाबाड़ी पार कर चालसा के मोड़ से लाटागुड़ी होकर आयी। क्योंकि इन्हीं रास्तों में दर्शकों की आवाजाही सबसे कम थी। जो भी आ-जा रहे थे वे चाय-बागान के थे। रास्ता भी अपेक्षाकृत चौड़ा था। रास्ते में पहाड थे। जंगल और चाय के बागान भी थे। इससे अगर श्रीदेवी पहचान में आ जाये तो भी लोगों की भीड़ हो जाने का कोई ख़ास भय नहीं था।

श्रीदेवी की तीन गाड़ियों में से पहली गाड़ी में उसके बॉडीगार्ड, दूसरे में वह खुद और हो सकता है कोई और भी हो। गाड़ी का काला विंडो स्क्रीन उठा हुआ था। तीसरी गाड़ी में उसके दूसरे सहायक, साजिंदे, मेकअप मैन थे। इन तीनों गाड़ियों के थोड़े फ़ासले पर एक पुलिस की जीप भी चल रही थी।

मयनागुड़ी के क़रीब आते ही पुलिस की गाड़ी श्रीदेवी की गाड़ियों के काफ़िले के पास चली आयी। फिर पहले वाली गाड़ी के आगे-आगे चलने लगी। मयनागुड़ी रास्ते में तब हज़ार-हज़ार लोगों का रेला था। पुलिस की गाड़ी सायरन

बजा देती थी। उस साइरन की आवाज़ के साथ चार-चार गाड़ियों के हेडलाइट्स लोगों पर तेज़ी से पड़ रही थीं। और इतने सारे लोग तेज़ी के साथ रास्ते के दोनों ओर हो जाते थे कि गाड़ियों को कहीं अपनी स्पीड कम करने की आवश्यकता नहीं होती। चारों गाड़ियाँ उसी समान तेज़ी से कार्यक्रमवाली जगह पर पहुँच कर नये कलवर्ट से होकर पंडाल के बायीं तरफ़ एकबारगी ग्रीनरूम के गेट के सामने पहुँच गयी। पुलिस की गाड़ी अलग हट गयी। उसके पीछे वाली गाड़ी भी। दूसरी गाड़ी बढ़ आयी। तीसरी गाड़ी से कई लोग उतरे। उतर कर दरवाज़े के सामने खड़े हो गये। किसी की समझ में नहीं आया कि दूसरी गाड़ी का दरवाज़ा खोलकर श्रीदेवी कब कोलेप्सिबल गेट पार करके अंदर चली गयी। गाड़ी से तरह-तरह से सजे लोग उतरने लगे।

177
श्रीदेवी के आगमन की प्रतिक्रिया

श्रीदेवी आ गयी है लोग यह जान पायें कि इसके पहले ही वह ग्रीनरूम के कोलेप्सीबल गेट पार करती हुई अंदर चली गयी थी। सिर्फ़ सबसे बाहर वाले गेट पर श्रीदेवी के निजी अंगरक्षकों के साथ उत्तराखंड सम्मेलन के सांस्कृतिक कार्यक्रम के कार्यकर्त्ताओं का एक आदमी खड़ा था। इसके अलावा बाहर-भीतर हर कहीं श्रीदेवी के ही आदमी थे। ग्रीनरूम या स्टेज का मुख्य दरवाज़ा पंडाल के पूरब की ओर था—उधर से पंडाल में जाने का कोई रास्ता नहीं था। बाहर के बड़े रास्ते का नीचेवाले नाले के ऊपर जो कलवर्ट दो दिन में ही बनाया गया था उधर से सिर्फ़ इस पूरब की ओर ही आया जा सकता था। इस पूरब की ओर से जाकर स्टेज-ग्रीनरूम के पीछे से घूमकर फिर पंडाल के पश्चिम में जाया जा सकता था पर वह काफ़ी घुमावदार रास्ता था। एक गाड़ी रास्ते की तरफ मुँह करके ग्रीनरूम के मुख्य द्वार पर कोलेप्सीबल गेट के साथ लगी थी। और एक जो छोटा गेट था ग्रीनरूम से निकलने के लिये, ठीक इसके विपरीत दिशा में था, वहाँ बाक़ी दो गाड़ियाँ पार्क की गयी थीं। कुछ पुलिस और एक ऑफ़िसर इस पूरे इलाके में चक्कर लगा रहे थे।

तीनों गाड़ियों और पुलिस की गाड़ी के इस कलवर्ट से होकर अंदर घुस जाने और लोगों के उतर जाने पर रास्ते भर में हलचल मच गयी—"आ गयी, आ गयी, श्रीदेवी आ गयी।" श्रीदेवी इस भीड़ के बीच से होकर ही आयी थी, पुलिस की गाड़ी साइरन बजाती आयी थी, लोगों ने फ़ौरन हटकर रास्ता छोड़ दिया था। पर तब भी लोग समझ नहीं पाये थे कि श्रीदेवी आ रही है। क्योंकि इस सांस्कृतिक कार्यक्रम के दर्शक के रूप में आने के बाद से ही लोगों को आज

जिस अनुभव से गुज़रना पड़ रहा था, इस अनुभव से उनका पहले कभी पाला नहीं पड़ा था। इसके चलते मयनागुड़ी में पहुँचने के बाद से श्रीदेवी का मामला उनके लिये ज़्यादा अहमियत नहीं रखता था। उनके लिये प्रमुख हो गयी थी—यह व्यवस्था। बस या ट्रक कहाँ रुकेगी, कहाँ उतरना होगा, कब चलना होगा, किधर से चलना होगा, किधर होकर घुसना होगा आदि। अंत तक यह व्यवस्था ही इतनी प्रमुख हो उठी थी कि लोग जैसे भूल ही गये थे कि वे यहाँ एक विशेष कार्यक्रम देखने आये हैं—सिर्फ़ नाच देखने और गीत सुनने के लिये। जैसे यह सबकुछ देश के एक बहुत बड़े नेता की मीटिंग बन गयी हो। जहाँ वे भाषण सुनने के लिये दूर-दराज़ से आये थे। घर से चलने और घर वापस जाने तक सबकुछ इस मीटिंग के आयोजकों का मामला था। उसके साथ जुलूस या मीटिग के लोगो का कोई संपर्क ही नहीं। जिन रास्तों पर आज गाडी मोटर चलना निषिद्ध था, उस रास्ते में जब तीन-तीन गाड़ियाँ और पीछे-पीछे पुलिस की गाड़ी एक ही वेग से दौड़ी आयी थीं और लोगों को पलक झपकते ही हटकर रास्ता देना पडा था, तो उस गाड़ी में और कौन हो सकता है, सिर्फ़ उसी व्यक्ति को छोड़कर, जिसके लिये इस रास्ते के बाक़ी वाहनों को आज निषिद्ध किया गया था, जिसके लिये आज इस रास्ते में सिर्फ़ लोग ही लोग भरे हुए थे। यह सीधा-सा हिसाब और लोगों के दिमाग़ में नहीं घुसता।

पर एक बार जब चारो ओर खबर फैल गयी कि श्रीदेवी आ पहुँची है, तो रास्ते में एक हड़बडाहट की लहर फैल गयी। रास्ते मे कोई पक्तिबद्ध आवाज़ाही नहीं थी। लोग अपनी मर्ज़ी के अनुसार आराम से चल-फिर रहे थे। कहा तो जाना चाहिये कि सब रास्ता वन-वे हो गया था—इससे कोई धक्का-मुक्की का सवाल ही नहीं उठ रहा था। असम रास्ते के लोग पूरब से पश्चिम की ओर आ रहे थे। तिस्ता ब्रिज के रास्ते के लोग पश्चिम से पूरब की ओर आ रहे थे। डुयार्स के लोग उत्तर से दक्षिण की ओर।

पर सभी को तो ब्लॉक ऑफ़िस के कलवर्ट से होकर सम्मेलन वाले मैदान में आना पड़ रहा था। सम्मेलन के तीनों गेट से लाइन सड़क से काफ़ी दूर तक गयी थी। रास्ते के लोगों को भी लाइन लगानी पड़ रही थी। इसी के चलते रास्ते में जो लोग एक तरफ़ से आ रहे थे उन्हें भी दरअसल, पाँच-छः क़तारों में पंक्तिबद्ध होकर आना पड़ रहा था। श्रीदेवी आ गयी है, यह खबर फैल जाने के बाद रास्ते की इन लाइनों में रेलमपेल शुरू हो गया, यहाँ पर धक्कामुक्की करने से पंडाल में फ़ौरन पहुँचा जा सकता था।

इतने लोगों का जहाँ जमघट हो वहाँ तो धक्का-मुक्की, रेलमपेल, हो-हल्ला स्वाभाविक बात है। पर पंडाल के निकट और रास्ते में पुलिस अफ़सरान खूब भागदौड़ कर रहे थे। किसी जगह पर थोड़ी-सी धक्का-मुक्की लग जाते ही तीन

पुलिसिया बैटन लेकर खड़े हो जाते और लोगों को आगे बढ़ने से रोक देते। फिर उन्हें ठेलकर थोड़ा हटा देते। डीएसपी साहब भी वहाँ पहुँच जाते। वे पूछते—"पुलिस की माइक कहाँ है ?"

"वह तो पैट्रोल पंप में है सर, इस तरफ़।"

डीएसपी खुद उधर भागते। इस ओर की धक्का-मुक्की अवश्य रुक जाती। लोगबाग फिर से चलना शुरू करते। कुछ समय बाद माईक पर सुनायी देता, "पुलिस की तरफ़ से बोल रहा हूँ। आप लोग हड़बड़ी मत मचाइये। लाइन न तोड़ें। लाइन बनाये रखिये। जब तक आप लोग अपने-अपने निर्धारित जगह पर जाकर बैठ न जायें, तब तक कार्यक्रम शुरू नहीं होगा। आप लोग रेलमपेल मचायेंगे तो आपको ही पहुँचने में देर होगी।" इसके बाद आवाज़ ज़रा बदल जाती। जैसे चीख़कर कहा जा रहा हो, "गेट पर जो लोग टिकट चेक कर रहे हैं वे लोग जल्दी-जल्दी काम करें, देर न करें। रास्ते में काफ़ी भीड़ हो रही है। गेट पर जो टिकट चेक कर रहे हैं, वे जल्दी-जल्दी काम करें। देर न करें। रास्ते में भीड़ जमा हो रही है।

पुलिस का नाम सुनते ही लोगों ने धक्का-मुक्की बंद कर दी थी। टिकट जल्दी-जल्दी चेक करने के निर्देश से लोग जैसे आश्वस्त हो गये थे कि पुलिस उन्हें जल्द से जल्द पंडाल के भीतर पहुँचाने में व्यस्त है।

डीएसपी साहब पुलिस की गाड़ी से उतर कर फिर से उस भीड़ के पास आ गये—जबकि ऑफ़िस के कलवर्ट पर जहाँ तीन दिशाओ से आये लोगों का संगम हो गया था। वहाँ इस बीच दो और सेकेंड अफ़सर पहुँच चुके थे। वे तीनों ओर के लोगों को एक लाइन में खड़ा करा रहे थे और बीच बीच में एक-एक ओर के लोगों को रोक रहे थे। डीएसपी को देखकर एक आदमी कह उठा, "सर, सर, इतने लोग अब भी बाहर हैं, अगर फ़ौरन न छोड़ा गया तो लोग यहाँ रुक जायेंगे। फँस जायेंगे सर।"

डीएसपी ने कहा, "रुको, मैं जाकर देखता हूँ। रुको। मैं आकर बताता हूँ। डीएसपी इस लाइन के पास से भीतर से होकर, मैदान में पहुँच गये। सबसे आख़िरी गेट से होकर वे अंदर जाने लगे तो गेट का छोकरा उन्हें बिना देखे ही रोक दिया और गेट का कांस्टेबल लड़का उसका हाथ हटा दिया। छोकरा देखते ही "सॉरी सर" कहकर जीभ काट लिया। "जल्दी-जल्दी कीजिये, जल्दी-जल्दी।" कहते हुए डीएसपी अंदर चले गये, उधर की हालत देखने के लिये। उसे देखकर नकुल राय, बटुक वर्मन भागे आये।

"सुनिये, आप लोगों ने हमें जो हिसाब दिया है उसके बाहर कोई टिकट बाज़ार में छोड़ा नहीं है न ?" डीएसपी ने पूछा।

"नहीं सर। यह बात क्यों पूछ रहे हैं सर?" नकुल ने पूछा।

"नहीं, नहीं, दूसरे कारण से नहीं पूछ रहा हूँ। बाहर लोग तो देख ही रहे हैं, एकोमोडेशन हो जायेगा न ?"

"हाँ सर। अभी तो आधा पंडाल ख़ाली है, सर !" हमने तो सर आपको स्क्वायर फीट का हिसाब भी दिया है, प्लान भी जमा कर दिया है।"

"अरे भाई, वह सब आपसे कौन पूछ रहा है। बाहर लोग थोड़ा इंपेसेंट हो रहे हैं, कितनी दूर-दूर से आये हैं। इसी से कह रहा था आप लोग अगर हमसे छिपाकर जगह की तुलना में अधिक टिकट दे दिया हो तो फिर काफ़ी हो-हुल्लड़ मच जायेगा। आप लोगों का तो टिकट नंबर भी नहीं है।" डीएसपी ने कहा।

"नहीं सर। आपको सच ही बताया है, सर। आपको जितना बताया है, उतना ही टिकट बाज़ार में छोड़ा गया था। यह रिस्क सर कौन ले अपने ऊपर ?" नकुल ने क़रीब-क़रीब डीएसपी का हाथ पकड़ लिया। डीएसपी ने कहा, "तो फिर टिकट क्यों पंच कर रहे हैं ? हर एक के हाथ में टिकट देख कर छोड़ दीजिये—बाहर का प्रेशर फ़ौरन कम हो जायेगा।"

नकुल ने बटुक की ओर देखा। बटुक कहता है, "सर, अंदर आकर अगर टिकट बाहर भेज दें ?"

"अरे, कोई घुस ही नहीं पा रहा है भीतर तो बाहर टिकट भेजेगा किस तरह ? हम एनाउंस कर दे रहे हैं कि किसी को बाहर न जाने दिया जाये। आप लोग भी एनाउंस कर दीजिये।"

आप लोगों को जो करना है करिये सर। हमें तो सर स्टेज पर जाने ही नहीं दिया जायेगा।" नकुल ने कहा।

"कौन नहीं देगा ?"

"स्टेज तो अब सर श्रीदेवी के कंट्रोल में है, किसी को भी घुसने नहीं दिया जायेगा सर।" बटुक ने समझाया। डीएसपी हँसकर बोले, "फिर तो यहाँ से आप लोगों को श्रीदेवी का क्या नज़र आयेगा भला ?"

"थर्ड क्लास से सर उसका अधिकांश भाग नज़र ही नहीं आता।" नकुल ठठाकर हँस पड़ा। डीएसपी ने कहा, "तो फिर गेट पर कह दीजिये सिर्फ़ टिकट देखकर छोड़ दें, हम बाहर माइक पर एनाउंस कर रहे हैं।"

नकुल, बटुक और डीएसपी बाहर चले गये। डीएसपी फिर से लोगों के बीच में से होते हुए रास्ते पर निकल गये। उसके बाद माइक से सुनायी दिया—"पुलिस की तरफ़ से बोला जा रहा है। जो लोग गेट पर टिकट पंच कर रहे हैं, वे टिकट पंच न करें। दर्शकों के हाथ में सिर्फ़ टिकट देख कर ही छोड़ दें।" इस घोषणा के साथ-साथ एक शोर-शराबा हुआ। उसके रुक जाने पर फिर से माइक से बोला गया, "दर्शकों से अनुरोध किया जा रहा है कि वे अपने-अपने

टिकट हाथ में ऊँचा करके पकड़ कर तयशुदा गेट से प्रवेश करें। ताकि जाँच करनेवाले आसानी से टिकट को देख सकें।" इस घोषणा के साथ फिर एक शोरगुल उभरा—समर्थन का। माइक पर सुनायी दिया, "कृपया लाइन न तोड़ें। अपना टिकट हाथ में ऊपर उठाकर पकड़ें और निर्धारित गेट से ही प्रवेश करें। हड़बड़ी न मचायें। पंडाल में प्रवेश करने के बाद किसी को बाहर आने नहीं दिया जायेगा।"

इस घोषणा के कुछ समय बाद ही लाइन काफ़ी तेज़ी से सरकने लगी। घोषणा के बाद लोगों में दो तरह की व्यस्तता नज़र आने लगी। जो बड़ा-बड़ा हुजूम बनाकर आये थे या सिर्फ़ घरवालों को साथ लेकर जो लोग आये थे, उन सबका टिकट सिर्फ़ एक आदमी के पास ही जमा था। इस घोषणा के बाद टिकट हरेक के हाथ में दिया जाने लगा। हज़ारों लोगों के हाथ में टिकट का होना भी एक घटना ही थी। फिर पंडाल में जाने के बाद निकलने नहीं दिया जायेगा, यह सुनकर अचानक लाइन तोड़कर पेशाब करने के लिये सैंकड़ों लोग एक ठोकर खाकर गिर जाते तो भी वह एक घटना ही बन जाती।

178
श्रीदेवी : जानी और अनजानी

श्रीदेवी के नाच का कार्यक्रम काफ़ी सहजता से प्रारंभ हो गया। जिस तरह से शुरुआत हुई उसे देखकर नहीं लगा कि इस कार्यक्रम के लिये पिछले दो महीने से जो प्रचार चल रहा था, बंगाल-बिहार-आसाम से दर्शको के आने का जो आयोजन चल रहा था, करीब महीना भर तक राजनैतिक और प्रशासनिक स्तर पर मीटिंग चल रही थी, कलकत्ते से मंत्री लोग आ रहे थे और अब इन लाखों दर्शकों की उपस्थिति में यही वह कार्यक्रम है। कार्यक्रम की शुरुआत देख कर हताश होने के लिये तो इतने दर्शक नहीं आये, इसी से दर्शक तो निराश ही नहीं हुए निश्चय ही। शुरू से ही इन तमाम दर्शकों में श्रीदेवी को अपने बीच पाने की एक उत्तेजना हो सकती थी जो कि अलग-अलग भाव से किसी-किसी दर्शक समुदाय के बीच हो सकती थी। पर इस पंडाल के अंदर बैठ जाने पर देखा गया कि दर्शकों का एक बड़ा भाग राजवंशी और चाय बागान के मदेशियों का था। इनमें श्रीदेवी को लेकर कोई ज़्यादा उत्तेजना नहीं हुई थी और कार्यक्रम के प्रारंभ होते ही पंडाल में चुप्पी छा गयी थी। उस चुप्पी में कुछ संभ्रमता का भाव भी था।

शायद, इस तरह के कार्यक्रम विभिन्न जगहों पर, तरह-तरह के समावेश में करते-करते कार्यक्रम की प्रमुख कलाकार, जो अगले नंबर की फ़िल्मों की स्टार

हैं और हिंदी फिल्म में जिन्हें यौन-उत्तेजना के लिये चांस दिया जाता है, कार्यक्रम को सफल बनाने की प्रतिक्रिया या पद्धति को जान चुकी थीं। इसी से इनका पहला प्रयास होता है, उसे लेकर अगर दर्शको में किसी ज्वर जैसा उत्ताप पैदा हो गया हो तो उसे सबसे पहले विनष्ट करना।

स्टेज का पर्दा उठने के बाद बहुत धीमा प्रकाश दर्शकों के बायीं ओर से स्टेज के पीछे दर्शकों के दाहिनी तरफ फैलता गया था। पूरा का पूरा स्टेज कुछ पल के लिये ख़ाली पड़ा रहा। बस उसी गवाक्ष से आती हुयी क्षीण प्रकाश की रेखा के साथ। वही समय होता है दर्शकों को साँस रोककर चुप रहने का। इसके साथ वे अपने देखने के लिये रास्ता भी बना लेते हैं। ठीक जिस पल लगा कि स्टेज पर देखने के लिये कुछ नहीं है, तभी अचानक घुँघरू की छमछमाहट सुनायी पड़ी। फिर एक लड़की के प्रवेश का अनुसरण करते-करते समझ में आ गया कि स्टेज पर अब तक की अस्पष्ट रोशनी में एक मूर्ति उभर रही है। प्रकाश तेज़ हो रहा है और मूर्ति आकार ले रही है। लड़की को देखकर ही पंडाल मे साँस छोड़ने की आवाज़ सुनायी दी। पर इन दर्शको के भीतर तो ऐसे हजारो लोग थे जो श्रीदेवी की ऊँचाई जानते थे, श्रीदेवी की चाल के छद को पहचानते थे। उसकी प्रतिक्रिया से ही सभी पलभर में समझ गये कि यह लडकी श्रीदेवी नहीं है। यह जानने के बाद भी सभी देखते रहे और वह लड़की वही पर घुटने टेक कर बैठ गयी। जहाँ अब तक प्रकाश का वृत्त ठहरा हुआ था। वह एक माचिस की तिली सुलगायी औऱ एक दीप जल उठा, स्टेज का प्रकाश थोडा बढ गया और दिखायी पड़ा कि लड़की नटराज की एक छोटी-सी मूर्ति के आगे दीप जला रही है। प्रणाम करने के बाद प्रायः पूरी तरह से आलोकित मंच छोड़कर चली गयी, घुँघरू छनछनाती हुयी। घुँघरू की आवाज़ वातावरण में धीरे-धीरे खोती चली गयी। पर वह रुनझुन पूर्णरूपेण खो जाये इससे पहले एक और घुँघरू की आवाज़ उभरी—कोई चलता हुआ या तैरता हुआ इधर ही आ रहा था। दर्शको के बायीं ओर से स्टेज के एकबारगी सामने से आकर श्रीदेवी दर्शकों को एकबार भी देखे बग़ैर स्टेज को कोने से चलती हुई पार कर गयी। वह स्टेज के पीछे दर्शकों के दायें कोने पर, जहाँ पहले काफ़ी देर तक प्रकाश वृत्त ठहरा था और बाद में जहाँ दीप जलाया गया था, पहुँच गयी। वहाँ श्रीदेवी ने घुटने के बल बैठकर कमर से माथे तक की देह फ़र्श पर लहराती हुई, नटराज को प्रणाम किया। उसकी प्रणामी मुद्रा के साथ ही स्टेज का प्रकाश कम हो गया या नहीं यह तो समझ में नहीं आया। पर उसकी लंबी पीठ पर एक अतिरिक्त प्रकाश माथा से झर कर हाथ से उतरते हुए मिट्टी में मिल गया। लंबी चोटी उसके गले से दाहिनी ओर के दर्शकों पर पड़ी।

केवल फ़िल्म के ज़रिये ही जो लोग श्रीदेवी को पहचानते थे, वे उसकी

मुद्रा, चलते समय उसके दायें हाथ की कोहनी के पास जो एक उभार बनाता था, उसके शरीर का उर्ध्वांग चलने के ताल से धीरे-धीरे डोलता था, प्रणाम करते समय वह इस तरह से चोटी को ज़मीन पर लोटाकर प्रणाम करती थी, यह सब दर्शकों का जाना-पहचाना था। उन्होंने श्रीदेवी के प्रवेश करते ही साँस रोक कर फ़िल्म के प्राणहीन शरीर के चाल के साथ इस प्राणवंत शरीर के सबकुछ का मिलान कर लिया और वह सब कुछ सही ही पाये थे।

प्रणाम करके श्रीदेवी उठ गयी। फिर स्टेज के बीच में आकर खड़ा होते-न-होते कंधा उचकाकर चोटी को झटक कर पीठ पर कर ली। यह मुद्रा भी काफ़ी जानी-पहचानी थी। अबकी स्टेज पूर्ण प्रकाश से नहा उठा था। कहीं ज़रा-सा भी कोई साया नहीं। श्रीदेवी ने दोनों हाथ जोड़कर मुस्कराते हुए नमस्कार किया। उसी मुस्कराहट के साथ ही वह दर्शकों की ओर कंधा मोड़-मोड़ कर निहारती रही—बायें-दायें, दायें-बायें नमस्कार करती रही। श्रीदेवी के गोल चेहरे पर छोटे-से मुँह, पतले होठों पर मुस्कराहट दबी थी। इससे वह सुंदर नज़र आ रही थी। पर इस हँसी से मुँह नहीं खुलता था। उसी मुस्कराहट से वह अपने दर्शकों में इतनी परिचित थी। उस परिचय को याद कराते ही श्रीदेवी ने अपनी काफ़ी चिर-परिचित एक और मुद्रा में माथे को थोड़ा हिलाया। माथे पर कुछ बल पड़े, जैसे वह इस मुद्रा से दर्शकों को जतलाना चाहती थी कि "अरे मैं हूँ, मैं।" दर्शक तालियाँ बजाने लगे, तालियाँ फिर रुकने का नाम नहीं लेतीं। श्रीदेवी के दोनों हाथ ऊपर उठाकर रुकने का इशारा करते ही तालियाँ और बढ़ गयीं। फिर उसने दोनों हाथ दोनों तरफ फैलाकर कंधे को थोड़ा झटक दिया—"मिस्टर इंडिया" में वह इस तरह के कंधे बार-बार ही झटकी थी। दर्शकों के तालियों की गड़गड़ाहट बढ़ती गयी, उसके साथ हँसी भी। जैसे जो वे चाहते थे उन्हें इतनी देर में मिला था। फ़िल्मों की परिचित नायिका को वे पा गये थे। और यही जैसे श्रीदेवी का प्राथमिक कर्तव्य था—दर्शकों के जानी-पहचानी फ़िल्मी श्रीदेवी के साथ अपने को मिलाने का। उसके बाद ही वह स्टेज से चली गयी। तालियाँ भी धीरे-धीरे कम होती गयीं। पूरी तरह थम जाने के पहले माइक पर एक गंभीर आवाज़ में घोषणा गूँज उठी, "श्रीदेवी आपके सामने सबसे पहले भरतनाट्यम पेश करने जा रही हैं।" इस घोषणा के साथ-साथ माइक पर संस्कृत श्लोक का पाठ शुरू हो गया और श्रीदेवी ने माथे पर मुकुट पहन थोड़ा-सा ड्रेस बदल कर मंच पर प्रवेश किया।

श्रीदेवी ने अपने प्रवेश के साथ नटराज को प्रणाम करके ही विभिन्न भंगिमाओं से होकर दर्शकों की स्मृति को जगा दिया था, अबकी भरत नाट्यम की विभिन्न मुद्राओं से स्मृति के उस परिचय को नष्ट करने लगी थी। किसी-किसी फिल्म में श्रीदेवी भरतनाट्यम भी शायद नाची थी, पर दर्शकों के मध्य वह अपने

भरतनाट्यम को लेकर चर्चित नहीं थी जैसे कभी वैजयंतीमाला रही थीं या फिर उनके बाद हेमामालिनी। फलतः भरतनाट्यम का नांदीमुख से लेकर वह अभिनय की दक्षता में जितनी भी गहराई तक उतर रही थी, तबला, मृदंगम् और बोल के साथ-साथ अपनी कुशलता का प्रदर्शन कर रही थी। दर्शक उतना ही उससे मुग्ध होते जा रहे थे। प्रथम परिचय में अपने आपको दर्शकों के बीच चिर-परिचित नायिका के रूप में खुद को प्रतिष्ठित करने के बाद वह अपने आपको फ़िल्मी अदा से अलग कर लेती थी। फ़िल्म में उसे एक ही तरह के नाच के उलटफेर के रूप को बार-बार देख, उसके शरीर के तरह-तरह की भाव-भंगिमा और अदाओं को देख-देखकर जो दर्शक उसकी कामुकता को ही प्रमुखता देते आये थे और उसे उसकी एकमेव विशेषता समझते आये थे, वे दर्शक इस भरतनाट्यम से हताश होंगे ही। काफ़ी समय तक भरतनाट्यम चलता रहा। पर कभी भी उसमें एकरसता नहीं आयी। श्रीदेवी अपने प्रबल पराक्रम के साथ ही आलोकित स्टेज को अपनी गिरफ्त में बाँधे रखी थी। उस पराक्रम का प्रदर्शन करते उनके अंदर दर्शकों के लिये एक प्रतिशोध की भावना जैसे काम कर रही थी कि देखो मेरी जिन खूबियों को तुमने मेरी असलियत मान लिया था, वह सही नहीं है, मैं तुम्हारी यादों को ग़लत साबित कर रही हूं। जिस श्रीदेवी को तुम देखते आये हो, देखो मैं वह श्रीदेवी नहीं।

किंतु श्रीदेवी नाचते-नाचते स्टेज के बाहर नहीं गयी। नाच वह स्टेज पर ही रही थी वह भी स्टेज के पीछे की ओर। उसके बाद वहाँ से हाँफने-हाँफते चलकर एकबारगी स्टेज के सामने आ गयी। कुछ देर खड़ी रही। सब लोगों ने देखा कि उनकी जानी-पहचानी हुई श्रीदेवी पसीना-पसीना हो रही है, छाती उठ-गिर रही है, होंठ थोड़े खुल-से गये हैं, माथे पर घुंघराले बाल छितरा गये हैं। भरतनाट्यम् के जुदा दर्शकों की स्मृति में फ़िल्मी श्रीदेवी की यादें तेज़ी से लौटाकर नमस्कार करती हुई यह मंच से ओझल हो गयी।

179
श्रीदेवी ने कितना दिखाया

इतने-इतने रुपयों के टिकट लेकर, इतने पास और दूर से श्रीदेवी का नाच या श्रीदेवी को देखने के लिये ही जो दर्शक आये थे और इतने सारे रुपये लगाकर जिन लोगों ने श्रीदेवी को दिखाने का कार्यक्रम किया था। उन लोगों ने सिर्फ़ कुछ ही समय के भीतर इस कार्यक्रम से जाना कि असली श्रीदेवी, उनकी पहचानी श्रीदेवी से कितनी अलग है। यह वे देखना या दिखाना नहीं चाहते थे। वे फ़िल्मी श्रीदेवी को हाड़मांस की श्रीदेवी से मिलाकर देखना चाहते थे।

वह मेल कहाँ तक संभव हो पाया यह तो पता नहीं है। पर यह जानने की इच्छा प्रबल है। शायद श्रीदेवी को यह हिसाब खूब अच्छी तरह पता था वह अगर खुद को फ़िल्म के साथ मिला नहीं पाती तो फिर फ़िल्म के बाहर इन लाखों रुपयों का ऑर्डर उन्हें मिलता ही क्यों ? परदे पर जो दिखाया जाता है वह स्टेज पर सबकी आँखों के सामने दिखाना संभव नहीं। वह कब कौन-सा नाच नाचेंगी उसका हिसाब था। वह हिसाब था दर्शक से अपने को थोड़ा पहचान करना और थोड़ा-सा छिपाकर रख लेना। पर इतने ही समय में इस कार्यक्रम में दर्शक अपनी मर्जी के मुताबिक समझ सकते थे कि कैमरे के लैंस से श्रीदेवी का जो कुछ भी दिखायी देता है, घुमा-फिरा कर दिखाया जाता है, अपनी दो आँखों से उतना देख पाना क़तई संभव नहीं। फ़िल्म की श्रीदेवी कितनी लुभावनी है ! कम-से-कम वही लोभ दर्शकों को खींच भी ले आता। उससे श्रीदेवी की फ़िल्में हिट होंगी, सुपर हिट। फ़िल्म के पर्दे से मंच पर देखने ले जाना और मंच से फ़िल्म के पर्दे की ओर। इसमें श्रीदेवी के आत्म-प्रदर्शन का हिसाब-किताब भी मायने रखता है।

भरतनाट्यम के बाद थोड़ी देर मध्यांतर-सा हुआ था। पर पर्दा नहीं गिरा। उसके बाद स्टेज के माइक्रोफोन से गीत बज उठा था। 'हवा हवाई' और साथ ही तालियों की गड़गड़ाहट, चीख़-पुकार, दो-चार सीटियाँ 'मिस्टर इंडिया' का गीत है। दर्शकों की आँखों के सामने मिस्टर इंडिया में श्रीदेवी का वही दृश्य तैर गया जिसमें श्रीदेवी एक काले ब्रा के ऊपर गुलाबी ओढ़नी हवा में लहराती हुई झूम रही थीं। इस फ़िल्मी गीत में श्रीदेवी के डायलॉग के बाद बच्चों के कोरस में उई उई उई उई चिल्लाने की आवाज़ माईक्रोफोन से आने लगी। पर श्रीदेवी मंच पर नहीं आयी थीं। दर्शक कोरस में उई उई उई उई गाने लगे थे। तभी दिखायी पड़ा स्टेज के ऐन सामने ही श्रीदेवी गुलाबी चुन्नी लहरा कर झूम-झूमकर नाच रही थी 'हवा हवाई' फिर से तालियाँ, शोर और सीटियों की आवाज़ के खत्म होने के पहले ही श्रीदेवी स्टेज के दायरे में दो चक्कर काट चुकी थी। दर्शक कुछ ठंडे होकर फ़िल्म की तरह मंच पर ताकने लगे कि श्रीदेवी का वह काला ब्रेसियर दिखायी पड़ रहा है या नहीं पर अलग-अलग जगहों पर बैठे तरह-तरह से दर्शकों को यही ब्रेसियर एक ही तरह नज़र आये तो कैसे? हर कोई अपनी-अपनी जगह पर बैठे उस ब्रा की तलाश में तल्लीन था। कम-से-कम ओढ़नी की ओट से काले कपड़े की थोड़ी-सी झलक तो खुले गले से दिखायी दे सकती थी। पर यह नाच तो काफ़ी भागदौड़ से भरा था। श्रीदेवी पूरे स्टेज को अपने पाँव के दायरे से बाँधे थी। फ़िल्म में जैसा कि लग रहा था, बाग-बगीचे सब कुछ के ऊपर श्रीदेवी उड़ान भर रही है। 'हवा हवाई' और उसके साथ ही बच्चे भी सुर में सुर मिलाकर उई उई उई उई कर रहे थे। यहाँ भी उसी तरह श्रीदेवी

पूरे मंच में झूम रही थी, थिरक रही थी, उड़ रही थी। मंच के ऊपरी भाग में गुलाबी चुन्नी लहरा रही थी। उड़ते-उड़ते फिर से उनके पास चली आ रही थी। फ़िल्मी श्रीदेवी का यह भागमभाग मन को इतना छू नहीं पाया। हालाँकि उनकी काली ब्रा अधिक-से-अधिक नज़र आ रही थी। दर्शक भी बच्चों के साथ उई उई उई उई कर उठे थे और श्रीदेवी ने दर्शकों की ओर गर्दन घुमाकर बाई-बाई देकर अपना नाच जारी रखा।

इस जानलेवा तेजी के साथ नृत्य ख़त्म करके श्रीदेवी मंच से चली गयी। फिर से तालियों की गड़गड़ाहट, सीटियाँ—दर्शक गरम हो उठे थे। चीख़-पुकार रुकती नहीं थी। जगह-जगह से आवाज़ें उठ रही थीं—"सोलहवाँ सावन", "नगीना", "मिस्टर इंडिया"। इस सब शोर के रुकते-न-रुकते स्टेज के माइक्रोफोन पर और एक गीत का मुखडा बज उठा। तालियाँ बजते ही गीत के साथ-साथ घाघरा पहने श्रीदेवी ने मंच पर छलाँग लगाकर एक चक्कर काट लिया। घाघरा फूल गया। श्रीदेवी का चमचमाता लिबास तेज प्रकाश में कौंध उठा और उसके लहराते केश चुन्नी के साथ हवा में अठखेलियाँ करने लगे। 'औलाद, औलाद' चिल्ला कर दर्शकों ने जता दिया कि उन्होंने उसे पहचान लिया है। एक छोटी-सी छलाँग के बाद श्रीदेवी दर्शकों की तरफ मुँह करके खडी हो गयी और बायें पैर को थोड़ा आगे बढ़ा दिया। घाघरा घूम गया। और श्रीदेवी बायीं हथेली पर दायी हथेली को रखकर घूम गयी। 'औलाद' फिल्म मे पहले सड़क पर नाच-नाच कर सौदा करने का एक दृश्य है। मच पर सडक नहीं, सोदा भी नहीं। पर अबकी बार श्रीदेवी की पोशाक एकबारगी फ़िल्म की तरह थी। सलमा सितारे जड़े पोशाक पर प्रकाश कौंध रहा था। श्रीदेवी जिस समय स्टेज के विंग पर जा रही थी दर्शको की ओर अपने शरीर की पार्श्व रेखा और चेहरे को मिलाकर तो कभी चेहरे को शरीर की रेखा के साथ समकोण में दर्शकों की ओर घुमाकर दिखाती थी। कभी छाती के ऊपर से सलमा-सितारों को चमका कर दिखाती थी। उसी चमक से छाती का हिलना समझ में आ जाता था। दर्शकों ने ज़ोरदार तालियों से खुशी ज़ाहिर की। दर्शकों की ताली देने की क्षमता चुक जाते ही श्रीदेवी जैसे विपरीत विंग से घूमकर आ गयी। दर्शक उसे मन मुताबिक देख सकें, जितना चाहे उतना। यह अवसर देने के लिये ही जैसे वह सामने आ गयी थी। उस मुद्रा के ख़त्म होते ही श्रीदेवी एक ही छलाँग में पीछे से सामने की ओर आ गयी। उसके बाद दो बार चक्कर लगाकर स्टेज के बिल्कुल सामने आकर दर्शकों के ठीक सामने खड़ी हो गयी। तभी उस फेरीवाले गीत के द्रुत लय के साथ ताल रख श्रीदेवी की दोनों छातियाँ दर्शकों के सामने उठ रही थीं, गिर रही थीं। दर्शकों को जैसे इसकी आशा ही नहीं थी। वे भूल ही गये थे कि फिल्म में इतना कुछ था या नहीं। यह तो फ़िल्म से भी कहीं अधिक था। श्रीदेवी अपने लचीले शरीर को

की तरफ़ वह कूदती थी। दर्शक उसे ठीक से देख नहीं पा रहे थे। पर उसके लिये भी कोई चीख-पुकार नहीं मची, जैसे कि दर्शकों को पता था कि यह दृश्य उतना ठीक से नज़र नहीं आयेगा। जानते थे इसी से दर्शकों में जितना कुछ देख पाना संभव है, उतना देखने के लिये एक उत्तेजना संचरित होती थी। शायद थोड़ा-सा प्रकाश बढ़ गया या फिर दर्शकों को कुछ ज़्यादा ही नज़र आया था—श्रीदेवी ने मंच के बीच में खड़ी होकर, कमर लचका कर पोज़ दिया। पर शरीर के उस थर्राहट के चलते कभी उसका स्तन शरीर से अलग होकर काँप उठता था—परछाई में उसकी स्तन-रेखा इस तरह से प्रतिबिंबित होती थी कि लगता था उन स्तनों पर कोई आवग्ण नहीं है। फिर कभी 'थाका थाका द्रीम' की ताल पर श्रीदेवी की जाँघ परछाई में उभर आती थी। उसके नितंब के कंपन से लगता था कि जैसे शरीर पर कोई आवरण नहीं है। इतने बड़े पंडाल में, लाखों लोगों के बीच चुपचाप एक दबी उत्तेजना फैल जाती थी चारों ओर। जैसे दर्शक अब तक इसी पत्याशा की प्रतीक्षा में थे। प्रकाश थोड़ा बढ़ गया था या फिर दर्शकों को कुछ अधिक ही नज़र आता था। श्रीदेवी ने दोनों हाथों को सिर के ऊपर ले जाकर रख लिया था। उसके शरीर की प्रत्येक रेखा दर्शकों की आँखों के सामने थी। फिर दर्शकों के सामने उसका शरीर जैसे एक अनंत-रमण की मुद्रा में खड़े-खड़े ही अपने बदन को तोड़ता था। श्रीदेवी की कमर से पैरों के नाखून तक उस रमण से आवर्तित होता रहता था। इसका जैसे कोई अंत न हो। माइक की वह दबी आवाज़ चीख़ की तरह सुनायी देती है—'थाका, थाका, द्रीम, थाका, थाका, द्रीम...।'

पंडाल के क़रीब लाखों लोग तब एक-दूसरे से अलग होकर एक समवेत विच्छिन्न निषेद्ध संभोग में तल्लीन हो गये थे। सभी में थोड़ा अधैर्य दिखने लगा था—जैसे इस संभोग के लिये उनके पास कोई अधिक समय न हो। माइक की दबी आवाज़ से और तेज़ी से साँस छोड़ने की आवाज़ से इस दृश्य का निषेध व्यक्तिगत न होकर सार्वजनिक हो जाता था। एक बच्चा अचानक चीख़कर रोने लगा था। इस धीमी रोशनी, दबी हुई आवाज़, मंच का अस्पष्ट दृश्य और उसके चारों तरफ की दबी उत्तेजना से डर गया था। बच्चा सिर्फ़ एक बार ही चीख़ पाया था। उसकी माँ ने तीखी पर दबी हुई आवाज़ में उसे डाँट दिया था। "चुप हो जा, चुप हो जा, चुप क्यों नहीं होता ?" बच्चे के मुँह पर माँ के हाथ का दबाव, दबे हाथ के नीचे बच्चे के रोने से साँस की व्याकुलता ही सिर्फ़ सुनायी पड़ती थी। पर उससे भी दर्शकों का मनोयोग टूट गया था। कई युवक मस्ती में दूर से श्रीदेवी के नाच के साथ ताल मिलाकर रति-नृत्य में तल्लीन हो गये थे। "थाका, थाका, द्रीम, थाका, थाका, द्रीम।" युवकों का एक और दल दूसरे कोने में नाच शुरू कर दिया था। इससे कहीं कोई विशृंखलता दिखायी नहीं देती।

'हिम्मत और मेहनत' फिल्म के इसी दृश्य में श्रीदेवी जीतेंद्र के साथ नाची थी। पर यहाँ मंच पर वह अकेली नाच रही थी। इस पंडाल के विभिन्न कोने में काफ़ी लोग अपनी सीट छोड़कर खड़े हो गये थे और उस दबी आवाज़ की ताल पर मंच पर नाचती श्रीदेवी का साथ देकर नाच रहे थे।

माइक पर रति का काल्पनिक ध्वनिद्रुत छंद तब और भी दबे स्वर में बज रहा था—"थाका, थाका, द्रि-इम थाका, थाका, द्रि-ईम।" दबी-दबी साँसें, तेज़ साँसें, पशुध्वनि। श्रीदेवी मंच के सामने चली आयी थी। अब खड़े-खड़े वह कमर के ऊपरी भाग को झुका ली थी—उससे उसके दोनों स्तनों का कंपन तीव्रतर हो उठा था और कमर के नीचे का भाग आगे बढ़ आया था। इससे उसके दोनों स्तन सख़्त और प्रखर दिखायी देने लगे। उस हालत में भी उनके शरीर में प्रबल आंदोलन था। उस आंदोलन के बीच कोई विचित्रता नहीं थी, पर लगता था कि वह आंदोलन जैसे कभी भी रुकेगा नहीं।

एक दल एकबारगी पंडाल के पीछे से—घेरा खोल देने के बाद अब तो पूरा रास्ता पंडाल बन गया था—बाघारू को बीच मे रख नाचते-नाचते आगे बढ़ आया था। गयानाथ और आसिंदर सपरिवार कार्यक्रम देखने आये थे।

कामकाज के लिये बाघारू को साथ में लाया गया था। बाघारू कार्यक्रम में शामिल नहीं हुआ था। वह रास्ते के ऊपर ही था। पर जैसे उसे कार्यक्रम के अंदर खींच कर लाया गया था। कुछ लड़के रास्ते पर और रास्ते की ढलान पर बैठकर चोरी-छिपे जल्दी-जल्दी शराब पीते हुए कार्यक्रम देख रहे थे। अबकी बार वे अपने जींस और जैकेट के साथ रास्ते पर और ढलान पर जाग उठे, "थाका, थाका, द्री-ईम।" वे कोई आवाज़ नहीं कर रहे थे पर अपने शरीर के द्रुततम आवर्तन में नाच उठ रहे थे—रास्ते में और रास्ते की ढलान में। बाघारू उस दल के अंदर घिर गया था या फिर वह दल बाघारू को अपने अंदर खींच लिया था। इतनी जल्दी-जल्दी और इतनी शराब पीने से उनके पाँव डगमगा रहे थे या फिर रास्ता और ढलान में वे नाच रहे थे, इसी से वे नीचे इतनी तेज़ी से पहुँच गये थे—बाघारू को साथ में लिये-लिये। नीचे जाने का मतलब था एकदम से पंडाल में घुस जाना। उस समय तो पंडाल के भीतर भी विभिन्न जगहों पर अलग-अलग दलों का नाच चालू था। चुपचाप नाच जारी था, माइक की दबी-दबी धुन के साथ नाच जारी था। यह दल बाहर से नाचते-नाचते उन सबों के साथ मिल गया था। मिल गया था और मंच की ओर बढ़ गया था। उनके बीच बाघारू सिर से पैर तक लगभग नंगा था।

झुकाकर, गीत के ताल के साथ तालियाँ बजा-बजाकर विंग से होकर चली गयी। फ़ौरन अधिकांश दर्शक उत्तेजनावश खड़े हो गये और तालियाँ बजा-बजाकर जैसे नाचने लगे। कोई-कोई चीख़कर श्रीदेवी का गीत तालियाँ बजा-बजाकर गाता था, और कोई-कोई उस तालियों के साथ ताल देकर नाचने लगता था। वहाँ नाच के साथ-साथ फिर तालियाँ बजने लगीं। ऐसा लगता था जैसे कार्यक्रम समाप्त हो चुका है। पर यह सब पंडाल के भीतर ही हो रहा था। पंडाल के भीतर से कोई बाहर जा नहीं रहा था। राजवंशी लड़कियों में से कुछ तो विह्वल होकर दर्शकों की यह ताली, गीत और नृत्य देख रही थीं। उनके चेहरे-मोहरे में हाँलाकि भय का कोई चिह्न नहीं था, पर एक अनिश्चय की भावना साफ नज़र आ रही थी। मंच पर प्रकाश, गीत और नृत्य—यह तो वे समझ सकती हैं। पर दर्शकों का नाच, गाना, उनकी समझ के परे था। बल्कि चाय बागान की मदेशिया लड़कियाँ दर्शकों के नाच देखकर खिलखिलाकर एक-दूसरे पर लोट-लोटकर गिर पड़ रही थीं। उनमें से कोई-कोई हाथ से ताली भी बजा रही थी।

इस बीच पुलिस और आयोजक मिलकर पंडाल के एकदम पीछे टीन का बेड़ा खोलने लगे। उससे आवाज़ हुई। टीन से कील खोलने की आवाज़। दर्शकों का नृत्य, गीत उस आवाज़ से बंद हो गया। दर्शक लोग अपनी जगह से हिलना तक नहीं चाहते थे। वे इस तरह की अद्‌भुत आवाज़ का राज़ भी जान लेना चाहते थे। सामने दोनों ओर कोने में पड़ी कुर्सियों पर ज़िले के सभी ऑफ़िसर और आयोजकों को बैठे देखकर दर्शक कुछ आश्वस्त हुए थे। इस बीच सब को पता चल गया कि पीछे की दीवार को पुलिस के निर्देश पर हटाया जा रहा है। उसके चलते स्टेज भी पूरा खाली हो गया है।

टिकटधारी दर्शकों के अलावा भी नये दर्शकों की संख्या बढ़ते-बढ़ते यहाँ तक आ पहुँची कि उनकी देखने की व्यवस्था करना एकदम से ज़रूरी हो उठा। डीएसपी साहब ने आयोजकों से कहा--टिकट बेचना बंद करना होगा। पंडाल में ज़रा-सी भी जगह नहीं है। तभी तय हुआ कि कार्यक्रम आधा हो जाने के बाद पीछे से टीन के घेरे को खोल दिया जायेगा। श्रीदेवी के लोगों को भी वह बता दिया गया।

180

समवेत रमण-नृत्य

इस अघोषित मध्यांतर के बाद श्रीदेवी का कार्यक्रम फिर से शुरू हो गया। वही गर्म-सर्द होकर चलता भी रहा। दो-एक नाच गाने के बाद श्रीदेवी अपनी सुपरहिट फिल्म 'नगीना' के एक गीत के साथ स्टेज पर थोड़ी देर घूमीं—"भूली-सी है एक

कहानी'। फ़िल्म के इस दृश्य में एक टूटे शिव मंदिर की सीढ़ियों से, अलिंद से, मैदान से होती हुई श्रीदेवी कभी तूतिये रंग की, कभी गुलाबी रंग की पोशाक में अपने को सर से पाँव तक ढँक कर, सिर्फ़ चेहरे को उघाड़ कर एक विलंबित लय में गाती हुई चलती थी, 'भूली सी है एक कहानी।' यह जैसे जन्मांतर की कहानी को याद दिला देता था। फ़िल्म के इस दृश्य में श्रीदेवी के साथ-साथ ऋषि कपूर भागता रहता है। और श्रीदेवी कभी आधा घूँघट खोल, कभी बगैर खोले, उसे जन्मांतर की कहानी सुनाती रहती है। यहाँ मंच पर श्रीदेवी अकेली थी। शिव मंदिर का अलिंद नहीं था, प्रासाद नहीं था, ऋषि कपूर नहीं था। पर श्रीदेवी इस तरह से चलती थी, और उसकी वह चाल ही कुछ-कुछ नृत्य-सी हो उठी। आधा घूँघट वह खोले या न खोले। दर्शकों को लगता था कि वे खुद ही ऋषि कपूर हैं। इस गीत में वह उल्लास नहीं, बल्कि अवसाद ही अवसाद था।

इस तरह के और दो-एक नृत्य-गीत के बाद स्टेज का प्रकाश मद्धिम पड़ने लगा था। पंडाल में भी अस्पष्ट प्रकाश आने लगा था। दर्शकों में से बहुतों को पता था कि श्रीदेवी का कार्यक्रम कितने घंटों का है। कुल मिलाकर रात नौ बजे से साढ़े ग्यारह बजे तक, इसका मतलब ज्यादा-से-ज़्यादा और दो-तीन नाच-गाना होगा। दर्शक लोग इस बीच एक हिसाब-किताब भी लगा चुके थे कि कार्यक्रम से उन्होंने जो चाहा था, वह मिला या नहीं। अबकी वही प्रत्याशा जैसे चरम सीमा पर थी—प्रकाश कम होने पर और उसी मद्धिम प्रकाश वाले खाली स्टेज तथा नीरव रहने से वही उम्मीद इस नतीज़े पर पहुँची थी कि दर्शकों ने एकदम चुप्पी साध ली। कोई कुछ बोलता तक नहीं था। सभी चुपचाप दम साधे बैठे थे। थोड़े समय बाद और ही दबे गले से, जैसे कोई फुसफुसा रहा हो सुनायी पड़ा—'थाका थाका—द्री-इ-म, थाका-थाका—द्री-इ-म।' माइक में कानों-कान कहे जाने जैसी आवाज़ चारों और फैल गयी। मद्धिम प्रकाश, दबे हुए स्वर और इस छंदित द्रुत लय में दर्शकों का दम जैसे रुकने को हो आया था—'थाका, थाका, द्री-इ-म। थाका, थाका, द्री-इ-म।' कोई-कोई फुफकार उठा था, "हिम्मत और मेहनत।" श्रीदेवी ने उसी आधे प्रकाश के साथ मिलकर मंच पर एक बिल्ली की तरह कूदकर प्रवेश किया था। उसके गले से घुटने के ऊपर तक एक टाईट पोशाक थी। इस धूमिल प्रकाश में समझ नहीं आता था कि पोशाक का रंग कैसा है। बिल्ली की तरह दो-एक बार कूदकर श्रीदेवी घुटने और कमर में उल्टी लचक देकर अपने को गीत के ताल के साथ-साथ थर्राने लगी।

प्रकाश नहीं बढ़ता, गीत की आवाज़ भी नहीं बढ़ती। श्रीदेवी मंच के एक जगह से दूसरे जगह छलाँग लगाती जाती थी। फिर उसी स्थान पर वापस आकर कमर लचका कर अपने पूरे शरीर को थर्राती रहती थी। स्टेज के थोड़ा पीछे

हमारे अनुरोध पर श्रीदेवी अपना यह आख़िरी कार्यक्रम 'नगीना' फ़िल्म के आख़िरी दृश्य के साथ करने जा रही हैं। फ़िल्म में शिवलिंग के सामने उन्होंने जो नृत्य किया था वही वे आप लोगों के सामने प्रस्तुत कर रही हैं। पुलिस की ओर से विशेष तौर पर आप लोगों से निवेदन किया जा रहा है कि जिस तरह आप लोग पंडाल में आये थे, कार्यक्रम के अंत में ठीक उसी तरह से बाहर निकलें।"

इस घोषणा के बाद ही माइक पर गूँज उठा, "मैं तेरी दुश्मन, दुश्मन तू मेरा। मैं नागिन तू सँपेरा" गीत का मुखड़ा दो बार बजने के बाद ही सजी-धजी श्रीदेवी ने मंच पर लहराती हुई, झूमती, बल खाती हुई प्रवेश किया। तब मंच पर भरपूर प्रकाश चमचमा रहा था। श्रीदेवी फ़िल्म की तरह साँप की केंचुल जैसा टाइट पोशाक नहीं पहने थी। बल्कि अलखल्ला जैसा धारीदार अंगरखा पहने हुए थी। श्रीदेवी फ़िल्म जैसा नृत्य भी पूरी तरह से नहीं कर रही थी। बल्कि एक भजन की तरह नाच रही थी कभी ताली बजाती हुई। कभी झूमती हुई। इस गीत के लियें बो सब उपादान मौजूद थे मंच में। कुछ देर तक यूँ ही चहलक़दमी करने के बाद श्रीदेवी सामने की ओर बीच में जोड़ासन में बैठ गयी थी। और झूम-झूम कर गीत के साथ ताली बजाने लगी। उसी समय एक लड़की सिर पर एक थाल लिये प्रवेश किया। श्रीदेवी के सामने घुटने टेक कर बैठ गयी और थाल को काफ़ी संयतभाव से मंच पर रख दिया। संभवतः टीन या उसी तरह का कुछ और काट कर बनाया गया था यह साँप। नगीना फ़िल्म में भी शिवलिंग था। लड़की के फिर से प्रणाम करके उठते ही समवेत दर्शकों में एक धीमी पर गंभीर आवाज़ उठी, "जय बाबा जल्पेश्वर !" दर्शकों ने हाथ जोड़कर माथे पर लगा लिया। इस बीच गीत चलता रहा—"मैं तेरी दुश्मन, दुश्मन तू मेरा। मैं नागिन तू सँपेरा।" इस गीत के ताल में शिवलिंग के सामने श्रीदेवी आँखें मूँदे सिर हिला-हिला कर ताली बजाती जा रही थी जैसे कि यह गीत जल्पेश्वर का भजन हो—भाव-विभोर दर्शक भी आँखें मूँदकर ताली बजाये जा रहे थे। पर चाह कर भी कोई इस गीत के साथ सुर मिला नहीं पा रहा था। गीत अपने नियमानुसार खत्म हो गया। पर श्रीदेवी मंच से नहीं गयी, उसने शिवलिंग के सामने झुककर प्रणाम किया, फिर उठकर खड़ी हो गयी, चेहरे पर कृतज्ञता भरी मुस्कान के साथ वह हाथ जोड़कर बायें-दायें, सामने, फिर बायें और दायें नमस्कार करती रही। दर्शकों की तालियों से पंडाल गूँज उठा था। श्रीदेवी ने फिर से घूम-घूमकर नमस्कार किया। दर्शक फिर से तालियाँ बजाते हुये उ' खड़े हुए। श्रीदेवी के झुककर शिवलिंग माथे पर उठाकर विंग की तरफ बढ़ते ही "जय बाबा जल्पेश्वर" ध्वनि से पंडाल गूँज उठा था। शून्य, आलोकित मंच पर पर्दा गिर गया।

182
जल्पेश अभियान की कुछ दिक़्क़तें

अगले दिन शुक्रवार की सुबह जल्पेश अभियान के लिये जन समावेश शुरू हो गया ठीक सुबह सात बजे। बृहस्पतिवार रात श्रीदेवी का कार्यक्रम देखने जो स्थानीय लोग आये थे, उनका एक भाग इन दोनो कार्यक्रमों के मद्देनज़र आया था या फिर उनमें से अधिकांश इन दोनों कार्यक्रमों के लिये ही तैयार होकर आये थे। वे कार्यक्रम के बाद बाहर आकर खाना-पीना ख़त्म करके फिर इस पंडाल में आकर सो गये थे। सुबह उठकर अब जल्पेश अभियान के लिये तैयार हो रहे थे।

जल्पेश अभियान के लिये जो रुक गये थे उनमें से प्राय· सभी उत्तराखंड के नेताओं के इलाके के लोग थे। उत्तराखंड के नेताओं में से प्रायः सभी थोड़ी-बहुत ज़मीन-जायदाद के मालिक थे। किसी-किसी का तो एक-एक इलाके में जोतदार की हैसियत थी। ख़ासकर गयानाथ जोतदार और उसका जॅवाई आसिंदर के उत्तराखंड सम्मेलन में भाग लेने से ठीक पहले डुयार्स में उत्तराखंडियों का प्रभाव काफ़ी बढ़ गया था। पर फालाकाटा, अलीपुर दुआर, साउतालपुर या कूचबिहार तक विभिन्न स्थानों में उत्तराखंड के बड़े-बडे नेता जितने भी हो, वहाँ से जल्पेश अभियान के लिये अधिक लोगों को ला पाना संभव नही था। नक्सलबाड़ी का संपत राय तो बड़ा नेता है। पर जल्पेश अभियान के लिये नक्सलबाड़ी से कुल मिलाकर यही कोई पच्चीस-तीस से अधिक आदमी नहीं आये थे। उतने भी नहीं आये, कल अगर श्रीदेवी का कार्यक्रम न होता तो।

यह बात वैसे उत्तराखंड नेताओं को कुछ कुछ पहले से ही पता था। इसी से वे लोग मयनागुड़ी, बाक्कली, पदमती, जोड़पाकुड़ी, वार्नेस इन सब जगहों से इस अभियान के लिये लोगों को संग्रह करने पर काफी जोर डाला था। सांगठनिक नज़रिये से भी मयनागुड़ी उत्तराखंड आंदोलन का केंद्र रहा है। इसी से मयनागुड़ी को केन्द्र बनाकर लोगों को इकट्ठा करना अपेक्षतया सहज ही है।

प्रचार के समय भी इसी बात पर ज़ोर दिया गया था, "श्रीदेवी का नृत्य देखकर पंडाल में ही विश्राम करें, जल्पेश अभियान करके ही घर का रुख़ करें।" बात सभी को काफ़ी पसंद भी आ गयी थी। आसपास वाले लोगों को आज घर से निकल कर कल दोपहर वापस जाना सभव था काफ़ी जँचा—ख़ासकर मयनागुड़ी में ठहरने के लिये जब पंडाल ही उपलब्ध हो रहा था तो बेहतर था।

इसी में सहूलियत थी, इतना ही नहीं। अगर दूसरे दिन जल्पेश अभियान न भी होता, तो भी ये लोग तो और रात में ही वापस जा नहीं पाते—उन्हें रात तो मयनागुड़ी में ही बितानी पड़ती। जल्पेश अभियान के कार्यक्रम के चलते पंडाल

181
श्रीदेवी और बाघारू

बाघारू को लेकर वह दल लगभग पंडाल के बीचोंबीच चला आया था। और बहुत-से लोगों के नाचते होने से इस दल को आगे बढ़ने में कोई दिक्कत नहीं हुई। जैसे उनके लिये पहले से ही जगह तैयार थी।

पर बाघारू समझ ही नहीं पाया कि वह क्या करे। वह दल तो उसे खींचकर ज़बरदस्ती अपने बीच ले आया। यहाँ तक कि दल को शायद पता भी नहीं था कि बाघारू उनके बीच में है—इस तरह से वे शराब में अलमस्त हो पैर फेंक रहे थे। वे किसी तरह का शोरगुल भी कर नहीं रहे थे। बाघारू अपने शरीर को लेकर खड़ा था एक खूँटे की तरह, और उस खूँटे को घेर कर ये लड़के घूम-घूम कर नाच रहे थे।

बाघारू ने देखा कि मंच पर उस समय बिजली की तरह प्रकाश झिलमिला रहा है। और उस बिजली के प्रकाश में लड़कियाँ सो गयी हैं। सो जाने पर उनका शरीर अस्त-व्यस्त होकर उघड़ा जा रहा था। अस्त-व्यस्त होकर लड़कियाँ इधर-उधर करवट ले रही थीं इससे उनका पेडू मिट्टी से ऊपर उठने लगता था— "थाका, थाका, द्री-ई-म, थाका, थाका, द्री-ई-म !" माइक की दबी धुन फिर ऐसी तीव्र हो उठी कि लगता था वह आवाज़ किसी भी पल रुक सकती है गीत के साथ। मंच पर श्रीदेवी तभी लोट-लोट कर नाच रही थीं। उसके तलपट के ऊपर प्रकाश का चमका। उसका तलपेट संगम के काल्पनिक आलिंगन से उठ-गिर रहा था। किसी भी पल यह शरीर रुक सकता था। रुक सकता था, पर रुक नहीं रहा। माइक की आवाज़ बंद हो सकती थी, पर हो नहीं रही। इससे पंडाल के भीतर के वह राजवंशी-मदेशिया-नेपाली और सवर्ण हिंदू बंगाली भीड़ का कुछ भाग उत्तेजना के चरम बिंदु पर बैठे-बैठे सख्त होता जा रहा था और एक भाग नाच को उत्ताल किये जा रहा था।

बाघारू वहाँ खड़े-खड़े श्रीदेवी को देखने-देखते भूल गया था कि उसे खूँटी की तरह गाड़कर लड़के नाच रहे हैं। जैसे कि उसे वहाँ खड़ा रहकर श्रीदेवी का आक्षेप देखना ही चाहिये। बाघारू ने उसी तरह वहाँ खड़े-खड़े देखा कि लड़कियों का तलपेट कैसे उठ-गिर रहा है, गिर-उठ रहा है। इस मुद्रा का एक आशय जैसे बाघारू के आपादमस्तक लगभग नंगे राजवशी शरीर मे घुस जाना चाहता था, पर मंच के उस शरीर के ऊपर प्रकाश की अठखेलियाँ, माइक पर दबी और द्रुत आवाज़ की धुन, चारों ओर नीरव शरीर-मथन उस मतलब को उसके शरीर में संचारित होने में बाधा दे रही थी। उसी से बाघारू लड़की के शरीर के आर्तनाद को देखते-देखते कैसा तो विमूढ़-सा अनुभव करने लगा था। उसी विमूढ़ता में

वह अपने शरीर में यहाँ तक कि उस मंच के आह्वान और बोध भी अपने में समा लेना चाहता था। बाघारू की वह शालप्रांशु राजवंशी शरीर की नग्नता के साथ मंच में बंबई फ़िल्म की यौन प्रतीक नायिका श्रीदेवी का जीवंत शरीर एक अर्थगत संगत होने के साथ गीत अचानक रुक गया, जैसे बहुत पहले भी वह रुक सकता था। श्रीदेवी तब तक मंच पर आकर खड़ी हो गयी और फिर मंच से चली गयी। लाइट जल उठी। दर्शक लंबी आहें भर कर अपनी उत्तेजना को कम करने लगे। पर बाघारू जहाँ खड़ा था, वहीं खड़ा रहा। मंच और मंच के बाहर से आती हुई रोशनी में दिखायी दिया—बाघारू पंडाल में उन लाखों लोगों के सामने अपना विशाल शरीर लिये खड़ा था। बदन पर जैसे नाममात्र की लँगोटी भी नहीं थी। बाघारू जब एक दृश्य में परिवर्तित हो गया तब उसे देख कर भी दर्शकों ने नहीं देखा। लेकिन देखकर न देखने का समय बीत गया था। सभी बैठे हुए थे। यहाँ-वहाँ पर बाघारू अपनी नग्नता को लिये काफ़ी देर तक यूँ ही खड़ा रहा। किसी भी पल इसके बाद के कार्यक्रम की घोषणा होगी, तब बाघारू की उपस्थिति का कोई मतलब ही नहीं रह जायेगा। यह समय भी बीत गया। और तभी श्रीदेवी-विहीन मंच की शून्यता में जैसे बाघारू की यह निर्लज्ज नग्नता अपमानित होना शुरू हो गयी थी। अभी-अभी जो नृत्य खत्म हुआ उस नृत्य ने तो पूरे-के-पूरे पंडाल को एक मंच बना रखा था इसी से बाघारू की यह नग्नता एक तरह से जैसे दर्शकों का अपमान ही था। बाघारू अपनी नग्नता को लेकर मंच की ओर इस तरह अडिग खड़ा था जैसे इस तरह खड़ा रहना भी कोई विद्रोह हो। अंत में जब यह लगने लगा कि इस निर्लज्ज राजवंशी नग्नता के चलते ही मंच इस तरह से ख़ाली हो गया है, श्रीदेवी आ नहीं रही है। इस नग्नता के सामने श्रीदेवी के लिये मंच में प्रवेश करना दूभर हो गया था। तभी डीएसपी साहब ने पीछे से आकर दूर से ही बाघारू के कंधे में बेटन सटाकर कहा, "अरे बैठो, बैठो," पर बाघारू को यह इशारा समझ में न आने पर डीएसपी साहब को आख़िरकार हाथ पकड़कर बाघारू का पीछे खींच लाना पड़ा। टोपी से बूट तक यूनिफार्म पहने डीएसपी साहब के साथ चलते-चलते बाघारू भीड़ में से होता हुआ पंडाल के बाहर चला गया।

माइक में सुनायी पड़ा, "अब पेश किया जा रहा है इस शाम का आख़िरी कार्यक्रम। बंबई की प्रख्यात फिल्म अभिनेत्री श्रीदेवी अब पेश कर रही हैं···। इस आख़िरी आइटम के साथ ही ख़त्म हो रहा है उत्तराखंड सम्मेलन का सांस्कृतिक कार्यक्रम। दोस्तों ! याद रखिये, कल सुबह ही शुरू हो जायेगा हमारा जल्पेश्वर शिव मंदिर अभियान। आप सबसे निवेदन है, प्रार्थना है कि आप लोग इस विशाल जुलूस में अधिक-से-अधिक संख्या में शामिल होकर उत्तर बंगाल के पवित्रतम तीर्थ-स्थल जल्पेश्वर मंदिर में आयें और जल्पेश्वर शिव की पूजा-आराधना करें।

183
बाघारू के हाथ झंडा सौंपने में दुविधाग्रस्त सुस्थिर

थोड़ी ही देर में दूर से एक आवाज़ तैरती हुई आयी। सभी उठ कर उस ओर ताकने लगे थे। कई मोटरसाइकिल और साइकिल सवारों के साथ सुस्थिर बढ़ता आ रहा था—"उत्तराखंड पार्टी ज़िन्दाबाद।"

सुस्थिर का दल पहुँचते ही हड़बड़ी मच गयी थी। सुस्थिर के दल में क़रीब-क़रीब पचास साइकिल और दस मोटरसाइकिलें थीं—मोपेड, स्कूटर के साथ। वह दल रास्ते पर से चला गया। फेस्टून को पार करने के बाद रुका, पर स्टॉर्ट बंद नहीं हुआ। एक मोपेड के पीछे से सुस्थिर चीख़ते हुए उतरा, "जुलूस सजाओ, जुलूस सजाओ।"

सुस्थिर बड़े से फ्लैग को ज़मीन पर टिका कर हाथ में लिये-लिये खड़ा हो गया, "आओ, आओ, कोई जवान आदमी आकर पकड़ो झंडे को।" पंचानन बाबू, गयानाथ जोतदार आकर सुस्थिर के पास खड़े हो गये। सुस्थिर चीख़ उठा, "हे नवीन, फेस्टून को पकड़ क्यों नहीं रहा, जुलूस सजाओ, जुलूस सजाओ।"

नवीन और तिलक फेस्टून को ज़मीन से उठाकर रास्ते में खड़े हो गये तिरछा होकर। सुस्थिर चिल्लाये जा रहा था, "अरे तुम लोगों ने क्यों पकड़ लिया। दू ठो लड़की को पकड़ा दो। अरे दू लड़कियों को बुलाओ। बुलाते क्यों नहीं।" पंचानन बाबू आगे बढ़ आये। सुस्थिर अबकी गयानाथ से बोला, "अरे किसी जवान आदमी को आने को कहते क्यों नहीं, झंडा पकड़ने के लिये।"

गयानाथ जुलूस के लिये खड़े लोगों की ओर हड़बड़ाकर जाते हुये चिल्लाया, "ऐ हो बाघारू, बाघारू ऐ।" पर बाघारू आसपास कहीं नज़र नहीं आया। गयानाथ को और थोड़ा आगे बढ़ना पड़ा, "ऐ हो बाघारू, बाघारू ऐ।"

यहाँ के अधिकांश लोग इधर के ही थे। वे भी गयानाथ को नहीं पहचानते, नाम शायद जानते थे, गयानाथ भी इनको नहीं पहचानता। इसी से गयानाथ की आवाज़ सुनकर भी कोई बाघारू को ढूँढ़ने के लिये आगे बढ़ नहीं पाया। गयानाथ को ही रास्ते भर "बाघारू, बाघारू" पुकारते हुए आगे बढ़ना पड़ा और आगे चलकर उसने देखा कि बाघारू हर जगह जैसे अकेला खड़ा रहता है। यहाँ पर भी वैसे 'एक बैल की तरह' अकेला खड़ा हुआ था। गयानाथ की पुकार वह सुन नहीं पाया या सुनने पर भी समझ नहीं पाया कि उसे ही बुलाया जा रहा है। कल गयानाथ के घरवालों को लेकर यहाँ आने के बाद से बाघारू थोड़ा आलस्य भाव से घूम फिर रहा था। यहाँ तो उसका कोई खास बँधा-बँधाया काम नहीं था। इसी से वह बहाव में फेंकी गयी लकड़ी की तरह यहाँ-वहाँ पड़ा रहता था।

बाघारू को देखकर अभ्यासवश गयानाथ थोड़ी दूर पर ही रुक गया। बाघारू कद में उससे इतना लंबा था कि सामने जाने पर गयानाथ को गर्दन काफी ऊँची उठाकर बात करनी पड़ती है।

"अरे ओ घनचक्कर, इहाँ खड़ा-खड़ा क्या कर रहा है ?" बाघारू के चौंक कर उसे देखते ही बोला, "चल आ इधर," गयानाथ अबकी एकबारगी लंबा डग भरता हुआ जुलूस की तरफ़ बढ गया और गयानाथ की पुकार से चौंककर बाघारू ने उसके पीछे-पीछे चलना शुरू कर दिया।

तब तक जुलूस के सिरे पर सुस्थिर की मोटरसाइकिल वाहिनी सड़क पर गाड़ियाँ खड़ी कर इधर-उधर बिखर गयी थी। सामने दो लड़कियाँ फेस्टून पकड़े हुये थीं—उन दोनों के पीछे सबको लाइन में खड़े कर रहे थे नवीन और तिलक। पहले लड़कियाँ, औरतें और बाद में लड़के, पुरुष।

सुस्थिर बड़ा झंडा उठाए, दायें हाथ में खड़ा करके रखा था। उसके सामने जाकर गयानाथ अंगुली से बाघारू को दिखाकर बोला, "इसे झंडा दे दो।" सुस्थिर तभी दायें हाथ में कंधा घुमाकर किसी से बात कर रहा था। वह गयानाथ की बात सुन नहीं पाया। सुस्थिर की बात खत्म होने तक गयानाथ को रुकना पड़ा। सुस्थिर के गर्दन सीधी करने पर बोला, "इसको दे दो झंडा।"

"हाँ।" कहकर उसने बाघारू के लंगोटी पहने विशाल चेहरे को देखा। इसके लिये उसे बाघारू के माथे से पाँव तक और पाँव से सिर तक आँखें घुमाकर देखना पड़ा। उस तरह से देखने के बाद भी सुस्थिर ने झंडा नहीं दिया, जैसे कुछ सोच रहा हो। बाघारू का इस तरह का गठीले मांसपेशी वाला नग्न शरीर राजवंशी समाज में इतना दुर्लभ नहीं कि सुस्थिर को इस तरह से देखते रहना पड़े। यह राजवंशी जुलूस राजवंशी समाज में नया था। राजवंशी थे इसी से इस जुलूस में ये लोग आये थे और यहाँ आकर ऐसा कुछ नारेबाजी करेंगे जो दूसरे किसी जुलूस में दिया नहीं जाता। इसी से राजवंशी समाज के अपने जुलूस को सुस्थिर शहर की अन्य पार्टियों के बड़े-बड़े जुलूसों जैसा सजाना चाहता था। जैसे कि दूसरी पार्टियों की तरह जुलूस का सजा पाने पर ही उत्तराखंड एक पार्टी बन सकती है, वर्ना नहीं। क्या दूसरी कोई पार्टी इस तरह के जुलूस में बाघारू जैसे साइज़ के लंगोटीधारी आदमी को जुलूस के आगे सबसे बड़ा झंडा पकड़ाकर चलता ? बाघारू लंगोटीधारी होने से सुस्थिर को कुछ खयाल ही नहीं होता। बाघारू का इतना बड़ा शरीर देखकर भी सुस्थिर को कुछ नहीं लगा। पर जुलूस के प्रारंभ में बाघारू को सामने रखना कहाँ तक उचित है, इसे लेकर जैसे थोड़े गुप्त विचार की आवश्यकता थी। इस तरह का जुलूस निकालना अगर उत्तराखंड के अभ्यास में रहा होता तो फिर इस बारे में सुस्थिर को सोचना ही क्या था? पर वह अभ्यास इन जुलूसों से ही बनेगा इसी के लिये ही सुस्थिर को इतना

में रात बिताना, फिर सुबह जुलूस के साथ जल्पेश जाना, यह व्यवस्था के बीच ही था। कौन फिर यहाँ वैसा है जो जल्पेश यात्रा का अवसर पाकर भी न जाये।

उत्तराखंड के नेता लोग कोशिश करते तो दूर-दूर से भी कुछ-कुछ लोगों को ला सकते थे। पहले-पहल शायद उन्होंने ऐसा सोचा भी हो। पर गयानाथ जोतदार के इसमें शामिल होने के बाद तिस्ता बैरेज के उद्घाटन के दिन विशेष जुलूस संगठन का दायित्व काफ़ी बढ़ गया था। जल्पेश अभियान का प्रमुख उद्देश्य था—उत्तर बंगाल के प्राचीनतम और पवित्रतम तीर्थ का नाम आंदोलन के साथ जोड़ना और इसी के ज़रिये लोगों को उत्तराखंड की तरफ खींचना। इसी प्रचार के लिये श्रीदेवी को लाया गया था। हालाँकि श्रीदेवी के कार्यक्रम को व्यावसायिक रंग ही दिया गया, पर उत्तराखंड सम्मेलन के साथ जुड़कर ही उनका आना हुआ था। क़रीब एकाध महीने बाद ही पश्चिम बंगाल के मुख्यमंत्री जब तिस्ता बैरेज का उद्घाटन करेंगे, तब जगह-जगह से ट्रकों, बसों में लोगों का लेकर आने के बारे में किसी ने नहीं सोचा। एकाध महीने में दो-दो जुलूस निकालना तो फिर संभव नहीं था।

सरकारी मीटिंग मे उत्तराखंड की ओर से जो तर्क दिये गये थे, पुलिस उसे अक्षरशः पालन कर रही थी। यानी की कार्यक्रम के खत्म होते ही बाहर के सभी ट्रक और बसों को मयनागुड़ी छोड़ देना पड़ा। उन्हें इस तरह से रखा गया था, जिससे सम्मेलन के साथ उसका कोई संपर्क बन न पाये। श्रीदेवी के नाच के लिये आये हो, श्रीदेवी का नाच देखकर चले जाओ। रात के तीन बजे तक मयनागुड़ी को क़रीब-क़रीब ख़ाली करवा दिया। उत्तराखंड सम्मेलन के नेता आशा कर रहे थे कि असम और बिहार से जो आये थे, उसका एक भाग इस मौके पर जल्पेश में पूजा करने के लिये या जल्पेश अभियान में भाग लेने के लिये श्रीदेवी के नाच के बाद रुक जायेगा। रुकते भी शायद। पर जल्पेश अभियान के बारे में प्रचार करने का मौका वृहस्पतिवार से ही उत्तराखंड को नहीं मिल पाया था।

सब दोष पुलिस का ही था—ऐसा नहीं है। श्रीदेवी के कार्यक्रम में हज़ारों लोग आयेंगे, यह जानी मानी बात थी। पर बात को जानना एक बात है और हज़ारों लोगों को देखना और बात है। वृहस्पतिवार को दिन भर और रात भर मयनागुड़ी जैसे एक छोटे-से शहर का जो हाल था, उसमें उत्तराखंड के नेता लोग भी आपस में कोई बातचीत नहीं कर पाये। बल्कि कार्यक्रम के प्रारंभ हो जाने के बाद पंडाल के भीतर और बाहर नेता लोग आपस में कोई बातचीत कर पाये थे। वे अगर पंडाल के भीतर या रास्ते पर जल्पेश्वर अभियान की बात करना चाहते तो निश्चय ही पुलिस बाधा नहीं डालती। असल में इस जन-समुद्र को देखकर नेता लोग इस तरह से अभिभूत हो गये थे कि और

कुछ उन्हें याद ही नहीं रहा।

जल्पेश जाने के लिये जो लोग तैयार थे वे भोर होते-न-होते ही जुलूस निकालने के स्थान पर आकर जमा हो गये थे। ठीक सात बजते ही जुलूस को सजाने का काम प्रारंभ हो गया था। तभी देखा गया कि कुछ लोग बस से जल्पेश जाकर वहाँ जुलूस में शामिल होने की बात सोच रहे हैं। मयनागुड़ी से बस में जल्पेश जाने की बात पहले तो सोची भी नही जाती थी, तब बस भी नहीं थी। आजकल भी बसें अधिक नहीं चला करती। पर एक लाइन की बस सुबह ही छूटती है। फिर मयनागुड़ी मे कल के फंक्शन के लिये कुछ मिनी बसें पहुँच गयी थीं। वे कुछ सटल ट्रिप की आशा में 'जल्पेश, जल्पेश' कहकर चिल्ला रहे थे।

एक भगवा रंग का फेस्टून मिट्टी मे गड़ा हुआ था। उसमे 'निखिल बंग उत्तराखंड समिति' लिखा था। उत्तराखंड दल का एक बडा-सा तिकोना झंडा भी था, एक बडे-से बॉस के ऊपर फहर रहा था। और कुछ छोटे-छोटे झडे मिट्टी में गड़े हुए थे।

लग रहा था जैसे सब किसी-न-किसी की प्रतीक्षा कर रहे थे। उस अलग झुंड में कल रात के कार्यक्रम को लेकर ही चर्चा चल रही थी। एक जगह तो एक आदमी काफ़ी गरम हो गया था, "अरे तुम लोगन त कम-से-कम सनीमा तो देखा है न, मई तो नहीं देखा। साला समझ में आये तो कैसे। कऊन फ़िल्म में कहाँ गाना है, कहाँ नाच है।"

"अरे भाई तो इसमाँ एतना चीढ़ने का क्या बात है। तुम सिनिमा न देखा तो न सही, अब तो नाच देखो।"

"क्या देखेगा, छाई ? ज़मीन में गिरकर लोट रही है जैसे भूत पकड़ा हो। और तुम कह रहे हो—अहा-हा, मई तो समझ ही नेई पा रहा।"

जिसे कहा गया था वह "हो-हो" करके हँस उठा, "अरे, मिट्टी में गिरकर एक जवान लड़की इस तरह बल खा रही है, समझ नही रहे तो चुप रहो ? इसमें समझने-वमझने की बात क्या है ? देखने का चीज हे, देखा ? क्यों ? देखने में क्या खराबी ? हाँ। उत्तराखंड पार्टी का अब तो उधर जयजयकार है। कांग्रेस नहीं पकड़ पाया, कम्युनिस्ट नहीं पकड़ पाया पर उत्तराखंड धर लिया है—साला बंबई से श्रीदेवी को पकड़ कर इहाँ मयनागुड़ी ले आया। उत्तराखंड पार्टी श्रीदेवी का पार्टी हो गिया है।" वह अचानक खड़ा होकर नारा लगाने लगा, "श्रीदेवी की पार्टी जिन्दाबाद।"

किसी ने जवाब नहीं दिया—जवाब देने के लिये कोई तैयार नहीं था इसी से। पर उसी अप्रस्तुति के चलते ही सब लोग हँस पड़े, तालियाँ बजाने लगे, जैसे कि यह आदमी एक बार और चीखता तो सभी साथ देते।

के सामने उसका लँगोटी पहना शरीर इतना प्रासंगिक हो उठा था कि उसके कारण बाक़ी जुलूस का भी एक अर्थ बन गया था। बाघारू के शरीर के इस अर्थ को कम-से-कम समझ पाना या देख पाना सुस्थिर के लिये संभव नहीं था। क्योंकि वह पहले से ही मोटरसाइकिल से जल्पेश पहुँच गया था। शपथ-ग्रहण और तिस्ता बूढ़ी का पूजा का बंदोबस्त करने। जुलूस जैसे बाघारू के शरीर से ही निकल रहा था। बाघारू के पीछे और फेस्टून के सामने थे पंचानन मल्लिक, वीरेन बसुनिया, गयानाथ जोतदार, देवमोहन बाबू, नवीन, तिलक, धैर्यमोहन बाबू, संपत राय। इनके अलावा और भी छह-सात आदमी। इनके साथ जुलूस के बाक़ी भाग का फ़र्क़ सिर्फ़ कपड़े से ही पता चलता था। कपड़े या जूते पहने और भी काफ़ी लोग थे, पर जिनके पास कमीज़ थी, उनमें से बहुतों के पास धोती नहीं, जिनकी धोती थी उनके पास कमीज़ ही नहीं, बस यही फ़र्क़ था। मयनागुड़ी छोड़कर इस सड़क पर आते ही जुलूस के ये दोनों भाग पोशाक के चलते पहचान में आ जाते थे।

बाघारू के जुलूस के आगे होने पर ही तो उसके पीछे-पीछे सारे लोग यहाँ तक कि जोतदार-देउनिया लोग भी जा रहे थे। इसी से जुलूस का थोड़ा क़ायदा-क़ानून मानकर चलना पड़ रहा था। ठीक एक पूजा-आराधना की तरह। वरना बाघारू इतना आगे क्योंकर रहा होता ? बाँस के वज़न का अंदाज़ा लगाने पर इसका एक सहज जवाब तो मिल ही जाता था, पर ये इतने सारे जोतदार और देउनिया क़दम-क़दम पर बाघारू का नेतृत्व मान लेते थे, इसके साथ उसका जवाब काफ़ी कठिन बन जाता था। कुछ पूजा सिर्फ़ औरतों का होता है—जैसे मचेनी खेल या हुदमा का नाच, कुछ सिर्फ़ आवारा लड़कों का होता है—जैसे दोल (होली) के दूसरे दिन 'कादोखेला' (कीचड़ से होली खेलना), उसी तरह इस जुलूस का भी नियम ऐसा है कि बाघारू अपनी बाँह, कलाई, छाती, पीठ की पेशियों को उभार कर इस झंडे को उठायेगा और उसके पीछे-पीछे इन बड़े-बड़े लोगों का काफ़िला चलेगा।

बाघारू तो कभी किसी जुलूस के साथ चला नहीं था। पर उसे बुलाकर 'गिरी' जोतदार के यह बाँस उसके हाथ में पकड़ा देते ही वह जुलूस का आदमी बन गया था। चारों ओर कटे हुए धान के खेत थे और उनके बीच से जाती हुई इस सड़क पर बाघारू जुलूस का संचालक बन गया था। संचालन के लिये उसकी कोई विशेष भूमिका नहीं थी—अगर इस झंडे को पकड़ना कोई विशेष भूमिका नहीं मानी जाये तब। पर इस जुलूस का संचालक बनने के लिये किसी विशेष भूमिका की ज़रूरत भी नहीं थी—ज़रूरत उनको थी जो पीछे-पीछे उसके आ रहे थे। उनकी विशेष-विशेष भूमिका थी। बाघारू के ठीक पीछे-पीछे जो लोग आ रहे थे ये तय कर चुके थे इसीलिये बाघारू उनके सामने चल रहा

था। बाघारू इस जुलूस का संचालक ही बन बैठा था। पर उनमें से अगर एक भी आदमी चाहता तो किसी भी पल वह बाघारू के सामने आकर खड़ा हो सकता था। उससे आगे बढकर खड़ा होने के लिये उन्हें एक क़दम भी हिलना नहीं पड़ता। बाघारू को पीछे चले जाने के लिये कहते ही वे सामने आ जाते।

पर ऐसा तो अब कहा नहीं जा सकता। अब यह जुलूस जिस अर्थ में महत्त्वपूर्ण बनना चाहता था उससे बाघारू का इन सबसे आगे चलना कोई मायने नहीं रखता। यह इस जुलूस के लिये अत्यंत ज़रूरी भी था। इस महत्त्व को नष्ट नहीं किया जा सकता। बाघारू यह जाने बग़ैर ही इस जुलूस का प्रतीक और प्रतिनिधि बन बैठा था। जल्पेश तक की दूरी तक उस प्रतीक और प्रतिनिधि की रक्षा करना ही था।

बाघारू के चलने में कोई नयापन नहीं था। उसे तो जीवन में कभी भी ऐसे किसी जुलूस में शामिल नहीं होना पडा। फिर जुलूस के आगे चलना तो बड़ी बात थी। वह उसकी चाल की स्वच्छदता से पता नही चलता। इससे उसे कोई दिक्कत नहीं होती, ऐसा नहीं था। पिच वाली सडक पर उसे चलने का अभ्यास नहीं था। इससे पैर का तलवा ज़मीन पर घसीट रहा था। जो एक-एक दिन में मीलों रास्ता पैदल तय करता था, उसके पैर के नीचे ओस, छोटे-मोटे कंकड़-पत्थर चुभ रहे थे। पर वाघारू इस झंडा के बाँस की रक्षा कर रहा था। क्योंकि अगर यह बॉस न होता तो बाघारू को सिर्फ अपने शरीर का भार ही ढोना पड़ता। इस मेड़ जैसे खाली पिच वाले रास्ते मे तो काफी पत्थर उसके पैर में चुभते थे। एक तो पक्की सड़क का अनभ्यस्त था, उस पर वह भारहीनता का भी अभ्यस्त नहीं था। बाँस का वज़न तो था ही, फिर इतने लंबे बाँस को सीधा खड़ा रखने के लिये कुछ ताक़त का प्रयोग भी करना पड़ता था। इससे बाघारू कुछ पल में ही इस सड़क को अभ्यस्त भाव से कूटने लगता था, झंडे को भी वह अभ्यस्त तरीक़े से उड़ाता था। इसका मतलब, इस तरह के जुलूस का नेतृत्व देने के अभूतपूर्व मामले को बाघारू ने अपने अभ्यास मे शामिल कर लिया था। उसके पीछे उसका जोतदार और बहुत सारे जोतदार एक साथ उसका अनुसरण करते आ रहे थे, यह उसके दिमाग़ में नहीं आया।

बाघारू को अगुवा बनाकर जो नेता उसका अनुसरण कर चल रहे थे, वे भी चलने में कोई कम नहीं थे। उनमें से क़रीब-क़रीब सभी को रोज़ मीलों पैदल चलना होता था। बस यह पिच वाला रास्ता था, यही उनकी दिक्क़त थी। उनमें से सबके पैरों में अब जूते थे। कैनवास का, रबर का और चाइनीज़ जूता। जो कम उम्र के लड़के थे, उनके पैरों में सैंडल थी। इसी से कंकड़ नहीं चुभता। पर वे मैदान में होकर, मेड़ पर होकर जब मीलों चलते हैं, तब मिट्टी में पैर धरने पर लगता है कि मिट्टी में ही पैर रख रहे हैं। मिट्टी पाँव के दबाव से थोड़ी दब

सोच-विचार करना पड़ रहा था। जब तक उसने यह सोचा, तब तक जुलूस तैयार हो गया। जब सबकी समझ में आ गया कि किस तरह से क़तार में खड़ा होना है, तब सभी लोग अपने आप ही पंक्तिबद्ध होकर खड़े हो गये।

गयानाथ बोला, "अरे, झंडा इसे दे क्यों नही देते ? यह पकड़ लेगा।" सुस्थिर ने बाँस को बाघारू की ओर बढ़ा दिया। बाघारू ने पकड़ा नहीं।

सुस्थिर बोला, "अरे पकड़ता क्यों नहीं ?" बाघारू जहाँ खड़ा था, वहीं से खड़े-खड़े दायाँ हाथ बढ़ाकर बाँस को पकड़ लिया।

184

जुलूस के आगे-आगे बाघारू

मयनागुड़ी छोड़ते-न-छोड़ते ही जुलूस तीन भागों में बँट गया। नारे लगाते हुए मोटरसाईकिल वाले आगे-आगे चले गये। साइकिलवाले जी-जान से साइकिल चलाकर मोटरसाइकिल वालों के साथ जाना चाहते थे। पर सभी के लिये इतनी तेज़ी से साइकिल चला पाना संभव नहीं हो सकता। इससे वे मोटरसाइकिल वालों और पेदल चलनेवालों के बीच टूटे पुल की तरह इधर-उधर बिखरे हुए थे। तिस्ता, तोरसा, जलढाका के बहुत-से स्थान पर बारिश की शुरुआत में इस तरह के पुल देखने में आते हैं। ठेकेदारों की भाषा में जिसे 'फेयर वेदर ब्रिज' कहा जाता है, वर्षा के प्रथम आघात से ही वे टूट कर नदी के बीच इस तरह पड़े मिलते हैं।

पर मयनागुड़ी के बाहर जल्पेश्वर जानेवाली फ़िलहाल की पक्की सड़क पर जुलूस को इतने टुकड़ों में बँटा हुआ नज़र आता। रास्ते के दोनों ओर खेत-खलिहान, मैदान, खेती का काम थोड़ा-बहुत शुरू हो चुका था। पर अधिकांश ज़मीन ख़ाली पड़ी थी। रास्ता मुड़-तुड़ कर जिस तरह से आगे गया था, उससे बहुत दूर तक खाली रास्ता नज़र में आता था। अगर कहीं कोई कच्चा मकान या पेड़-पोधों से रास्ता छिप जाता था तो उसे छोड़कर बाद का रास्ता साफ़-साफ़ नज़र आता था। यह इतना लंबा रास्ता, तक़रीबन पूरा-का-पूरा रास्ता एकबारगी इस जुलूस के साथ मिलकर दिखायी देता था। इतने बड़े रास्ते के एक साथ नज़र अपने पर जुलूस का यह बिखरा हुआ टुकड़ा एक साथ मिला नज़र आता था क्योंकि रास्ते में और कोई गाड़ी नहीं, लोगबाग नहीं। इतनी सारी माटरसाइकिलों की आवाज़ सुन कहीं-कहीं कुछ लोग बाहर निकल आते थे, पर वे सड़क पर नहीं आते। अलग-अलग मुहल्ले के कुत्ते मोटरसाइकिलों की आवाज़ से बौरा कर अपने-अपने निर्धारित सीमा तक भौंकते हुए दौड़ने लगते थे। पर उसके बाद दूसरे इलाक़े के कुत्ते उन पर गुर्राकर भौंकना शुरू कर देते थे। पुराने इलाक़े के कुत्ते लौटते हुए साइकिल वालों को घेरकर फिर से भौंकना शुरू कर

देते। पर साइकिलवाले इतने बेखबर थे कि आख़िरकार कुत्तो को ही गर्दन झुकाकर खड़ा हो जाना पड़ता और जुलूस के वहाँ तक पहुँचने के पहले वे अपने मुहल्ले में वापस चले जाते।

पर ख़ास जुलूस टूटता नहीं था। जिस तरह से निकलकर जल्पेश के रास्ते पर चला था ठीक उसी तरह से जल्पेश की सड़क पर बढ़ता जाता था। जुलूस के चलने में एक छंद था। उस छंद को कोई तोड़ता नहीं। दूर राह चलनेवालों में इस तरह का छंद रास्ते के नियम से अथवा चलने के नियम से जरूर तैयार हो जाया करता है। हाट या मेले में जाने के समय या हाट या मेले से लौटते समय बड़ी-सी पगडंडी पर लोगों के चलने में भी यही छंद नज़र आता था—हर कोई अपने ही तरीक़े से चलता था, पर लगता था कि सब मिलकर चल रहे हैं। मयनागुड़ी से जल्पेश्वर तक का रास्ता एक बड़ी पगडंडी जैसा ही रास्ता था। यह रास्ता पक्का बना हुआ था, यही बस फ़र्क़ था। पर पगडंडी के ऊपर गाड़ी-घोड़ा भी लोगों की पंक्ति को तोड़ नहीं सकता। इस रास्ते पर तो कोई गाड़ी भीड़ से गुज़र कर नहीं जाती। बहुत सारे लोग काफ़ी दूर तक का रास्ता एक साथ बिना किसी बाधा-विघ्न के पार कर लेने पर वे एक भीड़ की तरह नज़र आते थे।

इस रास्ते में भीड़ एक तरह से फिट हो गयी थी।

पूरा रास्ता न होने पर भी उसका बहुत बड़ा अंश दिखायी देता था, और उस पर इतने सारे लोगों का एक साथ चलकर आना काफ़ी मायने रखता है। ये कितनी दूर चलेंगे वह सभी देख पाये। देख पाये कि जो दोनों लड़कियाँ फेस्टून पकड़े थीं, वे फेस्टून को तानकर रख नहीं पातीं। कुछ समय बाद ही दोनों के हाथ दोनों तरफ़ झुक जाते थे। किसी के कुछ न कहने पर हाथ और भी झुक जाते थे। फेस्टून का कपड़ा पीछेवाली दोनों पंक्तियों के बीच तकरीबन लोट पड़ता था। पर हवा के चलते पूरी तरह लोट नहीं पाता। फेस्टून उसी तरह से उड़ता रहता। इससे भी एक दृश्य तैयार होता था। फेस्टून अगर पतवार की तरह एक ही आदमी के हाथ में होता तो इतनी हवा में वह पूरे जुलूस के ऊपर क़रीब हाथ भर की ऊँचाई पर उड़ता रहता।

बाघारू के हाथ में झंडा शुरू से जैसा था आख़िर तक वैसा ही रहा। उस लंबे बाँस के सिरे पर तिकोना झंडा। बाघारू बाँस को दोनों हाथों से पकड़े हुए था कंधे से सटाकर। हवा जैसे चल रही थी, खुले मैदान में वैसी ही हवा चलती थी। उसमें बाघारू के बदले अगर कोई और कमज़ोर आदमी रहा होता तो मयनागुड़ी से जल्पेश तक झंडे को इस तरह से सीधा पकड़कर नहीं आ सकता। इस जुलूस का काम तो बस चलते-चलते जल्पेश पहुँचना था। और इतनी तेज़ हवा में भी झंडे को सीधा रखना बाघारू का काम था। इससे जुलूस

जाती है, रेत थोड़ा-थोड़ा खिसक जाता है या घास झुक जाती है। पर इस पिच के रास्ते पर पैर डालने से पैरों में उस तरह की कोई प्रतिक्रिया नहीं होती। उनके पैरों के अंदाज़ से वे समझ नहीं पाते कि वे चल रहे हैं।

फिर भी वे चल तो रहे ही थे। चल रहे थे बाघारू के पीछे-पीछे या फिर बाघारू के हाथ में पकड़े हुए झंडे के निर्देश मुताबिक। बाघारू का झंडा कितना ऊपर जाकर आकाश में फहरा रहा है, उसे वे नेता लोग ठीक से देख पाते थे और देखते भी रहते थे। यह देखकर उन्हें गर्व भी होता था। राजवंशी समाज में कई सौ वर्षों से वर्ण हिंदू समाज की तुलना एक हीनता की भावना घर कर गयी थी। बाघारू के हाथ के झंडे के पीछे तराई के संपत राय से लेकर पुंडी बाड़ी के कालीप्रसन्न के बड़े लड़के तक ख़ाली मैदान से होकर एक साथ चलते जा रहे थे। इसी से उनका बहुत कुछ अभिष्ट पूरा हो जाता था। कम-से-कम यहाँ जो राजवंशी परिचय को छोड़ उनका कोई और परिचय नहीं था। इसी परिचय को लेकर तो वे कई दिनों से सम्मेलन कर रहे थे। कल रात को इसी तरह श्रीदेवी को लाकर वह कार्यक्रम पेश किया और अब जुलूस लेकर जल्पेश जा रहे थे।

185

जुलूस से अलग हो, झंडा लेकर तिस्ता बूढ़ी की पूजा देखता बाघारू

पर जल्पेश में शपथग्रहण कार्यक्रम और तिस्ता बूढ़ी की पूजा कुछ ख़ास जमा नहीं।

जुलूस में अधिकतर इधर के ही लोग थे। जिनके पक्के घर और कस्बे रास्ते में पड़े वे जुलूस से निकल गये। क़रीब प्रति गाँव, कस्बे मे दो-एक आदमी जुलूस में रह गये थे। जल्पेश पार करने के बाद जिनके गाँव या कस्बे थे वहाँ के लोग अवश्य जल्पेश मंदिर में बैठते थे, चले नहीं जाते। सुस्थिर के मोटरसाइकिल वाले भी मोटरसाइकिल चलाने की खुशी में जल्पेश छोड़कर काफ़ी आगे चले गये थे। उनमें से कोई-कोई वापस भी आ गये थे। पर उनके साथ तो इस जुलूस या कार्यक्रम का कोई संपर्क नहीं होता। फिर साइकिल वाले यहाँ तक आकर इस तरह थककर चूर-चूर हो चुके थे कि वे सब इधर-उधर बिखर कर सुस्ता रहे थे। जब मुख्य जुलूस बाघारू और नेताओं के साथ जल्पेश पहुँचा तब लगा कि बस यहाँ तक पहुँचना भर ही उनका उद्देश्य था। इसके बाद और कोई कार्यक्रम नहीं।

पर सुस्थिर ने पहले ही तमाम व्यवस्था कर रखी थी। जुलूस सीधा जल्पेश मंदिर की ओर बढ़ता गया। उसके लिये सुस्थिर ने बाघारू का हाथ पकड़कर ही राह बता दिया। बाघारू इसके पहले भी शायद जल्पेश्वर मंदिर में आया

था—गयानाथ के काम से, पर वह शिवलिंग तक पहुँच सकता है यह उसके सोचने के बाहर की बात थी। पर उसका हाथ पकड़कर खींचते हुए सुस्थिर एकबारगी उसे मंदिर की सीढ़ी तक ले गया था। बाघारू तब तक मंदिर के सीढ़ी के नीचे तक पहुँच चुका था, तभी उसे लगने लगा था कि क्या आखिर तक सुस्थिर उसका हाथ पकड़कर उसे ऊपर तक ले जायेगा ? अगर ले जाता है तो फिर वह झंडे को कहाँ रखेगा ? यह ख़याल आते ही उसने सोचा कि वह ऊपर जायेगा ही नहीं। पर इस सीढ़ी के नीचे आकर ही सुस्थिर ने उसे छोड़ दिया। इसके साथ ही 'जय बाबा जल्पेश्वर' की आवाज़ बुलंद हो गयी। बाघारू ने दोनों हाथों से बाँस को पकड़कर नीचे झुककर भक्ति के साथ बाँस को माथे पर लगा लिया। बाघारू को हमेशा इस तरह से माथा टेकना नहीं पड़ता। इसीलिए वह नहीं जानता कि कब तक उसे इस तरह माथा टेके रहना पड़ेगा। अगर समझ में भी आ जाता तो भी उसके लिये कोई विशेष सुविधा नहीं होती क्योंकि उसका समयबोध इतना सही नहीं है। पर इतने बड़े जुलूस के साथ, इतना लंबा रास्ता तय कर झंडे के साथ आगे-आगे चले आने की प्रतिक्रिया में उसे लगने लगा कि शायद उसे काफ़ी देर तक प्रणाम करते रहना चाहिये। एक तो बाबा जल्पेश्वर, उस पर जुलूस, फिर जुलूस का झंडा। इसके अलावा जल्पेश्वर मंदिर में इस तरह से माथा नवाने का मौक़ा कौन जाने उसके जीवन में फिर आये न आये। बाघारू माथा झुकाकर अपने विगत और आनेवाले जीवन के बारे में सोचने लगा। इतना ही नहीं—वह काफ़ी देर तक झंडे के बाँस को दोनों सख्त हाथों से पकड़े-पकड़े बाँस पर माथा लगाये रहा। जब उसने माथा उठाया तब आस-पास में किसी को देख नहीं पाया। पीछे भी किसी को देख नहीं पाया। इतनी देर तक आँखें बंद रखने से आँखों में कैसी तो चिपचिपाहट मालूम होती थी। उसने एक हाथ अलग करके आँखों को थोड़ा मल ली। पर उसके बाद भी आगे और पीछे किसी को देख नहीं पाया।

बाघारू अब जुलूस के इतने लंबे बाँस के सिरे पर झंडा लिये अकेला जुलूस की तलाश करता रहा। पीछे कोई लोगबाग नहीं, पर झंडा ऐसे ही फहरा रहा था, यह बाघारू के लिये काफ़ी अद्भुत बात थी। इस बाँस और झंडे के होने से वह अकेले-अकेले चहलक़दमी भी नहीं कर पा रहा था। "जुलूस का बाँस और झंडा हमरे कंधे पर रखके कहाँ चला गिया, गयानाथ का जुलूस ?" मंदिर के मुख्य परिसर से बाघारू बाहर निकल आया।

निकलते ही देखा कि जुलूस को पहचानने का और कोई उपाय है ही नहीं। पोखर के पाट पर सब लोग इधर-उधर बिखर कर बैठे थे। बाघारू ने तो जुलूस में किसी का चेहरा भी नहीं देखा था। उसने तो सिर्फ़ जुलूस ही देखा था। जुलूस में जो चेहरे थे, उन्हें वह जुलूस के बाहर पहचाने तो भी कैसे ? पर तब भी

बाघारू अंदाज़ा लगा सकता है कि पोखर के पाट पर इधर-उधर बैठे लोग ही जुलूस के आदमी हैं, क्योंकि मंदिर के मैदान में जुलूस के अलावा तब और कोई आदमी नहीं था।

बाघारू इस बाँस को लिये-लिये किस-किस ओर जाये समझ नहीं पाया। इसी से बाँस को पकड़े खड़ा रहा। वहाँ खड़े-खड़े ही उसने देखा और सुनता रहा। थोड़ी दूर एक जगह पर गयानाथ, आसिंदर और तमाम देउनिया खड़े थे। और औरतों और लड़कियों का एक दल घूम-घूमकर गीत गा रहा था। थोड़ी देर खड़े होकर सुनने के बाद बाघारू समझा गया कि तिस्ता बूढ़ी की पूजा हो रही है। निश्चय ही वहाँ पटसन की काठी से तिस्ता बूढ़ी की मूर्ति भी बनायी गयी होगी। बाघारू गीतों को काफ़ी मन लगाकर सुन रहा था ऐसा नहीं है, पर जन्म से ही सुनते-सुनते यह गीत उसका इतना जाना-पहचाना हो चुका था कि न चाहने पर भी वह सुनायी दे जाता था :

"संग हते नामिल तिस्ताबूड़ी
मंचे दिया पा
मंच हते नामिल तिस्ताबूड़ी
चैतन्य करिलो गाँव
काचा दूध आलेया करलो
भक्षण करो।"

(स्वर्ग से उतरी तिस्ता माई, मर्त्य पर पैर धरा। मर्त्य से उतरी तिस्ता बूढ़ी, गाँव को जगाया। कच्चा दूध लेके आयी, इसका तुम भोग लगाओ।)

देखते-ही-देखते तिस्ता बूढ़ी की पूजा ख़त्म हो गयी। यह पूजा जैसे चलती रहती है, वैसे ही चलती रहती। कुछ नहीं होता। पंचानन मल्लिक उठकर बोले, "तिस्ता बूढ़ी हमारी माई हुई। उसी तिस्ता बूढ़ी को कोई बाँधे, यह हम सहन नहीं करेंगे। और एक महीने के बाद तिस्ता बैरेज के उद्‌घाटन के दिन हम लोग इसके विरोध में जुलूस लेकर इस तिस्ता बैरेज जायेंगे। आप लोग सभी जगह से उस दिन जुलूस लेकर तिस्ता बैरेज आयेंगे। तिस्ता बैरेज का विरोध करने के लिये आप लोग आज से एक माह तक अपने-अपने झोंपड़ी, हाट, गाँव-गंज में प्रचार करना शुरू कर दीजिए और उस दिन जुलूस लेकर आयें। अब शपथ पाठ होने जा रहा है। मैं शपथ पढ़ूँगा, आप लोग मेरे साथ फिर दुहरायेंगे। जय बाबा जल्पेश्वर। जय तिस्ता बूढ़ी मइया की।"

यहाँ मीटिंग की तरह हर आदमी एक जगह जमा नहीं हुआ था। सब अलग-अलग अपने मन के मुताबिक खड़े या बैठे हुए थे। माइक भी नहीं था। इसी से क्या कहा जा रहा है, क्या पढ़ा जा रहा है, उसका कोई ख़याल ही नहीं कर पाता था। जहाँ पर तिस्ता बूढ़ी की पूजा हो रही थी, वहाँ जो नेता थे वे

कुछ कह या पढ़ रहे थे एक साथ। वहाँ गयानाथ भी था। पर जैसे ही ऊँची आवाज में 'जय बाबा जल्पेश्वर' और 'जय तिस्ता बूढ़ी' की जय-ध्वनि उठी, तब जो जहाँ भी थे, सबने उस नारे में अपनी आवाज शामिल कर दी। वह नारा अधिक ज़ोरदार न होने पर भी हल्का उद्घोष ही था।

उत्तराखंड सम्मेलन का हर कोई जिस नाटकीय परंपरा के साथ इस कार्यक्रम के बारे में सोचा था, वह हुआ ही नहीं। लगातार कई दिन का सम्मेलन, उसमे तरह-तरह की आलोचना। फिर साथ ही लगातार कई दिन का कार्यक्रम। उसमे तरह-तरह का प्रोग्राम। आख़िरी दिन श्रीदेवी के नाच में एक नाटक। उसके बाद जल्पेश्वर अभियान में उत्तराखंड का और एकांत नाटक।

पर 'जल्पेश्वर', 'अभियान', 'शपथ ग्रहण', 'तिस्ता बूढी की पूजा' ये सभी बातें कागज़ में छपे हरफों मे जिस तरह दिखायी देता है, या भाषण या मुँह से जैसा सुनायी देता है, वास्तव में उस तरह दिखायी नहीं देता था, सुनायी नही देता था। श्रीदेवी का नाच था इसी से इधर से इतने लोग गये थे और उन्हे पंडाल में रहने की जगह दी गयी थी। इसी से जुलूस मयनागुड़ी से जल्पेश तक चलकर आ पाया था। वर्ना वह भी नहीं होता। इस हालत मे सुस्थिर का सिर्फ साइकिल या मोटरसाइकिल जुलूस ही हो पाता। या साइकिल या मोटरसाइकिल पर जुलूस से आकर तिस्ता बूढी की पूजा, जल्पेश्वर की पूजा, शपथ पाठ, यह सब किया नहीं जा सकता था। किया क्यों नहीं जा सकता, किया जा सकता था। पर वह जो करते, सिर्फ उनमें ही सीमित रहता। और दस-पाँच लोगों मे प्रचारित नहीं हो पाता। पर यहाँ इस जल्पेश्वर अभियान, तिस्ता बूढी की पूजा और शपथ पाठ चाहे जो भी क्यों न रहा हो, अख़बारों के पत्रकारों के सामने जो बताया जायेगा उसका चेहरा ही कुछ और होगा।

उत्तराखंड के नेता लोग यहाँ जल्पेश्वर मंदिर के सन्नाटे में बैठकर समाचार-पत्रों के लिये एक ख़बर तैयार कर रहे थे।

सब काम जब ख़त्म हो गया तो बाघारू समझ नहीं पाया कि अब इस बाँस और झंडे का वह क्या करे ? अपने अंदर उसे एक तर्क मिल गया—"जुलूस नहीं तो झंडा क्यों रहे ? जुलूस नहीं तो झंडा भी नहीं।" उसने जल्पेश्वर मंदिर के एक वृक्ष पर बाँस को टिका कर खड़ा कर दिया।

186

उत्तराखंड का हाट-जुलूस

बाघारू ने हालाँकि जल्पेश्वर मंदिर के वृक्ष पर उत्तराखंड का लंबा झंडा रख दिया था—पर बाद के एक महीने तक इस झंडे से उसका पीछा नहीं छूटता।

तिस्ता बैरेज के उद्घाटन के उपलक्ष्य में विरोध प्रदर्शन करने के लिये उत्तराखंड दल का जुलूस सजाने का सारा उत्तरदायित्व जैसे गयानाथ और आसिंदर पर आ पड़ा था। या फिर, उन्होंने खुद ही यह ज़िम्मेदारी अपने ऊपर ले ली थी। दूसरों के लिये तो तिस्ता बैरेज एक ख़बर भर ही थी, विरोध प्रदर्शन करने के लिये आकर भी नदी के भीतर इतने बड़े कारनामे को देखकर अवाक् हो मुँह फाड़े ताकते रह जायेंगे। पर गयानाथ आसिंदर के लिये तो तिस्ता बैरेज उस तरह का कोई विषय नहीं—दस-बारह वर्ष पहले के उस सेटलमेंट को लेकर इन दस-बारह वर्षो में तरह-तरह के मुक़द्दमे तक यह बैरेज तो उनकी आँखों के सामने ही बन रहा था और जितना बनता गया था, उतना ही वह जैसे उन्हें उल्टी दिशा में ढकेलता चला गया था। इसी से अब तक मामला-मुकद्दमा ही चल रहा था, अब इस उत्तराखंड के अवसर पर और तिस्ता बैरेज के उद्घाटन के उपलक्ष्य में एक नया उपाय वे पा ही गये थे—तिस्ता बैरेज को रोकने के लिये। तिस्ता बैरेज रुकेगा नहीं, वह गयानाथ और आसिंदर अपनी बुद्धि से ही समझ चुके थे। तिस्ता बैरेज को रोका नहीं जा सका, यह तो वे खुद अपनी आँखों से ही देख चुके थे। तिस्ता बैरेज को रोककर मुकदमाबाज़ी में जीता नहीं जा सकता—इतना समझने के लिये किसी विशेष बुद्धि की आवश्यकता नहीं थी। फिर तिस्ता बैरेज के उद्घाटन को लेकर ही गयानाथ और आसिंदर के इतना तल्लीन हो जाने का एक कारण यह भी हो सकता था कि उत्तराखंड सम्मेलन में वे पहली बार, ख़ास करके गयानाथ को एक चस्का लग गया था कि बहुत-से लोगों को अगर इकट्ठा किया जा सके तो कोई भी काम हासिल किया जा सकता है।

इतने दिनों तक इन लोगों को इकट्ठा करने की बात गयानाथ के लिए संदेहशील था। यहाँ तक कि कांग्रेस को छोड़कर वोट देने के लिये किसी के न होने पर भी गयानाथ इनलोगों को लेकर हो-हल्ला मचाने के मामले में कांग्रेस पर भी विश्वास नहीं करता। दूसरी पार्टियों की तो कोई बात ही नहीं। पर अभी, इन लोगों को एक साथ लेकर आंदोलन के महत्त्व को वह समझ सकता है, वल्कि समझ लिया था, एक नये प्रकार का 'पद्मा', 'आई. आर'—इन सब बीज से धान की खेती करने के नियत के तहत। गयानाथ तो फिर सरकार के हाथों तंबाकू खाने गया नहीं था। जिस समय की उसने अपनी आँखों से देख लिया कि इन सब 'हाई इल' खेती में समय कम ही लगता है, उपज अधिक होती है, तब से उसने अपने खेतों में इन्हीं बीजा को बोया है। वह जब समझ गया था कि लोगों को छोड़कर कोई उपाय नहीं बचा तभी वह उत्तराखंड में शामिल हो गया था और 'तिस्ता बैरेज बंद करो, बंद करो' का नारा शुरू किया था।

पर यह शुरू करने के बावजूद इन सब मीटिंग-वीटिंग का नियम-क़ानून गयानाथ को पता नहीं था। उत्तराखंड के नौसिखिए नेता उसके घर में बैठकर, मीटिंग करके कह गये थे कि कम-से-कम आस-पास के हाट के दिन जुलूस निकाला जाये। उसकी एक लिस्ट भी बनी थी। आजकल तो यहाँ-वहाँ हाट लग रहे हैं। कौन-से हाट में जुलूस निकाला जाये, कहाँ निकाला न जाये, यह तय करने में ही समय गुज़र जाता है। गोचीमारी का हाट पुराना है, फिर कुमारपाड़ा का हाट नया होने पर भी बड़ा है। अंत में जाकर देखा गया कि कुल क़रीब बीसेक हाट में जुलूस निकाला जायेगा।

"जुलूस तो निकालोगे, पर लेक्चर देगा कौन ?" गयानाथ के इस प्रश्न पर कम उम्रवाले नेता लोगों ने आपस में बातचीत करके तय किया कि कम-से-कम सात हाटों में उन्हीं में से कोई अपना वक्तव्य रखेंगे। "बाकी तेरह हाट में क्या बैल ले जाकर 'हम्बा-हम्बा' करवायेंगे ?" गयानाथ के इस तीखे सवाल पर फिर एकबार बातचीत हुई। तय हुआ कि इस इलाक़े के दो आदमियों को ठीक किया जायेगा। पर उस पर भी गयानाथ का सवाल था, "इन सब बातों को तिस्ता किनारे फैलाया जाये। एक ठो मास्टर आदमी भी देई दो साइकिलवाला। साला उसी दिन जाकर हाट में जुलूस निकालेगा। लेक्चर देगा और साला उस मीटिंग के दिन जुलूस लेकर जायेगा। हम तुमको आदमी दे सकते हैं, पर ऊ सब आदमी का जुलूस निकाल नहीं सकते। हमरे लोगन को ले के जुलूस बनाने का काम है तुमलोगन का।"

गयानाथ की इस घरवाली मीटिंग में सुस्थिर था। अंत में उसकी बातों के मुताबिक तय हुआ कि सबसे पहले कुछ दिनों तक तिलकराय बर्मन गयानाथ के घर में रहकर कुछ हाट में जुलूस निकालेगा, इसके बाद खुद सुस्थिर आकर रहेगा। बाद में एक-दो और आदमी भी आ सकते हैं—उद्घाटन के दिन जुलूस निकालने के बाद सुस्थिर लौट आयेगा अपने घर, उसके पहले नहीं।

तिस्ता बैरेज के विरोध जुलूस में लोगों का ख़ासतौर से गयानाथ के इलाक़ा से ही बंदोबस्त करना होगा—यह बात सुस्थिर और उनके दल के लोग अच्छी तरह से समझ गये थे।

उसके बाद से तिलकराय बर्मन के नेतृत्व में आसपास के हाटों में गयानाथ के लोगों का जुलूस।

और गयानाथ कै लोग कहने पर सबसे पहले 'बाघारू' को ही समझा गया। नेवड़ाबस्ती के हाट के दिन तिलक अपनी साइकिल लेकर और बाघारू अपना झंडा लेकर ठीक दिन के एक बजे गयानाथ के घर से निकले। गयानाथ के निर्देशानुसार बाघारू तिलक को एक-एक पाड़े के अंदर से ले जाता था। उन सब मुहल्लों में, कस्बों में बाघारू पतला बाँस, जिसे मोटा कच्चा बाँस कहना उचित

होगा, पर एक तिकोना लंबा झंडा लेकर खड़ा रहता और तिलक साइकिल को एक जगह खड़ी कर एक-एक घर के आगे जा-जाकर लोगों को पुकारता। नये आदमी की आवाज़ सुनकर लोग बाहर आ जाते। और तब तिलक उन्हें जैसे ताक़ीद करने के ही लिहाज़ में कहता कि हाट जाकर सब बाघारू और झंडे के पास जाकर जमा हों। उसके बाद हाट में जुलूस निकलेगा।

तिलक को कोई नहीं जानता था पर बाघारू को सभी पहचानते थे। इसी से गयानाथ का निर्देश समझने में किसी को कोई दिक्क़त नहीं होती। बच्चे तो 'नहीं चलेगा, नहीं चलेगा' शुरू कर देते थे। पर हाट में बाघारू के झंडे के पास कोई इकट्ठा होकर नहीं रहता। तिलक भी किसी ऐसे आदमी को नहीं पहचानता जो हाट में घूम-घूमकर लोगों को इकट्ठा कर सके। इसी से कुछ पल प्रतीक्षा करने के बाद तिलक को अपनी साइकिल के साथ बाघारू को साथ लेकर पैदल हाट में घूमना पड़ा।

बाघारू के कंधे पर झंडा था। सो उसे आगे-आगे चलना पड़ता था। और उसके पीछे साइकिल को खींचता हुआ तिलक चलता था। तिलक नारा लगाता था, "तिस्ता बैरेज चालू करना" पर बाघारू उसके आगे कुछ नहीं कहता। पहले हाट में दो-एक बार बाघारू को कहने पर भी जब वह नहीं कह पाया तब से तिलक खुद ही पूरा नारा लगाने लगा, "तिस्ता बैरेज चालू करना—नहीं चलेगा, नहीं चलेगा।" तिस्ता बैरेज उद्‌घाटन के विरोध जुलूस में शामिल हों, शामिल हों। इसी तरह झंडे के साथ 'एक आदमीवाला' जुलूस निकलने पर भी हाट में लोग जमा हो जाते हैं। उस तरह के आदमी तिलक और बाघारू के युगल जुलूस में भी जुट गये थे। जब शाम ढलने को आयी तो बाघारू और तिलक या उनका जुलूस अकेला-अकेला गयानाथ के घर पर वापस आया। दिन के एक-डेढ़ बजे से बाघारू के हाथ में जो झंडा झिलमिला रहा था, उड़ता रहा था। शाम के बाद वह झंडा केले के पत्ते की तरह झुक गया था। पर मेड़ पर से होते हुए काफ़ी दूर तक दिखता था कि वह झंडा धीरे-धीरे काफ़ी दूर होता जा रहा है। गोलाबाड़ी की ढलान से होकर ऊपर के वहमतल्ला में जब वे पहुँचे, तिलक की साइकिल का स्पोक्स भी साये की तरह नज़र आने लगा, बाघारू का पूरा-का-पूरा शरीर आकाश में खुदा हुआ-सा दिखता था। इस तरह से पहले-पहल दो-चार हाट से लौटते हुए तिलक और बाघारू के बीच कुछ-कुछ बातें हुईं। किसी एक शाम को ही ये कुछ बातें हुई हों ऐसा नहीं। इन दो-चार शामों को विभिन्न समय उनमें कुछ या फिर काफ़ी बातें हो रही होंगी। पर उस तरह के टुकड़े-टुकड़े मौके पर हुई बातों का विस्तार करने की गुंजाइश अब इस वृत्तांत में नहीं रही। इसी से एक साथ ही सब दिया गया। इससे इन बातों से कोई नया अर्थ नहीं निकल सकता, ऐसी उम्मीद थी। इस वार्तालाप को छोड़ देने पर भी कोई हर्ज़ नहीं।

पर इन दो-चार हाटों के अनुभव के बाद गयानाथ ने क्रांतिहाट में क्या किया यह समझ में नहीं आया।

187
बाघारू का तीसरा वार्तालाप

"तुमलोग का आदमी आ क्यों नहीं रहा है रे ?" तिलक ने बाघारू से पूछा।

"हमरा कोई आदमी नाही हई।" बाघारू ने जवाब दिया।

इस सवाल और जवाब के बीच कोई नाटकीयता नहीं थी। पगडडी के रास्ते से होकर उन्हें गुज़रना पडा। खेत की पगडंडी से जो एक बार आगे चलता है, उसे आगे ही चलना पड़ता है। बाघारू के हाथ मे झंड़ा था शायद इसी से ज़्यादातर समय उसे ही आगे चलना पडता था। फिर तिलक तो यहॉ का आदमी नहीं था। इसी से किन-किन पगडंडियो से चलकर जल्दी पहुँचा जा सकता हे यह बात बाघारू को अच्छी तरह पता थी। उनके बीच जब भी कोई बातचीत होती थी तो प्रश्नोत्तर के लिहाज से ही होती थी, ऐसा नही है। एक की बात के जवाब में और एक आदमी शायद चुप रहता था। एक-दूसरे के साथ वातचीत करते हुए वे किसी एक बात की चर्चा कर रहे हो ऐसा भी नही था। अधिकाश समय बातें परस्पर निरपेक्ष और स्वाधीन होती थी।

"इहाँ के लोग सब गयानाथ बाबू का बात नाही सुनत ?"

"हमरा कोनो लोग नाहीं हई।"

"गयानाथ बाबू के त आदमी हय न रे ? एतने बडका जोतदार हय ऊ ?"

"हाँ, गयानाथ का त आदमी हई।"

"तू भी न गयानाथ बाबू के आदमी हय ?"

"हॉ, मई गयानाथ का आदमी हई।"

"तू एकेले-एकेले झंडा उठाये बाहर घुर रहे आउर ऊ उधर हाट खतम करके लउट रहा हई एकेले-एकेले।"

"तुमरा आउर कोई आदमी नाहीं हय ?"

"हमरा आउर कोई आदमी नाहीं। हमरा मई अकेला हई।"

"तू किया उत्तराखंड से जुवाइन कर रहा हय ?"

"हमरा कोई खंड नाहीं। हमरा कोई जुवाइन (ज्याइन) भी नाहीं।"

"नई, नई। कह रहा हूँ कि तुमरा जोतदार त जुवाइन कर रहा हय।"

"न जानी।"

"नई जानते त, झंडा कंधा पर लेइके एकेला-एकेला हाट-हाट घूम कियों रहा हय ?"

"हमरा गयानाथ बोला हई। उसीलिये मई घूम रहा हई हमको त पहिले से ही झंडा दे दिया हई गयानाथ।"

"पहिले से झंडा दे दिया हय ? कहाँ ? कब ?"

"साला जलपेस में।"

"तू जलपेश गिया रहा ? त तू तो साला एकदम से उत्तराखंड पारटी हो गिया रे !"

"नाहीं हो। हमरा खंड-ऊंड नाही, हमरा पारटी-वारटी भी नाहीं।"

"नई हय त पकड़ा कियों झंडा जलपेस में ?"

"गयानाथ दिया।"

"अरे गयानाथ त दिया, पर पकड़ा तो तुहीं न रे, साला। झंडा त तुमरा है न ?"

"नाहीं, झंडा हमरा नाहीं हई।"

"त छोड़ झंडा का बात। बोल कइसे आदमी जुगाड़ करे। जुलूस निकाला जाई तिस्ता बइरेज खुलने वाले दिन जुलूस लेकर जाना हय।"

"गयानाथ को बोलो। जुलूस लेने को कहिने से गयानाथ ले जायेगा।"

"त गयानाथ तुको छोड़कर आउर किसी से नाही बोला ?"

"का जानी ?"

"गयानाथ का कहने से सब लोगन जुलूस में आयेंगे—हाट में ?"

"हाँ—आयेंगे।"

"गयानाथ का कहने से सब लोगन जुलूस निकालेंगे—तिस्ता बइरेज के दिन ?"

"हाँ, निकालेंगे।"

"इसके बाद कउन-सा हाट बड़ा हाट हय ?"

"किरांतिहाट।"

"मई गयानाथ को ईस हाट में रहने के लिये बोलेंगे ?"

"बोलो।"

"गयानाथ के ईस तिसता बइरेज के दिन जुलूस में रहने से लोग आयेंगे ?"

"आ सकते हैं।"

"त बोल गयानाथ से। पर तूम उत्तराखंड पारटी में जुवाइन नहीं करेगा ?"

"हमरा जुआइन नाहीं हई।"

"अरे तू त एक अलम आदमी हय। राजबनसी आदमी।"

"मई राजबनसी नाहीं हई।"

"धत् बोका। इहाँ हम जितने आदमी हय, जितने आदिवासी हय—"

"मई इहाँ का नाहीं हई।"

"धत् बोका। तू इहाँ का नाहीं हय त किया बीलाइत से आया हय ?"

"नाहीं, मई बीलायत का नाहीं हई।"

"बीलाइत का नेई त इहाँ हा हय न रे ? इहाँ का राजबनसी ?"

"मई राजबनसी नाहीं हई।"

"धत् बोका। राजबनसी नाहीं होगा न किया तू भाटिया हय ?"

"नाहीं। मई भाटिया नाहीं हई।"

"धत् बोका—अरे कुछ-न-कुछ त तुमको होना ही होगा। एक त राजबनसी न हो त भाटिया हो।"

"नाहीं, मई राजबनसी नाहीं हई मई भाटिया बी नाहीं हई।"

"हाँ, हाँ, तू एकेला ही एक ठो पारटी हय ? राजबनसी नेई, भाटिया भी नेई आउर धड़ाक् से उत्तराखंड का झंडा उठा के जलपेस चला गिया। झंडा को पकड़े-पकड़े हाट-हाट घूम रहा हय। इहाँ त सब जानते हय कि तू ही उत्तराखड पारटी हय।"

'पता नाहीं हमरा कोई पारटी नाहीं हई हमरा कोई आदमी नाहीं।"

"हाँ-आँ-ऑ। ठीक बोला हय। तेरा त खाली एक ठो झंडा हय।"

"नाहीं, हमरा कोई झंडा नाहीं हई।"

"हाँ-आँ-आँ, त फिर झंडा का ही तू हय।"

यह वार्तालाप इस तरह से और भी काफ़ी देर तक चल सकता था। पर इतने में ही तिलक ओर बाघारू को विभिन्न हाटों मे घूमने-फिरने की बात समझ में आ गयी। उससे बढ़कर भी एक बात यह थी कि बाघारू को पिछले दस-बारह वर्ष में यह तीसरी बार अपने आत्म-परिचय संबधी बातचीत मे मज़बूर होकर भाग लेना पड़ा था। दस-बारह वर्ष पहले एक एमएलए को नदी पार करवाते समय बाघारू ने स्वेच्छा से अपना एक लंबा आत्म-परिचय दिया था। तब उसका एक छोटा-सा दावा भी था कि एमएलए उसका नाम थोड़ा-सा छोटा बना दे। पर एमएलए उस विषय में कुछ कर नहीं पाया। फिर बाघारू का नाम और बदलता गया। तिस्ता की एक बाढ़ के समय चार-चार पेड़ लेकर बाघारू जिस समय रंधामाली के पास बाँध पर गया था, तब उसे एक अफ़सर के साथ बातचीत करना पड़ा था। वहाँ ऑफ़िसर ने सिर्फ़ उसका नाम-पता जानना चाहा था। पर बाघारू यह भी नहीं बता पाया था। और अब उत्तराखंड पार्टी के समय उत्तराखंड के नेताओं के साथ उसे इस तरह की बातचीत में उलझना पड़ रहा था। अबकी बार बाघारू जैसे अपने खुद के बारे में कुछ अधिक कह नहीं पाता। अब वह सिर्फ़ इतना ही कह पाता था कि वह क्या-क्या नहीं है, और उसका क्या-क्या नहीं है। दस-बारह वर्षों में सिर्फ़ तीन बार वार्तालाप हुई—यह भी संक्षिप्त।

दस-बारह वर्षों में सिर्फ़ तीन-तीन बार बातचीत—पर नीतिवाचक। तो क्या बाघारू अपने जीवन में क्रमशः अपने ही लिये अनजान होता जा रहा था—धारावाहिक रूप से ?

188
फिर से क्रांतिहाट, फिर से गयानाथ

क्रांतिहाट में गयानाथ ख़ुद मौजूद था। उसके आने के पहले ही बाघारू को झंडा लेकर हाट के नीम वृक्ष के नीचे खड़ा होना पड़ा था। बाद में तिलक भी आकर वहाँ खड़ा हो गया था। बाज़ार काफ़ी देर पहले लग चुका था। बाघारू खड़ा हुआ था, तिलक भी। नीम का पेड़ हाट की एक तरफ़ था—हाट कमेटी के घर से सटा मैदान और हाट के ठीक सीमा पर, जहाँ हँड़िया बिकती है। बाघारू की ओर एकबार देखकर लोग हाट के अंदर चले गये थे। यहाँ तक कि तिलक भी परचून की दुकान के पास साइकिल में ताला लगाकर बाघारू से काफ़ी दूर मिठाई की दुकान के सामने खड़ा था। बाघारू के साथ जैसे इस हाट का, हाट के लोगों का कोई संपर्क ही नहीं था। वह नीम के पेड़ के नीचे एक वृक्ष की तरह ही खड़ा था। उसका झंडा नारियल के पत्ते की तरह हवा में डोल रहा था।

गयानाथ उस मिठाई की दुकान के सामनेवाले रास्ते से हनहनाता हुआ आगे आया और बाघारू से बोला, "लोग कहाँ हई, जुलूस करने वाले ?"

बाघारू अपनी मुद्रा में तब्दीली लाये बिना बोला, "कोई नहीं आया।"

"कोई नाहीं आया ? साला बैल कहीं का ! तेरा उस उत्तराखंड वाला नेता कहाँ हई ?"

गयानाथ को देखकर तिलक तब तक आगे बढ़ आया था। उसे देखकर गयानाथ चीखा, "किया इहाँ खड़ा रहने के लिये आये हो ? जुलूस निकालेगा कउन ? मई ? और तूम लीडर बनने चले ?"

तिलक बोला, "मई तो किसी को पहचानता तक नेई कोई त आया नेई हय।"

"नाहीं आये ? साले बइल कहीं के।" गयानाथ के आ जाने से और चीखने-चिल्लाने से वहाँ एक छोटी-सी भीड़ लग गयी। उधर देख, गयानाथ एक आदमी को चिल्लाकर बुलाया, "अरे ओ कनकट्टू, जा त, हाट में जितने हई सबी को बुला ला, साले बइल कहीं के।"

कनकट्टू बाज़ार की तरफ भागा। गयानाथ कहना चाहता था कि उसके जितने भी लोग हाथ में हैं, उन्हें बुलाते। पर पीछे से एक आदमी मुँह छिपाकर

चिल्लाकर बोला, "हाट तोड़कर सब चले आओ, फटफटी जोतदार का जुलूस निकलेगा।"

'साला तेरा बाप का अरथी का जुलूस निकलेगा।" गयानाथ भीड़ की तरफ़ चिल्लाकर बोला।

तिलक बाघारू का हाथ पकड़कर ले गया और एक जगह खड़ाकर दिया। फिर भीड़ की तरफ देखकर बोला, "लाईन लगाओ, लाईन लगाओ, जुलूस निकालना है।"

तिलक ने एक ग़लती की थी। उसने सोचा था कि यह पूरी-की-पूरी भीड़ जुलूस में जायेगी। पर भीड गयानाथ को देखकर ही लगी थी। उसके चीखने-चिल्लाने की आवाज़ सुनकर ही लोग वहाँ जम गये थे। इसके अलावा क्रांतिहाट में उत्तराखंड का जुलूस निकलेगा—इसमें एक रोमांच भी काम कर रहा था। उस भीड़ में से एक-दो आदमी आकर बाघारू के पीछे खडे हो गये थे, और कुछ लोग इधर-उधर छंट गये थे। फिर जो लोग थे, तिलक ने उन्हें फिर से बुलाया, "आइये, आइये, जुलूस बनाना हय" तो उनमे से एक ठडे गले से बोला, "हम लोग उत्तराखड नाहीं हय, वामफ्रट हय।"

गयानाथ भीड़ की तरफ़ देखकर चीखा, "साला फ्रंट ? कामकाज नाही, कुत्तों का माफ़िक दुम हिलाता। बामफ्रट हई त इहाँ का हई रे ? साला, वाम ? पिछाड़ी में देगा एक ठो डडा . । साला वाम।"

जिसने खुद को वामफ्रंट बताया, वह उसी तरह से ठडी आवाज मे बोला, "बकबक मत करो देउनिया।" उसके इस प्रतिवाद मे दृढ़ता थी, पर कुछ-कुछ दुविधा का भाव भी था, गयानाथ जोतदार के एकबारगी सामने कुछ अपमानजनक शब्द कहते हुए उसे झिझक हुई।

इस बीच हाट से कुछ लोग निकलकर गयानाथ की ओर आने लगे थे। उनमें से हरेक के हाथ में बाजार का थैला या टोकरी थी। वे लोग आते तो थे पर उनमें से कोई भी बाघारू के पीछे जाकर लाईन मे खडा नहीं होता। थोड़ा-सा हटकर ही खड़े होते। कोई-कोई बैठ जाता। गयानाथ बायें-से-दाये गर्दन घुमाकर उन सबसे कहा, "साले, बैल कहीं के, सब साले आये हई इहाँ बाप का सादी देखने। लगते कियों नाहीं लाईन में, लग जाओ लाईन मे।" गयानाथ उस तरफ हड़बड़ाकर बढ़ता पर लोगों के इधर-उधर बिखरे होने के कारण सही दिशा तय नहीं कर पाता।

गयानाथ के इस तरह चिल्लाने से जो लोग बैठे थे, वे उठकर सिर्फ़ खड़े भर हो जाते। और जो लोग खड़े थे, वे मुँह घुमाकर बाघारू की तरफ़ असमंजस में बढ़ते भी थे, और कुछ नहीं भी बढ़ते।

गयानाथ अबकी तिलक से बोला, "इहाँ पर खड़े-खड़े किया कर रहा हई ?

सबको लाईन में खड़ा कियों नाहीं करा रहा हई रे ?"

तिलक पहले तो एक बार चौंका। कुछ संकोच के साथ अलग खड़े एक आदमी को जाकर बोला, "खड़े हो जा लाइन में खड़े हो जा।" वह आदमी के तिलक के निर्देशानुसार लाइन में खड़े होते ही उसकी देखा-देखी कुछ और लोग भी आगे बढ़कर पंक्ति में खड़े हो गये।

"अरे ओ भादई, ओ कातूरा, वहाँ किया कर रहा हई रे बाँक लेके, तू अपने बाप का सम्पत्ति बेच रहा हई ?" भादई और कातूरा थोड़ा-सा अन्यमनस्क क़दम से आगे बढ़कर लाइन में खड़े हो गये। उन्होंने हाथ में बाँक झुला लिया। शायद कुछ बेचने के लिये लेकर आये थे, या फिर कुछ ख़रीदकर बाँक में ले जाने के लिये आये थे। अब बाँक को हाथ पर झुलाकर पकड़े थे।

गयानाथ ने हुक्म दिया, "नारा लगा रे, जुलूस शुरू कर, आउर जो हैं, सब साला हाट में मिल जायेगा।"

तिलक ने काफी ज़ोर से नारा लगाया, "उत्तराखंड पार्टी" उसके जवाब में कोई कुछ नहीं बोला। गयानाथ चिल्लाते हुए लाइन बाँधे इन कई लोगों के बीच घुस गया, "साले, वाम का नाम पर त ज़िंदाबाद करने लगता हई आउर अब गूँगा के तरह चुपिया गिया हई रे।" गयानाथ का यह पूरा वाक्य तो जैसे स्लोगन का पहला भाग था। वह ख़त्म होते ही लोग धीमे स्वर में बोले, "ज़िंदाबाद !"

तिलक फिर से चिल्लाया, "उत्तराखंड पार्टी।" पर इसके जवाब में जो भीड़ अब तक जुलूस के रूप में तैयार होकर खड़ी थी, उनमें से एक दल, ऊँची, गंभीर आवाज़ में हाँक लगाया, "वामफ्रंट ज़िंदाबाद।" उस ज़िंदाबाद के साथ और एक-दो स्वर भी मिल गये।

गयानाथ तिलक से बोला, "जुलूस को हाट में ले जा . ऐ-हे बाघारू, चल, चल।"

"वामफ्रंट जिंदाबाद" चिल्लाते हुए जुलूस ने फ़ौरन चलना शुरू कर दिया। पीछे की उस भीड़ से नेतृत्व के आत्मविश्वास को लेकर किसी ने कहा, "हे, सब कोई वामफ्रंट का जुलूस सजाओ। जुलूस सजाओ। उत्तराखंड का जुलूस नहीं चलेगा, नहीं चलेगा" उस आह्वान के साथ-साथ ही इस भीड के बहुत-से लोग दौड़कर उस मिठाई की दुकान और परचून की दुकान के बीच, हाट की पक्की सड़क की ओर भागने लगे।

गयानाथ जुलूस से थोड़ी दूर जुलूस के पीछे से चलते हुए हाट में शामिल हो गया। जुलूस में और कुछ लोगों को घुसाकर वह किसी दुकान में बैठ जायेगा। पर हाट के भीतर घुसने के बाद जुलूस का स्वर जैसे सुनायी नहीं देता—एक तो बाघारू के लंबे झंडे के चलते यह एक जुलूस है इसका अंदाज़ा लगाया जा

सकता था। 'उत्तराखंड पार्टी ज़िंदाबाद', 'तिस्ता बैरेज बंद करो', 'बैरेज विरोधी जुलूस में जोग दें'—ये सब निर्दिष्ट और परिकल्पित स्लोगन जुलूस से जैसे अर्थहीन होकर झर रहे थे।

189
वही क्रांति हाट, वही राधावल्लभ

इधर पल भर में बाज़ार में यह ख़बर आग की तरह फैल गयी कि उत्तराखंड ने जुलूस निकाला है, अब वामफ्रंट जुलूस निकालेगी। ख़बर के फैलते ही हाट में एक-एक तरफ भागदौड़ मच गयी। पर कोई भी ठीक से समझ नहीं पाया कि उत्तराखंड का जुलूस कहाँ है। उसी अनिश्चयता के भीतर ही हाट के एक कोने से हृषिकेश चिल्लाता हुआ बोला, "तिस्ता बैरेज ज़िंदाबाद, ज़िंदाबाद।" और देखते-ही-देखते आसपास से बहुत-से लोग दौड़कर आ गये। हृषिकेश ने चलना शुरू कर दिया था। एक छोटे-से डंडे में लाल झडा भी कहीं से आ गया। राधावल्लभ और आलविश जगत रास्ते के पास एक पान-सिगरेट की दुकान में बेंच पर बैठे थे। एक आदमी दौड़कर आकर उनसे बोला, "जुलूस, जुलूस, उत्तराखंड जुलूस निकाल रहा हई।" राधावल्लभ और आलविश हैरानी से उठकर खडे हो गये और चारों तरफ़ ताकने लगे। वामफ्रंट का एक छोटा-सा जुलूस सुधन साहा आदि ने निकाला था। राधावल्लभ और आलविश क़रीब-क़रीब दौड़ते हुए उस जुलूस के सामने चले गये। जुलूस के सामने जाते ही राधावल्लभ ने अपने छाते को बायें बग़ल में लेकर दायें हाथ की कोहनी को मोड़ मुट्ठी को सिर के पीछे लेते हुए चिल्लाकर कहा, "दोस्तो"। सुधन साहा उसे खींचकर जुलूस के अंदर लाकर बोला, "दोस्तो, बाद में, अभी जुलूस निकालो, जुलूस निकालो।" राधावल्लभ ने आकाश की ओर मुट्ठी उठाकर हाँक लगायी, "क्रांतिहाट में उत्तराखंड नहीं चलेगा, नहीं चलेगा।" स्लोगन ने पल भर में जैसे तूल पकड़ लिया। जैसे कि जुलूस इसी पल कुछ कहना चाह रहा था। राधावल्लभ ने फिर से नारा बुलंद किया, "गयानाथ जोतदार का वामफ्रंट विरोधी साज़िश, ख़त्म करो, ख़त्म करो।"

इस बीच हाट के कई और जगहों से चाय बागान के मज़दूर, फूलबाड़ी बस्ती के लोग और और भी जो लोग जहाँ थे, वामफ्रंट के जुलूस निकाल चुके थे। उन सब जुलूसों की तत्परता, दक्षता और निश्चितता इतनी अधिक थी, उन सब जुलूसों के स्लोगन राजनैतिक तौर पर इतने सटीक थे कि लगता था इतने बड़े क्रांतिहाट में जैसे केवल वामफ्रंट का ही जुलूस निकला है।

उत्तराखंड के जुलूस को ढूँढ़ने पर भी पाया नहीं गया। इसी बीच गयानाथ

के चीख़ने-चिल्लाने से जो लोग जमे हुए थे, वामफ्रंट के इतने सारे जुलूसों के हो-हल्ले से डर कर भाग गये।

डर जाने के बावजूद वे शायद नहीं भी हटते, अगर गयानाथ उनके साथ रहता। पर गयानाथ उनसे थोड़ा पीछे था--उसके लिये जुलूस के साथ चलना संभव नहीं था, पर वह इसे-उसे बुलाकर जुलूस में भेज रहा था और वे जाकर जुलूस में शामिल भी हो रहे थे। इस बीच वामफ्रंट का इतना बड़ा जुलूस हाट में निकला कि गयानाथ या तिलक या उनके किसी आदमी का सुराग ही नहीं मिला। क्योंकि वे इस जुलूस को लेकर ही व्यस्त थे। स्लोगन क्या देना होगा वह किसी को पता नहीं। वे ठीक से चल भी नहीं पा रहे थे। सिर्फ़ बाघारू का झंडा के लिये ही वे अपने आपको जुलूस में होने का दावा कर रहे थे। पर उस पतले लंबे बाँस के ऊपर लंबा तिकोना झंडा भी कम झमेला नहीं कर रहा था। हाट की दुकानों के ऊपर नीचे से लोग बोरा ढोकर निकल सकते थे पर इतना लंबा झंडा कंधे पर लेकर निकलना आसान नहीं था बाघारू के लिये। हाट जुलूस के लिये छोटा झंडा चाहिये। और, बाघारू के इस कंधे के झंडे को बार-बार झुकाकर एक-एक बाधा को अतिक्रमण करना पड रहा था। और एक-दो क़दम बढ़ाते-बढ़ाते फिर से झंडे को झुका लेना पड़ता।

इन सबके चलते उत्तराखंड का जुलूस या गयानाथ का जुलूस कब शुरू हुआ और कब बिखर गया वह समझ में नहीं आया। वामफ्रंट के बहुत सारे जुलूस जब उस गाय-बाज़ार से हँडिया के हाट तक पहुँच चुका था और काफ़ी आत्मविश्वास के साथ बढ़ता जा रहा था तब तंबाकू बाज़ार और गमछा बाज़ार के बीच मोड़ पर बाघारू अकेला झंडा लेकर खड़ा था, जैसे वह नीम के पेड़ के नीचे खड़ा था उसी तरह। यहाँ हालाँकि झंडा खड़ा हुआ था। उसके थोड़ी दूर तक तिलक खड़ा था। और कुछ दूरी पर गयानाथ। इन तीनों के खड़े होने के बीच कोई तारतम्य नहीं था। बस यही एक साम्य था कि तीनों जहाँ खड़े थे, वह अद्‌भुत जगह थी।

वामफ्रंट का कोई-कोई उत्तराखंड के झंडे की तरफ़ प्रायः भाग कर आते-आते देखा कि कमर में डेढ़ हाथ का ताना लपेट कर एक आदमी झंडा लेकर खड़ा है। जैसे किसी बरगद की ऊँची डाल पर कोई मन्नत का झंडा बाँधकर गया हो। एक-दो आदमियों ने बाघारू को धकियाया भी। पर बाघारू ऐसा था कि उन धक्कों में भी कोई ज़ोर नहीं था। उसके बनिस्बत जोतदार को देखकर उधर से जुलूस को ले जाना बल्कि अधिक लोभनीय था। पर गयानाथ खड़ा ही रहा।

190
बाघारू का जुलूस से मुक्ति और जुलूस पर्व का अंतिम अध्याय

तिस्ता बैरेज के उद्घाटन के दिन उत्तराखंड वालों ने चेंगमारी-बैरेज के रास्ते को ही चुना था, क्योंकि क्रांतिहाट का पक्का रास्ता उस दिन वामफ्रंट और सरकार के कब्ज़े में था। गयानाथ के जितने भी लोग थे, वे तो ख़ास इस रास्ते के इधर-उधर के रहनेवाले ही थे। इस बाहर के इतने दूर-दराज के गयानाथ के जोतज़मीन के लोगों के साथ तो उसका फिर रोज़ का मिलना-जुलना हो नहीं पाता, इसी से वे अब गयानाथ के 'आदमी' नहीं थे।

सुस्थिर और उसके आदमी विभिन्न जगहों से लडके-बच्चे जुगाड करके एक साइकिल जुलूस लेकर आये थे। प्रायः पचासों साइकिलों का काफ़िला देखने में काफ़ी लंबा नज़र आता था। वह जुलूस चेगमारी हाट के पक्के रास्ते से होकर चेंगमारी जंगल के पास से होते हुए, गोलाबाडी और पश्चिम दोलाईगांव के बीच होकर नेउडाबाडी के ऊपर होता हुआ सीधा बैरेज की ओर चला गया।

और सौ लोगो का एक जुलूस चलते हुए उधर ही चलता जा रहा था, पर वे पैदल ही चल रहे थे इसी से पक्के रास्ते मे चलने की कोई बाध्यता नही थी। वे पक्का रास्ता छोड़कर मैदान से होते हुए पश्चिम दोलाईगॉव से वाये मुडकर नेउड़ाबस्ती में जाकर पहुँच गये। नेउड़ाबस्ती में साइकिल जुलूस इस पैदल जुलूस के साथ मिलकर कुछ दूर तक गया। पर उसके बाद साइकिल जुलूस को सीधा ही जाना पड़ा और पैदल जुलूस बाये सीधे तिस्ता की ओर पुरानी सिदाबाडी की तरफ चला गया। वहाँ से तिस्ता के किनारे होकर चलते हुए आपलचाँद के सामने पहुँच गया। वहाँ पर फिर साइकिल जुलूस और पैदल जुलूस मिल गया। उसके बाद आपलचाँद के भीतर से होकर एक साथ गाजोलडोवा-तिस्ता बैरेज की ओर चला गया।

जुलूस की कहानी को तो एक ही बात में ख़त्म किया जा सकता था। क्योंकि आख़िर तक किसी को पता तक नहीं चला कि उत्तराखंड का जूलूस इस तरह का हो गया है। इसके अलावा यह जुलूस चोरी-चोरी ही जा रहा था। पूरा-का-पूरा ज़िला आज मस्त हो उठा था। नेशनल हाइवे, लैटरल रोड, क्रांति मोड़-उदलाबाड़ी के रास्ते से होकर ट्रक में लोग जा रहे थे और ये लोग वहाँ जैसे सबसे गोपन रास्ते से छिप-छिपकर किसी तरह विरोध प्रदर्शन करने के लिये आ रहे थे। पर जुलूस पर्व के अंतिम अध्याय में हमें जान लेना चाहिये कि बाघारू कहाँ पर था। इस जुलूस में उत्तराखंड का वह विशाल तिकोना झंडा लंबे बाँस के ऊपर बाघारू के कंधे पर ही था।

सिर्फ़ सौ के बराबर लोगों के इस नेउड़ाबाड़ी के ब्रह्मतला में या सिदाबाड़ी के तिस्ता पाट में क्या तुच्छ नज़र आ रहे थे। फिर वे तो कोई लाइन बनाकर भी जा नहीं रहे। सिर्फ़ बाघारू का वह लंबा झंडा ही इस विस्तृत प्रकृति में इन लोगों को एक अर्थ से आबद्ध कर रहा था।

आपलचाँद के अंदर जाकर ये दोनों जुलूस एक हो गये थे। उन्होंने भी अपने आपको एक जुलूस की तरह सजा लिया था। सबके आगे बाघारू-झंडे के साथ। उसके बाद पैदल जुलूस। अंत में साइकिलवाले। साइकिलवालों में से बहुत लोग उतरकर साइकिल हाथ में लेकर चल रहे थे।

आपलचाँद बाघारू का है। बाघारू आपलचाँद का है। उसकी आहट से एक सूखा पत्ता टूट जाता है। उसके हाथ हिलाने से इस जंगल की तमाम बाधायें दूर हो जाती हैं। इस जंगल के भीतर ही कहीं उसका जन्म हुआ था। इस जंगल के भीतर ही कहीं बाघ उसकी पीठ और जाँघ में अपनी मुहर लगा दिया था कि वह आपलचाँद का है। इतने सारे लोगों के उसके पीछे होने के बावजूद भी, बाघारू जैसे आपलचाँद में अकेले ही अकेले चल रहा था। कंधे पर इतना बड़ा झंडा लिये। उसके चलने का छंद थोड़ा-सा अलग हो गया था।

तिस्ता के किनारे से होते हुए भी तो बाघारू काफ़ी दूर आया—अबकी तिस्ता अपने दोनों किनारे से काफ़ी दूर सरक गयी थी। रेत चमक रहा था, पानी झिलमिला रहा था और हवा तिस्ता की तरह धीरे धीरे बह रही थी। आपलचाद के एक-एक सुराख से होकर कभी तिस्ता नज़र आ रही कभी छिप जा रही थी। पर तिस्ता के ऊपर से होकर हवा अविराम चल रही थी।

इस तरह से जाते-जाते बाघारू का जन्मस्थान या देश या बाघारू की दुनिया ही कहा जा सकता है उस आपलचांद को, उससे होकर गुज़रने पर बाघारू की नजर में तिस्ता बैरेज पड़ गया। बाघारू आपलचाँद के सभी दृश्यों को पहचानता था। पर इस दृश्य से उसका परिचय नहीं था। एक बाद दिखायी दे जाने पर, वह दृश्य भी बीच-बीच में ढँक जाता था पर क्रमशः अधिक स्पष्ट भी होता जा रहा था। उसके बाद वह आँखों के सामने ही था—तिस्ता के भीतर अड्डे में बना एक विशाल प्राचीर जो तिस्ता का एक नया किनारा ही हो जेसे, उसमें विभिन्न रगों के गेट, विभिन्न रंगों के झंडे जैसा कुछ उड़ भी रहा था।

इस तरह के दृश्य से बाघारू चौंककर रुका नहीं। आपलचाँद के भीतर कोई भी नया दृश्य बाघारू को चौंका नही सकता। उसको बस थोड़ा-सा समय चाहिये—दृश्य को आपलचाँद के एक भाग के रूप में आँखों में गूँथ लेने के लिये। शरीर को छोड़ कुछ भी तो नहीं था बाघारू का। उस शरीर से होकर वह इस आपलचाँद को और इस तिस्ता बैरेज को मिला लेना चाहता था। बाघारू के समक्ष

कोई भी दृश्य आपलचाँद से अलग नही रह सकता। वह बैरेज को आपलचाँद और अपने से जोड लेना चाहता था।

यह प्रक्रिया कुछ समय तक चलती रही और बाघारू जुलूस को लेकर यह नये प्राचीर, विभिन्न रग के झडे, विभिन्न रग के मच की तरफ बढ रहा था। बढते-बढते रास्ता क़रीब ख़त्म होने को आ गया। सामने हालाँकि पेड-पौधे कुछ दूर तक फैले हुए थे, फिर भी यहाँ से तिस्ता बैरेज साफ नजर आ रहा था। थोडा-सा दायी ओर। पहाड जैसा विशाल प्राचीर। उसके क़रीब आकाश की ऊँचाई पर मच बना हुआ था। लाल-नीला कितने सारे रग। कितने सारे गेट। लोगबाग जैसे खास नजर नही आ रहे थे क्योकि वह मच का पिछला भाग था। सामने जरूर लोगो का सागर लहरा रहा होगा। इतने बडे गेट और मच को देखते ही समझ मे आ जाता था कि सामने कितने लोग हो सकते है।

सुस्थिर ने पीछे मे आवाज लगायी, "यही पर रुको।" फिर साइकिल मे डबल पैडल मारता हुआ जुलूस के एकदम सामने आ गया और बोला, "अच्छी तरह से खडे हो आउर स्लोगन का थोडा पिरेक्टीस भी कर ल।" साइकिल बाये हाथ मे पकडकर सुस्थिर ने दायाँ हाथ आकाश की ओर उठाकर स्लोगन दिया "उत्तराखड पार्टी, जिदाबाद।"

सुस्थिर ने कहा, "देखिये न कितना बडा मीटिग होने जा रहा है ?" और जोर से बोलिये, "उत्तराखड।' यह मच, ये झडे, ये सब उन्हे उत्साहित कर रहे थे। काफी जोर से जवाब दिया— 'जिदाबाद।"

"तिस्ता बइरेज, बद करो, बद करो।'

"वामफ्रट का पूस महीना, राजवनसी का सर्वनाश।

"तिस्ता बइरेज का पानी कउन बहेगा। राजवनसी समाज हाय हाय।"

"तुम्हारा हमारा सर्वनाश, तिस्ता बइरेज का नाम हो।'

जब उन्हे लगा कि वे सभी स्लोगन अच्छी तरह से याद कर चुके है, तभी मच की ओर से एक-एक जीप उनकी ओर आयी। ये लोग अपने स्लोगन की आवाज सुन रहे थे इसी से जीप की घरघराती आवाज को सुन नही पाये। तिस्ता के इस जगली पाट मे गाडी की आवाज वैसे ही समझ मे नही आ सकती।

गाड़ी एकबारगी बाघारू के सामने आकर रुक गयी। सुस्थिर बाघारू के थोडा पीछे खडा होकर स्लोगन का अभ्यास करा रहा था। गाडी के रुकते ही गाड़ी के पीछे से लाठी और बदूक लिये कुछ पुलिस उतर कर आगे बढ़ आये। ड्राइवर के पास से एक ऑफिसर उतरकर ड्राइवर को पीछे की खुली जगह पर खड़ा होने के लिये बोला, "और बैरेज की ओर अँगुली दिखाया। जीप पीछे की ओर मुड़कर तिस्ता के घाट पर दाहिनी तरफ घूम गयी और फिर बैंक करके

तिस्ता बैरेज की तरह मुँह करके खड़ी हो गयी। स्टॉर्ट बंद हुआ कि नहीं समझ में नहीं आया। ऑफ़िसर आकर बाघारू के सामने थोड़ा हटकर खड़ा हो गया और सुस्थिर से बोला, "जुलूस को अभी ख़त्म कर दीजिए, स्लोगन देना भी बंद कर दें।"

इस तरह के अचानक पुलिस, लाठी, बंदूक़ देखकर जुलूस एक तरह से उद्विग्न हो उठा। सुस्थिर ने पुलिस ऑफ़िसर की ओर से मुँह घुमाकर दायें हाथ की मुट्ठी तानकर नारा लगाया, "उत्तराखंड पार्टी।" जुलूस के सिर्फ़ कुछ लोगों के अभ्यास के मुताबिक "जिंदाबाद" कहते ही पुलिस ऑफ़िसर ने दो क़दम पीछे लौटकर बायें हाथ की अँगुली के इशारे से पुलिस को इशारा किया।

बंदूक़धारी पुलिस खड़ी रही। इशारे से दो क़दम आगे बढ़ आयी। लाठी वाले पुलिस भी दौड़ आये, पर लाठी उठाकर नहीं, झुकाये हुए। जुलूस के दो-एक आदमी दौड़कर भागने लगे, यह समझते-न-समझते ही पुलिस जुलूस के दोनों ओर खडी लाठी उठाकर लोगों पर टूट पड़ी। पल भर में ही जुलूस तितर-बितर हो गया। जो जिधर पाया दोड़ने लगा। साइकिल वाले साइकिल छोड़कर भागे। पुलिस उनके पीछे नही दौड़ी, पर सभी को लाठी की जद में लेकर एक-एक प्रहार से ज़मीन सुंघा देती थी। ऑफ़िसर एक पुलिस को बुलाकर सुस्थिर को दिखाया। उसने सुस्थिर के ठीक पीठ के बीच एक ज़ोरदार लाठी और उठाकर उसके घुटने पर जोरदार प्रहार किया। बस कुछ मिनटों में ही जंगल के इस जगह, तिस्ता बैरेज के इतने निकट, उद्‌घाटन मंच के ठीक पीछे इतने सारे लोग किधर-किधर सड़क चाटते नज़र आये। कोई चीख़-पुकार, हो-हल्ला तक नहीं हुआ। एक जीप में कितनी पुलिस अँट सकती है ? वे कितने थे पता नहीं, वे सिर्फ़ कुछ ही मिनटों में उत्तराखंड के स्वतंत्र राज्य की माँग को आपलचांद के एक टुकड़े ज़मीन के ऊपर मार, तोड़, मरोड़ के फेंक कर चले गये।

बाघारू जहाँ खड़ा था, वहीं पर खड़ा रहा। झंडा उसका कंधे पर ही रहा। वह भाग नहीं सकता, या भाग नही सका, या भागा नहीं या पुलिस के सामने उसके शरीर में भागने की प्रतिक्रिया नहीं हुई जीप बिल्कुल उसके सामने आकर ही खड़ी थी। ऑफिसर भी उसके सामने था, थोड़ा-सा बायीं ओर। पुलिस जैसे उसे अनदेखा कर पीछे के जुलूस पर झपटी थी। जिस तरह पीछे के जुलूस को पकड़ने के लिये एक या दो पेड़ों को भी अनदेखा कर जाते-जाते वे बाघारू पर भी लाठी चला कर आगे बढ़ती पर कभी भी बाघारू को लाठी का निशाना नहीं बनाया। शायद, बाघारू के इतने लंबे होने से पुलिस की लाठी उसके शरीर के किसी लोभनीय अंश तक नहीं पहुँच पायी। शायद बाघारू का इतना लंबा, नंगा शरीर पुलिस की नज़र में अयोग्य साबित हो गया था। जुलूस के लिये गयानाथ अगर उसे एक धोती और कुरता देता तो शायद पुलिस उसे पहचान पाती।

पुलिस बाघारू को नहीं मारती या फिर लाठी का मुख्य लक्ष्य भी नहीं बनाती। बाघारू भी पुलिस की लाठी-बंदूक-गाड़ी देखकर भागा नहीं। शायद यह आपलचाँद है इसलिये वह नहीं भागा। यह आपलचाँद उसकी दलदली ज़मीन, यह झाड़-झंखाड़ सब कुछ उसका इतना जाना-पहचाना हुआ था कि वह समझ ही नहीं पाया कि वह कहाँ छिपे। एक आदमी तो घर पर ही छिपने की कोई जगह नहीं पाया—सबकुछ उसके लिये इतना प्रकाश्य था। इसी से उसे पुलिस और जुलूस सबको मिलाकर खड़ा रहना पड़ा। गयानाथ ने उसे झंडा देकर खड़ा करवाया था। झंडे के पीछे जुलूस था। उस जुलूस के तहस-नहस हो जाने के बाद भी वह वैसे ही वह खड़ा रहा।

जुलूस सर्ग का यहीं अंत हो रहा है। इसके बाद के पर्व में पुलिस के पीछे-पीछे ही जाना होगा—पुलिस कहाँ से आयी, क्यों आयी, यह देखने के लिये।

जुलूस के लोग अपने-अपने तरीक़े से वापस चले गये। साइकिल वाले साइकिल लेकर वापस चले गये। किसी ने बाघारू से कुछ नही पूछा। पर इन सबके चले जाने के बाद इस आपलचाँद के झाड-झखाड़, दलदली जमीन, सामने तिस्ता—यह सब फिर से बाघारू के पास वापस आ गये। सिर्फ तिस्ता के भीतर वह विराट प्राचीर, प्राचीर के ऊपर इतने सारे गेट और मंच पर इतने सारे झडे—ये सब उसके अपने देश के साथ ठीक तरह से मेल नही खाता।

पर मिलाना तो पड़ेगा ही। बाघारू को मिलाना ही हे। यहाँ इस आपलचाँद में बाघारू न देखे तो एक विशाल पेडो का बढना ही रुक जाये। क्या फायदा उस वृद्धि का अगर उसे बाघारू देख ही न पाया तो ? इस आपलचाँद जगल में बाघारू के देखे बिना एक लता या कली तक नहीं खिल पाती। बाघारू के न देखने से इस तिस्ता का स्रोत जो प्राकृतिक नियम से थोड़ा हट जाता है वह भी नहीं हट पाता। क्या फ़ायदा उसके खिसकने का अगर बाघारू ही न देखे ? और इस आपलचाँद के पास, इस तिस्ता नदी के भीतर इस तरह आड़े में एक पहाड़ को गाड़ कर उत्तर और दक्षिण की नदी को अलग कर दिया जायेगा बाघारू के बग़ैर देखे। उस पहाड़ में इतने सारे गेट, इतना बडा मंच और इतने लोग होंगे। बाघारू को देखे बग़ैर ? इस आपलचाँद जंगल और तिस्ता से बने उसके स्वदेश में इस तिस्ता बैरेज को अपनाते हुए बाघारू उस उद्‌घाटन मंच की ओर बढ़ने लगा। दो क़दम बढ़ते ही समझ गया कि वह झंडा अब भी उसके कंधे पर है। उसने बाँस से बायें हाथ को हटा लिया और बायें कंधे को थोड़ा झटका दिया। झंडा ज़मीन पर गिर गया। बाँस बाघारू के अगले क़दम के नीचे गिर गया। उसे रौंदता हुआ बाघारू आगे बढ़ गया।

अब बाघारू के दोनों हाथ ख़ाली थे। कंधा ख़ाली था। समूचा शरीर हल्का

हो गया था। टुकड़ा भर लँगोटी के सिवाय और कोई परदा नहीं। यहाँ, आपलचाँद में, तिस्ता के पाट पर, जिस तरह से क़दम बढ़ाने का वह जन्म से ही अभ्यस्त था, उसी छंद, उसी चाल से उसका समूचा शरीर आंदोलित हो उठा, डोलने लगा। हवा में झूमते-झूमते बाघारू तिस्ता बैरेज के उद्‌घाटन के रंगारंग स्टेज और पंडाल की ओर बढ़ता गया—"देखें क्या सचमुच कोई नया नदी बनने जा रहा है या मयनागुड़ी की तरह यहाँ भी लड़कियों का नाच गाना होने जा रहा है ?"

अंत्य सर्ग

मदारी की माँ का स्वतंत्र राष्ट्र

191
मदारी की माँ का स्वतंत्र राष्ट्र

हाट से लौटकर मदारी ने कहा, "माँ कल जुलूस निकलेगा। हाट में ट्रक आयेगा।"

जुलूस. या मिछिल हो सकता है और मिछिल होने से ट्रक तो आता ही है। नहीं तो इतने सारे आदमी जायेंगे कैसे ? मदारी की माँ को और कुछ नहीं पूछना था। मदारी के पास भी कहने को और कुछ नहीं था।

हाटवाले दिन उन्हें सोने में देर हो ही जाती है। हाट से लौटते हुए बैलगाड़ियाँ कें-कूँ, चें-चूँ करते हुए रास्ते से गुज़रती हैं। इनका लौटना ख़त्म ही नहीं होता, न ही यह कें-कूँ, चें-चूँ ख़त्म होती है। शाम से यह आवाज़ें शुरू हो जाती हैं पर कब तक खत्म होती हैं कौन इतना ध्यान रखता है।

मदारी की माँ का घर फॉरेस्ट की सीमा पर है। रास्ते से देखने पर वह फॉरेस्ट की सीमा जैसा लगता ही है। नेशनल हाइवे के बाद थोड़ी-सी ज़मीन है फिर फॉरेस्ट। फॉरेस्ट का नदी की तरह अपना किनारा नहीं होता। लेकिन यह बात छोड़िये, यहाँ खेती के लिये थोड़ी-सी ज़मीन छूटी होने से फॉरेस्ट हाइवे तक नहीं फल पाया है। ठीक इस जगह लगता है कि फॉरेस्ट के साथ नेशनल हाइवे एक ज़रूरी दूरी बनाये हुए है। लेकिन इसके दोनों ओर फॉरेस्ट के झाड़-झंखाड़ सड़क तक ऐसे फैल गये हैं कि डर लगता है—कहीं जंगल से कोई बाघ लपक न आये या हाथी का सूँड़ वहाँ से निकल न आये या फिर गैंडा अचानक दौड़ते हुए सड़क पर न आ जाये। ऐसी सिहरन जगानेवाली जगह में मदारी की माँ का घर एक राहत देता है। लगता है जैसे फॉरेस्ट से जान बच गयी। लेकिन इस ढाल से थोड़ा आगे बढ़ने और थोड़ा ऊँचा उठकर आगे बढ़ते ही फिर से फॉरेस्ट रास्ते तक फैला मिल जाता है।

इस ढालू के कारण ही यह थोड़ी-सी ज़मीन छूटी हुई है। ज़मीन का ढाल समझ में नहीं आता, हाँ, रास्ते की ढलान समझ में आती है। ठीक इसी जगह रास्ता काफ़ी ढलवाँ हो गया है। काफ़ी नीचे होता हुआ फिर उठ गया है। इस जगह की पूरी ज़मीन का ढाल रास्ते से पता चलता है। ज़मीन-जंगल, शालवृक्ष—कत्थे का पेड़ समेत पूरी ज़मीन यहाँ से नीचे की ओर चली गयी है। इसकी एक वज़ह भी है। फॉरेस्ट के भीतर से एक झरनानुमा धारा इस सड़क से पार होती है। साल भर इस झरने में पानी नहीं होता। सिर्फ़ बारिश के मौसम में पानी रहता है, या पानी आता है। सड़क इस तरह बनायी गयी है जिससे बारिश का पानी फॉरेस्ट के भीतर से निकलकर सड़क से होते हुए बह जाये। सड़क के उस पार झरने का गड्ढा है। इस सड़क पर कभी पानी नहीं जमता, पर सड़क हर समय भीगी रहती है। सिर्फ़ भीगी नहीं, सड़क पर

से बारिश के पानी का स्रोत हमेशा बहता रहता है। फॉरेस्ट से छनकर धूप के ज़मीन पर पड़ने से या रात को ट्रक की हेडलाइट में स्रोत की छोटी-छोटी रेखा दूर से दिखायी पड़ती है। जो कि काफ़ी खूबसूरत दिखती है। इस जगह सड़क थोड़ी चौड़ी है। काफ़ी चौड़ी। एक ट्रक साइड करके लगा देने से दो एक ट्रक एक दूसरे को साइड देते हुए आराम से निकल जायेंगे। अक्सर ड्राइवर ऐसा करते भी हैं। गाड़ी रोक देते हैं। गाड़ी में थोड़ा पानी भर लेते हैं। खुद भी झरने के पानी का छींटा अपने मुँह पर मारते हैं। पानी पीकर चले जाते हैं। गाड़ी का स्टार्ट उन्हें इस काम के लिये बंद भी नहीं करना पड़ता। बस थोड़ी देर रुकते हैं।

यहाँ बारिश के मौसम का मतलब छह से आठ महीने। दरअसल, पानी नहीं होता या सड़क भीगी नहीं होती—सिर्फ़ ठंडी से चार-पाँच महीने। मदारी की माँ ने रास्ते के ठीक किनारे झरने के भीतर से उठते हुए एक बड़े से पेड़ के नीचे कुछेक पत्थर लगाकर बेड़ी-सा बना लिया है। पेड़ वहाँ से ऊँचा उठता है जहाँ फॉरेस्ट की ज़मीन रास्ता पार करती है। आमतौर पर पेड़ वहाँ नहीं होना चाहिये था। या मिट्टी के घिस जाने के कारण ऐसे सीमांत पर पेड़ नहीं होने चाहिये थे। ऐसा भी हो सकता है, वहाँ उगा है इसलिये वहीं है। इससे ज़्यादा कोई कारण नहीं है। एक और वजह हो सकती है, रास्ता बनते समय पेड़ वहीं था, जिन लोगों ने रास्ता बनाया है उन लोगों ने उसके बदन पर हाथ नहीं लगाया। पीपल का पेड़ काटा नहीं जाता। और रास्ते को यहाँ-से-वहाँ तक ढलान बनाना है, इतना चौड़ा करना है। झरने के सामने और इस तरफ़ जहाँ झरना नयी ढलान से होकर सड़क के उस पार तक गया है, सीमेंट का पक्का बनाने में—सड़क बनानेवालों को काफ़ी दिनों तक यहाँ रहना पड़ा है। हो सकता है इसी कारण सामने एक ज़मीन खाली पड़ी है। हो सकता है वहाँ सड़क बनानेवालों का तंबू रहा हो। इतने जले पेड़ों का ठूँठ भी इसी कारण वहाँ हो। उन्हें वे रात को जलाकर रखते हों ताकि हाथियों का झुंड न आये। सड़क के उस पार अलकतरा (तारकोल) जलाने के लिये दोनों ओर जली हुई डालें अभी भी वहाँ गड़ी हुई हैं। उनके बीच में गड्ढे में किसी ज़माने में जली राख़ का अवशेष अब भी है।

मदारी की माँ तब कहाँ थी, यह वह भी नहीं जानती। लेकिन जब उसने यहाँ आकर डाल-पत्तों से घर बनाकर रहना शुरू किया था तब उसके लिये या और किसी के लिये पिपर झरना के नाम से ही परिचित हो गया था, झरने के पास पीपल का पेड़ इस निर्जन में भी अकेला ही है।

शेवड़ा वृक्ष की उम्र का अंदाज़ा नहीं लगाया जा सकता। जो पेड़-पौधे-सा लगता है यह दरअसल कुछ एक दशक पुराना भी हो सकता है। यह पेड़ भी उस तरह युवा नहीं है। बल्कि फॉरेस्ट से इतना अलग-थलग। सड़क से दूर

इस पेड़ पर नज़र पड़ ही जाती है। अपनी स्थिति के लिये जो नज़र में पड़ता ही है। साथ ही उसके अवयव के कारण भी किसी की भी नज़र पड़ ही जाती है। वरना, अपनी स्थिति में पेड़ खो जाता। पेड सिर्फ़ बढ़ता ही जा रहा है ऐसा नहीं है। उसकी एक डाल सड़क की ओर भी बढ़ती जा रही है। बढ़ने के बाद फिर वहीं से एक शाखा ऊपर की ओर चली गयी है—एक सरल रेखा की तरह। और एक शाखा नीचे की ओर झुक गयी है। नीचे झूलते हुए पानी पर लटकने लगी है। वहीं सिर के ऊपर झूलती है, कभी-कभी पानी को छूने भी लगती हे। और ऊपर की डाल की फुनगी हवा में डोलने लगती है। इस फॉरेस्ट, इस रास्ते—एक ऐसे कोने में आसमान की ओर उठकर डोलती है कि हाथी के कान की याद आ जाती है। धुँधलके के पीछे फॉरेस्ट से एकाकार अँधेरा और सिर के ऊपर आसमान का नीलापन—इस एकाकार, पेड़ की शाखा का निसंग झूमना देखकर अचानक हाथी देख लेने-सा डर भी लगता है। पानी, पानी की परछाई और अलगाव के तत्त्वों को लेकर पीपल का पेड़ किसी वृक्ष देवता या पथ का देवता बनने के लिये तैयार था—कि कोई उसे पहचान ले इसी उम्मीद में।

मदारी की माँ ने पहचान लिया—कितने उस पेड को देखते हैं और कितने ट्रक बीच-बीच में रुकते हैं—इसका हिसाब नहीं लगाया जा सकता। लेकिन उसने दो हाथों से उठाकर कैसे-कैसे पत्थरों को पेड के नीचे रखा है। उन पत्थरों की सतह पानी के ऊपर उठ गयी है। एक के बाद एक जमे हुए, गोलाई में सजे। जैसे प्राचीन मिश्र के लोग 'ओवेलिस्क' बनाया करते हैं या फिर अभी भी यहाँ के पहाडी महायानी बौद्ध धर्म के अनुयायी बनाते हैं। पानी के भीतर पत्थर के उस स्तूप के नीचे काई जम गयी है। ठंडी के मौसम में भी यह काई ख़त्म नहीं होती।

192
शेवड़ा-झरने का राष्ट्रीय उद्देश्य

मदारी की मां ने सोचा था, देवता-से दिखने वाले शेवड़ा वृक्ष को अगर पत्थर से घिस-घिसकर देवता बनाया जाये तो चलती ट्रक-बस से ड्राइवर दो-चार पैसे उधर उछाल देंगे। उसने देखा कि ड्राइवर को पैसे देते देख लोग भी पैसे देते हैं। इस रास्ते से बस गुज़रती ज़रूर हैं लेकिन व एक नये जगह पर पैसे देना नहीं चाहते। इतने ट्रक गुज़रते हैं यहाँ से, यहाँ से वहाँ। मदारी की माँ यह जानती है आसाम से कलकत्ता और कलकत्ता से आसाम तक वे यहाँ का सब कुछ जानते हैं। फिर इस तरह देवता-से दिखनेवाले वृक्ष को दो-दस पैसे क्यों

अर्पित करें ?

ऐसे एक फॉरिस्ट के किनारे, शेवड़ा वृक्ष की तरह मदारी की मॉ यहॉ क्यों रहती है ? उसका कोई इतिहास नहीं। और कहीं जगह नहीं है इसलिये रहती है। लेकिन यहाँ आकर बसने के बाद वह इस शेवड़ा वृक्ष को देवता बनाने में हर पल जुट गयी थी। तब मदारी नहीं था। मदारी से पहलेवाला भाई, या उसके पहले जन्मा भाई—कौन मदारी की मॉ के साथ था यह याद करना मुश्किल है। लेकिन उस लड़के को मदारी की मॉ ने खूब सिखाया था कुछेक मील दूर गणेश मोड़ से गणेश की मूर्ति चुरा कर लाना। मदारी की माँ तब अपने जिस बेटे के नाम से जानी जाती थी वह क़रीब-क़रीब मूर्ति चुरा कर ही दिखाता था। लेकिन बाद में उसका दिमाग़ खुला कि मात्र कुछेक मील दूर गणेश मोड़ से मूर्ति लाने से सबको उन्हीं पर शक होगा।

फिर ? और कोई उपाय मदारी की माँ के दिमाग में नही था। एक के बाद एक साल गणेश मोड़ पर हाथियों के झुंड के रास्ता रोकने से वहॉ मिट्टी के गणेश मूर्ति की स्थापना कर पूजा शुरू हुई। अब ट्रक-बस सब वहॉ पैसे देते हैं। मदारी की मॉ फॉरेस्ट के हाथियों के झुंड को समझा-बुझा नही सकती कि तुम लोग यहॉ आकर रास्ता बंद कर दो। कम से कम इस ढलान में अगर दो-एक ट्रक उलट जाता तो लोगों में डर से भक्ति उपजती। फिर वे लोग उसे देवता मान लेते और शेवड़ा वृक्ष की ओर पैसा उछालते। लेकिन मदारी की मॉ इतने बड़े-बड़े ट्रक उलटती कैसे—वह भला क्या जाने ? ये ट्रके सडक मे गुजरतीं तो मदारी की मॉ का घर थरथराकर कॉप उठता।

लेकिन उमस भरी गरमी की शाम में मदारी की मॉ जब सडक पर आकर बैठती तो देखती कि गोधूली बेला में शेवड़ा वृक्ष की ऊपरवाली शाखा हाथी के सूँड की तरह हिल रही है। जरूर हिलती है। "कोई देख न सके, कोहू न देख सके।"

मदारी की माँ ने क्या सोचा था वह मदारी की मॉ ही जाने। लेकिन उसके सोचने की भी एक सीमा है। सारी दुनिया में इतनी जगह छोड़कर जिसे इस फॉरिस्ट के पास या भीतर ऐसे एक अस्पष्ट झरने के पास, नेशनल हाइवे बनाते ख़ाली पड़ी ज़मीन में आकर रहना पड़ा उसकी सोच बहुत अच्छी नहीं होगी।

लेकिन यह झरना, यह शेवड़ा वृक्ष और यह मदारी की माँ—इन तीनों में किसके कारण इस फॉरिस्ट में मीलों चलनेवाले नेशनल हाइवे का नाम शेवड़ा-झोरा पड़ा ?

शेवड़ा वृक्ष तो है ही, झरना भी है लेकिन यहाँ इस सुनसान में पत्तों की छत डाले मदारी की माँ का घर न होता तो उस घर के सामने छोटी-सी ज़मीन

में पेड़ों के डाल-पत्ते से मड़ैया न बनी होती तो क्या इस झरने या शेवड़ा वृक्ष के नामकरण की ज़रूरत होती ? इस घर को जो अचानक घर के नाम से जानने लगे वही यहाँ ट्रक रोकते हैं, गाड़ी को पानी पिलाते हैं, खुद भी हाथ-मुँह धोते हैं, उन्हीं को इस जगह के नामकरण की ज़रूरत पड़ी।

लेकिन इतना सबके बावजूद मदारी की माँ ने जो चाहा था वह नहीं हो सका। वेदी समेत शेवड़ा वृक्ष देव स्थान नहीं ही बना; अगर एक नज़र में ऐसा होता तो दस-बीस पैसा यहाँ फेंक जाने में किसी को जो हज़ारों मन माल लेकर देश के एक छोर से दूसरे छोर तक इस नदी की तरह आ रहे है आपत्ति नहीं होती। लेकिन मदारी की मां इस जगह को देवस्थान के रूप में प्रतिष्ठित नहीं कर पायी।

अगर कोई गाड़ी भूले-भटके यहाँ रुकती तो मदारी की माँ को दौड़कर जाना पड़ता। पहाड़ की तरह गाड़ी के चक्के के बीच से आकाश की ओर गर्दन करके हाथ पसारती। उसके हाथ प्रार्थी की तरह से दिखते। इतना छोटा-सा शिशु जंगल में अनैसर्गिक-सा महसूस होता। जैसे आकाश से अपने पख फैलाकर उतरा है या मिट्टी से प्रस्फुटित हो गया है। उसका वह दौड़कर आना, मदारी की माँ के घर से उस छोटी सी ढलान को पारकर सड़क पर आना फिर सड़क से होते हुए ढलान से होकर ट्रक की ओर जाना—कैसा अलौकिक-सा लगता। लेकिन फिर ट्रक पर पहाड से लदे सामान ट्रक के चक्के से नीचे से उसका एक जोडा करबद्ध हाथ लकड़ी-सा दिखता तो यह बडा जाना-पहचाना-सा लगता—बड़ा परिचित-सा। खासतौर से उनके लिये जो देश भर के जंगल, नदी, पहाड़ और समुद्र को चीरते हुए दौड़ते है। हाथ-मुँह धोने के बाद, ट्रक को पानी पिलाने के बाद, ड्राइवर अपने सीने वाले जेब से खुजरा पैसा मदारी के हाथ मे रख देता। इसके बाद गाडी मे सवार होकर फिर से स्टार्ट करने से पहले उधर देखता है। लौटते समय मदारी सडक की चौड़ाई या मैदान की ऊँचाई को दौडकर पार नहीं कर पाता है। चलकर ऊपर चढ है धीरे-धीरे। मदारी की माँ के घर के सामने मदारी की माँ को भी दो-एक बार देखा जाता। देश भर में विभिन्न दृश्यों को देखते-देखते जो ड्राइवर, जंगल, नदी, समुद्र को चीरते हुए आगे जाता है उसके लिये यह दृश्य देखे बिना गाड़ी बढ़ा देना संभव नहीं होता—मदारी गाड़ी का निचला हिस्सा छोड़कर, इस नेशनल हाइवे के विस्तार, इस घने फॉरेस्ट के वन संपत्ति के नीचे किस तरह एक बालक छोटे-छोटे क़दमों से ढलान पार कर मैदान की चढ़ायी पर जाता है।

लेकिन ट्रक का ऐसे रुकना इस शेवडाझोरा में बड़ा अनिश्चित-सा है। अगर यह बात नियमित होती तो मदारी की कमाई भी निश्चित होती।

अगर ऐसा होता तो मदारी को चक्के के पास खड़े होकर पैसा माँगना

नहीं पड़ता। तब मदारी हाटवाले दिन मिठाई की दुकान से कपड़े का एक टुकड़ा लेकर खड़े होनेवाले ट्रकों के विशालकाय शरीर पर चढ़कर खेलता। ट्रक का इतना बड़ा बोनेट दोनों हाथ से रगड़ रगड़कर पोछता, बोनेट के ऊपर चढकर ट्रक पर बने डिजाइन को पोंछता, काँच पोछता। ड्राइवर का गेट पोंछता, चक्के के ऊपर खड़े होकर ट्रक का बदल पोंछता, शुरू में तो ट्रक का क्लीनर उसे भगा देता था। लेकिन धीरे-धीरे मदारी ने यह काम हथिया ही लिया। दोनों हाट में एक ही चायबागान वाले ट्रक ही होते। चायबागान में ट्रक से माल नहीं आता। आदमी आते हैं। उसे पोंछने का कोई पैसा नहीं देता। उन ट्रकों को छोड़कर भी मदारी के ट्रकों की संख्या कुछ कम नही। एक-एक हाट में चार-पाच ट्रक उसे मिल ही जाते हैं। उनमें से कुछ ट्रक तो मानो उसके अपने ही हैं—'एमपी सिंह का ट्रक', 'हरियाणा ट्रक' 'जनता ट्रक'—जनता क्लीनर है वह। शेवडाझोग मे भी अगर कोई ट्रक रुकता तो मदारी उन्हें भी पोंछता।

193
मदारी हाट में जुलूस का प्रचारक

जुलूस के बारे में मदारी ने हाट मे ही सुना था। टीन पीट-पीटकर हाट म मुनादी की गयी थी। हाट तब नहीं लगा था। मदारी उनके पीछे-पीछे कुछ दूर तक गया था। मुनादी करने वाला शुकरा लाल टीन पीट रहा था और कह रहा था, 'कल तिस्ता बैरेज चलो, जुलूस का हिस्सा बनो।''

शुकरा के गले में कफ जम जाने से उनकी आवाज घरघरा रही थी। यह बात लोगों को सुनाने के लिये वह गला खँखार नही रहा था। इसलिये वे क्या कह रहे थे कुछ समझ नहीं आ रहा था। न ही सुनायी पड रहा था। हाट के लोगों को इसकी कोई चिंता भी नहीं थी—एक ऐसा भाव था जेसे वे सब कुछ जानते थे या फिर वे कुछ भी जानना नहीं चाहते।

लेकिन 'जुलूस' शब्द सुनकर मदारी शुकरा का पीछा छोड़ नहीं पाया। वह जानता है 'जुलूस' कई तरह के होते हैं। हाट में 'जुलूस' का आकार छोटा होता है। चाय बागान में भी 'जुलूस' जाता है—वहाँ मदारी के लिये कुछ करने को नहीं रहता। बड़ा जुलूस कभी-कभी निकलता हे। तब ट्रक में लादकर शहर में ले जाया जाता है, कभी अलीपुरदुआर तो कभी जलपाईगुड़ी। पिछले साल मदारी एकबार अलीपुरदुआर में एक जुलूस के साथ गया था। 'जुलूस' के साथ ही लौटा भी था। जलपाईगुड़ी शहर उसका देखा हुआ नहीं है।

लाल शुकरा बहुत दुबला-पतला है। लगता है चलते हुए गिर पड़ेगा। उस पर सबने हड़िया पी थी। नशे या शरीर के कारण वे ठीक से क़दम नहीं उठा

पा रहे थे। लेकिन उसी लड़खड़ाते क़दम और क़फ़ से जकड़े स्वर में बोलता जा रहा था, "जुलूस में चले, जुलूस में चले।" देखने से लगता था, जुलूस शब्द से नशे का ताल्लुक है।"

लाल शुकरा के पीछे-पीछे घूमते-घूमते मदारी ने उसके सामने जाकर पूछा, "बड़ा जुलूस कि छोटा जुलूस ?" एक बार फिर सामने जाकर पूछा, "ट्रक आया ? ट्रक ?

यह सब पूछते समय उसने थोड़ी दूरी रखी थी—यह उसकी आदत ही है। क्योंकि जवाब देने के बदले शुकरा अपने हाथ की छड़ी से उसे कहीं पीट न दे। शुकरा तो वैसे ही आधा पगलेट और आधा शराबी—क्या कर बैठे, कोई नहीं जानता।

दूसरी बार पूछने पर शुकरा ने एक अजीब काम किया था। टीन और छड़ी मदारी की ओर बढ़ा दिया। मदारी पीछे हट गया। "ले-ले" कहते हुए लड़खड़ाते हुए शुकरा उसके पीछे दो-एक क़दम आते ही खाँसने लगा। फिर टीन और छड़ी को पकड़े हुए खड़े-खड़े खाँसता रहा। उसके होंठों से लार बहने लगा था—आँखें तो जैसे निकलकर गिर जायेंगी इतनी बड़ी हो गयी थीं।

मदारी ने सोचा कि उनके हाथ से टीन और छड़ी ले लेने से उन्हें थोड़ी राहत मिलेगी यही सोचकर उसने टीन और छड़ी ले ली। लेकिन इसके बाद भी अपने बढ़ हुए हाथ वापस खींच नहीं पायी—इतने ज़ोर-ज़ोर से खाँसता था।

खाँसी रुकने पर थूक निगला। दोनों हाथ उतारकर बायें हाथ के पंजे से चेहरे का पसीना एकबार पोंछा। दाहिने हाथ को उठाकर पूरे [illegible] पर झुलाकर शुकरा बोला, "जा रे मदारी, ढोल बजा दे, कल तिस्ता बैरेज में जुलूस हय। मिनिस्टर आइगा। ट्रक बी आइगा—"

"ट्रक आइगा ?" मदारी ने पूछा।

"ज़रूर आइगा। ट्रक ज़रूर आइगा। सब कोई को जाना है। जाओ, ढोल बजाओ। मदारी, जा मदारी।" कहकर शुकरा दाहिने ओर घूमकर मिट्टी के हँड़िया की दुकानों के पीछे, पेड़ के नीचे पहले शरीर से सहारा लिया फिर सो गया।

और मदारी उछलते-उछलते टीन काँख में झुलाकर छड़ी से पीटने लगा—"जुलूस-जुलूस, कल जुलूस है। ट्रक आ[illegible]गा। सब कोई जाइगा, सब कोई जाइगा।"

मदारी की बगल में टीन टिक नहीं रहा था। उसे बार-बार हाथ बढ़ाकर टीन को अपने शरीर से चिपकाये रखने के लिये सटाये जा रहा था। और उसी तरह टेढ़ा-टेढ़ा ही उसे पीटे जा रहा था। लेकिन वह इतना तेज़ दौड़ते-दौड़ते पूरे

हाट मे घूम रहा था। ऐसा लग रहा था कि उसे कही से टीन मिल गया है और शौक से वह उसे पीट रहा है। उसके बचकाने गले से 'जुलूस-जुलूस' की आवाज खाली-खाली हाट मे गूँज रही थी—पक्षी की चीख की तरह।

हाट तब भी नही लगा था, इसलिये दुकानो के कतार के भीतर तक जाकर भागना-दौडना उसके लिये सभव हुआ था। दुकानदारो के सजी-सजायी दुकानो मे तब भी हाथ नही लगी थी। वे भी मदारी के इस मुनादी पीटने के काम मे शामिल हो सकते है। इसलिये मदारी को थोड़ा मजा भी आ रहा था।

लेकिन मजा लेते घोष मोशाय के मिठाई की दुकान के सामने आते ही घोष मोशाय ने जोर से बुलाया, "ऐ ऐइ मदारी।" अपने टीन पीटन की आवाज क कारण मदारी वह बुलावा सुन नही पाया। इससे घोष मोशाय को और भी जोर से हॉक लगानी पडी, "ऐ ऐई मदारी।"

हॉक सुनकर मदारी चौककर रुक गया। फिर मुडकर मिठाई की दुकान की ओर देखा। देखा कि, घोष मोशाय ऑखे तरेरकर उसकी ओर देख रहे है। उसने बगल से टीन उतारकर दानो हाथ से टीन को पकड लिया। धीम-धीमे चलते हुए घोष मोशाय के मामने गया।

घोष मोशाय धमकात हुए बाल, "कौन बोला ह ढोल पीट के परचार करन को।"

"शुकरा ने।"

"कौन शुकरा ?"

"लाल शुकरा।"

"जा अबही दे आ उसका टीन। बडा आया परचार करने। जुलूस होगा कि नही इससे तेरा क्या र ? जा टीन देके आकर कप धाके रख—'

मदारी को डर था कि अभी झापड पडेगा। नही पडने पर दौडकर लाल शुकरा की खोज मे गया। उसे ढूँढना नहीं पडा। लाल शुकरा उसी पेड क नीचे सोया था। तेजी से वह सॉस ले रहा था।

मदारी धीमी चाल से शुकरा के पास गया। फिर लाल शुकरा और पेड के बीच के सुराग से देखकर टीन वही रख दिया। एकदम धीमे से, कही कोई आवाज न हो जाये। या फिर लाल शुकरा को धक्का न लगे और वे उठ न जाये। टीन वह ठीक तरह से रखने मे कामयाब रहा। फिर छड़ी को उसने टीन के ऊपर रख दिया। लेकिन छड़ी को टीन के ठीक बीच मे रख नही पाया। थोड़ा निकला हुआ ही रहा। छडी को ठीक से रखने के लिये जैसे ही फिर हाथ बढ़ाया छड़ी लुढ़क कर लाल शुकरा के पेट पर गिर गयी। उसकी साँस के साथ कभी उठती तो कभी गिरती है। तब तक मदारी दौड़कर घोष मोशाय की दुकान तक पहुँच गया।

घोष मोशाय की दुकान में मदारी हाटवाले दोनों दिन कप-प्लेटें धोता है। कभी-कभी ग्राहकों को चाय आदि भी देता है। चाय बहादुर बनाता है—वह कहता है कि मदारी को चाय बनाना सिखा देगा। घोष मोशाय हमेशा दो-चार पैसे दे देते हैं। मगर बहादुर सचमुच मदारी को चाय बनाना सिखा दे तो वह घोष मोशाय की दुकान में नौकरी पा सकता है। लेकिन चाय बनाने वाला टेबल अभी तक उसकी ठुड्डी तक ही है। चाय बनाना सीखने के लिये उसे और भी लंबा होना पड़ेगा।

हाट ख़त्म होने के पहले देखा गया—जुलूस एक नहीं, कम-से-कम दो-तीन है। हथौड़े वाली पार्टी ने बागान के लोगों को लेकर जुलूस ख़त्म कर लिया और पहाड़िया फॉरेस्ट से लोगों को लाकर जुलूस सजा लिया। देसी लोगों का भी एक जुलूस बना सब बोल पड़े—"कल तिस्ता बैरेज में जुलूस।"

194
तिस्ता बैरेज कैसे बना

यह क़िस्सा जुलूस के साथ तिस्ता बैरेज तक ही जायेगा। इसलिये, तिस्ता बैरेज की बात यहीं निपटा लेना अच्छा है।

तिस्ता बैरेज की योजना क्या है, कब से काम शुरू हुआ ? काम शुरू होने से पहले क्या गड़बड़ी हुई, राज्य में कौन सी सरकार और केन्द्र में कौन सी सरकार क्या कर रही है—यह सब तो बहुत बड़ी बातें हैं। तिस्ता का पानी कहीं रोककर वहाँ से बिजली का उत्पादन हो सकता है या नहीं--इसको लेकर कई बार बहुत सारी योजनाएँ बनीं। सरकारी विभाग में कुछ कम दस्तावेज़ जमा नहीं हुए इन सब को लेकर। लेकिन जलढाका, जलविद्युत-परियोजना के बाद किसी की गर्दन पर दो सिर नहीं उग आये थे कि उत्तर बंग के उन्हीं सब पहाड़ियों को लेकर कोई बात बहुत ज़ोर देकर करे।

या फिर, ऐसा नहीं भी हो सकता है। कारण, जलढाका जलविद्युत परियोजना के नष्ट होने के बाद किसी की गर्दन नहीं कटी। सरकारी किसी परियोजना में किसी एक को ज़िम्मेदार नहीं ठहराया जा सकता। इतने सारे स्तरों पर, इतने लोगों द्वारा विभिन्न चरणों में अगर कोई परियोजना तैयार होती है तो उसके लिये अकेले एक आदमी को जिम्मेदार नहीं ठहराया जा सकता। जलढाका का सब हिसाब ठीक-ठाक था—साल में किस-किस समय पानी का स्तर कितना होता है, पानी की गति कितनी होती है, उसकी गति से टरबाइन कितने ज़ोर से घूम सकता है, उससे कितनी ऊर्जा तैयार हो सकती है—इन सब हिसाबों में कहीं कोई ग़लती नहीं थी। दुनिया भर में जोड़-घटाव के ज़रिये बड़ी-बड़ी जो जलविद्युत

परियोजनायें तैयार हुई हैं, जलढाका मे भी ऐसे सारे हिसाब सही थे। लेकिन दुनिया की विख्यात जलविद्युत-परियोजना पर जो किताबें लिखी गयी हैं उनमें यहाँ के पहाड़ की विशिष्टता का 'लोकल फैक्टर' नहीं है। इसलिये उन हिसाबों में इस स्थानीय उपादानों को शामिल नहीं किया गया था। यहाँ के पहाड़ पर पत्थर की बजाय मिट्टी ज़्यादा थी। पानी जब पहाड़ से उतरकर नीचे बहता है तो स्वाभाविक रूप से पानी के साथ मिट्टी भी नीचे उतरती है। पहाड़ में भू-स्खलन आम है। और वही मिट्टी, पानी में घुली मिट्टी टरबाइन की गति को रोक भी लगा सकती है। इसका पता भी तब चला जब टरबाइन रुक गयी।

जलढाका के इस अनुभव से उत्तरबंग की पहाडी नदी के बारे में सब अनिश्चित हो गये। ये ठीक नदी से परिचित नहीं थे। इनका स्वभाव भी हमेशा किताबी नदी विज्ञान से मेल नहीं खाता। या, इस तरह की भौगोलिक स्थिति से नदी के वैशिष्ट्य को लेकर उस समय तक कोई किताब नहीं लिखी गयी थी। इसलिये जब तक नहीं होता अर्थात् इन सब नदी का स्वभाव ठीक-ठाक ज्ञान नहीं होता, तब तक यह नदी, नदी की तरह ही रहे। मई से अक्तूबर, मौसमी हवा के पहले झटके से उसी हवा के प्रत्यावर्तन तक छह-छह महीने, नदियाँ बहुत कुछ बह जाती हैं। तरह-तरह की बाढ मे कितनी ही मिट्टी बह जाये, एक ही नदी में छोटी-बड़ी कई तरह की बाढ आने से अच्छा है बाढ से लोगो को बचाने को कोशिश। बाढ़ से लोगो के हुए नुक़सान का मुआवजा देना ठीक है लेकिन नदी से छेड़छाड़ करने की ज़रूरत नहीं है।

इसका संस्कार कब हुआ इसकी साल तारीख़ ढूँढने की कोई जरूरत नहीं। मोटेतौर पर कहा जा सकता है 1968 मे तिस्ता मे सबसे भयानक बाढ आने के बाद '69 में दूसरे संयुक्त मोर्चे की सरकार के समय में तिस्ता परियोजना के बारे में पहली बार अख़बार में छपा था। तिस्ता-महानदा मास्टर प्लान के बारे में तभी सुना गया था। लेकिन तब तक ये सारी बातें अख़बार में आते-आते संयुक्त मोर्चा सरकार का तख़्ता पलट गया था। इसके बाद इस बारे में कोई ख़ास चर्चा नहीं हुई।

फिर, छह साल बाद फिर इसकी चर्चा शुरू हुई तिस्ता बैरेज परियोजना के काम में पहली बार हाथ लगाया जायेगा, तिस्ता-महानदा मास्टर प्लान का काम एक-एक चरण में होगा। लेकिन तब जब तिस्ता बैरेज डिवीजन तैयार हो जाये—ये सारी ख़बरें लगातार अख़बारों में आने लगे। लेकिन एक घटना के कारण। एक मालदार मंत्री इन सबके दायित्व में थे। उन्होंने न्यू जलपाईगुड़ी में तिस्ता बैरेज में एक दफ़्तर और क्वार्टर खोला था। तिस्ता बैरेज का मुख्य कार्यालय मालदह में खुला था।

यह घटना तब काफ़ी चर्चित हो गयी थी। क्योंकि न्यू जलपाईगुड़ी या

मालदह में कहीं तिस्ता नहीं है। जहाँ तिस्ता का कोई अस्तित्व नहीं है वहाँ परियोजना का मूल दफ्तर बना। वहाँ के लोगों को परियोजना में नौकरी मिली। इसलिये जलपाईगुड़ी-कूचबिहार से विरोध शुरू हुआ। माँग थी कि बैरेज का दफ्तर उन ज़िलों में होना चाहिये जहाँ से होकर यह नदी बहती है।

लेकिन अगर मंत्री की मर्ज़ी है कि उसके ज़िले या शहर के लोगों को नौकरी मिले तो वह पहले महानंदा बैरेज पर ही हाथ लगवाएगा। लेकिन उन्होंने ऐसा नहीं किया। दरअसल, मालदह में मुख्य दफ़्तर होने से वे नियमित रूप से वहाँ जा सकते थे। उनके प्रत्यक्ष तत्त्वावधान में उत्तर बंगाल में तथा पश्चिम बंगाल की वृहत्तम नदी तिस्ता परियोजना उतनी ही तेज़ी से और कम-से-कम समय में पूरा हो—इसीलिये वे इस परियोजना का मूल कार्यालय मालदह में लगाना चाहते थे। इसके अलावा दफ़्तर में और कितने लोग काम करते हैं ? नये लोगों को काम पर रखा जायेगा वहाँ जहाँ बैरेज बनेगा। कांट्रेक्टर भी लोगों को रखेंगे। इसमें मंत्री को क्या करना है ?

इन दो मतों के बीच तीसरा मत भी था। हो सकता है उन्हें विश्वास नहीं था कि किसी को कुछ उनके अपने अधिकार के तहत मिल रहा है। इसलिये वे कहते हैं—जहाँ मर्ज़ी वहीं दफ़्तर हो—बैरेज तो तिस्ता पर ही बनेगा। तिस्ता बैरेज से मंत्री को क्या लाभ ? इसलिये दफ़्तर को वे मालदह ले गये। मंत्री का इतना-सा फायदा मान लेने से हो सकता है बैरेज तैयार हो जाता। और नहीं तो मंत्री हो सकता है बैरेज की योजना पर खटाई डाल दे। मंत्री नाराज होकर काम ही शुरू न कराये।

लेकिन इन सब पचड़ों और बहस के ख़त्म होने से पहले ही 'आपातकाल' की घोषणा हो गयी। 1977 का चुनाव और इंदिरा गाँधी की हार। अगर केंद्र में कांग्रेस की हार हो जाये, अगर प्रधानमंत्री चुनाव में मात खा जाये तो तिस्ता बैरेज का क्या होगा ? महानंदा बैरेज का ही क्या ? 1977 में चुनाव में राज्य में वाम मोर्चा की सरकार आ गयी। '67 और '69 की राजनीति का रुख़ फिर से बदल गया—बीच में दो-एक चुनाव और एक-दो सरकारें आयीं और गयीं। पर इस सब में कोई दस साल तो लग ही गये।

स्पेशल सेटलमेंट की ज़रीब का काम '77 तक शुरू हुआ। मालदह में बैरेज कार्यालय बनने का कोई सवाल ही नहीं उठता। लेकिन एक कार्यालय न्यू जलपाईगुड़ी स्टेशन के पास बना, क्वार्टर-वार्टर भी बन गये। संपर्क बनाना, सामान लाना, कलकत्ता में भाग दौड़ करना इन सबके लिये एक जगह, एक कैंपस की ज़रूरत महसूस की सबने। ख़ासतौर से बैरेज का काम ख़त्म होने पर उसके रख-रखाव की ज़िम्मेदारी बन गयी थी।

इन सबमें तिस्ता-महानंदा मास्टर प्लान के एक चरण के रूप में तिस्ता

बैरेज का काम काफ़ी तेज़ी से होने लगा। गाजोलडोवा गाँव इसका मुख्य केन्द्र बन गया। देखते-देखते इस पार का गाजोलडोवा और उस पार के बैकुंठपुर फॉरेस्ट के बीच, चौड़ाचौड़ी, तिस्ता के बीच से बैरेज बनना शुरू हो गया। स्लूइस गेट, रिजर्वर समेत तिस्ता बैरेज। वह काम अब भी पूरा नहीं हुआ। लेकिन इसका उद्घाटन अभी ही हो गया। कम-से-कम आंशिक उद्घाटन। इसी उद्घाटन के लिये इतना जुलूस जा रहा था।

195

पूरा होने से पहले उद्घाटन

पर अधूरे बैरेज के उद्घाटन की आख़िर ज़रूरत ही क्यो पडी ?

यही तो सामयिक इतिहास का विषय है और इस कहानी के लिये जरूरी है।

इतने बड़े कर्मयज्ञ में स्थानीय लोगो को कुछ सुख-सुविधा मिलती ही रहती है। लेकिन सुख-सुविधा के मामले में शुरू से ही गडबडी रहती है। नदी मे चौडाई में काम हो रहा है। इस बैरेज के बन जाने से तिस्ता के पानी को अपने अधीन रखा जा सकता है। बारिश के इस मौसम में पहली खुदाई होगी। दूसरे मौसम में दूसरी। बारिश में बायें किनारे का कटाव होता दूसरे में दाहिने किनारे का—लेकिन अब ऐसा नहीं होगा।

पर इससे, तिस्ता के स्वभाव के चलते, तिस्ता में जो बडी खुदाई हो चुकी है उसके बीच-बीच में बहुत सारे चर बन गये हैं। वे सारे चर टीलानुमा हैं। तिस्ता बैरेज के कारण नदी गहराई से निकले तो इन सब चर में न बस्ती बसेगी, न ही खेतीबारी यहाँ सभव है। कारण, तिस्ता को मूल गहराई में ही रहने देना होगा। जमा किया गया पानी जब छोड़ा जायेगा तब उस जलप्रपात के धक्के से नदी के बीच बने चर बह जायेंगे।

इन सारे चरों को पूर्वी बंगाल के नमशूद्र किसानों ने बसाया है, आबाद किया है। कहीं-कहीं, जैसे मेउयामारी चर में उनका अपना को-ऑपरेटिव भी है। तिस्ता बैरेज से पानी कब छोड़ा जायेगा, इसका हिसाब अब तक किसी ने भी नहीं लगाया, यह ठीक है। लेकिन जब भी छोड़ा जायेगा, ये सारे बसे-बसाये चर उसके पहले ही उजड़ जायेंगे। हो सकता है इस बीच ये लोग दूसरी जगह की खोज-ख़बर ले रहे हों। सरकार से भी बातचीत चल रही है—इन्हें कहीं और पुनर्वास दिया जा सकता है या नहीं।

भविष्य में क्या इंतजाम किया जा सकता है। इन सबको लेकर विभिन्न कोशिशों के बीच ये अपना वर्तमान तो छोड़ नहीं सकते हैं। इसलिये तिस्ता बैरेज

बनने के शुरू में ही इनकी माँग थी—जिन लोगों को बैरेज के कारण वहाँ से हटाया जायेगा बैरेज के काम में उन्हें ही लगाया जाये। ख़ासतौर से मिट्टी कटाई के प्राथमिक काम में।

बैरेज के अधिकारी इस बारे में कुछ कह नहीं सकते। क्योंकि, काम करायेंगे कंट्राक्टर। वे कहाँ से मज़दूर लेकर आयेंगे यह उनका मामला है। पर काम शुरू होने से पहले कोई गड़बड़ी न हो इसके लिये सरकारी इंजीनियर समझौते की कोशिश कर रहे हैं।

समझौते में कोई परेशानी नहीं थी। कारण, यह कंस्ट्रक्शन कंपनी देश भर में काम करती है। उनके सब-कंट्राक्टर, लेबर सब बँधे-बँधाये हैं। यहाँ तक कि वे लोग यहाँ आकर, गाजोलडोवा जंगल माफ़ कर अपना तंबू लगा चुके हैं। इलेक्ट्रिक लाइन खींचने के लिये पेड़ों की शाखाओं की छँटायी भी कर चुके हैं। इस परिस्थिति में अभ्यस्त व्यवस्था को बदलने को कंपनी क्यों राज़ी होगी भला ? यह सवाल पहले नहीं उठा। इसलिये कंपनी के सब-कंट्राक्टर मजदूरों को लाने के लिये रुपये-पैसे लेकर विभिन्न जगह रवाना हो चुके हैं। हर कोई कुछ-कुछ मज़दूर यहाँ लेकर पहुँच रहे हैं। आपलचाँद फॉरेस्ट में उनके लिये अस्थायी रूप से बसने की सीमा हर रोज़ बढ़ती जा रही है। यहाँ तक कि ट्रक आने के लिये जितनी सड़क अभी बनी है उसके पास छोटे-से इलाक़े में एक छोटा-मोटा बाज़ार भी कुछ दिनों से लगने लगा है। ऐसी परिस्थिति में इन सब लोगों को बिठाकर कंपनी क्या चरवासियों को काम देगी ?

दरअसल, कंपनी ने एक गुप्त हिसाब लगा लिया था। बैरेज के काम में वे लोग लग सकते हैं जो खेत-मज़दूरी नहीं करते। दूर के चर से कोई इस काम में नहीं आयेगा। और इस क़रीब के चर से जितने लोग बैरेज के काम में आ सकते हैं, दूसरे ज़िलों से सब-कंट्रक्टरों के जरिये उससे कहीं ज़्यादा लोग कंपनी को मिल सकते हैं। इन सब चर के लोग अगर हल्ला मचायें तो अपनी तादात के कारण ही वे हार जायेंगे। ऐसी परिस्थिति के लिये कंपनी को और भी कुछ समय की ज़रूरत थी। इंजीनियरों से बात करके, चर के लोगों से बात कर आगे की बातचीत के लिये दिन तय कर—कंपनी अपने लिये समय ले रही थी।

यह कंपनी देश भर की भिन्न जगहों में ऐसे बड़े बड़े काम सालों से करती आ रही है। ऐसी समस्या से निपटने का अनुभव और दक्षता काफ़ी है।

इसी अनुभव और दक्षता को वे सब-कंट्राक्टर के नीचे स्तर पर काम में लगाते हैं।

सब-कंट्रक्टरी के काम में और भी कुछ सब-कंट्रक्टर की ज़रूरत है। या फिर यह कहना ज़्यादा बेहतर होगा कि एक-एक काम के लिये अलग-अलग

सप्लायर की ज़रूरत होती है। ये सप्लायर लोकल लोग हों तो अच्छा हो। कारण, स्थानीय रूप से कहाँ क्या मिलता है वे अच्छी तरह जानते हैं। जुगाड़ करके वे भी आ सकते हैं। एक से नहीं हुआ तो दूसरा मदद करता है।

स्थानीय छोटे-मोटे कंट्रक्टर की खोज़ करके कंपनी उससे बातचीत करने के लए सब-कंट्रक्टर को लगा देती है। मिट्टी काटने का काम शुरू होते ही गाड़ियाँ भर-भर के बाँस की ज़रूरत होगी। शाल-बरगा की ज़रूरत होगी—कितना, इसका कोई हिसाब नहीं। पत्थर फेंकना होगा पानी का स्रोत रोकने के लिये। ऐसे ही एक बैरेज के काम का एक हिस्सा या सिर्फ़ बाँस, शाल-बरगा, या पत्थर सप्लाई का काम अगर किसी स्थानीय कंट्राक्टर को मिल जाये तो उसकी तो चाँदी ही चाँदी।

सब-कंट्राक्टर ने उस माल बाज़ार, उदलाबाड़ी, जलपाईगुड़ी के सब-कंट्राक्टरों से बात की। और वे सबके सब जान गये कि बैरेज का काम शुरू नहीं होने दे रहे हैं चरवासी। कंपनी का यह हिसाब पक्का था कि इस सब इलाकों में पचास-सौ या डेढ़ सौ कंट्राक्टर को सप्लाई का काम दिया जा सकता है।

इन्हीं सब बातचीत के कारण ज़िले के कंट्राक्टर कंपनी का समर्थन कर रहे थे। उनकी कुछ राजनीतिक क्षमता भी है। वे लोग चर के लोगों पर राजनीतिक नेता का भी इस्तेमाल कर सकते हैं। उन्हें समझा सकते हैं कि इतने बड़े काम में इस तरह अड़चन पैदा करना ठीक नहीं।

लेकिन कंपनी ने अपनी दक्षता स्थानीय ग्रामांचल में राजवंशियों के एक संगठन को बनाने में दिखायी थी। चर के नमशूद्रों से राजवंशियों का संबंध कभी बहुत अच्छा नहीं रहा। चर के लोगों ने कंपनी से कहा कि—उन्हें काम में लेना पड़ेगा, राजवंशियों को काम पर रखना नहीं चलेगा—यह बात आसपास के गाँवों तक फैल गयी—उस क्रांतिहाट से लेकर उदलाबाड़ी तक।

मामला क़ानूनी दायरे में आ गया।

कंपनी ने साफ़-साफ़ जता दिया कि चर के लोगों को काम पर रखने से राजवंशी दंगा करेंगे। राजवंशियों को काम में लेने से चर के लोग दंगा करेंगे। दोनों को काम पर रखने से काम के दौरान दंगा-फ़साद होगा। इसलिये कंपनी सरकारी अनुमति के तहत अपने लोगों से काम कराने लगी।

196
बैरेज के पहले भी एक इतिहास है

लेकिन वह तो काम शुरू होने का मामला है। उसके साथ इस उद्घाटन का क्या संबंध है। उद्घाटन का मतलब तो काम ख़त्म हो जाना है। आंशिक

उद्‌घाटन के मायने आंशिक तौर पर काम पूरा हो जाना है। वह इतिहास तो हर रोज़, हर साल विभिन्न घटनाओं के जरिये नियंत्रित होता है। जिस तरह अभी तिस्ता बैरेज बनाकर तिस्ता की गहराई पक्के तौर पर स्थिर की गयी है उसी तरह इतिहास को बैरेज में बाँधकर इतिहास की गहराई बनाना तो संभव नहीं है। इतिहास के मामले हरदम तिस्ता की तरह आज़ाद हैं। कभी वह दाहिना किनारा तोड़ती है तो कभी बायाँ। एक ही बारिश में वह अपने पुराने चर को तहस-नहस करके वह चलती है। उसी बारिश में वह फिर एक नया चर बनाकर आगे निकल जाती है। वह इतिहास इस पूरे भारत का हो या फिर उसके इस राज्य पश्चिम बंगाल का हो या पश्चिम बंगाल के एक हिस्से उत्तरबंग का ही हो। अख़बार या रेडियो, या टीवी—पढ़कर, सुनकर, देखकर मन में यह धारणा लगभग बैठ गयी थी कि इतिहास जैसा बड़ा मामला, दिल्ली-बंबई जैसे बड़े शहर में या कलकत्ता जैसी राजधानी में घट सकता है, उसके बाद वहाँ से दूसरी जगहों तक फैल सकता है। लेकिन कभी-कभी देखा गया है उत्तरबंग जैसे अनिर्दिष्ट भूखंड में भी इतिहास एक निर्दिष्ट आकार पाना चाहता है। या हो सकता है सभी खंडों के अंश-इतिहास की अपनी एक गति होती है। बड़े इतिहास की गति के वह अनुकूल भी हो सकती है प्रतिकूल भी। बड़ा इतिहास अपनी भव्यता के दवाब से कभी-कभी उस प्रतिकूलता को विनष्ट कर देता है और कभी प्रतिकूलता को कई मोड़ों पर घुमाते हुये उसे अनुकूलता के स्रोत में मिला भी देता है। लेकिन अक्सर देखा जाता है कि उस आंचलिक खंड के इतिहास के टेढ़े-मेढ़े रास्ते किसी भी कीमत पर सपाट और सीधे नहीं होते। आख़िर में वह मूल इतिहास का विषम और प्रबल प्रतिद्वंद्वी बन जाता है। तीसरे दशक के बीच में पहले कभी किसी ने सोचा भी नहीं था कि भारतीय इतिहास की मूल धारा के ख़िलाफ़ मुस्लिम धारा को कहीं विस्तृत प्रवेश पथ दिया जाएगा। और इसी के चलते मात्र दस सालों में पाकिस्तान की माँग आज़ादी की माँग के बराबर हो गयी। 1947 के मार्च में लाहौर सम्मेलन में पाकिस्तान की माँग पहली बार की गयी—जबकि वह माँग मात्र इन सात सालों में अखंड भारत की खंड स्वाधीनता क़रीब एक सौ साल के सपना, कल्पना और प्रयास की प्रतिद्वंद्वी बन गयी।

तिस्ता बैरेज इस तरह से एक आंचलिक खंड इतिहास से जुड़ गया था। उस आंचलिक इतिहास का चेहरा कभी एक जैसा नहीं था। लेकिन सभी शहरों में उसका आंचलिक चरित्र स्पष्ट हो गया था।

जैसे, मालदह-दिनाजपुर के पोलिया-राजवंशी से शुरू कर कूचबिहार-जलपाईगुड़ी के राजवंशी मिलकर अपने आदिवासी सत्ता की प्रधानता की माँग कभी-कभी कर ही बैठते हैं।

वह 'उत्तराखंड पार्टी' या पार्टी न कह कर उत्तराखंड आंदोलन का कुछ विवरण तो हमें इसके पूर्व के सर्ग में मिल ही चुका है। उत्तराखंड आंदोलन या पार्टी कभी बहुत बड़ी हो सकेगी या नहीं, यह एक अलग मामला है। इस आंदोलन में अपने-अपने स्वार्थ और उद्देश्य इस कदर हावी होते जा रहे थे कि इसके सब नेताओं के लिये एक साथ मिलकर काम करना मुश्किल होता जा रहा था। लेकिन कुछ भी हो, जितनी भी मुश्किलें आयें, ज़रूरत पड़ने पर बंबई फिल्म इंडस्ट्री की श्रीदेवी और जल्पेश मंदिर के शिवलिंग को एकाकार करके ये एक ऐसी स्थिति तैयार कर सकते थे जिससे लगने लगे कि इनके पीछे सचमुच कोई बड़ी ताक़त है। लोकदल, या जमायत में शक्ति प्रदर्शन प्रधान उपाय हो तो उस उपाय का इस्तेमाल कई तरह से किया जा सकता है।

प्राचीन इतिहास, जन वैशिष्ट्य आदि को लेकर किसी अंचल की शष्टता जब उसके न्यायालय की उपादान बन जाती है तब इतिहास का कोई भी उपादान व्यवहार में आने से नहीं बचता हे। उत्तरबंग का सिर्फ़ मैदान नहीं—उसका विस्तृत पहाड़ी इलाका भी पश्चिम बंगाल का ही हिस्सा है। यह पहाड़ी इलाका विशेष रूप से दार्जिलिंग ज़िले में ही फैला है। इसका दूसरा हिस्सा जलपाईगुड़ी ज़िले के उत्तरी भाग से नीचे उतर आया है। दरअसल, जलपाईगुड़ी जिला जितना उत्तर की ओर फैला है उतना ही उसका जनबहुल चेहरा बदलता गया है। लगभग बीच से अगर पूर्व-पश्चिम में एक रेखा खींच कर जलपाईगुड़ी को दो हिस्सों में बॉटा जाये तो उपरी हिस्से का एक तिहाई भाग राजवंशी इलाके से बाहर है। इस हिस्से में मुख्य तौर पर चाय बागान है—इसलिये यहाँ कोल-मुंडा-संथाल ही यहाँ बसते हैं। और थोड़ा उत्तर की ओर बढ़ने मे नेपाली आबादी मिलती है। इस उत्तर जलपाईगुड़ी से जलपाईगुड़ी के आबादीगत भिन्नता को चुनाव आयोग भी अप्रत्यक्ष रूप से तरजीह देता है। दार्जिलिंग का जो हिस्सा लोकसभा चुनाव क्षेत्र के अंतर्गत पडता है। उसमे जलपाईगुड़ी ज़िले का उत्तरी हिस्सा भी शामिल है। यानी जलपाईगुड़ी ज़िले के उत्तर में नेपाली, कोल-मुंडा-संथाल दार्जिलिंग लोकसभा चुनाव क्षेत्र के वोटर हैं। यह व्यवस्था पिछले दो तीन चुनावों से शुरू हुई है। इससे पहाड़ी इलाके के साथ जलपाईगुड़ी का एक स्थायी संबंध हो गया है।

197
पहाड़ से मैदान

जलपाईगुड़ी में पहाड़ और मैदान के इस संयोग का एक भौगोलिक कारण भी है।

दार्जिलिंग के साथ जलपाईगुड़ी के मैदानी रिश्ते ही ज़्यादा नज़र आते हैं। उसी रिश्ते का अभ्यास ज़्यादा है। सिलीगुड़ी से हिलकोर्ट रोड तक दार्जिलिंग का मुख्य संयोग है। लेकिन पहाड़ से मैदान का यही एक मात्र संयोग नहीं है। जलपाईगुड़ी ज़िले के उदलाबाड़ी से ढोर-डंगर का रास्ता सीधा चढ़कर लाभा-आलागाड़ा से होते हुये कलिम्पोंग पहुँच गया है। दार्जिलिंग पहाड़ से कलिम्पोंग पहाड़ अलग है। और इस कलिम्पोंग पहाड़ से जलपाईगुड़ी पहाड़ का बहुत प्राचीन संयोग है। इस ढोर-डंगर के रास्ते में या लाभा-आलगाड़ा के रास्ते में या सरकारी भाषा में वर्ल्ड मिलीटरी रोड में जलपाईगुड़ी के बहुत सारे चाय-बागान आहिस्ते-आहिस्ते सीढ़ी-दर-सीढ़ी पहाड़ पर चढ़ गये हैं। पाथरझोरा, सुड़ीबाड़ी, छोटी फागू, बड़ी फागू तक। इसी के साथ इन्हीं सब पहाड़ों से होकर जलपाईगुड़ी डिवीज़न के अधीन फॉरेस्ट के विभिन्न रेंज भी चले गये हैं। यह ठीक है कि किसी एक जगह पर जलपाईगुड़ी ज़िला खत्म होकर वहाँ से दार्जिलिंग ज़िले की सीमा शुरू हो जाती है लेकिन उपरी तौर पर इसका पता भी नहीं चलता है। हर तरफ़ नेपाली, मज़दूर, नेपाली आबादी है। लोगों के चेहरे और उनकी भाषा में कहीं कोई विभाजन रखा नहीं है।

उस एक से चेहरे और भाषा के जरिये आजकल पहाड़ी लोगों की स्वायत्तता की माँग पहाड़ से जलपाईगुड़ी के मैदानी इलाकों तक उतर आयी है। इस माँग को अख़बार में गोरखालैंड कहा गया है जिस तरह पाकिस्तान, खालिस्तान, झारखंड आदि के बाद किसी भी क्षेत्र से स्वायत्तता की मांग उठ सकती है। इनकी स्वायत्तता 'स्थान' या 'लैंड' से समझाना सहज है। लेकिन दरअसल इसी स्वायत्ता की माँग में निहित है—पश्चिम बंगाल के पहाड़ी इलाकों की लंबे समय से उपेक्षा, पश्चिम बंगाल के वृहत समाज में पहाड़ी लोगों के योग्य भूमिका की कमी, उनकी अपनी मातृभाषा को अस्वीकृति और सबसे बड़ी बात है आहत आत्मसम्मान बोध।

आत्मसम्मान को एक बार ठेस लगे तो कई तरह के विकार सिर उठा लेते हैं। इसके साथ ही आहत आत्मसम्मान बोध से आत्म-परिचय का अवसर भी निकल आता है।

पहाड़ी लोग जब पहाड़ी इलाके से कितनी लकड़ी, कितनी चाय और निचले इलाके के आय समेत सरकारी आय के ब्यौरे के साथ पहाड़ी लोगों के लिये प्रति व्यक्ति नगण्य आय का ब्यौरा पेश करते हैं तो उस ब्यौरे में राज्य सरकार की भाषा और उसके लिये किये वायदे भी शामिल होते हैं।

राज्य सरकार ने भी तो लगभग एक ही भाषा में अपना ब्यौरा दिया था। पश्चिम बंगाल के केन्द्रीय सरकार की आय बहुत है जबकि वह राज्य सरकार को कितना थोड़ा लौटाती है। राज्य सरकार जब मातृभाषा के गौरव का प्रचार करती है। मातृभाषा को इस राज्य के कामकाजी भाषा के रूप में प्रतिष्ठित करने

का वायदा करती है। मातृभाषा को शिक्षा का माध्यम बनाने की कोशिश करती है तो इस राज्य के एक खास इलाके की मुख्य आबादी जिसकी भाषा बाङ्ला नहीं है, उसकी भाषा के प्रति सरकार की उपेक्षा का रवैया उसे ठेस पहुँचा ही सकता है।

और ऐसे ही बुरे समय में पहाड़ी इलाके से बात है—तिस्ता बैरेज का असली उद्देश्य पहाड़ी नदी से पानी मैदान में ले जाना है।

इस बात का कोई मायने-मतलब नहीं है। कारण पूरे पहाडी इलाके को पार करके ही बैरेज में पानी ठहरता है। यह बात ऐतिहासिक तौर पर भी ठीक नहीं है—क्योंकि उत्तर बंगाल में सबसे अधिक नदी को लेकर यह परियोजना दार्जिलिंग ज़िले में तैयार हुई है। इस तरह की बात पहाड़ी स्वार्थ के लिये भी ठीक नहीं है। कारण, तिस्ता परियोजना से पहाड़ी इलाके को फ़ायदा भी होगा। लेकिन यह बात राजनैतिक तौर से खटकने वाली बात ही है।

आँखों के सामने दिखाई पड़ता है, नीचे तिस्ता के जल को एक जगह पर रोक कर तिस्ता की मूल गहराई में बहने देने का काम चल रहा है, काम आगे बढ़ रहा है। देखते-देखते फॉरेस्ट के भीतर, एक निर्जन जगह का चेहरा बदल गया गाम की उस गति से। देखते-देखते तिस्ता पर अँधेरी रात में बत्ती जलने लगी—रात में भी काम चल रहा है। उस ओर उँगली दिखाकर कहा जाता है कि वह देखो, तिस्ता बैरेज का काम चल रहा है, तिस्ता तो पहाड़ी नदी है, कलिम्पोंग की नदी, हमारी नदी, लेकिन हमारी नदी जब तक पहाड के भीतर से होकर बह रही है तब तक उसकी ओर राज्य सरकार की नजर नहीं पड़ेगी। यहाँ तक कि अंग्रेज़ों ने तिस्ता के उपर सेतु बनवाया था, इसके बाद देसी सरकार ने एक भी सेतु नहीं बनवाया। लेकिन फिर भी देखो, नीचे, मैदान में कितना बड़ा तिस्ता बैरेज बना, उनलोगों ने हमारी नदी को भी लूट लिया, हमलोग ऐसा नहीं होने देंगे, तिस्ता बैरेज तोड़ना होगा।

यह सब तर्क लोगों के दिमाग़ में जल्दी घर कर गया। वंचित आदमी बहुत जल्दी ईर्ष्यालु हो जाते हैं। इससे कम से कम उनके मन को एक तसल्ली मिली। और, आँखों के सामने तैयार हुये एक चीज़ को नष्ट करने का आह्वान करने पर लड़ाई को एक दिशा मिली। इसलिये पहाड़ से पहाड़ी लोगों की आवाज़ उठी थी—"तिस्ता बैरेज तोड़ना होगा।" वह आवाज़ हज़ारों साल के प्राचीन रास्तों से होते हुये जलपाईगुड़ी के मैदानी इलाके में जो पहाड़ी लोग थे उनकी भी जुबान पर आ गयी—"तिस्ता बैरेज तोड़ना होगा।"

उत्तराखंड, कामतापुर, गोरखालैंड और पुराने चर के नमशूद्रों के संगठन—इन सबके आंदोलन के विरोधों के सामने सरकार ने तिस्ता बैरेज के काम की गति बढ़ा दी। एक, इतने सारे विरोधों में कहीं कोई एकता नहीं थी। सब की

अलग-अलग वजह थी और ये वज़हें भी परस्पर विरोधी थीं। उत्तराखंड 'भाटिया' को भगाना चाहते हैं, नमशूद्र पुनर्वास चाहते थे। उत्तराखंड अलग राज्य की माँग करते थे। कामतापुर असम के एक हिस्से को अपने में मिलाना चाहता था। गोरखालैंड स्वतंत्र होना चाहता था—अलग राज्य के रूप में दर्जा पाने पर बहुत अच्छा हो।

विरोधियों के लिये एक होना संभव नहीं था। इसलिये राज्य सरकार उसकी अपनी राजनीतिक शक्ति का संग्रह कर सकती थी। वामफ्रंट के भीतरी घटक तो हैं ही, बाहरी पार्टी में कांग्रेस के लिये राजनीतिक रूप से इन सब दलों में किसी को खुला समर्थन देना असंभव था। इसलिये, इस अभूतपूर्व राजनीतिक एकता के साथ तिस्ता बैरेज का आंशिक काम पूरा कर अगर उद्घाटन होता तो उत्तर बंगाल के लोगों को तुरंत प्रमाण मिल जाता कि यह सरकार उनका कितना ख्याल रखती है।

इसी के साथ सरकार दार्जिलिंग और जलपाईगुड़ी ज़िले में चाय बागानों में जहाँ-जहाँ उनकी यूनियन है वहाँ से, मुख्य रूप मे पहाड़ी लोग इकट्ठा हुएथाा। थे। जलपाईगुड़ी-कूचबिहार में उनके किसान संगठनों को प्रचार में लगाया गया था। वे लोग राजनीतिक रूप से काफ़ी संगठित हैं। वे लोग पहाड के लोगों और राजवंशियों के बीच लगभग एक साल से 'अलगाववाद' के ख़िलाफ़ प्रचार करते रहे हैं। संख्यागत रूप से वे लोग ही बलिष्ठ हैं।

इसलिये, तिस्ता बैरेज के उद्घाटन के मौक़े पर, उत्तराखंड, कामतापुर, गोरखालैंड के गुट आज विरोध ज़रूर कर रहे हैं लेकिन वह विरोध तिस्ता बैरेज तक नहीं पहुँचेंगा, पहुँचने नहीं दिया जायेगा। सरकारी दल सब ज़िलों से जुलूस लेकर अपना समर्थन जताने बैरेज जा रहे हैं। केन्द्रीय सरकार क जल संसाधन राज्यमंत्री, राज्य सरकार के सिंचाई मंत्री, मुख्यमंत्री खुद इसका उद्घाटन करने आ रहे हैं। और इसीलिये बैरेज को घेरे पुलिस, सीआरपी, बीएसएफ की टुकड़ी पहरा दे रही है।

198
चुनाव और उद्घाटन

तिस्ता बैरेज का उद्घाटन इसलिये एक सरकारी परियोजना का उद्घाटन नहीं है बल्कि यह राजनैतिक घटना है।

सरकार और सरकार में शामिल दलों की शक्ति-परीक्षा की घड़ी है। वे यह साबित करना चाहते हैं कि इन सब कामतापुर, उत्तराखंड, नमशूद्र समिति, गोरखालैंड वग़ैरह का कोई राजनैतिक आधार नहीं है। सिर्फ़ सरकार के लिये

इनका दमन करना एक कौशल का मामला है। इसलिये दो-चार लोग एक होकर किसी 'स्थान' या 'लैंड' का स्लोगन दे सकते हैं। इनका काम बस स्लोगन भर दे देना है। सरकार के लिये हर वक्त इन्हें जेल में डाल देना एकदम संभव नहीं। जेल हो जाये तो ये लोग नेता बन बैठेंगे। और एक बात हो सकती है ये लोग हाट-घाट जहाँ भी मीटिंग-मिछिल (जुलूस) करेंगे--वहीं पुलिस मार कर इनका भुरता बना देगी। पुलिस की पिटाई का नतीजा अच्छा होता है। लेकिन पिटाई के लिये कह देने से पुलिस अंधाधुंध पिटाई करने लगती है। इससे दो-एक मारे भी जाते हैं। इसको लेकर पूरे देश में बवाल मचता है। नहीं भी मारे जाने पर पुलिस पिटाई की ख़बर अख़बारों में इतना नमक-मिर्च लगाकर छपती है कि मामला दबने की बजाय आंदोलन का रूप अख़्तियार कर लेता है।

इससे अच्छा ऐसा ही कार्यक्रम ठीक है। लंबे समय से सरकारी पार्टियाँ प्रचार कर रही हैं। अपनी बात लोगों को समझा रही हैं, सरकारी पार्टियों के नेता समय-समय पर विभिन्न जगहों पर मीटिंग कर रहे हैं। इसी के साथ तिस्ता बैरेज के काम में कुछ-कुछ परिवर्तन भी हो रहे हैं। चीफ़ इंजीनियर और मंत्री के साथ मुख्यमंत्री की बैठक हो रही है--तय हुआ था कि एक साल मे उद्घाटन हो जाना चाहिये। राज्य सरकार ने केन्द्रीय सरकार से इस बारे में संपर्क भी किया था। सरकारी पार्टियाँ शुरू में प्रधानमंत्री के हाथों इसका उद्घाटन कराना चाहती थीं। इससे कामतापुर, उत्तराखंड, नमशूद्र समिति, गोरखालैंड के मामले में कांग्रेसी जनसाधारण का समर्थन था इसको लेकर उनमें एक द्विधा सामने आयेगी। कारण, इस मंच से प्रधानमंत्री को 'अलगाववाद' के ख़िलाफ़ बोलना ही पड़ेगा। प्रधानमंत्री और मुख्यमंत्री के राजनीतिक रूप से एक ही बात कहने से एक दूसरा ही प्रभाव पड़ेगा। लेकिन इस प्रस्ताव में अड़ंगा लगाया राज्य के दो-चार बड़े-बड़े ऑफ़िसरों ने। उन लोगों ने शुरू में कहा था--ऐसे समय में ऐसे एक भौगोलिक जटिलता वाले स्थान में राज्य सरकार के लिये प्रधानमंत्री के सुरक्षा का इंतज़ाम करना मुश्किल होगा। या फिर यह ज़िम्मेदारी लेना उचित नहीं होगा। और प्रधानमंत्री से उद्घाटन कराने से इसका एक राष्ट्रीय महत्त्व होगा। इससे इस महत्त्व का फायदा उठाकर आंदोलनकारी नये सिरे से उत्साहित होंगे। इसका कारण हो सकता है कि उस दिन आंदोलनकारी सक्रिय होकर प्रदर्शन भी करें। ख़ासकर, गोरखा लोग। प्रधानमंत्री हासिमारा के सेना के एअर स्ट्रीप पर ही उतरे या बागडोगरा एअरपोर्ट पर ही--गाड़ी से उन्हें इतना लंबा रास्ता जंगल और पहाड़ से होकर गुज़रना ही पड़ेगा। उन सब पहाड़ों और जंगल के पेड़ों में कोई आतंकवादी का छुपना असंभव नहीं है।

लेकिन प्रधानमंत्री तो हैलीकॉप्टर से एकबारगी तिस्ता बैरेज पर ही उतरेंगे।

इतनी बहस के बाद दो-चार ऑफ़िसरों ने अपना असली वक्तव्य एक-दूसरे

की आड़ में मुख्यमंत्री को बताया—तिस्ता बैरेज जैसे एक महत्त्वपूर्ण परियोजना के क्षेत्र में केन्द्र को शामिल करना राजनीतिक रूप से ठीक भी नहीं हो सकता है। कारण, अगर प्रधानमंत्री उद्घाटन करें तो मीडिया उन पर ही ज़्यादा तवज्जो देगी। अभी ख़ासतौर पर चुनाव होने में कुछेक महीने रह गये हैं—ऐसा करना ठीक नहीं होगा।

चुनाव सामने है इसलिये तिस्ता बैरेज का उद्घाटन, इस उद्घाटन को लेकर जनसभा, 'अलगाथादियों' की अलग से सभा में शामिल लोगों की संख्या से भी बड़ी सभा सरकार के और सरकारी पार्टियों की विशेष पूछ है—यह इतना ही ज़रूरी भी है। सरकारी पार्टियों ने तय किया है कि तिस्ता बैरेज के उद्घाटन से ही चुनाव प्रचार का अभियान शुरू हो। इस सभा में ताकत को तिस्ता बैरेज की सफलता को उस दिन इस तरह पेश करना होगा कि आगामी फ़रवरी तक इसका असर रहे। उत्तरबंगाल की कुल सीटों पर सरकारी पार्टियाँ अपना कब्जा सकती हैं—अगर एक-दो सीटों की अदला-बदली की दुर्घटना हो भी गयी तो भी इतना काफ़ी होगा। और अगर दो-एक सीट मे और अधिक इज़ाफ़ा हो जाये तो फिर कहना ही क्या। यह सिर्फ़ तभी संभव है अगर सरकार और सरकारी पार्टी राजनीतिक अभियान तेज़ कर दे—तो कांग्रेस के माथ इस सब 'अलगावादियों' के प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष किसी भी तरह का आपसी समझौते को असंभव किया जायेगा। चुनावी तिकड़म की ओर से ये सारे छोटे-मोटे दल के कारण वामफ्रंट और उसके घटकों को फ़ायदा होगा। कांग्रेस समर्थक वोट यदि सरकारी या कांग्रेसी उम्मीदवार और वे सारे छोटे-छोटे उम्मीदवारों में बँट जाते हैं। फिर वामफ्रंट पिछली बार की बजाय उत्तरबंगाल में कहीं अधिक सीटों पर कब्जा जमायेगी। इसलिये तिस्ता बैरेज के उद्घाटन के मौक़े पर वामफ्रंट अपने घटकों और अपने सरकार की तमाम ताकत को लगा देगी।

कहा, भूटान की सीमा में चाय-बागान के कोल-मुंडा-संथाली मज़दूरों—उसी संथालपुर, कालचीनी, रंगालीवाजा, राजभातखाना से वे लोग राजवंशियों को लेकर ट्रकों में जुलूस आयेगा। एक बहुत बड़ी सुविधा हो गयी थी, चाय बागान खुद ट्रक दे रही थी। दूसरी तरफ़ जयंती के रास्ते और बिन्नागुड़ी से शुरू होकर इस तरफ़ का जंगल उजाड़ कर दिया जायेगा। मयनागुड़ी से लेकर एक और लाटागुड़ी तक लोग जुलूस में ही आयेंगे—यह तो उनके घर का-सा मामला है। मदारीहाट, बीरपाड़ा, हासिमारा से ट्रेन से लैटरल रोड होव आयेंगे। मेटेली से होकर मेटेली के पीछे से मीलों दूर के गोरुबाथान रोड के चायबागान से नेपाली मज़दूरों को बड़े ही संगठित तरीक़े से लाया जायेगा।

राजवंशी व मदेशिया लोग तो जुट जायेंगे लेकिन अगर नेपालियों को ठीक से संगठित कर नहीं लाया गया तो वे लोग खुद जुलूस में शामिल होने से रहे।

उस तरफ के चाय बागान क्षेत्रफल में छोटे हैं। इसलिये यहाँ नेपाली मज़दूर तो हैं लेकिन बहुत ज़्यादा नहीं। इसलिये सरकार और सरकारी दलों ने दूसरा इंतज़ाम किया है। कुछेक साल पहले फॉरिस्ट के 'पतित जमीन' पर दख़ल करने के लिये नेपाली लोग जुलूस बनाकर एक-एक जगल में घुसे थे। इस मामले को लेकर तब काफी चर्चा हुई थी। बाद में, सरकार ने चुप्पी साध ली, रवैया ऐसा था सरकार का मानो जबरन दख़ल के आगे सरकार ने सिर झुका लिया है। दरअसल, फॉरिस्ट डिपार्टमेंट को निर्देश दिया गया था कि तीन-चार महीने बाद नये पेड़ लगाने के कार्यक्रम के तहत ज़बरन दखल करने वालों को वहाँ से निकाल दिया जाये। लेकिन सभी जगहों से एक साथ नही ज़बरन दख़लदारों की कॉलोनी को पहले निशाना नहीं बनाना है। यहाँ तक कि बाद के बाद भी नहीं। मानो ज़बरन दख़लदार ऐसा समझते हैं कि गड़बड़ी करने से फ़ायदा नहीं बल्कि जंगल में नये जगह पर फिर से बसना ठीक ही रहेगा। फॉरिस्ट डिपार्टमेंट ज़रूरत पड़ने पर पुलिस की सक्रिय मदद लेगी। इस तरह नये ज़बरन दखल करने वालों पर अंकुश लगाया गया। लेकिन पुराने दख़लदारों को सब जगह से अभी तक हटा पाना संभव नहीं हो पाया है। चुनाव के पहले यह काम कर पाना संभव भी नहीं है। ऐसे ज़बरन दखलदारों की तादाद कुछेक हज़ार है। फॉरिस्ट डिपार्टमेंट और फॉरिस्ट कंट्राक्टरों के असंख्य ट्रकों में ज़बरन दख़लदारों को बैरेज में ले आया गया है। उन्हें उम्मीद है, सरकार का समर्थन करने से स्थायी रूप से रहने का पट्टा मिल सकता है।

सरकार और सरकारी दल इस अभियान में 'अलगाववादी' विरोध और प्रदर्शन करने का साहस भी नहीं जुटा पाते हैं।

199
मदारी की माँ जुलूस में क्यों गयी

लेकिन किसी का भी जुलूस कहीं भी जाये, मदारी की माँ जुलूस में क्यो जाए ? मदारी हाट से जुलूस की ख़बर लेकर आया है सिर्फ़ इसीलिये मदारी की माँ जुलूस में जा नहीं सकती ? जिस जुलूस में लोगों की ज़रूरत है, लोगों के भीड़ की ज़रूरत है। उस जुलूस में दलालों को मदारी के माँ की याद नहीं आयेगी। इतने बड़े-बड़े मकानों में सिर छिपाने का जुगाड़ करने की क्षमता जिसमें नहीं है, जिसे इतने घने और बड़े फॉरिस्ट में किसी एक जगह किसी झरने के पास एक शेवड़ाझोरा में बसना पड़ता है उसका कोई अपना जुलूस नहीं होता। एक दिन जुलूस में जाने का मतलब उसके लिये उस दिन बिना खाये-पिये रहना। एक दिन खाना नहीं मिलना या बिना खाये रहना मदारी की माँ के लिये कोई नयी बात नहीं है। ऐसा भी नहीं है कि उसके पास अपने पूरे एक दिन बेकार जाने या उपस्थिति

का कितना नुक़सान हुआ यह देखने का नज़रिया है। पेट की भूख या मज़दूरी की कमाई—ये दोनों ही मदारी की माँ के जीवन यापन का पैमाना नहीं है। ऐसे में उसका दिन बेकार गया या नहीं, यह मापा जाये किस तरह ?

इस फॉरिस्ट, इस शेवड़ाझोरा में उसे हर रोज़, हर दिन अपने खाने के जुगाड़ में निकलना पड़ता है—उसी तरह जैसे फॉरिस्ट में मुर्गी निकलती है, पक्षी निकलते हैं, बड़े-बड़े जीव-जन्तु—जैसे हाथी, गैंडे भी निकलते हैं। और उसके अपने खाने का परिमाण तो ठीक नहीं है कि उतना ही इतंज़ाम कर लेने से भी काम चल जायेगा। सारा दिन फॉरिस्ट के भीतर उसे घूमना पड़ता है। और मिट्टी में नज़र गड़ाये उसे घूमना पड़ता है। फॉरिस्ट में मिट्टी तो दिखायी नहीं देती। सिर्फ़ जंगली लता-पत्ता-घास होते हैं। कभी-कभी उस लता-पत्ता और घास में लोग भी डूब जा सकते हैं। इन्हें ठेल-ठाल कर आगे नहीं बढ़ा जा सकता है। और कभी-कभी छोटे और खुले रास्ते भी मिल जाते हैं। ये रास्ते फ़ॉरिस्ट डिपार्टमेंट के ही बनाये हुये हैं जीवन-जंतुओं के यातायात की सुविधा के लिये या फिर भीतर के पेड़ों को काट कर रखने के लिये। ऐसे मैदान की तरह चौड़े-बड़े रास्ते फॉरिस्ट के भीतर भी हैं। इन्हीं सब रास्ते से ट्रक घुसते हैं। हाथी के झुंड को भी इस रास्ते से चलने का अभ्यास हो जाता है। बीच-बीच में मिट्टी के छोटे-छोटे टीले पर नमक बिखेर दिया जाता है। जीव जंतु इसे चाटते हैं।

मदारी की माँ को दो चीज़ों की कभी कोई कमी नहीं होती है—चूल्हा जलाने के लिये सूखी, पतली लकड़ियों और नमक की। लेकिन उन सूखी लकड़ियों में आग जलाने के लिये उसके पास माचिस नहीं होती, उस आग पर रखने के लिये उसके पास कुछ टूटे बर्तन ज़रूर हैं लेकिन उस बर्तन में कुछ डालने का नहीं रहता। मदारी की माँ को बहुत नमक मिल सकता है लेकिन नमक डालकर वह बनाये, ऐसा कुछ रोज़ मिलता ही कहाँ है ?

सुबह से फॉरिस्ट के भीतर मिट्टी की ओर देखकर घूमते रहने का एक मानचित्र है। बहुत ज़्यादा घने जंगल में घुस जाने से खोजना मुश्किल है। चारों ओर से जंगल ऐसे जकड़ लेता है कि पानी के भीतर साँस लेने के लिये जैसे नाक को ऊँचा उठा कर रखना पड़ता है। उसी तरह जंगल में भी नाक ऊँचा किये चलना पड़ता है। फिर मिट्टी की तरफ़ कैसे दिखेगा ? इतने झाड़-झंखाड़ के भीतर कुछ झट मिल जाने की उम्मीद रहती है—जंगली मुर्गी का अंडा या जंगली मुर्गी के अंडे से निकले, पर दौड़ना न सीखे हुए साबुत चूजे, मोटे चूहों के बिल में हाथ डालकर चूहे के छोटे-छोट बच्चों का जुगाड़ हो ही जाता है। इसलिये झाड़-झंखाड़ में गये बिना मदारी की माँ के पास दूसरा कोई चारा भी नहीं है। उसके शरीर को यह झाड़-झंखाड़ रास आ गया है। मुँह ज़रा उठाकर रखे तो भी मिट्टी उसे दिखायी पड़ती है। ऐसे ही देख-देखकर ढूँढ भी पाती है।

मदारी की माँ की आँखें अगर ठुड्डी के नीचे होतीं तो अच्छा होता।

सारा दिन यही तो उसका काम है। हाथ में एक सख़्त लाठी, काफ़ी वज़नदार-शालवृक्ष की टूटी डाल होती है। भूखे रहने पर यह लाठी उसे बोझ सी लगती है। लेकिन यह लाठी आख़िर उसका अस्त्र है। इसके निचले हिस्से में एक कोना निकला हुआ है। यह कोना देख कर ही इस डाल को काटा गया है। इससे डंडे की पहुँच तक अगर कोई जंतु पड़े और वह मदारी की माँ का खाद्य हो तो डंडा निश्चित रूप से उसकी गर्दन पर जा पड़ता है। और कभी-कभी तो क्षणभर में डंडे को भाले की तरह कोंचती है—ऐसे जैसे मछली मारते हैं। और कभी-कभी तो क्षण भर में डंडे को सिर के ऊपर उठाकर शरीर के पूरे ज़ोर से हाथ नीचे ले आती है—शिकार की मुद्रा में। इन सब में मदारी की माँ का पूरा शरीर चौकन्ना रहता है। फॉरेस्ट के धुँधलके में—शाल-सेगुन-कत्थे-अर्जुन के आसपास मदारी की माँ भी एक पेड़ बन कर अपने दोनों हाथ ऊपर, सिर के ऊपर उठाती है जैसे तूफ़ान में कोई पेड़ अचानक जीवित हो उठा हो। उस खड़े होने या नीचे उतरने में मदारी की माँ का शरीर चूर-चूर हो जाता है। जो शरीर सिर्फ़ शरीर के बल पर ज़िंदा है, उस शरीर ने सिर्फ़ शरीर के ज़ोर से आठ-नौ बच्चों को जना है।

दरअसल, इस फॉरेस्ट में बहुत अच्छे साँप मिलते हैं। साँप के मांस के लिये तेल ज़्यादा लेकिन पकाने में आँच कम लगती है। ऊँचे मुँहवाले साँप मिल जायें तो क्या कहना—अमृत। लेकिन छोटे-मोटे साँप भी तो कम नहीं हैं। मदारी की माँ विषैले साँप पहचानती है। इसलिये आँखों के सामने बिना चींटी लगे ताज़ा-ताज़ा मरे ख़रगोश या मोटा चूहा मिले भी तो वह उसे छूती नहीं है, यहाँ तक कि डंडे से उलट कर देख लेती है। फॉरेस्ट में जो कुछ मरता है उसे मिट्टी के साथ मिल जाना होता है। यहाँ ऐसे भी पाखी-कीड़े-मकोड़े होते हैं जो मरे जीव-जंतु खाकर ज़िंदा रहते हैं।

ट्रक पोंछने का या घोष मोशाय की दुकान में कप-डिश धोने के एवज़ में मदारी की माँ नोट भी ले आती है—बीच-बीच में, क़रीब एक हाट के बाद तो ज़रूर ही। इसलिये मदारी की माँ किसी-किसी हाट में चावल ख़रीद भी पाती है—चायबागान के मज़दूर राशन का चावल हाट में लाकर बेच देते हैं और हड़िया पीकर गाना गाते हुये बागान में लौट जाते हैं।

लेकिन उसके लिये चावल ख़रीदना जितना सहज है आग खरीदना उतना ही मुश्किल। एक पूरी माचिस की डिबिया ख़रीदना मदारी की माँ के लिये एक ज्वालामुखी पहाड़ ख़रीदने जैसा है। चावल तो वह ख़रीद सकती है लेकिन आग ख़रीदे कहाँ से ?

मदारी की माँ को इसके लिये कितना तिकड़म करना पड़ता है।

हाट में किसी एक कोने में जमकर बैठ जाती है। आमतौर पर एक बड़े पेड़ के नीचे छोटी-मोटी दो-तीन दुकानें लगती हैं। इसके बावजूद वहाँ, उस पेड़ के ठूँठ में मदारी की माँ को ठेक मिल जाती है। मदारी की माँ वहीं ठेक लगा कर बैठ जाती है। बैठी ही रहती है। ठीक बैठी नहीं, अधलेटी-सी रहती है। फॉरेस्ट के भीतर रोज़, सारा दिन मुर्गी की तरह चौकन्नी, साँप की तरह सरसराती, गोखरा की तरह काली है वह यहाँ, इस हाट में बूढ़ी की तरह शिथिल शरीर को पसारे पड़ी रहती है।

आदमी के साथ आदमी की आत्मीयता बनती है या फिर वह किसी रहस्यमय कारण से मर जाती है। मानुष समाज से हटते-खिसकते जो अब फॉरेस्ट में धँसती चली जा रही है वह इतने समय तक एक ही पेड़ के ठूँठ में टेक लगाये पड़ी है इसीलिये जहाँ दुकानदार उसकी तरफ़ बिना देखे एक बीड़ी बढ़ा देते हैं—पीछे से हाथ फैलाकर। दियासलाई की तीली जलाकर पहले अपनी बीड़ी सुलगाकर कमर को थोड़ा झुकाकर मदारी की माँ की भी सुलगा देते हैं। तीली बुझ गयी तो अपनी ही बीड़ी बढ़ा देते हैं। इस तरह दो-एक बार बीड़ी पीने के बाद मदारी की माँ उससे दियासलाई की डिब्बी में लगे बारूद का फटा टुकड़ा और दो तिली माँग भी लेती है। इस तरह माँगने से कोई-कोई चार-पाँच तीली समेत एक पूरी डिब्बी दे दे तो उसे दुश्चिंता यह हो जाती है कि इन तीलियों के सतेज रहते-रहते इनका इस्तेमाल करने का मौक़ा मिलेगा कि नहीं ? कोई अगर पहली बीड़ी लाइटर से जला दे तो मदारी की माँ अपना ठेक बदल लेती है। और अगर दियासलाई न मिले तो उस दिन मदारी घोष मोशाय की दुकान से थोड़ी-बहुत आग ले आता है।

200
मदारी आग कैसे ले जाता है

आग ले जाने का मदारी का एक ख़ास तरीक़ा है।

केला पत्ता या कच्चू (अरबी) के पत्ते में वह कोयले का चूरा बिखेर देता है। फिर कोयले के चूरे का एक छोटा-सा ढेर बनाता है। उसी पर धधकते हुए दो कोयले रख देता है फिर कोयले के चूरे को ऊपर से डालकर जलता हुआ कोयला ढँक देता है। दोनों हाथ में केला पत्ते का कुछेक टुकड़ा या कच्चू पत्ते पर आग रखकर वे दोनों माँ—बेटा हाटखोला स शेवड़ाझोरा की ओर रवाना होते हैं।

यह उसे घोष मोशाय की दुकान से आगे निकल जाने के बाद यानी हाट से निकल जाने पर ही नहीं, हाट ख़ाली हो जाने पर करना पड़ता है। बहादुर

चूल्हे की आग फेंक देता है। फिर बहादुर ही धधकते हुए कोयले को चुनने में उसकी मदद करता है।

लेकिन ऐसे दो हाथ की हथेली पर आग लिए मीलों जाना बहुत मुश्किल होता है। दरअसल, कठिन होता है आग को बचाये रखना। बारिश हुई तो सब ख़त्म। फिर भी कच्चू पत्ता के नीचे आग को बचाये रखने की कोशिश जारी रहती है। अगर हवा चलती है या फिर पास से गुज़रते ट्रक की गति से हवा लगे तो कोयले का चूरा उड़ जाता है, उड़कर शरीर पर पड़ता है। इसलिए ऐसे समय में मदारी को पीठ मोड़कर हवा को आड़ में ले लेना पड़ता है। या फिर सामने ट्रक की ओर मुड़ना पड़ता है। ट्रक चले जाने पर फिर से सीधा हो जाता है, लेकिन हवा की ओर पीठ घुमा लेने पर तो रास्ते भर में आग को आड़ देने के लिए उल्टा चलना पड़ता है। इसमें काफ़ी समय लग जाता है। ऐसे में नींद आने के सिवाय मदारी को और कोई तकलीफ़ क्या हो सकती है ? उसके लिए घर जाकर आग को बचाये रखना जितना कठिन है, रास्ते में भी आग को बचाये हुए ले चलना भी उतना ही कठिन है। ऐसे ही आग को ढोते हुए ले जाने का परिणाम बहुत कुछ हो सकता है—बुझकर राख हो जाने के सिवाय भी। हवा या ट्रक के आने-जाने से ऊपर के कोयले के चूरा में बहुत जल्दी आग पकड़ सकती है। जल्दी से आग पकड़ने का मतलब जल्दी ही राख हो जाना है। और आग अगर एकबार भीतर से ऊपर उठे तो जलते हुए कोयले की चिगारी और उसका चूरा उड़-उड़कर बिखरना शुरू कर देगा। तब उसे सब कुछ फेंक देने के सिवाय दूसरा कोई चारा नहीं होगा। एक और संकट भी होता है, इससे ठीक उल्टी प्रक्रिया से। आग अगर तुरंत नीचे की तरफ़ फैलकर नीचे के कोयले के चूरे में आँच पहुँचकर पत्ते तक में पकड़ लेता है। तब मदारी अपनी माँ से रास्ते के किनारे से कुछ पत्ते तोड़कर लाने को कहता है। नीचे पत्ते का पलस्तर और मोटा कर देता है ताकि आग की धौंक न लगे।

जिस नेशनल हाइवे पर से इस देश भारतवर्ष के किसी एक राज्य से दूसरे राज्य में माल लेकर ट्रकें रात-दिन चलती हैं—कितने ही नये-नये पुल पार कर, कितने नये रास्ते से सफ़र तय करते हुए और कितने ही नये तरीक़े से गाड़ी की गति को बढ़ाकर ट्रक चलते हैं—उस नेशनल हाइवे के स्वदेशी विस्तार के अति क्षुद्र या आणविक भग्नावशेष में पूर्वी गोलार्ध के इस रात के कुछेक घंटे के लिए मदारी अपनी माँ के साथ अरण्य निवास में लौटता है। कल से नेशनल हाइवे पर, कल ही से चारों ओर अँधेरे में रास्ता नहीं दिखायी पड़ रहा है। सिर्फ़ पैर के नीचे एहसास होता है—पानी से होकर चलने से पानी के नीचे मिट्टी को भी पैर से महसूस करना पड़ता है। मिट्टी में अगर ऐसा अँधेरा व्याप्त हो तो आमतौर पर आकाश के नक्षत्र की चमक बढ़ जाती है, इतनी बढ़ जाती है कि

लगता है, कि नक्षत्र की रोशनी पृथ्वी की मिट्टी तक पहुँच सकती है। इस मामले में वह सुविधा भी नहीं होती है। कारण, भारतवर्ष के घने इस जंगल से होकर भारतवर्ष की यह राष्ट्रीय सड़क गयी है। ठीक इसी सड़क से रात के समय माँ और बेटे गुज़र रहे होते हैं। दोनों आकाश को ढंके पेड़ों की कतार अँधेरे में और भी इज़ाफ़ा कर रही है। इन पेड़ों के घने पत्तों के बीच कहीं-कहीं से आकाश से बूटेदार रोशनी दिखायी ज़रूर पड़ती है लेकिन वह देखने में नदी का दूसरा किनारा-सा नज़र आता है। उसकी अपनी वास्तविकता के साथ इस वास्तविकता का कोई मेल नहीं। बिल्कुल मेल नहीं। बल्कि इस समय आकाश की ओर दो एकबार नज़र उठाकर देखना भी ख़तरनाक है। बाद में नज़र झुकाने से इस अँधेरे में और कुछ दिखायी नहीं पड़ता। सड़क के दोनों ओर, फॉरेस्ट के झाड़-झंखाड़ के भीतर से जो अँधेरा तिरछे होकर निकल रहा है वह बल्कि इनका कुछ परिचित है इस ठोस-ठठाये रंग में मदारी के हाथ में नारंगी रंग की एक दबी आग है। यह आग अगर शेवड़ाझोरा एक पहुँचे तो मदारी की माँ की लायी हुई सूखी लकड़ियाँ जल उठेंगी और उसके घर में पड़े एकमात्र बर्तन में मदारी झरने से पानी ले जायेगा। उस आग के धुएँ में चावल पकने की एक आदिम गंध इस जंगल के अँधेरे को अचानक कोमल बना देगी। तब यह अंधकार वैसे अँधेरा नहीं होगा। इस आग की लौ के पास बेटे के साथ माँ का एक संलाप शुरू हो सकता है। लेकिन इस संलाप तक पहुँचने के लिए एक सड़क के कुछेक मीलों तक उन दोनों को सहयात्रा की नीरवता को विभिन्न तरह की बातों से तोड़ना पड़ता है। वरना इनकी नीरवता भी प्राकृतिक हो जाती।

"ऐ माई रे।"

"हो।"

......

"ऐ माई रे।"

"हो"

......

"माई रे।"

"हो।"

"हमके भूला गइल रे।"

"का भूला गइल ?"

"लड्डू आउर निमकी—"

"के देई तोरे ?"

"घोस मसाई कहे रहे दोकान बंद करे का पहिले एक ठो लड्डू और एक ठो निमकी ले लेई कहे रहे। मुई भूल गइले रे।"

"काहे, भूल गइले काहे ?"

"तोरे ई आगी का ख़ातिर।"

"आगी का ख़ातिर लड्डू लेने का भूल गइले ? लड्डू तो मीठा लागे रे।"

"हो, खूब मीठा। गइल हाट में मुई खाए रहे।"

"सब हाट में तोरे खाए के लिए लड्डू देत है ?"

"नाहीं, ख़ाली एक ठो हाट में। तोके खिचाबो सामने हाट में।"

मदारी की माँ अपने जीभ की स्मृति में 'मीठा' स्वाद की खोज में लग गयी।

"ऐ माई रे।"

"हो।"

"बहादुर ख़ान कही रहे कि मोके चाह (चाय) बनाइबे सीखा देईं"

"का होई इसे ?"

"मोऐ नउकरी दिबे, चाह दुकान में।"

"त सीखा नाही दे काहे।"

"टेबिल त मोरे माथा के ऊपर हई"

उस अँधेरे में मदारी की माँ ने अपने बेटे की लंबाई पर पहली बार नज़र डाला। मदारी टेबिल की ऊँचाई तक पहुँच गया तो वह वहाँ नहीं रहेगा। मदारी का बड़े भाई, मदारी की माँ के आठ-दस बच्चों में से कोई नहीं रहा। नहीं रहता है। फिर मदारी की माँ जुलूस में क्यों जायेगी ?

201
मदारी की माँ कितनी बार माँ बनी

मदारी की माँ अब मदारी की माँ है वह भी बहुत ज़्यादा तो नहीं, आठ-दस साल से। इससे पहले भी वह बहुत बार माँ बनी है। कितनी ही बार कितने ही मदारी की माँ। इसका अब हिसाब करना भी मुश्किल है। यहाँ, इस शेवड़ाझोरा में मदारी की माँ कितने सालों से है यह वह खुद भी नहीं जानती। लेकिन मदारी के जन्म से पहले मदारी की माँ को पहचानते हैं ऐसे लोग मदारी हाट में अभी भी बहुत से हैं। पहचानते यानी चेहरे से पहचानते हैं—बस इतना ही। इससे ज़्यादा मदारी की माँ को यहाँ भला कौन पहचानेगा। जिन्हें उसका चेहरा याद है वे भी यह हिसाब नहीं बता सकते कि वे उसे कब से पहचानते हैं। मदारी की माँ का चेहरा ऐसा नहीं है कि उसे पहचानने वाले उससे परिचय का इतिहास याद रखें। ज़रूरत पड़ने पर याद करने के लिए याद आ जाता है। देखने से परिचित लगती है—बहुत हुआ तो इतना ही। वे भी अब याद नहीं कर पायेंगे, मदारी की माँ मदारी के

होने से पहले और किस-किस की माँ थी। अथवा उनके लिए याद कर पाना संभव भी नहीं है। कारण, वे लोग किस तरह जान पायेंगे कि मदारी की माँ के साथ जो मदारी घुमा-फिरा करता है या अकेले-अकेले हाट में आता है वह, वह लड़का ही नहीं है, जो मदारी के जन्म से पहले उसके माँ के साथ चलता-फिरता था ? तो फिर सिर्फ़ मदारी की माँ को पहचाने से ही काम नहीं चलेगा, उसके सब बच्चों-कच्चों को भी जानना पड़ेगा। ऐसा क्या संभव है ?

लेकिन मदारी की माँ को तो हर वक्त एक-न-एक बच्चे की ज़रूरत रहती है। एक निश्चित माप के पुरुष की उसे सब समय ज़रूरत है या नहीं, इसका उसे कभी ध्यान नहीं आया। लेकिन एक बच्चे की उसे ज़रूरत है। और माँ पर पूरी तरह से निर्भर ऐसे लड़के के सिवाय कौन उसके साथ रहेगा ?

मदारी की माँ का एक माप है। वह जानती है कि जब चाय के टेबल तक सिर पहुँच जाता है या ट्रक के चक्के पर भार देकर ट्रक के पीछे चढ़ सकता है या फ़िर जो पैसा मिलता है वह पूरा माँ को जब नहीं देने लगता है तो कुछ ही दिनों में वह बच्चा यह शेवड़ाझोरा छोड़कर चला जाता है। कहाँ जाता है यह मदारी की माँ ठीक-ठीक नहीं जानती। लेकिन अंदाज़न जानती है कि वे मदारी हाट से वीरपाड़ा या हासीमारा जाते हैं। वहाँ बस-ट्रक डिपो या कहीं और थोड़ा-बहुत काम सीख सकते हैं। इन सब जगहों पर मिलिट्री की बड़ी छावनी है। वहाँ चोरी की बड़े आढ़त में उसके जैसे बहुत से लड़कों को कोई-न-कोई काम मिल जाता है। वहाँ से वे लड़के एक ही तरीक़े से सिलीगुड़ी पहुँच जाते हैं। वहाँ और भी बड़ा चोरी के माल का आढ़त है। और भी बड़े-बड़े ट्रक और बहुत सारे सामान आते हैं। इसके अलावा भी रेलवे का यार्ड वैगन—यह सब भी। वहाँ से ये सारे लड़के इधर-उधर चले जाते हैं। यहाँ तक कि कोई-कोई तो नेपाल भी चला जाता है वहाँ से बहुत सारे नये सामान लाकर यहाँ ज़्यादा कीमत पर बेचते हैं। ये सारे सामान अच्छे-अच्छे लोग भी ख़रीदते हैं। कोई-कोई सामान, पहनने वाले कपड़े, छाता तो मदारी हाट में भी जाते हैं।

मदारी के पहले और कितने लड़के इस तरह बढ़ते ही या ट्रक में अकेले-अकेले चढ़ने के काबिल हो जाने पर चले गये हैं, यह उसे याद नहीं। लेकिन, इस तरह चले जाने के पहले सब लड़के लौटकर घर आना छोड़ देते हैं। शुरू-शुरू में खाने की खोज़ में घूमते हैं। फिर हाटखोला में ही सारे दिन रहना शुरू कर देते हैं। बहुत दिनों तक नहीं लौटे तो मदारी की माँ समझ जाती है कि चले गये हैं।

लेकिन लड़के के बिना तो उसका चलना मुश्किल है। इसलिए एक बच्चे की लंबाई बढ़ने के साथ ही वह दूसरा बच्चा ले आती है। ताकि पहलेवाले लड़के के खाना ढूँढ़ने या झरने के सामने अचानक से आकर रुके ट्रक तक हाथ पसार

कर खड़े होना बंद करते ही—उसके बाद वाला लड़का एक ख़ास उम्र तक पहुँच सकता है।

इतना हिसाब कर बच्चे को गर्भ में लाने के लिए एक बाप तो मदारी की माँ के पास हर वक्त होना ही चाहिये।

शुरू-शुरू में उसे कोई असुविधा नहीं होती थी। और तब वह इस शेवड़ाझोरा तक पहुँची भी नहीं थी। पहले बच्चे की उसे सबसे ज़्यादा याद है। कारण, तब तक वह नहीं जानती थी कि बच्चा भी चला जाता है और उसका बाप भी। एक नेपाली अधेड़ की परचून की दुकान थी हाट के ठीक विपरीत। उसके घरवाली या बच्चा भी नहीं था। उस दुकान के लंबे बरामदे में तब मदारी की माँ पहुँच गयी थी। वह खुद बरामदे में झाड़ू-पोंछा करती। दुकानदार एक दिन दुकान के भीतर भी झाड़ू लगाने को बोला। फिर एक दिन एक साबुन देकर बोला, भीतर कुएँ पर जाकर अच्छी तरह नहा ले। इसके बाद उसे साबुन मलकर नहाना ज़रूर पड़ा है लेकिन वह उस दिन की तरह रोमांचक नहीं था। नहाने के बाद उसने साड़ी पहनी थी। उसी रात से दुकानदार उसे साथ लेकर बिस्तर पर सोता था। बाद में उसे दुकानदार का बिस्तर छोड़कर अपने बिस्तर पर आ जाना पड़ता था। इतने छोटे बिस्तर पर दुकानदार को नींद नहीं आती थी। लेकिन उसका पहला बच्चा होने के बाद दुकानदार ने खुद एक बड़ी चौकी लाकर वहाँ लगा दी था। बच्चे को लेकर दुकानदार के साथ वह बहुत दिनों तक, कुछ साल साथ रही। दुकानदार भी बच्चे को इतना प्यार करता था कि अपने दुकान की गद्दी पर उसे बिठाकर रखता था। मदारी की माँ के समय-बोध के साथ दिन-महीना-साल का हिसाब नहीं मिलता। कितने दिनों के बाद कौन जाने दुकानदार अपनी दुकान बेचकर चला गया। एक दिन बक्सा उठाकर बोला, मैं अब चला। बच्चे को थोड़ा प्यार करके वह बस में जा बैठा। और सब लोगों ने हँसते हुए उसे विदा किया। मदारी की माँ समझ गई थी—बस तक उसका जाना ठीक नहीं है।

लेकिन वह यह नहीं समझ पाई कि दुकान के साथ वह भी एक नये मालिक के हाथ में पड़ जाएगी। पर यह समझने में भी उसे ज़्यादा वक्त नहीं लगा। नये मालिक का आदमी उस रात दुकान में ताला लगाकर उससे कह गया कि "आज रात भर रह ले, कल सुबह अपना समान असबाब और बच्चा लेकर इहाँ से चले जाना।"

इतने दिनों तक घर में रहकर, घर का खाकर उसकी सेहत अच्छी हो गई थी। नये मालिक के जिन लोगों ने उसे पिछली रात को सुबह चले जाने को कहा था उन्हीं में से एक, सहराई उराँव ने दूसरे दिन मुर्गी के बाँग देने से पहले ही आकर बोला, "चल, मेरे साथ बच्चा लेकर रहना।"

उसके घर जाकर रहने के दो दिन बाद वह समझ गयी कि यह शॉ-मिल

में काम करता है। शॉ-मिल का मालिक उस दुकान का नया मालिक है। यह आदमी पहले चाय बागान में काम करता था। वहाँ से छँटाई होकर शॉ-मिल में चला आया है। इसका घर दरमा और लकड़ियों के टुकड़े से बना है। ठंडी के मौसम में तेज़ हवाएँ लगती हैं। एक और बच्चा होने के बाद उस आदमी ने लकड़ी के छोटे-छोटे टुकड़ों से सुराग़ों को बंद कर दिया था।

पहले सहराई गया या उसका बच्चा—यह अब उसे याद नहीं।

लेकिन उस घर में काफ़ी दिनों तक रह गई थी। शॉ-मिल के मालिक ने उसे जाने के लिए नहीं कहा बारिश में, धूप में, ठंडी में वह लकड़ी सड़ने लगी। पतली-पतली लकड़ियाँ, जिनका इस्तेमाल घर के छत पर हुआ था, उसका कुछ हिस्सा सड़कर गिरने लगा। कुछ उड़ गये। घर के एक-एक हिस्से अपने आप खुलते गये। यह सब होते-होते कुछेक साल बीत गये। आख़िर इस घर में वह जब तक रही उसमें एक राजवंशी बूढ़ा जोतदार सप्ताह में एक दिन शाम के समय आता था। चाय-बाग़ान का एक बंगाली बाबू भी कुछेक दिन आया था, एक मिलिट्री भी एक दिन आया। तब से नियमित रूप से बच्चे होते गये और जाते गये। इतने दिनों में वह घर कब का टूट गया।

202
मदारी की माँ और मदारी की नींद टूटी

मदारी की माँ के घर में मदारी और उसकी माँ की नींद अलस्सुबह मुर्गी या मोर की पुकार से टूटती है। ठीक शेवड़ा गाछ के बराबर झरने के ऊपर से एक सूखे पेड़ पर मोर रात बिताता है और सुबह उन्हें नींद से जगाकर चला जाता है। गरमी के दिनों में कभी-कभी देखा जाता है और शाम के थोड़ा पहले इस सूखे पेड़ पर आकर बैठ जाता है। सूखे पेड़ को बहुत दिन पहले ही गिर जाना चाहिए था लेकिन मोर के लिए ही शायद यह गिरता नहीं, सालों-साल ज़िंदा रहता है।

और जंगली मोर—जंगली मुर्गे तो उनके घर ही आकर बांग दे जाते हैं।

सर्दी के दिनों में तकलीफ़ होती है। इस पत्ते के घर में भी सूखी लकड़ी से आग जलाना अगर संभव हो, संभव बनाना ही पड़े तो भी रात के आख़िरी पहर में वह आग बुझ जाती है। सूर्य की रोशनी इस फॉरेस्ट में सीधे-सीधे कहीं बिखर नहीं जाती। लेकिन किसी सुराग से सड़क के उल्टी तरफ ढलान पर धूप पड़ती है। वह धूप न आने तक वे लोग पत्ते का घर छोड़कर निकल नहीं पाते, पत्थर की तरह जहाँ पड़े रहना होता है वहीं पड़े रहते हैं।

अभी बारिश का मौसम चला गया है, सर्दी नहीं पड़ी है। आकाश साफ़

है लेकिन अचानक जब-तब बारिश हो जाती है। दोपहर को फॉरेस्ट के भीतर से सड़े पानी की गंध से दम घुटने लगता है। तब ज़बरदस्त गरमी लगती है। और, सुबह ओस से सभी पेड़-पौधे भींग जाते हैं। उस सर्द सुबह में मदारी जाग गया था, "ऐ माँ, चल जुलूस में जायी।"

मदारी अभी यही जानता था कि माँ के साथ ही वह जा सकता है। मदारी की माँ ने एक बार सोचा कह दे कि तूई जा, मुई न जायी। लेकिन इससे मदारी अपनी माँ से ही पहली बार जान जायेगा कि अब वह माँ के बिना भी जुलूस में जा सकता है—इतने बड़े जुलूस में। जब तक मदारी यह अपने आप न समझ ले तब तक मदारी की माँ उसे यह बात जानने देना नहीं चाहती थी। इस बार शायद, उसके हिसाब में गड़बड़ी हो गयी। एक और बच्चा पेट में न आया और वह लड़का चले जाने लायक़ लंबा हो गया। पेट तो उसका था लेकिन वह अब उस शेवड़ाझोरा में पेट में बच्चा लाने के लिए बच्चे का बाप कहाँ से लाये ? पेड़ से, जंगली मुर्गे से, मोर से तो आदमी के पेट में बच्चा आ नहीं सकता। लेकिन ऐसा भी तो हो सकता है कि उसे अब बच्चे की ज़रूरत नहीं। मदारी को बहादुर चाय बनाना सिखा दे तो घोष मोशाय की दुकान में उसे एक नौकरी मिल जाये—चाय बाग़ान की नौकरी। या ट्रक पोंछने का काम इस हाट में और भी मिल जाये। इतनी सारी बातें एक के बाद एक सजाकर वह सोच तो पाती ही नहीं लेकिन ऐसी बातें उसके दिमाग़ में या मन के चारों तरफ ज़मा होती रहती हैं।

इसलिए मदारी के आवाज़ देते ही उसने कहा, "तुई सच्चो जाई का ?"

मदारी ने सोये-सोये माँ को बुलाया। लेकिन माँ के इस जिज्ञासा को सुनकर वह हड़बड़ाकर उठ बैठा, "का कहती है माई रे ? काल हाट में कले मारा-मारी आउर ढोल पिटाई हुआ। तीन-चार ठो टरक जाई रहे। उहाँ से त सब है, के जाई का है—मारा-मारी होई—"

मदारी की माँ उठकर बैठ गयी। हँसकर बोली, "तुई मारा-मारी करिये, न मार खाइये ?

"काय मार खाई ? कउन मोर मारिबे ? घोष मोशाय के छोड़ के कउनो मोर मारिये पारबे ना। चल-चल टरक चली जाई।" मदारी घर पर ही खड़ा हो गया और उस धुँधले में मदारी की माँ यह देखकर थोड़ा निश्चिंत हुई कि मदारी अभी इस घर में खड़ा हो सकता है। मदारी की माँ सोई रही और मदारी बाहर निकल कर पेशाब करने चला गया। पेशाब करते हुए चिल्लाकर बोला, "माई रे।"

"हूँ।"

"कुहासा है। बहुत गप्पस कुहासा।"

"चल-चल आ भीतरै—"

"ई कुहासा में टरक आ सकई ?" मदारी दोनों हाथ छाती पर आड़ा-तिरछा रखकर बायें हाथ से दाहिना कंधा पकड़, दाहिने हाथ से बायाँ कंधा पकड़कर काँपने लगा। मदारी की माँ तब तक मन-ही-मन जुलूस में जाने के लिए तैयार हो चुकी थी। लेकिन वह यह समझ गयी थी—उन्हें अब रवाना होना पड़ेगा। मीलों चलकर उन्हें हाटखोला पहुँचना पड़ेगा—लेकिन इतना पहले निश्चित रूप से नहीं। वह भी जुलूस में जायेगी—यह सोचकर उसके मन में स्फूर्ति जगी, कहीं जाने की स्फूर्ति लेकिन जाने की तैयारी के लिए वे अभी भी हड़बड़ाने को राज़ी नहीं। तैयारी के लिए अभी भी बहुत समय उसके पास था।

"मुई जाई है, तू पीछे आये।" पीछे मुड़कर घर के दरवाज़े की ओर देखकर और एक बार काँपकर मदारी ने कहा।

"त मुई न जाई।" मदारी की माँ बोली।

मदारी अपनी माँ के पास आकर बोला, "अच्छा-अच्छा, मुई आ रहा, जाई तो माई ?"

मदारी की माँ ने कोई जवाब नहीं दिया।

"माई रे ऐ।"

"हूँ।"

"कब जाइ—?"

"खड़ा काए हई रे। अभी रात खतम नाई होई रे।"

"तोर जुलूस का रात में होई रे ?"

"ना रात त खतम हो गई रे। कुहासा हई चारों तरफ़ कुहासा।"

"उजाला होई दे। नई त जाई के हाट में बैइठे रहइए होई"

"कल मुई सुनी रहे कि उहाँ टरक लगई बड़ी दूर जाई के हई न। इहें देरी हो जाई तो उहें कब पहुँचई ?"

"कितना देरी लगई तुई जानी हई रे ?"

"मुई कइसे जानी ? उहाँ तिस्ता नदी के पास बाँध-बाँधने को सब मनतरी लोग आईबे। त इहाँ से जल्दी-जल्दी न जाई त कइसे पहुँचई।"

"पहुँच जाई—पहुँच जाई टरक गाड़ी कितने जोर चले हई देखी नाई ?"

"हाँ। टरक गाड़ी जोर से जाई है। देखा हई।"

मदारी चुप हो गया था। ट्रक से उसका संबंध अपनी माँ से ज़्यादा है। इस समय चुप रहकर वह ट्रक की गति की कल्पना करने लगा। उसके घर से, उसके घर के सामने रास्ते से, हाट के सामने खड़े-खड़े वह इन ट्रकों को दौड़ते हुए देखा करता था। पास से गुज़र जाये तो शरीर में ज़ोरों की हवा लगती है। कभी-कभी तो सिर घुमाकर हवा के झटके से सँभलना पड़ता है। मदारी अपनी

मॉ के पास बहुत सारे सूखे पत्तों के ढेर पर चट (बोरे) पर बैठकर ट्रकों के गुजरने का झटका सिर घुमाकर सँभालता है। सिर घुमाते ही वह पत्तों की नरम शय्या में डूब जाता है। यह उसके घर की एक गुप्त विलासिता है। सूखे पत्तों की गद्दी। पत्ते जब चूर हो जाते हैं तब कुछ फेंककर फिर से नये सूखे-पत्त बिखेर दिये जाते हैं। इससे मिट्टी से ठड ऊपर नहीं आती है। बारिश के पानी से मिट्टी भी नहीं भीगती।

करवट बदलकर मदारी ट्रक के बारे मे सोचते हुए शायद थोडा सुस्त-सा हो गया। लेकिन उसकी माँ और भी कुछ जानना चाहती थी। उसने एक बार धीरे-से पुकारा, "ऐ मदारी !" लेकिन मदारी के जवाब न देने से वह चुप रह गयी। चुप होकर बाहर की आवाज़ सुनने लगी। तेज बारिश थम जाने पर जगल के भीतर से पानी टपकने की आवाज़ सुनायी पड़ती थी। जो इस आवाज़ को नहीं पहचानते हैं उनके लिए यह बारिश का कोई दूसरा छंद था। इस आवाज़ की परिधि भी बहुत विस्तृत होती है– कितनी ऊँचाई से कोई पेड़ या पत्ता ऊपर से गिर रहा है। इस पर यह परिधि निर्भर करती है। मदारी की मॉ ने सुना—जगल के भीतर से पानी के टपकने की आवाज़ आ रही है, जो बिखरकर आगे भी बढ जाती है। ओस गिर रही है। वह और भी दो-एक आवाज़ का इतजार कर रही थी—जुलूस के लिए रवाना होने की आवाज़।

203

मदारी ने पहली बार चाय बनायी

लेकिन इतना करने पर भी मदारी और मदारी की माँ मीलो चलकर जब हाटखोला पहुँचे तब वहाँ एक बड़ा-सा ट्रक, ओस में भींगा हुआ, खडा था। लेकिन वहाँ कोई आदमी नहीं था। सन्नाटा देखकर मदारी दूर से ही बोला, "ऐ माई जुलूस चला गिया रे—"

मदारी की माँ ने कहा, "एक ठो आदमी बी नई है आउर जुलूस चला गिया ? इहाँ तो एक ठो टरक कुहासा में भीग के इहाँ खड़ा हई रे।"

मदारी ने अपनी माँ को डाँट लगायी, "तुई चुप रहा। ई टरक तो इहें रही। सिंगीबाबू का टरक है। काठ ढोहई के।"

मदारी की माँ ने कहा, "चल कहीहे बइठे। देखे आदमी आई कौ न। तोके बार-बार कह रहे कि अबीहे टाइम न होई है, टाइम न होई है।"

बातें करते-करते वे हाटखोला पहुँच गये। पहुँचते ही देखा कि घोष मोशाय की दुकान का पल्ला आधा खुला है। मदारी ने दौड़कर पीछे की ओर से देखा बहादुर ट्यूबवेल के सामने उकड़ूँ बैठकर दाँत मल रहा है।

"ऐ हो बहादुर दादा, जुलूस कब जाई ?"

मुँह के भीतर से अँगुली निकालकर बहादुर ने मदारी की आँखों के इशारे से ट्यूबवेल चलाने को कहा। इस ट्यूबवेल का हैंडिल सख़्त है। ऊपर ही रहता है। एकबार नीचे करने से झटका देकर ऊपर उठ जाता है। बहादुर का इशारा पाते ही मदारी ने दौड़कर हैंडिल पकड़ लिया। हैंडिल थोड़ा लंबा और ऊँचा है। लोगों का हाथ जिधर पड़ता है उतना छोड़कर बाक़ी का रंग काला पड़ गया गया है—इस्तेमाल करने से चिकना हो जाने के साथ काला है। लोगों के हाथों ने जितना हिस्सा इस्पात की तरह रूपहला कर रखा है मदारी के हाथ ने उस हिस्से के छोटे से भाग को ढँक लिया।

मदारी ने हैंडिल को अपने सिर से उतारने के लिए एक झटका देकर खींच लिया। लेकिन पहले झटके में हैंडिल नीचे नहीं उतरा। तब मदारी ने दूसरा झटका दिया और हैंडिल थोड़ा नीचे आ गया। मदारी अपने पेट का भार देकर उस पर झूल गया। उसके बायें पैर की अँगुलियाँ मिट्टी से लगी रहीं, दाहिना पैर शून्य में लटक गया। उसका पैंट तभी कमर से झूल गया। हैंडिल नीचे उतर गया और ट्यूबवेल से हड़हड़ाकर पानी गिरने लगा। इस ट्यूबवेल के साथ यही मज़ा है। हैंडिल एक बार चला नहीं कि एक बाल्टी पानी भर जाता है। बहादुर पानी की तरफ़ बढ़ गया कि फट दोनों हथेली में पानी लेकर पूरे चेहरे पर छींटा देकर पानी मुँह के भीतर खींच लिया। ज़ोर-ज़ोर से कुल्ला करने लगा। "आक् थू" बोलकर ज़ोर से गला खँखारा और मदारी के हाथ का हैंडिल खटाक से ऊपर चला गया।

मदारी फिर से दोनों हाथ से झटका देकर हैंडिल नीचे उतारने लगा। इस बार एक ही झटके से हैंडिल नीचे उतर आया, पेट का भार देकर वह हैंडिल पर फिर से झूल गया। अपने शरीर का भार देकर हैंडिल नीचे करके रखा। हड़हड़ाकर पानी गिरने से बहादुर मुँह धोकर थोड़ा-सा हाथ धोने के बाद उठकर खड़ा हो गया। वहाँ से बहादुर हट गया। मदारी के हैंडिल चलाने पर हैंडिल का झटका उसकी ठुड्डी या सिर पर जरूर लगता है।

मदारी की माँ तब तक पैदल चलकर सड़क पर थोड़ा हटकर खड़ी हो गयी थी—जहाँ से ट्यूबवेल सीधा दिखायी पड़ता था। मदारी की माँ इस तरफ देख रही थी—वह बायीं ओर अपनी गर्दन घुमाकर देख रही थी। इसी तरफ़ से वे लोग आये थे। यह रास्ता उसका परिचित था।

बहादुर अपनी दुकान में चला गया, पीछे-पीछे मदारी भी और मदारी की माँ सड़क से कुछ अनमने भाव से चलकर आड़ लेकर हट गयी। मदारी ने बहादुर से पूछा, "ऐ हे बहादुर दा, जुलूस कब जाई ?"

बहादुर एक छोटे-से तौलिए से हाथ पोंछते हुए बोला, "जाई रे बाबा जाई

तोर जुलूस का पंख लगा है के उड़ जाई ? आदमी लोग आइए, चा-पानी खाइए, खाना खाइए, नहा लेई, धीरे-धीरे बाल बनाइये, फिर जुलस से चलके आइये। न कि तोर जइसे सोई के उठ दउड़ा-दउड़ा चला आइये, ऐ रे।" यह सब कहते-कहते दरवाज़े के पीछे लगे एक छोटे से आइने के सामने बहादुर काफ़ी देर तक बाल सँवारता रहा। कंघी पर अँगूठा चलाकर एक आवाज़ निकाली। फिर कंधी अपने छोटे हाफपैंट के पीछे वाले पाकिट में खोंस लिया।

"ऐ हे मदारी, इधर देख। चूल्हा पर गरम पानी धरा है। चा बनेगा। तीन कप। तेरे माई के लिए एक।" कहकर दुकान के एक दूसरे कोने पर ठुँसे पोटली को उतारकर बहादुर ने एक चकमक रंगीन कपड़ा निकाला। उसका गला ऐसे तरीक़े से फाँक करके अपनी गर्दन उसमें घुसा लिया कि उसके बाल जस-के-तस रहे। फिर कुर्ते में हाथ डाला। कमर तक उतार लेने के बाद समझ में आया कि यह खूब चटक रंगों की छपाई वाली गोल गले की गंजी है।

फिर उसी आईने के सामने आकर सिर नीचा करके बहादुर खुद को देखने लगा।

"पानी तो खौल गई, ऐ हे बहादुर दा।" मदारी बुझती हुई आँच के इस चूल्हे पर रातभर उबलते पानी को देखकर बोला।

"टेबिल के ऊपर देख, मग-टग हई कि नई उसमें आधा पानी डाल दे।" कहकर बहादुर ने दुकान के एक दूसरे कोने पर लटके फुल पैंट को उतार लिया। फिर वहीं खड़े होकर फुल पैंट पहनने लगा। पहले पैंट कमर तक खींच लिया। फिर फुल पैंट को ठीक से पहनने के लिए कमर को एकबार दाहिनी ओर झुकाया, एक बार बायीं ओर, फिर सामने की ओर खींचा। कंघी को हाफ़ पैंट से निकाल कर हाथ में ले लिया। इसके बाद वह कमर का बटन लगाकर चेन खींचकर और कंघी को पीछे की पाकिट में खोंस लिया। इसी समय मदारी ने अपने पैर की अँगुलियों पर भार देकर टेबिल से मग लेकर हँड़िया से आधा मग पानी एल्युमीनियम के गिलास से निकाल लिया। दो गिलास डालते ही उसे लगा मग आधा भर गया है। उस मग के सामने से गर्दन घुमाकर दुकान के भीतर देखकर वह बोला, "ऐ हे बहादुर दा, अब क्या करें ?"

बहादुर तब अपने कमर में एक चकाचक बेल्ट लगा रहा था। उस बेल्ट को कसते हुए उसने कहा, "खड़ा रह। आता हूँ।" फिर बेल्ट को अटकाते-अटकाते वह चूल्हे की तरफ़ बढ़ आया। उसे देखकर मदारी चिल्लाकर बोला, "ऐ हे बहादुर दा, तुमी त मिलिटरी जइसा लगता हई।"

बहादुर ने एक डिब्बा लेकर थोड़ा नीचे झुककर मग में तीन-चार चम्मच चीनी डाली। फिर एक कड़ाही से एक छोटे से करछुल से दूध निकालकर मग में डाल दिया। करछुल कड़ाही में रखकर बहादुर एक चाय से भींगे जंग लगे

रंगवाले कपड़े में एक डिब्बे से थोड़ी-सी डस्ट चाय डाल कर पोटली मदारी के हाथ में दे दिया—"ई के हिला। चा रंग हो जाई तो इसको रख के चम्मच हिला देईं।"

"चम्मच कहाँ हई ?"

"टेबिल पर", कहकर बहादुर फिर दुकान के भीतर चला गया। मदारी चाय की पोटली लेकर फिर टेबिल के पास गया। अँगुली पर देकर एल्युमिनियम का एक चम्मच ले आया। उसके लिए चम्मच बहुत ज़रूरी है। मग में चम्मच की आवाज़ होते ही बहादुर का महत्त्व मदारी के लिए बढ़ गया था। आज जुलूस के मौक़े पर उसे पहली बार वह चम्मच हिलाने का अधिकार मिला था।

चाय की पोटली उस दूध-चीनी मिले गरम पानी में मिली या नहीं मिली यह देखे बिना मदारी ने चम्मच से आवाज़ करना शुरू कर दिया। बहादुर जिस तरह तेज़ी से और ज़ोर-ज़ोर से आवाज़ करके हिला रहा था उसी तरह। इससे मग हिलकर थोड़ी चाय ज़मीन पर गिर गयी। तब उसने मग को बायें हाथ से कसकर पकड़ लिया।

204
बहादुर का सजना-धजना और एक साथ चाय पीना

"ऐ हे बहादुर दा, गिलास में ढलबो ? चा ?" चम्मच हिलाकर तिप्ति मिल जाने के बाद मदारी ने पूछा।

"खड़ा क्यूँ, ढाल न, मई जाईं।" बहादुर ज़ोर से बोला।

मदारी थोड़ी देर चुप रहा। मग की ओर अपनी बनायी चाय को देखता रहा। सचमुच बहादुर के चाय का-सा ही रंग हुआ था। उसने बहादुर की तरफ़ देखा। फिर चिल्लाकर बोला, "टेबिल का ऊपर रख दिये न मग ?"

"दे रख दे।" बहादुर ने धीमे से कहा।

घोष मोशाय की दुकान थोड़ी बड़ी थी। पुआल की छत, मिट्टी की दीवार में सिर्फ़ चूल्हा और इस अलमारी रखने की जगह ठीक है। ठीक तो है लेकिन ज़मीन इतनी गंदी थी कि सीमेंट दिखायी ही नहीं देता था। दुकान में क़तारों में बेंच लगी थीं। एक बेंच ऊँची थी एक नीची—स्कूल की कक्षाओं जैसी। छत पर एक-एक जगह कुछ-न-कुछ खोंसा हुआ था। एक-एक चीज़ उतारकर बहादुर सज-धज रहा था। घर में इस तरफ पल्ला था। उन्हें खोल देने से लगता था सिर पर कोई छत ही नहीं है। हाटवाले रोज़ पीछे का पल्ला इसलिए नहीं खुलता है क्योंकि कोई पैसा दिये बिना पीछे से निकल न जाये। इस समय सभी पल्ले बंद थे। सिर्फ़ इस चूल्हे के पास वाला छोटा पल्ला खुला था। इसलिए इतनी

बड़ी दुकान के भीतर अँधेरा था। इसी वजह से बहादुर और मदारी ज़ोर-ज़ोर से बोल रहे थे।

या, हाटवाले रोज़ दुकान के भीतर से ज़ोर-जोर से बोलने की आदत अभी तक रह गयी थी।

मदारी ने दोनों हाथ से मग उठा लिया। फिर नीचे रख दिया—मग लेकर उठने से चाय छलक कर गिर न जाये इसलिये। मदारी खड़ा होकर मग के ऊपर नीचे हाथ लगाकर मग के ऊपरी कोने में दोनों हाथ लगाकर उठा। लेकिन, सीधा होने से पहले फिर नीचे झुककर मग रख दिया। किनारा पकड़कर ऐसे उठाकर वह टेबिल पर तो रख नहीं सकता। वहाँ तो उसे फिर से अँगुली ऊँची करना पड़ता है। इस बार नीचे झुककर वह मग के दोनो तरफ़ बाहर से जोर से पकड़ लिया फिर उठाया। गरम था, लेकिन चाय उसमे आधी थी इसलिए हाथ मे नही लगा। दाहिना हाथ थोड़ा फिसलकर खिसक ज़रूर गया लेकिन इसी तरह मदारी कुछेक क़दम चलकर टेबिल तक जा पहुँचा। वहाँ जाकर वह थोड़ा रुका गया फिर मग समेत दोनों हाथ अपने सिर पर उठाकर ठीक से मग को टेबिल पर रख दिया।

अपने दोनो हाथ अपने शरीर के दोनो ओर झुलाकर मदारी ने वयस्क आदमी की तरह साँस छोड़ी। फिर नाक सुड़ककर चिल्लाया, "ऐ हे बहादुर दा—"

बहादुर ने ऐसे आवाज़ दी जैसे एकदम करीब हो, "क्या हुआ रे ?"

"रख दिई, मग टेबिल पर रख दिई।"

"खड़ा रहइ, आता हई—"

मदारी ने जहाँ बैठकर चाय बनाया था उसी जगह को देखता रहा। देखा कि चम्मच वहीं पड़ा है। उसके चम्मच उठाकर टेबिल पर लाकर रखते ही खटखट करता हुआ बहादुर हाज़िर हो गया। मदारी उसे देखकर इतनी साधना से बनायी हुई चाय के बारे भूल गया। मुग्ध होकर मदारी को—उसके साज-सज्जा गोल गले और रंगीन छपाईवाली गंजी, लोहे की नाल लगा चौड़ा बेल्ट, नीले रंग का चुस्त पैंट और पैर में चकाचक बड़ा-सा जूता। बड़ा यानी, जूता एड़ी से लेकर बहुत ऊँचाई तक पैर ढँका। इस सब में बहादुर की माँग एकमात्र मदारी का जाना-पहचाना है। मदारी ने बहादुर को ठीक से पहचानने के लिए दो क़दम पीछे हटकर देखा।

बहादुर आते ही तीन काँच के गिलास मे मग से चाय डाल दिया। एक गिलास मदारी की ओर बिना मुड़े सिर्फ़ हाथ से बढाकर बोला, "तोर माई के दिया आय—"

मदारी के उसकी बगल से निकलते हुए बहादुर बोला, "खड़ा रह।"

इसके बाद मिठाई की आलमारी का ताला खोलकर घोष मोशाय की चौकी

पर रख दिया। ताले में चाबी नहीं थी, भीतर से एक प्लास्टिक का पैकेट निकालकर खोला। उसमें से एक लंबा 'कुकीज़' बिस्कुट मदारी के हाथ में देकर बोला, "जा माई के देई आ।"

गिलास और बिस्कुट लेकर दो क़दम चलने पर मदारी को एक शक-सा हुआ वह रुक गया। बिना सिर घुमाये सिर्फ़ थोड़ा-सा झुककर बोला, "चा आउर बिसकुट दूई माई को दे देई ?"

"हाँ-हाँ। आउर तोर इहे हई।" कहकर बहादुर अपनी चाय का गिलास और बिस्कुट लेकर उसी छोटे से पल्ले से बाहर निकल गया।

घोष मोशाय की दुकान हाटखोला के एकदम दक्षिण में थी। एकदम बड़ी सड़क के पास। कहा जा सकता है दक्षिण-पश्चिम कोने में। लेकिन ट्यूबवेल दुकान के दक्षिण में था। ट्यूबवेल न होता तो दक्षिण दिशा दुकान के पीछे होती। उसी ओर के पल्ले से निकलकर दुकान से घूमकर उन्हें हाट, सड़क के अंतर्गत आना पड़ता है।

बाहर आकर समझ में आया कि—अचानक बहुत सुबह हो चुकी है। कहीं कोई कुहासा नहीं है। धूप हाटखोला के विभिन्न टूट छत वाले घर और रास्ते पर पड़ रही है। हाट के ऊबड़-खाबड़ रास्ते की धूल, लोगों के पैर से उड़ती हुई धूल ओस में भींग कर नरम हो गयी है। मदारी की माँ, सड़क पर धूप में बैठी थी। सड़क पर दो-चार और भी लोग घूम-फिर रहे थे। हाटखोला के एक घर के पास दस-बारह लोगों की एक भीड़ धूप में खड़ी थी।

ऐसी ही खुली जगह से, इतने लोगों को पार करके, इतना चलकर मदारी अपनी माँ को चाय-बिस्कुट देगा—यह बड़ा अटपटा-सा लगा। ठीक लगता है या नहीं, यह विना देखे-समझे मदारी घोष मोशाय की दुकान से इस तरफ़ आकर अपनी माँ को इधर-उधर ढूँढ़ते हुए अजीब-सा महसूस करने लगा। ऐसा उसे क्यों लग रहा था यह वह भी नहीं जानता। इसलिये अपनी माँ को ढूँढ़कर चाय का गिलास और बिस्कुट लेकर उसकी तरफ़ बढ़ गया।

माँ को चाय देकर मदारी बोला, "मुई बनाई हई, बहादुर दा मुई के सिखाई देई है।"

चाय लेकर मदारी की माँ बोली, "टेबिल ?" जैसे यह जानना उसके लिए सबसे ज़रूरी था कि अचानक आज जुलूस वाले दिन की सुबह मदारी का सिर चाय बनाने लायक़ टेबिल तक क्या पहुँच गया ?

मदारी हँसकर बोला, "ना, माटी से। जहाँ चूल्हा हई उहें माटी त हई।" वह माँ को उस दुकान का ठीक-ठीक खाका खींचकर बताने लगा।

मदारी की माँ ने बिस्कुट उसकी तरफ़ बढ़ा दिया। मदारी कमर में दोनों हाथ रखकर बोला, "ई ठो तोर, बहादुर दा देई रहे। तुई खा न माई बहादुर

दा देई रहे बिस्कुट आउर मुई बानाई हई चा। खा न माई" माँ का चाय पीकर देखना ही जैसे उसका मुख्य काम है ऐसे वह अपनी बात पर अड़ गया।

मदारी की माँ ने चाय में बिस्कुट भिगोकर मुँह से काट लिया और उसका मुँह चाय के तरल स्वाद से भर गया। वह स्वाद सहज ही ख़त्म नही हो गया। मुँह का जायका बिस्कुट के नरम लेकिन अखंड टुकड़े में बदल गया। उसने चबाया नही। मुँह के सभी हिस्से-तालू, मसूड़े दाँत, जीभ के दोनों किनारे और नोक से उस नरम अखड टुकडे का स्वाद ले रही थी। बहादुर ने हॉक लगायी, "ऐ हे मदारी, अपन चा लेई जा।"

उसी भीड से एक आदमी ने पूछा, "चा मिल जाइ ?"

बहादुर ने हाथ उठाकर घोषणा की, "आज जुलूस हई दुकान आज बद हई।"

205

हाटखोला में नाच-गाना

सुबह आठ-साढे आठ बजे पूरे हाटखोला का 'कमाड' बहादुर के कब्जे मे आ गया।

तभी से लोग जुटने लगे थे। सड़क से क़तार में चलकर लोग तो आ ही रहे थे, सड़क के अलावा भी झुड मे लोग वहाँ पहुँच रहे थे। हाटखोला के उत्तर की ओर से गाना गाते-गाते देवपाडा बागान की महिला-मजदूर फॉरेस्ट से आ रही थीं। उनके पीछे ढोल बजाते हुए मर्द। महिलाओ ने बालो मे फूल लगा रखा था—जो भी फूल सामने मिल गया, लगा लिया। दो-एक के सिर में चाय की पत्तियों का गुच्छा भी था। वे लोग नदी, टीला और फॉरेस्ट पारकर आ रहे थे यह उनके पैरों की तरफ देखने से ही पता चलता था। लेकिन हाटखोला पहुँचकर भी उनका नाचना बंद नही हुआ था—बल्कि फॉरेस्ट से आते हुए इन्हे नाचने की जगह ठीक-ठीक नही मिली थी। इसके अलावा ठीक समय पर हाटखोला पहुँच जाने की हड़बड़ी भी थी। अब यहाँ पहुँचकर जब देखा कि अभी समय है और हाटखोला में काफ़ी जगह भी है और उनके पैरों में नृत्य की थिरकन भी काफ़ी थी—इसलिए वे लोग गाने-नाचने लगे। और उनके पीछे मर्द ढोल बजाने लगे थे। और झूमते थे, झूमते थे और ढोल बजाते थे। एक अपने साथ बाँसुरी भी ले आया था। लेकिन इतना हड़िया पी चुका था कि बाँसुरी को होंठ से लगा ही नहीं पाता था। बाँसुरी को होंठ में लगाने जाता था तो कभी वह ठुड्डी में तो कभी गाल में, यहाँ तक कि एक बार तो गले में लग गयी। लगाने के बाद फूँक भी बाँसुरी में देता था। जब नहीं बजती थी तो बाँसुरी को उठाकर ठीक

से देखता था। फिर से उसे होंठ में लगाने की कोशिश करता था।

देवपाड़ा दल के साथ जाने कब हामीरपाड़ा, खेयरबाड़ी मुतामबाड़ी में मज़दूर जा मिले—यह किसी को ख़बर ही नहीं हुई। एक दल के ज़्यादा बड़ा हो जाने पर दूसरा दल बन जाता। उनके ढोल बजते ही रहते थे, बजते ही रहते थे। बूढ़तोरसार चर से संथालों का एक झुंड आया था, ये लोग चाय-बागान के किसी को भी पहचानते नहीं थे लेकिन उनके नाच और ढोल से परिचय था—वे भी इन्हीं के साथ नाचने लगे थे। लगता था—आज हाटखोला में नाच-गाना होगा—ऐसा कार्यक्रम था।

आस-पास के गाँव से राजवंशी भी आ गये थे। उन लोगों ने भी अपना सबसे साफ़-सुथरा कपड़ा पहन रखा था। महिलाएँ और बड़े-बूढ़े पुरुष नहाकर ही आये थे—और नहीं तो सिर-मुँह में तेल लगाया था। वे नाच नहीं रहे थे—गोल होकर नाच देख रहे थे।

बहादुर ने एक डंडा भी जुगाड़ कर लिया था। डंडे से वह नाच देखनेवालों को लाइन में रखने में व्यस्त था। वह मिलिटरी की तरह लंबे-लंबे डग भर रहा था। बच्चों को उसने बिठा दिया था। लड़कियों को किनारे एक तरफ़ हटा दिया था, बिना बात के "ऐई पाछे जा, ऐई पाछे जा" कहकर चिल्ला रहा था। ये सब बहादुर को जानते थे। इसलिए उसका यह बदलाव सबसे नाटकीय दिखता था—नाच और ढोल वे अक्सर देखते ही थे।

भीड़ में से कोई चिल्लाकर बोला, "ए हे बहादुर, घोष मोशाय बुला रहइए हई।"

बहादुर उसकी तरफ़ डंडा उठाकर बोला, "आज दुकान बंद, आज जुलूस हई।"

अचानक हो-हल्ला मच गया, सबने देखा कि तीन ट्रकें आकर खड़ी हो गयीं सड़क पर। उसमें महिलाएँ-पुरुष भरे थे। एक झंडानुमा भी कुछ लगा था। नाच देख और ढोल की आवाज़ सुनकर वे लोग ट्रक पर ही नाचने को उद्धत हुए थे। बहादुर दौड़कर उनके पास गया। एक ड्राइवर सामने की सीट से ही गर्दन निकालकर कुछ पूछा। बहादुर ने जवाब दिया, "टरक तोइहे नहीं आइसे। आइसबे, टाइम होई गिछे।" वह ट्रक आवाज़ करते हुए चली गयी। बहादुर पीछे से ट्रक के पास गया। और ड्राइवर से बोला, "चली जाई, मोइरा जाइछे—" तीसरे ट्रक को हाथ उठाकर रुकने के लिए बोला। फिर सड़क पारकर डंडा उठाकर उसे जाने का निर्देश दिया। उस ट्रक के चले जाने पर बहादुर चिल्लाकर बोला, "हंटूपाड़ा टी इस्टेट चली गेई छे, अब लंकापाड़ा आई के हई"

"त तोमरा कब आइए, हे बहादुर ?" बूढ़ा-सा एक छोटा-मोटा आदमी आकर पूछा।

"उमरा में सब बागान के लोकजन्न अपने टरक में बइठ रहइ, अबै इस्टाट दे देईहे। आउर तुमार इहे कुद कनटरक्टर के टरक गाड़ी दिबे। छाड़िइए। तब बाद में तुमर लोगन के जुलूस में ले जाईं हो सइके, पोंक-पोंक करी मुखमनतरी आइए आउर मोर बनमनतरी बी रहइए। सब हमरा जिलाई जाईं देखिय, बाँस खड़ा रहए—मनतरी ओ नई, तिस्ता ओ नई "तोसार मानिस तिस्ता नई रे, तिस्ता नई"—गाते हुए बहादुर नाच वाले दल के पास चला गया। जो लोग खड़े-खड़े देख रहे थे उनकी भीड़ थोड़ा-सा रास्ता देने के लिए अलग हो गयी। पीछे से बहादुर चिल्लाकर बोला, "ऐ हे लाइन ठीक करह रख। लाइन ठीक बना रे। ऐ अनठेटरे के दल, मारबे एक ठो, बस। टरक आसिबे त सब लाइन से उठइए—वन, टू-थिरी।"

यह भीड़ देखकर लगता था कि जुलूस एक ही होगा और इसी में कामतापुर, उत्तराखंड, गोरखालैंड के दो-चार लोग इधर-उधर होंगे। ऐसे मे उन्हे ढूँढ़ा भी नहीं जा सकता। यहाँ तक कि उत्तराखंड या गोरखालैड के लोगो को सरकारी इंतजाम में जाना ज़्यादा सुरक्षित महसूस हो सकता है। यहाँ, इस हाटखोला में उस भागा-भागी को लेकर कोई उत्तेजना नहीं थी। एक-दूसरे पर शक की नज़र भी नहीं थी। जो उत्तेजना और संदेह वोट के दौरान होती है।

पंचायत चुनाव ही हो या लोकसभा चुनाव। पेड के नीचे सिर्फ़ दो अलग-अलग आफ़िस ही नही बन जाते। एक-एक वोट केन्द्र मे मात्र सात सौ-आठ सौ वोटर में बहुत हुआ तो तीन-चार सौ वोट देते हैं। लेकिन उन्हीं कुछ वोटरों की पसंद-नापसंद पर नियंत्रण करने के लिए पूरे इलाके मे तनाव-उत्तेजना रहती है। कभी-कभी तो हिंसा भी हो जाती है। यह उत्तेजना और तनाव हमेशा दबी नहीं रहती, ख़ासकर चाय बागान में खुलकर सामने आ जाती है।

और फिर इस सबके साथ तिस्ता बैरेज के उद्‌घाटन के घटना का कहाँ संयोग है यह जानने का सवाल कामतापुर-गोरखालैंड-उत्तराखंड-नमशूद्र समिति के साथ नहीं है, वे लोग जानते भी नहीं हैं।

लेकिन न जानते हुए भी चाय-बागान आंदोलन या जमीन को लेकर होनेवाली गड़बड़ियों से सरकार और सरकारी पार्टियों के सबंध मे जो मानसिकता तैयार हुई है—उसके ज़रिये ये लोग अपनी भूमिका ठीक समय पर तय कर ही लेंगे।

आठ बज जाने पर धूपगुड़ी के भट्टाचार्यो की दो बसे और सिंह जी का एक विशाल ट्रक आकर रुक गया।

206
बस-ट्रक में जुलूस चढ़ गया

शुरू में बस और ट्रक दोनों सड़क पर आने लगे। ड्राइवर ने मुँह बढ़ाकर लोगों से पूछा।

तब बहादुर जहाँ नाच हो रहा था, वहाँ था। भीड़ के पीछे। शायद, वह भी थका-सा महसूस कर रहा था। वह बस और ट्रक को सड़क पर लगते देख दौड़कर उधर गया—दाहिने हाथ में डंडा उठाये हुए। उसके पीछे-पीछे बच्चों का एक झुंड भी दौड़ा। तब तक दोनों बसों के छोकरे सड़क पर उतर आये थे और ट्रक को पीछे आने का इशारा करने लगे। और बस के बॉडी में हाथ मारने लगे। पीछे की ट्रक का छोकरा ट्रक से ही ड्राइवर के केबिन की छत पर पहले ज़ोर से एक हाथ मारता, फिर धीरे-धीरे मारकर निर्देश देता था। ट्रक थोड़ा पीछे आ गयी फिर सड़क के विपरीत पीछे का चक्का चलने लगा। इस बीच दूसरी बस भी पीछे हट गयी।

बहादुर सड़क और हाटखोला के बीच डंडा लेकर खड़-खड़े चिल्लाकर बोला, "बस-बस, ठीक हई, सीधा, सीधा, सीधा—"

ट्रक और दोनों बसे तब तक सड़क में पीछे घूमकर ऐसे खड़ी थीं कि एक-एक कर हाटखोला के सामने की जगह में भी आकर घुस जायेंगी। बहादुर डंडा ऊँचा करके बच्चों के झुड को भगाने लगा, "ऐई हट्, हट्, हट्, हट्, हट् बस जाई के रास्ता देई हट् जा हट् जा।"

ट्रक और बसें सचमुच बहादुर के निर्देशन को मानकर अपना मुँह ठीक तरफ कर लीं। फिर सड़क की ढाल पर आकर खड़ा हो गया और पहली बस धीरे धीरे हाटखोला में चली आती, धीरे-धीरे रुक गयी। ड्राइवर खिड़की से सिर निकालकर पीछे कुछ देखा फिर थोड़ा बढ़ गया।

पीछेवाले बस और ट्रक जाकर रुक गयी, नाचनेवाले एक-दूसरे का हाथ उस समय छोड़ चुके थे। और ट्रक ओर वस की ओर दौड़ने लगे। गाँव के राजवंशियो की भीड़ नाच में शामिल नही थी। इन बस और ट्रकों के चारों ओर वे बिखरे पड़े थे। उनके कुछ समझने से पहले ही नाचनेवाली लड़कियाँ उसकी बगल से दौड़कर बस और ट्रक में चढ़ गयीं। फिर वे लोग बैठने की एक-एक जगह मिल जाने की खुशी में हँसने लगीं। जब जिसको जगह मिल जाती वह हँसने लगती। अकेले-अकेले नहीं, एक साथ। एक साथ जगह उन्हें नहीं मिलती। इसलिए कुछ देर हँसी की आवाज़ आती थी और फिर रुक जाती थी। मीलों चलकर आने ओर घंटों नाचने के बाद दौड़कर बस में चढ़ने से उनकी हँसी में हाँफ कर साँस लेने की निश्चिंतता झलक रही थी।

इन लड़कियों के बस-ट्रक में चढ़ जाने के बाद बाकियों की समझ में आया कि उनलोगों ने अच्छी जगह पर कब्ज़ा कर लिया है। तब गाँव के दूसरे लोग, बच्चे-कच्चे, बूढ़े-बूढ़ी भी दौड़कर बस और ट्रक में चढ़ने लगे। चढ़ते हुए एक-दूसरे से धक्का खा रहे थे। एक का छाता दूसरे के पेट में लग गया। किसी के हाथ से बच्चा छूट गया—बच्चा ज़ोर-ज़ोर से रोने लगा।

और बहादुर अपना डंडा उठाकर पहली बस के सामने खड़ा हुआ, "ऐई ख़बरदार, सावधान, लाइन लगा के" —एक ही बात कहते-कहते दूसरे बस के सामने और फिर ट्रक के सामने जाकर उछलता था।

तब तक पुरुष बस की छत और ट्रक के भीतर चढ़ने लगे थे। ट्रक के भीतर तब भी थोड़ी जगह थी।

इस बीच फिर बस व ट्रक के भीतर से बुलाने की आवाज़ आयी। हर कोई अपने-अपने लोगों के लिए जगह रखकर उन्हें बुला रहा था। एक ही घर के लोग एक साथ बैठना चाहते थे। एक मुहल्ले के लोग भी एक ही साथ बैठना चाहते थे।

लेकिन गाड़ी में चढ़ते समय कोई पीछे मुड़कर नहीं देखता था—तब हर कोई अपनी ही तरह से अपने लिए जगह पर कब्ज़ा करने में लगा हुआ था तब बस के बाहर-भीतर से इस तरह की आवाज़ें सुनायी पड़नी थीं—

"ऐ ऐई माई रे, इहाँ चढ़ी आ।"

"काका रे, ऐ ओ काका। काका रे।"

"ऐ हे बहादुर, बहादुर, मोर बेटी नई चढ़ी, देखी तो।"

"सरककर जरा बैठी। हट जा ज़रा। आउर लोग बैठीन।"

"अबही उठी आउर अबहे उतर जाई।"

"आरे, चढ़ी दे, चढ़ी दे। मोर बहिन हई न, उठी दे।"

"जोन जिहाँ बैठे हैं बइठे रही, उठी न रे। बइरेज में जाई के खोज लेई।"

लेकिन इतने बस के बाद भी दो बस और एक ट्रक में जगह कम पड़ रही थी। अभी भी बहुत से लोग बाहर खड़े थे। उनमें बच्चे थे, बूढ़ी औरतें थीं, कुछ धोती-शर्ट पहने लोग भी। कुछ के हाथ में छाता था। देउनिया भी थे जिनके लिए बस की छत पर चढ़ना संभव नहीं था।

सड़क पर दो शहरी लड़के जो अब तक खड़े थे उनके बारे में किसी को ध्यान ही नहीं था। अब वे आगे आ गये तो समझ में आया कि ये लोग इसी बस-ट्रक के साथ आये हैं। वे आकर ट्रक के पास खड़े होते गये। एक लड़का चक्के पर से ऊपर चढ़ गया, और धमकाना शुरू कर दिया, "क्या तुमलोगों के ही बैठने से होगा कि और कोई चढ़ेगा ? चलिये, ज़रा खिसककर बैठिये। आगे बढ़ जाइये, बढ़िये आगे। देखें, ओ बूढ़ी माई, आप इस कोने में आ जाइये। हाँ,

इस कोने में अब धक्का नहीं लगेगा—"

लड़के ने बूढ़ी औरत को पीछे से पकड़कर कोने में बिठा दिया। तभी हल्की-सी हँसी की फुहार सुनायी पड़ी। लड़के ने कहा, "हॉ हँसते-हँसते आगे बढ़िये। खिसकिये।"

लड़कियों के संबंध में उसके स्वाभाविक सम्मान के कारण वह उन्हें हाथ से ठेलकर नहीं हटा पा रहा था। लेकिन "खिसकिये, थोड़ा खिसकिये," कहते-कहते वह जिस तरह आगे बढ़ता था इससे उसके घुटने के धक्के से सचमुच लोग खिसकते जाते थे।

अचानक वह लड़का गर्दन बढ़ाकर नीचे खड़े लड़के से बोला, "बस के भीतर बच्चों को गोद में देकर बिठा दो। थोड़ी जगह निकल जायेगी।"

यह लड़का ट्रक के ऊपर एक-एक बच्चे को उठाकर पूछ रहा था, "यह किसका बच्चा है।"

बच्चे की माँ के "ऐई सुनिये, सुनिये" कहते ही सब हँसने लगते। ख़ासकर बागान की लडकियाँ। वे लगातार हँस रही थीं। बागान में काम करने के कारण शहरी या पढ़े-लिखे लड़कों से बातों का मतलब और तरीक़ा वे कुछ कुछ जानती थीं।

इधर दूसरा लड़का बस की खिड़की से चिल्लाकर बोला, 'बच्चों को गोद में ले लीजिये। गोद में लीजिये।" फिर बहादुर को बुलाकर बोला, "बच्चों को गोद में बिठाने के लिए कहिये। और उन बच्चों को बस में चढ़ा लो"—कुछेक बच्चों को मैदान से खींचकर उसने बहादुर के सामने बढ़ा दिया। लेकिन उसके वहाँ से हटते ही बच्चे अपने बाप-काका, माँ-मौसी के पास दौड़कर चले गये। हाँ, तब तक बहादुर बस की खिड़की से डंडा डालकर निर्देश देता, "ऐई छौड़ा, सीट छोड़ देई, अपन माई के गोद में बइठ जा।"

तब ट्रक के पीछे थोड़ी जगह बन जाती। वहाँ देउनियानुमा कुछ लोग और लड़कियाँ बैठ सकती हैं।

207

मदारी-माँ का ट्रक में आरोहण

मदारी की माँ कहीं भी नहीं चढ़ सकती। मदारी कहीं भी चढ़ सकता है। लेकिन माँ को छोड़कर चढ़े कैसे।

जुलूस का मतलब दल-बल के साथ जाना। घर के लोग दल बाँधते हैं, बस्ती के लोग दल बाँधते हैं, बागान के लोग दल बाँधते हैं। कोई छूट जाय तो पार्टी के लोग ही उन्हें बुलाकर ले जाते हैं।

लेकिन मदारी की माँ का दल बाँधना तो उस छोटे से लडके के साथ ही होगा। उसका तो यहाँ कोई परिचित भी नहीं है जो उसे 'मदारी-माँ' कहकर बुलायेगा। वह सब की तरफ़ न जाकर ट्रक की ओर दौड़ती तो उसे जगह मिल भी जाती। लेकिन बस में तो उसे बैठने की जगह मिली भी थी। एक सेहतमद लड़कानुमा लडकी ने उसे डाँट कर कहा, "ईह त धूपगुडी के भट्टाचारजी का बस हई। हमलोग का लिए भेइजा हई। तू काहे उठी। उतर-उतर।"

मदारी की माँ ने उसकी बात को सच जरूर मान लिया पर उतरी नही।

वह महिला थोडा पीछे हटकर चिल्लाना शुरू कर दी, "ऐई विसबास, देख तू ईहाँ कउन बइठी हई ?" फिर मदारी की माँ की ओर मुँह करके बोली, "उतर-उतर। उतर सीट से।" इस बार मदारी की माँ का हाथ पकडकर खीचने भी लगी।

"ऐई उठी न काहे, तू लोग जिहाँ से आये उहे जाओ। हमलोग के बस में को चढी हई एई उठी आउर उतर जा"—मदारी की मा के दोनो तरफ से यह सब बात सुनायी पडने पर भी वह जरा भी नही हिली। लेकिन आसपास की महिलाओं का समर्थन पाकर वह महिला मदारी की मा का हाथ पकडकर ऐसा झटका दी कि मदारी की माँ उठ जाये। महिला का यह हिसाब ठीक नहीं बैठा। थोडा और खीचने से मदारी की माँ उठ जायेगी। ऐसा सोचकर उसने खीचना शुरू कर दिया। लेकिन उसके पहली बार आधा-अधूरा खीचते ही मदारी की माँ उठ गयी। महिला धड़फडा कर पीछे गिर गयी। लेकिन बस मे इतनी भीड थी कि अगर कोई गिरता है तो या बच्चो के ऊपर गिरेगा या बेच पर बैठे लोगो के ऊपर। महिला के गिरते ही "हे ऐ माई रे" की आवाज़ के साथ चीख़ने-चिल्लाने का शोर मचते ही मदारी की माँ बस से उतर गयी और उस महिला को पीछे बैठी लड़कियों ने धक्का देकर सीधा करके बस में खडा कर दिया। बस के भीतर तो खड़ा हुआ जा नहीं सकता। महिला के सिर पर चोट लगते ही सिर पर हाथ टेकर अपने पैरों पर वह सीधा खड़ी हो गयी। घूमकर मदारी की माँ की खाली जगह में बैठ गयी।

मदारी ने बस के बाहर माँ से पूछा, "माई रे, उतर काहे गइले ?"

मदारी की माँ ने धीरे से कहा, "मोका उतारी देए, का करी।"

"काहे उतार दिहिं ?" मदारी ने अपनी माँ के सामने आकर उसके पेट पर हाथ रखकर पूछा।

"सब के उतरी दिये—कहिछे ई बस हमलोग के न लेई जाई।" मदारी की माँ ने उदासी भाव से बेटे की तरफ़ देखकर कहा। जैसे मदारी उसे उतार देने का तर्क समझता हो। जुलूस का मायने तो सब का एक साथ मिलकर जाना है। मदारी की माँ तो वहाँ सचमुच अकेली है। उसका कोई दल नहीं है। जिनका

अपना दल है वे उसे नहीं भी तो ले सकते हैं। मदारी की माँ किसी बस्ती में भी तो नहीं रहती—बस्ती के लोग उसे देखकर समझते हैं कि वह बागान की है। कोई अगर उसे बात भी करता है तो क्या वह, गाँव के लोग समझते कि वह उनके ही दल की है ? सिर्फ़ बात सुनकर ही वे मान लेते ?

मदारी ने घबराकर पूछा, "तुई जुलूस में न जाई ?"

मदारी की माँ ने थोड़ा हँसकर कहा, "कइसा जाई ? कोई बस नई रे।"

मदारी अचानक उतावला होकर उसका हाथ पकड़कर खींचने लगा, "चल मोरा ई बस में ही जाई—"

मदारी की माँ उसके साथ चलने लगी। लेकिन उस बस के पीछे के गेट में लोग झूल रहे थे। वह भी बस चलने से पहले। खिड़की से बागान की लड़कियाँ थोड़ा-सा झाँक रही थीं। मदारी उनकी ओर देखकर बोला, "ऐ हे दीदी, मोर माई के ले लेई ऐ दीदी, मोके नाई लेई मोर माई के ले लेई।"

इतने शोरगुल में मदारी की बात किसी के कानों तक नहीं पहुँची। लेकिन एक लड़की हाथ बढ़ाकर बोली, "रे ई बस त बागान के हई, उई टरक में चढ़ी जा न रे।" उसने अँगुली से इशारा करके दिखा भी दिया।

मदारी की माँ को देख बागान की लड़कियों ने सोचा, गाँव से आये हैं।

माँ का हाथ पकड़कर खींचते-खींचते मदारी ट्रक की ओर दौड़ा। वह दौड़ा इसीलिए उसकी माँ को भी थोड़ा दौड़ना पड़ा। फिर पहले बस को पारकर ट्रक के पास जाते ही मदारी ने देखा कि बहादुर डंडा हाथ में लेकर बस पर लोगों को चढ़ा रहा है।

"ऐ हे बहादुर," एक हाथ से माँ का हाथ पकड़े और दूसरे हाथ में बहादुर का बेल्ट पकड़कर मदारी खींचने लगा, "ऐ हे बहादुर ऐ—"

बहादुर सिर बिना घुमाये चिल्लाकर बोला, "रुक जा," फिर बस की सीढ़ी के बीचोंबीच जो आदमी चढ़ रहा था, पर बस के छत पर पैर रखने की जगह नहीं मिल रही थी, उसके पीछे डंडे से कोंचकर बोला, "उठ न, उठ न रे, उठ !"

आदमी मुश्किल में पड़ गया, उसने सचमुच पीछे से डंडे का कोंच खाकर बस की छत पर एक पैर जल्दी से रख दिया। उसका पैर एक आदमी के बदन पर पड़ा, उसने "कऊन है रे" कहकर पैर हटा लिया। लेकिन पैर छत पर ही जा पड़ा। वह आदमी घुटने के बलपर चढ़ गया फिर बहादुर से बोला, "पीछे डंडा काय मारता हई रे ?"

बहादुर नीचे से चिल्लाकर बोला, "जाई न, भीतर जाई।"

वह आदमी तब भी घुटने के बल पर ही था। वह पैर पर बैठने लगे तो खिसककर गिरने लगेगा। लेकिन सामने भी बैठने की जगह नहीं थी।

बहादुर ने "चढ़ जा" कहकर डंडा घुमाकर पीछे मुड़ते ही मदारी को देखा।

देखकर चिल्लाकर बोला, "क्यूं रे अबी तलक उठा नई रे ।"

मदारी बहादुर की ओर मुँह उठाकर बोला, "मोका उतार देई माई के बी। मोर जाई के बस नहीं रे—"

"काय उतार देई छे ?" बहादुर चिल्लाकर बोला। लेकिन तब तक उधर का बस स्टार्ट हो गया। इस बस का क्लीनर गाडी पर जोर-जोर से थाप मारने लगा। बहादुर चौंककर बोला, "हो गिया रे, हो गिया। बस इसटाट हो गईछे, चल च-ल।"

कहते ही बहादुर डडा बाये हाथ में लेकर दाहिने हाथ में मदारी का हाथ पकड़कर खींचने लगा। बहादुर के खीचने से मदारी और उसकी माँ को दौड़ते-दौड़ते ट्रक के पास जाकर खड़ा होना पड़ा।

ट्रक के पीछे का डाला तब तक बद हो चुका था। बहादुर उसी डाले मे डंडा मारकर ज़ोर से बोला "ऐ रे खोल देई आदमी आउर है। खोल देई रे, खोल देई..."

ट्रक में तब भी बहुत से लोग खडे थे। बागान के कुछ छोकरे डाले पर बैठे थे। नीचे कोई चिल्ला रहा था। लेकिन सुनने की किसी की स्थिति नही थी। बहादुर फिर मदारी का हाथ पकडकर सामने चला आया। ड्राइवर के गेट में धक्का मारकर बोला, "अरे आउर आदमी हई उठा लेइ न रे।"

उधर पीछेवाली बस तब तक पीछे चलते चलते सडक पर आकर खड़ी हो गयी थी। बस स्टार्ट अभी भी थी—समझ नही आता था बाक़ी बस और ट्रक का इंतज़ार कर रहे हैं, या फिर अभी चल पड़ेगे। बाकी बस, और पीछे नही जा रहे हैं। मैदान से ही थोड़ा-थोड़ा कर गाड़ी सड़क की ओर मुड रही थी। ट्रक का ड्राइवर सीट पर बैठकर स्टेयरिंग पर हाथ पर दिया—बस के सड़क पर आते ही वह स्टार्ट करेगा।

ड्राइवर ने बहादुर को ऊपर की ओर हाथ से इशारा किया और तभी ऊपर से वह लड़का गर्दन बढ़ाकर डॉट कर बोला, "क्या बात हई, चिल्ला क्यूँ रहे है ?"

गर्दन हिलाकर बहादुर बोला, "ई सबको छोड जाई रहे हई कोई चढ़ने नई देई रहा।"

"अब जाके समई हुआ ? लाई छोकड़ा को उठाई देई"—लड़के ने हाथ बढ़ा दिया। बहादुर ने डंडा मिट्टी में फेंककर मदारी को सिर के ऊपर उठाते ही उसने झटके से पैर ट्रक के डाले पर रख दिया। "ऊके इहाँ से उठाई," ड्राइवर के गेट के पास लोहे का पट्टा दिखा दिया उस लड़के ने।

208
ट्रक में स्लोगन और निर्जनता

ट्रक के सड़क पर आते ही लड़के ने ट्रक के ऊपर से स्लोगन दिया—"इनकिलाब ज़िंदाबाद।" इस स्लोगन के जवाब में बाकी लोग बस "ज़िंदाबाद" कहते थे। काफ़ी ज़ोर से। इसके बाद परिचित स्लोगन उठा, "वामफ्रंट ज़िंदाबाद।" 'ग़रीबों की सरकार ज़िंदाबाद।" "पंचायत क़ानून कौन बनाया, वामफ्रंट सरकार और कौन ?" "गाँव के लोगों का बंधु सरकार, वामफ्रंट सरकार।"

काफ़ी देर तक ट्रक के ऊपर से बड़े उत्साह से हाथ हिलाकर, नचाकर स्लोगन चलता रहा। जो स्लोगन नहीं जानते थे कुछ देर बाद उन्होंने भी स्लोगन में अपनी पकड़ बना ली। ट्रक तेज़ दौड़ रहा था। सिर के ऊपर से तेज़ हवायें बह रही थीं। फारेस्ट के दोनों ओर के घने पेड़ कहीं-कहीं सिर पर झुक आये थे। ख़ासकर बॉस के पेड़ से बचने के लिए बस की छत पर बैठे लोगों को एक-दूसरे की पीठ पर सिर रखना पड़ता था। स्लोगन देना खूब अच्छा लग रहा था। और इतने लोगों के गले से निकला स्लोगन इतनी तेज़ हवा में पलभर में उड़ जाता था। आवाज़ हवा भारी होने से भी रुकी नहीं रहती।

वह लड़का सारे स्लोगन को आहिस्ते-आहिस्ते सामान्य से विशिष्ट रूप देता जाता था। ये सारे स्लोगन नये थे। तिस्ता बैरेज के उद्घाटन के मौक़े के लिए तैयार किये गये थे। सरकारी पार्टियाँ कस्बों, बागानों और बस्तियों में बीते महीने छोटी-छोटी मीटिंग कर चुकी थी, स्क्वायड तैयार किया, यूनियन सभा, हाट मीटिंग, हाट स्क्वायड बनाये गये थे। इसलिये, ये नये स्लोगन कुछ लोगों को याद हो गये थे। लेकिन स्थाई स्लोगन न जानने पर भी बोले जा सकते हैं। ये स्लोगन वैसे नहीं थे। ये याद करके बोलने पड़ते थे। और अगर याद रखा जाये तो एक बोलने के बाद ही दूसरा याद आने लगता था।

लड़का ये सारे स्लोगन पहले पूरी तरह खुद ही दे रहा था। एक-एक करके। पहली बार स्लोगन देकर इशारा कर रहा था। इसके बाद सब एक साथ बोल रहे थे। फिर कुछ देर तक वही स्लोगन कंठस्थ करने के लिए बार-बार चलता रहता। इसके बाद फिर वहीं "वामफ्रंट सरकार ज़िंदाबाद", "...और कौन" ये स्थाई स्लोगन के बाद नये स्लोगन दिये जा रहे थे।

लड़का कहता, "उत्तराखंड-गोरखालैंड नेई चलेगा, नेई चलेगा।" हिंदी स्लोगन होने पर भी बागान के लोग स्वर मिलाते। गाँव वाले थोड़ा तटस्थ होकर सुनते थे यह उनका स्लोगन है कि नहीं। इसके सिवाय, यही एक स्लोगन गाँव में दिया गया था, "उत्तराखंड—गोरखालैंड नेई चलेगा, नेई चलेगा।" जो इसे जानते थे वे बाङ्ला में ही इसका जवाब देते थे। उस लड़के ने थोड़ी देर इस स्लोगन

को चलाने के बाद इसी विषय से संबंधित नया स्लोगन बोला, "उत्तराखंड अलगाववाद रोकेगे. . रोकेंगे" एक ही छद में इस स्लोगन का हिंदी रूप भी, "रोकना होगा, रोकना होगा।"

लेकिन 'विच्छिन्नता' (अलगाववाद) जैसे शब्द के कारण स्लोगन जम नही पाता था। इसके बादवाला स्लोगन हिंदी और बाङ्ला दोनों मे जमता था "बाङ्ला को पंजाब बनाना—नेई चलेगा, नेई चलेगा।"

इनके नारे देने का एक अपना क़ायदा है—वह गॉव का हो या बागान का। शुरू-शुरू मे चीख-चिल्लाकर बड़े उत्साह का माहौल कुछ छोकरे तैयार कर देते हैं। लेकिन जब भी जरूरत लगातार नारा देने की होती है इनकी आवाज़ किसी खाई में बैठने लगती है। लगभग गुनगुनाने से थोडी ऊँची आवाज़ मे स्लोगन देते हैं, देते रहते हैं, कभी न रुकने की-सी गति में चलते रहते हैं। एक तरफ जैसे वह स्वर गॉव को किसी तरह ऊँचा नहीं उठा पायेगा, उसी तरह इनके स्लोगन को रोका नहीं जा सकता है।

उस लडके ने फिर से उस स्लोगन को निर्दिष्टता देना चाहता था। वह उन स्थाई स्लोगनो को नया अदाज देकर बोला, "तिस्ता बेरेज किसने बनाया—वामफ्रंट सरकार और कौन ?" "तिस्ता बैरेज का पानी लेके नया दिन आयेगा," "पहाड़ और मेदानी एकता—जिंदाबाद," "गोरखा-राजवशी—भाई-भाई, ज़िंदाबाद-जिंदाबाद," "चा-बागान का मजदूर लोग-बस्तीवासियो का दोस्त, भूलो मत—भूलो मत।"

लेकिन इन स्लोगनो में ऐसी राजनीति निहित थी कि किसी भी नरह स्वच्छंदता नहीं आ सकती। काफ़ी देर तक नारे लगाने के बाद लडका रुक गया। पॉकेट से रूमाल निकालकर मुँह पोछ लिया। उसके रुक जाने पर भी ट्रक से स्लोगन गूँजता रहा—वह चुप हो गया था इसका पता नहीं चलने से कोई-कोई "ज़िंदाबाद-ज़िंदाबाद", "नेई चलेगा, नेई चलेगा" कहता ही जाता। दो-चार बार ऐसा कहने के बाद स्लोगन थम गया।

उन नाचनेवालों में से बांसुरी बजानेवाला इसी ट्रक में था। स्लोगन के थम जाने के बाद फैली नीरवता का फ़ायदा उठाकर वह अचानक हाथ उठाकर कहने लगा, "ज़िंदाबाद-ज़िदाबाद", फिर चुप हो गया। शायद उसे उम्मीद थी कि स्लोगन अभी कुछ देर और चलेगा। पर स्लोगन को न चलते देख उसे कुछ करने का उत्साह जागा। वह खड़ा होने की कोशिश करने लगा लेकिन दोनों पैर पर खड़ा होने के लिए ज़ोर देते ही वह लुढ़क गया। वह लड़कियों के पास बैठा हुआ था—लुढ़कते ही बागान की एक बूढ़ी औरत ने उसकी पीठ पड़ककर सीधा करते हुए कहा, "बनसी बजा रे बजा।" और सब लड़कियाँ खिलखिलाकर हँस पड़ीं। बुढ़िया उसके बाँसुरी वाले हाथ को उठाकर उसके मुँह पर देते हुए बोली, "ऐ

रे आवारा। बनसी बजा न रे। हमलोग नाच करेगी।"

यह आदमी बाँसुरी वाला हाथ हटाकर बोला, "हम बनमी नेही बजायेगा। हम देगा, बड़का लेक्चर।"

"त देई ना, लेक्चर दे, बैठक में देई झुबरू, बैठक में देई।" बुढ़िया ने धीमे-से उसको अपना समर्थन जताया।

"हाँ देगा। हमलोग इयुनियन तोड़ देगा। काहे ? न, हमलोग अब आउर ई लाल इयुनियन नेही करेगा। हमलोग सबे आदिवासी हय। आदिवासी राज कायम करने होगा। हमलोग झारखंड पाटी का मदत करेगा। समझई ? देवपाड़ा बागान में सब कोई झारखंड हो गेलका। होअले कि ना होअले,बोल, बोल न, होअले कि ना होअले ?"

वह बुढिया पीछे मे बोली, "होइले रे होइले, बस लेकचर खतम कर रे।"

एक लड़की बोली, "हे रे झुबरू खडा होके लेकचर दे।"

झुबरू अपने बाँसुरी वाले हाथ को हवा में हिलाकर बोला, "नेही, हम आउर लेकचर नेही देगा। अभी हम पसीडेंट होगा। आउर इयुनियन बाबू लेकचर देगा। इयुनियन बाबू, बोल देओ, लेचकर देओ।" कहते-कहते झुबरू सुस्त होकर पसर गया। पीछे वाली बुढ़िया ने थोड़ा हटकर उसे और पसरने की जगह दे दी। झुबरू को पूरी तरह से लेटने की जगह तो नहीं ही मिली लेकिन किसी के हाथ के पास तो किसी के पैर के पास से थोड़ी जगह लेकर अपने शरीर को फैला दिया। ट्रक पर लगनेवाली इस हवा में हल्की सी झपकी से सुबह के हँड़िया का नशा उतर जायेगा। हाँ, जहाँ उतरेगा, वहाँ पहुँचते ही अगर फिर से हँड़िया न पिये तो।

नारा थम जाने से लंबी यात्रा की थोड़ी-सी बोरियत ट्रक में उजागर होने लगी थी। बहुत दूर जाना था, इसलिए किसी में कोई उत्तेजना नहीं थी। झुबरू के भाषणबाज़ी से थोड़ा परिवर्तन आते-न-आते ख़त्म भी हो गया। झुबरू इतनी जल्दी अपना भाषण ख़त्म कर देगा यह लगभग अप्रत्याशित ही था। अब इस ट्रक के भीतर की झाँकी। ट्रक के ऊपर तेज़ हवा, बीच-बीच में पेड़ों की डाल से बचाने के लिए सिर को झुका लेना—ख़ासकर उनका जो ड्राइवर की छत पर बैठे थे, यहाँ तक कि बागान की लड़कियों की बीच-बीच में हँसी-ठिठोली की आवाज़ भी बोरियत-सी लगने लगी थी।

शुरू-शुरू में दो बसों के पीछे एक ट्रक जा रही थी आहिस्ते-आहिस्ते। लेकिन दूर तक चलने के बाद लगा—दोनों बस के लिए अपनी गति बढ़ाना संभव नहीं, और इस गति से जाने पर तिस्ता बैरेज तक जब पहुँचेगा तब वहाँ लौटने के लिए सब ट्रक बस चढ़ने लगेंगे। यह समझते ही ट्रक ड्राइवर हार्न बजाकर दोनों बसों से आगे निकल गया। तब दोनों बसों की आवाज़ आने लगी थी। हाथ

दिखाया जाता था—ख़ासतौर से बस की छत पर जो बैठे थे वे हाथ हिलाने लगे थे। तभी से ट्रक अकेले चलने लगा था।

दलगाँव पार हो गया।

209

चाय-बागान को घेर मिलिट्री

गयरकाटा के क़रीब पहुँच कर दाहिनी तरफ़ का मोड़ लेकर नेशनल हाइवे छोड़ना पड़ा। यह चामुरची का रास्ता है—बिन्नागुड़ी होकर चामुरची गया है। इस सड़क से थोड़ी दूर जाने के बाद ट्रक बायीं ओर घूम जायेगी। फिर थोड़ी दूर जाकर लैटरल रोड पकड़ेगी—दो नेशनल हाइवे को जोड़नेवाली लैटरल रोड।

यह सँकरा रास्ता था। शायद खड्डे भी यहाँ खूब थे। इसलिए ट्रक धीमे चलती थी। हिचकोले भी यहाँ खूब लगते थे। लेकिन रास्ता खाली था। जितनी भी दूर नजर जाती थी रास्ता सीधा चला गया था। कभी-कभी दूसरी ओर से बागान की ट्रक आती थी। उन ट्रको के दो-एक कुली सिर घुमाकर लोगो से भरे इस ट्रक को देखते थे। उन्हें कोई हैरानी नही होती। लेकिन ऐसे प्राकृतिक दृश्य के फैलाव के बीच लागो का यह दृश्य बहुत छोटा था। इसलिए कही कोई आदमी नज़र पड़ जाय तो उसे ठीक से देखना स्वाभाविक था।

सड़क के किनारे से गयरकाटा नदी बहुत दूर तक निकल गई है। यह नदी-सी दिखती नहीं हे। क्योकि झाड़-झंखाड़ से इसका बहुत-सा हिस्सा ढॅका रहता है। अचानक कहीं-कहीं झाड़-झंखाड़ नदारद है। खुली जगह मे नाली-सी नही दिखती है, थोड़ी ऊँचाई से मोटी धारा नीचे गिरती है और वही से पानी लेकर कोई कहीं जा रहा था। थोड़ी दूर तक खुले मे बहकर नदी फिर से झाड-झखाड़ में घुस जाती है।

लेकिन नदी का यह रास्ता देखकर कभी-कभी समझ मे आता है कि ट्रक ऊपर चढ़ रही है। पहाड़ पर नहीं लेकिन पहाड़ के नीचे से गुज़र रही है। ट्रक नदी के बहाव के विपरीत चल रही है। शायद इसीलिए ख़ासतौर पर समझ मे आता है कि ज़मीन की पथरीली ढलान से होकर नदी कैसे इतने कम पानी के साथ ऐसे सँकरे रास्ते से उछल-उछलकर बह रही है। आयतन के अनुपात में ज़्यादा गति के साथ।

मदारी ड्राइवर की छत पर दूसरे लोगों के साथ बैठा था। वह बच्चा है इसलिए उसे थोड़ा पीछे, सब के बीच में बिठाया गया था ताकि अचानक झटका लगने से वह धक्का खाकर सामने की ओर न गिर पड़े या ट्रक के गड्ढे में न गिर जाये। पीछे बैठेगा तो लोगों के सिर पर गिर पड़ेगा और साइड में बैठा

तो सीधे सड़क पर।

ट्रक-बस में जैसा होता है—चलने से पहले लगता है अब एक भी आदमी नहीं आ पायेगा और चलना जहाँ शुरू हुआ कि देखा जाता है सबको थोड़ी-थोड़ी जगह मिल गयी है। और थोड़ी जगह ख़ाली भी है। लेकिन सब कुछ एक समय के तहत ही होता है। जैसे जो ट्रक के डाले में लाइन से बैठे थे। वे डाले को दोनों हाथ से कसकर पकड़े थे और सामने झुककर ट्रक के हिचकोले को सँभाल रहे थे। ऐसे कुछ दूर तक जाया जा सकता था। लेकिन क्या यह मीलों संभव था ? गयरकाटा तक तो क़रीब बीस मील का रास्ता था, उसके बाद और कितने मील है कौन जाने। डाले पर बैठे-बैठे शरीर दुखने लगा था। पैर फैला देने का मन होता था। फैलाने के लिए जगह भी थी। लेकिन ट्रक में हिचकोले ऐसे लगते थे कि पैर फैला देने से शरीर संभालना मुश्किल हो जाता था। इस बीच दो-एक जन डाले पर से फिसल कर एकदम किनारे चले आये थे। वहाँ जगह भी बन गयी थी! कुछ लोग खड़े हो गये थे—सामने बैठनेवाले के सिर का भार संभालते-सँभालते। लेकिन ट्रक पर खड़े होकर भी झिंझोर को सँभालना था—एक लोहे की कुछ सख़्त चीज़ हो तो ठीक हो। ड्रावर के केबिन के पीछे की दीवार का सहारा लेकर जो बैठे थे उन्होंने लोहे का रॉड, जिससे ट्रक के डाले को बाँधा गया था, पकड़ लिया था।

सड़क पर ट्रक-बस की अपेक्षा मिलिटरी गाड़ी ज़्यादा थीं। ख़ाकी रंग की खाली मिलीट्री ट्रक चल रही थीं। एक जगह मिलिट्री कैंप था। वहाँ बहुत सारे ट्रक मैदान में क़तार में खड़े थे। एक तरफ़ मिलिट्री के जवान गोल होकर बैठे थे। और एक मिलिट्री का जवान कुछ बोल रहा था।

बिन्नागुडी के क़रीब आते ही सड़क का चेहरा बदल गया। यहाँ सड़क चौड़ी और साफ़-सुथरी थी। सड़क के मोड़-मोड़ पर चाय की बड़ी-बड़ी पेटियों जैसे लकड़ी के बक्से उल्टे पड़े थे उस पर एक तिकोने फ़लक पर कुछ लिखा था। यह सब बक्से और लिखावट थोड़ी-थोड़ी दूर पर दिखते थे। मैदान काफ़ी दूर-दूर तक साफ़-सुथरा था। उस पर रंगीन बाँस गड़े थे। हरे बाँस अलग-अलग रंग के। जैसे इन पर रंग तुरंत ही लगाये गये थे। ऐसे झिलमिला रहे हैं। ऐसा मैदान लगभग हमेशा ही दिखायी पड़ता है।

बिन्नागुड़ी के मोड़ पर और एक सड़क पूरब से निकलकर, जिस मदारी हाट से यह ट्रक आया उसी मदारीहाट की ओर थोड़ा उत्तर की तरफ मिलती है। यह सड़क बहुत पुरानी है। जुलूस बिना, बस यहाँ तक कि पैदल चलने के सिवाय जिन्हें वन-नदी वगैरह पार करते हुए इन सब जगहों पर, कभी पैदल चलकर कभी साइकिल खींचते हुए, घूमना पड़ा था वे जानते थे कि यह सड़क शोभाराम से होकर देबुड़ापाड़ा गयी है। वे नदी, बानगुड़ी नदी पारकर टोपाभासा जाती है।

अब यहाँ उतरकर इस सड़क से पैदल मदारीहाट पहुँचा जा सकता है। इस रास्ते पर मदारीहाट से नियमित यातायात करनेवाले लोगों में से दो-चार इस ट्रक में थे। आज इस तरह से आने-जानेवालों की तादाद कम हो गयी थी। अब बस चलने लायक बहुत सारी सड़क बन गयी है। लोग एक बस से दूसरे बस के जरिये आना-जाना करना चाहते हैं।

लेकिन बहुत दिनों से इस सड़क पर पिच डालकर चौड़ा करने की बात चल रही है। इससे बिन्नागुड़ी से हासीमारा को सीधे जोड़नेवाली एक सड़क चालू हो सकती है—एकदम सुनसान और गुप्त। बिन्नागुड़ी और हासीमारा में इन दोनों जगहों पर ज़रूरत पड़ने पर प्लेन भी उतरते हैं। अगर यह सड़क बन जाये तो नेशनल हाइवे से होकर हमेशा गुज़रने की मजबूरी खत्म हो जायेगी। बल्कि सबकी नज़र से बचकर सहज ही इस रास्ते का इस्तेमाल किया जा सकता है।

और फिर इससे सिर्फ़ बिन्नागुड़ी-हासीमारा ही नहीं जुड़ेगा। दरअसल, इस मोड़ से लैटरल रोड पकड़कर बिन्नागुड़ी तक आने के बाद जो कनवाय निकलते हैं वे सीधा हासीमारा जा सकते हैं—बिना किसी की नजर पड़े। शिवक पहाड के बाद तिस्ता के पश्चिमी पार में फॉरेस्ट के भीतर विशाल कैंप फारेस्ट के और भी अंदर बागडोगरा हवाई पट्टी के पास यह रास्ता बैंगडुबी गया है। पश्चिम में बैगडुबी और पूरब में हासीमारा-सिलीगुड़ी के पास से जलपाईगुड़ी के पूर्वी सीमा के क़रीब तक सेना के अधीन वाला क्षेत्र इससे अपनी सड़कों और वाहनों को लेकर स्वावलंबी बन सकता है। अभी बिन्नागुड़ी तक ही ये स्वावलंबी बने हैं लेकिन इसके आगे वे बढ़ नहीं पा रहे हैं। या हो सकता है, जान-बूझकर आगे नहीं बढ़ रहे हो। कहते हैं, कुछेक नदी पर ब्रिज के कारण यह रास्ता अटका पड़ा है। इस तरफ की कोई भी सड़क ब्रिज बिना या कलवर्ट बिना बनाया नहीं जा सकता। मिलिट्री चाहे तो उसे डाबडूब और सुखातिती की तरह नदी का कलवर्ट बनाने में कितना समय लगेगा ?

बिन्नागुड़ी को देखकर बहुत अच्छा लगता है। लेकिन यहाँ के फॉरेस्ट या चाय-बागान में जो घूमते हैं, काम करते हैं, यह फॉरेस्ट और बागान जिन्हें जीविका देती है अगर वहाँ कुछ नया है तो वह मिलिट्री का खाकी रंग है। बाक़ी सब कुछ उनका जाना-पहचाना है। फॉरेस्ट का रेंज ऑफ़िस, रेंजर और दूसरों का क्वार्टर भी—जो देखने में झकाझक है। ये ईट और सीमेंट के हैं और वे लकड़ी के। लेकिन दोनों तार से घिरे हैं। लकड़ी की दीवार पर हर साल रँगाई-पुताई होती है, टीन पर लाल रंग है।

बल्कि मिलिट्री कैंप बहुत कुछ चाय-बागान से दिखते हैं, फॉरेस्ट जैसे उतने नहीं। चायबागानों की दीवार ईंट और सीमेंट के हैं, छत पर लगी टीन का रंग लाल है। स्कूल, अस्पताल, फैक्टरी, ऑफ़िस, वज़न की जानेवाली जगह—इन सबके

सामने कुछ दूर तक हरा-भरा मैदान तार से घिरा है। दो-एक जगहों पर फूलों का बागीचा भी है। सड़कों पर पिच है या फिर कंकड़ बिछे हैं।

ऐसे ही दिखनेवाली चाय बागानों ने मिलिट्री कैंपों को घेरे रखा है या मिलिट्री कैंपों ने चाय बागानों को ?

210
ट्रक में निर्जनता के गीत

गयरकाटा से दाहिनी ओर घूमकर इस सड़क से होते हुए कुछ ही देर में ट्रक पर निर्जनता हावी होने लगी थी—वही निर्जनता जो दूरगामी ट्रेनों के कंपार्टमेंट में होती है। नेशनल हाइवे से होकर आहिस्ते-आहिस्ते बहुत सारी गाड़ियों को पास देना पड़ता है, उनके पास से होते हुए बहुत सारी गाड़ियाँ निकल जाती हैं, विपरीत दिशा से बहुत सारी गाड़ियाँ बदन में हवा छोड़ते हुए निकल जाती हैं। लेकिन इस रास्ते में वैसा कुछ नहीं, क़रीब अकेले ही मीलों पैदल जाना पड़ता है, मीलों। कभी-कभी बागान से मिले ट्रक और मिलीटरी ट्रक में भी वह एकाकीपन ख़त्म नहीं होता। बल्कि ऐसा लगता है कि वह इस निर्जनता से और गहरे निर्जनता में जायेगा। फॉरिस्ट के भीतर से अकेले मीलों पैदल चलने में ऐसा अकेलापन लगता है या पहाड़ से उतरने में या फिर, यहाँ तक कि चाय बागान के भीतर से होकर कहीं जाने या बारिश के दिनों में बहा ले जानेवाली सूखी नदी की धारा किसी धूल भर पत्थर पार करने में भी अकेलापन लगता है। इस ट्रक में सवार होकर जो इस समय दल-बदल तिस्ता बैरेज जा रहे थे उनमें से सब इस निर्जनता के अभ्यस्त थे। वे सब अपनी-अपनी तरह से जानते थे कि यह अकेलापन कैसे मिटाया जा सकता है। जो लड़कियाँ हाटखोला में नाच रही थीं वे एक-दूसरे के कंधे पर सिर रखकर हिल रही थीं। कोई-कोई तो परस्पर आलिंगनबद्ध थी, ऐसे ही वे ट्रक का हिचकोला सहती थीं। खुली ऑखें जिधर जाती थीं नज़र उधर ही पड़ती थी। उसी तरह कोई एक गाना गुनगुना कर गाता था तो रोने की-सी धुन लगती थी। कौन गा रहा है समझ में नहीं आता लेकिन धुन समझ में आती। वह धुन इस लंबी यात्रा में साथ देती थी।

ट्रक के इस हिचकोले में गाने की धुन टूट जाती थी। अचानक एक ऊँची जगह आयी एक नीची, लेकिन इसके बावजूद वह धुन धुन ही रही। जिसने गाना शुरू किया था उसके गले से कब किसी दूसरे ने वह धुन ले ली समझ ही नहीं आया। उसके गुनगुनानेवाली रोने की धुन में अंतर इतना कम था। लेकिन उसके बाद कभी देवपाड़ा चाय बागान की ये सब महिलाएँ एक-दूसरे की पीठ या गर्दन पर सिर रख, ट्रक में डोलते-डोलते एक साथ रोने की धुन

पर वह गीत गाती रहतीं—

मौसी, तू अब और बढ़िया कंबल मत ढूँढ़,
हर कंबल में एक ही रोआँ है,
सब रोएँ में एक ही जूँ,
सारी रात जगती हूँ और जुँएँ कुट-कुट काटती हैं,
या फिर जूँ काटती है इसलिए रातभर जगती हूँ।
मौसी, तू अब हाट से
जूँ मारने का तेल मत ला
वरना सारी रात मुझे काटेगी,
ऐसी जूँ अब मुझे कहाँ मिलेगी ?
ऐसी जूँ अब मुझे कहाँ मिलेगी ?

यह गीत काफ़ी देर तक धीमी गति से चलता रहा। कभी-कभी दस लोग उसमें अपनी आवाज़ मिला देते, कभी-कभी दसों एक ही साथ रुक जाते। नये दो लोग नयी दो लाइन गाकर छोड़ देते। फिर सभी उस आदमी पर गाने की धुन छोड़ देते। जैसे यह उनके ख़ाली समय का खेल हो—लंबी दूरी तक चलने से आलस का अनुभव जो होता है।

अचानक एक लड़की सीधी होकर बैठी और बोली, चाय-बागान की गैमेक्सीन तो जूँ को भी लग गयी है। रहने के लिए कीड़ों को पेड़ का पत्ता भी नहीं मिलता है ? हाय रे हाय, अब कीड़ा रहिये कहाँ ?

लड़की बातचीत के अंदाज़ में बोली। कहकर फिर से मातृभाषा में गाना गाने लगी। लेकिन यह भाषा सिर्फ़ सुनी जा सकती थी। उसका अर्थ इस वृत्तांत के पाठकों को उनकी अपनी भाषा में समझना पड़ेगा। पर हाय, वह लड़की तो इस वृत्तांत की पाठिका नहीं थी। लड़की के मुँह की बातों का मतलब गाने के अर्थ से ऐसा एकाकार हो गया था कि लगता था लड़की को अपनी माँ दादी, दादी की दादी को मध्यप्रदेश से बिहार तक के अरण्य पहाड़ में फैला यह गीत मिला था, उसी गीत में एक नयी लाइन जोड़ रही थी। या फिर इस ट्रक में यह पुराना गीत पुराने ढर्रे का लग रहा था। इसलिए यह गीत गाकर बोरियत भी कम नहीं हो रही थी। दरअसल इसीलिए वह यह पुराने गीत को रद्द कर रही थी इन भावों के जरिये। इस गीत को तरज़ीह देना है या उसका वर्जन, यह समझने का मौक़ा दिये बिना यह खुद भी नहीं समझती थी। लेकिन लड़कियों का झुंड एक साथ ही-ही कर हँसने लगता था। हँसते हुए वे सीधी होकर बैठ जातीं थीं फिर हँसती थीं एक-दूसरे पर लद-फदकर।

कुछ देर तक एकसाथ हँसने के बाद लड़कियों ने गाना गाना छोड़ दिया। अब उन्हें गाना गाने की बजाय हँसने में ज़्यादा मज़ा आ रहा था। फिर कुछ

ही देर में वह हँसी भी थम गयी। ट्रक में थोड़ी देर के लिए जो हवा बदली थी वह इसके हिचकोले से फीकी भी पड़ गयी। फिर से हिलना, पैर फैलाना, पैर समेटना, कोई चीज़ पकड़कर सँभलना शुरू हो गया। ट्रक फिर से उसी निर्जनता में प्रवेश कर रही थी।

राजवंशी लड़कियाँ ट्रक के पिछले हिस्से में बैठी थीं। वहाँ हल्के से गुनगुनाने की आवाज़ आ रही थी। सब गाने की धुन पर ध्यान समेटते थे। सब समझते थे कि शायद देवपाड़ा की लड़कियाँ गा रही हैं। लेकिन गाने की धुन के थोड़ा चढ़ने-उरतने के साथ समझ में आ गया कि राजवंशी लड़कियाँ गा रही हैं। गले की एक विशेष धुन से वे पकड़ी जाती थीं। देखते-देखते उस गीत के सुर में सबने सुर मिला दिया। सिर नीचे झुकाये, पसीनेवाले सिर के इस भीड़ से गीत का स्वर ऊपर उठता था। एक लड़की जो माँ की गोद में सो गयी थी उठ कर गाने लगी थी—

आकाश साफ़ हो गइले,
काला मुरगा सादा हो गइले,
कि काला मुरगा को ढाँक देई
सादा मुरगी का पखना धर
उसका कलिगा गिर गइया
आउर रात भर बाद तुमरा बखत हुआ रे विदेशिया बंधु
पान-सुपरी लेई के हमरा गुस्सा तोड़ना ?

दबी-सी रुलाई की धुन में मान भंजन का पर्व चलता ही रहा—ट्रक के हिचकोलों के साथ। लेकिन बानरहाट आते ही गुस्सा ख़त्म। दाहिनी ओर से चामरी सीधा निकल गया था, सामने बानरहाट बाज़ार था। रेलवे स्टेशन का आभास होने लगा, पैंक-पैंक करके रिक्शे गुज़र रहे थे, इसके बाद खुले मैदान में तीन ट्रक और बहुत सारे लोग, झंडा, फेस्टुन। इस ट्रक को देखकर मैदान के लोग दौड़कर सड़क तक आ गये। चिल्ला-चिल्लाकर हाथ हिलाने लगे—ट्रक की गति थोड़ी धीमी पड़ गयी। धीमी पड़ जाने से ट्रक के लोग समझ गये कि ट्रक अब रुक जायेगी। ट्रक में सवार लोग भी मैदान के लोगों की ओर देखकर हाथ हिलाने लगे।

मैदान में घुसने पर कलवर्ट पार होते ही समझ में आ गया कि ट्रक रुकेगी नहीं। तब मैदान के लोग दौड़कर आये और हाथ हिलाने लगे। मैदान से अचानक स्लोगन सुनायी पड़ा, "वामफ्रंट सरकार ज़िंदाबाद", "चलो-चलो बैरेज चलो", "बैरेज में अब क्या होगा, लहर-लहर-लहर उठेगा।"

ट्रक में से सवार लोग भी उठकर स्लोगन देने लगे। कौन-कौन-सा स्लोगन दिया जा रहा था समझ में नहीं आता। लेकिन इतने सारे लोगों के समवेत स्वर

से निर्जनता ज़रूर टूट गयी थी। वैसे बानरहाट का आधा चेहरा शहरी चेहरा है, उस पर क़तार में खड़े एक ही जुलूस के ट्रक, लोगों से भरा मैदान—सब मिलाकर हाटखोला की सुबह का दृश्य फिर से जीवंत हो उठा—सब मिलकर कहीं जा रहे थे, कुछ कर रहे थे। इस ट्रक के इतने सारे लोग अब तक जैसे अकेले थे, अब उनका वह अकेलापन जैसे ख़त्म हो गया था।

बानरहाट पार करने के बाद फिर से चाय-बागान शुरू हो गया। उसी चाय-बागान की बगल से एक नया रँगा हुआ ट्रक झिलमिलाते हुए आगे बढ़ता हुआ दिखा। ऐसे ही जैसे नदी में होता है एक नौका दूसरे नौके के साथ जाना चाहती है। ट्रकों ने भी अपनी गति बढ़ा दी। ट्रक पर लोग स्लोगन देते थे—"ज़िंदाबाद-ज़िंदाबाद।" लेकिन हवा ट्रक से उठनेवाले स्लोगन को उड़ा ले जाती थी।

211
मदारी की माँ मानुस गन्ध सूँघती है, आवाज़ सुनती है

यहीं से शुरू हो गया था। बाक़ी यात्रा में इन्हें सगी-साथी की कमी नहीं हुई। बानरहाट से सीधे लैटरल रोड की तरफ जाना था। बानरहाट के बाद उन्होंने देखा कि सामने या दूर से कोई-न-कोई ट्रक गुज़र ही रहा है। या उनके पीछे-पीछे कोई ट्रक आ रहा है। गयरकाटा से लैटरल रोड तक पंद्रह-सोलह मील की दूरी पर बानरहाट पार होकर दूर-दूर तक फैले-बिखरे ट्रकों की संख्या गिनती के तौर पर न सही लेकिन किसी और ट्रक को देखकर उत्साह तो बढ़ता ही था। वे सब ट्रक एक ही ओर जा रहे थे। सब एक ही स्लोगन दे रहे थे। किसी एक ट्रक की सवारी की दूसरे ट्रक की सवारी से अदला-बदली हो जाये तो कुछ भी फ़र्क नहीं पड़ेगा—इससे दूरियाँ नहीं रहतीं।

मदारी की माँ को बहुत अच्छा लग रहा था। वहीं बैठी थी। उस जगह देवपाड़ा की लड़कियों का ही कोना था। कोना मिल जाने से मदारी की माँ को सुविधा हो गयी थी। वह ड्राइवर के केबिन के पीछे की दीवार के सहारे बैठी थी। वर्ना, सहारा लेने के लिए उसे कोई जगह कहाँ से मिलती ? और मदारी, उसके सिर के ऊपर था—मन करते ही आवाज़ देकर वह उसका मुँह देख सकती थी। या फिर खड़े होकर उसे छू भी सकती थी।

इतने लोग, इतने सारे ट्रक, इतने जुलूस, इतनी आवाज़े इतनी बातें—इन सबका उसके लिए कोई मतलब नहीं। जैसे उसे आज के जुलूस में शिरकत के लिए कोई बुलाता नहीं वैसे ही वह आज के जुलूस में शामिल भी नहीं होती, किसी कीमत पर नहीं आती। जुलूस से उसका कोई सबंध नहीं। फॉरेस्ट के अजस्र

लता-पत्ते, गाछ, झाड़-झंखाड़ के साथ उसका सर्वांगीण और दैनंदिनी संबंध था। उस संबंध से अलग होकर इस जुलूस में आना उसके लिए संभव नहीं था। यह तो मदारी की ज़िद थी। मदारी की माँ मदारी को अकेले जुलूस के लिए जाने देना नहीं चाहती थी। अभी भी अगर मदारी जुलूस में चला जाये तो उसे दूसरा लड़का कहाँ मिलेगा ? एक लड़के के बिना उसका नहीं चलनेवाला। ठीक है, आज वह उसके साथ आ गयी लेकिन ऐसा बहुत हुआ तो दो साल, फिर तो मदारी को चले ही जाना है—हासीमारा, सिलीगुड़ी या नेपाल—तब ? तब मदारी माँ को कहाँ मिलेगा बेटा ? एक बेटा कहाँ मिलेगा ? एक बच्चा होने में साल तो नहीं लगता है, पर बच्चा पैदा करना उसके लिए क्रमशः कठिन होता जा रहा है।

मदारी की माँ को एक और बात याद आयी। वह इतनी दूर पहले कभी नहीं आयी, इतने बड़े जुलूस में कभी नहीं आयी। इतनी दूर से जब इतने सारे लोग आये हैं तो इनमें आठ-नौ-दस बच्चे तो होंगे ही, कुछ बच्चे तो होंगे ही। वे लोग भी तो दूर-दूर जा रहे हैं।

मदारी की माँ के लिए इतना बड़ा जुलूस, इतने सारे लोग, चारों तरफ़ अफरा-तफरी अर्थहीन होते भी हुए हाटखोला से ही अच्छा लग रहा था। शुरू में नहीं—जब वह और मदारी चाय पी रहे थे। लेकिन देवपाड़ा से लोगों का आ जाने के बाद से इस भीड़ में घूमना उसे अच्छा लग रहा था। हर रोज़ ही उसे सुबह से इसी तरह चलना पड़ता है, पर उसका वह चलना पेड़-पौधे, लता-पौधे, लता-पत्ते से सटकर होता था। और अगर फॉरेस्ट के भीतर जाने में कभी-कभी वह देर भी करती तो इस शेवड़ाझोरा में उसके घर में भी फॉरेस्ट की गंध उसे छोड़ती नहीं। यहाँ तक कि नींद में भी नहीं। तेज़ कसैली गंध। उसमें फॉरेस्ट की सड़ाँध भी शामिल हो जाती—सूखे पत्ते सड़े हुए, मरे पशुओं की सड़ाँध रात को पेड़ के नीचे दबे सूखे पत्तों की सड़ी गंध—सब उसमें शामिल थे। उसके साथ अमोनिया की तीव्र गंध। और मदारी की माँ को उस सड़ाँध और गंधाते परिवेश में साँस लेना पड़ता था।

वह इस गंध के बारे में सचेतन थी, ऐसा नहीं। यहाँ तक कि ऐसी कोई गंध है, इसका भी उसे ख़याल नहीं रहता। इस तरह के बेमतलब या बेसिर-पैर ख़याल उसके मन में लाने की फुर्सत उसके जीवन शैली में भी नहीं थी। लेकिन हाटखोला से इतने लोगों के बीच में घूमते-घूमते जाने कब वह हल्का महसूस करने लगी, थोड़ी राहत के साथ साँस लेने लगी। इसके बाद इस ट्रक में इतने सारे लोगों के बीच मीलों-मील चलते-चलते उसकी साँसें और भी हल्की हो गयीं, हल्की होती गयीं। उसकी जीवन शैली ऐसी नहीं कि वह दुखों की विलासिता तो पाले, उसे तो शेवड़ाझोरा का भी ख़याल नहीं आता या उसके वर्तमान मुक्ति

के दौर से वह शेवड़ाझोरा की तुलना भी नहीं करना चाहती। लेकिन उसे यह सब बहुत अच्छा लग रहा था—इतने लोगों का साथ और उनके चमड़े की गंध।

मदारी की माँ को लोगों का साथ नहीं मिलता। इस जुलूस में, इस ट्रक में इतने सारे लोग ही उसके लिए ज़्यादा अहमियत रखते थे। इन लोगों से उसे रोज़मर्रा का खाना नहीं जुटता इसलिए उसे फॉरेस्ट में पेड़-पौधे, पशु-पक्षी, नदी-झरने के साथ रहना पड़ता था। इन लोगों के बाद की गंध उसे आज़ादी का एहसास दिलाती थी। यह एहसास उसे रोज मिलनेवाली गंध से थोड़ी दूर ले जाता था। और इस दूर होने का एहसास पूरी तरह से पाने के लिए मदारी की माँ बीच-बीच में गहरी साँस लेती थी। एक भी आदमी नहीं था जिससे वह यहाँ बात कर सके। हाट के दो-चार दुकानदार आये तो मदारी की माँ के नाम से वे उसे पहचान लेते। अभी तो अकेले बहादुर ही पहचानता था या जरूरत पड़े तो बुला भी सकता था। उसका नाम लेकर बुलानेवाला इस भीड में एक भी आदमी नहीं था। इसलिए उसे चुपचाप तो रहना ही पडेगा। एक कोने में। या, हाटखोला में ऐसी भीड़ में वह घूम रही थी, यह जुलूस जहाँ रुकेगा वह वहाँ अकेले घूमने लगेगी, लेकिन साथ लोगों का मिल जायेगा।

लोगों के बदन की गध का जैसा साथ मदारी की माँ को मिल जाता था वैसा ही साथ उनकी आवाज का भी मिल जाता था। फॉरेस्ट की हर आवाज़ से वह परिचित थी। सिर्फ़ शेवडाझोरा में उसके पत्ते के घर के आसपास का ही नहीं, घर से दूर फॉरेस्ट के भीतर की आवाज़ से भी परिचित थी। इनसे उसके साँसों का भी परिचय था। फॉरेस्ट से कोई आवाज़ अकारण नहीं आती। हरेक आवाज़ के पीछे कोई-न-कोई कारण ज़रूर होता है। हरेक आवाज़ का कारण होता है, इतिहास होता है। फॉरेस्ट के पशु-पक्षी, कीड़े-मकोडे भी उन आवाज़ों का कारण जानते हैं, समझते हैं। अपने शरीर से जानते हैं। शरीर से समझते हैं। और शरीर के जरिये ही इस आवाज़ का मतलब और संबंध के मुताबिक खुद को बदलते हैं। शरीर के जरिये जिस फॉरेस्ट की आवाज़ नहीं पहचानते हैं और शरीर के माध्यम से उस आवाज़ की प्रतिक्रिया तैयार नहीं कर पाते हैं—वे फॉरेस्ट में नहीं रह सकते हैं। लेकिन मदारी की माँ तो पशु-पक्षी, कीड़ा-मकोड़ा नहीं है। उसका मानव शरीर फॉरेस्ट की आवाज़ों को हर रोज़ ग्रहण करता है, वर्जन करता है, पर इसकी भी एक सीमा है। कितने ही लाखों साल पहले मानवीय शरीर से आवाज़ सुनने का अनुभव लुप्त हो गया था, मदारी की माँ के शरीर में अब यह संचित होकर नहीं रह पायेगा। सिर्फ़ इसी के चलते गाँव शहर आदि में उसे सिर छिपाने की जगह नहीं मिली और इस फॉरेस्ट ने उसे वह जगह मुहैया कराया। सारे वानर आदमी नहीं हो पाये, उसी तरह सारे लोग गाँव-शहर नहीं हो गये। इसी तर्क के बलबूते पर मदारी की माँ अपने शरीर की धारण करने

के लाखों साल पहले के जंगल की यादों को ढो नहीं सकती। जुलूस का यह मानवीय कोलाहल उसे अच्छा लगता था। अब यही कि सब मिलकर एक बात को लेकर गीत की तरह ऊँची आवाज़ में गा रहे थे—उसे अच्छा लगता था। बरसाती नदी से भी अधिक या आसमान पर बादल से भी ज़्यादा, आकाश के घड़घड़ाने की आवाज़ से भी अधिक यह सब उसे अच्छा लगता था। इतने सारे लोगों की आवाज़, इतनी सारी बातें—उसे अच्छी लगती थीं।

रात-दिन, दिन-रात, महीनों-सालों, सालों-महीनों झींगुर की आवाज़ से झनझनाते उसके कानों को यह मानवीय समवेत स्वर एक परिचित भ्रम में डुबो देता था—जागते हुए सपना देखने का भ्रम। इतने सारे लोगों की आवाज़ें उसके इस भ्रम को तोड़ती थीं।

और, तब यह आवाज़ दूर-दूर तक फैल जाती थी। एक पहाड़ के इशारे से बीच-बीच में सामने फॉरेस्ट के पेड़-पौधे के ऊपर से कभी-कभी यह दिखायी भी पड़ता था। ट्रक के चक्के के नीचे की मिट्टी इस बीच ऊपर चढ़ाई चढ़ रही थी। अचानक कभी दाहिने-बायें थोड़ी-सी ऊँचाई से ट्रक चला जा रहा था। चाय बागान की हरियाली, मैदान की हरियाली के साथ ट्रक का हरा रंग एकाकार हो जाता था। पर किसी-किसी ट्रक पर लगा हुआ झंडा कभी-कभी चमक उठता था, साथ में लोगों के रंग-बिरंगे कपड़े भी। बीच में हरे रंग के अंतराल छोड़कर यह ट्रक दूर निकल जानेवाले उस ट्रक से काफ़ी देर तक समानांतर चलते थे।

212

पहाड़, खाई, नदी, पुल

ट्रक एक आवाज़ के साथ थोड़ी चढ़ाई चढने लगा। फिर बायीं ओर घूमते ही सामने एक साफ़-सुथरी सड़क और दाहिनी ओर हाथ के बहुत क़रीब एक पहाड़, नीला पहाड़ था। उसके सामने जो लोग बैठे थे, मदारी उनके दोनों हाथों को थोड़ा हटा कर बीच में से सिर घुसा दिया था, फिर दाहिनी ओर गर्दन घुमाकर कभी पहाड़ को देखता तो कभी सड़क को। मदारी की समझ में यह नहीं आता कि उसके लिये कौन आकर्षणीय है। सड़क उसके लिये नयी नहीं थी, फॉरेस्ट की तरह ही जानी-पहचानी थी। फिर भी यह सड़क उसे क्यों नयी-सी लग रही थी। खुली सड़क, ऊपर आकाश और नीचे सड़क, यह तो बिन्नीगुड़ी से ही दिखायी पड़ रहा था। लेकिन यहाँ पर सड़क और भी खुली-खुली-सी थी। कारण, बायीं ओर खाई, उस खाई से कभी-कभी नदी बहकर निकलती है और इस खाई पर से बहुत दूर तक देखा जा सकता था—बहुत दूर नीले फॉरेस्ट तक। इसी के साथ दाहिनी ओर बादल-से दिखनेवाले पहाड़ थे। थोड़ी दूर जाते ही मदारी समझ गया

कि पहाड़ बहुत क़रीब नहीं हैं। लेकिन पहाड के पास जो घना जंगल था यह समझ में आता था, पर उसकी हरियाली नहीं दिखती। ट्रक नयी सड़क पर इतनी तेजी से चल रही थी कि ऐसा लगता था इसके साथ-साथ पहाड़ भी दिशा बदल रहा है। मदारी ने सामने बैठे दो जन के बीच से गर्दन इतनी निकाल लिया था कि उसे दोनो हाथ पर भार देकर खुद को सँभालना पडता था। बायीं ओर बैठा युवक बोला, "क्या देख रहा है, रे ?"

"पहाड, पहाड।"

"पहिले कभी नही देखा क्या रे ?"

"नई देखा। इतना ऊँचा पहाड मे कउन रहता हई ?"

"आदमी।"

"उतरना नई पडता ? इसमे चढता कइसे हई ? इहाँ त नदी भी नई जा सकेगी अईसा जगल हइ।" मदारी ने कहा। युवक हँसने लगा, "अईसा है रे ! इसमे तू जा सकेगा रे ?"

मदारी खुद ऐसे ही जगल के एकदम अदर रहता है लेकिन उसने कभी इतनी दूर से फॉरेस्ट को नही देखा।

"सकेगा ?" जेसे मदारी उस सभावना को जॉच लेना चाहता था। फिर उस पहाड की ओर देखकर गभीरता से पूछा, "उतरने का कइसे होगा, इतना ऊँचा ?"

"रास्ता है, उसी रास्ते से उतरेगा। वहाँ पर आदमी लोग रहता है।"

"रहता हई ? आदमी ? उहाँ ?" मदारी ने पूछा। फिर थोडी देर चुप होकर जोर-जोर से चिल्लाने लगा, "ऐ माई रे,ऐ माई रे।"

मदारी की माँ सीधी होकर बोली, "क्या हुआ रे।" पर मदारी सुन नहीं पाया। वह ऊपर से फिर चिल्लाया, "ऐ माई रे, ऐ माई। पहाड़ देख रे, कितना ऊँचा पहाड ?"

मदारी की बात सुनकर सब हँसने लगे। मदारी की माँ धीमे से बोली, "हाँ देखा हई।" मदारी की जिज्ञासा सुनकर सबने मदारी की माँ की तरफ एकबार देखा। मदारी की माँ थोडा झेंप गयी—इतने सारे लोग सब उसी की तरफ देख रहे हैं। उसने नजर झुका ली, फिर उठाई।

मदारी की माँ जहाँ बैठी थी वहाँ से ऐसा लगता था जैसे पीछे-पीछे पहाड़ दौड़ रहे हैं। इससे कई बार पहाड की चोटी दिखायी नहीं पड़ती थी। लगता था जैसे आकाश तक पहाड़ से ढँका है। कभी-कभी तो लगता था पहाड़ की दीवारें टूट रही हैं बल्कि बायीं ओर देखने पर उसने देखा काफी दूर तक खाई ही खाई है। और उस खाई में नदी, झरना, चाय-बागान, खेत दूर-दूर तक फॉरिस्ट हैं। नागराकाटा तक पहुँचने पर दिखता था और भी दो ट्रकें उसी तरफ जा रही

थीं। उन ट्रकों से कभी यह ट्रक आगे बढ़ जाती तो कभी पीछे से आनेवाली कोई ट्रक इस ट्रक को पार कर निकल जाती। पार होते ही पहले की तरह सब हाथ उठाकर शोरगुल करने लगते, कभी-कभी स्लोगन का आदान-प्रदान भी होता। लेकिन इस ट्रक के लोगों ने क़रीब चालीस मील का रास्ता डेढ़ घंटे में तय कर लिया था। इसलिये ये लोग कभी-कभी बस हाथ भर उठा देते।

वानरहाट के बाद बहुत सारी ट्रकें थोड़ी-थोड़ी दूरी पर दिखने लगती थीं। लेकिन इस सड़क पर आने के थोड़ी देर बाद ऐसा लगा कि सभी ट्रकें इसी रास्ते से होकर गुज़र रही हैं। बहुत जगहों पर ट्रकों के पास लोगों को खड़े हुए भी देखा गया। ये लोग भी ट्रक से बैरेज ही जायेंगे या किसी हाट में या फिर वहाँ से पत्तियों को उठाकर वज़न होनेवाली जगह तक जायेंगे।

उस मदारीहाट से निकलकर इस रास्ते तक पहुँचने क बाद लगता था कि वे लोग तिस्ता नदी के बैरेज के क़रीब पहुँच रहे हैं। तिस्ता बैरेज के उद्घाटन वाले दिन इस जुलूस के बारे में उन लोगों ने जब से कस्बा की मीटिंग, लाइन मीटिंग में सुना है तब से इस नदी, बाँध और पानी को अपनी कल्पना में सजा रहे थे। यह ट्रक तोरसा पार से आ रही थी। तोरसा से तिस्ता। तिस्ता के साथ इनका रोज़मर्रा का परिचय नहीं था। यह नदी तोरसा से बड़ी और भयंकर है—पहाड़ वगैरह तोड़कर, वन जंगल को उजाड़कर, गाँव-शहर को बहाकर निकल जाती है। हर साल ये तिस्ता के बाँध के किस्से सुनते रहे हैं। उन्हीं सब किस्सों के जरिये तिस्ता बैरेज की जो कल्पना इनके मन में तैयार हुई है, जिसमें पहाड़ से लेकर यह खाई और अपरिचित प्रकृति भी शामिल है, वह कल्पना सच होने जा रही थी। ऐसा लगने लगा था कि इन्हीं सब पहाड़ों के बीच से तिस्ता आसमान से गिर रही है। उनकी ट्रक अचानक उसी तरफ मुँह करके खड़ी हो जाएगी और वे खड़े-खड़े देखेंगे तिस्ता को इन्हीं पहाड़ों की तरह। साथ में तिस्ता बैरेज भी।

वे लोग तिस्ता बैरेज के क़रीब पहुँच गये हैं ऐसा समझने का एक और कारण था—सड़क में नदी और नदी, ब्रिज और ब्रिज का होना। दाहिनी ओर पहाड़ और चढ़ाई, बायीं ओर खाई। इसलिये, थोड़ी ही दूरी पर दाहिनी ओर से सफेद झाग बनाते हुई पानी की धार बड़े-बड़े पत्थरों से धक्का खाती हुई उछलती हुई एक-एक रंगीन ब्रिज के नीचे से बायीं ओर की खाई में गिरती हुई दिखायी पड़ती भी। नदी का झरना बनकर और नदी बनकर बहना देखते-देखते एक-एक करके ब्रिज लेती, चूया पाथांग, डायना, जलढाका, मूर्ति, नेउरा, जूर्ती को ट्रक साँय-साँय करती हुई पार कर रही थी। ऐसा लगता था, यह सड़क थमक कर जहाँ ख़त्म हो जायेगी तिस्ता पहाड़ से पहाड़ को तोड़ते हुए वहीं से उतर आएगी।

जलसा के मोड़ पर पुलिस ने ट्रक को रोका। मदारीहाट से निकलने के बाद पहली बार ट्रक रुकी। सामने बहुत सारी दूसरे ट्रकें भी थीं। रुकते ही सब

लोग उठकर खड़े हो गये और हाथ पैर झाड़ने लगे। दो-एक तो उतरने भी लगे थे पर पुलिस को देखकर नहीं उतरे।

पुलिस ने आगे आकर पूछा, "कहाँ से आ रही है यह ट्रक ? कहाँ से ?" उसकी आवाज़ से उसकी व्यवस्था झलक रही थी।

जो लोग ट्रक के डाले पर बैठे थे, वे लोग अब खड़े हो गये थे। सब एकसाथ बोल पड़े, "मदारीहाट से।"

"ड्राइवर कहाँ है ? परमिट देखें"—पुलिस ड्राइवर के केबिन के पास जाकर खड़ा हो गया। ड्राइवर ने काग़ज़ बढ़ा दिया। देखकर उसे लौटाते हुए ज़ोर से पुलिस ने पूछा, "लीडर कौन है, ट्रक में लीडर कौन है ?' इसका जवाब क्या हो, यह समझने के लिये पुलिस जिस तरफ़ से बोल रहा था उस तरफ मुँह करके खड़ा था। उसने महिलाओं की भीड़ में से सावधानी से एक पैर बढ़ा दिया फिर दूसरे पैर के लिये जगह ढूँढ़ते-ढूँढ़ते सामने बैठे एक आदमी की ओर मुँह घुमाकर पूछा, "क्या बात है ?"

"आप लेके जा रहे हैं? नाम बोलिये—"

"सुखेंदु राय।"

"सब बागान के लोग हैं या बस्ती के भी ?"

"दोनों।"

"ज़रा नाम बताइये ?"

"क्या ? इन सब का नाम ?"

"नहीं। गाँव और बागान का। अच्छा छोड़ दीजिये। उदलाबाड़ी में नाम माँगे तो दे दीजियेगा। लीजिये, यह स्लिप रखिये।" पुलिस द्वारा बढ़ाये काग़ज़ को एक आदमी ने ले लिया।

213

शताब्दी-सहस्राब्दी का स्वाद

चालसा के मोड़ पर पुलिस सब गाड़ियों की चेकिंग करती है इसलिये भीड़ हो गयी थी। इस लैटरल रोड में और उधर के नेशनल हाइवे में गाड़ियों की लाइन लग गयी थी—माटियाली की ओर सड़क ख़ाली थी। और सब गाड़ी सीधे माल होकर उदलाबाड़ी जायेगी—इसलिये उस तरफ़ से—जो गाड़ियाँ इधर आ रही थीं उन्हें पुलिस रोक दे रही थी।

पुलिस इन गाड़ियों को बहुत देर तक नहीं रोकती थी। जुलूस की गाड़ी न होने पर उस गाड़ी को सड़क के एक साइड में करने के लिये कहकर जुलूस की गाड़ी को छोड़ देती थी। लेकिन यहाँ खड़ा होने पर और पुलिस से स्लिप

लेकर जाने से चालसा से माल बाज़ार तक की सड़क जुलूस की ट्रकों से जाम पड़ जाती थी। लगता था, आज इस सड़क पर और कुछ नहीं होनेवाला। इतनी सारी ट्रकें एक साथ जा रही थीं, अब कोई ट्रक किसी से आगे भी नहीं निकल रही थी। ऐसा लग रहा था जैसे ट्रकों से ही जुलूस सजाया गया है। माल बाज़ार के भीतर ट्रकों का यह जुलूस नहीं जाता—नेशनल हाइवे से सीधा निकल जाता था। माल बाज़ार के मोड़ में बड़ा-सा तोरण बनाया गया था। तोरण पर वामफ्रंट का लाल झंडा लहरा रहा था। सड़क के मोड़ पर लोग लाइन लगाकर खड़े थे। वहाँ पर भी कुछ ट्रक और कुछ जुलूस की तैयारियाँ हो रही थीं लेकिन यहाँ सड़क पर पैदल जुलूस ही मुख्य बन गया था। माल बाज़ार से फिर से नारा शुरू हो गया था।

लेकिन इस बार स्लोगन का तेवर कुछ अलग था। ट्रकों में कोई बैठा नहीं था, सब खड़े थे। एकदम ठस्स होकर। एक-दूसरे के कंधे का सहारा लेकर ट्रक के हिचकोलों को सँभाल रहे थे। एक हाथ से किसी के कंधे का सहारा और दूसरे हाथ को शून्य में हिला-हिलाकर स्लोगन दे रहे थे। ऐसे गोलबंद होकर खड़े थे कि उनका चेहरा बाहर की तरफ घूमा हुआ था। स्लोगन देने के साथ उनके कमर का ऊपरी हिस्सा और घुटना नाचने के जैसे झूमता रहता था।

किसी-किसी ट्रक में सिर्फ़ लड़कियाँ ही थीं। वे सब ज़ोर-ज़ोर से गाना गा रही थीं, वह स्लोगन का गीत है या नहीं, कौन जाने। लेकिन लाइन से जानेवाली इन ट्रकों में तरह-तरह के नारों के बीच इस समवेत स्वर की तीव्रता हवा को भेद रही थी।

दो-तीन ट्रकों में एनसीसी के कपड़े में लोग थे। दो-तीन ट्रक में स्कूली बच्चे अपने यूनीफार्म में थे।

लगता था अब ये लोग बैरेज के करीब पहुँच गये हैं--सब मिलकर ही वहाँ पहुँचेंगे। वहाँ तक पहुँचने का भी एक नियम-क़ायदा है। एक छंद है—अपनी मर्ज़ी से कोई इस क़ायदे और छंद को तोड़ नहीं पायेगा। मदारीहाट के ट्रक में वे माल बाज़ार के बाद से ही किसी बड़ी वजह से खुद से ज़रा-ज़रा करके बिखराने लगे थे।

ट्रक उदलाबाड़ी आकर रुक गयी थी। कारण, आगेवाली ट्रक रुक गयी थी। रुकने के बाद ट्रक पर से इधर-उधर से झाँक कर देखा गया—सामनेवाली बहुत सारी गाड़ियाँ रुकी हुई थीं। चालसा का अनुभव था इसीलिये शायद एक आदमी ने ट्रक के चक्के पर पैर रखकर उतरने का साहस किया। लेकिन आगे नहीं बढ़ा। ट्रक के पास ही सड़क की एक तरफ पेशाब करने लगा। पेशाब करते हुए बीच-बीच में बड़ी बेचैनी के साथ बायीं ओर देखता—आगेवाला ट्रक चलाना शुरू तो नहीं कर दिया। ट्रक में से कोई चिल्लाकर बोला, "हे रे बंधु, नल खुला

रखकर चला आये।'' एक दूरारा उनींदी की आवाज़ में आगे बोला, ''बेंगुर का नल पब्लिक हेल्थ का काम का नाही हय रे, घोष मोशाय के ट्यूबवेल का हैंडिल खड़ा ही रहता हय, नीचे नाहीं आ सकता हय।'' लेकिन बेंगुर के पोशाब करते-करते कुछ और लोग भी ट्रक से उतर गये—कोई डाला पर से ही कूदकर उतरा कोई चक्के पर पैर रखकर, कोई पीछे से डाला पकड़कर झूल जाता। एक बूढ़ा-सा देउनिया उतर नहीं पा रहा था। वह चक्के पर पैर रख नहीं सकता था इसलिये फिर से चढ़ जाता था। फिर डाला से भी झूलकर उतर नहीं सकता था। नीचे से एक ने कहा, ''ऐ हे तलाई, उतरने का दरकार नेहीं है, उहें से छोड़ दो। सब तोहरे गोदी का खेलाय के लड़की है शरम का कोई बात नेहीं हय।''

उस लड़के ने बुलाया, ''इधर से उतरिये।'' कहते ही मदारी की माँ के कोने से ड्राइवर के दरवाज़े के पास से उतरने का रास्ता दिखा दिया। देउनिया सिर शर्म से झुकाये लड़कियों की भीड़ में से पैर बढ़ाकर उस कोने तक पहुँच गया। फिर झुककर देखा कि कैसे उतरना पड़ेगा। उसकी हल्की-सी मुस्कुराहट से समझ में आ जाता था कि यह रास्ता उसके लिये सुरक्षित होगा। दाहिने हाथ से ड्राइवर के केबिन की छत का पिछला हिस्सा और बायें हाथ से ड्राइवर के दरवाज़े का ऊपरी हिस्सा पकड़कर देउनिया जैसे ही दो धाप उतरा कि सामनेवाली ट्रक स्टार्ट हो गयी। इस ट्रक के लोग चिल्लाने लगे, ''ऐ हे तलाई, चढ़ जा रे, चढ़ जा।'' देउनिया ने जल्दी से फिर ड्राइवर के दरवाज़े के ऊपर का हिस्सा पकड़कर बायाँ पैर वहाँ रखा। उसके पैर की धोती पीछे कहीं अटक गयी। तभी वह लड़का बोला, ''आप जाइये, गाड़ी नहीं जायेगी।'' देउनिया को धोती के फँस जाने के कारण उतरना पड़ा। लड़के के दिलासा देने से वह सड़क से थोड़ी ही दूर पर बैठ गया।

तब तक सामनेवाली ट्रक बहुत दूर निकलकर बायीं ओर घूम गयी। पीछेवाली ट्रक हॉर्न बजा रही थी। सामने खड़ी पुलिस ने आगे बढ़ने का इशारा किया। लड़के ने डाला पर से ही पुलिस को हाथ दिखाकर इशारा किया।

ट्रक पर से लोग फिर चिल्लाने लगे, ''ऐ रे तलाई, बाकी ऊपर आकर कर लिया, चला आये।'' मज़ा लेने के लिये ड्राइवर भी हॉर्न बजाने लगा था। और तब देउनिया उठकर फिर दौड़कर ड्राइवर के पायदान पर चढ़ गया।

देउनिया के ट्रक में चढ़ जाने पर वह लीडर लड़का हाथ बढ़ाकर ड्राइवर के दरवाज़े के ऊपर टीन पर आवाज़ करके बोला, ''स्टार्ट कीजिए।''

गाड़ी थोड़ी दूर चलकर कैंप के पास रुक गयी। पुलिस ने कहा, ''परमिट ?''

लड़के ने आगे बढ़कर चालसावाली स्लिप दिखा दी। ''कितने लोग हैं, एक्जेक्ट नंबर बताइये''—पुलिस ने उसकी तरफ़ बिना देखे पूछा। लड़के ने कहीं से गिनना शुरू कर दिया। गिनती होते देख सब सीधे होकर बैठ गये। गिनती

ख़त्म हो जाने पर लड़के ने पूछा, "कोई नीचे तो नहीं है ? ड्राइवर की तरफ़ कितने लोग हैं ?" कहकर एक बार फिर गिनने लगा—सतासी। फिर पुलिस से बोला—"एट्टी सेवन।"

पुलिस ने पास खड़े लड़के से पूछा, "एट्टी सेवन ?" फिर एक बड़ा-सा काग़ज़ देकर बोला, "इसे काँच पर लगा लीजियेगा। वरना ट्रक को घुसने नहीं दिया जायेगा। लड़के के हाथ बढ़ाते ही पुलिस के पास खड़ा लड़का बैच का एक बंडल बढ़ा दिया और बोला, "सबको लगा लेने के लिये कहिये। वर्ना एनक्लोज़र में जाने नहीं दिया जायेगा। और, थोड़ा रुकिये।"

इस बीच पुलिस ने एक बड़ा-सा काग़ज़ लड़के को पकड़ा दिया। पुलिस के पासवाला लड़का एक टोकरी बढ़ाकर बोला, "टिफिन। सतासी हैं। निकालकर टोकरी वापस कर दीजिए।"

ट्रक के कुछ लोगों ने टोकरी उससे ले ली। फिर इधर-उधर देखने लगे कि कहाँ रखें। तभी लीडर बोला, "वहाँ पर सारा निकाल कर टोकरी वापस कर दीजिये।"

सबने मिलकर ट्रक में ही थोड़ी जगह बना ली। टोकरी उलट कर उन्होंने वापस कर दी। ट्रक आलू और आटे की गंध से भर गयी। ट्रक चलने लगी। मानबाड़ी से मुड़ गयी।

ट्रक जब अपलचाँद फॉरेस्ट में घुसी तो मदारी और मदारी की माँ को लगा कि वे फिर मे शेवड़ाझोरा लौट रहे हैं।

उसी समय मदारी की माँ को बैच मिल गया, साथ में सेफ़्टीपिन भी। सेफ्टीपिन से उसने बैच लगा लिया। टिफिन का ठोंगा मिला। कुछेक शताब्दी के बाद मदारी की माँ की जीभ में आदमी का उपजाया गेहूँ या उस गेहूँ के आटे का स्वाद लगा। जाने कितने सहस्राब्दी के बाद मदारी की माँ अपनी जीभ से जान पायी कि दुनिया में स्वाद की कितनी भिन्नता-विभिन्नता है। मदारी की माँ के मुँह में आलू और रोटी का निवाला घुसते ही उसके मुँह की सहस्र ग्रंथियों से लार निकलकर उसे भिगोने लगा, भिगोती रहती है और पूरे मुँह में वह लार फैल गया। ठीक तभी उसने देखा कि आकाश तक विस्तृत एक नदी को आड़ा-आड़ी बाँट कर एक दीवार आसमान की तरफ़ जा रही है तिस्ता ब्रिज।

214
नेता और जुलूस

बैरेज का मात्र चार स्लूइस तैयार हो चुका था। इसीलिये उद्घाटन कराया जा रहा था। बैरेज के सभी स्लूइस जब तक तैयार नहीं हो जाते उसका कोई मतलब

नहीं। लेकिन इसके उद्घाटन के लिये तिस्ता बैरेज को खूब सजाया गया था।

इसके बावजूद लोगों को स्लूइस खोलकर दिखाने की ज़रूरत थी ताकि सब जानें कि तिस्ता को रोक कर उसके मूल स्रोत में वापस ले जाने की योजना का आशय क्या है ? लेकिन इस बरसात में तिस्ता अपने तय रास्तों पर ही बही है। अभी उद्घाटन की सुविधा के लिये उसके पानी को भाटी से लाकर रिजर्वर में डाला नहीं जा सकता।

इसीलिये उद्घाटन कार्यक्रम के लिये ख़ासतौर से बैरेज के उस पार के तिस्ता का पानी एक बनावटी बाँध के ज़रिये पूर्वी पार की ओर, आपलचाँद फॉरेस्ट की ओर हटाकर लाया गया था। उद्घाटन हो जाने के बाद इस बॉध को तोड़कर पानी छोड़ देना पड़ेगा, वरना बैरेज का काम आगे नहीं बढ़ेगा। बाँध यानी बाढ़ रोकनेवाला बाँध नहीं, पानी हटानेवाला बॉध। इसलिये पिछले कुछेक महीने से ख़ासकर बीस दिनों से बैरेज के सारे कुलियों को बाँध के काम में लगाया गया था। थोड़ी ऊँचाई से कोना-कोनी लाकर बॉध का मुँह बैरेज के पहले स्लूइस की ओर घुमा दिया गया था। चार स्लूइस के बन जाने के बाद भी, स्लूइस से पानी का बहाव दिखाना हो तो दो स्लूइस से ही पानी छोड़ना पड़ेगा। चारों स्लूइस से समान गति से निकलकर पानी कहीं खो जायेगा--तिस्ता में अभी इतना जल नहीं था।

बैरेज जितना ऊँचा था उतना ऊँचा दिखता नहीं। इसकी वज़ह थी तिस्ता का मीलों विस्तार। उसके पार आसमान की ऊँचाई वाला जंगल। आकाश तक जाने के कारण इसकी ऊँचाई का पता चलता था। यहाँ सब को आसमान छूनेवाले शाल के पेड़ों के नीचे खड़े होकर बैरेज देखना पड़ा। पहाड़ के पास बैरेज के ऊपर एक बड़ा-सा स्टेज बनाया गया था। इतना ऊँचा था कि इस ऊँचे पार से भी नज़र उठाकर देखना पड़ता था। रंग-बिरंगे कपड़े से स्टेज झिलमिला रहा था। स्टेज की दोनों तरफ राष्ट्रीय झंडा और बीच में सरकारी पार्टियों के झंडे लगे थे। स्टेज के बायीं ओर एक और ऊँचा मंच था—वहाँ से बटन दबाकर स्लूइस गेट खोला जायेगा। तिस्ता में हवाएँ हमेशा तेज़ होती हैं। उस हवा पर स्टेज में लगे कपड़े फूल जाते थे। स्टेज में लगे झालर बायीं ओर से दाहिनी ओर उड़ते थे। राष्ट्रीय झंडा समेत दूसरी पार्टियों के झंडे भी बायीं ओर से दाहिनी ओर उड़ रहे थे। ऐसा लगता था जिस ओर स्टेज का मुँह किया गया है, वह ठीक नहीं है।

तिस्ता बैरेज की ओर आने का एक ही रास्ता था—यह मानबाड़ी का मोड़। एक दूसरी ओर से भी आया जा सकता था। लाटागुड़ी से क्रांतिहाट होकर अपलचाँद फॉरेस्ट से। लेकिन बैरेज उद्घाटन का मतलब सिर्फ़ फीता काटना और बटन दबाना नहीं था। इस क्रांतिहाट के लोग सड़क पर खड़े होकर देखेंगे कि

मंत्री लोग बैरेज उद्घाटन के लिये कैसे आते हैं।

लेकिन वी.आई.पी. के लिये अलग से किसी रास्ते का इंतजाम नहीं हुआ था। पुलिस ज़िला अधिकारी बार-बार एक ही बात कर रहे थे कि किसी भी हालत में वी.आई.पी. के आने के समय में बदलाव नहीं होगा। आख़िरी समय में समय बदलाने के लायक़ इंतज़ाम करना तिस्ता के इस चर पहाड़ के नीचे और इस फॉरेस्ट में संभव नहीं।

वी.आई.पी. उसी तय समय पर आयेंगे। उनका कनवाय सड़क पर तेज़ी से आया था—सामने छह मोटर साइकिलों का एस्कार्ट चले जाने पर जितनी भी गति से गाड़ी चलाया जाता है।

तय समय के आधे घंटे पहले चालसा के मोड़ पर सब ओर जुलूस की ट्रकें साइड में खड़ी थीं। सड़क के पास कंधे पर रायफल लिये पुलिस खड़ी थी—ट्रक के साइड में खड़ी एक-एक ट्रक में पुलिस सड़क की ओर रायफल ताने खड़ी हो गयी थी।

चालसा के मोड़ टीले पर पेड़-पौधों की हरियाली में कमांडो फोर्स इधर-उधर बिखरी है—ख़ासकर चालसा से माटीयाली जाने वाले रास्ते के दोनों ओर। पुलिस के मुताबिक इन्हीं दोनों प्वाइंट पर 'सिक्यूरिटी रिस्क'' था—खड़े हुए ट्रक के पास ही से तो वी.आई.पी. की गाड़ियाँ आयेंगी।

वी.आई.पियों का कनवाय चालसा मोड़ को पार करने से पहले ही एस्कार्ट मोटर साइकिलों ने अचानक अपनी गति बढ़ा दी थी। और उसी गति से ताल मिलाकर कनवाय की सभी गाड़ियाँ आगे बढ़ती थीं। उस तेज़ गति से चालसा के मोड़ पर छह मोटर साइकिलों के पीछे-पीछे कम-से-कम चालीस गाड़ियाँ घूमीं—सड़क से टायर का संघर्ष होने से कुछेक सेकेंड के बाद आवाज़ हुई। समकोण बनाकर क़तार में खड़ी ट्रकों से जुलूस ने स्तंभित होकर देखा। वीआईपियों के कनवाय के पीछे पुलिस की गाड़ी निकल जाने के तीन मिनट बाद रास्ता खुल गया। तब नेताओं के पीछे-पीछे जुलूस बढ़ा—अचानक जुलूस को ध्यान आया और सभी ट्रकों से नारेबाज़ी शुरू हो गयी।

मानबाड़ी मोड़ की एक घटना। वहाँ भी उसी तरीके से तय समय के पंद्रह मिनट पहले सभी ट्रकें सड़कों के एक किनारे खड़ी कर दी गयी थीं। मानबाड़ी से तिस्ता बैरेज तक सुनसान सड़क पर उन चालीस गाड़ियों और छह मोटर साइकिलों को मज़बूर होकर अपनी गति धीमी करनी ही पड़ी—कारण सड़क छोटी थी। लेकिन वहाँ पर खड़े जुलूस से कोई स्लोगन नहीं उठा। एक गाड़ी की खिड़की से एक नेता ने हाथ बढ़ाकर हिलाया। उस पर ही सड़क के पास खड़ी की गई जुलूस समझ नहीं पायी कि उनसे क्या उम्मीद की जा रही है। जुलूस एक अजीब दुविधा में पड़ गया। साथ में नेताओं को लेकर आनेवाली चालीस गाड़ियाँ भी।

जुलूस का हिस्सा बन जाने के लिये ही नेतालोग जुलूस के पास से या भीतर से या जुलूस के साथ ही साथ बैरेज मे जाना चाहते थे, इसलिये यही रास्ता उनलोगों ने चुना था। उत्तरबंग के लिये इस वृहत्तम कर्मयज्ञ के मौक़े पर इस विशाल सभा में उत्साहित होकर भाग लेना चाहिये-वह भी अपने नेताओं को इतने क़रीब पाकर। लेकिन जुलूस को रोके रायफलधारी पुलिस और सादे कपड़ों में कमांडो फोर्स चौकसी में लगी हुई थी। नेताओं की सुरक्षा का मामला था। इसे तरजीह तो देना ही पड़ेगा--उत्तराखंड और गोरखालैंड वालों से नेताओं को बचाने की ज़िम्मेवारी तो लेनी ही पड़ेगी। लेकिन मानव स्वभाव ऐसा है कि जब किसी पर शक किया जाता है या शक के घेरे में जब किसी को लाया जाता है तो वह खुद भी अपने लिये संदेहजनक हो जाता है। सचमुच, इस इतने बड़े जुलूस में किसी ट्रक या बस में कोई उपद्रवी छिपा हो सकता था। लेकिन इस आशंका का एक और मतलब तो यही था कि हमलोगों के जुलूस में ही कोई ऐसा छिपा हो सकता है। एक बार यह आशंका हो गई तो जुलूस के छोर में कुछ हलचल मच गयी और नेताओं की चालीस गाड़ियाँ और जुलूस के इतनी सारी ट्रकों के बीच दूरियाँ बढ़ जायेगी। नेता लोग जुलूस के लिये ही आ रहे थे, नेताओं के लिये ही जुलूस आ रहा था। इस उद्देश्य की 'वाणी' इस जुलूस के जरिए उत्तर बंगाल के कोने-कोने में फैल जायेगी, ताकि 'अलगाववादी तत्त्वों' को क़ब्र में सुलाया जा सके। उनके काले हाथ तोड़ कर चूर चूर कर दिये जायें। लेकिन नेताओं के लिये ही जुलूस को रोके रखा गया था। नेताओं के लिये ही जूलूस को रायफल के सामने कुछ देर स्तब्ध होकर रहना पड़ा था। जुलूस के नेताओं को निश्चित और सुरक्षित स्थान पर ले जाने तक पुलिस इस जुलूस को अपने संदेह का निशाना बनाए रखती है। जुलूस अपने नेताओं को सुरक्षा नहीं दे सकता। ये चालीस गाड़ियाँ सुरक्षित रह सकती हैं जुलूस और नेताओं के बीच खड़ी पुलिस के पहरे में। नेता और जुलूस अलग-अलग पड़ गये थे।

215
नदी के ऊपर से चलना

मानबाड़ी से आपलचाँद तक का रास्ता खाली रखा गया था। वीआईपियों को लेकर चालीस गाड़ियाँ और छह मोटर साइकिलें पहरे में उस सँकरे रास्ते में प्रवेश कीं। यहाँ पहाड़ भी नहीं था, जंगल भी नहीं। इसलिये सुरक्षा का मामला थोड़ा सहज था। मोटर साइकिल में सवार पुलिस ने अपनी गति धीमी कर दी थी। यहाँ वीआईपी थोड़ा आराम से प्राकृतिक परिवेश को देख सकते थे। पीछे की गाड़ियों की गति भी थोड़ी धीमी हो गई थी। कुछ देर के लिये एक शिथिलता

पूरे केनवाय में फैल गयी—फ़ुरसत की शिथिलता।

आपलचाँद के क़रीब पहुँच कर सड़क दो हिस्सों में बँट गई थी। एक रास्ता सीधा चला गया था। और दूसरा दाहिनी ओर। दाहिने ओर की सड़क नयी थी—बैरेज के लिये बनायी गयी थी। सीधी जाने वाली राड़क भी बैरेज के लिये ही बनाई गई थी—लेकिन यह फॉरेस्ट के भीतर से थोड़ा घुम कर जाती है। वीआईपियों की गाड़ियाँ बैरेज की नई सड़क से अलग हो गई थी—मानबाड़ी से ट्रकों को छोड़ा जा रहा था। जुलूस की सारे ट्रकें पुरानी सड़क से बैरेज के तय जगह तक जायेंगी।

वीआईपियों का केनवाय सीधे बैरेज की ओर बढ़ गयी। गाड़ी से उतर कर वे मंच की ओर बढ़ गये। गाड़ियाँ सीधे जाकर पार्किंग के लिये निर्दिष्ट जगह पर जाकर लग जाती थीं। छोटे-छोटे प्लैकेड से सभी गाड़ियों की जगह बना दी गई थी—"सी एम 'स कार", "यूनियन मिनिस्टर ऑफ स्टेट'सकार", "इर्रीगेशन मिनिस्टर्स कार", "पी डब्ल्यू डी मिनिस्टर्स कार।"

गाड़ी से मंच तक जाने के लिये नया रास्ता बनाया गया था—इस उद्घाटन के कार्यक्रम के लिये। तिस्ता के सूखे किनारे से छोटे-छोटे पत्थर वहाँ बिछा दिए गये थे। पानी के भीतर ये रंग-बिरंगे से दिखते थे। पर धूप में इनका रंग उड़ जाता था। इस पर भी हल्का-सा तो था ही। इसलिये कल रात को ये पत्थर चुने और यहाँ डाले गये थे। फॉरेस्ट डिपार्टमेन्ट ने कल रात को ही दो ट्रक पेड़ भेजा था। वे सारे पेड़ सड़क के दोनों किनारे लगाए गये थे। ये सभी मोटे-मोटे पेड़-दो दिन के बाद सूख जायेंगे। लेकिन दिखाया ऐसे जा रहा था कि कितने जतन से इन्हें बड़ा किया गया है। पेड़ रातोंरात तो बड़े नहीं हो जाते—इसलिये एक-एक पेड़ चालीस साल की देखभाल और जतन के प्रमाण थे।

उतर कर वे कुछ देर खड़े रहे। उनमें से कुछ अंगड़ाई लेकर अपने बदन को तोड़ते साथ में जम्हाई लेकर आवाज़ भी निकालते। दो-एक जन चारों ओर देखते—प्राकृतिक दृश्य से तृप्ति पाने के लिये। मुख्यमंत्री थोड़ा अन्यमनस्क से थे, लेकिन एकदम तैयार—ज़रूर कोई आकर क्या करना है, कह जायेगा। तभी इंजीनियर लोग आकर हरेक को बैज लगा गये। मुख्यमंत्री का बैज सबसे बड़ा और सबसे रंगीन था।

इसमें कुछ समय बीत गया। केन्द्रीय परिवहन मंत्री ने मुख्यमंत्री के पास आकर जानना चाहा कि पहाड़ यहाँ से कितना दूर है ? पानी के जैसी समतल कौन सी जगह है। मुख्यमंत्री ने नदी की ओर देखा। उस तरफ़ देखने के लिये उन्हें कोना-कोनी देखना पड़ा। कारण, सीधे जानेवाला रास्ता मंच की आड़ में था। फिर बड़े ही अनमने भाव से दाहिने हाथ से एक तरफ़ दिखाया। अपने ही जवाब से आश्वस्त न होकर हाथ थोड़ा घुमाकर दिखाया—पश्चिम बंगाल के

पहाड़ी इलाके को सिक्किम, भूटान ने इस ज़गह से धरे रखा था। केन्द्रीय मंत्री की नज़र ने मुख्यमंत्री के हाथ का अनुसरण किया फिर वे अंग्रेज़ी में बोले, "यह जगह बहुत कुछ गढ़वाल सी है। आप गढ़वाल गये हैं ?"

मुख्यमंत्री ने हंसकर कहा, "इतनी उम्र हो गई है अब भारत का कोई कोना बाकी नहीं रहा। गढ़वाल तो गया ही हूँ। उस साल बहुगुणा के चुनाव के दौरान बहुत सी जगहों पर मीटिंग मे गया था। इलेक्शन यानी स्थगित इलेक्शन, मिसेज गांधी के प्रेस्टीज इलेक्शन। आप गढ़वाली हैं ? नहीं न ?"

"नहीं, मै तो मैदानी हूँ। लेकिन गढ़वाल गया हूँ, रहा भी हूँ वहाँ। क्यों ?"

"मेरे काका का फलों का बड़ा बागीचा है।"

इंजीनियरों में से एक आया। मुख्यमंत्री समझ गये निश्चित रूप से यह बैरेज का मुख्य इंजीनियर था। उसने आकर कहा, "सर, डायस पर चढने के पहले एक बार बैरेज घुमकर देख लें।"

"हाँ, गढ़वाल में फल उद्योग का काफ़ी विकास हुआ है। हिमाचल प्रदेश में भी। इस उद्योग ने वहाँ के पहाड़ी लोगों की आर्थिक नींव को पुख्ता किया है। इसलिये देखिएगा, उत्तरप्रदेश के, पहाड़ी इलाके में अलगाववादी आंदोलन नहीं है—वे मूल भूखंड के साथ जुड़े रहना चाहते हैं। इसी में उन्हें फायदा है।" कहते-कहते मुख्यमंत्री केन्द्रीय मंत्री के साथ आगे बढ़ गये।

"यह आप ठीक नहीं कह रहे हैं—आर्थिक रूप से सबसे विकसित राज्य से ही खालिस्तान का नारा उठा।" केन्द्रीय मंत्री ने कहा।

सड़क पर इतना पत्थर डाला गया था कि चलना मुश्किल हो रहा था, पैर डगमगा रहे थे। पीछे से किसी ने कहा, "इतना पत्थर क्यों बिछा दिया है, मंत्रियों को गिराने के लिये ?"

"ज़रा धीरे-धीरे चलिये, सर। हमलोगों ने पक्का करने का सोचा था। लेकिन सिक्यूरिटी ने पत्थर डालने के लिये कहा। एक इंजीनियर ने सफ़ाई दी।

मुख्यमंत्री और केन्द्रीय मंत्री आगे-आगे जा रहे थे। धीरे-धीरे, लेकिन निश्चित चाल में, जैसे उन्हें पत्थर पर चलने का ख़ासा अनुभव हो। मुख्यमंत्री ने कहा, "पंजाब तो दरअसल आपकी पार्टी का ही उसकाया हुआ है। आप लोगों ने अकाली राजनीति में क़दम रखा और पाकिस्तान इससे जुड़ गया।"

केन्द्रीय मंत्री ने कुछ जबाब नहीं दिया। पत्थरों को वे पार कर चुके थे।

मंच के नीचे से उन्हें बैरेज में जाना पड़ेगा। मंच के नीचे भी रंग-बिरंगे कपड़े लगे हुए थे, यहीं से उन्हें बैरेज में जाना था। वहाँ परदे भी लगे हुए थे। दो इंजिनियर दोनों ओर से परदा हटा कर पकड़े हुए थे और मुख्यमंत्री और केन्द्रीय मंत्री ने बैरेज में क़दम रखा।

मंच के पीछे टीवी कैमरामैन, प्रेस फोटोग्राफर और रिपोर्टर तैयार थे। जिस

परदे को हटाकर वे लागे उधर दोनों ओर सभी रिपोर्टर खड़े थे, फ़ोटोग्राफ़र ज़मीन पर ही उकडूँ बैठे थे। थोड़ी ही दूरी पर टीवी कैमरामैन, उसके बाईं ओर सरकारी प्रचार विभाग का कैमरा, इन दोनों के बीच थोड़ा सा पीछे की तरफ़ डिवीजन का ग्रुप। एक कैसेट रिकॉडर को कंधे पर लटकाए लंबा सा एक माइक्रोफ़ोन लिये हुए आल इंडिया रेडियो।

मुख्यमंत्री और केन्द्रीयमंत्री के वहाँ खड़े होते ही एक साथ फ्लैश चमक उठे। तीनों मूवी कैमरे चलने लगे। मुख्यमंत्री थोड़ा दाहिनी ओर देखने लगे, उधर जिधर से तिस्ता का पानी कलकलाते हुए बह रहा था। फिर कुछ एक क़दम आगे बढ़ गये—कारण तब तक पीछे से परदा हटा कर बाक़ी वीआईपी भी आ गये थे। उनमें से कुछ मंत्री भी थे। मुख्यमंत्री जहाँ खड़े थे वहीं खड़े रहे। केन्द्रीय मंत्री उनके पास। दूसरे कुछ मंत्रियों ने इनके दोनों ओर अपने लिये ज़गह बना ली। पीछे सारे अधिकारी खड़े थे। किसी के कुछ कहने के पहले सब ग्रुप तस्वीर की पोज में खड़े हो गये थे और कुछेक सेकेंड के भीतर सब चलना शुरू हो गये।

जिन लोगों ने तस्वीर खिंचवाया और जिनलोगों की तस्वीर खींची गई इन दोनों के बीच एक अजीब तालमेल था। हरेक आदमी जानता था कब क्या करना होगा। यहाँ तक कि प्रेस फोटोग्राफ़र आगे बढ़कर तस्वीर लेते वक्त भी इस बात का ध्यान रखते थे कि जो मूवी कैमरे से तस्वीर ले रहे हैं उनके काम में प्रेस फोटोग्राफर का कैमरा बाधा न बने। रोज़मर्रा के काम के अभ्यास के बावजूद वे अनभ्यस्त तरीके से चल रहे थे। तिस्ता पर से होकर तिस्ता को पार कर रहे थे। लेकिन इस बात की ओर किसी का ध्यान ही नहीं गया!

216

स्लूइस गेट खोलने का अभिनय

उद्‌घाटन कार्यक्रम की शुरूआत।

उत्तर बंगाल के एमएलए में से कुछ बोलेंगे—दार्जिलिंग से मालदह तक। उत्तर बंगाल के एमपी बोलेगें। कांग्रेसी कोई एमपी नहीं आये। उद्‌घाटन समारोह में सिर्फ़ सत्ताधारी पार्टी के एमपी बोलेंगे। फिर जिन विभागों से यह काम जुड़ा है वे बोलेंगे—राज्य सिंचाई मंत्री, पीडीडब्ल्यू मंत्री। आख़िरी में विशेष अतिथि मंत्री। इनके बाद मुख्यमंत्री बोलेंगे। भाषण के बाद एक दूसरे मंच से बटन दबाकर स्लूइस गेट खोलेंगे। दो बजे तक कार्यक्रम ख़त्म करना है। फिर वीआईपी चले जायेंगे। जुलूस इसके बाद लौटना शुरू करेगा।

जुलूस बैरेज के दक्षिण में इकट्‌ठा हुआ था। वीआईपियों की गाड़ियाँ पार्क

करनेवाली ज़गह के पीछे तिस्ता के किनारे-किनारे जितनी दूर नज़र जाती—जुलूस था। वह जगह पहले से ही साफ़ करवाई गई थी लेकिन उतनी ज़गह नहीं थी। बैरेज के पानी के लिये थोड़ी सी जगह खुली रखनी ही पड़ी थी। बाद में इस खुली जगह समेत इस हिस्से को कॉटा तार से ज़रूर घेर दिया जायेगा या फिर किसी तरीके से वहाँ की पहरेदारी की जायेगी—कारण यह ज़गह काफ़ी खतरनाक है। स्लूइस खुल जाने पर यहाँ से पानी तेज़ गति से बहेगा—जलप्रपात की गति से। इसके अलावा बैरेज की सुरक्षा के लिये इसके इतने क़रीब आने नहीं दिया जायेगा।

दो दिन से फॉरेस्ट के नीचे झाड़-झंखाड़ काटकर इस मैदान को और भी बड़ा बना दिया गया था। वहीं पर ट्रकों को क़तार में खड़ा करवाया गया था। मंच पर से ऐसा लग रहा था जैसे लोगो का सिर और फॉरेस्ट के पेड़ मिलकर एकाकार हो गये हैं। मंच पर एक इंजीनियर के हाथों में 'मेड इन हागकाग' एक बाइनाकुलर था—वही सबके हाथोंहाथ घूम रहा था। मुख्यमंत्री ने भी उससे देखा। उन्होंने केन्द्रीयमंत्री को दिया। केन्द्रीय मत्री युवा थे। इतनी बडी सभा का उन्हे अनुभव नहीं था। इस सभा की तैयारी में मेहनत, निष्ठा और धैर्य की जरूरत थी। उनके पार्टी के कामकाज के अनुभव से वह मेल नहीं खाता। वे समझ नही पाये कि मामला क्या है। वे बाइनाकुलर घुमा-घुमा कर देख रहे थे फिर लौटाने के लिये हाथ बढ़ाने पर पीछे से एक आदमी ने ले लिया। मुख्यमंत्री की ओर देखकर वे बोले, "आप इतने लोकप्रिय हैं मुझे इसका अदाज़ा नहीं था।"

मुख्यमंत्री मुस्कुराते हुए उनकी तरफ देखकर फिर से सभा की ओर देखने लगे। सभा से स्लोगन, हो-हल्ला सब सुनाई पड़ रहा था लेकिन लोगों का चेहरा नहीं दिखायी दे रहा था। एक तो मच बहुत ऊपर था और जुलूस के लोगों को मंच से काफ़ी दूर बिठाया गया था। कहीं कुछ गड़बडी है। सिर घुमाकर वे थोड़ा ज़ोर से बोले, "आप लोगों के लिये ही हमलोगो को यह सभा बुलानी पड़ी है।" हमलोग और सभा इन दोनों शब्दों पर मुख्यमंत्री ने कुछ ज्यादा ही ज़ोर दिया। फिर बोले, "पश्चिम बंगाल को हमलोग पजाब तो नही बना सकते हैं।" इस वाक्य में भी ज़ोर था, जैसे मुख्यमंत्री अपने भाषण से ही एक वाक्य कह गये हों। उनके भाषण में किसी बात पर ज़ोर देकर कहने का अंदाज़ ही उनकी विशिष्टता है। सुनने से आत्मविश्वास जागता है ओर उन पर निर्भरता की भी आदत सी बन जाती है। केन्द्रीय मंत्री की बात को समझते थे। लगता था मुख्यमंत्री की बातों में उनकी पार्टी या सरकार की जो समालोचना थी, उसे वे ज़्यादा तरज़ीह देना नहीं चाहते। इस विषय में वे ज़्यादा जानते भी नहीं थे। मुख्यमंत्री के बारे में उन्होंने खूब सुना था—सभी उनके प्रति श्रद्धाभाव भी रखते थे। पर उनसे मिलना पहली बार हुआ। एक उद्घाटन समारोह में शिरकत करके

किसी तरह के विवाद में वे फँसना नहीं चाहते थे अंग्रेज़ी के कौशल का सहारा लेकर उस बात से बचना चाहते थे। "मंत्री बनने के बाद में सबसे ज़्यादा समय किसमें दे रहा हूँ, आपको बताना चाहता हूँ।"

मुख्यमंत्री उनकी ओर गर्दन घुमाकर बोले, "कहिए न ! आप तो नए-नए मंत्री बने हैं ?"

"जी हाँ, मेरा सबसे ज़्यादा वक़्त मध्यम पुरुष बहुवचन का अर्थ समझने में जाता है। यानी, कभी मुझे कहा जाता है तुमलोगों की बात ही जुदा है, तुमलोग तो भारत के नये कर्णधार हो। तब समझना पड़ता है, मैं यूपी का हूँ। कभी कहा जाता है–तुमलोग ब्राह्मण हो।" इतना कहकर मंत्री चुप हो गये।

मुख्यमंत्री हल्का सा मुस्कराकर बोले, "आपलोगों की पार्टी के साथ एक राजनैतिक समस्या तो है ही–ख़ासकर इस राज्य में। लेकिन वह उत्तर बंगाल की समस्या से अलग तरह की समस्या होती जा रही है। आप लोगों के कार्यकर्त्ता अलग-अलग दलों में गोरखालैंड, उत्तराखंड जैसे अलगाववादी आंदोलन का रुख ले रहे हैं। साथ में स्थानीय नेता भी इन्हीं लोगों का साथ दे रहे हैं। इससे संकट गहरा रहा है।"

मंच पर से माइक पर स्लोगन देना शुरू हो गया और देखते-देखते सामने लोगों का समावेश पूरी तरह हो गया। मंच पर से दिए गये स्लोगन के जवाब में सभा में मौजूद हज़ारों लोगों ने एक साथ हाथ उठाकर स्लोगन देना शुरू किया। एक क्षण में इतने सारे लोगों की एक साथ मिली हुई आवाज़ एक प्रचंड शक्ति बन गयी–वह आभास स्लोगन शुरू होते ही नहीं हो पाता था। यह स्लोगन इस मंच, इस फॉरेस्ट, इस नदी के साथ इन लोगों को जोड़ता है! इतने लोगों की समवेत आवाज़, जब सस्वर समर्थन जताना चाहते थे तब ऐसे मे राजनीति तत्त्व को दोनों हाथों से थामा जा सकता था–इंद्रिय आभास ऐसा ही कहता है।

मंच पर बैठे नेता मीटिंग ही कर रहे थे। और साल में कम से कम दो-एक बार ब्रिगेड की जनता उन्हें मंच पर देखती है। लेकिन यहाँ, इस सभा में यह सारे अनुभव के बाहर की भी कुछ चीजें घट रही थीं। तिस्ता की एक गंभीर ध्वनि हर वक़्त सुनाई पड़ती है। उस गाड़ी से उतरने के बाद से यह आवाज़ वहाँ के परिवेश के साथ एकाकार हो गयी थी। जैसे दिग-दिगांतर में बादलों की घड़घड़ाहट हो। उसके साथ वहाँ की तेज़ लहर-तिस्ता के जलमय प्लावन के साथ यह हवा बहती जा रही थी। नदी के स्रोत के समानांतर इतने विशाल आकाश के नीचे हवा जैसे एक और तिस्ता हो। और इसी के साथ फॉरेस्ट में हवा का अविरल दीर्घ निःश्वास, लगातार और पतनहीन था। इसी तिस्ता के फॉरेस्ट की, हवा की आवाज़ के साथ एकाकार हो जाने से स्लोगन का भी नाम बदल गया था। आदिवासी उच्चारण बीच-बीच में स्लोगन को एक नया रूप दे रहा था।

इस स्लोगन में एक विषाद का भी स्वर था—पहाड़ का या जंगल का या फिर शैवाल लगे पत्थर के गीत का विषाद।

जो लोग तस्वीर ले रहे थे वे कभी-कभी मुख्यमंत्री के चेयर के पीछे आकर खड़े होते थे और फुसफुसाकर कुछ कह जाते थे। किसी के पीछे खड़े होने का आभास मिलने पर मुख्यमंत्री ने पीछे मुड़कर देखा। एक अधेड़ आदमी, विभिन्न कार्यक्रमों के चलते मुख्यमंत्री जिसे पहचानते थे, ने कहा, "सर, एक मुश्किल में पड़ गया हूँ।"

"क्या हुआ ?"

"दरअसल, हमलोग एक कैमरा ही लाए हैं। और इन लोगों ने बटन दबाने के लिये अलग डायस बनवाया है। आपके दबाने का शॉट लेने के बाद, दौड़कर स्लूइस गेट खुलने का शॉट लेना नहीं हो पाएगा।"

"तो मुझे क्या करना पड़ेगा।"

"स्लूइस का शॉट लेने के लिये तो वहाँ पहले से ही कैमरा फिट करके रखना पड़ेगा। यह शॉट, सर, जुलूस के भीतर से ही लेना पड़ेगा। धक्का लग सकता है।"

"पहले से फिट कर लीजिए।"

उस सज्जन ने थोड़ा हँसकर कहा, "आप अगर यहाँ से एकबार चलकर उस बटन को दबाने वाले डायस तक जायें, वहाँ जाकर एक बार खड़े हो जायें तो हमलोग बटन दबाने का शॉट अभी लेकर नीचे चले जा सकते हैं।

"ओ, ऐक्टिंग करना पड़ेगा ? जाइए, आप लोग अपना यंत्र-वंत्र लगाइए।"

"हम लोग लगा आए हैं, सर।" सुनकर मुख्यमंत्री खड़े हो गये, फिर तेज़ क़दमों से दाहिनी ओर बटन वाले मंच की ओर बढ़ गये—बटन दबाने का पोज़ दिया। एक साथ जैसे बहुत सारी घड़ियों की टिक-टिक आवाज़ की तरह कैमरे के शॉट की टिक-टिक, फटाफट आवाज़ आने लगी। "सर, हाथ ज़रा हिलाइए, सर।" मुख्यमंत्री ने हाथ हिला दिया।

217
मदारी की माँ का अपने बच्चों को ढूँढ़ना

भाषण से मीटिंग जम गई।

मंच पर एक-एक वक्ता आते रहे कोई बहुत देर तक नहीं बोलता, लेकिन एक के बाद एक वक्ता के भाषण देकर जाने का मतलब था यह भाषणबाज़ी काफ़ी देर तक चलेगी।

कलकलाती नदी, हवा का गर्जन और फॉरेस्ट की प्रबल ध्वनि जैसे स्लोगन

की आवाज़ को ही बदल दे रही थी उसी तरह भाषण की आवाज़ को बदल देती थी। नदी के स्रोत की तरह ही हवा पूरब से पश्चिम की ओर चल रही थी। बड़े-बड़े स्पीकरों का मुँह भी पश्चिम की ही ओर था। उन स्पीकरों से निकलती हुई आवाज़ हवा के साथ मिलकर सभा में फैल जाती थी। इसके अलावा नदी के ऊपर की हवा जलस्रोत की तरह मिट्टी को अपने साथ नहीं ले जाती थी। पूरब की हवा नदी पर से बेलगाम बहती जा रही थी। स्पीकरों से निकली हुई आवाज़ भी हवा के धक्के से बेपरवाह होकर निकल जाती थी। इसलिये वक्ताओं की बातें स्पीकरों से अलग-अलग तरह से निकल कर अपनी ही तरह से सभा में फैल जाती थी और उसी तरह निकल जाती थी जैसे तिस्ता के पानी में कुछ गिरे तो वह बहकर निकल जाता है।

मदारी की माँ मीटिंग में घूम-फिर रही थी। इतने लोग आये थे कि लगता था जैसे दस मदारीहाट इस मीटिंग में समा जायेंगे। हाट में दुकान के लिये जगह छोड़नी पड़ी थी, ग्राहकों के चलने-फिरने के लिये भी रास्ता छोड़ना पड़ा था। लेकिन यहाँ तो लोग एक दूसरे से एकदम सट-सट कर बैठे थे, खड़े थे—जैसे जंगल के पेड़। एक पेड़ का दूसरे पेड़ से कोई-न-कोई संयोग रहता है।

मदारी की माँ भी तो आदमी ही है। उसे लोगों की आवाज़, लोगों के चमड़े की गंध, लोगों का सब कुछ खूब अच्छा लग रहा था। अब जब वह जुलूस में ही गई थी, इतने लोगों की भीड़ में वह रह भी पा रही थी तो यह सब अच्छा लगने की मानसिकता को वह भरपूर जी लेना चाहती थी।

लेकिन लोगों की उपस्थिति अच्छी लगते-लगते, उनकी आवाज़ सुनते-सुनते, लोगों की गंध सूँघते-सूँघते मदारी की माँ अपने लड़के को ढूँढ़ रही थी। यहाँ तो दुनिया भर के लोग हैं। इतने सारे लोगों को एक साथ मदारी माँ ने कभी नहीं देखा था। अब उसकी जितनी ज़िंदगी बची है उसमें ऐसी मिटिंग में वह फिर कभी नहीं आ पायेगी। आज का जुलूस इतना बड़ा है और उसे मदारीहाट से इतनी दूर आना पड़ा है—उसने कभी सोचा भी नहीं था। यह ज़गह अपरिचित होने पर भी—इतनी बड़ी नदी अगर उसने कभी न भी देखा हो पर तोसी नदी का पानी और चर देखा है और नदी के पास का फॉरेस्ट भी देखा है। लेकिन यहाँ आते हुए रास्ता देखकर उसे लग रहा था कि वह इतनी दूर जा रही है कि शेवड़ाझोरा अब लौटा नहीं जा सकता। मदारी की माँ भले ही देश नहीं समझती लेकिन विदेश जानती है। इतनी दूर विदेश में वह क्या फिर कभी आएगी ? तो क्या वह यहाँ अपने बच्चों को एकबार नहीं ढूँढ़ेगी ? उसके आठ-दस बच्चों में दो-एक तो मीटिंग में आए ही होंगे।

मदारी की माँ बड़े नियम से उन्हें ढूँढ़ रही थी ऐसा नहीं है। इस मीटिंग में कहाँ-कहाँ से लोग आये थे यह भी वह नहीं जान पायेगी। उसके बच्चे

कहाँ-कहाँ गये हैं यह भी वह नही जानती । फिर वह जगह के मुताबिक उन्हें कैसे ढूँढ़ेगी ? उसे इन हज़ारों लोगों के बीच धीरे-धीरे घूम-घूम कर देखना पड़ेगा, जैसे वह हर रोज फॉरेस्ट में अपने खाद्य पदार्थों की खोज में दूर-दूर तक चौकस होकर चलती है। अकेले-अकेले चलना और ढूँढ़ना। ढूँढ़ने के लिये चलना ही उसका जीवन है।

लेकिन यहाँ फॉरेस्ट का अँधेरा नहीं था। यहाँ सूखे पड़े पत्ते नहीं थे। यहाँ लता-पत्ते जंगल के आड़ में नहीं थे। यहाँ गीली मिट्टी भी नहीं थी। यहाँ आकाश में धूप सीधे मिट्टी पर पड़ रही थी—कहीं किसी बादल की परछाईं बाधा नहीं बनी थी। इतने बड़े आसमान से इतनी धूप इतने दूर तक पड़ रही थी काफ़ी देर तक देखा नहीं जा रहा था। यहाँ, सामने आकाश तक चौड़ी एक नदी के दो टुकड़े कर सीमेंट की दीवार आसमान तक खड़ी कर दी गयी थी। यहाँ पैर के नीचे सख़्त मिट्टी थी, हरी घास की मिट्टी। यहाँ यह धूप, यह हवा, यह नदी और यह पानी—इन सबके सामने हज़ारों चेहरे थे। सब चेहरे एक ही तरफ मुँह उठाए हुए थे। सामने मंच की ओर देखने के लिये गर्दन थोड़ा उठाना ही पड़ता था। मंच पर बैठे लोगों की आँखें यहाँ से नहीं दिखती थीं लेकिन उनका हाथ हिलाना समझ में आता था। उन हज़ारों ऊँचे उठे चेहरो को अलग-अलग ठीक से देखने का मौक़ा मदारी माँ को कैसे मिलेगा ?

इसलिये मदारी की माँ चलती है। उसका अपना रोज़मर्रा का चलना यहाँ भी जारी है। हर रोज जल्दी-जल्दी चलती है। लेकिन आज धीरे-धीरे। किसी बात की जल्दी नहीं है। जो ढूँढ रही है वह ढूंढ़ती जाती है। हड़बड़ाने से ही मिल जायेगा, ऐसा नहीं है। सिर्फ़ ज़िंदा रहने के लिये ज़रूरी भर खाद्य सामग्री फॉरेस्ट से जुगाड़ करती है। लेकिन वहाँ भी प्रयासहीन, थकानरहित चलना ही होता है। वैसे ही वह यहाँ भी चलती है। लेकिन हथियार के रूप में उसके हाथ में वह डंडा नहीं है, जो नीचे की ओर एक समकोण बनाता है, जिसे वह सिर पर रखकर तलवार की तरह उतार सकती है। अभी उसके हाथ में कोई हथियार नहीं है, सिर्फ़ दो आँखें हैं, आँखों में वह रोशनी है। इतनी कड़ी धूप में, हवा के लिये खुले इस जगह में, इतने लोगों की भीड़ में वह आँखों पर इतना ज़ोर दिए बिना भी चलता।

मदारी माँ चलते हुए उन व्यग्र चेहरों की ओर देखती रहती है। कितनी बार उसका गर्भ ठहरा इसका ठीक-ठीक हिसाब लगा पाना उसके लिये संभव नहीं है। उसने कभी अपने बच्चों का हिसाब रखा भी नहीं। लेकिन एक बच्चे के बिना उसका चलता भी नहीं है। और उसके बच्चे हैं कि ज़रा लंबाई बढ़ी नहीं कि छोड़कर चल दिये। तब उसका एक और बच्चा आ ही जाता है।

मदारी की माँ अपने उन सब बच्चों को ढूँढ़ रही है।

यह एक-एक का मुँह देख रही है—वे सब चेहरे उसके परिचित राजवंशी चेहरे हैं। उसे एक अंदाज़ तो है कि उसके बच्चों की उम्र अब कितनी हो सकती है। इसलिये उसी अंदाज़ से उन वयस्क चेहरों को एक झलक देखकर वह हट जाती है। अंदाज़न उसके बच्चों की उम्र सीमा के भीतर आनेवाले चेहरे की तरफ़ थोड़ी देर देखती है।

इसी तरह चलते-चलते मन ही मन मदारी—माँ बच्चों की बातों को याद करती रहती है। नेपाली बड़े बेटे और उसके बाद मदेशिया बेटे की बातें एक-एक कर उसे याद आती है। लेकिन फिर सब गड़बड़ा जाता है। कौन पहले हुआ था—वह मिलीटरी या फिर वह राजवंशी देउनिया—ठीक-ठीक याद नहीं कर पाती वह। बच्चे किसी भी उम्र के हो सकते हैं।

मदारी माँ एक के बाद एक गोरखा चेहरा देखती जाती है।

वे सारे छोटे-छोटे चेहरे उसके काफ़ी परिचित हैं। उम्र का अंदाज़ा नहीं लग पाता है। इसलिये किसी भी चेहरे को वह छोड़ नहीं पाती और अचानक एक-एक चेहरे के आगे खड़ी हो जाती। कहाँ, कितनी दूर उसके बच्चे चले गये कि दुनिया भर के लोगों के इस जुलूस में भी वे नहीं आये। उसके एक-दो बच्चे मीटिंग में होंगे ही, बस ढूँढ़ना पड़ेगा, जैसे कि वह हर रोज अपना खाना ढूँढ़ती है। बड़ी सावधानी से अपनी नज़र इस चमकती हुई धूप में क्षितिज तक दौड़ाती है।

इन सब के बीच एक ज़ोरदार जयघोष हुआ। स्लूइस गेट से कृत्रिम बाँध से तिस्ता का पानी अपनी स्वाभाविक गति की अपेक्षा कई-कई गुना तेज़ वेग प्रवाहित होने लगा। आसमान को छूने के लिए इसके फेन उठने लगे। यह दृश्य एकदम-से भविष्य का प्रतीक बन गया। मदारी की माँ ने उस मुक्त फेन वाली जलराशि की ओर नहीं देखा। उसके लिये यह बैरेज, यह स्लूइस गेट, यह नदी नियंत्रण, यह मंच और यह जयघोष कोई मायने नहीं रखता। तिस्ता का पानी वैसे भी उसके शेवड़ाझोरा तक नहीं जाता। बैरेज बन जाने पर भी नहीं जायेगा। लेकिन इस जल राशि को, इन नये तिस्ता का स्वागत करनेवाले जयघोष मुखर चेहरे उसके लिये ज़्यादा प्रासंगिक थे। उनके 'मुख अरण्य' में उसके बच्चों का चेहरा भी था। उसे ढूँढ़ना होगा। मदारी-माँ को उसे धीरे-धीरे ढूँढ़ निकालना होगा। फॉरेस्ट के भीतर वह जिन क़दमों से अपना खाना ढूँढ़ती है उन्हीं क़दमों से उसे आज अपने बच्चों को ढूँढ़ना होगा।

मदारी-माँ एक के बाद एक मदेशिया चेहरा देखती जाती—अपने बच्चे का समवयसी चेहरा—इस चेहरे की लंबी गठन काफ़ी पहचानी लगती है, जोड़ा सिर जबड़ों की चौड़ी हड्डी जानी-पहचानी-सी थी।

218

मदारी-माँ का स्वराष्ट्र प्रत्यावर्तन : अंत्य सर्ग का आख़िरी अध्याय

आधी रात बीत जाने के बाद ट्रक नेशनल हाईवे से होते हुए तेज़ गति से मदारी हाट के हाटखोला में जाकर रुक गयी। लेकिन उसका स्टार्ट बंद नहीं हुआ। ट्रक में भरे पड़े मर्द-औरतों को ट्रक के अचानक रुकने से जो झटका लगा उससे उनकी झपकियाँ टूट गयीं। ट्रक के भीतर एक कोने से क्लीनर उनींदी आवाज़ में बोला, "कौन उतरेगा, मदारीहाट में। उतर जाओ।'

मदारी माँ ट्रक के पीछे बैठी थी। उसने वहीं से खड़ी होकर देखा। क्लीनर ने थोड़ा जगकर कहा, "इधर से उतरिये, इधर से।" कहकर क्लीनर उठकर खड़ा हो गया। पूरी ट्रक को पार करके मदारी माँ को उतरना पड़ेगा।

वह बायीं ओर से बढ़ते-बढ़ते चक्के के पास जाकर रुक गयी। फिर डाला पकड़कर बायें पैर को चक्के पर रखी, "अरे अरे रे, गिर जाइयेगा, गिर जाइयेगा।" क्लीनर की बात सुनते-सुनते दाहिने पैर को भी उसने चक्के पर रखी। फिर चक्के पर से बायाँ पैर मिट्टी की ओर बढ़ा दिया—ट्रक का डाला पकड़ कर जितना संभव था झूल गयी। तब तक मदारी माँ उतर कर खड़ी हो गयी। क्लीनर ने उसे ठीक से देखकर ड्राइवर के केबिन में थपथपाकर मारा। एक आवाज़ करते हुए ट्रक सीधे निकल गयी—उसकी आवाज़ की प्रतिध्वनि गूँजती रही। मुडते ही ट्रक की लाल बत्ती मदारी माँ को दिखायी नहीं दी—लेकिन आवाज़ काफ़ी देर तक सुनायी पड़ती रही। और वह उसे सुनती भी रही।

मदारी-माँ की गाड़ी खो चुकी थी। आख़िर मे एक लड़के ने उसे ढूँढ़कर इसी ट्रक में चढ़ा दिया था। यह ट्रक मदारीहाट से होकर फालाकाटा की ओर जायेगी।

ट्रक के चले जाने के बाद मदारी माँ उस सुनसान रात में मदारीहाट के इस जगह पर खड़ी होकर इधर-उधर देखने लगी। मदारी पहले से आकर यही कहीं बैठा हो सकता है और वह उसे देखकर 'माई रे' कहकर बुला सकता है इसीलिये मदारी माँ ने अपने आपको दृश्यमान किये रखा—इस रात के अँधेरे में जितना संभव था।

मदारी उसके इंतज़ार में इस हाटखोला में अगर कहीं बैठा ही होता तो ट्रक रुकते ही चला आता। हाँ, अगर सो न गया हो तो।

मदारी माँ ने रास्ता छोड़कर रास्ते के किनारे दो-एक दुकान के बरामदे में देखने लगी। घोष मोशाय की दुकान का शटर गिरा हुआ था। बाहर से ही मदारी माँ ने पुकारा, "ऐ रे मदारी, मदारी, ऐ रे मदारी।" एक कुत्ता अँधेरे से चुपके से निकलकर मदारी माँ के कमर को छू गया। क्या वह खाना चाहता है या

उसका साथ या फिर उछल कर हमला करेगा—समझ नहीं आया।

मदारी माँ ने बुलाया, "ऐ रे मदारी, मदारी रे, मदारी !"

इस बार भीतर से बहादुर ने उनींदी-सी आवाज़ में जवाब दिया, "मदारी त गाड़ी में आसि नाहीं।"

आता तो बहादुर की गाड़ी में ही आता। तो क्या मदारी और बहादुर का भी साथ छूट गया था ? कुत्ते की गरम साँसें मदारी की माँ के शरीर पर लग रही थीं। मदारी माँ ने फुसफुसाकर पूछा, "मदारी कहाँ हय ?" एक ही बार पूछा। वह जानती थी इस सवाल का कोई जवाब नहीं मिलेगा। इसलिये थोड़ी देर रुकने के बाद फिर से रास्ते पर चली गयी।

अब वह शेवड़ाझोरा की तरफ़ निकल पड़ी। उसका चलना हर रोज़ के चलने जैसा नहीं था। क्योंकि अभी उसे कुछ खोजना नहीं है—इस सुनसान अँधेरी रात में। अभी उसे मीलों पैदल चलकर शेवड़ाझोरा लौटना होगा—तब तक रात के कुछ घंटे बीत जायेंगे। कितना मील उसे चलना है, वह नहीं जानती—जब तक वह पहुँच नहीं जाती तब तक उसे चलते जाना है।

वह समझती थी, कुत्ता उसके साथ-साथ चल रहा है—किसकी गंध है कौन जाने ? एक बार भी आवाज़ नहीं आयी। बीच-बीच में दो-एक क़दम पीछे हट जाता है, शायद मिट्टी सूँघ रहा था—मदारी-माँ ने कुत्ते की सांस से अनुमान लगाया। कभी-कभी कुत्ता अपनी गर्दन ऊँची कर मदारी-माँ के बदन को सूँघता।

मदारी नहीं लौटा। बस या ट्रक की ही कोई गड़बड़ी हुई होगी—जैसा कि मदारी-माँ ने खुद किया है। अगर ऐसा नहीं हुआ है तो मदारी-माँ की तरह वह किसी और गाड़ी से नहीं आ जाता ? बहादुर का साथ मदारी ने छोड़ा क्यों ? वैसे ही क्या वे बिछुड़ गये हैं। या मदारी को देखभाल के साथ वापस ले आने की ज़िम्मेदारी बहादुर को किसी ने नहीं दी।

हो सकता है, मदारी चला गया है, अब वह कभी नहीं लौटेगा। इतनी जगहों से इतनी सारी गाड़ियाँ आई हैं, इतने सारे लोग, इतने काम। पहाड़ बाँधकर नदी के बाढ़ को रोक दी जाती है, फिर हुआ तो बाढ़ का पानी छोड़ दिया जाता है बाढ़ का पानी भी नदी की चौड़ाई से निकलकर नहीं बह सकती—यह सब देख लेने के बाद मदारी फिर कभी लौट नही सकता। उसके बच्चे हासीमारा, सिलीगुड़ी, नेपाल—जैसी जगहों पर चले गये हैं मदारी को उस तरह जाना नहीं पड़ा—वह अपनी माँ के साथ उतनी दूरी पर एक बार एकदम भीतर जाकर वहीं रह गया।

सड़क जहाँ फॉरेस्ट में चली गयी थी। वहाँ जंगल के पेड़-पौधे रास्ते तक फैल गये थे। पत्तों से ढँकी वह सड़क एक गुफानुमा दिखती थी। एक अँधेरी गुफा। वहाँ लगभग सीमा तक जाकर कुत्ता खड़ा हो गया। मदारी माँ की नाक

में फॉरेस्ट की तेज़ गंध लगने लगी। हरियाली की, अमोनिया की। कुत्ता भी इसीलिये रुक गया। आदमी लोगों के साथ रहने वाला कुत्ता इस गंध में जाने से डरता है। इस गध में काफ़ी छाँह थी, बहुत आवाज़ थी, इसकी गंध भी तेज़ थी। मदारी माँ के बदन से कुत्ता अरण्य के जन्म-जन्मांतर की गंध पाकर ही उसके साथ चल पड़ा था।

उस अँधेरी गुफा जेसे रास्ते से मदारी की माँ धड़ाधड़ निकलती जा रही थी। इस गंध में भीतर और भीतर चलती जाती थी। उसके चलने से पैर के रास्ते से घर्षण होने से जो तीव्र आवाज़ निकलती थी उससे जंगल की आवाज़ उसके कानों तक नहीं पहुँच पाती थी। उसका ध्यान उधर है भी नहीं।

निशाचर पशु की तरह मदारी की माँ को सधे क़दमों से उन उबड़-खाबड़ रास्ते को पार कर अपने शेवड़ाझोरा के पानी में भींगे नेशनल हाइवे पर खडा होना पड़ा। उसके सामने का अँधेरा एक समूचे पत्थर की तरह पड़ा हुआ था। कुछ देर तक देखते रहने पर उस पत्थर ने एक दूसरा आकार ले लिया। उसके शेवड़ा पेड़ की जो शाखा ऊपर उठ गयी थी वह अँधेरे में सूँड़ उठाये हुए हाथी की तरह और जो शाखा नीचे उतर गयी थी। वह अँधेरे में झरने से हाथी के पानी पीने जैसी दिखती थी।

मदारी-माँ के लिये यह सब कोई मायने नहीं रखता। यह राष्ट्रीय सडक थी इस सड़क से हर रोज़ यह भारतवर्ष, यह नदी, यह बैरेज, यह बाढ़ गुजरती है। इस राष्ट्रीय सड़क के पास ही से उसकी अपनी नदी, अपना पेड, अपना पत्थर और उस पत्थर से शेवड़ाझोरा बना है। उसका अपना तैयार किया हुआ वह आख़िरी इंसान भी था। लेकिन आज से शायद वह भी नहीं है।

मदारी माँ कमर लचकाकर सड़क की चौड़ाई पारकर अपने पत्तोंवाली घर की ओर बढ़ने लगी।

मीलों दूर से उसी कुत्ते के ज़ोरदार रोने की आवाज़ अब तक लगातार उस अँधेरी गुफा जैसी राष्ट्रीय सड़क से आ रही थी—जबकि इस फॉरेस्ट में आदमी के पाले हुए पशु का प्रवेश निषेध था।

बाक़ी रात के लिये मदारी-माँ अपने पत्तों वाले घर में प्रवेश कर गयी। यह वृत्तांत यही ख़त्म कर देना अच्छा है। सभी वृत्तांत एक उचित जगह पर ख़त्म करने पड़ते हैं। इस वृत्तांत के लिये यह काफ़ी उचित जगह है। मदारी-माँ के लिये इतनी दूरी की यात्रा ख़त्म कर घर लौटना पड़ा था—अकेले। मदारी नहीं लौटा।

यहाँ ख़त्म नहीं किया गया तो यह वृत्तांत चलता ही रहेगा—दूसरे दिन, उसके दूसरे दिन, फिर उसके दूसरे दिन।

कारण मदारी-माँ भारतवर्ष की अस्सी करोड़ की आबादी में उन छह-सात

करोड़ में से एक है जो जंगल के पशुओं के नियम के तहत ज़िंदा रहते हैं। 'ग़रीबी रेखा' या 'पिछड़ा वर्ग' जैसे शब्द उन्हें छू तक नहीं सकते।

इसलिये मदारी-माँ का हर रोज़ ज़िंदा रहना ही एक आज़ाद, सार्वभौम, स्वावलंबी होकर ज़िंदा रहना है। उसका ज़िंदा रहना रोज़ का रोज़ ज़िंदा रहना नहीं है बल्कि उसका ज़िंदा रहना हर रोज़ एक पूरी ज़िंदगी जीना है। एक पूरी इंसानी ज़िंदगी को जीना है। उसी ज़िंदा रहने के नियम के तहत वह तिस्ता बैरेज, कावेरी बैरेज, हीराकुंड डैम, भाखड़ा नांगल की टक्कर में एक शेवड़ाझोरा बना सकती है। उसी ज़िंदा रहने के नियम से हर रोज़ भारतवर्ष गुज़रता है—ऐसी एक सड़क के पास अपना एक राष्ट्र क़ायम कर सकती है।

लेकिन इसको लेकर गर्व करने जैसा कुछ नहीं है। मदारी-माँ की ग़रीबी पर गर्व करने जैसा कुछ नहीं है। मदारी-माँ की ग़रीबी पर गर्व करने लायक कुछ भी नहीं है बल्कि बहुत बड़ा अपमान ही है।

उस अपमान के अलगाव को विद्रोह का अलगाव समझने में, उसके संक्षिप्त वृत्तांत की रचना में थोड़ा झूठ तो रह ही जाता है। भारत में जो क़लम और काग़ज़ का इस्तेमाल करना जानते हैं, हमारी तरह, वे यह नहीं जानते कि भारत के उन छह-सात करोड़ जनता की ग़रीबी को किन अक्षरों में व्यक्त किया जाये। इसलिये अक्षर ज्ञानविहीन इस वृत्तांत को जितना लिखा जायेगा, उसमें झूठ उतना ही अधिक होगा—"उसके लिए विस्तार झूठा है जो विस्तार से कहता है।"

इसलिये यह वृत्तांत यहीं, ऐसे ही एक उचित जगह पर ख़त्म हुआ।

मदारी-माँ ने अपने पत्तोंवाले घर में रात के बाक़ी कुछ घंटे अपने आख़िरी बेटे के बिना बिताये।

□□

परिशिष्ट

219
इस गाथा को लिखने और इसे ख़त्म करने की वज़ह

तिस्ता पार की कहानी ख़त्म हुई।

पहाड़ से मैदानी इलाके में उतरने के बाद तिस्ता की चौड़ाई मात्र कुछेक मील है। पर वह भी भारतीय संघ और बांग्लादेश के बीच बँट गयी है। लेकिन उन्हीं कुछेक मील के भीतर जोतसर्ग, वनसर्ग, चरसर्ग, फॉरेस्ट का वृक्षसर्ग, बैठक-जुलूस सर्ग, तिस्ता बैरेज सर्ग—इन सबमें बँटे हुए हैं। दरअसल, ये सब अलग-अलग चिह्न हैं। इन सारे चिह्नों को आधार बनाकर नदी उपन्यास के भीतर से होकर गुज़रती है। और इन्हीं सब चिह्न को देखकर हम लोग उपन्यास के भीतर प्रवाहमान नदी के रू-ब-रू होते हैं।

उस आदिसर्ग के बहुत सारे लोग अंत्यसर्ग मे तिस्ता बैरेज के उद्‌घाटन समारोह में शामिल थे। आदि सर्ग में तिस्ता के जल के पार आपलचाँद फॉरेस्ट के भीतर जो गाजोलडोवा गाँव का जिक्र पहली बार इस वृत्तांत में आया था, आदमी के द्वारा बनाया गया मैनाक का शिखर, जान पड़ता, तिस्ता के बैरेज में। इससे सचमुच एक वृत पूरा होता है। एक वृतांत की इति हो जाती है

दरअसल, ऐसा हुआ नहीं। इस वृत्तांत को लिखते हुए पूरे समय तक तिस्ता बैरेज का काम चलता रहा। अभी भी वह काम पूरा नहीं हुआ है। इस वृत्तांत मे जब पहले गाजोलडोवा गॉव में तिस्ता पार के सर्वे का क़िस्सा लिखा जा रहा था तब इसका अंदाज़ा नहीं था कि यही गाजोलडोवा तिस्ता बैरेज का मुख्य केन्द्र बनेगा। इस वृत्तांत में तिस्ता बैरेज के उद्‌घाटन की बात जब लिखी गयी थी—तब उद्‌घाटन का होना यहाँ तय नहीं था। लेकिन कुछ दिन बाद इस वृत्तांत के वर्णन के मुताबिक उद्‌घाटन समारोह का आयोजन हुआ। इस वृत्तांत में किसी व्यक्ति या घटना या इतिहास को शामिल नहीं किया गया। बल्कि इस वृत्तांत से बाहर निकल कर बार-बार कोई घटना घटती ही जा रही है। कुछ तो इतिहास भी बन गयी है। उपन्यास की तरह इस बैरेज का भी एक सृष्टि कर्म है। इसलिये सृष्टि के कारण ही यह दोनों घटनाएँ घटी हैं—यह बैरेज और यह गाथा—बार-बार एक ही जगह लौट आते है। जब लौट ही आते हैं तब उसके यहाँ लौटने से पहले यह वृत्तांत पूरा नहीं किया जा सकता।

इस गाथा के पूरा होने के बाद नये किसी सर्ग की शुरुआत संभव नहीं।

बैरेज के उद्‌घाटन के साथ ही साथ इस गाथा की तिस्ता नदी इतिहास बन गयी। अब यह तिस्ता पुरानी तिस्ता नहीं रह गयी। अब प्रकृति के इस नदी का लोगों के हाथों पुनर्जन्म हो गया। हिमालय की बर्फ़ गलने और मौसमी बादल से तिस्ता का पानी जितना भी बढ़े उसका बहाव आदमी के निर्धारित नियम और गति से चलता रहेगा। अब चर भी आदमी की मर्जी से बनेगा। उस चर में हरियाली बिखेरती नदी उसके किनारे से आदमी के बनाये मार्ग से अनुशासित होकर बहती रहेगी। तिस्ता को लेकर कोई उपकथा अब नहीं बनेगी। तिस्ता बैरेज बन जाने के बाद तिस्ता का प्राकृतिक जीवन ख़त्म। अब यह मानवीय नदी है। तिस्ता अब अपने मानवीय इतिहास मे प्रवेश करेगी। बूढ़ी तिस्ता कुवाँरी बन जायेगी।

यह तिस्ता पार का वृत्तांत उसी प्राकृतिक तिस्ता के साथ लोगो के सह-अस्तित्व की राजनीति का इतिहास है। गयानाथ के साथ तिस्ता का सह-अस्तित्व एक तरह की रांजनीति ही तो है, निताइयों के साथ दूसरे तरह की और सीमा सुरक्षा वाहिनी के साथ भी अलग तरह की। बाघारू को राजनीति के नाम की कुछ नहीं। तिस्ता अपने नदीत्व की तरह प्राकृतिक है। अब वह पानी के सिवाय कुछ नही। बाघारू अपने मानव स्वभाव में प्राकृतिक है—वह सिर्फ़ आदमी है। आदमी से अलग उसका कोई परिचय नही।

इस वृत्तांत का लेखन यहीं ख़त्म हुआ। तिस्ता बैरेज को पूरा हांने मे और कुछेक साल लगेगा। तब उस नये, आदमी के बनाये नदी के साथ लोगो के सह-अस्तित्व की राजनीति मे एक बार फिर आमूल परिवर्तन होगा। कितना द्रुत और और किस हद तक आमूल चूल यह बदलेगा—बदलने के पहले हम लोग इसका अंदाज़ा भी नही लगा सकते, बदलने के बाद इसके बदलाव का हिसाब भी नहीं लगाया जा सकता।

बैरेज का पानी रोक कर बहुत सारी नयी ज़मीन मे खेती संभव होगी। बैरेज से पानी छोड़ने से कितनी नयी ज़मीन पर फ़सल उगेगी। दूसरी बात कचुआ के साथ मंगलघाट का कोई फर्क नही रह जायेगा। वह मंगलघाट मे ही मिल जायेगा। निताइयों का चर भी शायद नहीं रहेगा। बैरेज के करीब इतना बड़ा चर नहीं छोड़ा जायेगा। किन्तु इसके बदले तिस्ता के बायें या दाहिने तिस्ता को हटाकर नयी ज़मीन निताइयों के लिये नया गाँव बसाया जा सकता है। दहग्राम, गलियारा को लेकर बाङ्‌लादेश से बातचीत कर अपनी सीमा का निर्धारण स्थलभाग से किया जा सकता है।

तिस्ता बैरेज के कारण तिस्ता के साथ गयानाथ के सह-अस्तित्व की राजनीति में सबसे ज़्यादा बदलाव आयेगा। वह पुराने कुछ केस जीत जायेगा। और कुछ हार जायेगा। कुछ नया केस भी कर सकता है। लेकिन सबसे जल्दी वही सारा खेल समझेगा—बैरेज का मतलब क्या है ? फॉरेस्ट डिपार्टमेंट के साथ

बँटवारे के मामले को जीतने के बावजूद उसे मुट्ठीभर ज़मीन ही हासिल होगी। साथ में कुछेक शालवृक्ष। और तिस्ता बैरेज के कारण एक ज़मीन पर तीन फ़सल उसे मिलेगी। बैरेज के चलते उसे पानी मिलेगा, बाढ़ की अनिश्चितता से मुक्ति के अलावा कैमिकल, खाद और ट्रैक्टर—तीन फ़सलों की उगाही के लिये। गयानाथ पावर ड्रीलर खरीदकर उसे किराये पर देगा। गयानाथ के ढोर-डांगर कम हो जायेंगे, ज़मीन भी कम हो जायेगी, बाघारू भी—लेकिन फ़सल खूब उगेगी, उनकी बिक्री भी बढ़ जायेगी, फ़ायदा भी खूब होगा।

और इसी बैरेज के चलते गयानाथ राधावल्लभ कृषक समिति के बहुत क़रीब आ जायेगा। खास ज़मीन को लेकर गयानाथ और राधावल्लभ के बीच कई बार झगड़ा-झमेला, मार-पीट की नौबत आ गयी है। पुराने तिस्ता और इस वृतांत के तिस्ता में संपत्ति की जोतदारी थी। नये तिस्ता में, इस वृत्तांत के बादवाले तिस्ता में फ़सल की जोतदारी शुरू होगी। संपत्ति के जोतदारी में राधावल्लभ के साथ गयानाथ का टकराव था। फ़सल की जोतदारी में गयानाथ और राधावल्लभ के बीच सहकर्मी का रिश्ता है। गयानाथ के पावर ड्रीलर के बिना राधावल्लभ की गति नहीं। दूसरी तरफ़ गयानाथ अपनी ज़मीन से तीन-तीन फ़सलों की उगाही करेगा, साथ ही कृषक समिति के भेस्ट ज़मीन पर भी तीन-चार फ़सल काटेगा। गयानाथ और कृषक समिति तब एक साथ नेशनल हाइवे पर बैठते हैं—'रास्ता रोको' और जेल भरो' आंदोलन करने के लिये। आंदोलन के सारे नियम राधावल्लभ की कृषक समिति को पता है, उन्हीं नियमों के बलबूते पर गयानाथ और कृषक समिति सरकार से कृषि के ज़रूरी सामानों उचित मूल्य पर हासिल करने के लिये आंदोलन करेगी। वे उत्तरप्रदेश और महाराष्ट्र खेतिहारों की तरह आंदोलन करेगी।

बैरेज के चलते तिस्ता पार का फॉरेस्ट बदल जायेगा, आपलचाँद भी बदल जायेगा। ये सारे फॉरेस्ट तो लोगों की योजना की तरह फैले हैं लंबे समय तक बारिश के फलस्वरूप तिस्ता के आसपास तराई डुआर्स में तभी से घने जंगल बन गये हैं। जंगल जितना घना हो रहा है जंगल के पेड़ भी उतने ही लंबे-लंबे हो रहे हैं। एक-एक जंगल, सेगुन, अर्जुन, कत्था के पेड़ दशकों से बढ़ रहे हैं। और इसी तरह बढ़ते-बढ़ते, स्थाई होते-होते यह अरण्य प्राकृतिक हो उठी है। उसमें से पेड़ को काट कर बेचा जाने लगा। देश-देशांतर में यहाँ के शाल वृक्षों की ख्याति पहुँच गयी है। लेकिन कुछ नये वृक्ष भी लगाये गये हैं। हमें आज़ाद हुए ही तो मात्र चालीस साल हुए हैं। एक शालवृक्ष को तैयार होने में चालीस साल का समय तो लगता ही है।

बैरेज पानी देगा, बैरेज बाढ़ रोकेगा—फिर इन हज़ारों साल की उम्रवाले पेड़ों का क्या होगा ? ये सारे पेड़ काट दिये जायेंगे। उनके स्थान पर नये पेड़

लगाये जायेंगे। ये सारे पेड़ बहुत जल्दी बढ़ते हैं, घने होते हैं, और इसलिये जल्दी ही बिक्री भी हो जाती है। युक्लिप्टस इस बारिश-बदलीवाली जगह में अच्छे नहीं होते। लेकिन दूसरा कोई नया पेड़ लगाया जा सकता है। उन पेड़ों से स्थानीय कोई उद्योग भी लग सकता है।

जंगल में बदलाव के साथ जीव-जंतु भी बदल जायेंगे। हिरण को अगर यहाँ अपने लायक़ घास न मिले, उसकी नाक को उसकी चिर-परिचित गंध न लगे, उसे अगर इस वनभूमि में अपने आपको एकाकार करने की कोई प्रेरणा न मिले तो वह यहाँ कैसे रहेगा। गैंडे को अगर यहाँ छाँह न मिले, सड़े-गले पत्ते न मिले, लोट-पोट होने के लिये कीचड़ न मिले तो मायूस होकर पैर पटकते हुए किसी दूसरी राह पर चल पड़ेगा। हाथी दल-बल के साथ घूमते हैं। छोटे हाथी इसी झुंड के साथ रह कर सीखते हैं—पहाड़ के किस रास्ते से होकर उतरना है, किस नदी के किनारे से होकर आगे बढ़ना है। कहाँ से नदी पार करना है। कहाँ उसे सुस्वादु चालता वन मिलेगा, कहाँ बड़े-बड़े केले के पेड़ हैं—सब सीखता-जानता है। फिर जवान होकर वही झुंड कैसे अपने लिये रास्ता पहचानेगा। और फिर नये जंगल में नये पेड़ जल्दी-जल्दी बढ़ते हैं और उनकी बिक्री भी तुरंत हो जाती है। हाथियों के झुंड को उस जंगल मे जाते नहीं देखा जाता। शालवृक्ष का एक डाल तोड देने से एक और डाल निकल जायेगी। लेकिन इससे आर्थिक नुकसान कितना है। नगद नुकसान। उस नए जगल में हाथियों का झुंड अपना रास्ता बदल लेगा।

तिस्ता पार के इस जंगल में बहुत सारे बंदर हैं। इत्ना घना जगल, ऊँचे-ऊँचे पेड़ से लेकर झाड-झंखाड़ (अंडरग्रोथ) के कारण बंदरों को काफ़ी सुविधा है। एक क्षेत्र से पेड़ों के जरिये उछल-कूद कर अनायास दूसरे क्षेत्र में जा सकते हैं। पेड़ से भी ये बंदर कंद-मूल खा सकते हैं और जंगल की ज़मीन से भी उठाकर खा सकते हैं। लेकिन उस नये फॉरेस्ट में वन तो घना नहीं होता फॉरेस्ट ही ज़रूरी है। उस वन में यह जंगल भी संभवतः नहीं रहेगा—फॉरेस्ट ही ज़रूरी है। उस नये वन में पेड़ तेज़ी से बढ़ेंगे और बेचे जायेंगे। वे इतने कीमती हैं कि बंदरों को वहीं ज़्यादा देखा जाता है।

उस फॉरेस्ट में बहुत सारे पक्षी हैं। नये पक्षी दुनिया में बदल गये कौन जानता है। लेकिन पुराने पक्षियों की एक विशाल दुनिया में बदल गये हैं। ये बड़े-बड़े पेड़। और घने जंगल के कारण साँपों को काफ़ी सुविधा हो गयी है, ख़ासकर पाइथर साँप को। इन्हें यह सब छोड़ना पड़ेगा।

लेकिन तिस्ता पार के वृत्तांत में इतना बदलाव आ जायेगा—इससे बाघारू, मदारी की माँ और मदारी का क्या होगा ?

ये लोग क्या गयानाथ-राधावल्लभ-निताइयों की तरह नये तिस्ता, नये फॉरेस्ट

और नयी खेतीबाड़ी के साथ मिल जायेंगे ? या फिर वे लोग इन गैंडे, हिरण, हाथी के झुंड, बंदरों, पक्षियों और साँपों की तरह जंगल बदल लेंगे। इस नदी को छोड़कर दूसरे किसी नदी का किनारा ढूँढ़ेंगे।

सत्ता के पास इसका ज़रूर कोई जवाब है। बंदर से आदमी बनने के पाँच लाख सालों में जो मानव समुदाय उस आदि मानव समाज से आधुनिक मानव समाज के रूपांतर के मात्र हज़ार पाँचेक साल के साथ तालमेल नहीं रख पाया है। वे लोग पाँच हज़ार सालों में किसी एक जगह लग गये हैं। जिस तरह अंडमान-निकोबार के जारवा, मोंगी, सेंटीनल या केरल के गुट मानव; उसी तरह नदी-जंगल इन सब प्राकृतिक विषयों को बदलकर नये उत्पादन व्यवस्था तैयार कर रहे हैं। उसके साथ बाघारू, मदारी-माँ, मदारी लाल नहीं मिला पा रहे हैं। वे उस पुराने एक स्तर तक जाकर अटक गये हैं। उनके लिये अर्थशास्त्र में एक नया नाम तैयार किया जा सकता है, "उत्पादन व्यवस्था के आदिवासी, उपजाति, लेकिन ऐसे प्राणीशास्त्र के तत्त्व या तुलना से बाघारू समस्या को सँभाला नहीं जायेगा। हाँ, समस्या मान लेने पर समाधान का सवाल उठता है। इस गाथा का कोई पाठक ही अनुमान लगा सकता है कि नदी अभी कितना ही बढ़ले, फॉरिस्ट भी कितना ही बढ़ ले—बाघारू, मदारी-माँ, मदारी नहीं बदलेंगे। लेकिन क्या प्राणीशास्त्र में ऐसी कोई पद्धति है जिससे यह पहले से कहा जा सकता है कि कौन-कौन से समुदाय तालमेल नहीं बिठा पायेंगे या वे अटक जायेंगे ? मदारी-माँ और बाघारू तो पुराने उत्पादन व्यवस्था के हिस्से नहीं हैं। इसलिये उनके अटके रहने की कोई जगह भी नहीं है। और पुरानी उत्पादन व्यवस्था में वे कहीं थे भी नहीं, इसलिये नयी व्यवस्था में भी वे नहीं ही होंगे। मदारी माँ जहाँ है वहाँ रहते-रहते घास और पत्तों के साथ एकाकार हो जायेगी। लेकिन बाघारू और मदारी का क्या होगा ? आख़िर तक इनकी कोई गति नहीं हो पायेगी।

उस दिन बाघारू बड़ी मस्ती भरी चाल से चलता हुआ उद्‌घाटन मंच की ओर चला आ रहा था। मस्ती इसलिये क्योंकि गयानाथ ने उसे उत्सव में जाने को कहा नहीं था। मस्ती—इसलिये क्योंकि शारीरिक तौर पर इस नदी के भीतर से उगने वाले इस पहाड़ के प्रति वह अपनी ज़िम्मेदारी को महसूस कर रहा था। वह एकदम से गयानाथ का झंडा फेंककर नदी के बैरेज और बैरेज के पंडाल की तरफ़ बढ़ता है। अपलचाँद फॉरिस्ट और तिस्ता नदी में ऐसा कुछ नहीं घट सकता जो कि बाघारू के शारीरिक अनुभूति से परे हो। [illegible] भी ऐसा ही स्वभाव है। किसी बड़े घने पेड़ और पेड़ की शाखाओं के सुराखों और कोटरों जैसे अज़ीबोगरीब जगहों में अपना घोंसला बनाते हैं। जन्म जन्मांतर से घोंसलों में रहते हैं। एक पक्षी का जीवन इन पेड़ों की तुलना में कुछेक दिनों का है। इन पेड़ों को ये पक्षी कई-कई पीढ़ियों से पहचानते हैं। इसके बाद विशाल

पेड़ काट दिये जाने के बावजूद पक्षी अपना अभ्यास नहीं छोड़ पाते। वे आकाश की उस शून्यता को ही डाल और पत्ते समझ लेते हैं। बार-बार उड़कर बैठने आते हैं। वहाँ वह सचमुच का पेड़ नहीं है यह समझने के लिये पक्षियों को बारिश के दो-एक दिन भींगना ही पड़ता है। अपने शरीर से वे जान लेते हैं कि उनका पुराना आश्रय नहीं है। फिर नये पेड़ की तलाश करते हैं।

बाघारू उसी तरह दक्षिण से उत्तर की ओर बढ़ रहा है। जैसे वह है, बैरेज है और बैरेज का पंडाल है।

यहाँ से मंच पर पहुँचने का कोई रास्ता नहीं है। वी.आई.पी. के लिये गाड़ी रखने की जगह के पीछे जुलूस में आये लोगों के बैठने का इंतज़ाम है—फॉरेस्ट के एकदम भीतर। बहुत दूर तक जंगल साफ़ कर दिया गया है। बाघारू सीधे चला आ रहा था। उसके क़दमों की आहट में मुक्ति का छंद है। उसके कंधे पर कोई झंडा नहीं, हाथ-पैर आज़ाद है। वह आपादमस्तक खुला-खुला है। लेकिन फिर भी उस नग्नता में भी दारिद्र्य से वह बिल्कुल मुक्त है। बाघारू सीधा पैदल चलते-चलते बाँस के घेरे से सट जाता है। घेरे में सट कर उसे फाँदने लगता है।

तब तक पुलिस उसे समझाती है कि वहाँ उसे ऐसे जाने नहीं देगी वह। पुलिस बड़ी नम्रता से उसे दूसरा रास्ता दिखाकर आगे बढ़ा देती है। बाघारू को दाहिने घूमकर बाँस के घेरे को आगे ठेल कर फिर से फॉरेस्ट में घुसना पड़ता है। वहीं से उसे भाषण सुनना पड़ेगा। घेरे के एक ओर पुलिस है और दूसरी ओर बाघारू—दोनों एक ही साथ आगे बढ़ रहे हैं। फिर एक जगह रुक कर पुलिस ने अंगुली के इशारे से उसे दिखा दिया। फॉरेस्ट के भीतर लोगों के अनगिनत सिर दिख रहे हैं। बाक़ी रास्ता बाघारू अकेला ही तय करता है। एक तरफ से घेरा बायीं ओर घूम गया है। बहुत सारे लोग वहाँ बैठे थे।

बाघारू पहली पंक्ति में घुसता है।

जिस ओर से बाघारू जनसभा में घुसता है उस ओर से और कोई नहीं आता। मंच से उतर कर अगर जनसभा के लोगों तक जाना चाहे तो उसे पहली पंक्ति में ही बैठना पड़ेगा।

लेकिन पहली पंक्ति तो दूर की बात है तब तक तो जनसभा की वह जगह जुलूसों से भर गयी थी। जुलूस तिस्ता बैरेज के लिये सरकार के लिये 'ज़िंदाबाद' के नारे लगा रही थी। लेकिन अलग-अलग जगह से आये जुलूस को अलग ही रखना पड़ेगा। एक जगह से आगे जुलूस के साथ दूसरी जगह का जुलूस मिल गया तो सब खो जायेंगे। इससे गड़बड़ी हो जायेगी। इसलिये अलग-अलग जगह का जुलूस अलग-अलग जगह में रेलमपेल होकर खड़ा था। लोग अपना घुटना समेटे दीवार की तरह चपटे होकर बैठे हैं। बाघारू घेरे से निकलकर उसी दीवार

में समाने चला गया। उसे भी उसी तरह बैठना पड़ेगा। बाँस का घेरा वहीं से बाईं ओर घूम गया था। और बाघारू उसी घेरे से सटकर आगे बढ़ गया। लेकिन बाघारू वहाँ समायेगा कैसे ? कौन उसे वहाँ घुसने देगा ? धक्के खाते-खाते वह यह भी समझ गया। अलग-अलग बोली में उसे एक ही बात सुनायी पड़ती थी, ''पीछे जाओ, पीछे जाओ, अपनी जगह पर जाओ, अपनी जगह पर जाओ।'' उन सबके सीने पर बैज है। वे लोग बाघारू के बैजविहीन सीने की ओर देखते थे। बाघारू के सीने पर बैज लगाने के लिये कपड़ा भी नहीं था। गुस्से से किसी ने उसे कहा भी नहीं। कोई-कोई सहानुभूति के साथ उसे रास्ता दिखा देता। लेकिन इस मामले में सब रात के पहरेदारों की तरह सतर्क और चौकन्ने थे। इसलिये कि उनके जुलूस में कोई बाहर का न शामिल हो जाये। इसी वज़ह से बाघारू को धीरे-धीरे पीछे हटना पड़ता। क्रमशः दूर जाना पड़ता।

यह प्रसंग यहीं ख़त्म हो जाना चाहिये। अगर यह प्रसंग वृत्तांत का मुख्य हिस्सा होता तो 'बाघारू के जुलूस में शामिल होने की कोशिश' या 'जुलूस में बाघारू अवरोध' नाम से अध्याय लिखा जाता। लेकिन अब हम लोग इस तरह की किसी घटना का वर्णन नहीं कर सकते। हम लोग सिर्फ़ कुछ ख़बरें बता सकते हैं।

आख़िर बाघारू को उस फॉरेस्ट की ही तरह विशाल जनसभा के एकदम आख़िरी छोर में पहुँचना पड़ा। तब तक माइक से तरह-तरह का शोरगुल, भाषण देने की आवाज़ें आनी शुरू हो गयी थीं। तब तक फॉरेस्ट में उस फॉरेस्ट की तरह लाखों लोगों ने उस मंच के साथ सुर मिलाकर नारे लगाना शुरू कर देते हैं। यह भाषण, यह स्लोगन और इस जुलूस में से बाघारू उस जुलूस के आख़िरी छोर पर पहुँच गया। वहाँ से वह एकबार देखने की भी कोशिश करता है—नदी पर निर्मित उस पहाड़ का जंगल दिखायी पड़ता है या नहीं, पंडाल की तो बात ही दूर-लोगों के सिरों का ही अंत दिखायी नहीं देता। बाघारू एक पेड़ का सहारा लेकर ज़मीन पर बैठ जाता है। जुलूस के इस अंतिम छोर में भी बाघारू के आसपास कुछ लोग घूम-फिर रहे थे। मतलब यह कि इतना पीछे जाने के बाद भी बाघारू जुलूस के बीच में ही था। बाघारू को वहाँ न सिर्फ़ खड़े होने की जगह मिली बल्कि बैठने के लिये भी उसे मन-माफ़िक जगह मिल गयी।

लेकिन बाघारू तो गयानाथ का जुलूस टूट जाने के बाद तिस्ता नदी के बैरेज और फॉरेस्ट और उनकी समानताओं को देखने के लिये उस तरफ़ बढ़ा था। वह उन समानताओं को एकबार समझ लेना चाहता था। एक बार समझ लेने से ही उसकी सारी ज़िंदगी निकल जायेगी। लेकिन शारीरिक तौर पर कम से कम एकबार समझ ही लेना पड़ेगा।

जबकि इस जुलूस ने, इस जुलूस और इसी जुलूस ने उसे इस बैरेज और

बैरेज के इस मंच से इतना दूर धकेल दिया था कि सिर्फ़ माइक की ही आवाज़ पहुँच रही थी। वहाँ से नदी या बैरेज का या मंच का कुछ भी नहीं दिखायी पड़ रहा था। बाघारू के लिये माइक की आवाज़ का कोई मतलब नहीं। इसलिये वह जिस पेड़ के नीचे बैठा था वहीं सो गया। सो जाने से उसका सिर सीधा नहीं रहता। कभी उसके अपने सीने पर लटक जाता तो कभी कंधे पर। बाघारू का सिर दाहिनी ओर झुक जाता। वह पेड़ के नीचे लुढ़क जाता। उसका शरीर पेड़ को ऐसे घेरे रहता कि लगता, फॉरेस्ट के इस पेड़ की जड़ को वह जकड़ लेना चाहता है।

यह प्रसंग यहीं ख़त्म कर देना बेहतर है। अगर यह वृतांत का प्रधान अंश होता तो 'आपलचाँद में बाघारू का आख़िरी बार सोना' या 'बाघारू और उसका आख़िरी पेड़' शीर्षक से एक अध्याय लिखा जाता।

या फिर 'बाघारू का नींद से जगना' या 'जुलूस द्वारा बाघारू का बहिष्कार' नाम का एक अध्याय हो सकता था। कारण, बाघारू जब जागता है तब शाम उतर आती है। कहीं कोई आदमी नहीं, आपलचाँद, आपलचाँद की तरह ही निर्जन था। बाघारू के चारों ओर जुगनू चमक रहे थे। एक पक्षी बाघारू के सिर पर से डैने फड़फड़ाता हुआ उड़ गया—शायद उल्लू था या फिर मोर भी हो सकता है। खड़े होने पर बाघारू ने दूर रोशनी की क़तार देखा। उस रोशनी को देखकर बाघारू बैरेज समझ गया। उस नदी पर निर्मित पहाड़, पहाड़ पर बने पंडाल को देखा। बाघारू सीधा उसी रोशनी की तरफ़ बढ गया।

उसके बढ़ते हुए क़दम ने बाघारू को बदल दिया ? बाद में ऐसा ही लग सकता है क्योंकि फिर वह लौटकर आया भी नहीं। लेकिन उसका उस तरह से क़दम बढ़ाना जुलूस-मीटिंग के ख़त्म होने से नींद टूटने के बाद शुरू हुआ ? अभी ? या फिर शुरू हो चुका था सुबह से ही जब गयानाथ का झंडा अपने कंधे से झटक कर वह बैरेज और मंच की ओर हड़बड़ाकर बढ़ने लगा था तभी से ? अगर उस समय बाँस का घेरा और पुलिस उसे बाधा न देती, अगर पुलिस उसके रास्ते आड़े नहीं आया तो फॉरेस्ट के इतने भीतर तक तो वह पहुँच ही नहीं पाता। अब सारी बाधाएँ ख़त्म हो चुकी थीं। रात हो गयी थी। अब निशाचर पक्षियों का राज्य है। अब बाघारू को घेरे जुगनू चमक रहे थे। झींगुर बोल रहे थे। बैरेज में रोशनी की क़तार दिख रही थी। बाघारू अब सीधे आपलचाँद से होते हुए गयानाथ के घर जा सकता था। लेकिन वहाँ न जाकर बाघारू सुबह की अपनी मज़बूरी से जान छुड़ा कर चलना शुरू कर दिया। उस समय रास्ता नहीं मिलने के कारण वह सो गया। अब उसे रास्ता मिल गया था। इसलिये अब वह चल पड़ा था। बाघारू को अक्सर इस तरह लंबे-लंबे रास्ते चलना पड़ता है। वरना, गयानाथ तिस्ता में समा चुकी ज़मीन को उससे कैसे नपवाता ? तिस्ता

में बह जाने वाले जंगल के पेड़ों को नौके में उठवाकर बेचता कैसे ? बाघारू के रास्ते ऐसे ही अद्भुत रास्ते हैं। ग्रहण में गाय को प्रसव कराना, रतिक्रिया के लिये व्याकुल पक्षियों की तरह आवाज़ देना, पानी पर चलना, श्रीदेवी के सामने नाचना। अब बाघारू को जुगनुओं के बीच से होकर बैरेज की ओर बढ़ना पड़ रहा था।

यह प्रसंग अब यहीं तक। अगर यह प्रसंग इस वृतांत का मुख्य हिस्सा होता, तो हो सकता है, 'जुगनुओं के साथ बाघारू का पैदल चलना' या 'बाघारू के जुगनुओं का रेला' नाम से कोई अध्याय लिखा जाता। बाघारू को जुगनुओं के रेले से होकर गुज़रना पड़ता है। इसलिये दूर से देखने पर लगता इन आरण्यक जुगनुओं के बीच बाघारू के शरीर को आकार-सा एक अँधेरा आगे बढ़ रहा है। उस अँधेरे के बदन पर दो-एक जुगनू चमक ज़रूर रहे हैं। लेकिन जुगनुओं के बीच अँधेरे से बने बाघारू को पहचाना जाता। आकाश में इतने तारों के बावजूद कुछ तारों से अँधेरे में बने 'कालपुरुष' या 'सप्तर्षि' को पहचानने में कोई ग़लती नहीं हुई।

अब बाघारू ने घेरा लाँघ लिया। कुछेक फ्लड लाइट की रोशनी इस बैरेज के पंडाल पर पड रही थी। घेरा लाँघकर उस रोशनी के भीतर दो-चार क़दम चलते ही दो-एक जगह से शोर उठा, "अरे, अरे रुको ! किधर जा रहे हो ? ऐई, ऐई।"

बाघारू खड़ा हो गया। तब फ्लड लाइट की रोशनी उसके आपादमस्तक नंगे बदन पर पीछे से पड़ रही है। रोशनी के घेरे मे खड़े होकर बाघारू ने मंच की ओर ही देखा। वहाँ मंच पर झंडा नहीं था।

दो सिपाही बदूक़ कंधे पर रखे धीरे-धीरे बाघारू की तरफ़ बढ़ रहे थे। फ़्लड लाइट की रोशनी उनके सामने थी। उन दोनों ने सामने से आकर बाघारू को एक बार आपादमस्तक देखा। फिर सिर हिला कर एकदम शात और धीमी आवाज़ में पूछा, "किधर जा रहे हो ?"

बाघारू ने भी हाथ बढ़ा कर दिखा दिया, "इहें जा रहे हैं। पंडाल में।"

एक पुलिस ने गर्दन घुमाकर देखा कि बाघारू पंडाल किसको कह रहा है। एक दूसरा पुलिस आधा लौटकर बाघारू को हाथ हिलाकर कह दिया, "जाओ-जाओ अभी वहाँ नहीं जा सकते। जुलूस में खो गिया है ?"

दोनों पुलिस के क़रीब-क़रीब पूरी तरह पीछे घूमते ही बाघारू एक जगह खड़ा होकर बोला, "नाहीं।" मई किसी जुलूस का नाहीं हई।" जैसे यह सुनकर पुलिस उसे जाने देगी। इस बार एक पुलिस खूब ज़ोर से बोला, "जुलूस नहीं है तो बना लो। जाओ-जाओ, अभी वहाँ जाना मना है।"

बाघारू एक बाद फिर उस सुनसान लेकिन रंगीन झंडाविहीन मंच को देखता

रहा। फिर पीछे मुड़कर चलने लगा। उसका भाव ऐसा था जैसे यहाँ से घुसना संभव नहीं तो कहीं ओर से कोशिश करेगा। उस रोशनी के घेरे से लगभग निकल गया, बाँस का घेरा फाँदने को हुआ तभी पीछे से सुनायी पड़ा, "ऐई ऐई, सुनो। अरे ओ, सुनते जाओ, ऐई।" बाघारू ने घेरे के पास से देखा। दोनों पुलिस सिर पर हाथ रखकर रोशनी को आड़ करके उसे खोज रहे थे। रोशनी के पीछे उसे देख नहीं पा रहे थे।

बाघारू कोई जवाब न देकर रोशनी के आख़िरी छोर तक पहुँच गया। एकदम छोर पर, ताकि वे उसे देख सके। रोशनी के छोर तक आकर खड़ा हो गया।

दोनों पुलिस को और थोड़ा चलकर सामने आना पड़ा। इस जगह पर बालू बिछी थी। मंच का रास्ता और सभा की सीमा के बीच में 'नो मेन्स लैंड' है। इसलिये यहाँ पत्थर भी नहीं डाले गये थे। पेड़-पौधे भी नहीं लगाये गये थे। तिस्ता का बालू लाइट में चमक रहा था।

पुलिस सामने आकर खड़ी हो गयी। उनमे से एक ने कहा, "सुनो। एक ठो छोटा बच्चा हेरा गिया है। यहीं है। क्या चाहता है समझ नहीं आता। उसको ले जाओ। ठीक जगह पहुँचा देना। और एक चक्कर में बैरेज देख लेना।" फिर गर्दन घुमाकर उस मंच की ओर देखकर किसी को पुकारा, "ऐई चैंगडा (लोफर), इधर आ !" फिर बाघारू की ओर देखकर कहा, "बस एक चक्कर। और नहीं।" इसके बाद फिर गर्दन घुमाकर उस लड़के के आने वाले रास्ते की ओर देखकर बोला, "तो तुम भी हेरा गये हो ? तुम्हारा जुलूस किधर है ?"

"हमारा कोई जुलूस नाहीं।" बाघारू ने जवाब दिया।

"अकेले आया है इहाँ ?" पुलिस फिर ने पूछा। बाघारू ने कोई जवाब नहीं दिया। तब बाघारू ने देखा मंच के नीचे से या फिर बैरेज के भीतर से एक छोटा-सा लड़का निकल कर धीरे-धीरे बढ़ रहा है। उस दूरी से बाघारू अनुमान भी नहीं कर पा रहा था कि लड़का कितना छोटा है। लेकिन अधिक रोशनी में आने पर लड़का साफ़-साफ़ दिखायी पड़ता था। शायद लड़का सो गया था। तेज़ रोशनी में उसकी आँखें चौंधियाने लगीं। उसने आँखें बंद कर लीं। दोनों पुलिस कुछ समझ भी नहीं पाये। लड़का उनके पास आकर खड़ा हो गया। पर पुलिस वह आ रहा है या नहीं देखने के लिये अपनी गर्दन घुमाई तब उन्हें दिखा कि लड़का उनके पास आकर खड़ा था। तब उसके सिर पर एक हाथ रखकर बोला, "ऐई सुन, ई आदमी इस मीटिंग का है। इसके साथ जा। तुझको पहुँचा देगा।"

बाघारू लड़के की ओर देखकर बोला, "मई मीटिंग का आदमी नाहीं।" पुलिस उसका मज़ाक़ बनाकर बोला, "आहा मेरे भोला बाबा ! आए तुम मीटिंग

की भीड़ में और कहते हो मीटिंग का आदमी नाहीं।" फिर धमकाकर बोला, "जा लड़के को लईके बैरेज-वैरेज दिखा के देखके चलते बनो। जल्दी।" लड़के के सिर पर हाथ रखकर बाघारू के तरफ़ ठेलते न ठेलते, मदारी बाघारू के हाथों की लंबी अंगुली पकड़ ली, "तुम लोग सब बैरेज देखिया ?" जैसे इसी लालच में बाघारू के साथ जाने को वह तैयार हो जाता है।

यह अंश अगर मूल वृत्तांत के किसी सर्ग में शामिल होता तो 'मदारी का हस्तांतरण' या 'बाघारू-मदारी मिलाप' उस अध्याय का शीर्षक होता। फ़्लड लाइट की रोशनी इस छोटे घेरे में बालू की ज़मीन पर फट पड़ रही थी। उस रोशनी की तरफ़ मुँह करके खड़े होने से चारों ओर का अँधेरा कठिन हो गया था। मंच पर रोशनी-निर्जन, रंगीन मंच पर। दोनों पुलिस और मदारी का सिर से पैर तक रोशनी में नहा गया। बाघारू के सिर से पैर पर पीछे की ओर रोशनी पड़ रही थी। अगले ही क्षण मदारी पुलिस की ओर से बाघारू का हाथ पकड़कर उसकी ओर चला गया। उसका भी सामनेवाला भाग अँधेरा हो गया। मदारी बाघारू का हाथ खींचकर उसी मंच के नीचे से होकर बेरेज की ओर ले गया।

जिस रास्ते से होकर राज्य के मुख्यमंत्री, केन्द्रीय राज्य मंत्री, राज्य के दूसरे मंत्रियो ने सुरक्षा के कारणो से बिछे हुए पत्थर के ऊपर से मंच के पीछे लगे पर्दे को उठाकर बैरेज मे प्रवेश किया। बाघारू का हाथ पकड़कर मदारी उसी निर्जन रास्ते से बैरेज पर गया। जाते ही बैरेज की रोशनी विहीन ऊँचाई, निर्जनता और उसका विस्तार उन्हे ग्रास करने लगा। अपने जाने-पहचाने रास्ते के बाहर दूसरे किसी रास्ते में जाने से हाथियों का झुंड या बाघ थमक कर रुक गये—बाघारू और मदारी भी रुक गये। मदारी उतना नहीं ठिठका जितना बाघारू। सारे मंत्री जहाँ ग्रुप फ़ोटो के लिये खड़े थे, बाघारू को भी वहीं खड़े रह जाना पड़ा। मदारी ने बाघारू की कलाई भींचकर पकड़ ली। लेकिन हाथ छुड़ाकर बाघारू ने मदारी की कलाई ज़ोर से पकड़ ली। जैसे यहाँ अचानक आत्मरक्षा की ज़रूरत पड़ सकती है।

मंच के पीछे एक मात्र रोशनी थी। लेकिन एक धुँधली छाया—आकाश-नदी में जैसी होती है। बाघारू ने देखा—तिस्ता कहीं भी नज़र नहीं आ रही है। जहाँ वे लोग खड़े हैं वहाँ से सीधा देखने से ऊपर बोदागंज फॉरिस्ट के पेड़-पौधे लगता है उनके पैरों से बहुत नीचे हैं। इस धुँधलके में बोदागंज फॉरिस्ट के पेड़-पौधे दिखायी नहीं देते। लगता था उसके पास एकदम पास से यह रोशनी अँधेरे में एकदम मिल गयी है। लेकिन बाघारू को आकाश में रोशनी, धुँधलके में और अँधेरे भी सब दिखता था। वह जानता था, वही बोदागंज फॉरिस्ट है। इसका मतलब वे बहुत ऊँचे उठ गये हैं। इतने ऊँचे जहाँ से फॉरिस्ट के पेड़-पौधे उनके पैर के नीचे नज़र आ रहे थे। कितनी ऊँचाई होगी ? तिस्ता कहाँ है ?

तिस्ता को ढूँढ़ निकालने के लिये बाघारू को कुछेक क़दम चलना पड़ा। नंगे पैर पत्थर के ऊपर से चलने में उसे कोई असुविधा नहीं हो रही थी। बाघारू ने लंबे लेकिन संयमित डग भरा। दाहिने-बायें सिर घुमाया। जबकि उसके दायें-बायें आसमान का नितान्त विस्तार था। वहाँ क्या ऐसा हो सकता था कि बाघारू को अचानक आत्मरक्षा के लिये उद्धृत होना पड़े।

मदारी की कलाई बाघारू के हाथ में थी। बाघारू ने उसे कसकर पकड़ रखा था—जिससे किसी कारणवश मदारी उसके हाथ से छिटक कर दूर न चला जाये, अचानक ऐसा कहीं कुछ हो जाये। बाघारू की सख़्त पकड़ से मदारी खुद ही हाथ अचानक छुड़ा ले। मदारी के भीतर बाघारू की आशंका संचारित हो गयी। वह बाघारू के पैर से लिपट गया।

कुछेक क़दम चलने के बाद बाघारू रुक गया। फिर दाहिनी तरफ़ धीरे-धीरे खिसक आया। धीरे-धीरे बैरेज के किनारे आकर खड़ा हो गया।

"अरे इहाँ गेट बनाया है और पानी को अटकाकर रखा है," बाघारू ने कहा। अपनी कही हुई बातें जिस तरह हवा में उड़ जाती हैं उससे वे समझ गये हवा दाहिने से बायें, उत्तर से दक्षिण चल रही हैं उस हवा में भार देकर बाघारू ने गर्दन झुकाकर देखा—नीचे किसी पाताल में पानी चिकचिक कर रहा है। बाघारू और थोड़ी देर देख सकता था—और भी बहुत दूर तक पानी धुँधला-सा चिकचिक कर रहा था। इसी स्लूइस गेट से पानी छोड़कर उद्घाटन करने के लिये तिस्ता के स्रोत को दूर-दूर से छोटे-छोटे बाँध के जरिये गेट के सामने लाया गया था। बाघारू को वे बाँध नज़र नहीं आये। उसने देखा, नीचे कुछ दूरी तक पानी की मटमैली तरलता है। देखकर वह समझ नहीं पाया कि तिस्ता का स्रोत किस ओर से किस ओर बह रहा है। समझ नहीं पाया कि तिस्ता किस रास्ते से किस ओर निकल रही है। बाघारू तो तिस्ता के भीतर से तिस्ता को देखता आया था—अब वह किस तरह इतनी ऊँचाई से उसके भीतर को पहचान पायेगा।

बाघारू किनारे से हट गया। उसके हाथ की मुट्ठी में मदारी तब दाहिने पैर से चिपका हुआ था। बाघारू अब बैरेज के विपरीत किनारे की ओर बढ़ गया।

मदारी ने पूछा, "इहाँ पानी को रोके रखा हई ?"

"हाँ, रोके रखा हई।"

"काहे रोके रखा हई ?"

"क्या पता—"

अभी हवा उनके पीछे थी। बाघारू ने मदारी को बायें हाथ में ले लिया—पीछे से हाथ बढ़ा। मदारी उसके बायें पैर से सटा हुआ था। इस बार बाघारू उतना किनारे नहीं गया। कहीं हवा उसे पीछे से धक्का देकर गिरा न

दे। वह बायाँ हाथ और बायों पैर शरीर से अलग रखा। मदारी को नीचे नदी देखना पड़ा। वह भी अपने पैर के ऊपर से। थोड़ा झुककर देखने के लिये मदारी बाघारू के पीछे हाथ से शरीर का भार देकर खड़ा हो गया। वह भार उसे बदलना भी पड़ा। बाघारू को आभास हुआ कि मदारी बीच-बीच में उसकी पीठ पर बाघ के पंजे पर हाथ रख रहा है। आख़िर में, मदारी ने वहीं हाथ रख दिया। बाघारू के चिकने शरीर में बाघ के पंजे के इस खुरदुरी जगह में, हाथ रखने में उसे सुविधा हुई।

स्लूइस गेट खोल कर पानी इस तरफ़ से निकाला जा रहा था। पर बहुत देर तक नहीं—पानी ज़्यादा नहीं था। वह पानी अब इस तरफ़ विभिन्न जगहों पर फैल चुका था। बारिश होने से जैसा दिखता था। बाघारू इतनी ऊँचाई से बहुत कुछ नहीं देख पाया। लेकिन पानी फैल गया है, यह समझ गया।

"इहाँ पानी छोड़ा है, इहाँ।" बाघारू ने अपने आप से कहा। लेकिन बैरेज के नीचे से नज़र उठाकर तिस्ता के उपर धुँधलके से नज़र फेंकनी पड़ी। तिस्ता को पहचानने के लिये। रात के आकाश में तारों के भीतर से तिस्ता को देखा। लेकिन निश्चित नहीं होता। बायें हाथ को और पीछे करके मदारी को हटाकर बाघारू उस किनारे से हट गया।

मदारी ने उसके पैर से चिपककर पृछा, "पानी कइसे छोड़ते हई ?"

"क्या मालूम ! पता नाहीं।" बाघारू बैरेज के बीच में आकर खड़ा हो गया।

अब बाघारू ने बैरेज के उपर से सामने देखा। बैरेज से होते हुए वह सामने बढ़ने के लिये प्रस्तुत हुआ। फिर चलना शुरू कर दिया। मदारी को बायें हाथ से पकड़े हुए था। बाघारू के बायें पैर से लिपटा। जैसे वे आकाश के भीतर से चल रहे हों। बाघारू ने नीचे तिस्ता और उपर आकाश की ओर जितनी बार देखा उसे लगता था वे आकाश के भीतर से चल रहे हैं। और आसमान की तमाम हवा बाघारू और मदारी के शरीर के ऊपर से बह रही है। यह हवा काफ़ी ऊँचाई वाली हवा थी। इसमें आवाज़ नहीं थी। बैरेज के ऊपर दोनों पैर वह ज़माना चाहता है लेकिन बैरेज के उपर दोनों पैर वह जमाना चाहता था। लेकिन बैरेज के उपर पैर जमे नहीं। बाघारू ने अपने घुटने को मोड़कर तैयारी की। यह हवा अगर उसे उलटने लगे तो मदारी को पकड़कर वह बैठ जायेगा। घने जंगल में जो तैयारी बाघारू ने की, वह शरीर से संबंधित थी। इस बैरेज में भी उसी तरह की प्रस्तुति बाघारू ने की। लेकिन जंगल की गहराई उसके पैर जानते हैं, लेकिन बैरेज की यह ऊँचाई उसकी जानी-पहचानी नहीं थी।

बाघारू जानता था, बैरेज की लंबाई कितनी है। उसने सुन रखा था कि बैरेज पूरा नहीं हुआ है लेकिन कहाँ तक होने से वह पूरा हो जायेगा—वह नहीं

जानता। इस हवा के झोंके को सँभालते-सँभालते इस धुँधलके से जूझते हुए आगे बढ़ने पर लगता था वह बहुत दूर आ गया है। और आगे बढ़ने का उसे साहस नहीं होता। बाघारू सामने की ओर देखते हुए खड़ा हो गया। खड़े होने के साथ उसने दोनों पैर फाँक कर लिया। यह भी तैयारी ही है। बाघारू को सिर पीछे की ओर झुकाना पड़ा—ऐसा उसने हवा की गति और सामने की दूरी का अंदाज़ लगाने के लिये किया।

मदारी ने ज़ोर से पूछा, "बैरेज इहें खत्म हई ?"

"पता नहीं।"

मदारी सुन नहीं पाया। वह बाघारू के बायें पैर से सिर निकाल कर फिर पूछा, "बैरेज इहें खत्म हई। ई बैरेज ?"

इस बार बाघारू मदारी को पीछे से सामने की ओर खींचता है—"हमको ज़ोर से पकड़े रहो—हवा ज़ोर हई।"

मदारी ने बाघारू को ज़ोर से पकड़ लिया। लेकिन उसकी पकड़ अधूरी थी। कारण उसके छोटे हाथ में बाघारू का शरीर समाता नहीं था। इससे मदारी अपना हाथ बाघारू के शरीर में गड़ा दिया। फिर बायें हाथ से बाघारू के पीछे बाघ के पंजे के खुरदुरेपन को थामने के लिये ढूँढ़ने लगा। मदारी बाघारू को पहचान गया। तिस्ता के बैरेज में बदल जाने से रात के इस सूने आकाश में किसी को भी पहचाना जा सकता था। इसलिये मदारी बाघारू को पहचान गया था। बाघारू ने मदारी का दोनों हाथ कसकर अपने शरीर में जकड़ लिया।

मदारी ने गर्दन झुकाकर बाघारू से पूछा, "ई बैरेज क्या इहें खत्म हई ?"

"नाहीं मालूम।"

"इहीं तिस्ता हैई ? तिस्ता नदी ?"

उसकी बात का जवाब देने के लिये या तिस्ता को खुद ढूँढ़ने के लिये ही सही, बाघारू ने दाहिने-बायें गर्दन घुमाकर देखा।

"क्या पता।"

"तुम तिस्ता नदी को नई चिनहते ?"

"नाहीं।"

"इहाँ से तिस्ता नदी को हटा दिये हैई ?"

"क्या जाने।"

"नया नदी बनाया हैई ? इहाँ ?"

"क्या जाने।"

"तुम इहां के आदमी नई हो ?"

बाघारू ने जवाब नहीं दिया।

"जुलूस में आया हैई ?"

"हमारा कोई जुलूस नाही।" बाघारू ने अपना दोनों हाथ मदारी के सिर पर रख दिया। और मदारी इस जुलूस और नदी से अलग-थलग पड़े सर्वहारा बाघारू के ममता से चिपक गया। फिर कौतूहल से पूछा, "तुम भी क्या हमरी तरह खो-खा गये ?"

बाघारू को हँसी आ गयी।

पीछे से पुलिस की आवाज़ सुनायी पड़ी, "ऐई, अब चले आओ, टाइम हो गया है, चले आओ।"

मदारी और बाघारू ने पलटकर देखा, पुलिस टॉर्च दिखाकर उन्हें लौट आने को कह रही थी। वे लौटने लगे।

पुलिस उन्हें बुलाने पर लौटते देख खुद ही वापस चली गयी। मच के नीचेवाला पर्दा हटाकर बाघारू और मदारी जब उस तेज रोशनी में पहुँचते हैं तब उस बालू बिछी ज़मीन पर कोई न था। मदारी बाघारू को छोड देता है। बाघारू भी अपनी मुट्ठी हल्का कर लता है। मदारी एक पैर से नाचते-कूदते उस ज़मीन को पार करता है। पीछे मुडकर वह बाघारू को बुलाता है, "इधर आओ।" सफ़ेद बालू पर उनकी परछाई क्रमश· लबी होती जाती है। आख़िर में पूरे घेरे पर उनकी परछाई छा जाती है। बाघारू और मदारी उस घेरे को फॉदकर आपलचॉद मे जायेंगे। आपलचॉद का पूरा जगल जुगनुओ से भरा-भरा है। मंच के नीचे इस फ़लड लाइट को पार करके बाघारू मदारी को सब कुछ दिखाई नहीं पड़ता।

हम लोग अब बाघारू का पीछा नहीं करेंगे।

बाघारू तिस्ता पार और आपलचॉद छोड़कर चला जा रहा है। मदारी भी उसके साथ जा रहा है। जिस वजह से तिस्ता पार और आपलचॉद का शालवन उजड़ गया उसी कारण से बाघारू भी उजड गया । जिस कारण तिस्ता पार और आपलचाँद के हिरण और हाथी के झुंड, पाखियों के झुंड, सॉप वग़ैरह चले जायेगे—उसी कारण बाघारू भी चला गया। उसके पास तो एकमात्र शरीर है। वह शरीर इस नये तिस्ता पार में, नये फॉरिस्ट में जिदा नहीं रख पायेगा। इस नदी का मोह, बैरेज, देश के अर्थशास्त्र से बँधा नहीं। बाघारू का किसी तरह का उत्पादन नहीं। बाघारू इस बैरेज, इस अर्थशास्त्र, इन विकास को छोड़ गया। बाघारू कुछ-कुछ कह सकता है लेकिन इन चीज़ो को अस्वीकार करने की भाषा वह नहीं जानता। उसका एक और शरीर है। उस शरीर को वह छोड़कर जा रहा है।

वह आज सारी रात फॉरिस्ट पार करेगा—जहॉ वह जन्मा था। एक-दो रास्ता भी पार करेगा। कल सुबह फिर जंगल पार करेगा। दो-एक हाट-बाज़ार भी पार करेगा। कभी-कभी मदारी ऊँघेगा भी। बाघारू मदारी को गोद में लेगा। कभी मदारी बाघारू से आगे निकल कर उसके लिये जंगल के भीतर रास्ता बनायेगा।

मदारी भी तो जंगल पुत्र है। इसी तरह चलते-चलते जब बाघारू को लगेगा कि उसे एक नया जंगल, नयी नदी मिल गयी है तो वह रुक जायेगा। उस नयी नदी, नये जंगल को बाघारू का यह शरीर पहचान जायेगा। बाघारू नहीं पहचानता—मदारी कौन है, कहाँ वह रहता था। सारी रात, सारा दिन जंगल के बाद जंगल, नदी के बाद नदी, हाट के बाद हाट पार करते-करते उनके बीच बहुत सारी बातें होंगी। वे दोनों एक-दूसरे को जानेंगे। कितनी ही बार नींद में वे ऊँघेंगे और फिर हड़बड़ा कर जग जायेंगे। वे दोनों एक-दूसरे के पूरक बन जायेंगे। और ये सारी घटनाएँ तो एक अलग गाथा का विषय है।

यह गाथा यही समाप्त हो।

सब कुछ छोड़कर चले जानेवाले इस रात में बाघारू मदारी को साथ लेकर चलता रहे, चलता रहे, चलता रहे.........

□□□